तिलोयपण्णत्ती – तृतीय खण्ड

तिलोयपण्णत्ती - तृतीय खण्ड

श्री चन्द्रप्रभ स्तवन

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचि गौरं चन्द्रं, द्वितीयम् जगतीव कान्तम्।
बन्देऽभिवन्द्यं महता मृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्त कषाय बन्धम्।।
स चन्द्रमा भव्य कुमुद्वतीना, विपन्न दोषाभ्र कलंक लेपः।
व्याकोशवाङ् न्याय मयूख मालः, पूयात्पवित्रों भगवान मनो मे।।

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान
श्री १००८ चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा-तिजारा-३०१४११ (अलवर-राजस्थान)

श्रीयतिवृषभाचार्यविरचित

तिलोयपण्णत्ती – तृतीय खण्ड

(पचम से नवम् महाधिकार)

□

पुरोवाक्

डॉ पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

□

भाषाटीका

आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी

□

सम्पादन

डॉ॰ चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर (राज)

□

प्रकाशक एव प्राप्तिस्थान

श्री १००८ चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र

देहरा-तिजारा-३०१४११ (अलवर-राजस्थान)

□

मूल्य- १३०/–

□

तृतीय संस्करण

ई सन् २००८ | वीर निर्वाण सवत् २५३४ | वि.स २०६५

□

ऑफ्सैट मुद्रक

शकुन प्रिंटर्स, ३६२५, सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–११०००२

फोन २३२७१८१८, २३२८०४०१

श्री १००८ भगवान चन्द्रप्रभ की पावन प्रतिमा दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र दोराहा-तिजारा

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री वीरसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री शिवसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी
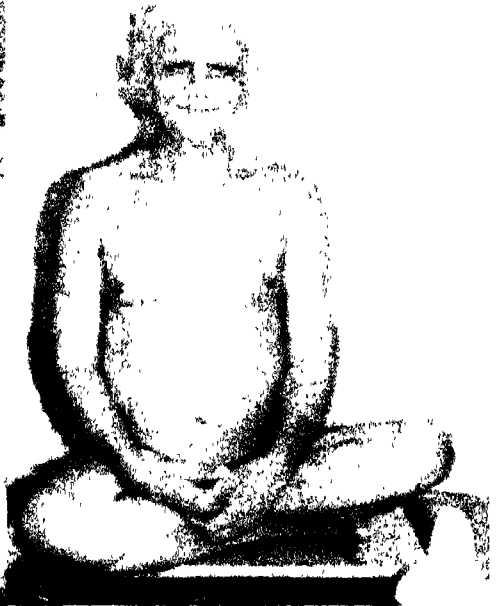
परमपूज्य आचार्य श्री अजितसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री वर्द्धमानसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री सुमतिसागर जी

परमपूज्य आचार्य श्री सुमतिसागर जी

प्रकाशकीय

जैन धर्म और जैन वाङ्मय के इतिहास का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लोक वितरण सम्बंधी ग्रन्थ भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने अन्य आगम। "तिलोयपण्णत्ती" इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। पूज्य आचार्य यतिवृषभजी महाराज की यह अमर कृति है। पूज्य आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमति माताजी की हिन्दी टीका ने इस ग्रन्थ की उपयोगिता को और बढ़ा दिया है। इस ग्रन्थ के तीनो खण्डो का प्रकाशन क्रमश १९८४, १९८६ व १९८८ में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा ने किया था।

ग्रन्थ का सम्पादन डा. चेतनप्रकाशजी पाटनी ने कुशलतापूर्वक किया है। गणित के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो लक्ष्मीचन्द्रजी ने गणित की विविध धाराओ को स्पष्ट किया है। डा. पन्नालालजी साहित्याचार्य ने इसका पुरोवाक् लिखा है। माताजी के सघस्थ ब्र. कजोड़ीमलजी कामदार ने प्रथम सस्करण के कार्य मे पुष्कल सहयोग किया था।

हमारे पुण्योदय से श्री चन्द्रप्रभु दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पर उपाध्याय मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज का सघ सहित पदार्पण हुआ और उनके पावन सान्निध्य में क्षेत्र पर मान-स्तम्भ प्रतिष्ठा एव श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणक सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर उपाध्याय मुनिश्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज की प्रेरणा से प्रस्तुत सस्करण का प्रकाशन करना सम्भव हुआ। यह संस्करण शकुन प्रिन्टर्स नई दिल्ली में ऑफ्सैट विधि से मुद्रित हुआ ताकि पुन कम्पोज की अशुद्धियों से बचा जा सके।

क्षेत्र कमेटी ग्रन्थ प्रकाशन की प्रक्रिया मे सलग्न सभी त्यागीगण व विद्वानो का हृदय से आभारी है– विशेष रूप से हम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञान सागर जी महाराज के ऋणी है जिनकी प्रेरणा से प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित हो सका है। हम भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षणी) महासभा के सम्मानित अध्यक्ष श्री निर्मलकुमार जी सेठी के आभारी हैं जिन्होंने ग्रन्थ का सस्करण कराने की अनुमति प्रदान की है। हम महासभा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री नीरजजी जैन के भी आभारी हैं जिन्होंने इस सस्करण की संयोजना से लेकर अनुमति दिलाने तक हमारा सहयोग किया। हमें पूर्ण आशा है कि ग्रन्थ के पुनर्प्रकाशन से जिज्ञासु महानुभाव इसका पूरा-पूरा लाभ उठा सकेगे।

–तुलाराम जैन
अध्यक्ष, श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर
जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा–तिजारा (अलवर)

श्री १००८ चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा-तिजारा

एक परिचय

चौबीस तीर्थंकरों में आठवें भगवान चन्द्रप्रभ का नाम चमत्कारों की दुनियाँ में अग्रणी रहा है। इसलिए सदैव ही विशेष रूप से वे जन-जन की आस्था का केन्द्र रहे हैं। राजस्थान में यूं तो अनेक जगह जिनबिम्ब भूमि से प्रकट हुए हैं, परन्तु अलवर जिले में तिजारा नाम अत्यन्त प्राचीन है जहाँ भगवान चन्द्रप्रभ की मूर्ति प्रगट हुई हैं तब से ''देहरा'' शब्द तिजारा के साथ लगने लगा है, और अब तो ''देहरा'' तिजारा का पर्याय ही बन गया है। 'देहरा'' शब्द का अर्थ सभी दृष्टियों से देव स्थान, देवहरा, देवरा या देवद्वार कोषकारों ने अंकित किया है। इनके अनुसार देहरा वह मन्दिर है जहाँ जैनों द्वारा मूर्तियाँ पूजी जाती हैं। (A Place where idols are worshipped by Jains.)

देहरे का उपलब्ध वृतान्त, जुड़ी हुई अनुश्रुतियाँ साथ ही जैन समुदाय का जिनालय विषयक विश्वास इस स्थान के प्रति निरंतर जिज्ञासु बनता जा रहा था। सौभाग्य से सन् १९४४ मे प्रज्ञाचक्षु श्री धर्मपाल जी जैन खेकड़ा (मेरठ) निवासी तिजारा पधारे। इस स्थान के प्रति उनकी भविष्यवाणी ने भी पूर्व में स्थापित संभावना को पुष्ट ही किया। इस स्थान पर अवशिष्ट खंडहरों में उन्हें जिनालय की संभावना दिखाई दी। किन्तु उनका मत था कि ''वर्तमान अंग्रेजी शासन परिवर्तन के पश्चात् स्वयं ऐसे कारण बनेंगे, जिनसे कि इस खण्डहर से जिनेन्द्र भगवान की मूर्तियाँ प्रकट होंगी।''

देश की स्वंतत्रता के बाद तिजारा में स्थानीय निकाय के रूप में नगर पालिका का गठन हुआ। जुलाई १९५६ में नगर पालिका ने इस नगर की छोटी व संकरी सड़कों को चौडा कराने का कार्य प्रारम्भ किया। वर्तमान में, जहां देहरा मंदिर स्थित है, यह स्थान भी ऊबड़-खाबड़ था। हां निकट ही एक खण्डहर अवश्य था। इस खण्डहर के निकट टीले से जब मजदूर मिट्टी खोदकर सडक के किनारे डाल रहे थे, तो अचानक नीचे कुछ दीवारें नजर आईं। धीरे-धीरे खुदाई करने पर एक पुराना तहखाना दृष्टिगोचर हुआ। इसे देखते ही देहरे से जुडी हुई तमाम जनश्रुतियां, प्राचीन इतिहास और उस नेत्रहीन भविष्यवक्ता के शब्द क्रमश स्मरण हो आये। जैन समाज ने इस स्थान की खुदाई कराकर सदा से अनुत्तरित कुतूहल को शान्त करने का निर्णय किया।

जब प्रतिमाएं मिलीं

राज्य अधिकारियों की देख-रेख में यहां खुदाई का कार्य प्रारम्भ किया गया। स्थानीय नगर पालिका ने जन भावना को दृष्टि में रखते हुए आर्थिक व्यवस्था की, किन्तु दो-तीन दिन निरन्तर उत्खनन के बाद भी आशा की कोई किरण दिखाई नहीं दी। निराशा के अंधकार में सरकार की ओर से खुदाई बन्द होना स्वभाविक था किन्तु जैन समाज की आस्था अन्धकार के पीछे प्रकाश पुंज को देख रही थी, अत: उसी दिन दिनांक २०-७-१९५५ को स्थानीय जैन समाज ने द्रव्य की व्यवस्था कर खुदाई का कार्य जारी रखा। गर्भगृह को पहले ही खोदा जा चुका था। आस-पास खुदाई की गई; किन्तु निरन्तर असफलता ही हाथ लगी। पर आस्था भी अपनी परीक्षा देने को कटिबद्ध थी। इसी बीच निकट के कस्बा

नगीना जिला गुड़गांवा से दो श्रावक श्री झब्बूराम जी व मिश्रीलाल जी यहां पधारे। उन्होंने यहां जाप करवाये। मंत्र की शक्ति ने आस्था को और बल प्रदान किया। परिणामस्वरूप रात्रि को प्रतिमाओं के मिलने के स्थान का संकेत स्वप्न से प्रत्यक्ष हुआ। संकेत से उत्खनन को दिशा प्राप्त हुई। बिखरता हुआ कार्य सिमट कर केन्द्रीभूत हो गया। सांकेतिक स्थान पर खुदाई शुरु की गई। निरंतर खुदाई के बाद गहरे भूरे रंग का पाषाण उभरता सा प्रतीत हुआ। खुदाई की सावधानी में प्रस्तर मात्र प्रतीत होने वाला रूप क्रमश: आकार लेने लगा। आस्था और घनीभूत हो गई; पर जैसे स्वयं प्रभु वहां आस्था को परख रहे थे, प्रतिमा मिली अवश्य किन्तु स्वरूप खंडित था। आराधना की शक्ति एक निष्ठ नहीं हो पाई थी। मिति श्रावण शुक्ला ५ वि.सं. २०१३ तदानुसार दिनांक १२-८-५६ई. रविवार को तीन खण्डित मूर्तियां प्राप्त हुई थीं। जिन पर प्राचीन लिपि में कुछ अंकित है। जिन्हें अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। हां मूर्तियों के सूक्ष्म अध्ययन से इतना प्रतीत अवश्य होता है कि ये मौर्यकाल की हैं। इन मूर्तियों के केन्द्र में मुख्य प्रतिमा उत्कीर्ण कर पार्श्व में यक्ष यक्षणी उत्कीर्ण किये हुए हैं। तपस्या की परम्परागत मुद्रा केश राशि और आसन पर उत्कीर्ण चित्र इन्हें जैन मूर्तियाँ सिद्ध करते हैं। एक मूर्ति समूह के पार्श्व में दोनों ओर पद्मासन मुद्रा में मुख्य विम्ब की तुलना में छोटे बिम्ब हैं। लाली के श्यामल पत्थर से निर्मित इन मूर्ति समूहों का सूक्ष्म अध्ययन करने से क्षेत्र के ऐतिहासिक वैभव पर प्रकाश पड़ सकता है।

इन खण्डित मूर्तियों से एक चमत्कारिक घटना भी जुड़ी हुई है। जिस समय उक्त टीले पर खुदाई चल रही थी, स्थानीय कुम्हार टीले से निकली मिट्टी को दूर ले जाकर डाल रहे थे। कार्य की काल-गत दीर्घता में असावधानी सम्भव थी और इसी असावधानी में कुम्हार किसी प्रतिमा का शीर्ष भाग भी मिट्टी के साथ कूड़े में डाल आया था। असावधानी में हुई त्रुटि ने उसे रात्रि भर सोने नहीं दिया। उस अदृश्य शक्ति से स्वप्न में साक्षात्कार कर कुम्हार को बोध हुआ, और वह भी "मुँह अंधेरे" मिट्टी खोजने लगा। अन्तत: खोजकर वह प्रतिमा का शीर्ष भाग निश्चित हाथों में सौंपकर चैन पा सका।

स्वप्न साकार हुआ

आस्था के अनुरूप खण्डित मूर्तियों की प्राप्ति शीर्ष भाग का चमत्कार, मिट्टी में दबे भवन के अवशेष जैन समुदाय को और आशान्वित बना रहे थे। उत्साह के साथ खुदाई में तेजी आई किन्तु तीन दिन के कठिन परिश्रम के पश्चात् भी कुछ हाथ नहीं लगा। आशा की जो भीनी किरण पूर्व में दिखलाई दी थी वह पुन: अन्धकार में विलीन होने लगी। एक बार समाज की प्रतिष्ठा मानों दाव पर लग गई थी। भक्त मन आस्था के अदृश्य स्वर का आग्रह मानों सर्वत्र निराशा के बादलों को घना करता जा रहा था। समाज की ही एक महिला श्रीमती सरस्वती देवी धर्म पत्नी श्री बिहारी लाल जी वैद्य ने खंडित बिम्बों की प्राप्ति के बाद से ही अन्न जल का त्याग किया हुआ था। उनकी साधना ने जैसे असफलताओं को चुनौती दे रखी थी। आस्था खंडित से अखंडित का सन्धान कर रही थी। साधना और आस्था की परीक्षा थी। तीन दिन बीत चुके थे। श्रावण शुक्ला नवमी की रात्रि गाढ़ी होती जा रही थी। चन्द्र का उत्तरोत्तर

बढ़ता प्रकाश अंधकार को लीलने का प्रयास कर रहा था। मध्य रात्रि को उन्हें स्वप्न हुआ और भगवान की मूर्ति दबी होने के निश्चित स्थान व सीमा का संकेत मिला। संकेत पूर्व में अन्यान्य व्यक्तियों को मिले थे; किन्तु तीन दिन की मनसा, वाचा, कर्मणा साधनों ने संकेत की निश्चित्ता को दृढ़ता दी। रात्रि को लगभग एक बजे वह उठी और श्रद्धापूर्वक उसी स्थान को दीपक से प्रकाशित कर आई। अन्तः प्रकाशमान उस स्थल को वहिर्दीप्ति मिली। नये दिन यानी १६-८-५६ को निर्दिष्ट स्थान पर खुदाई शुरु की गई।

स्वप्न का संकेत एक बार फिर संजीवनी बन गया। श्री रामदत्ता मजदूर नई आशा व उल्लास से इस संधान में जुट गया। उपस्थित जन समुदाय रात्रि के स्वप्न के प्रति विश्वास पूर्वक वसुधा की गहनता और गम्भीरता के जैसे पल-पल दोलायमान चित्त से देख रहा था। मन इस बात के लिये क्रमशः तैयार हो रहा था कि यदि प्रतिमा न मिली तो संभवतः खुदाई बन्द करनी पड़े; किन्तु आस्था अक्षय कोष से निरंतर पाथेय जुटा रही थी जिसका परिणाम भी मिला। उसी दिन अर्थात् श्रावण शुक्ला दशमी गुरुवार सं. २०१३ दिनांक १६-८-१९५६ को मिट्टी की पवित्रता से श्वेत पाषाण की मूर्ति उभरने लगी। खुदाई में सावधानी आती गई। हर्षातिरेक में जन समूह भाव विह्वल हो गया। देवगण भी इस अद्भुत प्राप्ति को प्रमुदित मन मानों स्वयं दर्शन करने चले आये। मध्यान्ह के ११ बजकर ५५ मिनट हुए थे रिक्त आकश में मेघ माला उदित हुई। धारासार वर्षा से इन्द्र ने ही सर्वप्रथम प्रभु का अभिषेक किया। प्रतिमा प्राप्ति से जन समुदाय का मन तो पहिले ही भीग चुका था अब तन भी भीग गया। प्रतिमा पर अंकित लेख भी क्रमशः स्पष्ट होने लगा। जिसे पढ़कर स्पष्ट हुआ कि यह प्रतिमा सम्वत् १५५४ की है। जैनागम में निर्दिष्ट चन्द्र के चिन्ह से ज्ञात हुआ कि यह जिन बिम्ब जैन आम्नाय के अष्टम तीर्थकर चन्द्रप्रभ स्वामी का है। लगभग एक फुट तीन इंच ऊँची श्वेत पाषाण की यह प्रतिमा पद्मासन मुद्रा मे थी। प्रभु की वीतरागी गभीरता मानो जन जन को त्याग और संयम का उपदेश देने के लिये स्वयं प्रस्तुत हो गई थी। प्रतिमा पर अंकित लेख इस प्रकार है।

"सं. १५५४ वर्षे बैसाख सुदी ३ श्री काष्ठासंघ, पुष्करमठो भ. श्री मलय कीर्ति देवा, तत्पट्टे भ. श्री गुण भद्र देव तदाम्नाये गोयल गोत्रे सं. मंकणसी भार्या होलाही पुत्र तोला भा. तरी पुत्र ३ गजाधरू जिनदत्त तिलोक चन्द एतेषां मध्ये सं. तोला तेन इदम् चन्द्रप्रभं प्रति वापितम।"

प्रतिमा की प्राप्ति ने नगर में मानो जान फूंक दी। भूगर्भ से जिन बिम्ब की प्राप्ति का उल्लास बिखर पड़ा। तत्काल टीन का अस्थायी सा मडप बनाकर प्रभु को काष्ठ सिंहासन पर विराजमान किया गया। श्वेत उज्जवल रश्मि ने अंधकार में नया आलोक भर दिया।

मंदिर निर्माण की भावना

श्वेत पाषाण प्रतिमा जी के प्रकट होने के पश्चात् उनके पूजा स्थान के क्रम मे विभिन्न विचार धारायें सामने आने लगी। नवीनता के समर्थक युवकों का विचार था कि प्रतिमा जी को कस्बे के पुराने जिन मंदिर में विराजमान कर दिया जावे; क्योंकि वर्तमान दौर में नवीन पूजा गृहों की निर्मिति कराने की अपेक्षा पारंपरित मंदिरों का सरक्षण अधिक आवश्यक है। उनका कहना था कि बदलती हुई परिस्थितियों

में नये सिरे से मंदिर के निर्माण की अपेक्षा शिक्षा, चिकित्सा आदि क्षेत्रों में प्रयास करने की अधिक आवश्यकता है। पूजा गृहों के निर्माण से पूर्व पूजकों में आस्था बनाये रखने के लिऐ जैन शिक्षण संस्थानों की स्थापना ज्यादा उपयोगी व युग सापेक्ष्य होगी। लेकिन कुछ भाइयों का विचार था कि इसी स्थान पर मंदिर बनवाया जावे जहां प्रतिमा प्रकट हुई है। दोनों प्रकार की विचार धारायें किसी भी निर्णय पर नहीं पहुंच पा रही थी। असमंजस की सी स्थिति थी कि प्रतिमा जी की रक्षक दैवी शक्तियों ने चमत्कार दिखाना आरम्भ कर दिया।

पुणयोदय से चमत्कार

प्रतिमा प्रकट होने के दो तीन दिन पश्चात् ही एक अजैन महिला ने भगवान के दरबार में सिर घुमाना शुरु कर दिया। बाल खोले, सिर घुमाती यह महिला निरंतर देहरे वाले बाबा की जय घोष कर रही थी। व्यंतर बाधा से पीड़ित यह महिला इससे पूर्व जिन बिम्ब के प्रति आस्था शील भी न रही थी; किन्तु धर्म की रेखा जाति आदि से न जुड़कर मानव मात्र के कल्याण से जुड़ी हुई है। जिसमें प्राणी मात्र का संकट दूर करने की भावना है। बाबा चन्द्रप्रभ स्वामी के दरबार में महिला के मानस को आक्रान्त करने वाली उस प्रेत छाया (व्यंतर) ने अपना पूरा परिचय दिया और बतलाया कि वह किस प्रकार उसके साथ लगी, और क्या क्या कष्ट दिये। अन्त में तीन दिन पश्चात् क्षेत्र के महातिशय के प्रभाव से व्यंतर ने सदा के लिये रोगी को अपने चंगुल से मुक्त किया, और स्वयं भी प्रभु के चरणों में शेष काल व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की। भूत प्रेत से सम्बन्धित यह घटना मानसिक विक्षिप्तता कहकर संदेह की दृष्टि से देखी जा सकती थी; किन्तु ऐसे रोगियों का आना धीरे-धीरे बढ़ता गया, तो विक्षिप्तता न मानकर प्रेत शक्ति की स्थिति स्वीकारने को मस्तिष्क प्रस्तुत हो गया। वैसे भी जैनागम व्यंतर देवों की अवस्थिति स्वीकार करता है। वर्तमान में विज्ञान भी मनुष्य मन को आक्रान्त करने वाली परा शक्तियों की स्थिति स्वीकार कर चुका है।

क्षेत्र पर रोगियों की बढ़ती संख्या और उनकी आस्था से निष्पन्न आध्यात्मिक चिकित्सा ने इसी स्थल पर मंदिर बनवाने की भावना को शक्ति दी। क्षेत्र की अतिशयता व्यंतर बाधाओ के निवारण के अतिरिक्त अन्य बाधाओं की फलदायिका भी बनी। श्रृद्धालु एवं अटूट विश्वास धारियों की विविध मनोकामनाएं पूर्ण होने लगीं। इन चमत्कारों ने जनता की नूतन मंदिर निर्माण की आकांक्षा को पुंजीभूत किया। फलतः २६-८-१९५६ को तिजारा दिगम्बर जैन समाज की आम सभा में सर्व सम्मति से यह निर्णय हुआ कि इसी स्थान पर मंदिर का नव निर्माण कराया जावे। मंदिर निर्माण हेतु जैन समाज ने द्रव्य संग्रह किया और मंदिर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ।

मंदिर निर्माण

वर्तमान में जहां दोहरा मंदिर स्थित है इस भूमि पर कस्टोडियन विभाग का अधिकार था। बिना भूमि की प्राप्ति के मंदिर निर्माण होना असम्भव था। समाज की इच्छा थी कि अन्यत्र नया मंदिर बनाने की बजाय प्रतिमा के प्रकट स्थान पर ही मंदिर निर्माण उचित होगा अतः इसकी प्राप्ति के लिये काफी

प्रयत्न किये गये। अन्तत: श्री हुकमचन्द जी लुहाडिया अजमेर वालों ने कस्टोडियन विभाग में अपेक्षित राशि जमा कराकर अपने सद् प्रयत्नों से १२००० वर्ग गज भूमि मंदिर के लिये प्रदान की।

भूमि की प्राप्ति के पश्चात् मंदिर भवन के शिलान्यास हेतु शुभ मुहुर्त निकलवाया गया। मंदिर शिलान्यास के उपलक्ष्य में त्रिदिवसीय रथयात्रा का विशाल आयोजन २३ से २५ नवम्बर १९६१ को किया गया था। भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी की अतिशय चमत्कारी प्रतिमा की प्राप्ति के बाद यह पहला बड़ा आयोजन किया गया। दिनांक २४ नवम्बर १९६१ मध्यान्ह के समय शिलान्यास का कार्य पूज्य भट्टारक श्री देवेन्द्र कीर्ति जी गढ़ी नागौर के सान्निध्य में दिल्ली निवासी रायसाहब बाबू उल्फत राय जैन के द्वारा सम्पन्न हुआ।

मंदिर का उभरता स्वरूप

नव मंदिर शिलान्यास के साथ ही मंदिर निर्माण का कार्य शुरु हो गया। दानी महानुभावों के निरंतर सहयोग से सपाट जमीन पर मंदिर का स्वरूप उभरने लगा। मूल नायक चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिमा को विराजित करने के लिए मुख्य वेदी के निर्माण के साथ दोनों पार्श्वों में दो अन्य कक्षों का निर्माण कराया गया। शनै: शनै: निर्माण पूरा होने लगा। २२ वर्ष के दीर्घ अन्तराल में अनेक उतार चढ़ावों के बावजूद नव निर्मित मंदिर का कार्य पूर्णता पाने लगा। मुख्य वेदी पर ५२ फुट ऊंचे शिखर का निर्माण किया गया। मंदिर के स्थापत्य को संवारने में शिल्पी धनजी भाई गुजरात वालों ने कहीं मेहरावदार दरवाजा बनाया तो कहीं प्राचीन स्थापत्य की रक्षा करते हुए वैदिक शैली का इस्तेमाल किया। शिखर में भी गुम्बद के स्थान पर अष्ट भुजी रूप को महत्ता दी। मंदिर की विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसका निर्माण लगभग दो करोड़ रुपयों में सम्पन्न हो सका। मंदिर निर्माण में मुख्य रूप से श्वेत संगमरमर प्रयोग में लाया गया। साथ ही काच की पच्चीकारी एवं स्वर्ण चित्रकारी से भी समृद्ध किया गया।

पंच कल्याणक एवं वेदी प्रतिष्ठा

मन्दिर निर्माण का कार्य परिपूर्ण हो जाने के उपरान्त वेदियों में भगवान को प्रतिष्ठित करने की उत्सुकता जागृत होना स्वाभाविक था। संकल्प ने मूर्त्तरूप लिया। १६ से २० मार्च १९८३ तक पॉच दिन का पंचकल्याणक महोत्सव करा भगवान को वेदियों में विराजमान करा दिया गया। इस महोत्सव में भारत के महामहिम राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह जी भी सम्मिलित हुए। उन्होंने क्षेत्र के विविध आयामी कार्यक्रमों का अवलोकन किया और अपने सम्बोधन में जैन समाज के प्रयासों की सराहना की। आचार्य शान्ति सागर जी महाराज के सान्निध्य में यह उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

मान-स्तम्भ में इस अवसर पर मूर्तियों की प्रतिष्ठा टाल दी गई थी; क्योंकि उसका निर्माण क्षेत्र की गरिमा और लोगों की आकांक्षाओं के अनुरुप नहीं हो पाया था। अत: उसका पुनर्निर्माण कराया गया। क्षेत्र का सितारा निरन्तर उत्कर्ष पर रहा। अब यह सम्भव ही नहीं था कि मूर्ति प्रतिष्ठा साधारण रूप से कराई जावे। अत: १६ से २० फरवरी ९७ को पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का विशाल आयोजन करने का समाज द्वारा निर्णय किया गया। यह महोत्सव शाकाहार प्रचारक उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज

के (ससंघ) सान्निध्य में हुआ। अत: सप्ताहान्त तक सभा और सम्मेलनों की रात दिन झड़ी लगी रही। एक ओर विद्वत् परिषद सम्मेलन चल रहा था तो दूसरी ओर साहू अशोक कुमार जैन की अध्यक्षता में श्रावक और तीर्थ क्षेत्र कमेटी की सभाओं में विचार विमर्श चल रहा था। कभी व्यसन मुक्ति आन्दोलन को हवा दी जा रही है तो कभी शाकाहार सम्मेलन में भारतीय स्तर के बुद्धिजीवी और प्रखर वक्ता उसके महत्व को जनमानस में ठोक कर बिठाने में लगे थे। इस तरह हर्षोल्लास से २०-२-९७ को मान-स्तम्भ में मूर्तियों की स्थापना के साथ समाज ने अपने एक लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। भगवान चन्द्रप्रभ और 'देहरे वाले बाबा' की जयघोष के साथ उत्सव सम्पन्न हुआ। तीर्थ क्षेत्र कमेटी इस क्षेत्र की सर्वांगीण प्रगति के लिए निरन्तर प्रयासरत है।

–तुलाराम जैन
अध्यक्ष, श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर
जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा–तिजारा (अलवर)

卐 अपनी बात 卐

जीवन में परिस्थितिजन्य अनुकूलता-प्रतिकूलता तो चलती ही रहती है परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनका अधिकाधिक सदुपयोग कर लेना विशिष्ट प्रतिभाओं की ही विशेषता है। 'तिलोयपण्णत्ती' के प्रस्तुत संस्करण को अपने वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने वाली विदुषी आर्यिका पूज्य १०५ श्री विशुद्धमती माताजी भी उन्हीं प्रतिभाओं में से एक हैं। जून १९८१ में सीढ़ियों से गिर जाने के कारण आपको उदयपुर में ठहरना पड़ा और तभी ति० प० की टीका का काम प्रारम्भ हुआ। काम सहज नहीं था परन्तु बुद्धि और श्रम मिलकर क्या नहीं कर सकते। साधन और सहयोग संकेत मिलते ही जुटने लगे। अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ तथा उनकी फोटोस्टेट कॉपियाँ मंगवाने की व्यवस्था की गई। कन्नड़ की प्राचीन प्रतियों को भी पाठभेद व लिप्यन्तरण के माध्यम से प्राप्त किया गया। 'सेठी ट्रस्ट, गुवाहाटी' से आर्थिक सहयोग प्राप्त हुआ और महासभा ने इसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व वहन किया। डॉ० चेतनप्रकाश जी पाटनी ने सम्पादन का गुरुतर भार संभाला और अनेक रूपों में उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। यह सब पूज्य माताजी के पुरुषार्थ का ही सुपरिणाम है। पूज्य माताजी 'यथा नाम तथा गुण' के अनुसार विशुद्ध मति को धारण करने वाली हैं तभी तो गणित के इस जटिल ग्रंथ का प्रस्तुत सरल रूप हमें प्राप्त हो सका है।

पाँवों में चोट लगने के बाद से पूज्य माताजी प्रायः स्वस्थ नहीं रहती तथापि अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग प्रवृत्ति से कभी विरत नहीं होती। सतत परिश्रम करते रहना आपकी अनुपम विशेषता है। आज से १५ वर्ष पूर्व मैं माताजी के सम्पर्क में आया था और यह मेरा सौभाग्य है कि तबसे मुझे पूज्य माताजी का अनवरत सान्निध्य प्राप्त रहा है। माताजी की श्रमशीलता का अनुमान मुझ जैसा कोई उनके निकट रहने वाला व्यक्ति ही कर सकता है। आज उपलब्ध सभी साधनों के बावजूद माताजी सम्पूर्ण लेखनकार्य स्वयं अपने हाथ से ही करती है—न कभी एक अक्षर टाइप करवाती हैं और न किसी से लिखवाती है। सम्पूर्ण संशोधन-परिष्कारों को भी फिर हाथ से ही लिखकर संयुक्त करती हैं। मैं प्रायः सोचा करता हूँ कि धन्य हैं ये, जो (आहार में) इतना अल्प लेकर भी कितना अधिक दे रही है। इनकी यह देन चिरकाल तक समाज को समुपलब्ध रहेगी।

मैं एक अल्पज्ञ श्रावक हूँ। अधिक पढ़ा-लिखा भी नहीं हूँ किन्तु पूर्व पुण्योदय से जो मुझे यह पवित्र समागम प्राप्त हुआ है, इसे मैं साक्षात् सरस्वती का ही समागम समझता हूँ। जिन ग्रन्थों के नाम भी मैंने कभी नहीं सुने थे उनकी सेवा का सुअवसर मुझे पूज्य माताजी के माध्यम से प्राप्त हो रहा है, यह मेरे महान् पुण्य का फल तो है ही किन्तु इसमें आपका अनुग्रहपूर्ण वात्सल्य भी कम नहीं।

जैसे काष्ठ में लगी लोहे की कील स्वयं भी तर जाती है और दूसरों को भी तरने में सहायक होती है, उसी प्रकार सतत ज्ञानाराधना में संलग्न पूज्य माताजी भी मेरी दृष्टि में तरण-तारण है। आपके सान्निध्य से मैं भी ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय का सामर्थ्य प्राप्त करूँ, यही भावना है।

मैं पूज्य माताजी के स्वस्थ एवं दीर्घजीवन की कामना करता हूँ।

विनीत :

ब्र० कजोड़ीमल कामदार, संघस्थ

पुरोवाक्

श्रीयतिवृषभाचार्य विरचित 'तिलोयपण्णत्ती' करणानुयोग का श्रेष्ठतम ग्रन्थ है। इसके आधार पर हरिवंशपुराण, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति तथा त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों की रचना हुई है। श्री १०५ आर्यिका विशुद्धमती माताजी ने अत्यधिक परिश्रम कर इस ग्रन्थराज की हिन्दी टीका लिखी है। गणित के दुरूह स्थलों को सुगम रीति से स्पष्ट किया है। इसके प्रथम और द्वितीय भाग क्रमश: सन् १९८४ और सन् १९८६ में प्रकाशित होकर विद्वानों के हाथ में पहुँच चुके हैं प्रसन्नता है कि विद्वज्जगत् में इनका अच्छा आदर हुआ है। यह तीसरा और अन्तिम भाग है इसमें पाँच से नौ तक महाधिकार हैं। प्रशस्ति में माताजी ने इस टीका के लिखने का उपक्रम किस प्रकार हुआ, यह सब निर्दिष्ट किया है। माताजी की तपस्या और सतत जारी रहने वाली श्रुताराधना का ही यह फल है कि उनका क्षयोपशम निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हो रहा है।

त्रिलोकसार, सिद्धान्तसारदीपक और तिलोयपण्णत्ती के प्रथम, द्वितीय, तृतीय भाग के अतिरिक्त अन्य लघुकाय पुस्तिकाएँ भी माताजी की लेखनी से लिखी गई हैं। रुग्ण शरीर और आर्यिका की कठिन चर्या का निर्वाह रहते हुए भी इतनी श्रुत सेवा इनसे हो रही है, यह जैन जगत के लिये गौरव की बात है। आशा है कि माताजी के द्वारा इसी प्रकार की श्रुत सेवा होती रहेगी। मुझे इसी बात की प्रसन्नता है कि प्रारम्भिक अवस्था में माताजी ने (सुमित्राबाई के रूप में) मेरे पास जो कुछ अल्प अध्ययन किया था, उसे उन्होंने अपनी प्रतिभा से विशालतम रूप दिया है।

विनीत :

१५–३–१९८८ पन्नालाल साहित्याचार्य

तीन लोक रचना
उत्तर
पूर्व
उर्ध्व लोक
मध्य लोक
अधो लोक
पंच मेरु
तृतीय पृ.
बालुका प्रभा
चतुर्थ पृ.
पंक प्रभा
पचम पृथ्वी
धूम प्रभा
षष्टम पृथ्वी
तम प्रभा
सप्तम पृथ्वी
महातम प्रभा
मेघा
अंजना
अरिष्ठा
मघवी
माघवी
७ राजु
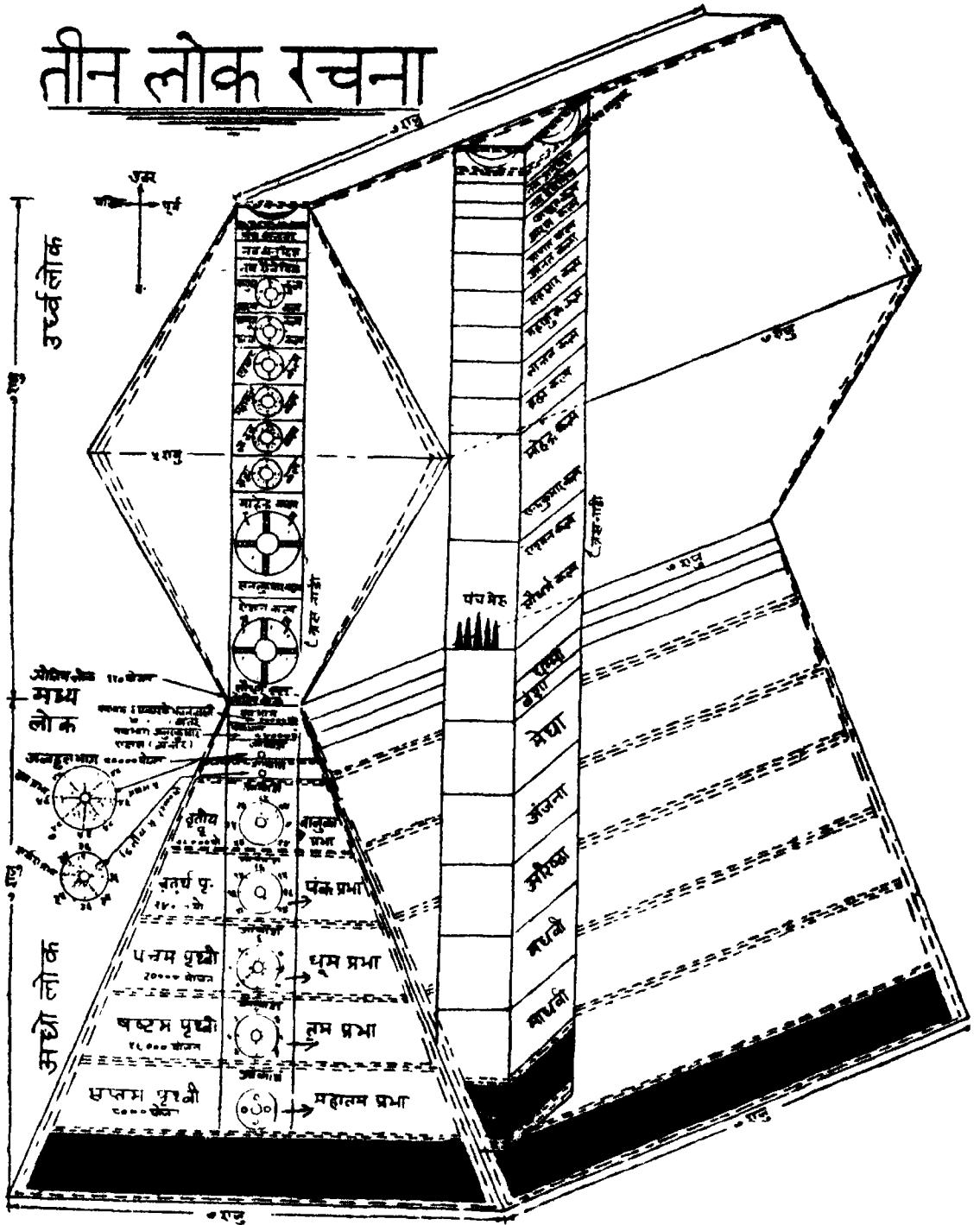
आद्यमिताक्षर

भगवान जिनेन्द्रदेव द्वारा उपदिष्ट दिव्य वाणी चार अनुयोगों में विभाजित है। **त्रिलोकसार** ग्रंथ के संस्कृत टीकाकार **श्रीमन्माधवचन्द्राचार्य त्रैविद्यदेव** ने कहा है कि जिस अर्थ का निरूपण श्री सर्वज्ञदेव ने किया था, उसी अर्थ के विद्यमान रहने से करणानुयोग परमागम केवलज्ञान सदृश है। **तिलोयपण्णत्ती** ग्रन्थ के प्रथमाधिकार की गाथा ८६-८७ में **श्रीयतिवृषभाचार्यदेव** प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं (पवाहरूवत्तणेण आइरिय अणुक्कमा आद तिलोयपण्णत्ती अहं वोच्छामि) आचार्य परम्परा से प्रवाह रूप में आये हुए त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रंथ को कहूँगा।

आचार्यों की इस वाणी से ग्रन्थ की प्रामाणिकता निर्विवाद है।

आधार—तिलोयपण्णत्ती ग्रंथ के इस नवीन संस्करण का सम्पादन कानड़ी प्रतियों के आधार पर किया गया है, अतः इस संस्करण का आधार जीवराज ग्रन्थमाला से प्रकाशित तिलोयपण्णत्ती और जैनबिद्री स्थित जैन मठ की ति० प० की प्राचीन कन्नड़ प्रति से की हुई देवनागरी लिपि है।

ग्रन्थ-परिमाण—ग्रन्थ नौ अधिकारों में विभक्त है। ग्रन्थकर्ता ने इसमें ८००० गाथाओं द्वारा लोक का विवेचन करने की सूचना दी है। जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सोलापुर से प्रकाशित तिलोयपण्णत्ती के नौ अधिकारों की कुल (पद्य) सूचित गाथाएँ ५६७७ हैं जबकि वास्तव में कुल ५६६६ ही मुद्रित हैं; गद्य भाग भी प्राय: सभी अधिकारों में है। इस ग्रन्थ की गाथाओं का पूर्ण प्रमाण प्राप्त करने हेतु शीर्षक एवं समापन सूचक मूल पदों के साथ गद्य भाग के सम्पूर्ण अक्षर गिने गये हैं। गाथाओं के नीचे अंकों में जो संदृष्टियां दी गई हैं, उन्हे छोड़ दिया गया है। कन्नड़ प्रति में प्रायः प्रत्येक अधिकार में नवीन गाथाएँ प्राप्त हुई हैं। इसप्रकार इस नवीन संस्करण की कुल गाथाओं का प्रमाण इस प्रकार है—

महाधिकार	मुद्रित प्रति की गाथा संख्या	कन्नड़ प्रति से अधिक प्राप्त गाथा संख्या	गद्य के अक्षरों की गाथा संख्या	कुल योग
प्रथम महाधिकार	२८३	३	९१	३७७
द्वितीय ,,	३६७	४	१२	३८३
तृतीय ,,	२४२	१२	१२	२६६
चतुर्थ ,,	२९५१	५५	१०७	३११३
पंचम ,,	३२१	२	७४८	१०७१
षष्ठ ,,	१०३	×	६	१०९
सप्तम ,,	६१९	५	९९	७२३
अष्टम ,,	७०३	२३	२९	७५५
नवम ,,	७७	५	३	८५
	५६६६	१०९	११०७	६८८२

आचार्य श्री की प्रतिज्ञानुसार (८०००-६८८२) १११८ गाथाएँ कम हैं, किन्तु यदि अंक-संदृष्टियों के अंकों के अक्षर बनाकर गिने जावें तो कुल गाथाएँ ८००० ही हो जावेंगी। गाथाओं के इस प्रमाण से प्रक्षिप्त गाथाओं की भ्रान्ति का निराकरण हो जाता है।

कन्नड़ प्रति से प्राप्त नवीन गाथाओं का सामान्य परिचय—

५वाँ महाधिकार– गाथा १७८ है, जो भगवान के जन्म के समय चारों दिशाओं को निर्मल करने वाली चार दिक्कन्याओं के नाम दर्शाती है। **गाथा १८७ है,** जो गोपुर प्रासादों की सत्रह भूमियों को प्रदर्शित करती है।

७वाँ महाधिकार—गाथा २४२ है, यह सूर्य की १८४ वीथियाँ प्राप्त करने का नियम दर्शाती है। **गाथा २७७ है,** जो केतुदेव के कार्य (सूर्य ग्रहण को) प्रदर्शित करती है। **गाथा ५०८ है,** जो एक मुहूर्त में नक्षत्र के १८३५ गगनखण्डों पर गमन और उसी एक मुहूर्त में चन्द्र द्वारा १७६८ ग० ख० पर गमन का विधान दर्शाती है। **गाथा ५३५ है,** जो सूर्य के अयनों में चतुर्थ और पंचम आवृत्ति

को कहकर अपूर्ण विषय की पूर्ति करती है। गाथा ५६३ है जो प्रथम पथ स्थित सूर्य के बाह्य भाग में एवं शेष अन्य मार्गों में सूर्य किरणों के गमन का प्रमाण कहकर छूटे हुए विषय की पूर्ति करती है।

८वाँ महाधिकार—गाथा ३०५ में इंद्रादि की देवियों को कहने की प्रतिज्ञा की थी उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वाली गाथा ३०६ है। गा० ३२१ लोकपाल की देवियों को कहकर छूटे हुए विषय को पूर्ण करती है। गा० ३६६ गोपुरद्वारों के अधूरे प्रमाण को पूर्ण करती है। ५५९ से ५६२ तक की ४ गाथाएँ देवों के आहार काल के अपूर्ण विषय को पूर्ण करती हैं। गा० ५६३-५६४ देवों के उच्छ्वास काल के विषय का प्रतिपादन करती हैं। गा० ५६५-५६६ पाठान्तर से देवों के शरीर की अवगाहना का प्रमाण कहती हैं ५६८ से ५७८ तक ११ गाथाएँ देवायु के बन्धक परिणामों को कहकर विषय की पूर्ति करती हैं। इस प्रकार इस अधिकार में २३ गाथाएँ विशेष प्राप्त हुई हैं।

९वाँ महाधिकार—१८ से २१ (४) गाथाएँ सिद्ध परमेष्ठी के सुखों का कथन करके अपूर्ण विषय को पूर्ण करती हैं। गा० ८० ग्रन्थान्त मंगलाचरण को पूर्ण एवं स्पष्ट करती है।

इसप्रकार इस तृतीय खण्ड में कन्नड प्रति से (२+०+५+२३+५=) ३५ गाथाएँ विशेष प्राप्त हुई हैं जो छूटे हुए, अनुपलब्ध विषय का दिग्दर्शन कराती हैं।

विचारणीय स्थल

तिलोयपण्णत्ती प्रथम खण्ड : प्रथम महाधिकार

पृष्ठ २३-२४ पर दी हुई गाथा १०७ का अर्थ इस प्रकार है—

गाथार्थ—अंगुल तीन प्रकार का है—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल। परिभाषा से प्राप्त अंगुल उत्सेध सूच्यंगुल कहलाता है।

विशेषार्थ—अवसन्नासन्न स्कन्ध से प्रारम्भ कर ८ जौ का जो अंगुल बनता है वह उत्सेध-सूच्यंगुल है, इसके वर्ग को उत्सेधप्रतरांगुल और इसीके घनको उत्सेधघनांगुल कहते हैं। इसीप्रकार सर्वत्र जानना। यथा—

उत्सेधसूच्यंगुल	उत्सेधप्रतरांगुल	उत्सेधघनांगुल
प्रमाणसूच्यंगुल	प्रमाणप्रतरांगुल	प्रमाणघनांगुल
आत्मसूच्यंगुल	आत्मप्रतरांगुल	आत्मघनांगुल

(प्रमाण-जम्बूद्वीपपण्णत्ती १३/२३-२४, पृष्ठ २३७)

जिन-जिन वस्तुओं के माप में इन भिन्न-भिन्न अंगुलों का प्रयोग करना है उनका निर्देश आचार्य ने इसी अधिकार की गाथा ११० से ११३ तक किया है। इस निर्देश के अनुसार जिस वस्तु के माप का कथन हो उसे उसी प्रकार के अंगुल से माप लेना चाहिये। जिस प्रकार १० पैसे, १० चवन्नी और १० रुपयों में १० का गुणा करने पर क्रमशः १०० पैसे, १०० चवन्नी और १०० रुपये आवेंगे, उसीप्रकार ¾ उत्सेध यो०, ¾ प्रमाण यो० और ¾ आत्म योजन के कोस बनाने के लिये ४ से गुणित करने पर क्रमशः ३ उत्सेध कोस, ३ प्रमाण कोस और ३ आत्म कोस प्राप्त होंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि लघु योजन और महायोजन के मध्य जो अनुपात होगा वही अनुपात यहां उत्सेध कोस और प्रमाण कोस के बीच होगा। वही अनुपात उत्सेधांगुल और प्रमाणांगुल के बीच होगा।

आचार्यों ने भी इसीप्रकार के माप दिये हैं। यथा—

ति० प० खण्ड १, अधिकार २ रा, पृ० २५२ गा० ३१६ 'उच्छेहृ जोयणाणि सत्त'

,, ,, ,, ३ ,, ७ वां, पृ० २९२ ,, २०१ 'चत्तारि पमाण अंगुलाणं'

,, ,, ,, ३ ,, ७ वां, पृ० ३१२ ,, २७३ 'चत्तारि पमाण अंगुलाणि'

धवल ४/४० चरम पंक्ति उत्सेधघनांगुल।

धवल ४/४१ पंक्ति १० प्रमाणघनांगुल।

धवल ४/३४-३५ प्रमाणघनांगुल।

,, ४/३४ मूल एव टीका उत्सेधयोजन, प्रमाणयोजन इत्यादि।

प्रयास करने पर भी यह माप सम्बन्धी विषय पहले बुद्धिगत नहीं हुआ था, इसलिये ति० प० के दूसरे खण्ड में आद्यमिताक्षर पृ० १२ पर विचारणीय स्थल में प्रथम स्थल पर इसी विषय का उल्लेख किया था। दो वर्ष हो गये, कहीं से भी कोई समाधान नहीं हुआ। वर्तमान भीण्डर-निवास में पं० जवाहरलालजी सिद्धान्त शास्त्री के माध्यम से विषय बुद्धिगत हुआ। अतः गाथा १०७ के अर्थ की शुद्धि हेतु और जिज्ञासुजनों की तृप्ति हेतु यह स्पष्टीकरण दिया जा रहा है।

ति० प० द्वितीय खण्ड : चतुर्थ अधिकार

※ गाथा १६०४, १६०५ में कहा गया है कि 'ये तीर्थंकर जिनेन्द्र तृतीय भव में तीनों लोकों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले तीर्थंकर नामकर्म को बांधते हैं'। इस कथन का यह फलितार्थ है कि वे आने वाले दु.षम-सुषम काल में जब तीर्थंकर होंगे उसको आदि करके पूर्व के तृतीय भव में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लेंगे अर्थात् पचकल्याणक वाले ही होंगे। इन (गाथा १६०५-१६०७ में कहे हुए) २४ महापुरुषों में से राजा श्रेणिक को छोड़कर यदि अन्य को इसी भव में तीर्थंकर प्रकृति का बंधक मानते हैं तो सिद्धांत से विरोध आता है, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध अन्तः कोटाकोटि

सागर से अधिक नहीं होता और वह प्रकृति कुछ अन्तमुंहूर्त आठ वर्ष कम दो पूर्व कोटि + ३३ सागर से अधिक सत्ता में मौजूद नहीं रह सकती। दुःषम-सुषम काल का प्रमाण ४२ हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागर है और इस काल में जब ३ वर्ष ८½ माह अवशेष रहेंगे तब (सात्यकि पुत्र का जीव) २४ वें अनन्तवीर्य तीर्थंकर मोक्ष जावेंगे। यह काल अनेक करोड़ सागर प्रमाण है और इतने कालतक तीर्थंकर प्रकृति बंधक जीव संसार में नहीं रह सकता।

ति० प० तृतीयखण्ड : पंचम से नवम महाधिकार

इस खण्ड सम्बन्धी पाँचों अधिकारों के कतिपय स्थलों एवं विषयों का समाधान बुद्धिगत नहीं हुआ जो गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा विचारणीय है—

पंचम-महाधिकार—* गाथा ७ में २५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य के रोमों प्रमाण द्वीप-सागर का और गाथा २७ में ६४ कम २½ उद्धार सागर के रोमों प्रमाण द्वीप-सागर का प्रमाण कहा गया है। गाथा १३० के कथनानुसार २५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य बराबर ही २½ उद्धार सागर है। जब गाथा २७ में ६४ कम किये हैं तब गाथा ७ में ६४ हीन क्यों नहीं कहे गये ?

सप्तम महाधिकार—* गाथा ६ में ज्योतिषी देवों के अगम्य क्षेत्र का प्रमाण योजनों में कहा गया है किन्तु इस प्रमाण की प्राप्ति परिधि × व्यास का चतुर्थांश × ऊँचाई के परस्पर गुणन से होती है अतः घन योजन ही हैं मात्र योजन नहीं।

* वातवलय से ज्योतिषी देवों के अन्तराल का प्रमाण प्राप्त करने हेतु गाथा ७ की मूल संदृष्टि में इच्छा राशि १९०० और लब्ध राशि १०८४ कही गई है किन्तु १९०० इच्छा राशि के माध्यम से १०८४ योजन प्राप्त नहीं होते। यदि शनि ग्रह की ३ योजन ऊँचाई छोड़कर अर्थात् (१९००–३) १८९७ योजन इच्छा राशि मानकर गणित किया जाता है तो संदृष्टि के अनुसार १०८४ योजन प्रमाण प्राप्त होता है, जो विचारणीय है।

* गाथा ८, ९ एवं १० का विषय विशेषार्थ में स्पष्ट अवश्य किया है किन्तु आत्म तुष्टि नहीं है अतः पुनः विचारणीय है।

* गाथा २०२ में राहु का बाहल्य कुछ कम अर्ध योजन कहकर पाठान्तर में वही बाहल्य २५० धनुष है किन्तु केतु का बाहल्य आचार्य स्वयं (गा० २७५ में) २५० धनुष कह रहे हैं जो विचारणीय है। क्योंकि आगम में राहु-केतु दोनों के व्यास आदि का प्रमाण सदृश ही कहा गया है।

* त्रिलोकसार गा० ३८९–३९१ में कहा गया है कि भरत क्षेत्र का सूर्य जब निषधाचल के ऊपर १४६२१ ४०/६० यो० आता है तब चक्रवर्ती द्वारा देखा जाता है किन्तु यहाँ गाथा ४३४–४३५ में

कहा गया है कि भरतक्षेत्र का सूर्य जब निषधाचल के ऊपर ५५७४ $\frac{३}{६०}\frac{३}{६१}$ यो० आता है तब चक्रवर्ती द्वारा देखा जाता है। इन दोनों कथनों का समन्वय गाथा ४३५ के विशेषार्थ में किया गया है, फिर भी यह विषय विचारणीय है।

* गाथा ४३७ से प्रारम्भ कर अनेक गाथाओं में कहा गया है कि सूर्य जब भरतक्षेत्र में उदित होता है तब विदेह की क्षेमा आदि नगरियों में कितना दिन अथवा रात्रि रहती है। इस ग्रंथ में यह विषय अपूर्व है अतः विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

* गाथा ८२ में ग्रह-समूह की नगरियों का अवस्थान १२ यो० बाहल्य में कहा है। उसी प्रकार गा० ४९१-९२ में जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट नक्षत्रों के एवं अभिजित् नक्षत्र के मण्डल क्षत्रों का प्रमाण क्रमशः ३०।६०।९० और १८ यो० कहा गया है, इस विषय का अन्त गा० ५०७ पर हुआ है। यह विषय बुद्धिगत नहीं हुआ, अतः विशेष विचारणीय है।

* ५२९ से ५३२ तक की ४ गाथाएँ अपने अर्थ को स्पष्ट रूप से कहने में समर्थ नहीं पाई गईं अतः इनका प्रतिपाद्य विषय त्रिलोकसार के आधार से पूर्ण करने का प्रयास किया है। ये विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

पृ० ४२२ पर गद्य भाग में चन्द्र-सूर्य दोनों का अन्तराल एक सदृश ४७९१४ $\frac{१}{६}\frac{७}{८}\frac{५}{३}$ यो० कहा है। जब चन्द्र-सूर्य दोनों का व्यास भिन्न-भिन्न है तब अन्तराल का प्रमाण सदृश कैसे ? विशेषार्थ मे विषय स्पष्ट करने का प्रयास किया है, फिर भी विचारणीय है।

श्री पं० जवाहरलालजी सिद्धान्त शास्त्री (भीण्डर) ने ज्योतिषी देवो के विषय में कुछ शंकाएँ भेजी थीं। सर्वोपयोगी होने से वह शंका-समाधान यहाँ दिया जा रहा है—

शंका—ज्योतिषी देवों के इंद्र के परिवार देव कौन-कौन हैं ?

समाधान—गाथा ५९-६० में इन्द्र (चन्द्र) के सामानिक, तनुरक्षक, तीनों पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विष (लोकपाल और त्रायस्त्रिंश को छोड़कर) ये आठ प्रकार के परिवार देव कहे हैं।

शंका—ये आठ भेद युक्त परिवार देव केवल इन्द्र के होते हैं या अन्य प्रतीन्द्रादि के भी होते हैं ?

समाधान—गाथा ७८ में सूर्य प्रतीन्द्र के (इन्द्रको छोड़कर) सामानिक, तनुरक्षक, तीनों पारिषद, प्रकीर्णक, अनीक आभियोग्य और किल्विष ये सात प्रकार के परिवार देव कहे गये है। गा० ८८ में ग्रहों के, गा० १०७ में नक्षत्रों के और त्रिलोकसार गाथा ३४३ में तारागण के भी आभियोग्य देव कहे गये हैं।

शंका—क्या ग्रह, नक्षत्र और तारागण इन्द्र (चन्द्र) के परिवार देव नहीं हैं ?

समाधान—गा० १२-१३ में ज्योतिषी देवों के इन्द्रों (चन्द्रों) का प्रमाण है। गाथा १४ में प्रतीन्द्रों (सूर्यों) का, गा० १५-२४ तक ग्रहों का, गा० २५ से ३० तक नक्षत्रों का और गा० ३१ से ३५ तक इन्द्रों के परिवार में ताराओं का प्रमाण कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि ग्रह, नक्षत्र और तारागण आठ प्रकार के भेदों से भिन्न परिवार देव हैं।

आठवां महाधिकार—* गाथा ८३ मे ऋजु विमान की प्रत्येक दिशा में ६२ श्रेणीबद्ध कहे हैं इससे ज्ञात होता है कि सर्वार्थ सिद्धि में कोई श्रेणीबद्ध विमान नहीं है किन्तु ति० प० कार आचार्य स्वयं गाथा ८५ में 'जिन आचार्यों ने ६२ श्रेणी० का निरूपण किया है उनके उपदेशानुसार सर्वार्थ-सिद्धि के आश्रित भी चारों दिशाओं में एक-एक श्रेणीबद्ध विमान हैं' कहकर तिरेसठ श्रेणीबद्ध विमानों की मान्यता पुष्ट करते हैं, फिर पाठान्तर गाथा ८४ के कथन मे और इस कथन में क्या अंतर रहा ? जब गा० ८३ स्वयं की है तब ८५ में 'जिन आचार्यों ने — ...... ' ऐसा क्यों कहा है ? यह रहस्य समझ में नहीं आया।

* गाथा १०० में सर्वार्थसिद्धि विमान की पूर्वादि चार दिशाओं में विजयादि चार श्रेणीबद्ध कहे हैं। गाथा १२६ में वही विषय पाठान्तर के रूप में कहा गया है। ऐसा क्यों ?

* यथार्थ में पाठान्तर पद गाथा १२५ के नीचे आना चाहिए था। क्योंकि इसमें दिशाएँ प्रदक्षिणा क्रम से न देकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इस रूप से दी गई हैं।

* गाथा ९९ और १२३ बिलकुल एक सदृश हैं। क्यों ? गाथा ९८ में चउव्विहेसुं के स्थान पर चउ दिगेसु (चारों दिशाओं में) पाठ अपेक्षित है।

* गाथा ११५-११६ में कल्पों के बारह और सोलह दोनों प्रमाणों को अन्य-अन्य आचार्यों के उद्घोषित कर दिये गये हैं तब स्वय ग्रन्थकार को कितने कल्प स्वीकृत हैं ?

* ग्रन्थकार ने गा० १२० में बारह कल्प स्वीकृत कर गा० १२७-१२८ में सोलह कल्प पाठान्तर में कहे है ?

* गाथा १३७ से १४६ तक के भाव को समझकर पृ० ४७३ पर बना हुआ ऊर्ध्वलोक का चित्र और मुखपृष्ठ पर बना हुआ तीन लोक का चित्र नया बनाया है। इसके पूर्व त्रिलोकसार, सिद्धान्तसार दीपक एवं तिलोयपण्णत्ती के प्रथम और द्वितीय खण्डों की लोकाकृति में सौधर्मैशान आदि कल्पों के जो चित्रण दिये हैं वे गलत प्रतीत होते हैं। यह भी विचारणीय है।

* गाथा १४८ में पुनः सोलह कल्प पाठान्तर में कहे गये हैं।

* गा० २४६ में आनत आदि चारों इन्द्रों के अनीकों का प्रमाण कहा जाना चाहिए था किंतु आनत-प्राणत इन्द्रों के अनीकों का प्रमाण न कहकर 'आरण-इंदादि-दुगे' द्वारा आरण-अच्युत इन दो इन्द्रों के अनीकों का ही प्रमाण कहा गया है। क्यों ?

* गा० २१५ में वैमानिक देव सम्बन्धी प्रत्येक इन्द्र के प्रतीन्द्रादि दस प्रकार के परिवार देव कहे हैं और गा० २८६ में प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवों में से प्रत्येक के दस-दस प्रकार के परिवार देव अपने-अपने इन्द्र सदृश ही कहे हैं? यह कैसे सम्भव है ?

* गा० २८७ से २९६ तक सभी इन्द्रों के सभी लोकपालों के सामन्त, आभ्यन्तर, माध्यम और बाह्य पारिषद, अनीक, आभियोग्य, प्रकीर्णक और किल्विषिक परिवार देवों का प्रमाण कहा गया है।

* इन्द्रों के निवास स्थानों का निर्देश करते हुए गा० ३४१ से ३४८ तक कितने इन्द्रकों एवं श्रेणीबद्धों में से कौन से नम्बर के श्रेणीबद्ध में इन्द्र रहता है यह कहा गया है किन्तु गा० ३४० ३५० में इन्द्रकों तथा श्रेणीबद्धों की कुल संख्या निर्दिष्ट न करके मात्र 'जिणद्दिट्ठ' (जिनेन्द्र द्वारा देखे गये नाम वाले) पद कहकर स्थान बताया गया है।

* गा० ४१० में सुधर्मा सभा की ऊँचाई ३००० कोस कही गई है। जो विचारणीय है क्योंकि अकृत्रिम मापों में ऊँचाई का प्रमाण प्रायः $\frac{\text{लम्बाई}+\text{चौड़ाई}}{२}$ होता है। अर्थात् $\frac{\text{ल० ४००}+\text{चौ० २००}}{२}$ = ३०० कोस होनी चाहिए।

* गा० ५४८ में लान्तव कल्पके अनीक देवों के विरह काल का प्रमाण छूट गया है।

* गा० ५६८, ५७५ और ५७६ का ताडपत्र खण्डित होने से इन गाथाओं का अर्थ विचारणीय है।

* गा० ६२२ से ६३६ अर्थात् १४ गाथाओं का यथार्थ भाव बुद्धिगत नहीं हुआ।

* गा० ६८१ का विशेषार्थ और नोट विशेष रूप से द्रष्टव्य और विचारणीय हैं।

* गा० ६८२ से ६८५ का विषय भी स्पष्ट रूप से बुद्धिगत नहीं हुआ।

नवम महाधिकार—गा० ४ में $\frac{\text{८४०४७४०८१५६२५}}{\text{८}}$ योजन कहा गया प्रमाण घन योजनों में है किन्तु गाथा में केवल योजन कहे गये हैं।

कार्यक्षेत्र—उदयपुर नगर के मध्य मण्डी की नाल स्थित १००८ श्री पार्श्वनाथ दि० जैन खण्डेलवाल मन्दिर में रहकर इस खण्डका अधिकांश भाग लिखा गया था। शेष कार्य १३।२।१९८६ को सलुम्बर में पूर्ण हुआ।

सम्बल—वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, घोरोपसर्ग विजेता, जगत् के निर्व्याज बन्धु १००८ श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर देव की चरण रज एवं हृदयस्थित अनुपम जिनेन्द्रभक्ति, आप्त-उपदिष्ट दिव्य वचनों के प्रति अगाधनिष्ठा और आचार्य कुन्दकुन्द देव की परम्परा में होने वाले २० वीं शताब्दी के आद्यगुरु समाधिसम्राट चारित्रचक्रवर्ती बालब्रह्मचारी आचार्य १०८ श्री शान्तिसागरजी महाराज के प्रथम शिष्य बाल ब्रह्मचारी पट्टाधीशाचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के प्रथमशिष्य बालब्रह्मचारी पट्टाधीशाचार्य दीक्षा गुरु १०८ श्री शिवसागरजी महाराज, उनके पट्ट पर आरूढ़ मिथ्यात्वरूपी कर्दम से निकालकर सम्यक्त्वरूपी स्वच्छ जल में स्नान कराने वाले परमोपकारी बालब्रह्मचारी पट्टाधीशाचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, विद्यारसिक, ज्ञानपिपासु, बालब्रह्मचारी विद्यागुरु पट्टाधीशाचार्य १०८ श्री अजितसागरजी महाराज, परम श्रद्धेय अनुभववृद्ध, शिक्षागुरु आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज और ग्रन्थ लेखन के लिए असीम आशीर्वाद प्रदाता १०८ श्री सन्मतिसागरजी आदि सभी आचार्य एवं साधु परमेष्ठियों का शुभाशीर्वाद रूप वरद हस्त ही मेरा सबल सम्बल रहा है। क्योंकि जैसे अन्धा व्यक्ति लकड़ी के आधार बिना चल नहीं सकता वैसे ही देव, शास्त्र और गुरु की भक्ति बिना मैं भी यह महान् कार्य नहीं कर सकती थी। ऐसे तारण-तरण देव, शास्त्र गुरु को मेरा हार्दिक कोटिशः त्रिकाल नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु !! नमोस्तु !!!

सहयोग—सम्पादक श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी सौम्य मुद्रा, सरल हृदय, संयमित जीवन, मधुर किन्तु सुस्पष्ट भाषा भाषी, विद्वान् और समीचीन ज्ञान भण्डार के धनी हैं। आधि और व्याधि तथा व्याधि सदृश उपाधिरूपी रोग से आप अहर्निश अपना बचाव करते रहते हैं। निर्लोभ वृत्ति आपके जीवन की सबसे महान् विशेषता है। हिन्दी भाषा पर आपका विशिष्ट अधिकार है। आपके द्वारा किये हुए यथोचित संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धनों में ग्रंथ को विशेष सौष्ठव प्राप्त हुआ है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थ आदि को पकड़ने की तत्परता आपको पूर्व-पुण्य योग से सहज ही उपलब्ध है। सम्पादन कार्य के अतिरिक्त भी समय-समय पर आपका बहुत सहयोग प्राप्त होता रहता है।

प्रो० श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन जबलपुर ने पंचम महाधिकार में उन्नीस विकल्पों द्वारा द्वीप-समुद्रों के अल्पबहुत्व सम्बन्धी गणित को एवं तिर्यंचों के प्रमाण सम्बन्धी गणित को स्पष्ट कर, गणित की दृष्टि से सम्पूर्ण ग्रंथ का अवलोकन कर तथा गणित सम्बन्धी प्रस्तावना लिखकर सराहनीय सहयोग दिया है।

पूर्वावस्था के विद्यागुरु, सरस्वती की सेवा में अनवरत संलग्न, सरल प्रकृति और सौम्याकृति **विद्वच्छिरोमणि श्री पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य** सागर की सत्प्रेरणा से ही यह महान् कार्य सम्पन्न हुआ है।

उदारमना श्री निर्मलकुमारजी सेठी इस ज्ञानयज्ञ के प्रमुख यजमान हैं। आपने सेठी ट्रस्ट के विशेष द्रव्य से ग्रंथ के तीनों खण्ड भव्यजनों के हाथों में पहुंचाये हैं। आपका यह अनुपम सहयोग अवश्य ही विशुद्धज्ञान में सहयोगी होगा।

संघस्थ **ब्रह्मचारी श्री कजोड़ीमलजी कामदार** ने इसके अनुदान की संयोजना आदि में अथक श्रम किया है उनके सहयोग के बिना ग्रंथ प्रकाशन का कार्य इतना शीघ्र होना सम्भव नहीं था।

प्रेस मालिक **श्री पांचूलालजी मदनगंज-किशनगढ़, श्री विमलप्रकाशजी ड्राफ्टमेन अजमेर, श्री रमेशकुमारजी मेहता उदयपुर** एवं श्री दि० जैन समाज का अर्थ आदि का सहयोग प्राप्त होने से ही आज यह तृतीय खण्ड नवीन परिधान में प्रकाशित हो पाया है।

आशीर्वाद—इस सम्यग्ज्ञान रूपी महायज्ञ में तन, मन एवं धन आदि से जिन-जिन भव्य जीवों ने जितना जो कुछ भी सहयोग दिया है वे सब परम्पराय शीघ्र ही विशुद्ध ज्ञानको प्राप्त करें; यही मेरा मंगल आशीर्वाद है।

मुझे प्राकृत भाषा का किञ्चित् भी ज्ञान नहीं है। बुद्धि अल्प होने से विषयज्ञान भी न्यूनतम है। स्मरणशक्ति और शारीरिक शक्ति भी क्षीण होती जा रही है। इस कारण स्वर, व्यंजन, पद, अर्थ एवं गणितीय अशुद्धियाँ हो जाना स्वाभाविक हैं क्योंकि—'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे' अतः परम पूज्य गुरुजनों से इस अविनय के लिए प्रायश्चित्त प्रार्थी हूँ। विद्वज्जन ग्रंथ को शुद्ध करके ही अर्थ ग्रहण करें। इत्यलम् !

भद्रं भूयात्—

वि० सं० २०४५ — **आर्यिका विशुद्धमती**
महावीर जयन्ती — दिनांक ३१।३।१९८८

आद्यमिताक्षर

वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी भगवान जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निर्गत जिनागम चार अनुयोगों में सम्विभक्त है। प्रथमानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग की अपेक्षा गणित प्रधान होने से करणानुयोग का विषय जटिलताओं से युक्त होता है।

सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार वासना सिद्धि प्रकरणों के कारण दुरूह है। करणानुयोग मर्मज्ञ श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार सहारनपुर वालों की प्रेरणा और सहयोग से इस ग्रन्थ की टीका हुई। इसका प्रकाशन सन् १९७५ में हुआ था, इसके पूर्व पं टोडरमल जी की हिन्दी टीका के अतिरिक्त इस ग्रन्थ की अन्य कोई हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं हुई थी।

श्री सकलकीर्त्याचार्य विरचित सिद्धान्तसार दीपक त्रिलोकसार जैसा कठिन नहीं था, किन्तु यह ग्रन्थ अप्रकाशित था। हस्तलिखित में भी इस ग्रन्थ की कोई टीका उपलब्ध नहीं हुई। हस्तलिखित प्रतियों से टीका करने में कठिनाई का अनुभव हुआ। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९८१ में हो चुका था।

तिलोयपण्णत्ती में त्रिलोकसार सदृश वासना सिद्धि नहीं है फिर भी ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय सरल नहीं है। इस ग्रन्थ के (प्रथम और पंचम) ये दो अधिकार अत्यधिक कठिन है। सन् १९७५ में श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार से प्रथमाधिकार की कठिन-कठिन ८३ गाथाएँ समझ कर आकृतियों सहित नोट कर ली थीं। मन बार-बार कह रहा था कि इन गाथाओं का यह सरलार्थ यदि प्रकाशित हो जाय तो स्वाध्याय संलग्न भव्यों को विशेष लाभ प्राप्त हो सकता है, इसी भावना से सन् १९७७ में जीवराज ग्रन्थमाला को लिखाया कि यदि तिलोयपण्णत्ती का दूसरा संस्करण छप रहा हो तो सूचित करें, उसमें कुछ गाथाओं का गणित स्पष्ट करके छापना है, किन्तु संस्था से दूसरा संस्करण निकला ही नहीं। इसी कारण टीका के भाव बने और २२।११।१९८१ को टीका प्रारम्भ की तथा १६।२।८२ को दूसरा अधिकार पूर्ण कर प्रेस में भेज दिया। पूर्व सम्पादकों का श्रम यथावत् बना रहे इस उद्देश्य से गाथार्थ यथावत् रखकर मात्र गणित की जटिलताएँ सरल कीं। इनमें भी पाँच-सात गाथाओ की संदृष्टियों का अर्थ बुद्धिगत नहीं हुआ फिर भी कार्य सतत् चलता रहा और २०।३।८२ तृतीयाधिकार भी पूर्ण हो गया, किन्तु इसकी भी तीन चार गाथाएँ स्पष्ट नहीं हुईं। चतुर्थाधिकार की ५६ गाथा से आगे तो लेखनी चली ही नहीं, अतः कार्य बन्द करना पड़ा।

समस्या के समाधान हेतु स्वस्ति श्री भट्टारक जी मूड़विद्री से सम्पर्क साधा। वहाँ से कुछ पाठ भेद आये उससे भी समाधान नहीं हुआ। अनायास स्वस्ति श्री कर्मयोगी भट्टारक चारुकीर्ति जी जैनविद्री का सम्पर्क हुआ, वहाँ से पूरे ग्रन्थ की लिप्यन्तर प्रति प्राप्त हुई जिसमें अनेक बहुमूल्य पाठभेद और

छूटी हुई ११५ गाथाएँ प्राप्त हुई जो इस प्रकार हैं–

अधिकार	– प्राप्त गाथाएँ	
प्रथम –	३	इन तीन अधिकारों का प्रथम खण्ड है। इस खण्ड में ४५ चित्र और १९ तालिकाएँ हैं।
द्वितीय –	४	
तृतीय –	१९	
चतुर्थ –	५५	चतुर्थ अधिकार का दूसरा खण्ड है, इसमें ३० चित्र और ४६ तालिकाएँ हैं।
पंचम–	२	इन पाँच अधिकारों का तृतीय खण्ड है। इस खण्ड में १५ चित्र और ३३ तालिकाएँ हैं।
षष्ठ –	०	
सप्तम–	५	
अष्टम–	२३	
नवम–	४	

इस पूरे ग्रन्थ में नवीन प्राप्त गाथाएँ ११५, चित्र ९० और तालिकाएँ ९५ है। पाठ भेद अनेक हैं। पूरे ग्रन्थ में अनुमानतः ५२-५३ विचारणीय स्थल हैं, जो दूसरे एवं तीसरे खण्ड के प्रारम्भ में दिये गये हैं। ग्रन्थ प्रकाशित हुए लगभग नौ वर्ष हो चुके हैं किन्तु इन विचारणीय स्थलों का एक भी समाधान प्राप्त नहीं हुआ।

बुद्धिपूर्वक सावधानी बरतते हुए भी **'को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे'** नीत्यानुसार अशुद्धियाँ रहना स्वाभाविक है।

इस द्वितीय संस्करण के प्रकाशन के प्रेरणा सूत्र परमपूज्य १०८ श्री उपाध्याय ज्ञान सागर जी के चरणों में सविनम्र नमोऽस्तु करते हुए मैं आपका आभार मानती हूँ।

इस संस्करण को श्री १००८ चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा-तिजारा की कार्यकारिणी ने अपनी ओर से प्रकाशित कराया है। सभी कार्यकर्त्ताओं को मेरा शुभाशीर्वाद।

आर्यिका विशुद्धमति

दि.२७ ६ १९९७

सम्पादकीय

तिलोयपण्णत्ती : तृतीय खण्ड

[५, ६, ७, ८, ९ महाधिकार]

प्राचीन कन्नड़ प्रतियों के आधार पर सम्पादित तिलोयपण्णत्ती का यह तीसरा और अन्तिम खण्ड—जिसमें पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ और नवाँ महाधिकार सम्मिलित है—अपने पाठकों तक पहुँचाते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता है। आचार्य यतिवृषभ द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ लोकरचना विषयक साहित्य की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें प्रसंगवश, धर्म, संस्कृति व इतिहास-पुराण से सम्बन्धित अनेक विषय वर्णित हुए हैं। तिलोयपण्णत्ती के इन नौ महाधिकारों का प्रथम प्रकाशन दो खण्डों में सन् १९४३ व सन् १९५१ में हुआ था। सम्पादक थे—प्रो० हीरालाल जैन व प्रो० ए० एन० उपाध्ये। पं० बालचन्द्रजी सिद्धान्त शास्त्री ने गाथाओं का मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद किया था। सम्पादक द्वय ने उस समय ज्ञात प्राचीन प्रतियों के आधार पर अपनी प्रखर मेधा से परिश्रमपूर्वक बहुत सुन्दर सम्पादन किया था। प्रस्तुत सम्पादन में हमें उससे पर्याप्त सहायता मिली है, मैं उक्त विद्वद्जनों का हृदय से अनुगृहीत हूँ।

प्रस्तुत संस्करण की आधार प्रति जैनबद्री से प्राप्त लिप्यन्तरित (कन्नड़ से देवनागरी) प्रति है। अन्य सभी प्रतियों के पाठभेद टिप्पण में दिये गये हैं। सभी प्रतियों का विस्तृत परिचय ति० प० के प्रथमखण्ड की प्रस्तावना में दिया जा चुका है।

सम्पादन की वही विधि अपनाई गई है जो पहले दो खण्डों में अपनाई गई थी अर्थात् उपलब्ध पाठों के आधार पर अर्थ की संगति को देखते हुए शुद्ध पाठ रखना ही बुद्धि का प्रयास रहा है। क्योंकि हिन्दी टीका के विशेषार्थ में तो सही पाठ या संशोधित पाठ की ही संगति बैठती है, विकृत पाठ की नहीं। गणित और विषय के अनुसार जो संदृष्टियाँ शुद्ध हैं उन्हें ही मूल में ग्रहण किया गया है, विकृत पाठ टिप्पणी में दिये गये हैं। पाठालोचन और पाठसंशोधन के नियमों के अनुसार ऐसा करना यद्यपि अनुचित है तथापि व्यावहारिक दृष्टि से इसे अतीव उपयोगी जानकर अपनाया गया है। भाषा शास्त्रियों से एतदर्थ क्षमा चाहता हूँ।

परम पूज्य अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी १०५ आर्यिका श्री विशुद्धमती माताजी के गत पाँच-छह वर्षों के कठोर श्रम से इस जटिल गणितीय ग्रन्थ का यह सरल रूप हमें प्राप्त हुआ है। आपने विशेषार्थ में सभी दुरूहताओं को स्पष्ट किया है, गणितीय समस्याओं का हल दिया है, विषय को चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है और अनेकानेक तालिकाओं के माध्यम से विषय का समाहार किया है। कानड़ी प्रतियों के आधार पर सम्पादित इस संस्करण में प्रथम सम्पादित संस्करण से कुछ गाथाओं की वृद्धि हुई है।

इसप्रकार पाँचों अधिकारों में कुल १८२४ गाथाओं के स्थान पर १८५८ गाथाएँ हो गई हैं। जो निम्नतालिका से स्पष्ट है—

महाधिकार	प्रथम सम्पादित संस्करण की कुल गाथाएँ	प्रस्तुत सस्करण में गाथाएँ	नवीन गाथाओं की क्रम संख्या
पंचम महाधिकार	३२१	३२३	१७८, १८७=(२)
षष्ठ ,,	१०३	१०३	×××
सप्तम ,,	६१९	६२४	२४२, २७७, ५०८, ५३५, ५९३=(५)
अष्टम ,,	७०३	७२६	३०६, ३२१, ३९९, ५५९ से ५७८ } =(२३)
नवम ,,	७७+१	८२	१८, १९, २०, २१=(४)

प्रस्तुत सस्करण में प्रत्येक गाथा के विषय को निर्दिष्ट करने के लिये उपशीर्षकों की योजना की गई है और तदनुसार ही विस्तृत विषयानुक्रमणिका तैयार की गई है।

(क) पंचम महाधिकार : तिर्यग्लोक

इस महाधिकार में कुल ३२३ गाथाएँ हैं, गद्यभाग अधिक है। १६ अन्तराधिकारों के माध्यम से तिर्यग्लोक का विस्तृत वर्णन किया गया है। महाधिकार के प्रारम्भ में चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को नमस्कार किया गया है। अनन्तर स्थावरलोक का प्रमाण बताते हुए कहा गया है कि जहाँ तक आकाश में धर्म एवं अधर्म द्रव्य के निमित्त से होने वाली जीव और पुद्गल की गतिस्थिति सम्भव है, उतना सब स्थावर लोक है। उसके मध्य में सुमेरु पर्वत के मूल से एक लाख योजन ऊँचा और एक राजू लम्बा चौड़ा तिर्यक् त्रसलोक है जहाँ तिर्यञ्च त्रस जीव भी पाये जाते हैं।

तिर्यग्लोक में परस्पर एक दूसरे को चारों ओर से वेष्टित करके स्थित समवृत्त असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। उन सबके मध्य में एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप नामक प्रथम द्वीप है। उसके चारों ओर दो लाख योजन विस्तार से संयुक्त लवण समुद्र है। उसके आगे दूसरा द्वीप और फिर दूसरा समुद्र है यही क्रम अन्त तक है। इन द्वीप समुद्रों का विस्तार उत्तरोत्तर पूर्व पूर्व की अपेक्षा दूना-दूना होता गया है। यहाँ ग्रन्थकार ने आदि और अन्त के सोलह-सोलह द्वीप समुद्रों के नाम भी दिये हैं। इनमें से आदि के अढ़ाई द्वीप और दो समुद्रों की प्ररूपणा विस्तार से चतुर्थमहाधिकार (ति० प० द्वितीय खण्ड) में की जा चुकी है।

इस महाधिकार में आठवें, ग्यारहवें और तेरहवें द्वीप का कुछ विशेष वर्णन किया गया है, अन्य द्वीपों में कोई विशेषता न होने से उनका वर्णन नहीं किया गया है। आठवें नन्दीश्वर द्वीप के विन्यास के बाद बताया गया है कि प्रतिवर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में इस द्वीप के बावन जिनालयों की पूजा के लिये भवनवासी आदि चारों प्रकार के देव शुक्लपक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक रहकर बड़ी भक्ति करते हैं। कल्पवासी देव पूर्व दिशा में, भवनवासी दक्षिण में, व्यन्तर पश्चिम में और ज्योतिषी देव उत्तर दिशा में पूर्वाह्न, अपराह्न, पूर्वरात्रि व

पश्चिम रात्रि में दो-दो प्रहर तक अभिषेकपूर्वक जलचन्दनादिक आठ द्रव्यों से पूजन-स्तुति करते हैं। इस पूजन महोत्सव के निमित्त सौधर्मादि इन्द्र अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर हाथ में कुछ फल-पुष्पादि लेकर वहाँ जाते हैं।

अनन्तर कुण्डलवर और रुचकवर इन दो द्वीपों का संक्षिप्त वर्णन करके कहा गया है कि जम्बूद्वीप से आगे संख्यात द्वीप समुद्रों के पश्चात् एक दूसरा भी जम्बूद्वीप है। इसमें जो विजयादिक देवों की नगरियाँ स्थित हैं, उनका यहाँ विशेष वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीप और उसके बीचों बीच वलयाकार से स्थित स्वयम्प्रभ पर्वत का निर्देश कर यह प्रकट किया है कि लवणोद, कालोद और स्वयम्भूरमण ये तीन समुद्र चूंकि कर्मभूमि सम्बद्ध हैं, अतः इनमें तो जलचर जीव पाये जाते हैं किंतु अन्य किसी समुद्र में नहीं।

अनन्तर १९ पक्षों का उल्लेख करके उनमें द्वीप समुद्रों के विस्तार, खण्ड शलाकाओं, क्षेत्रफल सूचीप्रमाण और आयाम में जो उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है उसका गणित प्रक्रिया के द्वारा बहुत विस्तृत विवेचन किया गया है। पश्चात् ३४ भेदों में विभक्त तिर्यंच जीवों की संख्या, आयु, आयुबन्धकभाव, उनकी उत्पत्तियोग्य योनियाँ, सुख-दुःख, गुणस्थान, सम्यक्त्वग्रहण के कारण, गति-आगति आदि का कथन किया गया है। फिर उक्त ३४ प्रकार के तिर्यंचों में अल्पबहुत्व और अवगाहन विकल्पों का कथन कर पुष्पदन्त जिनेन्द्र को नमस्कार कर इस महाधिकार को समाप्त किया गया है।

(ख) षष्ठ महाधिकार : व्यन्तर लोक

कुल १०३ गाथाओं के इस अधिकार में १७ अन्तराधिकारों के द्वारा व्यन्तर देवों का निवास क्षेत्र, उनके भेद, चिह्न, कुलभेद, नाम, दक्षिण-उत्तर इंद्र, आयु, आहार, उच्छ्वास, अवधिज्ञान, शक्ति, उत्सेध, संख्या, जन्म-मरण, आयुबन्धकभाव, सम्यक्त्वग्रहण विधि और गुणस्थानादि विकल्पों की प्ररूपणा की गई है। इसमें कतिपय विशेष बातें ही उल्लिखित हुई हैं, शेष प्ररूपणा तृतीय महाधिकार में वर्णित भवनवासी देवों के समान कह दी गई है। प्रारम्भिक मंगलाचरण में शीतलनाथ जिनेन्द्र को और अन्त में श्रेयांसजिनेन्द्र को नमस्कार किया गया है।

(ग) सप्तम महाधिकार : ज्योतिर्लोक

इस महाधिकार में कुल ६२४ गाथाएँ हैं और १७ अन्तराधिकार हैं। ज्योतिषी देवों का निवास क्षेत्र, उनके भेद, संख्या, विन्यास, परिमाण, संचार-चर ज्योतिषियों की गति, अचर ज्योतिषियों का स्वरूप, आयु, आहार, उच्छ्वास, उत्सेध, अवधिज्ञान, शक्ति, एक समय में जीवों की उत्पत्ति व मरण, आयुबन्धक भाव, सम्यग्दर्शनग्रहण के कारण और गुणस्थानादिक वर्णन अधिकारों के माध्यम से विस्तृत प्ररूपणा की गई है। प्रारम्भ में श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र को नमस्कार किया है और अन्त में विमलनाथ भगवान को।

निवास क्षेत्र के अन्तर्गत बतलाया गया है कि एक राजू लम्बे चौड़े और ११० योजन मोटे क्षेत्र में ज्योतिषी देवों का निवास है। चित्रा पृथिवी से ७९० योजन ऊपर आकाश में तारागण, इनसे १० योजन ऊपर सूर्य, उससे ८० योजन ऊपर चन्द्र, उससे ४ योजन ऊपर नक्षत्र, उनसे ४ योजन ऊपर बुध, उससे ३ योजन ऊपर शुक्र,

उससे ३ योजन ऊपर गुरु, उससे ३ योजन ऊपर मंगल और उससे ३ योजन ऊपर जाकर शनि के विमान हैं। ये विमान ऊर्ध्वमुख अर्धगोलक के आकार हैं। ये सब देव इनमें सपरिवार आनन्द से रहते हैं।

इन देवों में से चन्द्र को इंद्र और सूर्य को प्रतीन्द्र माना गया है। चन्द्र का चार क्षेत्र जम्बूद्वीप में १८० योजन और लवणसमुद्र में ३३० $\frac{४८}{६१}$ यो० है। इस चार क्षेत्र में चन्द्र की अपने मण्डल प्रमाण $\frac{५६}{६१}$ यो० विस्तार वाली १५ गलियाँ हैं। जम्बूद्वीप में दो चन्द्र हैं। चन्द्र विमानों से ४ प्रमाणांगुल (८३ $\frac{१}{३}$ हाथ) नीचे राहु विमान के ध्वजदण्ड हैं। ये अरिष्टरत्नमय विमान काले रंग के हैं। इनकीगति दिन राहु और पर्वराहु के भेद से दो प्रकार है। जिस मार्ग में चन्द्र परिपूर्ण दिखता है, वह दिन पूर्णिमा नाम से प्रसिद्ध है। राहु के द्वारा चन्द्रमण्डल की कलाओं को आच्छादित कर लेने पर जिस मार्ग में चन्द्र की एक कला ही अवशिष्ट रहती है, वह दिन अमावस्या कहा जाता है।

जम्बूद्वीप में सूर्य भी दो हैं। इनकी संचारभूमि ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन है। इसमें सूर्यबिम्ब के समान विस्तृत और इससे आधे बाहल्य वाली १८४ वीथियाँ हैं। सूर्य के प्रथमादि पथों में स्थित रहने पर दिन और रात्रि का प्रमाण दर्शाया गया है, इसके आगे कितनी धूप और कितना अंधेरा रहता है यह विस्तार से बतलाया है। इसी प्रकार भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में सूर्य के उदयकाल में कहाँ कितना दिन और रात्रि होती है, यह भी निर्दिष्ट किया गया है।

अनन्तर ८८ ग्रहों की संचारभूमि व वीथियों का निर्देश मात्र किया गया है। विशेष वर्णन न करने का कारण तद्विषयक उपदेश का नष्ट हो जाना बतलाया गया है। इसके बाद २८ नक्षत्रों की प्ररूपणा की गई है। फिर ज्योतिषी देवों की संख्या, आहार, उच्छ्वास और उत्सेध आदि कहकर इस महाधिकार की समाप्ति की गई है।

(घ) अष्टम महाधिकार : सुरलोक

इस महाधिकार में ७२६ गाथाएँ हैं। वैमानिक देवों का निवास क्षेत्र, विन्यास, भेद, नाम, सीमा, विमान संख्या, इंद्रविभूति, आयु, जन्म-मरण अन्तर, आहार, उच्छ्वास, उत्सेध, आयुबन्धकभाव, लौकान्तिक देवों का स्वरूप, गुणस्थानादिक, सम्यक्त्वग्रहण के कारण, आगमन, अवधिज्ञान, देवों की संख्या, शक्ति और योनि शीर्षक इक्कीस अन्तराधिकारों के द्वारा वैमानिक देवों की विस्तार से प्ररूपणा की है।

तिलोयपण्णत्तीकार के समक्ष बारह और सोलह कल्पों विषयक भी पर्याप्त मतभेद रहा है। ग्रन्थकर्ता ने दोनों मान्यताओं का उल्लेख किया है। गाथा ५५२ त्रिलोकसार ग्रन्थ (५२९) में ज्यों की त्यों मिलती है। अधिकार के आरम्भ में भगवान अनन्तनाथ को और अंत मे भगवान धर्मनाथ को नमस्कार किया गया है।

(ङ) नवम महाधिकार : सिद्धलोक

इस महाधिकार में कुल ८२ गाथाएँ हैं। सिद्धों का क्षेत्र, उनकी संख्या, अवगाहना, सौख्य और सिद्धत्व के हेतु भूत भाव-नामके पांच अन्तराधिकार हैं। इस अधिकार की बहुत सी गाथायें समयसार, प्रवचनसार और

पंचास्तिकाय में दृष्टिगोचर होती हैं। अधिकार के प्रारम्भ में शान्ति जिनेन्द्र को नमस्कार किया गया है और अंत में श्री कुन्थुनाथ भगवान, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी को नमस्कार किया गया है। फिर एक गाथा मे सिद्ध, सूरिसमूह और साधुसंघ के जयवंत रहने की कामना की गई है। पुन: एक गाथा में भरत क्षेत्र के वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार किया गया है। फिर पंचपरमेष्ठी को नमन किया है। अन्त में तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ का प्रमाण आठ हजार श्लोक बताया गया है। अनन्तर ग्रन्थकर्ता ने अपनी विनम्रता व्यक्त करते हुए कहा है कि "प्रवचनभक्ति से प्रेरित होकर मैंने मार्गप्रभावना के लिये इस श्रेष्ठ ग्रन्थ को कहा है। बहुश्रुत के धारक आचार्य इसे शुद्ध कर लें।"

प्रस्तुत खण्ड के करणसूत्र, प्रयुक्त संकेत, पाठान्तर, चित्र और तालिका आदि का विवरण इसप्रकार है—

करणसूत्र

गाथा	अधि०/गाथा संख्या	गाथा	अधि०/गाथा संख्या
अहवा आदिम मज्झिम	५।२४५	लवणूणइट्ठरुंदं	५।२६३
अहवा तिगुणिय मज्झिम	५।२४६	लवणेणूणं रुंदं	५।२४४
तिगुणियवासा परिही	५।२४३	बाणविहीणे वासे	७।४२४
बाहिर सूई वग्गो	५।३६	मज्झिम बाण गुणिदं	८।१६०
लवणविहीण रुंदं	५।२६८		

प्रस्तुत संस्करण में प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण संकेत

– = श्रेणी		९ = असंख्यात लोक का चिह्न पृ. १५०	दं	= दण्ड
= = प्रतर		४५ = संख्यात बहुभाग पृ. १५०	से	= शेष
≡ = त्रिलोक		४ = संख्यात एक भाग पृ० १५०	ह	= हस्त
१६ = सम्पूर्ण जीवराशि			अं	= अंगुल
१६ ख = सम्पूर्ण पुद्गल (की परमाणु) राशि		प = पल्योपम	ध	= धनुष
१६ ख ख = सम्पूर्ण काल (की समय) राशि		सा = सागरोपम	इ	= इन्द्रक
१६ ख ख ख = सम्पूर्ण आकाश (की प्रदेश) राशि		सू = सूच्यंगुल	सेढी	= श्रेणीबद्ध
७ = संख्यात		प्र = प्रतरांगुल	प्र	= प्रकीर्णक
रि = असंख्यात		घ = घनांगुल	मु	= मुहूर्त
असं = असंख्यात		ज. श्रे. = जगच्छ्रेणी	छे	= अर्धच्छेद
यो = योजन		लोय प = लोकप्रतर	दि	= दिन
जो = योजन		भू = भूमि	मा	= माह
= रज्जु		को = कोस		

पाठान्तर

गाथा	अधि०/गाथा सं०	गाथा	अधि०/गाथा सं०
ते चउ चउ कोणेसुं	५।६९	जं णहु णहट्ठ-दुग इगि	८।३८९
णंदीसर विदिसासुं	५।८२	सगवीसं कोडीओ	८।३९०
तम्मिरि वरस्स होंति	५।१२८	सोहम्मादि चउक्के	८।४४४
लोयविणिच्छय कत्ता	५।१२९	इंदाणं चिण्हाणि	८।४५३
एक्केक्का जिण कूडा	५।१४०	सूवर हरिणो महिसा	८।४५४
दिस विदिसं तब्भागे	५।१६६	तेत्तीस उवहि उवमा	८।५१४
लोयविणिच्छयकत्ता	५।१६७	पल्ला सत्तेक्कारस	८।५३२
तक्कूडब्भंतरए, चत्तारि	५।१७९	कप्पं पडि पंचादिसु	८।५३३
अहवा रुंदपमाणं	६।१०	पलिदोवमाणि पंचय	८।५३४
जोइगण णयरीणं	७।११५	आरणदुग परियंतं	८।५३५
पण्णासाहिय दुसया	७।२०३	इय जम्मण मरणाणं	८।५५३
उडुणामे सेढिगया	८।८४	दुसुदुसु चउसु दुसु सेसे	८।५६६
बारस कप्पा केई	८।११५	लोयविभागाइरिया	८।६५८
सव्वट्ठ सिद्धि णामे	८।१२६	पुव्वुत्तर दिब्भाए	८ ६५९
सोहम्मो ईसाणो	८।१२७	दक्खिण दिसाए अरुणा	८।६६०
सदरसहस्साराणद	८।१२०	उत्तर दिसाए रिट्ठा	८।६६१
जे सोलस कप्पाणि	८।१४८	पत्तेक्कं सारस्सद	८।६६२
जे सोलस कप्पाहुं	८।१७८	सोहम्मिंदो णियमा	८ ७२२
अहवा आणद जुगले	८।१८५	लोयविणिच्छय गंथे	९।१०
सव्वाणि अणीयाणि	८।२७०	पण्णासुत्तर ति सया	९।११
वसहाणीयादीणं पुह पुह	८।२७१	तणुवाद पवण बहुले	९।१२
एवं सत्तविहाणं सत्ताणीयाण	८।२७२	तणुवादस्स य बहुले	९।१३
छज्जुगल सेसएसुं	८।३५३		

चित्र विवरण

तालिका विवरण

आभार

'तिलोयपण्णत्ती' जैसे बृहद्काय ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना मे हमें अनेक महानुभावों का प्रचुर प्रोत्साहन और सौहार्दपूर्ण सहयोग मिला है। आज तृतीय और अन्तिम खण्ड के प्रकाशनावसर पर उन सबका कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण करना मेरा नैतिक दायित्व है।

सर्व प्रथम मैं परम पूज्य (स्वर्गीय) आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज के पावन चरणों में अपनी विनीत श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ जिनके आशीर्वचन सदैव मेरे प्रेरणास्रोत रहे हैं। आज इस तीसरे खण्ड के प्रकाशनावसर पर वे हमारे बीच नहीं हैं परन्तु उनकी सौम्यछवि सदैव आशीर्वाद की मुद्रा में मेरा सम्बल रही है। उस पुनीत आत्मा को शत-शत नमन।

परम पूज्य आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज का मैं अतिशयकृतज्ञ हूँ जिनका वात्सल्यपरिपूर्ण वरदहस्त सदैव मुझ पर रहता है। आपका असीम अनुग्रह ही मेरे द्वारा सम्पन्न होने वाले इन साहित्यिक कार्यों की मूल प्रेरणा है। आर्षमार्ग एवं श्रुत के संरक्षण की आपको बड़ी चिन्ता है। ८२–८३ वर्ष की अवस्था मे भी आप निर्दोष मुनिचर्या का पालन करते हुए इन कार्यों के लिए एक युवा की भाँति सक्रिय और तत्पर हैं। मैं इस निस्पृह आत्मा के पुनीत चरणों में अपना नमोस्तु निवेदन करता हुआ इनके दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ।

अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी स्वाध्यायशील परमपूज्य चतुर्थ पट्टाधीश आचार्य पूज्य अजितसागरजी महाराज के चरण कमलों में सादर नमन करता हुआ उनके स्वस्थ दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ।

ग्रन्थ की टीकाकर्त्री पूज्य आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमती माताजी का मैं चिरकृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझपर अनुकम्पा कर इस ग्रन्थ के सम्पादन का गुरुतर भार मुझे सौंपा। तीनों खण्डों के माध्यम से ग्रन्थ का जो नवीनरूप बन पड़ा है वह सब पूज्य माताजी की साधना, कष्ट सहिष्णुता, असीम धैर्य, त्याग-तप और निष्ठा का ही सुपरिणाम है। ग्रन्थ को बोधगम्य बनाने के लिए माताजी ने जितना श्रम किया है उसे शब्दों में आँका नहीं जा सकता। यद्यपि आपका स्वास्थ्य अनुकूल नहीं रहता तथापि आपने कार्य में अनवरत संलग्न रह कर प्रस्तुत टीका को चित्रों, तालिकाओं और विशेषार्थ से समलंकृत कर सुबोध बनाया है। मैं यही कामना करता हूँ कि पूज्य माताजी का रत्नत्रय कुशल रहे और स्वास्थ्य भी अनुकूल बने ताकि आपकी यह श्रुत सेवा अबाधगति से चलती रहे। मैं आर्यिका श्री के चरणों में शतशः वन्दामि निवेदन करता हूँ।

वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, श्रद्धेय पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य, सागर और प्रोफेसर लक्ष्मीचन्दजी जैन, जबलपुर का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रथम दो खण्डों की भाँति इस खण्ड के लिए भी पुरोवाक् और गणित विषयक लेख लिखकर भिजवाया है। 'जम्बूद्वीप के क्षेत्रों और पर्वतों के क्षेत्रफलों की गणना' शीर्षक एक विशेष लेख बिड़ला इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालोजी, मेसरा (रांची) के प्रोफेसर डा० राधाचरण गुप्त ने भिजवाया है। इस लेख में प्राचीन विधि से क्षेत्रफल निकाले गये हैं जो पूर्णतया ग्रन्थ (द्वितीयखण्ड। चतुर्थ अधिकार) के मानों से मिल जाते हैं। मैं प्रोफेसर गुप्त का हृदय से आभारी हूँ।

प्रस्तुत खण्ड में मुद्रित चित्रों की रचना के लिए श्री विमलप्रकाशजी जैन अजमेर और श्री रमेशचन्द्रजी मेहता, उदयपुर धन्यवाद के पात्र हैं।

पूज्य माताजी की संघस्थ आर्यिका प्रशान्तमतीजी और आर्यिका पवित्रमतीजी को सविनय नमन करता हूँ जिनका प्रोत्साहन ग्रन्थ को शीघ्र प्रकाशित करने मे सहयोगी रहा है।

आदरणीय ब्र० कजोड़ीमलजी कामदार पूज्य माताजी के संघ में ही रहते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के बीजारोपण से लेकर तीन खण्डों के रूप में इसके प्रकाशन तक आने वाली अनेक छोटी बड़ी बाधाओं का आपने तत्परता से परिहार किया है। एतदर्थ मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूं।

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के प्रकाशन विभाग को इस गरिमापूर्ण प्रकाशन के लिए बधाई देता हूं। सेठी ट्रस्ट के नियामक एवं वर्तमान महासभाध्यक्ष आदरणीय श्री निर्मलकुमारजी सेठी का आभार किन शब्दों मे व्यक्त करूं। उन्हीं की प्रेरणा से यह ग्रन्थ इस रूप में आपके सन्मुख आ पाया है। आपने विपुल अर्थ सहयोग प्रदान कर एतत्सम्बन्धी चिन्ताओं से हमें सदैव मुक्त रखा है, एतदर्थ मैं आपका व ग्रन्थ सहयोगी दातारों का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं और इस श्रुत सेवा के लिए उन्हें हार्दिक साधुवाद देता हूं।

ग्रन्थ के तीनों खण्डों का शुद्ध और सुन्दर मुद्रण कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज-किशनगढ में हुआ है। मैं प्रेस मालिक श्रीमान् पाँचूलालजी जैन के सहयोग का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता। आज कोई बीस वर्ष से मेरा जो सम्बन्ध इस प्रेस से चला आरहा है उसका मुख्य कारण श्री पाँचूलालजी का सौजन्य और मेरे प्रति सद्भाव ही है। इसी कारण मेरे जोधपुर आजाने पर भी इ... से सम्बन्ध विच्छेद की मैंने कभी कल्पना भी नहीं की। मुझे आशा है, जब तक उनका प्रेस से सम्बन्ध है और मेरा साहित्यिक कार्य से, तब तक हमारा सहयोग अस्खलित बना रहेगा। मैं सुरुचिपूर्ण मुद्रण के लिए प्रेस के सभी कर्मचारियों को धन्यवाद देता हूं।

वस्तुतः अपने वर्तमानरूप में 'तिलोयपण्णत्ती' के प्रस्तुत संस्करण की जो कुछ उपलब्धि है वह सब इन्हीं श्रमशील धर्मनिष्ठ पुण्यात्माओं की है। मैं हृदय से सबका अनुगृहीत हूं।

सुधीगुणग्राही विद्वानों से सम्पादन प्रकाशन मे रही भूलों के लिए सविनय क्षमायाचना करता हूं।

महावीर जयन्ती ३१-३-८८
श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर
शास्त्रीनगर जोधपुर

विनीत :
डा० चेतनप्रकाश पाटनी
सम्पादक

तिलोयपण्णत्ती के पाँचवें और सातवें महाधिकार का गणित

[लेखक : प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन, सूर्या एम्पोरियम, ६७७ सराफा जबलपुर (म० प्र०)]

पाँचवां महाधिकार

गाथा ५/३३

इस गाथामें अंतिम आठ द्वीप-समुद्रों के विस्तार भी गुणोत्तर श्रेणि में दिये गये हैं।

अंतिम स्वयंभूवर समुद्र का विस्तार—

(जगश्रेणी ÷ २८) + ७५००० योजन

इसके पश्चात् १ राजु चौड़े तथा १००००० योजन बाहल्यवाले मध्यलोक तल पर पूर्व पश्चिम में

"{ १ राजु—[($\frac{१}{४}$ राजु + ७५००० योजन) + ($\frac{१}{८}$ राजु + ३७५०० योजन)

+ ($\frac{१}{१६}$ राजु + १८७५० योजन) + ... + (५०००० योजन)] }"

जगह बचती है। यद्यपि १ राजु में से एक अनन्त श्रेणी भी घटाई जाये तब भी यह लम्बाई $\frac{१}{२}$ राजु से कुछ कम योजन बच रहती है। यह गुणोत्तर श्रेणी है।

गाथा ५/३४

यदि जम्बूद्वीप का विष्कम्भ D_1 है। मानलो २n वें समुद्र का विस्तार D_{2n} मान लिया जाय और २n + १ वें द्वीप का विस्तार D_{2n+1} मान लिया जाय तब निम्नलिखित सूत्रों द्वारा परिभाषा प्रदर्शित की जा सकेगी।

$Da = D_{2n+1} \times २ - D_1 \times ३$ = उक्त द्वीप की आदि सूची

$Dm = D_{2n+1} \times ३ - D_1 \times ३$ = उक्त द्वीप की मध्यम सूची

$Db = D_{2n+1} \times ४ - D_1 \times ३$ = उक्त द्वीप की बाह्य सूची

द्वीपों के लिये इस सूत्र का परिवर्तित रूप होगा।

गाथा ५/३५ n वें द्वीप या समुद्र की परिधि

$$= \frac{D_1 \sqrt{१०}}{D^1} \times [\text{n वें द्वीप या समुद्र की सूची}]$$

गाथा ५/३६ यदि n वें द्वीप या समुद्र की बाहरी सूची Dnb तथा अभ्यंतर सूची (अथवा आदि सूची) Dna प्रकल्पित की जावे तो

$$\frac{(Dnb)^2-(Dna)^2}{(D_1)^2}$$ = उक्त द्वीप या समुद्र के क्षेत्र में समा जाने वाले जम्बूद्वीप क्षेत्रों की संख्या होती है ।

यहाँ D_1 जम्बूद्वीपका विष्कम्भ है और $Dna = D(n-_1)b$ है क्योंकि किसी भी द्वीप या समुद्र की बाह्य सूची, अनुगामी समुद्र या द्वीप की आदि या आभ्यंतर सूची होती है ।

गाथा ५/२४२ यहाँ स्थूल क्षेत्रफल निकालने के लिये ग्रंथकार ने π का स्थूल मान ३ मान लिया है और नवीन सूत्र दिया है ।

n वें द्वीप या समुद्र का क्षत्रफल $= [Dn - D_1](3)^2\{Dn\}$

यहाँ $[Dn - D_1](3)^2$ को आयाम कहा गया है ।

Dn को n वें द्वीप या समुद्र का विष्कम्भ लिया है ।

स्मरण रहे कि $Dn = 2^{(n-1)} D_1$ लिखा जा सकता है ।

पुन :,

n वें वलयाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिए सूत्र यह है—

बादर क्षेत्रफल

$$= Dn [Dna + Dnm + Dnb]$$

यहाँ

$$Dna = [2\{2^{n-2} + 2^{n-3} + \dots\dots + 2\} + 1] D_1$$

$$Dnb = [2\{2^{n-1} + 2^{n-2} + 2^{n-3} + \dots\dots + 2^2 + 2\} + 1] D_1$$

$$Dnm = \frac{Dnb + Dna}{2}$$

इनका मान रखने पर

$$\text{बादर क्षेत्रफल} = 2^{n-1} D_1 [Dna + \tfrac{1}{2}(Dna + Dnb) + Dnb]$$

$$= 3^2 [2^{n-1}] (D_1)^2 [2^{n-1} - 1]$$

गाथा ५/२४४ यह सूत्र पिछली गाथा के समान है ।

$[Log_2(Apj) + 1]$ वें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल,

(Apj) (Apj–१) { ९००० करोड़ योजन } वर्ग योजन होगा,

जहाँ Apj जघन्य परीतासंख्यात है, $\log_2$ अर्द्धच्छेदका आधुनिक प्रतीक है।

पिछली (२४३) वीं गाथामें n वें वलयाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल

$३^२ (D_१)^२ [२^{n-१}] [२^{n-१} — १]$ बतलाया गया है जो

$९ (१०००००)^२ [२^{n-१}] [२^{n-१} — १]$ के बराबर है।

यदि $n = \log_2$ Apj + १ हो तो

$n — १ = \log_2$ Apj होगा, इसलिए $२^{n-१}$ = Apj हो जायेगा।

इसप्रकार ग्रंथकार ने यहाँ छेदा गणित का उपयोग किया है। उन्होंने १६ संदृष्टि जघन्य-परीतासंख्यात के लिए और १५ संदृष्टि एक कम जघन्य परीतासंख्यात के लिये ली है।

इसीप्रकार { $\log_2$ (पल्योपम) + १ } वें द्वीपका क्षेत्रफल

= (पल्योपम) (पल्योपम — १) × ९ × $(१०)^{१०}$ वर्ग योजन होता है।

आगे स्वयंभूरमण समुद्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये २४३ या २४४वीं गाथा में दिये गये सूत्र

{ बादर क्षेत्रफल = D_n $(३)^२$ $(D_n — D_१)$ } का उपयोग किया है।

इस समुद्र का विष्कम्भ =

$D_n = \frac{\text{जगश्रेणी}}{२८}$ + ७५००० योजन है, इसलिये,

बादर क्षेत्रफल =

[$\frac{९}{२८}$ जगश्रेणी + ६७५००० योजन]

[$\frac{\text{जगश्रेणी}}{२८}$ = ७५००० योजन — १००००० योजन]

= $\frac{९}{७८४}$ $(\text{जगश्रेणी})^२$ + [११२५०० वर्गयोजन × १ राजु]

— [१६८७५०००००० वर्ग योजन] वर्ग योजन

गाथा ५/२४५ मानलो इष्ट द्वीप या समुद्र nवां है; उसका विस्तार Dn है तथा आदि सूची का प्रमाण Dna है।

तब, शेष वृद्धि का प्रमाण = २ Dn — ($\frac{४ \text{ Dn} + \text{Dna}}{३}$) होता है।

इसे साधित करने पर, = $\frac{२ \text{ Dn} — \text{Dna}}{३}$

यहाँ $Dn = २^{n-१} D_१$ है तथा $Dna = १ + २ [२ + २^२ + ... + २^{n-२}]$ है।

अर्थात्, $Dna = [१ + २ (२^{n-१} - २)] D_१$ योजन है।

$$\therefore \frac{२ Dn - Dna}{३} = \frac{२^n D_१ + [-१ - २^n + ४] D_१}{३} = D_१ = १०००००\ \text{योजन}$$

गाथा ५/२४६-२४७ : प्रतीकरूपेण,

$$५००००\ \text{योजन} + \frac{Dna}{२} = \frac{Dnb + [Dn - २०००००]}{५}$$

गाथा ५/२४८ प्रतीकरूप से,

उक्त वृद्धिका प्रमाण $= \{ \frac{३}{४} (Dnb) - Dna \} = १\frac{१}{२}$ लाख योजन है।

गाथा ५/२५० प्रतीक रूप से,

$$\text{वर्णित वृद्धि का प्रमाण} = \frac{(३Dn - ३०००००) - \{\frac{३Dn}{२} - ३०००००\}}{२}$$

गाथा ५/२५१ प्रतीक रूप से वर्णित वृद्धि

$$= \frac{३}{४} Dn - \{ \frac{Dn - ८०००००}{१२} \}$$

वर्णित वृद्धियों के प्रकरण में व्यावहारिक उपयोग स्पष्ट नहीं है। द्वीप और समुद्रों के विस्तार १, २, ४, ८,............अर्थात् गुणोत्तर श्रेणी में दिये गये हैं। तथा द्वीपों के विस्तार १, ४, १६, ६४................भी गुणोत्तर श्रेणी में हैं जिसमें साधारण निष्पत्ति ४ है। इन्हीं के विषय में गुणोत्तर श्रेणि के योग निकालने के सूत्रों की सहायता से, भिन्न २ प्रकार की वृद्धियों का वर्णन दिया गया है।

गाथा ५/२५२ चतुर्थ पक्ष की वर्णित वृद्धि को यदि Kn माना जाए तो इच्छित वृद्धि वाले (nवें) समुद्र से, पहिले के समस्त समुद्रों सम्बन्धी विस्तार का प्रमाण $= \frac{Kn - २०००००}{२}$ होता है।

गाथा ५/२६१ जैसाकि पूर्व में बतलाया जा चुका है, nवें द्वीप या समुद्र का क्षेत्रफल $\sqrt{१०} \{ (Dnb)^२ - (Dna)^२ \}$ है।

इसी सूत्र के आधार पर विविध क्षेत्रफलों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है। यहाँ वर्णित क्षेत्रफल वृद्धिका प्रमाण

$$= \frac{३ (Dn - १०००००) \times ४ Dn}{(१०००००)^२}\ \text{है,}$$

जो जम्बूद्वीप के समान खंडों की संख्या होती है ।

गाथा ५/२६२ यहाँ लवण समुद्र का क्षेत्रफल $(१०)^{\frac{१}{२}}$ [६००] वर्ग योजन है जो जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल $(१०)^{\frac{१}{२}}$ [२५] वर्ग योजन से २४ गुणा है ।

इसीप्रकार अन्य द्वीप समुद्रों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य हैं ।

पुनः, पुष्करवर द्वीप का क्षेत्रफल $=(१०)^{\frac{१}{२}}\left[\left(\frac{६१०}{२}\right)^{२}-\left(\frac{२९०}{२}\right)^{२}\right]$ वर्ग योजन अथवा $(१०)^{\frac{१}{२}}$ [७२०००] वर्ग योजन है जो जम्बूद्वीप से २८८० गुणा है, तथा कालोदधि समुद्र की खण्ड शलाकाओं से चौगुना होकर ९६×२ अधिक है, अर्थात् २८८० $=(४\times६७२)+२$ (९६) है । सामान्यतः यदि किसी अधस्तन द्वीप या समुद्रकी खंड शलाकाएँ Ksn' मानली जायें जहाँ n' की गणना धातकी खंड द्वीप से आरम्भ हो तो, उपरिम समुद्र या द्वीप की खंडशलाकाओं की संख्या (४ × Ksn') $+२^{(n'-१)}$ (९६) होगी ।

यहाँ प्रक्षेप ९६ का मान निकालने का सूत्र निम्नलिखित है—

$$\text{प्रक्षेप } ९६=\frac{Ksn'}{\frac{Dn'}{१०००००}-१०००००}$$

इस सूत्र में Ksn' उस द्वीप या समुद्र की खंड शलाकाएँ हैं तथा Dn' विस्तार है ।

गाथा ५/२६३ जम्बूद्वीप के क्षेत्रफल से अल्प बहुत्व

जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल	$=(१०)^{\frac{१}{२}}$ (२५) वर्ग योजन	१ गुणा
लवणसमुद्र का क्षेत्रफल	$=(१०)^{\frac{१}{२}}$ (६००) वर्गयोजन	२४ गुणा
धातकी द्वीपका क्षेत्रफल	$=(१०)^{\frac{१}{२}}$ (३६००) वर्गयोजन	१४४ गुणा
कालोदधि समुद्रका क्षेत्रफल	$=(१०)^{\frac{१}{२}}$ (१६८००) वर्गयोजन	६७२ गुणा

यहाँ लवणसमुद्र की खंड शलाकाएं धातकीखंड द्वीप की शलाकाओं से (१४४–२४) या १२० अधिक हैं ।

कालोदधि की खंड शलाकाएं धातकीखंड तथा लवणसमुद्र की शलाकाओं से (६७२)–(१४४–२४) या ५०४ अधिक हैं ।

इस वृद्धिके प्रमाण को (१२०)×४+२४ लिखते हैं ।

इसप्रकार अगले द्वीप की इस वृद्धि का प्रमाण { (५०४)×४ }+(२×२४) } है

इसलिये यदि धातकीखंड से n' की गणना प्रारंभ की जाये तो इष्ट n' वें द्वीप या समुद्र की खंड शलाकाओं की वर्णित वृद्धि का प्रमाण प्रतीकरूप से

$$\left\{ \left(\frac{Dn'}{१००००००} \right)^२ - १ \right\} \times ८ \text{ होता है।}$$

यहाँ Dn' जो है वह n' वें द्वीप या समुद्र का विष्कम्भ है। यह प्रमाण उस समान्तरी गुणोत्तर श्रेणी (Arithmetico-geometric series) का n' वाँ पद है, जिसके उत्तरोत्तर पद पिछले पदों के चौगुनेसे क्रमश: $२४ \times २^{n'-१}$ अधिक होते हैं। यह आधुनिक arithmetico-geometric series से भिन्न है।

Dn' स्वत: एक गुणोत्तर संकलन का निरूपण करता है जो ८ से प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर १६, ३२, ६४, १२८ आदि हैं। वृद्धि के प्रमाण को n' वाँ पद, मानकर बनने वाली श्रेणी अध्ययन योग्य है। इस पदका साधन करने पर

$$\left\{ \frac{(Dn'+१०००००)(Dn'-१०००००)}{(१०००००)^२} \right\} \times ८ \text{ प्रमाण प्राप्त होता है।}$$

गाथा ५/२६४ यहाँ n' वें द्वीप या समुद्र से अधस्तन द्वीप समुद्रों को सम्मिलित खंडशलाकाओं के लिए ग्रंथकार ने निम्नलिखित सूत्र दिया है—

$$\text{उक्त प्रमाण} = \left[\frac{Dn'}{२} - १००००० \right] \times \left[Dn' - १००००० \right] \div १२५०००००००००$$

यहाँ n' की गणना धातकीखड द्वीपसे आरम्भ करना चाहिए। यह प्रमाण दूसरी तरह से भी प्राप्त किया जा सकता है।

गाथा ५/२६५ अतिरिक्त प्रमाण ७४४ $\frac{K_{n'}}{Dn' \div २०००००}$

गाथा ५ २६६ यहाँ $९\, Dn\, (Dn - १०००००) = ३ \left[\left(\frac{Dnb}{२} \right)^२ - \left(\frac{Dna}{२} \right)^२ \right]$

गाथा ५/२६८ n वें द्वीप या समुद्र से अधस्तन द्वीप-समुद्रों के पिंडफल को लाने के लिए गाथा को प्रतीकरूपेण निम्नप्रकार प्रस्तुत किया जा सकेगा—अधस्तन द्वीप-समुद्रों का सम्मिलित पिंडफल $= [Dn - १०००००] [९ (Dn - १०००००) - ९०००००] \div ३$ दूसरी विधि से इसका प्रमाण

$$३ \left(\frac{Dna}{२} \right)^२ \text{ आयेगा।}$$

गाथा ५/२७१ अधस्तन समस्त समुद्रों के क्षेत्रफल निकालने के लिए गाथा दी गई है। चूंकि द्वीप ऊनी (अयुग्म) संख्या पर पड़ते हैं इसलिए हम इष्ट उपरिम द्वीप को (२ n-१) वाँ मानते हैं। इसप्रकार, अधस्तन समस्त समुद्रों का क्षेत्रफल —

$=[D_{2n-1} - ३०००००][९(D_{2n-1} - १०००००) - ९०००००] \div १५$
प्राप्त होगा। यह सूत्र महत्वपूर्ण है।

गाथा ५/२७४ जब द्वीप का विष्कम्भ दिया गया हो, तब इच्छित द्वीप से (जम्बूद्वीप को छोड़कर) अधस्तन द्वीपों का संकलित क्षेत्रफल निकालने का सूत्र यह है—

$(D_{2n-1} - १०००००) [(D_{2n-1} - १०००००) ९ - २७०००००] \div १५$

यहाँ D_{2n-1}, २n-१ वीं संख्या क्रम में आने वाले द्वीप का विस्तार है।

गाथा ५/२७६ धातकी खंड द्वीपके पश्चात् वर्णित वृद्धियाँ त्रिस्थानोंमें क्रमशः

$\frac{Dn'}{२} \times २, \frac{Dn'}{२} \times ३, \frac{Dn'}{२} \times ४$ होती हैं जब कि गणना n' की धातकी खंडद्वीप से प्रारंभ होती है।

गाथा ५/२७७ अधस्तन द्वीप या समुद्र से उपरिम द्वीप या समुद्र के आयाम में वृद्धि का प्रमाण प्राप्त करने के लिए सूत्र दिया गया है। यहाँ n' की गणना धातकीखंड द्वीप से प्रारम्भ होती है। प्रतीक रूपेण आयामवृद्धि= $\frac{Dn'}{२} \times ९००$ है।

गाथा ५/२८० आदि

यहाँ से कायमार्गणा स्थान में जीवों की संख्या प्ररूपणा, संदृष्टियों के द्वारा दी गई है। संदृष्टियों का विशेष विवरण पं० टोडरमल की गोम्मटसार की सम्यक्ज्ञान चद्रिका टीका के संदृष्टि अधिकार में विशेष रूपसे स्पष्ट कर लिखी गई है। संदृष्टियों में संख्या प्रमाण तथा उपमा प्रमाण का उपयोग किया गया है जो दृष्टव्य है। इसीप्रकार आगे इंद्रिय मार्गणा की संख्या प्ररूपणा भी की गयी है। इनके मध्य अल्पबहुत्व भी दृष्ट्वा है जो संदृष्टियों में दिया गया है।

गाथा ५/३१८ इस गाथा के पश्चात् अवगाहना के विकल्प का स्पष्टीकरण दिया गया है। धवला टीका में भी इस प्रकरण को देखना चाहिए।

गाथा ५/३१९-३२० शंख क्षेत्र का गणित इस गाथा में है जो माधवचन्द्र त्रैविद्य की त्रिलोकसार की संस्कृत टीका में सविस्तार दिया है। शंखावर्त क्षेत्र का घनफल ३६५ घन योजन निकाला गया है इसकी वासना माधवचन्द्र त्रैविद्य ने प्रस्तुत की है जिसे पूज्य आर्यिका माता विशुद्धमतीजी ने विशेष विस्तार के साथ स्पष्ट की है। *

यहाँ सूत्र यह है : क्षेत्रफल=

---

* देखिये त्रिलोकसार, श्रीमहावीरजी, वी० नि० सं० २५०१, गाथा ३२७, पृ० २७२-२७६।

$$[\ (\text{लम्बाई})^२ - (\frac{\text{मुख व्यास}}{२}) + (\frac{\text{मुख व्यास}}{२})^२\ ] \times \frac{२}{४} =$$

पुनः घनफल निकालने हेतु

बाहल्य=[(आयाम मुख)+आयाम]÷मुख

यहाँ लम्बाई या आयाम=१२ योजन

मुख=४ योजन

.: क्षेत्रफल=७३ वर्ग योजन और बाहल्य=५ योजन
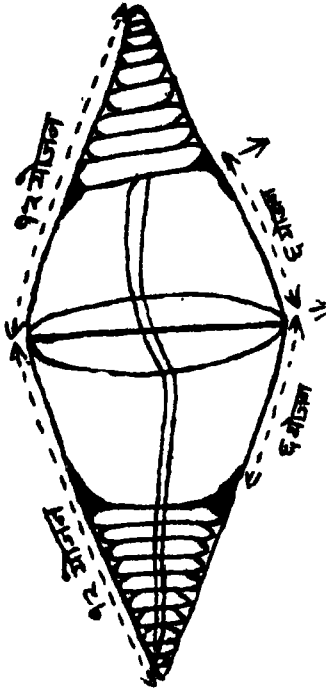
इसलिए शंख क्षेत्र का घनफल=७३×५ घन योजन=३६५ घनयोजन

मुख व्यास ४ योजन

शंख को पूर्ण मुरजाकार नहीं माना गया है इसलिए उसमें से क्षेत्र $(\frac{५}{४})^२$ घटा देना चाहिये

$$\text{मध्यभाग} = \frac{१२+४}{२} = ८ \text{ योजन}$$

जो दो खंड दिख रहे हैं उनमें एक को ग्रहणकर क्षेत्रफल निकालना चाहिए। उपर्युक्त घटाया खंड भी आधा याने $(\frac{५}{२})^२$ हो जाता है।

परिधि=४×$\sqrt{१०}$ =४[३+$\frac{१}{६}$]=४×$\frac{१९}{६}$=१२$\frac{२}{३}$ यो०
=१२$\frac{३}{६}$
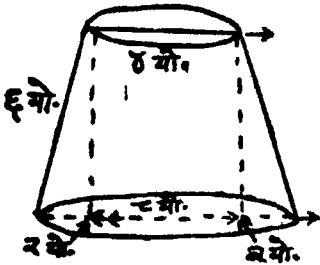
परिधि=८×$\sqrt{१०}$=२४$\frac{८}{६}$=२४$\frac{४}{३}$ योजन

जैन ग्रन्थों में चूंकि $\sqrt{१०}$ का मान (३+$\frac{१}{६}$) दिया गया है, अथवा $\frac{१९}{६}$ माना गया है जैसे $\sqrt{१०}$ = $\sqrt{९} + \frac{१}{२\times\sqrt{९}}$ = ३$\frac{१}{६}$ = $\frac{१९}{६}$

उपरोक्त आकृति तल को पसारते हैं ताकि वह तल समलम्ब चतुर्भुज के रूप में आजाये:—
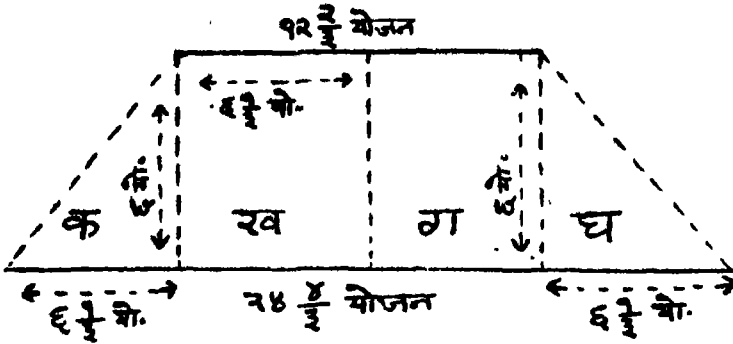
यहाँ ४ आकृतियाँ क्रमशः क ख ग घ प्राप्त होती हैं जिनमें क = घ और ख = ग हैं।

क और घ को समामेलित करने पर एक चतुर्भुज प्राप्त हो जाता है जो ख और ग के समान होता है। इनमें से $\frac{१}{३}$ योजन वाली पट्टियाँ अलग तथा १२ योजन वाली पट्टी अलग करने पर तथा ६ योजन वाली पट्टी अलग करने पर
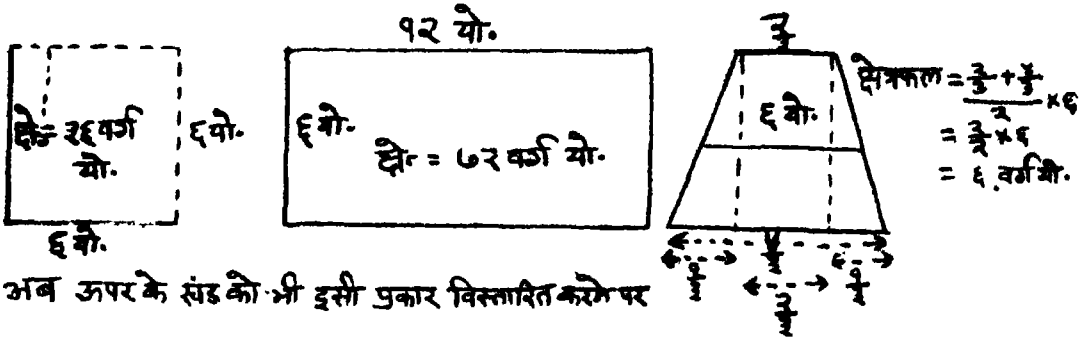
क्षे० = ३६ वर्ग यो.
६ यो.
६ यो.

१२ यो.
६ यो.
क्षे० = ७२ वर्ग यो.

क्षेत्रफल $= \frac{\frac{२}{३} + \frac{१}{३}}{२} \times ६$
$= \frac{१}{२} \times ६$
$= ३$ वर्ग यो.

अब ऊपर के खंड को भी इसी प्रकार विस्तारित करने पर

प्राप्त होगी जिसमें से

क्षे० = ३६ वर्ग यो.
६ यो.
६ यो.

का वर्ग तथा

६ १/३ यो.
६ १/३ यो.
६ यो.
१२ २/३ यो.

एक पट्टी प्राप्त होगी।

६ यो.
क्षेत्रफल = $\frac{१}{३} \times ६ = २$ वर्ग यो.
$\frac{१}{३}$
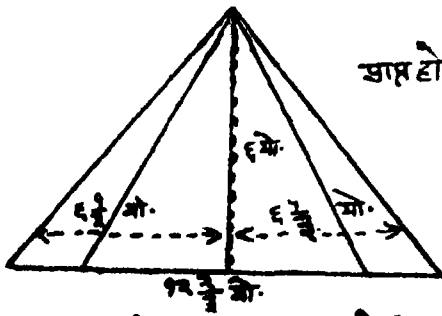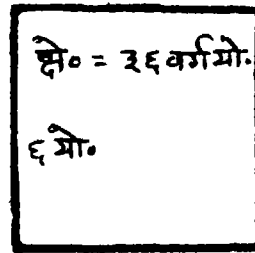
इस प्रकार यहाँ सर्वप्रथम ध्यान ३६ + ७२ + ३६ = १४४ वर्ग योजन की ओर दिया है। ६ वर्ग योजन को अलग करते हुए केवल २ वर्ग यो० को गणना में लेकर १४४ + २ = १४६ वर्ग योजन क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

इसीप्रकार नीचे के शेष अर्द्ध भाग का क्षेत्रफल भी १४६ वर्ग योजन होगा। कुल १४६ × २ = २९२ वर्ग योजन होगा। इसमें प्रत्येक खंड का वेध $\frac{५}{४}$ मानते हुए २९२ × $\frac{५}{४}$ = ७३ × ५ = ३६५ घनयोजन घनफल प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि पर्त का वेध प्रत्येक खंड में $\frac{५}{४}$ योजन लिया गया है और ऐसे ही पर्त से शंख क्षेत्र को निर्मित माना गया है।

पद्म के आकार के क्षेत्र का घनफल निकालने के लिए बेलनाकार ठोस का सूत्र $\pi r^2 h$ का उपयोग किया गया है। यहाँ π का मान ३, २ r का मान व्यास १ योजन है तथा उत्सेध h का मान १०००$\frac{१}{२}$ योजन है।

महामत्स्य की अवगाहना, आयतन (cuboid) के आकार का क्षेत्र है जहाँ घनफल = लम्बाई × चौड़ाई × ऊँचाई होता है।

भ्रमर क्षेत्र का घनफल निकालने के लिए बीच से विदीर्ण किये गये अर्द्ध बेलन के घनफल को निकालने के लिए उपयोग में लाया गया सूत्र दिया है जिसमें π का मान ३ लिया गया है। आकृतियाँ मूल ग्रन्थ में देखिये, अथवा "तिलोय पण्णत्ती का गणित" में देखिये।

सातवाँ महाधिकार

गाथा ७/५-६

ज्योतिषी देवों का निवास जम्बूद्वीप के बहु मध्यभाग में प्रायः १३ अरब योजन के भीतर नहीं है। उनकी बाहरी सीमा = ४९।११० योजन दी गई है जो एक राजु से अधिक प्रतीत होती है। जहाँ बाहरी सीमा १ राजु से अधिक है उस प्रदेश को अगम्य कहा गया है। ज्योतिषियों का निवास शेष गम्य क्षेत्र में माना गया है। प्रतीक से लगता है कि ११० का भाग है किंतु शब्दों में उसे गुणक बतलाया गया है।

वह अगम्य क्षेत्र में समवृत्त जम्बूद्वीप के बहुमध्यभाग में भी स्थित है। यह १३०३२९२५०१५ योजन है।

गाथा ७/११ सम्पूर्ण ज्योतिषी देवों की राशि $\frac{(\text{जग श्रेणी})^२}{६५५३६ (\text{वर्ग अंगुल})}$ है।

यहाँ २५६ अंगुलों का वर्ग ६५५३६ वर्ग अंगुल बतलाया गया है। प्रतीक में

$\overline{\overline{४}}$।६५५३६ दिया है, जहाँ ४ प्रतरांगुल का प्रतीक है।

गाथा ७/११७ आदि

जितने वलयाकार क्षेत्र में चन्द्रबिम्ब का गमन होता है उसका विस्तार ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन है। इसमें से वह १८० योजन जम्बूद्वीप में तथा ३३०$\frac{४८}{६१}$ योजन लवण समुद्र में रहता है। एक लाख

योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप के मध्य में १०००० योजन विस्तार वाला सुमेरु पर्वत है। चन्द्रों के चार क्षेत्र में पन्द्रह गलियाँ हैं, जिनमें प्रत्येक का विस्तार $\frac{५६}{६१}$ योजन है। यह गमन वृत्ताकार वीथियों में होता बतलाया गया है जिनके अंतराल ३५$\frac{२१४}{४२७}$ योजन हैं। वलयाकार-क्षेत्र का विस्तार ५१०$\frac{४८}{६१}$ योजन है। इनसे परिधि आदि प्राप्त होती है, परन्तु गमन वास्तव में समापन एवं असमापन कुंतल में होता होगा। π का मान $\sqrt{१०}$ ही लिया गया है।

गाथा ७/१७९ जब त्रिज्या बढ़ती है तो परिधि पथ बढ़ जाता है किन्तु नियत समय में वह पथ पूर्ण करने हेतु चन्द्र व सूर्य दोनों की गतियाँ शीघ्र होती हैं, जिससे वे समानकाल में असमान परिधियों का अतिक्रमण कर सकें। उनकी गति काल के असंख्यातवें भाग में समान रूप से बढ़ती होगी।

गाथा ७/१८६ चंद्रमा की रैखीयगति अंत: वीथी में स्थित होने पर १ मुहूर्त में ३१५०८९ ÷ ६२$\frac{२३}{२२१}$ = ५०७३$\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन होती है।

गाथा ७/२०१ चंद्रमा की कलाओं तथा ग्रहण को समझाने हेतु चन्द्र बिंब से ४ प्रमाणांगुल नीचे कुछ कम १ योजन विस्तारवाले काले रंग के दो प्रकार के राहुओं (दिन राहु और पर्व राहु) की कल्पना की गई है। राहु के विमान का बाहल्य $\frac{२५०}{१०००}$ योजन है। राहु की गति और चंद्र गति के वैशिष्ट्य पर कलाएँ प्रकट होती हैं।

गाथा ७/२१३ चंद्र दिवस का प्रमाण ३१$\frac{१३}{६२}$ माना गया है।

गाथा ७/२१६-२१७ पर्वराहु का गतिविशेषों से चांद की गति से मेल होने पर चंद्र ग्रहणादि होते माना गया है।

गाथा ७/२२८ चन्द्र जैसा विवरण सूर्य का है।

गाथा ७/२७६ सूर्य की मुख्यतः १९४ परिधियों या अक्षांशों में स्थित प्रदेशों एवं नगरियों का वर्णन मिलता है।

गाथा ७/२७७ जब सूर्य प्रथम पथ में रहता है तब समस्त परिधियों में १८ मुहूर्त का दिन तथा १२ मुहूर्त की रात्रि होती है। यह स्थान कश्मीर के उत्तर में होना चाहिए क्योंकि भिन्न भिन्न अक्षांशों में यह समय बदलता है। ठीक इसके विपरीत बाह्य पथ में सूर्य के स्थित होने पर होता है।

शेष विवरण स्पष्ट हैं।

ज्योतिषबिम्बों के प्रमाण की गणना, जघन्य परीतासंख्यात निकालने की गणना, पल्य राशि की गणना के लिए "तिलोयपण्णत्ती का गणित" पृ० ९९ से लेकर पृ० १०४ तक द्रष्टव्य है।

उपर्युक्त गणित का किंचित्स्वरूप पूज्य आर्यिका विशुद्धमती माताजी के निर्देशानुसार प्रस्तुत परम्परानुसार चित्रित किया है। कई स्थलों पर मूल ग्रंथों के अभिप्राय समझने में अभी हम असमर्थ हैं और वे बहुश्रुतधारी मुनिवरों के द्वारा आगामी काल में शोध द्वारा निर्णीत किये जायेंगे, ऐसी आशा है। परम पूज्य माताजी ने कई स्थलों पर अपनी प्रज्ञा से स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया है जो दृष्टव्य है।

❖

जम्बूद्वीप के क्षेत्रों और पर्वतों के क्षेत्रफलों की गणना

लेखक—प्रो० डॉ० राधाचरण गुप्त
बी० आइ० टी०, मेसरा, रांची-८३५ २१५

आर्यिका विशुद्धमतीजी की भाषा टीका के साथ यतिवृषभाचार्य रचित **तिलोयपण्णत्ती** (**त्रिलोक प्रज्ञप्ति**) का नया संस्करण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा द्वारा आंशिकरूप में प्रकाशित हो चुका है। इसके प्रथम खण्ड (१९८४) में तीन अधिकार और दूसरे खण्ड (१९८६) में चतुर्थ अधिकार छप चुका है जो कि गणित की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चौथे अधिकार की गाथाओं २४०१ से २४०६ (पृष्ठ ६३६ से ६३९ तक) में जो विभिन्न क्षेत्रों के मान और उनके निकालने की विधि दी गई है उन्हीं का विस्तृत विवेचन इस लेख में किया जा रहा है।

वृत्ताकार जम्बूद्वीप को पूर्व से पश्चिम तक १२ समानान्तर सीमा रेखाएँ खींचकर १३ भागों में बाँटा गया है जिनमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत नामके ७ क्षेत्र तथा उनको एक दूसरे से अलग करने वाले हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी नामके ६ पर्वत हैं (खण्ड दो, पृष्ठ ३३ पर दी गई तालिका देखें)। जम्बूद्वीप के दक्षिणी बिन्दु से आरम्भ करके उपर्युक्त ७ क्षेत्रों और उनके बीच-बीच में स्थित ६ पर्वतों का विस्तार क्रमशः १, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, ३२, १६, ८, ४, २ तथा १ शलाकाएँ हैं जहाँ एक शलाका का मान $= \frac{१०००००}{१९०} = ५२६ \frac{१०}{१९}$ योजन है।

क्योंकि—

१+२+४+८+१६+३२+६४+३२+१६+८+४+२+१=१९० तथा जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन है (जिसे १९० शलाकाओं में विभाजित मान लिया गया है)।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि जम्बूद्वीप का पूर्व से पश्चिम तक खींचा गया व्यास मध्यवर्ती विदेह क्षेत्र के दो बराबर भाग करता है जिन्हें उत्तरविदेह और दक्षिणविदेह कहा जायगा। यह भी स्पष्ट है कि भरत, हिमवान, हैमवत, महाहिमवान्, हरि, निषध तथा दक्षिणविदेह की उत्तरी सीमाएँ जम्बूद्वीप के दक्षिणी चाप के साथ मिलकर विभिन्न धनुषाकार क्षेत्र (सेगमेन्ट) बनाते हैं जिनकी ऊँचाइयाँ क्रमशः १, ३, ७, १५, ३१, ६३ व ९५ शलाकाएँ होंगी (जिनमें से अन्तिम ऊँचाई व्यासार्ध के बराबर है)। प्राचीन ग्रंथों में धनुषाकार क्षेत्र की ऊँचाई को इषु या बाण कहा गया है।

'तिलोयपण्णत्ती' के चतुर्थ महाधिकार की गाथा १८३ (देखिए खण्ड २, पृष्ठ ५१) में धनुषाकार क्षेत्र की जीवा निकालने का यह सूत्र दिया गया है—

जीवा = $\sqrt{४ [(\text{व्यासार्ध})^२ - (\text{व्यासार्ध} - \text{इषु})^२]}$

इसीका सरल रूप होगा—

जीवा = $\sqrt{४ \text{ इषु } (\text{व्यास} - \text{इषु})}$ ....(१)

इसका प्रयोग करके भरत क्षेत्र की जीवा का प्रमाण—

$= \sqrt{४ \times \frac{१००००}{१९} \times \left(१००००० - \frac{१००००}{१९}\right)}$

$= \sqrt{(७५६ \times १००००, ००००)} / १९$

$= \sqrt{(२७४९५४)^२ + २९७८८४} / १९$

$= (२७४९५४.५४) / १९$ लगभग ।

यदि ऊपर की गई गणना में वर्गमूल केवल पूर्ण अंकों तक ही ग्रहण किया जाय तो जीवा का मान (दशमलव वाला भाग छोड़ देने पर)

$= \frac{२७४९५४}{१९} = १४४७१ \frac{५}{१९}$ योजन होता है ।

भरत क्षेत्र की उत्तरी जीवा का यही प्रमाण तिलोयपण्णत्ती, चतुर्थ महाधिकार की गाथा १९४ (देखिये खण्ड २, पृष्ठ ५६) में दिया गया है । इसी प्रकार सूत्र (१) को लगाकर हम जम्बू-द्वीप के दक्षिणार्ध में स्थित विभागों से बने धनुषाकार क्षेत्रों की जीवाएँ निकाल सकते हैं और यदि प्रत्येक बार हर में १९ अलग करके अंश (न्यूमेरेटर) का वर्गमूल केवल पूर्णांकों तक निकालें तो हमें निम्नलिखित तालिका प्राप्त हो जायगी—

तालिका १ (जीवाएँ)

क्र० सं०	विभाग	विस्तार (शलाका)	इषु (शलाका)	उत्तरी जीवा (योजन)
१	भरत क्षेत्र	१	१	$१४४७१ + \frac{५}{१९}$
२	हिमवान् पर्वत	२	३	$२४९३२ + \frac{१}{१९}$
३	हैमवत क्षेत्र	४	७	$३७६७४ + \frac{१६}{१९}$
४	महा हिमवान् प०	८	१५	$५३९३१ + \frac{६}{१९}$
५	हरि क्षेत्र	१६	३१	$७३९०१ + \frac{१७}{१९}$
६	निषध पर्वत	३२	६३	$९४१५६ + \frac{२}{१९}$
७	दक्षिण विदेह क्षे०	६४/२	९५	$१००००० + ०$

'तिलोयपण्णत्ती' के चतुर्थ महाधिकार की गाथा १६४७ में हिमवान् की उत्तर जीवा का कलात्मक मान एक (यानी १/१९) है और गाथा १७२२ में हैमवत की उत्तर जीवा का कलात्मक मान "किंचूण सोलस" अर्थात् (१६ से कुछ कम) है। अन्य सब मान ग्रंथ के अनुकूल हैं (देखिये गाथाएँ १७४२, १७६३, १७७५ तथा १७९८)। लेकिन हमने तालिका में दी गई जीवाओं को प्राप्त करने में वर्गमूल निकालते समय पूर्णांकों के बाद शेष भाग (चाहे वह आधा या उससे अधिक भी क्यों न हो) छोड़ने की समाननीति अपनाई है और इसी नीति को अपनाकर अब हम क्षेत्रफल निकालेंगे जो कि ग्रंथ में दिये गये मानों से पूर्णतया मिल जाते हैं।

धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये 'तिलोयपण्णत्ती' (देखिये गाथा २४०१) में निम्नलिखित सूत्र दिया गया है।

$$\text{क्षेत्रफल (सूक्ष्म)} = \sqrt{१० \; (\text{जीवा} \times \text{इषु}/४)^२} \qquad \ldots\ldots(२)$$

इसका उपयोग करने पर भरतक्षेत्र का क्षेत्रफल

$$= \sqrt{(१०/१६) \times (२७४६५४/१९)^२ \times (१००००/१९)^२}$$

$$= (\sqrt{४७२४,\, ६८१३,\, ८२२५ \times १०^८}\,)\, /\, ३६१$$

$$= (\,२१,\, ७३७०,\, २२२६\,)\, /\, ३६१$$

जहाँ हमने अंश का वर्गमूल केवल पूर्णांकों तक ही निकालकर शेष भाग छोड़ दिया है।

इसप्रकार भरत क्षेत्र का क्षेत्रफल

$$= ६०२,\, १३३५ + २१४/३६१ \; (\text{वर्ग योजन})$$

जो कि ग्रंथ की गाथा २४०२ (खंड २, पृ० ६३६) में दिये गये मानके समान है।

ठीक इसी प्रकार सूत्र (२) का उपयोग करके और वर्गमूल निकालने में वही नीति अपनाकर हमने भरत तथा हिमवान् आदि से बने अन्य धनुषाकार क्षेत्रों का क्षेत्रफल निकाला है। यहाँ प्राप्त किये गये मान निम्नलिखित तालिका २ में दिये जा रहे हैं।

तालिका २ (क्षेत्रफल)

क्र.सं.	विभाग	सम्मिलित धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल	विभाग का क्षेत्रफल
१	भरत	६०२, १३३५ + २६४/३६१	६०२, १३३५ + २६४/३६१
२	हिमवान्	३११२, १८०५ + ८८/३६१	२५१०, ०४६९ + १५५/३६१
३	हैमवत	१, ०९७३, २५०२ + २५/३६१	७८६१, ०६९६ + २६८/३६१
४	महाहिमवान्	३, ३६६०, ३५४२ + १४६/३६१	२, २६८७, १०४० + ३२४/३६१
५	हरि	९, ५३२४, ३१०९ + २६०/३६१	६, १६६३, ९५६६ + २७२/३६१
६	निषध	२४, ६८१७, २१२३ + २११/३६१	१५, १४९२, ९०१३ + ३१२/३६१
७	दक्षिण विदेह	३९, ५२८४, ७०७५	१४, ८४६७, ४९५१ + १७०/३६१

विभागीय क्षेत्रफलों का योग ३९, ५२८४, ७०७५

नोट—जम्बूद्वीप के उत्तरार्ध में स्थित ऐरावत क्षेत्र से उत्तरविदेह तक के सात विभागों का क्षेत्रफल भी क्रमश: यही होगा।

ध्यान रहे कि तालिकाओं में उल्लिखित भरत से दक्षिण विदेह तक के सात विभाग मिलकर जो धनुषाकार क्षेत्र बनाते हैं वह जम्बूद्वीप का दक्षिणार्ध है और जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल 'तियोयपण्णत्ती' चतुर्थ महाधिकार की गाथा ५९ (देखिये पृष्ठ १७) में ७९ ०५६९ ४१५० वर्गयोजन पहले ही दिया जा चुका है (यही प्रमाण बाद में गाथा २४०९ में भी आया है)। अत: सातों विभागों से बने सम्मिलित धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल ऊपर के मान का आधा होगा जो कि तालिका २ में दिया गया है। इसके लिए सूत्र (२) के उपयोग की आवश्यकता फिर से नहीं है।

दूसरी बात यह है कि छपे ग्रन्थ में हमें महाहिमवान् पर्वत का क्षेत्रफल उपलब्ध नहीं है क्योंकि तत्सम्बन्धी गाथा हस्तलिखित पोथी में कीड़ों ने खाली है (देखिए पृष्ठ ६३७ पर दिया नोट) बाकी सब निकाले गए क्षेत्रफल 'तिलोयपण्णत्ती' की गाथाओं (२४०२ से २४०७) में दिये गये मूल मानों से पूर्णतया मेल खाते हैं। इससे स्पष्ट है कि हमारी विधि ठीक है और सम्भवत: यही विधि प्राचीनकाल में अपनाई गई थी। हाँ, लिखने की विधि या व्यावहारिक कार्य प्रणाली चाहे भिन्न रही हो। एक बात और स्पष्ट है, तालिका १ में दिये गए जीवाओं के मान ही सम्भवत: मूल ग्रंथ में थे। एक या दो स्थानों में भिन्नता सुधार की दृष्टि से किये गए बाद के परिवर्तन के कारण हों।

इस लेख की सामग्री लेखक के उस संक्षिप्त लेख से मिलती जुलती है जो कि कुछ समय पहले अंग्रेजी में लिखा गया था और अब गणित-भारती नामकी पत्रिका के खंड ९ (१९८७) में प्रकाशित है। *

विषयानुक्रम

विषय	गाथा/पृ० सं०

षष्ठ महाधिकार

(गाथा १–१०३ पृष्ठ २१५–२४१)

सप्तम महाधिकार

(गाथा १–६२४, पृष्ठ २४२-४४२)

विषय	गाथा/पृ० सं०

तिलोयपण्णत्ती तृतीय खंड (द्वितीय संस्करण) १९९७ ई०

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
३	३	नोट-किन्तु देखे इसी अधिकार की २७ वीं गाथा	इसे निरसत समझें
८	२	समुद्रों के विस्तार प्रमाण	समुद्रों के विस्तार का प्रमाण।
११	२-३-४-६-७	की अंतिम संख्या के आगे	योजन पढ़े।
१२	१	घात की खण्ड की	घात की खण्ड द्वीप की
१२	३	कालो दधि की	कालो दधि समुद्र की
१३१	१४	स्वयंभूरमण द्वीप से अधस्तन द्वीपों का	स्वयं भू रमण द्वीप से अधस्तन समस्त द्वीपो का
२२१	१	पंचमोमहाहियारो	छट्ठो महाहियारो
२२३	१	,,	,,
२२५	१	,,	,,
२२६	१	,,	,,
२२७	१	,,	,,
२२९	१	,,	,,
२३१	१	,,	,,
२३३	१	,,	,,
२३५	१	,,	,,
२३५	१२	आकाशोत्पन्न व्यंतर दव	आकाशोत्पन्न व्यंतर देव
२३६	१	पंचमोमहाहियारो	छट्ठोमहाहियारो
२३७	८	प्राहार प्ररूपणा	आहार प्ररूपणा
२३८	१	पंचमो महाहियारो	छट्ठो महाहियारो
२३९	२१	जगच्छेणी का चिन्ह और	जगच्छेणी का चिन्ह-है और
२४१	१	पंचमो महाहियारो	छट्ठो महाहियारो
२४३ से २८७	१	,,	सप्तमो महाहियारो
२९१	तालिका में न १० के	१· कु० कम अन्तिम से प्रथम पंक्ति में	१
२९१	तालिका में नं २० में	अन्तिम में कु० कम १	०
२९७	८	अन्तराल जानना	अन्तराल दो योजन जानना

३११	८	सूर्य १ मुहत में	सूर्य १ मुहर्त में
३३१	१०	८१७७८ $\frac{१६२५}{२९२८}$	८१७७८ $\frac{८१२५}{१४६४०}$
३४५	३	विवक्षित परिधि क्षत्र	विवक्षित परिधि क्षेत्र
४३३	६	आदि धन और उत्तर के	आदि धन और उत्तर धन के।
४५४	११	उणवीसं	उणतीसं
४६०	तालिका की छ पंक्ति	२६५४३३८ $\frac{२२}{३१}$	२६५४८३८ $\frac{२२}{३१}$
४७२	१९	योजनों से रहित डढ (१ $\frac{१}{२}$)	योजनों से रहित डेढ (१ $\frac{१}{२}$)
४८०	१०	अनुदिशों में (१x४=) ४ आदि धनों	अनुदिशों में (१x४=)४ अनुत्तरों में (१x४=) ४
४८२	अन्तिम पंक्ति के पश्चात् यह पंक्ति और छापनी है।		अनुत्तरों में श्रेणीबद्ध =[(४x२+४)-(१x४)] x $\frac{१}{२}$ = ४ हैं।
४९१	५	असख्यत विस्तार वाले	असंख्यात योजन विस्तार वाले।
५००	८	इन सात सेनाओं में से प्रत्येक सात सात	इन सात सेनाओं में से प्रत्येक सेना सात सात
५०३	२ कालम ४	८०००	८००००
५२३	५ कालम १०	देवियाँ	देवियों का
५२३	७ कालम ४ से ११	४ ६०० ५ ६०० ६ ५०० ७ ५०० ८ ४०० ९ ३०० १० २०० ११ १५०	४ ५०० ५ ५०० ६ ४०० ७ ४०० ८ ३०० ९ २०० १० १०० ११ ५०
५२८	चार्ट की ९ वीं १० वी पंक्ति कालम ५	गा ३४९-५० में इन दोनो कल्पो संख्या आदि	गा० ३४९-५० में इन दोनो कल्पनों में वृन्दव की की सख्या आदि

५२८	चार्ट की १२ वीं कालम ५		१५-१४-१३-१२
५३०	१०	और बीस हजार (२००००)	और बीस हजार (२०००००) योजन
५३१	३	५०। २५ २५/२	५०। २५। २५/२
५३४	२१	६००। ५००। ४००	६००। ५००। ४५०
५४८	४	योजन जाकर इन्द्रों में	योजन जाकर इन्द्रों के
५५७	२०	अर्थ-अंक क्रम से	अर्थ-अंक क्रम से
५५७	२६	इतने पल्य और दो कला	इतने भल्य और एक कला।
५६१	६	(१५३३३३३३३३३३३३३३ पल्य)	१५३३३३३३३३३३३३३३ १/३ पल्य)
५६३	१७	सागरोपम अँर चार विभक्त	सागरोपम और चार से विभक्त
५६९	६	अर्थात सौ० १, मन २,	अर्थात् सौ० १, सान० २,
५८१	तालिका में सन्तकुमार कल्प वाली पक्ति	९ २/३ मुहुर्त	९ २/३ दिन
५८१	माहेन्द्र कल्प वाली पंक्ति	१२ १/३ मुहुर्त	१२ १/३ दिन
५९१	२०	जय जय शब्द उच्चरित करत हैं।	जय जय शब्द उच्चरित करते है।
५९६	११	छेदे हुए यव क्षत्र के	छेदे हुये यव क्षेत्र के
५९६	१८	–जगदीए तह यह	–जगदी तह य
५९९	८	वृष कोष्ठ (वृष भष्ठ)	वृष कोष्ठ (वृष भेष्ठ)
६०६	अन्तिम	सिद्धक्षेत्र की परिधि मनुष्य क्षत्र की	सिद्धक्षेत्र के परिधि मनुष्य क्षेत्र की।
६०९	१३	पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा भार्गणा	पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा, मार्गणा।
६०९	१३	गुणस्थान, जीव समाज।	,गुणस्थान, जीव समास,
६१०	अन्तिम	एव अनाहरक होते हैं।	एवं अनाहारक होते है।
६१४	८	तथा ध्रुव भागहार का प्रमाण है।	तथा ध्रुव भागहार का प्रमाण १/५ है।

६२०	५	उत्कृष्ठ अवगाहना ५२५ है।	उत्कृष्ठ अवगाहना ५२५ धनुष है।
६३७	गाथा ८ की पहली पंक्ति का अन्तिम शब्द	मै ऽ भूत्।	मे ऽ भूत्।
६३८	गा० १५ की दूसरी पंक्ति का अन्तिम शब्द	विदधात्य सां।	विद्धात्य ऽ सौ।
६४०	गाथा नं. ४६ की दूसरी पंक्ति का अन्तिम शब्द	यानात्परि रक्षणीयम्	यत्नात्परिरक्षणीयम्

तिलोय पण्णत्ती ग्रन्थराज की टीका कर्त्री

आर्यिका विशुद्धमती माताजी

नीरज जैन

विदुषी आर्यिका पूज्य १०५श्री विशुद्धमती माताजी गृहस्थावस्था की हमारी छोटी बहिन थी। गुरुवर १०५श्री गणेशप्रसादजी वर्णी का हमारे परिवार पर वात्सल्यपूर्ण स्नेह रहा है। वे रीठी पधारते तब हमारे घर ही ठहरते थे इस कारण घर का वातावरण ऐसा रहा जिसमें हमें बचपन से धार्मिक संस्कार मिलते रहे हैं। पूर्व जबलपुर (अब कटनी) जिले के अंतर्गत कटनी से केवल तीस किलोमीटर पर रीठी एक छोटा सा गाँव है। इसी गाँव में हमारे पिता श्री लक्ष्मणलाल सिंघई व्यापार करके अपने परिवार का पोषण करते थे। वे जैन दर्शन के स्वाध्यायी विद्वान और पं. दौलतरामजी की छहढाला के मर्मज्ञ थे। उन्होंने बचपन में ही हमें छहढाला कण्ठस्थ करा दी थी। वे कुशल वैद्य थे, जीवन भर स्वयं घर में बनवाकर औषधियों का नि:शुल्क वितरण करते रहे। पिताजी गाँधीवादी विचार धारा के पोषक थे। सरकारी आतंक के उस युग में भी काँग्रेस के प्रचारकों के लिये हमारे घर का द्वार सदा खुला रहता था। इसके लिये हमारे परिवार को कई बार मुश्किलों का सामना करना पडा और हानि भी उठानी पडी। १९४२ मे हमें भी कुछ दिनों जेल की हवा खाना पडी।

इसी छोटे से गाँव में १२ अप्रेल १९२९ को हमारी अनुजा सुमित्रा का जन्म हुआ। उस समय किसी को अनुमान नही था कि एक दिन यह बालिका अपने पुरुषार्थ से सारे देश में गाँव का नाम रौशन करेगी। १९४२ में नन्ना का वियोग हुआ जिससे घर की हालत खराब हो गई। खाने वाले आठ थे, कमाने वाला चला गया था। तब मैं नीरज और अनुज निर्मल, दोनों भाइयों तथा सुमित्रा सहित चार बहिनों का भार हमारी विधवा माँ ने सम्हाला। माँ को हम काकी कहते थे। सुमित्रा पर उनका बड़ा प्रेम था। साढ़े चौदह वर्ष की आयु मे काकी ने पडोस के गाँव बाकल में सुमित्रा का व्याह कर दिया। फिर साल भर के भीतर हठ करके हमारे सिर पर मौर बँधाकर बहू का मुँह देखने की लालसा भी उन्होने जल्दी पूरी कर ली। हमारे व्याह के केवल एक माह बाद, १९४४ की फरवरी में दो दिन की बीमारी के आघात से काकी हम सब को बिलखता छोड़कर चली गईं।

काकी ने विपत्ति के उन दिनों में कठोर परिश्रम करके हम सबको माँ की ममता और पिता का संरक्षण दिया। उन्होने कठिनाइयों के बीच साहस नहीं छोड़ा, दुर्भाग्य के समय में भी धर्म पर अपनी श्रद्धा डिगने नहीं दी और गरीबी भोगते भी अपने भीतर दीनता नहीं आने दी, अपने आत्म-गौरव को ठेस नहीं लगने दी। यही उनकी शक्ति थी जिसके बल पर वे भँवर के बीच से गृहस्थी की नाव को आखिरी साँस तक खेती रहीं। प्रतिकूल परिस्थितियों का साहस पूर्वक सामना करते चलना यही वह सम्पदा थी जो वे हम भाई-बहिनो को सोप कर गईं। माँ के जाते ही हमने रीठी छोड दी और सागर जाकर नौकरी कर ली।

सुमित्रा का व्याह तो हुआ परन्तु उस के भाग्य में कुछ और ही लिखा था। सोलह वर्ष की सुकुमार आयु में उसे वैधव्य का दारुण दुख झेलना पडा। तब रीठी में सिर्फ प्रायमरी स्कूल ही था अत: हम सभी भाई बहिन केवल चार कक्षा तक पढ पाये थे। बहुत चाहते हुए भी हम निर्मल को पढ़ाने का दायित्व पूर ा नहीं कर पाये यह कसक सदा हमारे मन में टीसती रही है। उन दिनों घर में विधवा स्त्री की दशा ऐसी दयनीय होती थी जिसकी कल्पना करके हम पति-पत्नी रोते रहते थे। हमने अपनी निस्सतान विधवा बहिन को नार्मल ट्रेनिंग पास कराकर स्वावलम्बी बनाने का संकल्प किया। उसे अपने पास सागर लाकर 'माता चिरोंजाबाई जैन महिलाश्रम' में प्रवेश दिलाया जहाँ रह कर सुमित्रा ने मिडिल पास किया। सागर में नार्मल ट्रेनिंग स्कूल नहीं था इसलिये, आगे पढ़ाने के लिये हमने सागर छोड कर जबलपुर में आजीविका तलाश ली। वहाँ साथ रख कर बहिन को वह परीक्षा पास कराई। परीक्षा में उत्तीर्ण होते ही देहात के सरकारी स्कूल में अध्यापिका पद पर सुमित्रा की नियुक्ति हो गई। नौकरी पर भेजने के पहले हम उसे वर्णीजी का आशीर्वाद दिलाने ईसरी ले गये। हमारी आस्था थी कि बाबाजी भक्तों का भविष्य बताते भर नहीं हैं, बनाते भी हैं। बाबाजी ने सरकारी नौकरी के लिये मना कर दिया। परिग्रह परिमाण व्रत दिया और आदेश दिया कि -'जिस मातृ संस्था में तुमने शिक्षा प्राप्त की है, उसी महिलाश्रम की सेवा तुम्हें करना है, वह संस्था छोड़ कर अन्यत्र कहीं मत जाना।'

सुमित्रा ने गुरु आज्ञा के सामने मस्तक झुकाकर पहले एक वर्ष तक बम्बई के तारदेव महिलाश्रम में सह-व्यवस्थापिक के पद पर संस्था प्रबंधन का अभ्यास किया, फिर चौदह वर्ष तक अध्यापिका पद पर महिलाश्रम को अपनी सेवाए प्रदान कीं। इस बीच वे प्रतिवर्ष पर्युषण मे बाहर जाकर आश्रम के लिये सहयोग राशि लाती रही। इस कार्य के लिये सहाध्यापिका राजमती बाई को साथ लेकर सुमित्रा ने इन्दौर, खण्डवा, राँची तथा आसाम तक की यात्राएं की। उनकी दीक्षा के उपरान्त राजमती बाई ने भी आर्यिका दीक्षा लेकर उनका अनुसरण किया। आश्रम में उन्होंने अनेक विधवा बहिनो को साहस दिलाकर अपने हाथो अपना भाग्य बनाने का मार्ग दर्शन देकर आगे बढाया। महिलाश्रम के भवन में जिनालय स्थापित कराने मे भी सुमित्रा का सर ाहनीय योगदान रहा।

वर्णी बाबाके चरणों मे हमार ी बहिन की अटल आस्था थी। हम साल में कम से कम एक बार, वर्णी जयन्ती पर बाबाजी के दर्शनार्थ उन्हें ईसरी ले जाते रहे। बाबाजी की समाधि के समय भी वे हम दोनों भाइयों के साथ ईसरी में थीं। उन्हीं कृपालु गुरु से प्राप्त संस्कारों के बल पर सुमित्रा के मन में धर्म का अध्ययन करने की रुचि जगी। हमारे निकट संबंधी पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य ने उनकी प्रतिभा और लगन को परख कर उन्हे धर्म तथा सिद्धान्त की शिक्षा देने की महती कृपा की। वर्षों तक वात्सल्य और परिश्रम पूर्वक उन्हे अनेक धर्म ग्रन्थो का अभ्यास कराया। गर्मी हो, सर्दी हो या बरसात, पण्डित जी कटरा से पैदल चलकर सुबह चार बजे सुमित्रा को पढाने महिलाश्रम पहुँच जाते थे। शीघ्र ही वे धर्म और दर्शन की विदुषी बन गई। जब सतना आतीं तब नियम से हमारे साथ स्वाध्याय में बैठतीं और हर बार पण्डितजी की प्रशंसा करती थीं।

साहित्याचार्यजी की रोपी हुई विद्या की बेल में ही सुमित्रा ने स्व-पुरुषार्थ से ज्ञान और संयम के पुष्प खिलाये। उसी बेल के फलस्वरूप उनके चित्त में अनासक्ति की भावना पनपने लगी थी।

हम लोगों की आस्था के केन्द्र पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णी, १९६१ में चौंतीस दिन की सल्लेखना के साथ सद्गति-गमन कर चुके थे। वर्णी बाबा हम भाई-बहिनों के लिये पिता के समान थे। वे ही हमारे लिये सत्प्रेरणा के सहज उपलब्ध एकमात्र आयतन थे। उनके जाने से हमारी धर्म-साधना की धारा में एक रिक्तता सी आ गई थी। दैव योग से उन्हीं दिनों चारित्र-चक्रवर्ती पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी के द्वितीय पट्टाचार्य, पूज्य आचार्य शिवसागरजी के संघ के परम तपस्वी महामुनि धर्मसागरजी सहित तीन महामुनियों के संघ का खुरई और सागर की ओर आगमन हुआ। इस मुनिसंघ के निमित्त से हमारा संत-समागम का टूटा हुआ क्रम पुनर्स्थापित हो गया।

धर्मसागर महाराज के साथ मुनिश्री सन्मतिसागरजी थे। गृहस्थावस्था में वे सामान्य श्रावक थे और 'टोडारायसिंह वाले कन्हैयालाल' के नाम से जाने जाते थे। उनके बारे में सुना था कि वे शिवसागर जी के सामने क्षुल्लक दीक्षा की प्रार्थना लेकर गये थे तब महाराज ने कहा था-'तुम्हारा पुत्र अभी छोटा है उसे सहारा चाहिये, वह बडा हो जाये तब गृहत्याग का विचार करना, तब तक घर में रह कर साधना करो।' कुछ समय बाद एक दिन उनकी पत्नी जलाशय पर कपड़े धो रही थी, वहाँ खेलते-खेलते किशोर पुत्र पानी में फिसल गया, उसे बचाने माँ पानी में उतरी और दोनों डूब मरे। इस दुर्घटना के एक माह बाद संकल्पित-श्रावक कन्हैयालालजी गुरु-चरणों में उपस्थित हो गये - 'महाराज, मेरे दो ही बंधन थे, होनहार के एक ही झटके में दोनों कट गये। अब घर ही नहीं रहा, तब छोड़ना क्या है ? अब शरण में लेकर मेरा उद्धार कीजिये।' दयालु आचार्य पूज्य शिवसागरजी ने उन्हें पिच्छी प्रदान करके मोक्ष मार्ग का पथिक बना दिया। उन दृढ विरागी सन्मतिसागर महाराज का सदुपदेश और सत्परामर्श हमारी मुमुक्ष बहिन सुमित्रा को जीवन यात्रा की दिशा निर्धारित करने मे प्रेरक निमित्त बनकर सहायक हुआ।

पण्डिता सुमित्राबाई ने मुनिश्री धर्मसागरजी के चरणों में सातवी प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिये। सकल-संयम अंगीकार करने की लालसा उनके मनमें बलवती होती जा रही थी पर साहस नहीं हो रहा था। सामने आर्यिका जीवन का कोई जीवन्त उदाहरण नहीं था। बुन्देलखण्ड में कोई आर्यिका दीक्षा सुनने में नहीं आई थी। क्या होगा, कैसे होगा, का द्वन्द्व मन को मथ रहा था। इरादे बाँधती थीं, सोचती थीं, छोड़ देती थीं, कहीं ऐसा न हो जाये, कहीं वैसा न हो जाये। यही उनके मन की दशा हो रही थी। मुनिश्री सन्मतिसागरजी ने साहस दिलाकर सुमित्रा की उलझन को सुलझाया। कुछ समय बाद दृढ़-संकल्पित ब्रह्मचारिणी सुमित्रा दीदी ने आर्यिका दीक्षा का श्रीफल चढ़ा दिया। महाराज का उत्तर मिला-'आर्यिका को अकेले रहने की आगम की आज्ञा नहीं है, हमारे साथ कोई आर्यिका नहीं है, तुम्हें आचार्य शिवसागरजी के पास जाकर प्रार्थना करना चाहिये, दीक्षा आचार्य ही देंगे। वहाँ संघ में चार आर्यिकाएं हैं, उनके सहारे तुम्हारी नि:शल्य साधना हो सकेगी।'

शिवसागर महाराज अपने चार मुनियों और चार आर्यिका माताओं के संघ सहित बुन्देलखण्ड में ही विहार कर रहे थे। उनका चौमासा श्रीक्षेत्र पपौरा के लिये निश्चित हो गया था। ब्र. सुमित्राजी ने संघ में जाकर आचार्यश्री के सामने अपनी प्रार्थना रखी। मुनिश्री धर्मसागरजी तथा सन्मतिसागरजी की अनुमोदना थी अतः प्रार्थना तत्काल स्वीकृत हो गई। चौदह अगस्त १९६४ की श्रावण शुक्ला सप्तमी को, पार्श्व-प्रभु के निर्वाण दिवस पर श्री अतिशय क्षेत्र पपौरा की पवित्र भूमि पर, हमारी सहोदरा ब्रह्मचारिणी सुमित्रा, आर्यिका दीक्षा पाकर 'विशुद्धमती माताजी' बन गईं। जब भी उस दिन की स्मृति करता हूँ तब एक टीस पुनः मुझे पीड़ित करती है। ठीक उसी दिन हमारी आजीविका से संबंधित एक आवश्यक कार्य था जिसके लिये हम दोनो भाइयों में से किसी एक को शहडोल के जिलाध्यक्ष कार्यालय पहुँचना अनिवार्य था। सदा की तरह हमने अग्रज होने का लाभ उठाया। हम पपौरा में रहे और निर्मल भाई उस दीक्षा समारोह के साक्षी नही बन पाये।

तीन वर्ष पहले वर्णीजी के जाने के बाद हमारा सतसमागम का टूटा हुआ तार, बहिन के आर्यिका बनकर संघ में प्रवेश के बाद पुनः जुड गया। हमें देव-गुरु-शास्त्र की एक साथ आराधना का नया आधार मिल गया। वर्ष में हमारे परिवार के दो-तीन महीने संघ के सान्निध्य और सेवा में व्यतीत होने लगे। पूज्य आचार्य शिवसागरजी परम प्रभावक आचार्य थे। उनकी क्षीण काया में अक्षीण तेज झलकता था। उन्हे पंच नमस्कार महामंत्र का इष्ट था, सदा उसकी आवृत्ति करते रहते थे। विद्वानों का जैसा समागम और आगमिक चर्चाओ का जितना अवसर उस मुनि-संघ में मिला, हमारे लिये वैसा अवसर उन दिनों अन्यत्र उपलब्ध नही था। आचार्य महाराज के साक्षात्-सान्निध्य में मुनिवर श्री श्रुतसागरजी के स्वाध्याय की निष्पत्तियाँ, उन पर अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगी मुनिश्री अजितसागरजी के सटीक उद्धरण तथा अनेक विद्वानों के समीक्षात्मक मंथन, विदुषी आर्यिका माताओ का योगदान और उपस्थित जिज्ञासु जनो की सार्थक जिज्ञासाएं उन तत्त्व-चर्चाओ को ऐसा सुगम, ग्राह्य और उपयोगी बनाकर चित्त मे उतार देती थी कि आज आधी शताब्दी बीत जाने पर भी हम जब इच्छा करते है, उनकी मिठास का अनुभव कर लेते है।

सघ में सबसे वरिष्ट मुनि आचार्यकल्प श्रुतसागरजी थे। वीरसागर महाराज से दीक्षित थे अतः वे आचार्य शिवसागरजी के गुरु भाई थे। दोनों मे अनुपम वात्सल्य था। उनसे माताजी ने बहुत सीखा। वे हमें भी 'बेटा' कहकर पुकारते थे। जन्मत: श्वेताम्बर थे, छोगालाल उनका नाम था। गुरुवर गणेश वर्णीजी से प्रभावित होकर उन्होने दिगम्बरत्व स्वीकार किया था। भय-आशा-स्नेह और लोभादि मानसिक प्रदूषणो से प्राय: मुक्त, उदासीन श्रावक की चर्या पालते थे। उनके अभिन्न मित्र बाबू सुरेन्द्रनाथजी सुनाया करते थे - एक बार सम्मेद शिखर मे पारसनाथ टोक पर साथियों ने उन्हे वरदान माँगने के लिये बलात् मन्दिर के भीतर धकेल कर भेजा। ऐसी मान्यता है कि वहाँ जो भी कामना की जाये वह अवश्य पूरी होती है। वे बेमन से पुनः मन्दिर में गये। पॉच मिनट मे लौटे तब मित्रों ने पूछा - 'छोगालालजी आपने क्या माँगा भगवान से ?'

छोगालालजी ने मुश्किल से बताया - 'बड़ी भीड़ थी, कहीं हमारी याचना खो न जाये इस डर से हम भगवान की वेदी पर पेंसिल से लिख आये हैं, जानना चाहते हैं तो जाकर पढ़ लीजिये।'

वेदी पर लिखी कामना पढ़ कर दोनों साथी कपाल ठोंक कर रह गये, छोगालाल ने वहाँ लिखा था- 'हे पारस प्रभु, मेरा सर्वनाश हो जाये।' एक साथी ने कहा - 'अरे मूर्ख, यह क्या किया ? यहाँ जैसा माँगा जाये वैसा हो ही जाता है। अब यदि यह कामना पूरी हो गई तो तेरा क्या होगा ?' विलक्षण बुद्धि के धारक छोगालाल जी का उत्तर भी विलक्षण था - 'मुझे जो इष्ट था वही मैंने माँग लिया है, जब मिलेगा तभी मेरा कल्याण होगा। संसार में मेरे तीन इष्ट हैं, राग-द्वेष और मोह। यही मेरे अनादि के सँगाती हैं, यही मेरे सर्वस्व हैं। इनके अलावा कौन है जिसे मैंने अपना माना हो ? एक बार इनका सर्वनाश हो जाये फिर मुझे और क्या चाहिये ?' यही निर्मोही श्वेताम्बर श्रावक छोगालालजी कालान्तर में आचार्य वीरसागरजीसे दिगम्बरी दीक्षा लेकर मुनि श्रुतसागर बने थे। उनका अध्ययन तलस्पर्शी और व्यवहार वात्सल्य की चासनी में पगा हुआ होता था। माताजी पर उनकी अपार कृपा रही।

इस प्रकार परमपूज्य आचार्यश्री शिवसागरजी की पवित्र पिच्छी के पावन स्पर्श से संस्कारित पूज्य आर्यिका विशुद्धमती माताजी का भाग्य भी बड़ा प्रबल था। दीक्षा से सल्लेखना तक उन्हें आगम की आन मानने वाले प्रकाश-पुरुष, आचार्यकल्प महामुनि श्रुतसागरजी, मासोपवासी महामुनि सुपार्श्वसागरजी और अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी महामुनि आचार्यश्री अजितसागरजी जैसे तपस्वी मुनिराजों के चरणों का सहारा मिलता रहा। प्रारम्भ में संघ की वरिष्ठ आर्यिका, सोलापुर श्राविकाश्रम की वर्तमान अधिष्ठात्री बहिन विद्युल्लता की जन्मदात्री, पूज्य चन्द्रमती माताजी के प्रेमपूर्ण संरक्षण से लेकर अंत समय में वरिष्ठ आर्यिका पूज्य सुपार्श्वमती माताजी जैसी ममतामयी आर्यिका माताओं के सम्बोधन तक का समागम और सहयोग माताजी को प्राप्त रहा। सदा विनयपूर्ण निस्पृही विद्वानों का समागम मिलता रहा। इस प्रकार माताजी ने अनेक वर्षों तक ज्ञान-ध्यान-तप और श्रुतसेवा की आराधना की। 'ग्रन्थराज तिलोय पण्णत्ती की टीका' के स्व-निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अत्यंत श्रमसाध्य कालजयी कार्य सम्पन्न करके उन्होने अपनी पर्याय सार्थक कर ली। उनकी स्मृतियों को शतश : प्रणाम।

तिलोय पण्णत्ती की भाषा-टीका

'छठवीं शताब्दी का पूर्वार्ध इस महान ग्रन्थ 'तिलोय पण्णत्ती' का रचना काल सिद्ध है। हम जानते हैं कि उसके बाद के तीन-चार सौ वर्षों का समय, दक्षिण भारत में जैन संस्कृति के लिये विपत्ति का काल रहा है। एक ओर सनातन शक्तियाँ परस्पर धार्मिक संघर्षों में उलझ कर एक दूसरे को हर प्रकार से हानि पहुँचाने के प्रयास कर रही थीं और दूसरी ओर वही शक्तियाँ अपने अपने स्तर पर जैनों के मूलोच्छेदन में समान रूप से जुटी दिखाई देती थीं। उस कालखण्ड में जैन विद्याओं का पठन-पाठन सर्वथा विश्रृंखलित हो रहा था, हमारे देव-शास्त्र और गुरु, तीनों को मिटाने के अभियान चले। सैकडों

नहीं, शायद हजारों श्रमणों और मुनियों को कोल्हू में पेलकर, हिंसक अनुष्ठान सार्वजनिक रूप से आयोजित किये गये। बड़ी मात्रा में मन्दिरों और मूर्तियों का विनाश हुआ और शास्त्र-भण्डारो को जला कर महीनों तक उनके उत्सव मनाये गये। तमिल देश में वैष्णव संत रामानुजाचार्य को जिस प्रकार अपमानित और प्रताड़ित होकर कर्नाटक में राजा बिट्टिदेव का आश्रय प्राप्त करना पड़ा वह घटना उस विपत्ति काल में प्रवृत्त धार्मिक उन्माद का एक उदाहरण है। उन दिनों जैनों को भाषा-व्याकरण-गणित आदि विद्याएं पढ़ने और पढ़ाने के लिये जान हथेली पर रख कर, अपनी अस्मिता छिपाते हुए भटकना पड़ा और भेद खुल जाने पर अपना बलिदान तक देना पडा। अकलंक और निकलंक सहोदर विद्यार्थियों के जीवन की आत्मोत्सर्गी घटना उन परिस्थितियों का वास्तविक चित्र उपस्थित करती है।

पूर्व-मध्यकाल की ऐसी विकट परिस्थितियों में, आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य समन्तभद्र और उमास्वामी जैसे दिग्गज सरस्वती पुत्रों द्वारा प्रणीत शास्त्र तथा षटखण्ड आगम आदि ग्रन्थ जो सूत्रों और गाथाओ की जो सम्पदा श्रुत परम्परा के माध्यम से गुरु-शिष्यों के पास पीढ़ी दर पीढी कण्ठगत चली आ रही थीं वही बच पाईं। विस्तार से रचे गये 'गंधहस्ति महाभाष्य' जैसे अनेक श्रुत-रत्न शायद उस ईर्षानल में भस्म हो गये। यह हमारा भाग्य है कि 'तिलोय पण्णत्ती' जैसे कुछ महान ग्रन्थ, पुरुषार्थी निर्ग्रन्थ मुनियों के प्रयत्नों से, और बाद की शताब्दियों में भट्टारकों के कौशलपूर्ण संरक्षण से, विनाश की भयावनी भँवर से निकल कर, यन-केन-प्रकारेण हमारे हाथों तक पहुँच पाये।'

पूज्य यतिवृषभाचार्य महामुनि के द्वारा गुम्फित ग्रन्थ 'तिलोय पण्णत्ती' एक ऐसा ही सुरक्षित बच गया ग्रन्थराज है। यह जिनवाणी माता के कण्ठ हार मे एक ऐसे 'पुष्प-गुच्छक' के समान सुशोभित है जिसमें स्याद्वाद के पुष्पों की सतरंगी छटा और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की मनहर सुगंधि व्याप्त है। यत्र-तत्र जैन इतिहास की बेलें और पत्तियाँ उस गुच्छक को बाँधने और गूँथने का प्रयास करती दिखाई देती हैं।

जैन आगम के ऐसे अति-महत्वपूर्ण, आठ हजार गाथा प्रमाण विस्तार वाले इस ग्रन्थ 'तिलोय पण्णत्ती' की रचना छठवी शताब्दी ईस्वी में आगम के पारगामी विद्वान यतिवृषभाचार्य महामुनि ने की थी। बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में प्रो. ए. एन. उपाध्ये और डाऐ. हीरालालजी के सम्पादन में प. बालचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री कृत हिन्दी अनुवाद सहित पहली बार जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुर से इसका प्रकाशन हुआ। उस संस्करण में मात्र ५६६६ गाथाएं सामने आई थीं। ग्रन्थ की प्राचीन ताडपत्रीय पाण्डु लिपियों तथा हल्ले-कन्नड (प्राचीन कन्नड) के जानकार विद्वानों का वाँछित योग नही मिल पाने के कारण ऐसा हुआ था। प्रथम प्रति की इस कमी को पूरा करने के उपाय ध्यान में रख कर गुरु आज्ञा से विशुद्धमती माताजी ने इसकी टीका लिखने का दुरूह कार्य हाथ मे लिया।

श्रवणबेलगोला जैन मठ के भट्टारक स्वस्तिश्री कर्मयोगी चारुकीर्ति स्वामीजी तथा मूडबिद्री जैन मठ के भट्टारक स्वस्तिश्री चारुकीर्ति ज्ञानयोगी स्वामीजी ने उदारता पूर्वक ग्रन्थ की मूल कन्नड़ प्रतियाँ अवलोकन के लिये उपलब्ध कराईं। श्रवणबेलगोल के चारुकीर्ति स्वामीजी ने कुछ महाधिकारों का नागरी लिप्यान्तर उपलब्ध कराया जिससे टीका को विस्वस्त आधार मिला। स्वामीजी ने कन्नड़ विद्वान श्री देवकुमारजी शास्त्री को माताजी के पास कई महीनों के लिये उदयपुर भेज दिया। इस प्रकार इन दोनों सदाशय मठाधिपतियों के सहयोग से ग्रन्थ सम्पादन के नियमों के अनुसार टीका का कार्य सम्भव हो सका। श्री देवकुमारजी शास्त्री के अलावा माताजी को इस कार्य में जिन अन्य विद्वानो का सहयोग मिला उन में जैन गणित के विशेष ज्ञाता ब्र. रतनचन्द्रजी मुख्तार ईसरी, डॉ. प्रो. लक्ष्मीचन्द्रजी जैन जबलपुर, माताजी के विद्यागुरु पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, पं. जवाहरलालजी भिण्डर (उदयपुर), और डॉ. प्रो. चेतनप्रकाश पाटनी जोधपुर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ग्रन्थ के पिछले संस्करण में भी इन सभी मनीषियों के प्रति कृतज्ञता और आभार प्रदर्शित किया गया है।

इस विशाल टीका ग्रन्थ का प्रथम संस्करण भारत वर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के अध्यक्ष, दानशील श्रावक श्री निर्मलकुमारजी सेठी तथा कतिपय अन्य दातारों के द्रव्य से महासभा द्वारा सन १९८८ में हुआ था। उसके नौ वर्ष बाद सन १९९७ में पूज्य उपाध्यायश्री ज्ञानसागरजी महाराज के सदुपदेश से १००८श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र 'देहरा-तिजारा' की प्रबध समिति के द्रव्य-सहयोग से हुआ। नौ साल और बीत गये हैं, प्रतियॉ अब उपलब्ध नही हैं और साधु-सघो तथा विद्वानो की ओर से ग्रन्थ की मॉग बराबर आ रही है। जब इस ओर उपाध्यायश्री का ध्यान दिलाया गया तब उन्होंने पुनः 'देहरा-तिजारा' अतिशय क्षेत्र की प्रबंध समिति को प्रेरणा देकर श्रीक्षेत्र की ओर से ही यह तीसरा संस्करण भी सुनिश्चित करा दिया है, फलस्वरूप ग्रन्थ पुनः सुगमता से समाज को उपलब्ध हो रहा है। तीर्थक्षेत्रों और मन्दिरों की आय का उपयोग श्रुत के संरक्षण और प्रसार में हो यह उस धन का सम्यक् उपयोग है। इस कृपा के लिये पूज्य उपाध्यायश्री ज्ञानसागरजी के प्रति कृतज्ञता-पूर्वक नमन करते है। 'नहिं कृतमुपकार साधवा विस्मरन्ति।' विद्वत्समाज प्रकाशन की उदारता के लिये श्रीक्षेत्र 'देहरा-तिजारा' की प्रबंध समिति का आभार मानती है।

ग्रन्थ में नौ महाधिकार हैं जिनमें सोलापुर से निकले पूर्व संस्करण में कुल ५६६६ गाथाएं प्रकाशित हो पाई थीं। इस बार कन्नड़ प्रति से मिलान करके उसके अनुसार १०९ छूटी हुई गाथाएं जोडी गईं। गद्य के अक्षरो को गाथा प्रमाण में गिनने पर भी प्रसिद्ध गाथा संख्या ८००० से ११९८ गाथाओं की कमी रहती है। हाँ, यदि अक संदृष्टियो के अकों को अक्षर रूप मे शामिल कर लिया जाये तो गाथाओं की कुल संख्या आठ हजार हो जायेगी। माताजी के सामने विद्वानों द्वारा मान्य यह विकल्प स्वीकार करने के अलावा कोई उपाय नहीं था, वह मान लिया गया, परन्तु माताजी इससे पूरी तरह संतुष्ट नहीं थीं। वे कहा करती थीं कि अन्य प्राचीन प्रतियों मे

कुछ गाथाएं और मिलने की सम्भावना को नकारा नहीं जाना चाहिये, विद्वानों को यथा अवसर इसके लिये शोध-खोज का प्रयत्न करते रहना चाहिये। जो भी हो, इस गणना को समझ लेने पर ग्रन्थ की वर्तमान गाथाओं में 'कुछ गाथाएं प्रक्षिप्त हैं' ऐसी टिप्पणी करने वाले विद्वानों की प्रक्षिप्त गाथाओं संबंधी सारी कपोल-कल्पित धारणाएं अपने आप निर्मूल हो जाती हैं।

ध्यातव्य है कि टीका प्रारम्भ करने के पूर्व विशुद्धमती माताजी ने जैन सिद्धान्त ग्रन्थों के आलोढ़न के लिये, कन्नड़ भाषा और प्राचीन कन्नड़ लिपि का कुछ अभ्यास कर लिया था। जैन ज्योतिष और जैन गणित पर भी उन्हें अधिकार प्राप्त हो गया था। माताजी ने 'त्रिलोकसार' और 'सिद्धान्तसार संग्रह' आदि ग्रन्थों की सरल हिन्दी टीकाएं रच कर उन ग्रन्थो को हिन्दी पाठकों के लिये सुगम बना दिया था। तिलोय पण्णत्ती के अनुवाद के साथ तथा उसके बाद भी माताजी का अन्य लेखन चलता रहा है। लगभग तीस मौलिक पुस्तकें लिखकर विशुद्धमती माताजी ने समाज का दिग्दर्शन किया है। वास्तुशास्त्र पर, विशेष कर मन्दिर वास्तु के विषय में, उनकी पुस्तकें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। परन्तु माताजी की समस्त श्रुत-साधना में 'तिलोय पण्णत्ती' ग्रन्थराज की टीका उनकी विशेष उपलब्धि है। यह उनका अनुपम और उल्लेखनीय अवदान है जो आने वाली पीढियों तक अध्येताओं का मार्ग दर्शन करता रहेगा। विद्वत् जगत में उनके इस पुरुषार्थ की हर जगह सराहना हुई है। इस दिव्य अवदान के रूप में माताजी ने जो उपकार किया है, उसके लिये दिगम्बर जैन समाज सदा उनका कृतज्ञ और ऋणी रहेगा।

साधना के शिखर पर समाधि का कलशारोहण -

सन १९८८ में तिलोय पण्णत्ती महाग्रन्थ के तीनों खण्ड प्रकाशित होकर सामने आये तब माताजी बहुत प्रसन्न और संतुष्ट थीं। इसके दो साल के भीतर , सत्रह जनवरी १९९० को, अपनी बहत्तर वर्ष की आयु में, पूरी तरह स्वस्थ्य, सबल और सक्रिय स्थिति में, विशुद्धमती माताजी ने आचार्य अजितसागरजी महाराज से बारह साल का उत्कृष्ट सल्लेखना व्रत ग्रहण कर लिया था। तब से पग-पग पर पूरी सावधानी के साथ कषाय और काया को कृष करते हुए उन्होने तन और मन को साधते हुए, समता पूर्वक समाधि-साधना मे अपना काल यापन किया।

विशुद्धमती माताजी की बारह वर्षीय सल्लेखना की साधना में अंतिम समय तक उनकी समर्पित, आज्ञाकारिणी परम प्रिय शिष्याओ ने अकथ सेवा की है। दोनों बहिनें प्रशान्तमती माताजी और उनकी सहोदरा वर्धितमती माताजी छाया की तरह विशुद्धमती माताजी के साथ रहीं। उन्होंने भक्ति पूर्वक माताजी की सम्हाल करते हुए, ज्ञानार्जन और संयम-साधना में निष्ठा पूर्वक उनका अनुसरण भी किया है। माताजी ने भी अपने कठोर किन्तु ममतामय अनुशासन मे, जन्मदात्री माता की तरह उनके पालन-पोषण की चिन्ता करते हुए, उन्हे जैन विद्याओं का गहन अध्ययन कराया।

प्रशान्तमती जी सुशिक्षित बालिका के रूप में फरवरी १९८२ में माताजी के सम्पर्क में आई थीं। २३ अप्रेल १९८६ को पूज्य दयासागरजी मुनिराज से उन्हें आर्यिका दीक्षा प्राप्त हुई। वर्धितमती जी ने अपनी बहिन की दीक्षा के समय ही पहली बार माताजी का दर्शन किया और १५ फरवरी १९९७ को पूज्य आचार्यश्री वर्धमानसागरजी महाराज से दीक्षित होकर वे आर्यिका बनीं। माताजी ने क्रमश: दोनों बहिनो को तन और मन से संयम धारण के योग्य बनाया था परन्तु उन्हें स्वयं दीक्षा नहीं दी। यश-लाभ की कामना मन में जाग जाती तो माताजी आसानी से ऐसा कर सकती थीं, परन्तु आर्यिका विशुद्धमती का आत्म-अनुशासन बहुत कठोर था। वे आर्यिका के द्वारा महाव्रतों की दीक्षा देने की प्रथा को आगम और परम्परा के अनुकूल नहीं मानती थीं। गुरु-परम्परा का सम्मान करते हुए उन्होंने दिगम्बर गुरु से ही दोनों बहिनों को आर्यिका दीक्षा दिलाई और उन्हें भविष्य में इस मर्यादा का सम्मान बनाये रखने का निर्देश दिया। माताजी की समाधि के थोड़े समय बाद अकस्मात वर्धितमतीजी का समाधि मरण हो गया। प्रशान्तमती माताजी एकान्त निष्ठा के साथ, अपनी परम उपकारिणी धर्ममाता के पदचिह्नों पर चल रही हैं। हम उन्हे विशुद्धमती माताजी की मानस पुत्री के रूप में देखते है और उनके लिये स्वस्थ्य एवं यशस्वी संयमी जीवन की कामना करते है।

विशुद्धमती माताजी ने प्रशंसा और कीर्तिलाभ की पिपासा को जीत लिया था। अपने किसी ग्रन्थ मे उन्होने कभी अपना चित्र नही छपने दिया और किसी संस्था के साथ अपना नाम जोड़ने की अनुमति नहीं दी। कई नगरों की समाज ने, उनके परिचित विद्वानों के माध्यम से, माताजी के लिये बड़ी-बड़ी उपाधियो का प्रस्ताव किया परन्तु माताजी ने हर बार उपाधि को व्याधि मानकर स्वीकार करने से मना कर दिया। उन्होंने दीक्षा के उपरान्त अड़तीस वर्ष के तपस्या काल में कभी अपने व्रतों का उल्लंघन नहीं होने दिया। अनेक बार अनेक तरह की शारीरिक व्याधियाँ सहते भी एक पग के लिये कहीं डोली या व्हील चेयर आदि का उपयोग नहीं किया। अस्वस्थ अवस्था में ग्रीष्म परीषह सहते भी, कहीं पंखा कूलर, रूम-हीटर और टेलिविजन तथा टेलीफोन आदि आधुनिक उपकरणों का उपयोग नहीं किया। संक्षेप में कहें तो उन्होने कभी आर्यिका के अधिकारो की सीमा के बाहर कोई कदम नहीं उठाया। उनकी स्पष्ट वर्जना के कारण कहीं उनका कोई स्मारक या उनके नाम पर कोई आयतन या धाम नहीं बनाया गया। यह आत्मानुशासन और ऐसी निस्पृहता विशुद्धमती माताजी की संयम-निष्ठा का प्रभामण्डल बनकर उनकी आभा बढ़ाती रहेगी।

सल्लेखना व्रत की अवधि पूरी होने आ रही थी, माताजी क्रमश: आहार और पानक की सीमा सकुचित करती हुई यम-सल्लेखना की ओर बढ़ रही थीं। सोलह जनवरी २००२ को उनके व्रत की बारह वर्ष की अवधि पूरी हुई। उसी दिन मध्यम बेला में माताजी ने अनासक्त भाव से 'धर्माय तन विमोचनम्' का आदर्श प्रस्तुत करते हुए, पूज्य आचार्य वर्द्धमानसागरजी के पावन सान्निध्य में, चतुर्विध संघ को साक्षी बनाकर आजीवन जल-ग्रहण का त्याग कर दिया। उस दिन भी उनके शरीर में इतनी शक्ति थी कि अपनी उसी खनकती आवाज में

माताजी ने बाईस मिनट के वक्तव्य में चतुर्विध संघसे क्षमायाचना करते हुए अपना अंतिम उपदेश दिया। संघ की वरिष्ठ आर्यिका पूज्य सुपार्श्वमती माताजी लम्बी पदयात्रा के बाद उनके पास पहुँच गई थीं। वे अपनी मानस पुत्री ब्र. डॉ. प्रमिला जी को साथ लेकर, आठों प्रहर सन्नद्ध होकर विशुद्धमतीजी की अंतिम साँस तक उनकी यथोचित सार-सम्हाल में सहायक बनीं। उस समय दोनो विदुषी आर्यिकाओ का परस्पर अनुराग दर्शनीय था, प्रेरक था, बारम्बार प्रणम्य था और चिरस्मरणीय है।

जल-त्याग के उपरान्त समाधि-साधना के छह दिन, दिगम्बर परम्परा में समस्त आशा-प्रत्याशाओं से रहित, सल्लेखना-अनुष्ठान की प्रायोगिक परीक्षा के दिन थे। छह दिन की अहोरात्रि अनवरत, कठोर साधना के उपरान्त, बाईस जनवरी २००२ की रात्रि के पिछले पहर उस महान अनुष्ठान की पूर्णाहुति का समय आ गया जिस मुहूर्त के स्वागत की तैयारी माताजी बारह वर्षो से कर रही थीं। वह प्रतीक्षित घड़ी जैन संतों की सल्लेखना की परीक्षा की घडी होती है। उस घड़ी जिसने भयभीत होकर शरण पाने के लिये इधर-उधर दीनता की दृष्टि उठाई वह परीक्षा में विफल हो गया और जिसने मौत से आँख मिलाकर, उसे उलाहना देकर कह दिया -'बिलम्ब तुम्हीं ने किया है, हम तो कब से तैयार बैठे हैं, चलो' बस, वही धीर-वीर-निर्मोही साधक इस परीक्षा में उत्तीर्ण होता है। विशुद्धमती माताजी ने उस घडी यही किया था। साक्षी संत-समुदाय ने इस महापरीक्षा में उनकी दृढता की सराहना की, उनकी सन्नद्धता को नमन किया।

भगवान अर्हंत की पावन-प्रतिमा के समक्ष, चतुर्विध संघ के सान्निध्य में, उत्तम सहकारी निमित्तों के बीच, आचार्यश्री वर्द्धमानसागरजी और मुनिश्री पुण्यसागरजी आदि संतो से प्रभु नाम सुनते-सुनते माताजी ने निर्भय होकर जीवन का गौरव-पूर्ण समापन किया। समता पूर्वक मृत्यु का सोल्लास स्वागत करके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि अंत समय में भी 'समाधि-दीपक' की ज्योति उनके यात्रा-पथ को प्रकाशित कर रही थी, उनकी 'तिलोय पण्णत्ती' की प्रज्ञा-निधि उनके पास सुरक्षित थी और उनकी 'मरण-कण्डिका' के तात्पर्यामृत से उनका अपार चेतना-समुद्र हर्ष से उमड़ रहा था। विशुद्धमती माताजी का मरण-महोत्सव उत्कृष्ट पद्धति से सम्पन्न समाधि-साधना का आदर्श उदाहरण था।

गुरु चरणानुरागी,

शान्ति सदन, सतना
बसत पचमी २००८

पूज्य १०५श्री उपाध्याय ज्ञानसागरजी महाराज का

मंगल आशीर्वाद

चौदह सौ वर्ष पूर्व पूज्यश्री यतिवृषभाचार्य द्वारा रचित ग्रन्थराज 'तिलोय पण्णत्ती' जैन आगम का विशाल और अर्थपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में चारों अनुयोगों की पुष्कल सामग्री का प्रामाणिक संकलन उपलब्ध होता है परन्तु लोक-विभाग और करणानुयोग सम्बंधी गणितीय विवेचना के लिये इसकी प्रसिद्धि अधिक रही है। परवर्ती अनेक आचार्य भगवन्तों ने अपने लेखन में इस ग्रन्थराज की सामग्री का उपयोग किया है और इसके रचयिता पूज्य यतिवृषभाचार्य स्वामी की सराहना की है। यह ग्रन्थ जिनवाणी माता के मणिमय मुकुट में एक ऐसे बहुमूल्य चमकदार महारत्न की तरह सुशोभित है जिसकी आभा मात्र से मिथ्यात्व का निविड अंधकार नष्ट हो जाता है और एकान्त के शूल स्याद्वाद का रस पाकर सुगंधित फूल बन जाते है।

'तिलोय पण्णत्ती' का वर्ण्य-विषय व्यापक है। ऐसा लगता है कि ग्रन्थ के विस्तार और गाथाओं के अर्थ-गाम्भीर्य की गहराई के कारण पूर्वकाल में इस ग्रन्थ की टीका के या तो प्रयास ही नहीं हुए, या फिर वे टीका ग्रन्थ हमें उपलब्ध नहीं हो पाये। मूलग्रन्थ की ताड़ पत्रीय प्रतियाँ भट्टारकों के ग्रन्थागारों में सुरक्षित रहीं और उनके सहयोग से यह ग्रन्थ पहली बार सोलापुर से प्रकाशित हुआ। उसके अनेक वर्षों बाद चारित्र-चक्रवर्ती आचार्यश्री शान्तिसागर महाराज के द्वितीय पट्टाधीश पूज्य आचार्यश्री शिवसागरजी का ध्यान इस ग्रन्थ की ओर गया। उन्होंने इसकी भाषा टीका की आवश्यक्ता को महसूस किया और अपनी विदुषी शिष्या आर्यिकाश्री विशुद्धमती माताजी को इस कार्य में समर्थ मानकर प्रोत्साहित किया। माताजी के वर्षों के कठोर परिश्रम से इस टीका का प्रणयन सम्भव हुआ।

श्री नीरजजी समाज के सुपरिचित विद्वान हैं। वे अध्येताओ की आवश्यक्ताओं को आँकते हैं और यथाशक्ति उसकी पूर्ति के लिये प्रयत्न भी करते है। डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य की कालजयी रचना 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' का पुनर्प्रकाशन पं. दरबारीलालजी कोठिया की भावना के अनुरूप, नीरजजी के सुझाव और मार्ग दर्शन मे ही श्रुत सवर्द्धन संस्थान द्वारा १९९२ मे हुआ था। दस वर्ष पूर्व १९९६ में उन्होंने 'तिलोय पण्णत्ती टीका' की प्रतियाँ उपलब्ध नही होने की बात श्रीक्षेत्र 'देहरा-तिजारा' में हमारे सामने रखी। उस समय श्रीक्षेत्र के उत्साही पदाधिकारी सामने थे अत: हमने उनसे संकेत कर दियाऔर तत्काल प्रबंध समिति ने ग्रन्थराज के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन का व्यय-वहन करने की स्वीकृति घोषित कर दी। वह संस्करण प्रकाशित हुआ और दस वर्ष में उसकी प्रतियाँ लगभग समाप्त हो गईं। गत दिनों तृतीय संस्करण की आवश्यक्ता सामने आने पर हमने 'देहरा-तिजारा' श्रीक्षेत्र की प्रबंध समिति को पुन: यह गौरव प्राप्त करने का संकेत किया। हमें हर्ष है कि समिति ने तीसरे संस्करण के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में श्रीक्षेत्र के द्रव्य का सदुपयोग करके समिति ने पुण्यार्जन किया है, उन्हें हमारे आशीर्वाद। # वर्द्धता जिनशासनम्। #

नव निर्मित श्री चन्दगिरी वाटिका :

तिजारा नगर में 200 वर्ष से अधिक प्राचीन अत्यन्त भव्य जिनालय 1008 श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ मंदिर के नाम से विद्यमान है।

16 अगस्त सन् 1956 को स्वप्न देकर भूगर्भ से देवाधिदेव 1008 चन्द्रप्रभ भगवान की मूर्ति प्रकट होने के पश्चात श्री 1008 चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा का निर्माण हुआ। भगवान चन्द्रप्रभ की मूर्ति प्रकट होने के पश्चात यहाँ स्वयं ही अलोकिक अतिशयों के कारण जन-मानस का आवागमन निरन्तर वृद्धि पर है। क्षेत्र पर आने वाले दर्शनार्थियों का समय-समय पर सुझाव आता रहा कि यहाँ कोई धार्मिक रचना और बनाई जाये, जिससे कि उनका अधिकतम समय धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत हो सके, यद्यपि देवादिदेव चन्द्रप्रभ स्वामी की मूर्ति में ही इतना आकर्षण है कि आने वालों का वहां से उठने का मन ही नहीं करता।

अन्ततः, तत्कालीन प्रबन्धकारिणी समिति ने क्षेत्र की पूर्व दिशा में उपलब्ध 11 बीघा 7 बिस्वा भूमि पर एक जिनालय का निर्माण किए जाने का निर्णय लिया। इसके अनुसार ग्रेनाइट पाषाण की श्री चन्द्रप्रभ भगवान की 15-16 फिट की पद्मासन् मूर्ति विराजमान किए जाने पर विचार किया गया। निर्णयानुसार प्रबन्धकारिणी के प्रमुख पदाधिकारीगण दक्षिण में कार्कल जी पाषाण की प्राप्ति हेतु गए। सौभाग्य से एक बड़ा पाषाण हल्लिदेवी मल्लि नामक खान से प्राप्त हुआ। पाषाण इतना बड़ा था कि उसे यहां लाना सम्भव नहीं था। इस पर समीप ही विराजमान् परम श्रद्धेव श्री वीरेन्द्र जी हेगडे से विचार-विमर्श कर कारकिल जी में इस समय के संभवतया सबसे कुशल शिल्पी श्री श्यामाचार्य को श्रद्धेव हेगडे जी के निर्देशानुसार मूर्ति निर्माण का कार्य दे दिया गया।

मूर्ति निर्माण में लगभग 12 वर्ष का समय लगा। इस बीच ऊपर उल्लिखित भूखण्ड में आवश्यक निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। इस जिनालय तथा इसके सम्मुख आकर्षक बगीचे, विद्युत चलित फव्वारों का नक्शा नई दिल्ली निवासी कुशल आर्किटेक्ट श्री विजय बहल द्वारा तिजारा नगर के ही धर्मप्रिय श्रावक श्री सुभाषचन्द जैन, सेवानिवृत्त मुख्य अभियन्ता सार्वजनिक निर्माण विभाग राजस्थान के मार्गदर्शन में तैयार किया गया। स्ट्रेक्चर डिजाइन श्री पी.एल. गोयल नई दिल्ली ने किया।

इस निर्माण में मुख्य भवन आर.सी.सी. के पायों पर लगभग 50,000 वर्ग फीट फर्श क्षेत्रफल में दो मंजिला बनाया गया है। इसकी जमीन तल से छत की ऊँचाई 30 फिट है। मूर्ति के सम्मुख बैठने के लिए 20,000 वर्ग फिट खुला स्थान है, जिसमें लगभग 8 से 10 हजार तक की संख्या में दर्शनार्थी बैठ सकते हैं। छत पर 1½ फीट ऊँचे प्लेटफार्म पर 4 फीट ऊँचा ग्रेनाइट का 30 टन भार का कमल है। इस कमल पर भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी की 15'-4" अत्तुंङ्ग खडगासन प्रतिमा जी विराजमान की गई है। इसकी चौड़ाई 13'-6" तथा मोटाई 6'-6" तथा भार लगभग 45 टन है। यह मूर्ति श्री कारकिल जी से वाटिका (तिजारा) तक ट्रोले में कटारिया ट्रांसपोर्ट के मालिक श्रीरामचंद जी कटारिया द्वारा निःशुल्क लाई गई।

जमीन तल से प्रतिमा जी के स्थल तक पहुँचने के लिये काफी चौड़ी-चौड़ी चार सीढियां बनाई गई है। इसके मध्य में दो पानी के झरने व दो पौधों की क्यारियां बनाई गई हैं। झरनों का पानी 9-9 बक्सों से कूदता हुआ रंग-बिरंगे प्रकाश में चलता है, जो रमणीय दृश्य उपस्थित करता है। बच्चों तथा वृद्धों के लिए ऊपर पहुंचने के लिए रैम्प बनाया गया है।

प्रतिमाजी के तथा इन झरनों के सम्मुख जमीन तल पर एक बडा फव्वारा बनाया गया है, जिसकी मुख्य धारा लगभग 45 फीट ऊँची जाती है। विभिन्न रंगों में होने के कारण यह अत्यन्त मनमोहक दृश्य उपस्थित करते हैं। इसके सम्मुख एक छोटा बौल फाउन्टेन लगाया गया है। बांई ओर एक कैफेटएरिया, विश्राम गृह आदि बनाए गए हैं। यह सब निर्माण सिविल इन्जिनियर अलवर श्री राजदीप जी की पूर्ण देखरेख मे किया गया है, जिसे उन्होंने अथक परिश्रम कर लगभग 2 ½ वर्ष की अवधि में पूर्ण किया। इस निर्माण में क्षेत्र के तत्कालीन अध्यक्ष नरेन्द्र कुमार जैन तथा संरक्षक बनारसीदास ने भी अथक परिश्रम किया।

इस जिनालय का भूमि पूजन कार्य 10 अगस्त 2002 को तथा शिलान्यास कार्य 15 अगस्त 2002 को क्षेत्र पर वर्षायोग कर रहे परम पूज्य आचार्य 108 श्री शांति सागर जी (णमोंकार मन्त्र वालों) के सान्निध्य में सम्पन्न हुए।

इस भव्य नव निर्मित जिनालय की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा कार्य परम पूज्य सराकोद्धारक, भक्तों के प्रिय उपाध्याय रतन श्री ज्ञानसागर जी महाराज ससंघ के पावन सानिध्य में 13 फरवरी से 19

फरवरी 2005 तक की अवधि में प्रतिष्ठाचार्य श्री सुधीर कुमार जी मार्तण्ड, केसरिया जी ने पूर्ण विधि विधान से कराया। मूर्ति निर्माण व्यय भार शालू सिल्क साड़ी सूरत वाले श्री ओम प्रकाश जी जैन की ओर से उठाया गया।

वर्ष 2007 में, क्षेत्र पर वर्षायोग में ससंघ विराजमान परमपूज्य भक्त वत्सल उपाध्याय 108 श्री निर्णय सागर जी की पावन प्रेरणा से इस वाटिका में भगवान चन्द्रप्रभ स्वामी के तीनों ओर वर्तमान चौबीसी बनाने का निर्णय लिया गया, जिसका निर्माण कार्य भी समापन की ओर अग्रसर है तथा इसी वर्ष (2008) में इसकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा होने की पूर्ण आशा है। इसके पश्चात इस जिनालय की शोभा में चार चांद लग जायेंगे तथा दर्शनार्थियों को धर्म साधन का अधिक समय व्यतीत करने का साधन मिल पायेगा।

1-4-2008

श्री चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
देहरा-तिजारा

उपाध्यायश्री का तिजारा चातुर्मास : विभिन्न आयोजन

परम पूज्य उपाध्यायरतन श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज के चन्द्रप्रभु दिगंबर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा तिजारा में 1998 के चातुर्मास में विभिन्न आयोजनों ने अभूतपूर्व धार्मिक प्रभावना कर जैन संस्कृति के इतिहास में नूतन इतिहास की संरचना की। पूज्य उपाध्यायश्री के सान्निध्य में चातुर्मास के दौरान निम्न प्रमुख आयोजन हुए–

1. जिला स्तरीय शाकाहार सम्बन्धी निबंध लेखन एवं प्रतियोगितायें। इसके लिए शिक्षा मंत्री राजस्थान द्वारा शिक्षाधिकारी अलवर को कार्यक्रमानुसार अवश्यक व्यवस्था हेतु आदेश प्रसारित किए गए। इस आधार पर शिक्षाधिकारी अलवर ने सभी शिक्षा निरीक्षकों तथा स्कूलों के प्रधानाध्यापकों को आदेश प्रसारित किए।

इन प्रतियोगिताओं को तीन स्तरों पर आयोजित किया गया।

(1) विद्यालय स्तर

(2) क्षेत्रीय स्तर

(3) माध्यमिक स्तर।

2. 30-31 अक्टूबर को पं. जुगलकिशोर मुख्यतार पर वृहद विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन।

3. 1 नवम्बर को डॉ. कस्तूरचंद जी कासलीवाल अभिनंदन ग्रंथ समर्पण समारोह।

4. 7 व 8 नवम्बर को भारतभर के डॉ. चिकित्सकों का जैनधर्म की वैज्ञानिकता पर अखिल भारतीय सम्मेलन।

5. 9 नवमबर को बिहार के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री सुंदर सिंह जी भण्डारी की गरिमामय उपस्थिति में आचार्य श्री 108 शांतिसागर जी छाणी समृतिग्रंथ का विमोचन समारोह।

6. पांच श्रुत संवर्द्धन एवं सराक पुरस्कार का समर्पण समारोह।

7. सराक शिक्षण व प्रशिक्षण शिविर।

– सुनील जैन संचय

श्रुत संवर्द्धन संस्थान

मेरठ-(उ.प्र.)

जदिवसहाइरिय-विरइदा

तिलोयपण्णत्ती

पंचमो महाहियारो

मङ्गलाचरण

भव्व-कुमुदेक्क-चंदं, चंदप्पह-जिणवरं[1] हि पणमिदूण ।
भासेमि तिरिय-लोयं, लवमेत्तं अप्प-सत्तीए ॥१॥

अर्थ—भव्यजनरूप कुमुदोंको विकसित करने के लिए अद्वितीय चन्द्रस्वरूप चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रको नमन करके मैं अपनी शक्तिके अनुसार तिर्यग्लोकका यत्किंचित् (लेशमात्र) निरूपण करता हूँ ॥ १ ॥

तिर्यग्लोक-प्रज्ञप्तिमें १६ अन्तराधिकारोंका निर्देश

थावरलोय-पमाणं, मज्झम्मि य तस्स तिरिय-तस-लोओ[2] ।
दीवोवहीण संखा, विण्णासो णाम - संजुत्तं ॥२॥

णाणाविह - खेत्तफलं, तिरियाणं भेद - संख - आऊ य ।
आउग - बंधण - भावं, जोणी सुह - दुक्ख - गुण - पहुदी ॥३॥

सम्मत्त - गहण - हेदू, गदिरागदि - थोव - बहुगमोगाहं ।
सोलसया अहियारा, पण्णत्तीए य तिरियाणं ॥४॥

अर्थ—स्थावर लोकका प्रमाण[1], उसके मध्यमें तिर्यक् त्रस-लोक[2], द्वीप-समुद्रोंकी संख्या[3], नाम सहित विन्यास[4], नानाप्रकारका क्षेत्रफल[5], तिर्यंचोंके भेद[6], संख्या[7], आयु[8], आयुबन्धके

---

१. द. ब. क. जिणवरे हिं । २. द. ब. क. लोए ।

निमित्तभूत परिणाम[9], योनि[10], सुख-दुःख[11], गुणस्थान आदिक[12], सम्यक्त्व-ग्रहणके कारण[13], गति-आगति[14], अल्पबहुत्व[15] और अवगाहना[16], इसप्रकार तिर्यंचोंकी प्रज्ञप्तिमें ये सोलह अधिकार हैं ।। २-४ ।।

स्थावर-लोक का लक्षण एवं प्रमाण

जा जीव-पोग्गलाणं, [1]धम्माधम्म-प्पबंध-आयासे ।
होंति हु गदागदाणि, ताव हवे थावरो लोओ ।।५।।

≡ ।

थावरलोयं गदं ।।१।।

अर्थ—धर्म एवं अधर्म द्रव्यसे सम्बन्धित जितने आकाशमें जीव और पुद्गलोंका आवागमन रहता है, उतना (≡ अर्थात् ३४३ घन राजू प्रमाण तीन लोक) स्थावर लोक है ।। ५ ।।

स्थावर-लोकका कथन समाप्त हुआ ।। १ ।।

तिर्यग्लोकका प्रमाण

मंदरगिरि-मूलादो, इगि-लक्खं जोयणाणि बहलम्मि ।
रज्जूअ पदर-खेत्ते, चेट्ठेदि[2] हु तिरिय-तस-लोओ ।।६।।

$\frac{=}{४९}$ । १००००० ।

तस-लोय-परूवणा गदा ।।२।।

अर्थ—मन्दरपर्वतके मूलसे एक लाख (१०००००) योजन बाहल्य (ऊँचाई) रूप राजू-प्रतर अर्थात् एक राजू लम्बे-चौड़ क्षेत्र में तिर्यक्-त्रसलोक स्थित है ।। ६ ।।

।। त्रस-लोक प्ररूपणा समाप्त हुई ।। २ ।।

द्वीपों एवं सागरोंकी संख्या

पणुवीस-कोडकोडी-पमाण-उद्धार-पल्ल-रोम-समा ।
दीओवहीण संखा, तस्सद्धं दीव-जलणिही कमसो ।।७।।

संखा समत्ता ।।३।।

---

१. ब. धम्मधहदुक्खगुण पहुदी । २. द. ब. चित्तेदि हु ।

अर्थ—पच्चीस कोड़ाकोड़ी उद्धार-पल्योंके रोमोंके प्रमाण द्वीप एवं समुद्र दोनों की संख्या है। इसकी आधी क्रमशः द्वीपोंकी और आधी समुद्रोंकी संख्या है ॥ ७ ॥

नोट– किंतु देखें इसी अधिकार की २७ वीं गाथा।

संख्या का कथन समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

द्वीप-समुद्रोंकी अवस्थिति

सव्वे दीव-समुद्दा, संखादीदा हवंति समवट्टा।
पढमो दीओ उवही, चरिमो मज्झम्मि दीवुवही[1] ॥८॥

अर्थ—सब द्वीप-समुद्र असंख्यात हैं और समवृत्त (गोल) हैं। इनमें सबसे पहले द्वीप, सबसे अन्त में समुद्र और मध्य में द्वीप-समुद्र हैं ॥ ८ ॥

चित्तोवणि बहु-मज्झे, रज्जू-परिमाण-दीह-विक्खम्भे[2]।
चेट्ठंति दीव-उवही, एक्केक्कं बेढिऊण हु प्परिदो[3] ॥९॥

अर्थ—चित्रा पृथिवीके (ऊपर) बहु मध्यभागमें एक राजू लम्बे-चौड़े क्षेत्रके भीतर एक-एकको चारों ओरसे घेरे हुए द्वीप एवं समुद्र स्थित हैं ॥ ९ ॥

सव्वे वि वाहिणीसा, चित्तखिदिं खंडिदूण चेट्ठंति।
वज्ज-खिदीए उवरिं, दीवा वि हु उवरि चित्ताए ॥१०॥

अर्थ—सब समुद्र चित्रा पृथिवीको खण्डितकर वज्रापृथिवीके ऊपर और सब द्वीप चित्रा पृथिवीके ऊपर स्थित हैं ॥१०॥

विशेषार्थ—चित्रापृथिवीकी मोटाई १००० योजन है और सब समुद्र १००० योजन गहराई वाले हैं। अर्थात् समुद्रोंका तल भाग चित्राको भेदकर वज्रापृथिवीके ऊपर स्थित है।

आदि-अन्तके द्वीप-समुद्रोंके नाम

आदो जंबूदीओ, हवेदि दीवाण ताण सयलाणं।
अंते सयंभुरमणो, णामेणं विस्सुदो दीओ ॥११॥

अर्थ—उन सब द्वीपोंके आदिमें जम्बूद्वीप और अन्तमें स्वयम्भूरमण नामसे प्रसिद्ध द्वीप है ॥ ११ ॥

---

१. ब. क. दीउउवही। २. द. ब. क. ज. विक्खंभो। ३. द. ब. क. ज. प्परदो।

आदी लवण-समुद्दो[1], सव्वाण हवेदि सलिलरासीणं ।
अंते सयंभुरमणो, णामेणं विस्सुवो उवही ॥१२॥

अर्थ—सब समुद्रोंमें आदि लवणसमुद्र और अन्तिम स्वयम्भूरमण नामसे प्रसिद्ध समुद्र है ॥ १२ ॥

अभ्यन्तरभाग (प्रारम्भ) में स्थित ३२ द्वीप-समुद्रों के नाम

पढमो जंबूदीओ, तप्परदो होदि लवण-जलरासी ।
तत्तो धादइसंडो, दीओ उवही य कालोदो ॥१३॥

पोक्खरवरो त्ति दीओ, पोक्खरवर[2]-वारिही तदो होदि ।
वारुणिवरक्ख-दीओ, वारुणिवर-णीरधी[3] वि तप्परदो ॥१४॥

तत्तो खीरवरक्खो, खीरवरो होदि णीररासी य ।
पच्छा घदवर-दीओ, घदवर-जलही य परो तस्स ॥१५॥

खोदवरक्खो दीओ, खोदवरो णाम वारिही होदि ।
णंदीसर-वर दीओ, णंदीसर - णीररासी य ॥१६॥

अरुणवर-णाम-दीओ, अरुणवरो णाम वाहिणीणाहो ।
अरुणब्भासो दीओ, अरुणब्भासो पयोरासी ॥१७॥

कुंडलवरो त्ति दीओ, कुंडलवर-णाम-रयणरासी य ।
संखवरक्खो दीओ, संखवरो होदि मयरहरो ॥१८॥

रुजगवर-णाम-दीओ, रुजगवरक्खो तरंगिणी-रमणो[4] ।
भुजगवर-णाम-दीओ, भुजगवरो अण्णओ होदि ॥१९॥

कुसवर-णामो दीओ, कुसवर-णामो य णिण्णगा-णाहो ।
कुंचवर-णाम-दीओ, कुंचवरो-णाम-आपगा-कंतो ॥२०॥

अब्भंतर-भागादो, एदे बत्तीस-दीव-वारिणिही ।
बाहिरदो एदाणं, साहेमि इमाणि णामाणि ॥२१॥

---

१. द. क. ज. समुद्दे । २. द. ब. क. ज. पोक्खरवा । ३. द. ब. क. ज. दीवि ।
४. द. ज. रमणाओ ।

अर्थ—प्रथम जम्बूद्वीप, उसके परे (आगे) लवणसमुद्र फिर धातकीखण्डद्वीप और उसके पश्चात् कालोदसमुद्र है। तत्पश्चात् पुष्करवर द्वीप एवं पुष्करवर वारिधि और फिर वारुणीवरद्वीप तथा वारुणीवरसमुद्र है। उसके पश्चात् क्रमशः क्षीरवरद्वीप, क्षीरवरसमुद्र और तत्पश्चात् घृतवरद्वीप और घृतवर समुद्र है। पुनः क्षौद्रवरद्वीप, क्षौद्रवर समुद्र और तत्पश्चात् नन्दीश्वरद्वीप तथा नन्दीश्वर समुद्र है। इसके पश्चात् अरुणवरद्वीप, अरुणवरसमुद्र, अरुणाभासद्वीप और अरुणाभाससमुद्र है। पश्चात् कुण्डलवरद्वीप, कुण्डलवरसमुद्र, शंखवरद्वीप और शंखवरसमुद्र है। पुनः रुचकवर नामक द्वीप, रुचकवरसमुद्र, भुजगवर नामक द्वीप और भुजगवरसमुद्र है। तत्पश्चात् कुशवर नामक द्वीप, कुशवरसमुद्र, क्रौंचवर नामक द्वीप और क्रौंचवर समुद्र है। ये बत्तीस द्वीप-समुद्र अभ्यन्तर भाग से हैं। अब बाह्यभागमें द्वीप-समुद्रोंके नाम कहता हूँ जो इस प्रकार हैं—॥ १३ – २१ ॥

बाह्यभागमें स्थित द्वीप-समुद्रोंके नाम

उवही सयंभुरमणो, अंते दीओ सयंभुरमणो त्ति।
आइल्लो णादव्वो, अहिंदवर-उवहि-दीवा य ॥२२॥

देववरोवहि-दीवा, जक्खवरक्खो समुद्द-दीवा य।
भूदवरण्णव-दीवा, समुद्द-दीवा वि णागवरा ॥२३॥

वेरुलिय-जलहि-दीवा, वज्जवरा वाहिणीरमण-दीवा।
कंचण-जलणिहि-दीवा, रुप्पवरा सलिलणिहि-दीवा ॥२४॥

हिंगुल-पयोहि-दीवा, अंजणवर-णिण्णगाहिवइ[1]-दीवा।
सामंभोणिहि-दीवा, सिंदूर-समुद्द-दीवा य ॥२५॥

हरिवाल-सिंधु-दीवा, मणिसिल-कल्लोलिणीरमण-दीवा।
एस समुद्दा-दीवा, बाहिरदो होंति बत्तीसं ॥२६॥

अर्थ—अन्तसे प्रारम्भ करने पर स्वयम्भूरमण समुद्र पश्चात् स्वयम्भूरमण द्वीप आदिमें है ऐसा जानना चाहिये। इसके पश्चात् अहीन्द्रवर समुद्र, अहीन्द्रवर द्वीप, देववर समुद्र, देववर द्वीप, यक्षवर समुद्र, यक्षवर द्वीप, भूतवर समुद्र, भूतवरद्वीप, नागवर समुद्र, नागवर द्वीप, वैडूर्यसमुद्र, वैडूर्यद्वीप, वज्रवरसमुद्र, वज्रवरद्वीप, कांचनसमुद्र, कांचनद्वीप,

---

१. द. णिण्णगादइंद, ब. क. णिणिणगादइ।

रूप्यवरसमुद्र, रूप्यवरद्वीप, हिंगुलसमुद्र, हिंगुलद्वीप, अंजनवरनिम्नगाधिप, अंजनवर द्वीप, श्यामसमुद्र, श्यामद्वीप, सिंदूरसमुद्र, सिंदूरद्वीप, हरिताल समुद्र, हरिताल द्वीप तथा मन:शिलसमुद्र और मन:शिलद्वीप, ये बत्तीस समुद्र और द्वीप बाह्यभागमें अवस्थित हैं ।। २२-२६ ।।

समस्त द्वीप-समुद्रोंका प्रमाण

चउसट्ठी-परिवज्जिद-अड्ढाइज्जंबु-रासि-रोम-समा ।
सेसंभोणिहि-दीवा, सुभ-णामा एक्क-णाम बहुवाणं ।।२७।।

अर्थ—चौंसठ कम अढ़ाई उद्धार-सागरोंके रोमों प्रमाण अवशिष्ट शुभ-नाम-धारक द्वीप-समुद्र हैं । इनमेंसे बहुतोंका एक ही नाम है ।। २७ ।।

विशेषार्थ—त्रिलोकसार गाथा ३५९ और उसकी टीकामें सर्व द्वीपसागरों की संख्या इस प्रकार दर्शाई गयी है—

$$\text{जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेद} = \left(\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}} \times \text{साधिक प० छे}^2 \times 3 \right)$$

जगच्छ्रेणीके इन अर्धच्छेदोंमेंसे ३ अर्धच्छेद घटा देनेपर राजूके अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं । यथा—

$$\text{राजूके अर्धच्छेद} = \left[\left(\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}} \times \text{साधिक प० छे}^2 \times 3 \right) - 3 \right]$$

राजूके इन अर्धच्छेदोंमेंसे जम्बूद्वीपके साधिक प० छे² कम कर देनेपर $\left[\left(\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}} \times \text{प० छे}^2 \times 3 - 3 \right) - \text{साधिक प० छे}^2 \right]$ जो अवशेष रहे उतने प्रमाण ही द्वीप-समुद्र हैं । इनमेंसे आदि-अन्तके ३२ द्वीपों और ३२ समुद्रों (६४) के नाम कह दिये गये हैं । शेष द्वीप-समुद्र भी शुभ नाम वाले हैं और इनमें बहुतसे द्वीप-समुद्र (एक) समान नाम वाले ही हैं, क्योंकि शब्द संख्यात हैं और द्वीप-समुद्र असंख्यात हैं ।

समुद्रोंके नामोंका निर्देश

जंबूदीवे लवणो, उवही कालो त्ति धादईसंडे ।
अवसेसा वारिणिही, वत्तव्वा दीव-सम-णामा ।।२८।।

अर्थ—जम्बूद्वीपमें लवणोदधि और धातकीखण्डमें कालोद नामक समुद्र हैं। शेष समुद्रों के नाम द्वीपोंके नामोंके सदृश ही कहने चाहिए ।। २८ ।।

समुद्रस्थित जलके स्वादोंका निर्देश

पत्तेयरसा जलही, चत्तारो होंति तिण्णि उदय-रसा ।
सेसं[1] खोउच्छु-रसा, तदिय-समुद्दम्मिमधु-सलिलं ।।२९।।

अर्थ—चार समुद्र प्रत्येक रस (अर्थात् अपने-अपने नामके अनुसार रसवाले), तीन समुद्र उदक (जलके स्वाभाविक स्वाद सदृश) रस और शेष समुद्र ईख रस सदृश हैं। तीसरे समुद्रमें मधु (के स्वाद) सदृश जल है ।। २९ ।।

पत्तेक्क-रसा वारुणि-लवणद्धि-घदवरो य खीरवरो ।
उदक-रसा कालोदो, पोक्खरओ सयंभुरमणो य ।।३०।।

अर्थ—वारुणीवर, लवणाब्धि, घृतवर और क्षीरवर, ये चार समुद्र प्रत्येक रस (अपने-अपने नामानुसार रस) वाले तथा कालोद, पुष्करवर और स्वयम्भूरमण, ये तीन समुद्र उदक रस (जल रसके स्वाभाविक स्वाद) वाले हैं ।। ३० ।।

समुद्रों में जलचर जीवों के सद्भाव और अभाव का दिग्दर्शन

लवणोदे कालोदे, जीवा अंतिम-सयंभुरमणम्मि ।
कम्म-मही-संबद्धे, जलयरया होंति ण हु सेसे ।।३१।।

अर्थ—कर्मभूमिसे सम्बद्ध लवणोद, कालोद और अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्रमें ही जलचर जीव हैं। शेष समुद्रोंमें नहीं हैं ।। ३१ ।।

द्वीप-समुद्रोंका विस्तार

जंबू जोयण-लक्खं, पमाण-वासा दु दुगुण-दुगुणाणि ।
विक्खंभ - पमाणाणि, लवणादि - सयंभुरमणंतं ।।३२।।

१०००००। २०००००। ४०००००। ८०००००। १६०००००। ३२०००००।

---

१. द. सेसदिय, ब. सेसंदी।

अर्थ—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन प्रमाण है। इसके आगे लवणसमुद्र से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त द्वीप-समुद्रोंके विस्तार प्रमाण क्रमशः दुगुने-दुगुने हैं ॥३२॥

विशेषार्थ—प्रत्येक द्वीप-समुद्रका विस्तार इसप्रकार है—

क्र०	नाम	विस्तार	क्र०	नाम	विस्तार
१.	जम्बूद्वीप	१ लाख योजन	७.	वारुणीवर द्वीप	६४ लाख योजन
२.	लवणसमुद्र	२ लाख योजन	८.	वारुणीवर समुद्र	१२८ लाख योजन
३.	धातकी खण्ड	४ लाख योजन	९.	क्षीरवर द्वीप	२५६ लाख योजन
४.	कालोदधि	८ लाख योजन	१०.	क्षीरवर समुद्र	५१२ लाख योजन
५.	पुष्करवरद्वीप	१६ लाख योजन	११.	घृतवर द्वीप	१०२४ लाख योजन
६.	पुष्करवर समुद्र	३२ लाख योजन	१२.	घृतवर समुद्र	२०४८ लाख योजन

एवं भूववरसायर-परियंतं दट्ठव्वं । तस्सोवरिमज्जक्खवर दीवस्स वित्थारो ॥ $\frac{-}{३५८४}$ धण जोयणाणि $\frac{६३७५}{१६}$ ॥ जक्खवर - समुद्द - वित्थारो ॥ $\frac{-}{१७९२}$ धण जोयणाणि $\frac{६३७५}{८}$ ॥ देववर - दीव ॥ $\frac{-}{८९६}$ धण $\frac{६३७५}{४}$ ॥ देववर समुद्द ॥ $\frac{-}{४४८}$ धण $\frac{६३७५}{२}$ ॥ अहिंदवरदीव ॥ $\frac{-}{२२४}$ धण ६३७५ ॥ अहिंदवरसमुद्द $\frac{-}{११२}$ धण १८७५० ॥ सयंभुवरदीव $\frac{-}{५६}$ धण ३७५०० ॥ सयंभुरमणसमुद्द $\frac{-}{२८}$ धण ७५००० ।

अर्थ—इसप्रकार भूतवर-सागर पर्यन्त ले जाना चाहिए। उसके ऊपर—

यक्षवर द्वीपका विस्तार [जगच्छ्रेणी ÷ ३५८४ = $\frac{१}{५१२}$ राजू] + $\frac{९३७५}{१६}$ यो० ।
यक्षवर समुद्रका विस्तार [ज० श्रे० ÷ १७९२ = $\frac{१}{२५६}$ राजू] + $\frac{९३७५}{८}$ यो० ।
देववर द्वीप का विस्तार [ज० श्रे० ÷ ८९६ = $\frac{१}{१२८}$ राजू] + $\frac{९३७५}{४}$ यो० ।
देववर समुद्र का विस्तार [ज० श्रे० ÷ ४४८ = $\frac{१}{६४}$ राजू] + $\frac{९३७५}{२}$ यो० ।
अहीन्द्रवर द्वीप का विस्तार [ज० श्रे० ÷ २२४ = $\frac{१}{३२}$ राजू] + ९३७५ यो० ।
अहीन्द्रवर समुद्र का विस्तार [ज० श्रे० ÷ ११२ = $\frac{१}{१६}$ राजू] + १८७५० यो० ।
स्वयम्भूरमणद्वीप का विस्तार [ज० श्रे० ÷ ५६ = $\frac{१}{८}$ राजू] + ३७५०० योजन ।
स्वयम्भूरमणसमुद्र का विस्तार [ज० श्रे० ÷ २८ = $\frac{१}{४}$ राजू] + ७५००० योजन है ।

विवक्षित द्वीप-समुद्रका वलय-व्यास प्राप्त करनेकी विधि

बाहिर-सूई-मज्झे, लक्ख-तयं मेलिदूण चउ-भजिदे ।
इच्छिय - दीवद्धीणं, वित्थारो होदि वलयाणं ।।३३।।

अर्थ—विवक्षित द्वीप-समुद्रके बाह्य-सूची-व्यासके प्रमाणमें तीन-लाख जोड़कर चारका भाग देनेपर वलय-व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है ।।३३।।

विशेषार्थ—यहाँ कालोदधि समुद्र विवक्षित है । इसका सूची-व्यास २९ लाख योजन है । इसमें तीन लाख जोड़कर ४ का भाग देनेपर कालोदधिके वलय व्यासका प्रमाण (२९००००० + ३०००००) ÷ ४ = ८ लाख योजन प्राप्त होता है ।

आदिम, मध्य और बाह्य-सूची प्राप्त करनेकी विधि

लवणादीणं रुंदं, दु-ति-चउ-गुणिदं कमा ति-लक्खूणं ।
आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूईणं होदि परिमाणं ।।३४।।

लव १००००० । ३००००० । ५००००० ।। धाद ५००००० । ९००००० । १३००००० । कालो १३००००० । २१००००० । २९००००० । एवं देववर-समुद्दत्ति दट्ठव्वं । तस्सुवरिमहिंदवर[1]-दीवस्स $\frac{-}{११२}$ रिण जोयणाणि २८१४५०[2] । मज्झिम $\frac{-\,३}{२२४}$ । रिण २७१८७५[3] । बाहिर $\frac{-}{५६}$ । रिण २६२५०० ।। अहिंदवर-समुद्दं । $\frac{-}{५६}$ रिण २६२५०० । मज्झिम $\frac{-\,३}{११२}$ । रिण २४३७५० । बाहिर $\frac{-}{२८}$ । रिण २२५००० ।। सयंभूरमणदीव । $\frac{-}{२८}$ रिण २२५००० । मज्झिम $\frac{-\,३}{५६}$ । रिण १८७५०० । बाहिर $\frac{-}{१४}$ रिण १५०००० ।। सयंभूरमणसमुद्द । $\frac{-}{१४}$ रिण १५०००० । मज्झिम $\frac{-\,३}{२८}$ । रिण ७५००० । बाहिर $\frac{-}{७}$ ।।

अर्थ—लवणसमुद्रादिकके विस्तारको क्रमशः दो, तीन और चारसे गुणाकर प्राप्त लब्धराशिमेंसे तीन लाख कम करनेपर क्रमशः आदिम, मध्यम और बाह्य सूचीका प्रमाण प्राप्त होता है ।।३४।।

विशेषार्थ—लवणसमुद्रादिमेंसे विवक्षित जिस द्वीप-समुद्रका अभ्यन्तर सूची-व्यास ज्ञात करना इष्ट हो उसके वलय-व्यासको दो से गुणित कर प्राप्त लब्धराशिमेंसे तीन लाख घटाने पर अभ्यन्तर सूची-व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है ।

---

१. द. क. ज. तिस्सुवरिवरिम । २. द. १८१२५० । ३. द. ब. २२३४ २७१८७५ ।

विवक्षित वलय-व्यासके प्रमाणको तीनसे गुणित कर तीन लाख घटाने पर मध्यम सूची-व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है।

विवक्षित वलय-व्यासको चारसे गुणितकर तीन लाख घटा देनेपर बाह्य सूची-व्यासका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

लवणसमुद्रका

अभ्यन्तर सूची-व्यास = (२००००० × २) — ३ लाख = १००००० यो० ।

मध्यम सूची-व्यास = (२००००० × ३) — ३ लाख = ३००००० यो० ।

बाह्य सूची-व्यास = (२००००० × ४) — ३ लाख = ५००००० यो० ।

धातकीखण्डका

अभ्यन्तर सूची-व्यास = (४००००० × २) — ३ लाख = ५००००० यो० ।

मध्यम सूची-व्यास = (४००००० × ३) — ३ लाख = ९००००० यो० ।

बाह्य सूची-व्यास = (४००००० × ४) — ३ लाख = १३००००० यो० "

कालोदसमुद्रका

अभ्यन्तर सूची-व्यास = (८००००० × २) — ३ लाख = १३००००० यो० ।

मध्यम सूची-व्यास = (८००००० × ३) — ३ लाख = २१००००० यो० ।

बाह्य सूची-व्यास = (८००००० × ४) — ३ लाख = २९००००० यो० ।

यथा का अर्थ—इसीप्रकार देववर समुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए। इसके बाद अहीन्द्रवर द्वीपका—

अभ्यन्तर सूची-व्यास = ($\frac{१}{२२४}$ + १३७५) × (२) — ३ लाख = $\frac{१}{११२}$ — २८१२५० यो० ।

मध्यम सूची-व्यास = ($\frac{१}{२२४}$ + १३७५) × (३) — ३ लाख = $\frac{३}{२२४}$ — २७१८७५ योजन

बाह्य सूची-व्यास = ($\frac{१}{२२४}$ + ६३७५) × (४) — ३ लाख = $\frac{१}{५६}$ — २६२५०० योजन

अहीन्द्रवर समुद्रका

अभ्यन्तर सूची-व्यास = ($\frac{१}{११२}$ + १८७५०) × (२) — ३ लाख = $\frac{१}{५६}$ — २६२५०० ।

मध्यम सूची-व्यास = ($\frac{१}{११२}$ + १८७५०) × (३) — ३ लाख = $\frac{३}{११२}$ — २४३७५० ।

बाह्य सूची-व्यास = ($\frac{१}{११२}$ + १८७५०) × (४) — ३ लाख = $\frac{१}{२८}$ — २२५००० ।

स्वयम्भूरमणद्वीपका

अभ्यन्तर सूची-व्यास=(—/५६ + ३७५००)×(२)—३ लाख=—/२८—२२५००० ।

मध्यम सूची-व्यास=(—/५६ + ३७५००)×(३)—३ लाख=३—/५६—१८७५०० ।

बाह्य सूची-व्यास=(—/५६ + ३७५००)×(४)—३ लाख=—/१४—१५०००० ।

स्वयम्भूरमण समुद्रका

अभ्यन्तर सूची-व्यास=(—/२८+७५०००)×(२)—३ लाख=—/१४—१५०००० ।

मध्यम सूची-व्यास=(—/२८+७५०००)×(३)—३ लाख=३—/२८ — ७५००० ।

बाह्य सूची-व्यास=(—/२८+७५०००)×(४)—३ लाख=—/७ या १ राजू है ।

विवक्षित द्वीप-समुद्रकी परिधिका प्रमाण

प्राप्त करनेकी विधि

जंबू-परिही-जुगलं, इच्छिय-दीवंबु-रासि-सूइ-हदं ।
जंबू-वास-विहत्तं, इच्छिय-दीवद्धि-परिहि त्ति ॥३५॥

अर्थ—जम्बूद्वीपके परिधि-युगल (स्थूल और सूक्ष्म) को अभीष्ट द्वीप एवं समुद्र की (बाह्य) सूचीसे गुणा करके उसमें जम्बूद्वीपके विस्तारका भाग देनेपर इच्छित द्वीप तथा समुद्रकी (स्थूल एवं सूक्ष्म) परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है ॥३५॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपकी स्थूल-परिधि ३ लाख योजन और सूक्ष्म-परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोस, १२८ धनुष और साधिक १३½ अंगुल है ।

लवणसमुद्र, धातकीखण्ड और कालोद समुद्र विवक्षित समुद्र एवं द्वीपादि हैं ।

लवण स० को परिधि = (जंबू० की परिधि × ल० स० का बाह्य सूची व्यास) / १०००००

लवण स० की स्थूल परिधि = (३ लाख × ५ लाख) / १ लाख

= १५ लाख योजन स्थूल परिधि ।

लवण स० की सूक्ष्म प० = (३१६२२७ यो०, ३ कोस, १२८ ध०, १३½ अंगुल) × ५ लाख / १०००००

= १५८११३८ यो० ३ कोस, ६४० धनुष, २ हाथ और १९½ अंगुल लवणसमुद्रकी सूक्ष्म परिधिका प्रमाण है ।

धातकी खण्डकी स्थूल परिधि $= \frac{\text{३ लाख} \times \text{१३ लाख}}{\text{१ लाख}}$

= ३९ लाख योजन स्थूल परिधि ।

कालोदधिकी स्थूल परिधि $= \frac{\text{३ लाख} \times \text{२९ लाख}}{\text{१ लाख}}$

= ८७ लाख योजन स्थूल परिधि ।

द्वीप-समुद्रादिकोंके जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड प्राप्त करने हेतु करण-सूत्र

बाहिर - सूई - वग्गो, अब्भंतर-सूइ-वग्ग-परिहीणो ।
लक्खस्स कदिम्मि हिदे, इच्छिय-दीवुवहि-खंड-परिमाणं ।।३६।।

२४ । १४४ । ६७२ । एवं सयंभुरमण-परियंतं वट्ठव्वं ।

अर्थ—बाह्य सूची-व्यासके वर्गमेंसे अभ्यन्तर सूची-व्यासका वर्ग घटानेपर जो प्राप्त हो उसमें एक लाख (जम्बूद्वीपके व्यास) के वर्गका भाग देनेपर इच्छित द्वीप-समुद्रोंके खण्डोंका प्रमाण (निकल) आता है ।।३६।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप बराबर खण्ड $= \frac{\text{बाह्य सूची व्यास}^2 - \text{अभ्य० सूची व्यास}^2}{१०००००^2}$

लवणसमुद्रके जम्बूद्वीप बराबर खण्ड $= \frac{\text{५ लाख}^2 - \text{१ लाख}^2}{\text{१ लाख}^2}$

= २४ खण्ड होते हैं ।

धातकी० के जम्बूद्वीप बराबर खण्ड $= \frac{\text{१३ लाख}^2 - \text{५ लाख}^2}{\text{१ लाख}^2}$

$= \frac{\text{१६९ ला ला} - \text{२५ ला ला}}{\text{१ ला ला}}$

= १४४ खण्ड होते हैं ।

कालोद के जम्बूद्वीप बराबर खण्ड $= \frac{\text{२९ लाख}^2 - \text{१३ लाख}^2}{\text{१ लाख}^2}$

$= \frac{\text{८४१ ला ला} - \text{१६९ ला ला}}{\text{१ ला ला}}$

= ६७२ खण्ड होते हैं ।

इसप्रकार स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त जानना चाहिए।

जम्बूद्वीपको आदि लेकर नौ द्वीपों और लवणसमुद्र को आदि लकर नौ समुद्रोंके
अधिपति देवोंके नाम निर्देश

जंबू-लवणादीणं, दीवुवहीणं च अहिवई दोण्णि।
पत्तेक्कं वेंतरया, ताणं णामाणि [1]साहेमि ॥३७॥

अर्थ—जम्बूद्वीप एवं लवणसमुद्रादिकोंमेंसे प्रत्येकके अधिपति जो (दो-दो) व्यन्तरदेव हैं, उनके नाम कहता हूं ॥ ३७ ॥

आदर-अणादरक्खा, जंबूदीवस्स अहिवई होंति।
तह य पभासो पियदंसणो य लवणंबुरासिम्मि ॥३८॥

अर्थ—जम्बूद्वीपके अधिपति देव आदर और अनादर हैं तथा लवणसमुद्रके प्रभास और प्रियदर्शन हैं ॥ ३८ ॥

भुंजेदि प्पिय-णामा, दंसण-णामा य धादईसंडे।
कालोदयस्स पहुणो, काल-महाकाल-णामा य ॥३९॥

अर्थ—प्रिय और दर्शन नामक दो देव धातकीखण्ड द्वीपका उपभोग करते हैं तथा काल और महाकाल नामक दो देव कालोदक-समुद्रके प्रभु हैं ॥ ३९ ॥

पउमो पुंडरियक्खो, दीवं भुंजंति पोक्खरवरक्खं
चक्खु-सुचक्खू पहुणो, होंति य माणुसुत्तर-गिरिस्स ॥४०॥

अर्थ—पद्म और पुण्डरीक नामक दो देव पुष्करवरद्वीपको भोगते हैं। चक्षु और सुचक्षु नामक दो देव मानुषोत्तर पर्वतके प्रभु हैं ॥ ४० ॥

सिरिपह[2]-सिरिधर-णामा, देवा पालंति पोक्खर-समुद्दं।
वरुणो वरुण-पहक्खो, भुंजंते वारुणी-दीवं ॥४१॥

अर्थ—श्रीप्रभ और श्रीधर नामक दो देव पुष्कर-समुद्रका तथा वरुण और वरुणप्रभ नामक दो देव वारुणीवर द्वीपका रक्षण करते हैं ॥ ४१ ॥

---

१. द. साहिमि, ब. क. ज. साहिम्मि। २. द. ब. क. ज. सिरिपहु।

वारुणिवर-जलहि-पहू, णामेणं मज्झि-मज्झिमा देवा ।
पंडुरय[1] - पुप्फदंता, दीवं भुंजंति खीरवरं ॥४२॥

अर्थ—मध्य और मध्यम नामक दो देव वारुणीवर-समुद्रके प्रभु हैं। पाण्डुर और पुष्पदन्त नामक दो देव क्षीरवर-द्वीपकी रक्षा करते हैं ॥ ४२ ॥

विमल-पहक्खो विमलो, खीरवरंभोणिहस्स अहिवइणो ।
सुप्पह - घदवर - देवा, घदवर - दीवस्स अहिणाहा ॥४३॥

अर्थ :—विमलप्रभ और विमल नामक दो देव क्षीरवर-समुद्रके तथा सुप्रभ और घृतवर नामक दो देव घृतवर द्वीपके अधिपति हैं ॥ ४३ ॥

उत्तर-महप्पहक्खा, देवा रक्खंति घदवरंबुणिहिं ।
कणय-कणयाभ-णामा, दीवं पालंति खोदवरं[2] ॥४४॥

अर्थ—उत्तर और महाप्रभ नामक दो देव घृतवर-समुद्रकी तथा कनक और कनकाभ नामक दो देव क्षौद्रवर-द्वीपकी रक्षा करते हैं ॥ ४४ ॥

पुण्णं पुण्ण-पहक्खा, देवा रक्खंति खोदवर-सिंधुं ।
णंदीसरम्मि दीवे, गंध - महागंधया पहुणो ॥४५॥

अर्थ पूर्ण और पूर्णप्रभ नामक दो देव क्षौद्रवर-समुद्रकी रक्षा करते हैं। गंध और महा-गंध नामक दो देव नन्दीश्वर द्वीपके प्रभु हैं ॥ ४५ ॥

णंदीसर-वारिणिहिं, रक्खंते[3] णंदि-णंदिपह-णामा ।
भद्द - सुभद्दा देवा, भुंजंते अरुणवर - दीवं ॥४६॥

अर्थ—नन्दि और नन्दिप्रभ नामक दो देव नन्दीश्वर-समुद्रकी तथा भद्र और सुभद्र नामक दो देव अरुणवर-द्वीपकी रक्षा करते हैं ॥ ४६ ॥

अरुणवर-वारिरासिं, रक्खंते अरुण-अरुणपह-णामा ।
अरुणब्भासं दीवं, भुंजंति सुगंध-सव्वगंध-सुरा ॥४७॥

अर्थ—अरुण और अरुणप्रभ नामक (व्यन्तर) देव अरुणवर समुद्रकी तथा सुगन्ध और सर्वगन्ध नामक देव अरुणाभास-द्वीपकी रक्षा करते हैं ॥ ४७ ॥

---

१. द. ब. क. ज. पंडरय । २. द. ब. क. ज. खूरवरं । ३. द. क. रक्खंतं, ब. रक्खंतति ।

शेष द्वीप-समुद्रोंके अधिपति देवोंका निर्देश

सेसाणं दीवाणं, वारि-णिहीणं[1] च अहिवई देवा ।
जे केइ ताण णामं, उवएसो संपहि पणट्ठो ॥४८॥

अर्थ—शेष द्वीप-समुद्रोंके जो कोई भी अधिपति देव हैं, उनके नामोंका उपदेश इस समय नष्ट हो गया है ॥ ४८ ॥

उत्तर-दक्षिण अधिपति देवोंका निर्देश

पढम-पवण्णिद-देवा, दक्खिण-भागम्मि दीव-उवहीणं ।
चरिमुच्चारिद - देवा, चेट्ठंते उत्तरे भाए ॥४९॥

अर्थ—इन देवों (युगलों) में से पहले कहे हुए देव द्वीप-समुद्रोंके दक्षिणभागमें तथा अन्तमें कहे हुए देव उत्तरभागमें स्थित हैं ॥ ४९ ॥

णिय-णिय-दीवुवहीणं, णिय-णिय-तल-संट्ठिदेसु णयरेसुं ।
बहुविह - परिवार - जुदा, कीडंते बहु - विणोदेण ॥५०॥

अर्थ—ये देव अपने-अपने द्वीप-समुद्रोंमें स्थित अपने-अपने नगर-तलोंमें बहुत प्रकारके परिवारसे युक्त होकर बहुत विनोदपूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥ ५० ॥

उपर्युक्त देवोंकी आयु एवं उत्सेधादिका वर्णन

एक्क-पलिदोवमाऊ, पत्तेक्कं दस-धणूणि उत्तुंगा ।
भुंजंते विविह - सुहं, समचउरस्संग - संठाणा ॥५१॥

अर्थ—इनमेंसे प्रत्येककी आयु एक पल्योपम है एवं ऊँचाई दस-धनुष प्रमाण है। ये सब समचतुरस्रसंस्थानसे युक्त होते हुए अनेक प्रकारके सुख भोगते हैं ॥ ५१ ॥

नन्दीश्वरद्वीपकी अवस्थिति एवं ख्याति

जंबू-दीवाहिंतो, अट्ठमओ होदि भुवण-विक्खादो ।
णंदीसरो त्ति दीवो, णंदीसर-जलहि-परिखित्तो ॥५२॥

अर्थ—भुवन-विख्यात एवं नन्दीश्वर-समुद्रसे वेष्टित जम्बूद्वीपसे आठवाँ द्वीप 'नन्दीश्वर' है ॥ ५२ ॥

---

१. द. ब. क. ज. णिहिं च।

एक्क-सया तेसट्ठी, कोडीओ जोयणाणि लक्खाणि ।
चुलसीदी तद्दीवे, विक्खंभो चक्कवालेणं ॥५३॥

१६३८४०००००० ।

अर्थ—उस द्वीपका मण्डलाकार विस्तार एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख (१६३८४००००००) योजन प्रमाण है ॥ ५३ ॥

विशेषार्थ—इष्ट गच्छके प्रमाणमेंसे एक कम करके जो प्राप्त हो उतनी बार दो-दोका परस्पर गुणाकर लब्धको एक लाखसे गुणित करनेपर वलय-व्यास प्राप्त होता है ।

जैसे—यहाँ द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित गणनासे १५ वाँ नन्दीश्वरद्वीप इष्ट है । उपर्युक्त करणसूत्रानुसार इसमेंसे १ घटाकर जो (१५ − १ = १४) शेष बचे उतनी (१४) वार दो का संवर्गन कर लब्धमें एक लाख का गुणा करना चाहिए । यथा $२^{१४}$ × १००००० = १६३८४०००००० योजन नन्दीश्वरद्वीपका विस्तार है ।

नन्दीश्वरद्वीपकी बाह्य-सूचीका प्रमाण

पणवण्णाहिय छस्सय, कोडीओ जोयणाणि तेत्तीसा ।
लक्खाणि तस्स बाहिर - सूचीए होदि परिमाणं ॥५४॥

६५५३३०००००० ।

अर्थ—उस नन्दीश्वरद्वीपकी बाह्य-सूचीका प्रमाण छहसौ पचपन करोड़ तैंतीस लाख (६५५३३००००००) योजन है ॥ ५४ ॥

विशेषार्थ—इसी अधिकारकी गाथा ३४ के नियमानुसार नन्दीश्वर द्वीपकी सूचियोंका प्रमाण इसप्रकार है—

नन्दीश्वरद्वीपकी अभ्यन्तर सूची = (१६३८४०००००० × २) − ३ लाख = ३२७६५०००००० योजन है ।

इसी द्वीपकी मध्यम सूची = (१६३८४०००००० × ३) − ३ लाख = ४९१४९०००००० योजन प्रमाण है ।

इसी द्वीपकी बाह्य सूची = (१६३८४०००००० × ४) − ३ लाख = ६५५३३०००००० योजन प्रमाण है ।

नन्दीश्वरद्वीपकी अभ्यन्तर और बाह्य-परिधिका प्रमाण

तिदय-पण-सत्त-दु-ख-दो-एक्कच्छत्तिय-सुण्ण-एक्क-अंक-कमे[1] ।
जोयणया णंदीसर - अब्भंतर - परिहि - परिमाणं ॥५५॥

१०३६१२०२७५३ ।

बाहत्तरि-जुद-दु-सहस्स-कोडी-तेत्तीस-लक्ख-जोयणया ।
चउवण्ण-सहस्साइं, इगि-सय-णउदी य बाहिरे परिही ॥५६॥

२०७२३३५४१९० ।

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीप की अभ्यन्तर परिधिका प्रमाण अंक-क्रमसे तीन, पांच, सात, दो, शून्य, दो, एक, छह, तीन, शून्य और एक, इन अंकोंसे जो संख्या उत्पन्न हो उतने (१०३६१२०२७५३) योजन है ॥ ५५ ॥

इसकी बाह्य परिधि दो हजार बहत्तर करोड़ तैंतीस लाख चउवन हजार एक सौ नब्बे (२०७२३३५४१९०) योजन प्रमाण है ॥ ५६ ॥

विशेषार्थ—चतुर्थाधिकार गाथा ९ के नियमानुसार नन्दीश्वरद्वीपकी अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य परिधि इसप्रकार है—

नन्दीश्वर द्वीपकी अभ्यन्तर परिधि $= \sqrt{(३२७६५००००००)^2 \times १०} =$ १०३६१२०२७५३ योजन, २ कोस, २३७ धनुष, ३ हाथ और साधिक १२ अंगुल प्रमाण है।

इसी द्वीपकी मध्यम परिधि—$\sqrt{(४९१४९००००००)^2 \times १०} =$ १५५४२२७८४७१ योजन, ३ कोस, १६६२ धनुष, २ हाथ और साधिक ५ अंगुल प्रमाण है।

इसी द्वीप की बाह्य परिधि $= \sqrt{(६५५३३००००००)^2 \times १०} =$ २०७२३३५४१९० यो० १ कोस, १०५१ धनुष, २ हाथ और साधिक २ अंगुल प्रमाण है।

अंजनगिरि पर्वतोंका कथन—

णंदीसर - बहुमज्झे, पुव्व - दिसाए हवेदि सेलवरो ।
अंजणगिरि विक्खादो, णिम्मल - वर - इंदणीलमओ ॥५७॥

---

१. द. ब. क. ज. कमो ।

अर्थ—नन्दीश्वर द्वीपके बहुमध्यभागमें पूर्व-दिशाकी ओर अञ्जनगिरि नामसे प्रसिद्ध, निर्मल, उत्तम-इन्द्रनीलमरिणमय श्रेष्ठ पर्वत है ।। ५७ ।।

जोयण-सहस्स-गाढो, चुलसीदि-सहस्समेत्त-उच्छेहो ।
सव्वेसिं चुलसीदी-सहस्स-रुंदो अ सम-वट्टो ।।५८।।

१००० । ८४००० । ८४००० ।

अर्थ—यह पर्वत एक हजार (१०००) योजन गहरा, चौरासी हजार (८४०००) योजन ऊँचा और सब जगह चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण विस्तार युक्त समवृत्त है ।। ५८ ।।

मूलम्मि उवरिमतले, तड-वेदीओ विचित्त-वण-संडा ।
वर-वेदीओ तस्स य, पुव्वोदित-वण्णणा होंति[1] ।।५९।।

अर्थ—उस (अंजनगिरि) के मूल एवं उपरिम-भागमें तट-वेदियाँ तथा अनुपम वन-खण्ड स्थित हैं । उसकी उत्तम वेदियोंका वर्णन पूर्वोक्त वेदियोंके ही सदृश है ।। ५९ ।।

चार द्रहोंका कथन

चउसु दिसा-भागेसुं, चत्तारि दहा हवंति तग्गिरिणो ।
पत्तेक्कमेक्क-जोयण-लक्ख-पमाणा य चउरस्सा ।।६०।।

१००००० ।

अर्थ—उस पर्वतके चारों ओर चार दिशाओंमें चौकोण चार द्रह हैं । इनमेंसे प्रत्येक द्रह एक लाख (१०००००) योजन विस्तार वाला एवं चतुष्कोण है ।। ६० ।।

जोयण-सहस्स-गाढा, टंकुक्किण्णा य जलयर-विमुक्का ।
फुल्लंत-कमल-कुवलय-कुमुद - वर्ण - मोद - सोहिल्ला ।।६१।।

१००० ।

अर्थ—फूले हुए कमल, कुवलय और कुमुदवनोंकी सुगन्धसे सुशोभित ये द्रह एक हजार (१०००) योजन गहरे, टंकोत्कीर्ण एवं जलचर जीवोंसे रहित हैं ।। ६१ ।।

पूर्व दिशागत-वापिकाओंका प्ररूपण

णंदा - णंदवदीओ, णंदुत्तर - णंदिघोस - णामा य ।
एदाओ वावीओ, पुव्वादि - पदाहिण - कमेणं ।।६२।।

---

१. द. ब. क. ज. होदि ।

अर्थ—नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिघोषा नामक ये वापिकायें पूर्वादिक दिशाओं में प्रदक्षिणा रूपसे अवस्थित हैं ।। ६२ ।।

वापिकाओंके वन-खण्डोंका वर्णन

वावीण असोय-वणं, सत्तच्छद-चंपयाणि विविहाणि ।
चूववणं पत्तेक्कं, पुव्वादि - दिसासु चत्तारि ।।६३।।

अर्थ—उन वापिकाओंकी पूर्वादि चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें क्रमशः अशोक वन, सप्तच्छद, चम्पक और आम्रवन हैं ।। ६३ ।।

जोयण-लक्खायामा, तदद्ध-वासा हवंति वण-संडा ।
पत्तेक्कं चेत्त-दुमा, वण-णाम-जुदा वि एदाणं ।।६४।।

१००००० । ५०००० ।

अर्थ—ये वन-खण्ड, एक लाख (१०००००) योजन लम्बे और इससे अर्ध (५०००० योजन) विस्तार सहित हैं । इनमेंसे प्रत्येक वनमें, वनके नामसे संयुक्त चैत्यवृक्ष हैं ।। ६४ ।।

दधिमुख नामक पर्वतोंका निरूपण

वावीणं बहु-मज्झे, दहिमुह-णामा हवंति दहिवण्णा ।
एक्केक्का वर-गिरिणो, पत्तेक्कं अयुद-जोयणुच्छेहो ।।६५।।

१००००

अर्थ—वापियोंके बहु-मध्यभागमें दहीके सदृश वर्ण वाला एक-एक दधिमुख नामक उत्तम पर्वत है । प्रत्येक पर्वतकी ऊँचाई दस हजार (१००००) योजन प्रमाण है ।। ६५ ।।

तम्मेत्त-वास-जुत्ता, सहस्स-गाढम्मि वज्जमय-वट्टा ।
ताडोवरिम-तडेसुं, तड-वेदी-वर-वणाणि विविहाणि ।।६६।।

१०००० । १००० ।

अर्थ—उतने (१०००० योजन) प्रमाण विस्तार सहित उक्त पर्वत एक हजार (१०००) योजन गहराईमें वज्रमय एवं गोल हैं । इनके तटोंपर तट-वेदियाँ और विविध प्रकारके वन हैं ।।६६।।

रतिकर पर्वतोंका कथन

वावीणं बाहिरए, दोसुं कोणेसु दोण्णि पत्तेक्कं ।
रतिकर-णामा गिरिणो, कणयमया दहिमुह-सरिच्छा ।।६७।।

अर्थ—वापियोंके दोनों बाह्य कोनोंमेंसे प्रत्येकमें स्वर्णमय रतिकर नामक दो पर्वत दधि-मुखोंके आकार सदृश हैं ॥ ६७ ॥

जोयण-सहस्स-वासा, तेत्तिय-मेत्तोदया य पत्तेक्कं ।
अड्ढाइज्ज-सयाइ य, अवगाढा रतिकरा[1] गिरिणो[2] ॥६८॥

१००० । १००० । २५० ।

अर्थ—प्रत्येक रतिकर पर्वतका विस्तार एक हजार (१०००) योजन, इतनी (१००० यो०) ही ऊँचाई और अढ़ाई सौ (२५०) योजन प्रमाण अवगाह (नींव) है ॥ ६८ ॥

ते चउ-चउ-कोणेसुं, एक्केक्क-दहस्स होंति चत्तारि ।
लोयविणिच्छिय - कत्ता, एवं णियमा परूवेंति ॥६९॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—वे रतिकर पर्वत प्रत्येक द्रहके चारों कोनोंमें चार होते हैं, इसप्रकार लोक विनिश्चय कर्ता नियमसे निरूपण करते हैं ॥ ६९ ॥

पाठान्तर ।

नन्दीश्वरद्वीपकी प्रत्येक दिशामें तेरह-तेरह जिनालयों की अवस्थिति

एक्क-चउ-अट्ठ-अंजण-दहिमुह-रइयर-गिरीण सिहरम्मि ।
चेट्ठदि[3] वर - रयणमओ, एक्केक्क-जिणिद-पासादो ॥७०॥

अर्थ—एक अञ्जनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर पर्वतोंके शिखरों पर उत्तम रत्नमय एक-एक जिनेन्द्र मन्दिर स्थित हैं ॥ ७० ॥

नन्दीश्वरद्वीप स्थित जिनालयोंकी ऊँचाई आदिका प्रमाण

जं भद्दसाल-वण-जिण-घराण उस्सेह-पहुदि-उवइट्ठं ।
तेरस - जिण - भवणाणं, तं एदाणं पि वत्तव्वं ॥७१॥

अर्थ—भद्रशाल वनके जिन-गृहोंकी जो ऊँचाई आदि बतलाई है, वही इन तेरह जिन-भवनों की भी कहना चाहिए ॥ ७१ ॥

विशेषार्थ—चतुर्थाधिकार गाथा २०२९ में भद्रशालवन स्थित जिनालयोंकी लम्बाई-चौड़ाई आदि पाण्डुकवन स्थित जिनालयोंकी लम्बाई-चौड़ाई आदिसे चौगुनी कही गई है और इसी

---

१. द. ब. रतिकर । २. ज. गिरिणा । ३. द. ब. क. ज. चेट्ठंति हु ।

अधिकारकी गाथा १८७९-१८८० में पाण्डुकवन स्थित जिनालयोंकी लम्बाई १०० कोस, चौड़ाई ५० कोस, ऊँचाई ७५ कोस और नींव ½ कोस कही गई है अतः भद्रशालवन एवं नन्दीश्वरद्वीप स्थित जिनालयोंका प्रमाण इससे चौगुना अर्थात् १०० योजन लम्बाई, ५० यो० चौड़ाई, ७५ यो० ऊँचाई और २ यो० की नींव जानना चाहिए।

पूजा, नृत्य और वाद्यों द्वारा भक्ति प्रदर्शन

जल-गंध-कुसुम-तंदुल-वर-चरु-फल-दीव-धूव-पहुदीहिं ।
अच्चंते थुण-माणा, जिणिद-पडिमाओ देवा[1] य ।। ७२ ।।

अर्थ—इन मन्दिरोंमें देव जल, गन्ध, पुष्प, तन्दुल, उत्तम नैवेद्य, फल, दीप और धूपादिक द्रव्योंसे जिनेन्द्र प्रतिमाओंकी स्तुति-पूर्वक पूजा करते हैं ।। ७२ ।।

जोइसय-वाणवेंतर-भावण-सुर-कप्पवासि-देवीओ ।
णच्चंति य गायंति य, जिण-भवणेसुं विचित्त-भंगीहिं ।।७३।।

अर्थ—ज्योतिषी, वानव्यन्तर, भवनवासी और कल्पवासी देवोंकी देवियाँ इन जिन-भवनोंमें अद्भुत रीतिसे नाचती और गाती हैं ।। ७३ ।।

भेरी-मद्दल-घंटा-पहुदीणि विविह-दिव्व-वज्जाणि
वायंते देववरा[2], जिणवर - भवणेसु भत्तीए ।। ७४ ।।

अर्थ—जिनेन्द्र-भवनोंमें उत्तम देव भक्ति-पूर्वक भेरी, मर्दल और घण्टा आदि अनेक प्रकार के दिव्य बाजे बजाते हैं ।। ७४ ।।

दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा स्थित वापिकाओंके नाम

एवं दक्खिण-पच्छिम-उत्तर-भागेसु होंति दिव्व-दहा ।
णवरि विसेसो णामा, पउमिणि-संठाण अण्णाणि ।।७५।।

अर्थ—इसीप्रकार (पूर्व दिशाके सदृश ही) दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भागोंमें भी दिव्य द्रह हैं। विशेष इतना है कि इन दिशाओंमें स्थित कमल युक्त वापियोंके नाम भिन्न-भिन्न हैं ।। ७५ ।।

पुव्वादीसुं अरजा, विरजासोका य वीदसोको त्ति ।
दक्खिण - अंजण - सेले, चत्तारो पउमिणीसंडा ।।७६।।

---

१. द. ब. क. ज. देवाणि । २. द. ब. क. ज. देववरो ।

अर्थ—दक्षिण अञ्जनगिरिकी पूर्वादिक दिशाओंमें अरजा, विरजा, अशोका और वीत-शोका नामक चार वापिकाएँ हैं ।। ७६ ।।

विजय त्ति वइजयंती. जयंति णामापराजिदा तुरिमा ।
पच्छिम - अंजण - सेले[1], चत्तारो कमलिणीसंडा ।।७७।।

अर्थ—पश्चिम अञ्जनगिरिकी चारों दिशाओंमें विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और चौथी अपराजिता, इसप्रकार ये चार वापिकाएँ हैं ।। ७७ ।।

रम्मा-रमणीयाओ, सुप्पहु - णामा य सव्वदो - भद्दा ।
उत्तर - अंजण - सेले, पुव्वादिसु कमलिणीसंडा ।।७८।।

अर्थ—उत्तर अञ्जनगिरिकी पूर्वादिक दिशाओंमें रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतो-भद्रा नामक चार वापिकाएँ हैं ।। ७८ ।।

वनोंमें अवस्थित प्रासाद और उनमें रहनेवाले देवोंका कथन

एक्केक्का[2] पासादा, चउसट्ठि-वणेसु अंजणगिरीणं ।
धुव्वंत-धय-वडाया, हवंति वर-रयण-कणयमया[3] ।।७९।।

अर्थ—अञ्जनगिरियोंके चौंसठ वनोंमें फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे संयुक्त उत्तम रत्न एवं स्वर्णमय एक-एक प्रासाद है ।। ७९ ।।

विशेषार्थ—नन्दीश्वरद्वीपकी चारों दिशाओंमें एक-एक अञ्जनगिरि पर्वत है । प्रत्येक अंजनगिरिकी चारों दिशाओंमें एक-एक वापिका है और प्रत्येक वापिकाकी प्रत्येक दिशामें एक-एक वन है ।

इसप्रकार एक दिशामें एक अञ्जनगिरिकी चार वापिकाओं सम्बन्धी १६ वन हैं । चारों दिशाओंके ६४ वन हैं और प्रत्येक वनमें एक-एक प्रासाद हैं ।

बासट्ठि जोयणाणि, उदओ इगितीस ताण वित्थारो ।
वित्थार-समो दीहो, वेदिय-चउ-गोउरेहि परियरिओ ।।८०।।

अर्थ—इन (प्रासादों) की ऊँचाई बासठ योजन और विस्तार इकतीस योजन प्रमाण है । इनकी लम्बाई भी विस्तारके सदृश इकतीस योजन प्रमाण ही है । ये सब प्रासाद वेदियों और चार-गोपुरोंसे व्याप्त हैं ।। ८० ।।

---

१. द. ब. क ज. सेला । २. द. ज. एक्केक्कं । ३. ब. कणयमाला ।

वण-संड-णाम-जुत्ता[1], वेंतर - देवा वसंति एदेसु ।
मणिमय-पासादेसुं, बहुविह-परिवार-परियरिया ॥८१॥

अर्थ—इन मणिमय प्रासादोंमें वन-खण्डोंके नामोंसे संयुक्त व्यन्तर देव बहुत प्रकारके परिवारसे व्याप्त होकर रहते हैं ॥ ८१ ॥

नोट—नदीश्वरद्वीपकी चारों दिशा सम्बन्धी ५२ जिनालयोंका चित्रण इसप्रकार है—

1. ब. ब. क. ज. जुत्तो ।
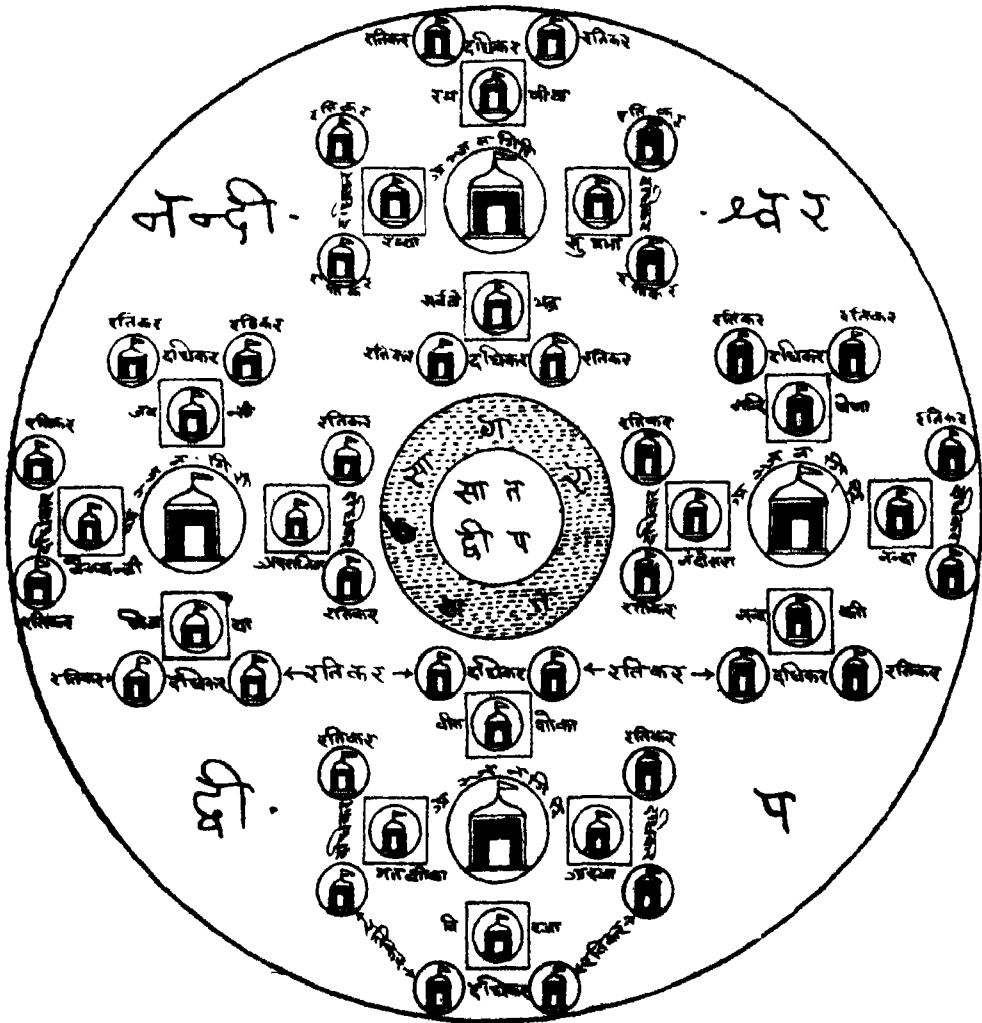
णंदीसर-विदिसासुं, अंजण-सेला हवंति चत्तारि।
रइकर - माण[1] - सरिच्छा, केई एवं परूवंति ॥८२॥

पाठान्तरम्।

अर्थ—नन्दीश्वरद्वीपकी विदिशाओंमें रतिकर पर्वतोंके सदृश परिमाणवाले चार अञ्जन-शैल हैं। इसप्रकार भी कोई आचार्य निरूपण करते हैं॥ ८२॥

पाठान्तर।

नन्दीश्वर द्वीपमें विशिष्ट पूजनके समयका निर्धारण

वरिसे-वरिसे चउ-विह-देवा णंदीसरम्मि दीवम्मि।
आसाढ - कत्तिएसुं, फग्गुण - मासे समायंति ॥८३॥

अर्थ—चारों प्रकारके देव नन्दीश्वर द्वीपमे प्रत्येक वर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मासमें आते हैं॥ ८३॥

नन्दीश्वरद्वीपमें सौधर्म आदि १६ इन्द्रोंका पूजनके लिए आगमन

एरावणमारूढो, दिव्व - विभूदीए भूसिदो रम्मो।
णालियर - पुण्ण - पाणी, सोहम्मो एदि भत्तीए ॥८४॥

अर्थ—इससमय ऐरावत हाथीपर आरूढ़ और दिव्य विभूतिसे विभूषित, रमणीय सौधर्म इन्द्र हाथमें पवित्र नारियल लिए हुए भक्तिसे यहाँ आता है॥ ८४॥

वर - वारणमारूढो, वर-रयण-विभूसणेहि सोहंतो।
पूग - फल - गोच्छ - हत्थो, ईसाणिंदो वि भत्तीए ॥८५॥

अर्थ—उत्तम हाथीपर आरूढ़ और उत्कृष्ट रत्न-विभूषणोंसे सुशोभित ईशान इन्द्र भी हाथमें सुपारी फलोंके गुच्छे लिये हुए भक्तिसे यहाँ आता है॥ ८५॥

वर-केसरिमारूढो[2], णव-रवि-सारिच्छ-कुंडलाभरणो।
चूद-फल-गोच्छ-हत्थो, सणक्कुमारो वि भत्ति - जुदो ॥८६॥

अर्थ उत्तम सिंहपर चढ़कर, नवीन सूर्यके सदृश कुण्डलोंसे विभूषित और हाथमें आम्र-फलोंके गुच्छे लिये हुए सनत्कुमार इन्द्र भी भक्तिसे युक्त होता हुआ यहाँ आता है॥ ८६॥

---

१. द. ब. क. ज. णाम। २. द. ज. केसर।

आरूढो वर-तुरयं, वर-भूसण-भूसिदो विविह-सोहो ।
कदली - फल - लुंबि - हत्थो, माहिंदो एदि भत्तीए ॥८७॥

अर्थ—श्रेष्ठ घोड़ेपर चढ़कर, उत्तम भूषणोंसे विभूषित और विविध प्रकारकी शोभाको प्राप्त माहेन्द्र इन्द्र लटकते हुए केले हाथमें लेकर भक्तिसे यहाँ आता है ॥ ८७ ॥

हंसम्मि चंद - धवले, आरूढो विमल-देह-सोहिल्लो ।
वर-केई-कुसुम-करो, भत्ति - जुदो एदि बम्हिंदो ॥८८॥

अर्थ – चन्द्र सदृश धवल हंसपर आरूढ़, निर्मल शरीरसे सुशोभित और भक्तिसे युक्त ब्रह्मेन्द्र उत्तम केतकी पुष्पको हाथमें लेकर आता है ॥ ८८ ॥

कोंच-विहंगारूढो, वर-चामर-विविह-छत्त-सोहंतो ।
पप्फुल्ल-कमल-हत्थो, एदि हु बम्हुत्तरिंदो वि ॥८९॥

अर्थ—क्रौंच पक्षीपर आरूढ़, उत्तम चँवर एवं विविध छत्रसे सुशोभित और खिला हुआ कमल हाथमें लेकर ब्रह्मोत्तर इन्द्र भी यहाँ आता है ॥ ८९ ॥

नोट—ऐसा ज्ञात होता है कि शायद यहाँ लांतव और कापिष्ठ इन्द्रकी भक्तिको प्रदर्शित करनेवाली दो गाथाएँ छूट गई हैं ।

वर - चक्कवायरूढो, कुंडल-केयूर-पहुदि-दिप्पंतो ।
सयवंती-कुसुम-करो, सुक्किंदो भत्ति-भरिद-मणो ॥९०॥

अर्थ—उत्तम चक्रवाकपर आरूढ़ कुण्डल और केयूर आदि आभरणोंसे देदीप्यमान एवं भक्तिसे पूर्ण मन-वाला शुकेन्द्र सेवन्ती पुष्प हाथमें लिये हुए यहाँ आता है ॥ ९० ॥

कीर - विहंगारूढो, महसुक्किंदो वि एदि भत्तीए ।
दिव्व-विभूदि-विभूसिद-देहो वर-विविह-कुसुम-दाम करो ॥९१॥

अर्थ—तोता पक्षीपर चढ़कर, दिव्य विभूतिसे विभूषित शरीरको धारण करनेवाला तथा उत्तम एवं विविध प्रकारके फूलोंकी माला हाथमें लिये हुए महाशुक्रेन्द्र भी भक्ति वश यहाँ आता है ॥ ९१ ॥

णीलुप्पल-कुसुम-करो, कोइल-वाहण-विमाणमारूढो ।
वर - रयण - भूसियंगो, [1]सदरिंदो एदि भत्तीए ॥९२॥

---

1. द. ब. क. ज. सवारिंदो ।

अर्थ—कोयल-वाहन विमानपर आरूढ़, उत्तम रत्नोंसे अलंकृत शरीरसे संयुक्त और नील-कमलपुष्प हाथमें धारण करनेवाला शतार इन्द्र भक्तिसे प्रेरित होकर यहाँ आता है ।। ९२ ।।

गरुड-विमाणारूढो, दाडिम-फल-लुंबि-सोहमाण-करो ।
जिण-चलण-भत्ति-जुत्तो, एदि सहस्सार - इंदो वि ।।९३।।

अर्थ—गरुड़विमान पर आरूढ़, अनार फलोंके गुच्छेसे शोभायमान हाथवाला और जिन-चरणोंकी भक्तिमें अनुरक्त हुआ सहस्रार इन्द्र भी आता है ।। ९३ ।।

विहगाहिव-मारूढो, पणसप्फल-लुंबि-लंबमाण-करो ।
वर-दिव्व - विभूदीए, आगच्छदि आणदिंदो वि ।।९४।।

अर्थ—विहगाधिप अर्थात् गरुड़पर आरूढ़ और पनस अर्थात् कटहल फलके गुच्छेको हाथमें लिये हुए आनतेन्द्र भी उत्तम एवं दिव्य विभूतिके साथ यहाँ आता है ।। ९४ ।।

पउम-विमाणारूढो, पाणद-इंदो वि एदि भत्तीए ।
तुंबुरु-फल-लुंबि-करो, वर - मंडल - मंडियायारो ।।९५।।

अर्थ—पद्म विमानपर आरूढ़ उत्तम आभरणोंसे मण्डित आकृतिसे संयुक्त और तुम्बुरु फलके गुच्छेको हाथमें लिये हुए प्राणतेन्द्र भी भक्तिवश होकर यहाँ आता है ।। ९५ ।।

परिपक्क[1]-उच्छु-हत्थो, कुमुद-विमाणं विचित्तमारूढो ।
विविहालंकार - धरो, [2]आगच्छइ आरणिंदो वि ।।९६।।

अर्थ—अद्भुत कुमुद-विमानपर आरूढ, पके हुए गन्नेको हाथमें धारण करनेवाला आरणेन्द्र भी विविध-प्रकारके अलंकार धारण करके यहाँ आता है ।। ९६ ।।

आरूढो वर-मोरं, वलयंगद - मउड - हार-सोहंतो[3] ।
ससि-धवल-चमर-हत्थो, आगच्छइ अच्चुदाहिवई ।।९७।।

अर्थ—उत्तम मयूरपर चढ़कर, कटक, अंगद, मुकुट एवं हारसे सुशोभित और चन्द्र सदृश धवल चँवरको हाथमें लिये हुए अच्युतेन्द्र यहाँ आता है ।। ९७ ।।

भवनत्रिक देवोंका पूजाके लिये आगमन

णाणाविह-वाहणया, णाणा-फल-कुसुम-दाम-भरिद-करा ।
णाणा-विभूदि-सहिदा, जोइस-वण-भवण एंति भत्ति-जुदा ।।९८।।

---

१. द. ज. परिपिक्क । २. द. ब. क. ज. आगच्छिय । ३. द. ब. क. ज. संहुत्तो ।

अर्थ—नाना प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़, नाना-प्रकारकी विभूति सहित, अनेक फल एवं पुष्पमालाएँ हाथोंमें लिये हुए ज्योतिषी, व्यन्तर तथा भवनवासी देव भी भक्तिसे संयुक्त होकर यहाँ आते हैं ॥ ९८ ॥

आगच्छिय णंदीसर-वर-दीव-जिणिंद-दिव्व[1]-भवणाइं ।
बहुविह - थुवि - मुहल - मुहा, पदाहिणाहिं पकुव्वंति ॥९९॥

अर्थ—इसप्रकार ये देव नन्दीश्वर द्वीपके दिव्य जिनेन्द्र भवनोंमें आकर नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे वाचाल-मुख होते हुए प्रदक्षिणाएँ करते हैं ॥ ९९ ॥

पूजन प्रारम्भ करते समय दिशाओंका विभाजन

पुव्वाए कप्पवासी, भवणसुरा दक्खिणाए वेंतरया[2] ।
पच्छिम - दिसाए तेसुं, जोइसिया उत्तर - दिसाए ॥१००॥
णिय-णिय-विभूदि-जोग्गं, महिमं कुव्वंति थोत्त-बहुल-मुहा ।
णंदीसर - जिणमंदिर - जत्तासुं विउल - भत्ति - जुदा ॥१०१॥

अर्थ—नन्दीश्वरद्वीपस्थ जिन-मन्दिरोंकी यात्रामें प्रचुर भक्तिसे युक्त कल्पवासी देव पूर्व-दिशामें, भवनवासी दक्षिणमें, व्यन्तर पश्चिममें और ज्योतिषी देव उत्तर दिशामें (स्थित होकर) मुखसे बहुत स्तोत्रोंका उच्चारण करते हुए अपनी-अपनी विभूतिके योग्य महिमाको करते हैं ॥ १००-१०१ ॥

प्रत्येक दिशामें प्रत्येक इन्द्रकी पूजाके लिए समयका विभाजन

पुव्वण्हे अवरण्हे, पुव्वणिसाए वि पच्छिम-णिसाए ।
पहराणि दोण्णि दोण्णिं, णिब्भर[3]-भत्ती पसत्त-मणा ॥१०२॥
कमसो पदाहिणेणं, पुण्णिमयं[4] जाव अट्ठमीवु तदो ।
देवा विविहं पूजं, जिणिंद - पडिमाण कुव्वंति ॥१०३॥

अर्थ—ये देव आसक्त चित्त होकर अष्टमीसे लेकर पूर्णिमा पर्यन्त पूर्वाह्न, अपराह्न, पूर्वरात्रि और पश्चिमरात्रिमें दो-दो प्रहर तक उत्तम भक्ति-पूर्वक प्रदक्षिण-क्रमसे जिनेन्द्र-प्रतिमाओं की विविध प्रकारसे पूजा करते हैं ॥ १०२-१०३ ॥

---

१. ब. दव्व । २. द. वेंतरिया । ३. ब. क. ज. भरभत्तीए । ४. द. ब. क. ज. पुण्णमयं जाव अट्ठमीवु ।

विशेषार्थ—नन्दीश्वर द्वीपकी चारों दिशाओंमें ५२ जिनालय अवस्थित हैं। आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीके पूर्वाह्न में सर्व कल्पवासी देवोंसे युक्त सौधर्मेन्द्र पूर्व दिशामें, भवनवासी देवोंसे युक्त चमरेन्द्र दक्षिण दिशामें, व्यन्तर देवोंसे युक्त किम्पुरुष इन्द्र पश्चिम दिशामें और ज्योतिषी देवोंसे युक्त चन्द्र इन्द्र उत्तर दिशामें पूजा प्रारम्भ करते हैं। दो प्रहर बाद अपराह्नमें कल्पवासी दक्षिणमें, भवनवासी पश्चिममें, व्यन्तरदेव उत्तरमें और ज्योतिषी देव पूर्वमें आ जाते हैं। फिर दो प्रहर बाद पूर्व रात्रिको ये देव प्रदक्षिणा क्रमसे पुनः दिशा परिवर्तन करते हैं। इसके बाद दो प्रहर व्यतीत हो जाने पर अपर रात्रि को उसी प्रकार पुनः दिशा परिवर्तन करते हैं। इसप्रकार अहोरात्रिके ८ प्रहर पूर्णकर नवमी तिथिको प्रातःकाल कल्पवासी आदि चारों निकायों के देव पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः दो-दो प्रहर तक पूजन करते हैं इसी क्रमसे पूर्णिमा पर्यन्त अर्थात् आठ दिन तक चारों निकायोंके देवों द्वारा अनवरत महापूजा होती है।

नन्दीश्वरद्वीप स्थित जिन-प्रतिमाओंके अभिषेक, विलेपन और पूजा आदिका कथन

कुव्वंते अभिसेयं, महाविभूदीहि ताण देविंदा।
कंचण-कलस-गदेहिं, विउल - जलेहिं सुगंधेहिं ॥१०४॥

अर्थ—देवेन्द्र, महान् विभूतिके साथ उन जिन प्रतिमाओंका सुवर्ण-कलशोंमें भरे हुए विपुल सुगन्धित जलसे अभिषेक करते हैं ॥ १०४ ॥

कुंकुम - कप्पूरेहिं, चंदण - कालागरूहि अण्णेहिं।
ताणं विलेवणाइं[1], ते कुव्वंते सुगंध - गंधेहिं ॥१०५॥

अर्थ—वे इन्द्र कुंकुम, कपूर, चन्दन, कालागरु और अन्य सुगन्धित द्रव्योंसे उन प्रतिमाओंका विलेपन करते हैं ॥ १०५ ॥

कुंदेंदु - सुंदरेहिं, कोमल - विमलेहिं सुरहि - गंधेहिं।
वर - कलम - तंडुलेहिं[2], पूजंति जिणिंद - पडिमाओ[3] ॥१०६॥

अर्थ—वे देव, कुन्दपुष्प एवं चन्द्र सदृश सुन्दर, कोमल, निर्मल और सुगन्धित उत्तम कलम-धान्यके तन्दुलोंसे जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥ १०६ ॥

सयवंतराय चंपय-माला पुण्णाग - णाग - पहुदीहिं।
अच्चंति ताओ देवा, सुरहीहिं कुसुम - मालाहिं ॥१०७॥

अर्थ—वे देव सेवन्तीराज, चम्पकमाला, पुन्नाग और नाग आदि सुगन्धित पुष्प-मालाओंसे उन प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥ १०७ ॥

---

१. द. विलेयणाइ, ब. विलेइणाइं। २. ब. तंडुलेहि। ३. द. ज. पडिमाए।

बहुविह - रसवंतेहिं, वर - भक्खेहिं विचित्त-रूवेहिं ।
अमय-सरच्छेहिं सुरा, जिणिंद - पडिमाओ महयंति ।।१०८।।

अर्थ—वे देवगण, बहुत प्रकारके रसोंसे संयुक्त, अद्भुत रूपवाले और अमृत सदृश उत्तम भोज्य-पदार्थोंसे (नैवेद्यसे) जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ।। १०८ ।।

विप्फुरिद-किरण-मंडल-मंडिद-भवणेहिं[1] रयण-दीवेहिं ।
णिक्कज्जल - कलुसेहिं, पूजंति जिणिंद - पडिमाओ ।।१०९।।

अर्थ—देदीप्यमान किरण-समूहसे जिन-भवनोंको विभूषित करनेवाले, कज्जल एवं कालुष्य रहित (ऐसे) रत्न-दीपकोंसे इन प्रतिमाओंकी पूजा करते है ।। १०९ ।।

वासिद - दियंतरेहिं, कालागरु-पमुह-विविध-धूवेहिं ।
परिमलिद - मंदिरेहिं, महयंति जिणिंद - बिंबाणि ।।११०।।

अर्थ—देवगण मन्दिर एवं दिग्-मण्डलको सुगन्धित करनेवाले कालागरु आदि अनेक प्रकारके धूपोंसे जिनेन्द्र-बिम्बोंकी पूजा करते हैं ।। ११० ।।

दक्खा-दाडिम-कदली - णारंगय - माहुलिंग-चूदेहिं[2] ।
अण्णेहिं पक्केहिं, फलेहिं पूजंति जिणणाहं ।।१११।।

अर्थ—दाख, अनार, केला, नारंगी, मातुलिंग, आम तथा अन्य भी पके हुए फलोंसे वे देव जिननाथकी पूजा करते हैं ।। १११ ।।

णच्चंत-चमर-किंकिणि, विविह-विताणादियाहि [3]वत्थाहिं ।
ओलंबिद - हारेहिं, अच्चंति जिणेसरं देवा ।।११२।।

अर्थ—वे देव विस्तीर्ण एवं लटकते हुए हारोंसे संयुक्त तथा नाचते हुए चँवर एवं किंकिणियों सहित अनेक प्रकारके चँदोवा आदिसे जिनेश्वरकी पूजा करते हैं ।। ११२ ।।

मद्दल-मुइंग[4]-भेरी-पडह-प्पहुदीणि विविह - वज्जाणि ।
वायंति जिणवराणं, देवा पूजासु[5] भत्तीए ।।११३।।

अर्थ—देवगण पूजाके समय भक्तिसे मर्दल, मृदङ्ग, भेरी और पटहादि विविध बाजे बजाते हैं ।। ११३ ।।

---

१. ब. सवणेहि । २. भूदेहिं । ३. द. ब. बित्थाहि । ४. ब. मुयिंग । ५. द. ब. पूजाव ।

नृत्य, गान एवं नाटक आदिके द्वारा भक्ति प्रदर्शन

विविहाइ णच्चणाइं, वर-रयण-विभूसिदाओ दिव्वाओ ।
कुव्वंते [1]कण्णाओ, गायंति जिणिंद - चरिदाणि ।।११४।।

अर्थ—उत्तम रत्नोंसे विभूषित दिव्य कन्यायें विविध नृत्य करती हैं और जिनेन्द्रके चरित्रोंको गाती हैं ।। ११४ ।।

जिण-चरिय-णाडयं ते, चउ-विहाभिणय-भंग-सोहिल्लं ।
आणंदेणं देवा, बहु - रस - भावं पकुव्वंति ।।११५।।

अर्थ—वे चार प्रकारके देव आनन्दके साथ अभिनयके प्रकारोंसे शोभायमान बहुत प्रकारके रस-भाववाले जिनचरित्र सम्बन्धी नाटक करते हैं ।। ११५ ।।

एवं जेत्तियमेत्ता, जिणिंद - णिलया विचित्त-पूजाओ ।
कुव्वंति तेत्तिएसुं, णिब्भर - भत्तीसु सुर - संघा[2] ।।११६।।

अर्थ—इसप्रकार नन्दीश्वरद्वीपमें जितने जिनेन्द्र-मन्दिर हैं, उन सबमें गाढ़ भक्ति युक्त देवगण अद्भुत रीतिसे पूजाएँ करते हैं ।। ११६ ।।

कुण्डलपर्वतकी अवस्थिति एवं उसका विस्तार आदि

एक्कारसमो कुण्डल-णामो दीओ हवेदि रमणिज्जो ।
एदस्स य बहु - मज्झे, अत्थि गिरी कुंडलो णाम ।।११७।।

अर्थ—ग्यारहवाँ कुण्डल नामा रमणीक द्वीप है । इस द्वीपके बहुमध्य भागमें कुण्डल नामक पर्वत है ।। ११७ ।।

पण्णत्तरी सहस्सा, उच्छेहो जोयणाणि तग्गिरिणो ।
एक्क - सहस्सं गाढं, णाणाविह - रयण - भरिदस्स ।।११८।।

७५००० । १०००

अर्थ—नाना प्रकारके रत्नोंसे भरे हुए इस पर्वतकी ऊँचाई पचहत्तर हजार (७५०००) योजन और अवगाह (नींव) एक हजार (१०००) योजन प्रमाण है ।। ११८ ।।

---

१. द. ब. ज. कण्णाहो, क. कण्णाया । २. द. ब. क. ज. संवा ।

वासो वि माणुसुत्तर-वासादो दस-गुण-प्पमाणेणं ।
तग्गिरिणो मूलोवरि, तड - वेदी - प्पहुदि-जुत्तस्स ॥११९ ।

मूल १०२२० । मज्झ ७२३० । सिहर ४२४० ।

अर्थ—तटवेदी आदिसे संयुक्त इस पर्वतका मूल एवं उपरिम विस्तार मानुषोत्तर पर्वतके विस्तार-प्रमाणसे दसगुना है ॥ ११९ ॥

विशेषार्थ— चतुर्थाधिकार गाथा २७९४ में मानुषोत्तर पर्वतका मूल वि० १०२२ योजन, मध्य वि० ७२३ यो० और शिखर वि० ४२४ यो० कहा गया है । कुण्डलगिरिका विस्तार इससे दस गुना है अतः उसका मूल विस्तार १०२२० योजन, मध्य विस्तार ७२३० योजन और शिखर विस्तार ४२४० योजन प्रमाण है ।

कुण्डलगिरिपर स्थित कूटोंका निरूपण

उर्वार कुण्डलगिरिणो, दिव्वाणि हवंति वीस कूडाणि ।
एदाणं विण्णासं[1], भासेमो[2] आणुपुव्वीए ॥१२०॥

अर्थ—कुण्डलगिरिके ऊपर जो दिव्य कूट हैं, उनका विन्यास अनुक्रमसे कहता हूँ ॥ १२० ॥

पुव्वादि-चउ-दिसासुं, चउ-चउ कूडाणि होंति पत्तेक्कं ।
ताणब्भंतर - भागे, एक्केक्को सिद्धवर - कूडो ॥१२१॥

अर्थ—पूर्वादिक चार दिशाओंमेंसे प्रत्येकमें चार-चार कूट हैं और उनके अभ्यन्तर-भागमें एक-एक सिद्धवर कूट है ॥ १२१ ॥

वज्जं वज्जपहक्खं, कणयं कणयप्पहं च पुव्वाए ।
दक्खिण-दिसाए रजदं, रजदप्पह-सुप्पहा महप्पहयं ॥१२२॥
अंकं अंकपहं मणिकूडं पच्छिम-दिसाए मणिपहयं ।
उत्तर-दिसाए रुचकं, रुचकाभं हेमवंत[3] - मंदरया ॥१२३॥

अर्थ—वज्र, वज्रप्रभ, कनक और कनकप्रभ, ये चार कूट पूर्व-दिशामें; रजत, रजतप्रभ, सुप्रभ और महाप्रभ, ये चार दक्षिण-दिशामें; अङ्क, अङ्कप्रभ, मणिकूट और मणिप्रभ, ये चार पश्चिम दिशामें तथा रुचक, रुचकाभ, हिमवान् और मन्दर, ये चार कूट उत्तर-दिशामें स्थित हैं ॥ १२२-१२३ ॥

---

१. ब. विण्णासे । २. ब. भासमो । ३. द. ज. हेमवमं, ब. हेमवरमं ।

एदे सोलस कूडा, णंदणवण वण्णिदाण कूडाणं ।
उच्छेहादि[1] - समाणा, पासादेहिं विचित्तेहिं ॥१२४॥

अर्थ—ये सोलह कूट नन्दनवनमें कहे हुए कूटोंकी ऊँचाई आदि तथा अद्भुत प्रासादोंसे समान हैं ॥ १२४ ॥

विशेषार्थ—चतुर्थाधिकार गा० १९९६ में सौमनसके कूटोंका उत्सेध २५० योजन, मूल विस्तार २५० योजन और शिखर विस्तार १२५ योजन कहा गया है तथा गाथा २०२३-२०२४ में नन्दनवनके कूटोंका विस्तार सौमनस के कूट विस्तारसे दुगुना कहा है और यहाँ कुण्डलगिरिके कूटों का विस्तार नन्दनवनके कूट विस्तार सदृश कहा है । अर्थात् कुण्डलगिरिके कूटोंका उत्सेध ५०० योजन, मूल विस्तार ५०० योजन और शिखर विस्तार २५० योजन प्रमाण है ।

एदेसुं कूडेसुं, जिणभवण - विभूसिएसु[2] रम्मेसुं ।
णिवसंति वेंतर-सुरा, णिय-णिय-कूडेहिं सम - णामा ॥१२५॥

अर्थ—जिन-भवनसे विभूषित इन रमणीय कूटोंपर अपने-अपने कूटोंके सदृश नामवाले व्यन्तरदेव निवास करते हैं ॥ १२५ ॥

एक्क - पलिदोवमाऊ, बहु-परिवारा हवंति ते सव्वे ।
एदाणं णयरीओ, विचित्त - भवणाओ तेसु कूडेसु ॥१२६॥

अर्थ—वे सब देव एक पल्योपम-प्रमाण आयु और बहुत प्रकारके परिवार सहित होते हैं । उपर्युक्त कूटोंपर अद्भुत भवनोंसे संयुक्त इन देवोंकी नगरियाँ हैं ॥ १२६ ॥

चत्तारि सिद्ध-कूडा, चउ-जिण-भवणेसु ते पभासंते ।
णिसहगिरि-कूड-वण्णिद-जिणघर-सम-वास-पहुदीहिं ॥१२७॥

अर्थ—ये चार सिद्धकूट निषध पर्वतके सिद्धकूट पर कहे हुए जिनपुरके सदृश विस्तार एवं ऊँचाई आदि सहित ऐसे चार जिन-भवनोंसे शोभायमान होते हैं ॥ १२७ ॥

विशेषार्थ—चतुर्थाधिकार गाथा १५५ में कहे गये निषधपर्वतके सिद्धकूटपर स्थित जिन भवन के व्यासादिके सदृश यहाँ सिद्धकूटोंपर स्थित प्रत्येक जिनभवनका आयाम एक कोस, विष्कम्भ अर्ध-कोस और उत्सेध पौन ($\frac{3}{4}$) कोस प्रमाण है ।

---

१. अ. उच्छेहोदि । २. द. ब. ज. क विभूसिदासु ।

नोट—कुण्डलवर द्वीप, उसके मध्य स्थित कुण्डलगिरि पर्वत, इसपर स्थित जिनेन्द्रकूट एवं अन्य १६ कूट और इन कूटोंके स्वामियोंके नाम आदि इस चित्रमें चित्रित हैं—
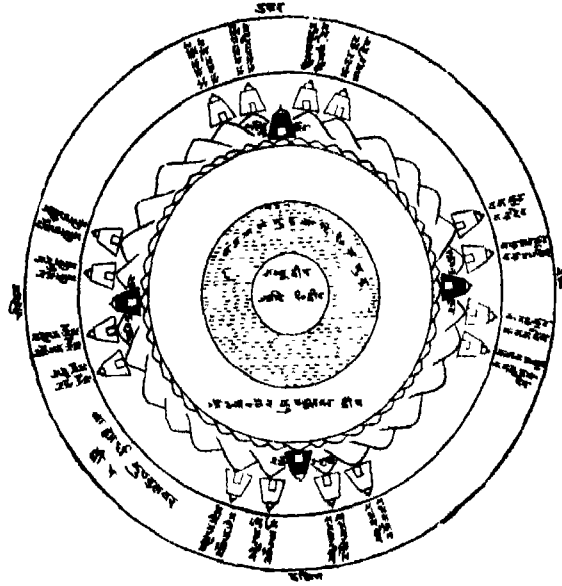
मतान्तरसे कुण्डलगिरि पर्वतका निरूपण

तग्गिरि-वरस्स होंति हु, दिसि विदिसासुं जिणिद-कूडाणि ।
पत्तेक्कं एक्केक्के, केई एवं परूवेंति ॥१२८॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—इस श्रेष्ठ पर्वतकी दिशाओं एवं विदिशाओंमेंसे प्रत्येकमें एक-एक जिनेन्द्रकूट है, इसप्रकार भी कोई आचार्य बतलाते हैं ॥ १२८ ॥

पाठान्तर ।

लोयविणिच्छय-कत्ता, कुंडलसेलस्स वण्णण-पयारं ।
अवरेण सरूवेणं, वक्खाइ तं परूवेमो ॥१२९॥

अर्थ— लोकविनिश्चय-कर्ता कुण्डल पर्वतके वर्णन-प्रकारका जो दूसरी तरहसे व्याख्यान करते हैं, उसका यहाँ निरूपण किया जाता है ॥ १२९ ॥

मणुसुत्तर-सम-वासो, बादाल-सहस्स-जोयणुच्छेहो ।
कुंडलगिरी सहस्सं, गाढो बहु-रयण-कय-सोहो ॥१३०॥

अर्थ—बहु-रत्न-कृत शोभा युक्त यह कुण्डलपर्वत मानुषोत्तर-पर्वत सदृश विस्तार-वाला, बयालीस हजार योजन ऊँचा और एक हजार योजनप्रमाण अवगाह सहित है ।। १३० ।।

कूडाणं ताइं चिय, णामाणं माणुसुत्तर-गिरिस्स ।
कूडेहिं सरिच्छाणं, णवरि सुराणं इमे णामा ।।१३१।।

पुव्व-दिसाए विसिट्ठो, पंचसिरो महसिरो महाबाहू ।
पउमो पउमुत्तर-महपउमो दक्खिण-दिसाए वासुगिओ ।।१३२।।

थिरहिदय-महाहिदया, सिरिवच्छो[1] सत्थिओ य पच्छिमदो ।
सुन्दर - विसालणेत्तं, [2]पांडुर - पुंडरय उत्तराए ।।१३३।।

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतके कूटोंके सदृश इस पर्वतपर स्थित कूटोंके नाम तो वही हैं किन्तु देवोंके नाम इसप्रकार हैं—पूर्व दिशामें विशिष्ठ (त्रिशिर), पंचशिर, महाशिर और महाबाहु; दक्षिण-दिशामें पद्म, पद्मोत्तर, महापद्म और वासुकि; पश्चिममें स्थिरहृदय, महाहृदय, श्रीवृक्ष और स्वस्तिक तथा उत्तरमें सुन्दर, विशालनेत्र, पाण्डुर और पुण्डरक, ये सोलह देव उपर्युक्त क्रमसे उन कूटोंपर स्थित हैं ।। १३१-१३३ ।।

एक्क-पलिदोवमाऊ, वर-रयण-विभूसियंग-रमणिज्जा ।
बहु - परिवारेहिं जुदा, ते देवा होंति णागिंदा ।।१३४।।

अर्थ—एक पल्यप्रमाण आयुवाले वे नागेन्द्रदेव उत्तम रत्नोंसे विभूषित शरीरसे रमणीय और बहुत परिवारोंसे युक्त होते हैं ।। १३४ ।।

बहुविह-देवीहिं जुदा, कूडोवरिमेसु तेसु भवणेसुं ।
णिय-णिय-विभूदि-जोग्गं, सोक्खं भुंजंति बहु-भेयं ।।१३५।।

अर्थ—ये देव बहुत प्रकारकी देवियोंसे युक्त होकर कूटोंपर स्थित उन भवनोंमें अपनी-अपनी विभूतिके योग्य बहुत प्रकारके सुख भोगते हैं ।। १३५ ।।

पुव्वावर-विब्भायं, ठिदाण कूडाण अग्ग-भूमीए ।
एक्केक्का वर-कूडा, तड-वेदी-पहुदि-परियरिया ।।१३६।।

अर्थ—पूर्वापर दिग्भागमें स्थित कूटोंकी अग्रभूमिमें तट-वेदी आदिकसे व्याप्त एक-एक श्रेष्ठ कूट है ।। १३६ ।।

---

१. द. ब. क. ज. सिरिवंतो सच्छिओ । २. द. ब. क. ज. हुडरपडुरय ।

जोयण-सहस्स-तुंगा, पुह-पुह तम्मेत्त-मूल-वित्थारा ।
पंच-सय-सिहर-रुंदा, सग-सय-पण्णास-मज्झ-वित्थारा ॥१३७॥

१००० । ५०० । ७५० ।

अर्थ—ये कूट पृथक्-पृथक् एक हजार (१०००) योजन ऊँचे, इतने-मात्र (१००० यो०) मूल विस्तार सहित, पाँच सौ (५००) योजन प्रमाण शिखर विस्तारवाले और सात सौ पचास (७५०) योजन प्रमाण मध्य विस्तारसे युक्त हैं ॥ १३७ ॥

ताणोवरिम-घरेसुं, कुंडल-दीवस्स अहिवई देवा ।
वेंतरया[1] णिय-जोग्गं, बहु-परिवारा[2] विराजंति[3] ॥१३८॥

अर्थ—इन कूटोंके ऊपर स्थित भवनोंमें कुण्डलद्वीपके अधिपति व्यन्तर देव अपने योग्य बहुत परिवारसे संयुक्त होकर निवास करते हैं ॥ १३८ ॥

अब्भंतर-भागेसुं, एदाणि जिणिंद-दिव्व-कूडाणि ।
एक्केक्काणं अंजणगिरि-जिण-मंदिर-समाणाणि ॥१३९॥

अर्थ— इन सभी कूटोंके अभ्यन्तर भागोंमें अंजनपर्वतस्थ जिन मन्दिरोंके सदृश दिव्य जिनेन्द्र कूट हैं ॥ १३९ ॥

एक्केक्का जिण-कूडा, चेट्ठंते दक्खिणुत्तर-दिसासुं ।
ताणि अंजण-पव्वय - जिणिंद - पासाद - सारिच्छा ॥१४०॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—उनके उत्तर-दक्षिण भागोंमें अञ्जनपर्वतस्थ जिनेन्द्रप्रासादोंके सदृश एक-एक जिन-कूट स्थित है ॥ १४० ॥

पाठान्तर ।

रुचकवर द्वीपके मध्य रुचकवर पर्वतका अवस्थान एवं उसके विस्तार आदिका विवेचन

तेरसमो रुचकवरो, दीवो चेट्ठेदि तस्स बहु-मज्झे ।
अत्थि गिरी रुचकवरो, कणयमओ चक्कवालेणं ॥१४१॥

अर्थ—तेरहवाँ द्वीप रुचकवर है । इसके बहु-मध्यभागमें मण्डलाकारसे स्वर्णमय रुचकवर पर्वत स्थित है ॥ १४१ ॥

---

१. द. ब. क. ज. वित्तरया । २. द. ब. क. ज. परिवारेहिं । ३. द. ब. क. ज. संजुत्तं ।

सव्वत्थ तस्स रुंदो, चउसीदि-सहस्स-जोयण-पमाणा ।
तम्मेत्तो उच्छेहो, एक्क - सहस्सं पि गाढत्तं ।।१४२।।

८४००० । १००० ।

अर्थ—उस पर्वतका विस्तार सर्वत्र चौरासी हजार (८४०००) योजन, इतनी ही ऊँचाई और एक हजार (१०००) योजन प्रमाण अवगाह है ।। १४२ ।।

मूलोवरिम्मि भागे, तड-वेदी उववणाइ चेट्ठंति ।
तग्गिरिणो वण-वेदि-प्पहुदीहिं अहिय-रम्माणि ।।१४३।।

अर्थ—उस पर्वतके मूल और उपरिम भागमें वन-वेदी आदिकसे अधिक रमणीय तट-वेदियाँ एवं उपवन स्थित हैं ।। १४३ ।।

रुचक पर्वतके ऊपर स्थित कूट, उनका विस्तार आदि, उनमें निवास करने वाली देवांगनाएँ और जन्माभिषेकमें उन देवांगनाओंके कार्य

तग्गिरि-उवरिम-भागे, चोदाला होंति दिव्व-कूडाणि ।
एदाणं विण्णासं, भासेमो आणुपुव्वीए ।।१४४।।

अर्थ—इस (रुचक) पर्वतके उपरिम भागमें जो चवालीस दिव्य कूट हैं, उनका विन्यास अनुक्रमसे कहता हूँ ।। १४४ ।।

कणयं कंचण-कूडं, तवणं सत्थिय[1]-दिसासु-भद्दाणि ।
अंजणमूलं[2] अंजणवज्जं[3] कूडाणि [4]अट्ठ पुव्वाए ।।१४५।।

अर्थ—कनक, कांचनकूट, तपन, स्वस्तिकदिशा, सुभद्र, अंजनमूल, अंजन और वज्र, ये आठ कूट पूर्व दिशामें हैं ।। १४५ ।।

पंच-सय-जोयणाइं, तुंगा तम्मेत्त-मूल-विक्खंभा ।
तद्दल-उवरिम-रुंदा, ते कूडा वेदि - वण - जुत्ता ।।१४६।।

५०० । ५०० । २५० ।

अर्थ—वेदी एवं वनोंसे संयुक्त ये कूट पाँच सौ (५००) योजन ऊँचे और इतने ही ५०० यो०) प्रमाण मूल-विस्तार तथा इससे आधे (२५० यो०) उपरिम विस्तार सहित हैं ।। १४६ ।।

---

१. द. ब. क. ज. संधिय । २. द. ज. क. अंजमूलं, ब. अजमूल । ३. द. ज. क. अजवज्जं, ब. अंजवज्जं । ४. ब. अड ।

ताणोवरि भवणाणि, गोदम-देवस्स गेह-सरिसाणि ।
जिण - भवण - भूसिदाइं, विचित्त - रूवाणि रेहंति ॥१४७॥

अर्थ—उन कूटोंपर जिन-भवनोंसे भूषित और विचित्र रूपवाले गौतम देवके भवन सदृश भवन विराजमान हैं ॥ १४७ ॥

एदेसु दिसा-कण्णा, णिवसंते णिरुवमेहि रूवेहिं ।
विजया य वैजयंता, जयंत-णामा वराजिदया ॥१४८॥

णंदा-णंदवदीओ, णंदुत्तरया य णंदिसेण त्ति ।
भिंगार-धारणीओ, ताओ जिण-जम्मकल्लाणे ॥१४९॥

अर्थ—इन भवनोंमें अनुपम-रूपसे संयुक्त विजया, वैजयन्ता, जयन्ता, अपराजिता, नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा नामक दिक्-कन्याएँ निवास करती हैं । ये जिन-भगवान्के जन्म-कल्याणकमें झारी धारण किया करती हैं ॥ १४८-१४९ ॥

दक्खिण-दिसाए फलिहं, रजदं कुमुदं च णलिण-पउमाणि ।
चंदक्खं वेसमणं, वेरुलियं अट्ठ कूडाणि ॥१५०॥

अर्थ—स्फटिक, रजत, कुमुद, नलिन, पद्म, चन्द्र, वैश्रवण और वैडूर्य, ये आठ कूट दक्षिण दिशामें स्थित हैं ॥ १५० ॥

उच्छेह-प्पहुदीहिं, ते कूडा होंति पुव्व-कूडो व्व ।
एदेसु दिसा-कण्णा, वसंति इच्छा - समाहारा ॥१५१॥

सुपइण्णा जसधरया, लच्छी-णामा य सेसवदि-णामा ।
तह चित्तगुत्त - देवी, वसुंधरा दप्पण - धराओ ॥१५२॥

अर्थ—ये सब कूट ऊँचाई आदिकमें पूर्व कूटोंके सदृश ही हैं । इनके ऊपर इच्छा, समाहारा, सुप्रकीर्णा, यशोधरा, लक्ष्मी, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा नामकी आठ दिक्कन्याएँ निवास करती हैं । ये सब जिन-जन्म कल्याणकमें दर्पण धारण किया करती हैं ॥ १५१-१५२ ॥

होंति अमोघं सत्थिय-मंदर-हेमवद-रज्ज-णामाणि ।
रज्जुत्तम-चंद-सुदंसणाणि[1] पच्छिम-दिसाए कूडाणि ॥१५३॥

---

१. द. क. ज. सदंणाणी, ब. सदंसुणाणी ।

अर्थ—अमोघ, स्वस्तिक, मन्दर, हैमवत, राज्य, राज्योत्तम, चन्द्र और सुदर्शन, ये आठ कूट पश्चिम-दिशामें स्थित हैं ।। १५३ ।।

पुव्वोदिद-कूडाणं, वास-प्पहुदीहिं होंति सारिच्छा ।
एदेसुं कूडेसुं, कुणंति वासं दिसा - कण्णा ।।१५४।।

इल-णामा सुरदेवी, पुढवी[1] पउमाओ[2] एक्कणासा य ।
णवमी सीदा भद्दा, जिण-जणणी छत्त-धारीओ ।।१५५।।

अर्थ—ये कूट विस्तारादिकमें पूर्वोक्त कूटोंके ही सदृश हैं । इनके ऊपर इला, सुरदेवी, पृथिवी, पद्मा, एकनासा, नवमी, सीता और भद्रा नामक दिक्कन्याएँ निवास करती हैं । ये दिक्कन्याएँ जिन-जन्म कल्याणकमें जिन-माताके ऊपर छत्र धारण किया करती हैं ।। १५४-१५५ ।।

विजयं च वइजयंतं, जयंदमपराजियं च कुंडलयं ।
रुजगक्ख-रयण-कूडाणि सव्वरयण त्ति उत्तर-दिसाए ।।१५६।।

अर्थ—विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, कुण्डलक, रुचक, रत्नकूट और सर्वरत्न, ये आठ कूट उत्तर दिशामें स्थित हैं ।। १५६ ।।

एदे वि अट्ठ कूडा, सारिच्छा होंति पुव्व-कूडाणं ।
तेसुं पि दिसा-कण्णा, अलंबुसा - मिस्सकेसीओ ।।१५७।।

तह पुंडरीकिणी वारुणि त्ति आसा य सच्च-णामा य ।
हिरिया सिरिया देवी, एदाओ [3]चमर - धारीओ ।।१५८।।

अर्थ—ये आठ कूट भी पूर्व कूटोंके सदृश ही हैं । इनके ऊपर भी अलंभूषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सत्या, ह्री और श्री नामकी आठ दिक्कन्याएँ निवास करती हैं । जिन-जन्मकल्याणकमें ये सब चँवर धारण किया करती हैं ।। १५७-१५८ ।।

एदाणं देवीणं, कूडाणब्भंतरे चउ - दिसासु ।
चत्तारि महाकूडा, चेट्ठंते पुव्व - कूड - समा ।।१५९।।

णिच्चुज्जोवं विमलं, णिच्चालोयं सयंपहं कूडं ।
उत्तर-पुव्व-दिसासुं, दक्खिण-पच्छिम-दिसासु कमा ।।१६०।।

---

१. द. ब. क. पुढि, ज. पुव्वि । २. ब. क. पउमाउ य । ३. ब. चरम ।

अर्थ—पूर्वोक्त कूटोंके ही सदृश चार महाकूट इन देवियोंके कूटोंके अभ्यन्तर भागमें चार दिशाओंमें स्थित हैं। ये नित्योद्योत, विमल, नित्यालोक और स्वयंप्रभ नामक चारों कूट क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशामें स्थित हैं ।। १५९-१६० ।।

सोदामिणि त्ति कणया, सदहद-देवी य कणय-चित्ते त्ति ।
उज्जोवकारिणीओ, दिसासु जिण - जम्मकल्लाणे ।।१६१।।

अर्थ—इन कूटोंपर स्थित होती हुई सौदामिनी, कनका, शतह्रदा और कनकचित्रा, ये चार देवियाँ जिन-जन्मकल्याणकमें दिशाओंको निर्मल किया करती हैं ।। १६१ ।।

तक्कूडब्भंतरए, कूडा पुव्वुत्त-कूड - सारिच्छा ।
वेरुलिय-रुचक-मणि-रज्जउत्तमा[1] पुव्व-पहुदीसु ।।१६२।।

अर्थ—इन कूटोंके अभ्यन्तरभागमें पूर्वोक्त कूटोंके सदृश वैडूर्य, रुचक, मणि और राज्योत्तम नामक चार कूट पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित हैं ।। १६२ ।।

तेसुं पि दिसाकण्णा, वसंति रुचका तहा रुचककित्ती ।
रुचकादी-कंत-पहा, कुणंति जिण - जातकम्माणि ।।१६३।।

अर्थ—उन कूटोंपर भी रुचका, रुचककीर्ति, रुचककांता और रुचकप्रभा, ये चार दिक्कन्याएँ निवास करती हैं। ये कन्याएँ जिन-भगवान्का जातकर्म करती हैं ।। १६३ ।।

पल्ल-पमाणाउ-ठिदी, पत्तेक्कं होदि सयल-देवीणं ।
सिरि-देवीए सरिच्छा, परिवारा ताण णादव्वा ।।१६४।।

अर्थ—उन सब देवियोंमेंसे प्रत्येककी आयु एक पल्य-प्रमाण होती है। उनके परिवार श्रीदेवीके परिवार सदृश जानने चाहिए ।। १६४ ।।

सिद्धकूटोंका अवस्थान

तक्कूडब्भंतरए, चत्तारि हवंति सिद्ध - कूडाणि ।
पुव्व-समाणं णिसह-ट्ठिद-जिण[2]-घर-सरिस-जिण णिकेदाणि ।।१६५।।

अर्थ—इन कूटोंके अभ्यन्तर भागमें चार सिद्ध-कूट हैं, जिनपर पहलेके सदृश निषध-पर्वतस्थ जिन-भवनोंके समान जिन-मन्दिर विद्यमान हैं ।। १६५ ।।

---

१. द. ब. क. ज. रजउत्तमपउमस्स पहुदीसु । २. द. ब. क. ज. पुरजिण ।

मतान्तरसे सिद्धकूटोंका अवस्थान

दिस-विदिसं तब्भागे, चउ-चउ अट्ठाणि सिद्ध-कूडाणि।
उच्छेद - प्पहुदीए, णिसह - समा[1] केइ इच्छंति ॥१६६॥

अर्थ—कोई आचार्य ऊँचाई आदिकमें निषध पर्वतके सदृश (ऐसे) दिशाओंमें चार और विदिशाओंमें चार इसप्रकार आठ सिद्ध कूट स्वीकार करते हैं ॥ १६६ ॥

नोट—रुचकवर पर्वत पर स्थित कूटोंका प्रमाण, नाम, उनपर स्थित देवियाँ और उन देवियोंके कार्य आदिका चित्रण इसप्रकार है—
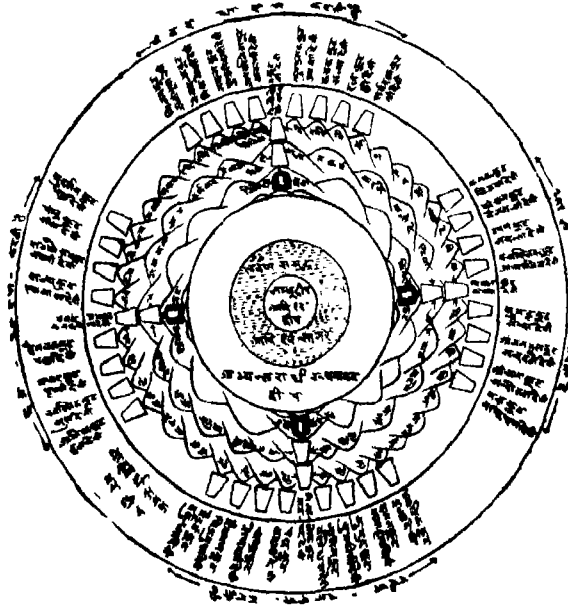
मतान्तरसे रुचकगिरि-पर्वतका निरूपण

लोयविणिच्छय-कत्ता, रुचकवरद्दिस्स वण्णण-पयारं।
अण्णेण सरूवेणं, वक्खाणइ तं पयासेमि ॥१६७॥

अर्थ—लोकविनिश्चय-कर्ता रुचकवर पर्वतके वर्णन-प्रकारका जो अन्य-प्रकारसे व्याख्यान करते हैं, उसको यहाँ दिखाता हूँ ॥ १६७ ॥

१. द. ब. क. ज. समो।

होदि गिरि रुचकवरो, रुंदो अंजणगिरिंद-सम-उदओ ।
बादाल-सहस्साणि, वासो सव्वत्थ दस-घणो गाढो ।।१६८।।

८४००० । ४२००० । १००० ।

अर्थ—रुचकवर पर्वत अञ्जनगिरिके सदृश (८४००० योजन) ऊँचा, बयालीस हजार (४२०००) योजन विस्तारवाला और सर्वत्र दसके घन (१००० यो०) प्रमाण अवगाहसे युक्त है ।। १६८ ।।

कूडा णंदावत्तो, सत्थिय-सिरिवच्छ-वड्ढमाणक्खा ।
तग्गिरि-पुव्वादि-दिसे, सहस्स-रुंदं तदद्ध-उच्छेहो ।।१६९।।

अर्थ—इस पर्वतकी पूर्व दिशासे क्रमशः नन्द्यावर्त, स्वस्तिक, श्रीवृक्ष और वर्धमान नामक चार कूट हैं । इन कूटोंका विस्तार एक हजार (१०००) योजन और ऊँचाई इससे आधी (५०० यो०) है ।। १६९ ।।

एदेसु [1]दिग्गजिंदा, देवा णिवसंति एक्क-पल्लाऊ ।
णामेहिं पउमुत्तर - सुभद्द - णीलंजण - गिरीओ ।।१७०।।

अर्थ—इन कूटोंपर एक पल्य प्रमाण आयु के धारक पद्मोत्तर, सुभद्र, नील और अञ्जन गिरि नामक चार दिग्गजेन्द्र देव निवास करते हैं ।। १७० ।।

तक्कूडब्भंतरए, वर-कूडा चउ-दिसासु अट्ठट्ठा ।
चेट्ठंति दिव्व-रूपा, सहस्स-रुंदा तदद्ध-उच्छेहा ।।१७१।।

वि १००० । उ ५०० ।

अर्थ—इन कूटोंके अभ्यन्तर भागमें एक हजार (१०००) योजन विस्तारवाले और इससे अर्ध (५०० योजन) प्रमाण ऊँचे चारों दिशाओंमें आठ-आठ दिव्य-रूपवाले उत्तम कूट स्थित हैं ।। १७१ ।।

पुव्वोदिद-णाम-जुदा, एदे बत्तीस रुचक-वर-कूडा ।
तेसुं य दिसाकण्णा, ताइं चिय ताण णामाणि ।।१७२।।

अर्थ—ये बत्तीस रुचकवर कूट पूर्वोक्त नामोंसे युक्त हैं । इनपर जो दिक्कन्याएं रहती हैं, उनके नाम भी वे (पूर्वोक्त) ही हैं ।। १७२ ।।

---

१. द. क. ज. दिग्गिंदा, ब. दिग्गिंदा ।

होंति हु [1]ईसाणादिसु, विदिसासु दोण्णि-दोण्णि वर-कूडा ।
वेरुलिय[2] - मणी[3] - णामा, रुचका रयणप्पहा णामा ।।१७३।।
रयणं च सव्व-रयणा, रुचकुत्तम-रयणउच्चका[4] कूडा ।
एदे पदाहिणेणं, पुव्वोदिद - कूड - सारिच्छा ।।१७४।।

अर्थ—वैडूर्य, मणिप्रभ, रुचक, रत्नप्रभ, रत्न, सर्वरत्न, रुचकोत्तम और रत्नोच्चय इन पूर्वोक्त कूटोंके सदृश कूटोंमें दो-दो उत्तम कूट प्रदक्षिण-क्रमसे ईशानादि विदिशाओंमें स्थित हैं ।। १७३-१७४ ।।

तेसु दिसाकण्णाणं, महत्तरीओ कमेण णिवसंति ।
रुचका विजया [5]रुचकाभा वइजयंति रुचककंता ।।१७५।।
तह य जयंती रुचकुत्तमा य अपराजिदा जिणिंदस्स ।
कुव्वंति जाद - कम्मं, एदाओ परम - भत्तीए ।।१७६।।

अर्थ—इन कूटोंपर क्रमशः रुचका, विजया, रुचकाभा, वैजयन्ती, रुचककान्ता, जयन्ती, रुचकोत्तमा और अपराजिता, ये दिक्कन्याओंकी महत्तरियाँ (प्रधान) निवास करती हैं। ये सब उत्कृष्ट भक्तिसे जिनेन्द्र-भगवान् का जातकर्म किया करती हैं ।।१७५-१७६ ।।

विमलो णिच्चालोको, सयंपहो तह य णिच्चउज्जोवो ।
चत्तारो वर - कूडो, पुव्वादि - पदाहिणा होंति ।।१७७।।

अर्थ—विमल, नित्यालोक, स्वयंप्रभ तथा नित्योद्योत, ये चार उत्तम कूट पूर्वादिक दिशाओंमें प्रदक्षिणा रूपसे स्थित हैं ।। १७७ ।।

तेसुं पि दिसाकण्णा, वसंति सोदामिणी तहा कणया ।
सदहद-देवी कंचणचित्ता ताओ कुणंति उज्जोवं ।।१७८।।

अर्थ—उन कूटोंपर क्रमशः सौदामिनी, कनका, शतहृत देवी और कञ्चनचित्रा ये चार दिक्कन्याएं रहती हैं जो दिशाओंको प्रकाशित करती हैं ।। १७८ ।।

तक्कूडब्भंतरए, चत्तारि हवंति सिद्ध - वर - कूडा ।
पुव्वादिसु पुव्व-समा, अंजण-जिण-गेह-सरिस-जिण-गेहा ।।१७९।।

पाठान्तरम् ।

---

१. द. ब. क. ज. ईसाणदिसा । २. द. ज. वेलुरिय । ३. द. ब. क. ज. पयमि । ४. द. ब. क. ज. उच्चका । ५. द. ब. क. ज. रुचकाय ।

अर्थ—इन कूटोंके अभ्यन्तर-भागमें चार सिद्धवर कूट हैं, जिनके ऊपर पहलेके ही सदृश अंजन-पर्वतस्थ जिन-भवनोंके सदृश जिनालय स्थित हैं ।। १७६ ।।

पाठान्तर ।

द्वितीय जम्बूद्वीपका अवस्थान

जंबूदीवाहिंतो, संखेज्जाणि पयोहि - दीवाणि ।
गंतूण अत्थि अण्णो, जंबूदीओ परम - रम्मो ।।१८०।।

अर्थ—जम्बूद्वीपसे आगे संख्यात समुद्र एवं द्वीपोंके पश्चात् अतिशय रमणीय दूसरा जम्बूद्वीप है ।। १८० ।।

वहाँ विजय आदि देवोंकी नगरियोंका अवस्थान और उनका विस्तार

तत्थ हि विजय-प्पहुदिसु हवंति देवाण दिव्व-णयरीओ[1] ।
उवरि[2] वज्ज-खिदीए, चित्ता-मज्झम्मि पुव्व-पहुदीसुं ।।१८१।।

अर्थ—(जहाँ दूसरा जम्बूद्वीप स्थित है) वहाँ पर भी वज्रा पृथिवीके ऊपर चित्राके मध्यमें पूर्वादिक दिशाओंमें विजय-आदि देवोंकी दिव्य नगरियाँ हैं ।। १८१ ।।

उच्छेह - जोयणेणं, पुरिओ बारस-सहस्स-रुंदाओ ।
जिण-भवण-भूसियाओ, उववण - वेदीहि जुत्ताओ ।।१८२।।

१२००० ।

अर्थ—ये नगरियाँ उत्सेध योजनसे बारह हजार (१२०००) योजन-प्रमाण विस्तार सहित, जिन-भवनोंसे विभूषित और उपवन-वेदियों से संयुक्त हैं ।। १८२ ।।

नगरियोंके प्राकारोंका उत्सेध आदि

पण्णत्तरि-दल-तुंगा, पायारा जोयणद्धमवगाढा ।
सव्वाणं णयरीणं, णच्चंत-विचित्त-धय-माला ।।१८३।।

७५/२ । १/२ ।

अर्थ—इन सब नगरियोंके प्राकार पचहत्तरके आधे (३७½) योजन ऊँचे, अर्ध (½) योजन-प्रमाण अवगाह सहित और फहराती हुई नाना प्रकारकी ध्वजाओं के समूहसे संयुक्त है ।।१८३।।

कंचण-पायाराणं, वर-रयण-विणिम्मियाण भू-वासो ।
जोयण-पणुवीस-दलं, लच्चउ-भागो य मुह-वासो ।।१८४।।

२५/२ । २५/४ ।

---

१. ब. नयरी । २. द. उवरिम ।

अर्थ—उत्तम रत्नोंसे निर्मित इन स्वर्ण-प्राकारोंका भू-विस्तार पच्चीसके आधे (१२½) योजन और मुख-विस्तार पच्चीसके चतुर्थ भाग (६¼ योजन) प्रमाण है ।। १८४ ।।

नगरियोंकी प्रत्येक दिशामें स्थित गोपुरद्वार

एक्केक्काए दिसाए, पुरीण पणुवीस-गोउर-दुवारा ।
जंबूणद-णिम्मविदा, मणि-तोरण-थंभ-रमणिज्जा ।।१८५।।

अर्थ—इन नगरियोंकी एक-एक दिशामें सुवर्णसे निर्मित और मणिमय तोरण-स्तम्भोंसे रमणीय पच्चीस गोपुरद्वार हैं ।। १८५ ।।

नगरियोंमें स्थित भवनोंका निरूपण

बासट्ठि जोयणाणि, बे कोसा गोउरोवरि-घराणं ।
उदओ[1] तद्दलमेत्तो, रुंदो गाढो दुवे कोसा[2] ।।१८६।।

६२ । को २ ।। ३१ । को १ ।। को २ ।।

अर्थ—उन गोपुरद्वारोंके ऊपर भवन स्थित हैं। उन भवनोंकी ऊँचाई बासठ (६२) योजन, दो (२) कोस, विस्तार इससे आधा (३१ योजन, १ कोस) और अवगाह (नींव) दो (२) कोस प्रमाण है ।। १८६ ।।

ते गोउर-पासादा, संछण्णा बहु-विहेहि रयणेहिं ।
सत्तरस-भूमि-जुत्ता, विमाण सरिसा विरायंति ।।१८७।।

अर्थ—वे गोपुर-प्रासाद अनेक प्रकारके रत्नोंसे आच्छन्न हैं और सत्रह भूमियों से युक्त विमान सदृश शोभायमान होते हैं ।। १८७ ।।

राजाङ्गणका अवस्थान एवं प्रमाण आदि

पायाराणं मज्झे, चेट्ठदि रायंगणं परम - रम्मं ।
जोयण-सदाणि बारस, वास-जुदं एक्क-कोस-उच्छेहो ।।१८८।।

१२०० । को १ ।

---

१. द. ब. क. ज. उदए । २. द. ब. क. ज. कोसो ।

अर्थ—प्राकारके मध्यमें अतिशय रमणीय, बारह सौ (१२००) योजन-प्रमाण विस्तार सहित और एक कोस ऊँचा राजाङ्गण स्थित है ।। १८८ ।।

तस्स य थलस्स उवरिं, समंतदो दोण्णि कोस उच्छेहं ।
पंच-सय - चाव - रुंदं, चउ - गोउर - संजुदं वेदी ।।१८९।।

को २ । दंड ५०० ।

अर्थ—इस स्थलके ऊपर चारों ओर दो (२) कोस ऊँची, पाँचसो (५००) धनुष विस्तीर्ण और चार गोपुरोंसे युक्त वेदी स्थित है ।। १८९ ।।

राजाङ्गण स्थित प्रासादका विस्तारादि

रायंगण-बहु-मज्झे, कोस - सयं पंचवीसमब्भहियं ।
विक्खंभो तद्दुगुणो, उदओ गाढं[1] दुवे कोसा ।।१९०।।

१२५ । २५० । को २ ।

पासादो मणि - तोरण - संपुण्णो अट्ठ-जोयणुच्छेहो ।
चउ-विरथारो दारो[2], वज्ज - कवाडेहिं सोहिल्लो ।।१९१।।

८ । ४ ।

अर्थ—राजाङ्गणके बहु-मध्य-भागमें एक सौ पच्चीस (१२५) कोस विस्तारवाला, इससे दूना (२५० कोस) ऊँचा, दो (२) कोस-प्रमाण अवगाह सहित और मणिमय तोरणोंसे परिपूर्ण प्रासाद है । वज्रमय कपाटोंसे सुशोभित इसका द्वार आठ (८) योजन ऊँचा और चार (४) योजन प्रमाण विस्तार सहित है ।। १९०-१९१ ।।

पूर्वोक्त प्रासादकी चारों दिशाओंमें स्थित प्रासाद

एदस्स चउ-दिसासुं, चत्तारो होंति दिव्व-पासादा ।
उप्पण्णुप्पण्णाणं, चउ चउ वड्ढंति जाव छक्कंतं ।।१९२।।

अर्थ—इस (राजाङ्गणके बहुमध्यभागमें स्थित) प्रासादकी चारों दिशाओंमें चार दिव्य प्रासाद हैं । इसके आगे छठे मण्डल पर्यन्त ये प्रासाद उत्तरोत्तर चार-चार गुणे बढ़ते जाते हैं ।। १९२ ।।

---

१. ब. उवउगाढं । २. द. दारा ।

प्रत्येक मण्डलके प्रासादोंका प्रमाण

एत्तो[1] पासादाणं, परिमाणं मंडलं पडि भणामो ।
एक्को हवेदि मुक्खो, चत्तारो मंडलम्मि पढमम्मि ॥१९३॥

। १ । ४ ।

अर्थ—यहाँसे प्रत्येक मण्डलके प्रासादोंका प्रमाण कहता हूँ । मध्यका प्रासाद मुख्य है । प्रथम मण्डलमें चार प्रासाद हैं ॥ १९३ ॥

सोलस बिदिए तदिए, चउसट्ठी बे-सदं च छप्पण्णं ।
तुरिमे तं चउपहदं, पंचमए मंडलम्मि पासादा ॥१९४॥

१६ । ६४ । २५६ । १०२४ ।

अर्थ—द्वितीय मण्डलमें सोलह (१६), तृतीयमें चौंसठ (६४), चतुर्थमें दो सौ छप्पन (२५६) और पाँचवें मण्डलमें इससे चौगुने (१०२४) प्रासाद हैं ॥ १९४ ॥

चत्तारि सहस्साणि, छण्णउदि-जुदाणि होंति छट्ठीए ।
एत्तो पासादाणं, उच्छेहादिं परूवेमो ॥१९५॥

४०९६ ।

अर्थ—छठे मण्डलमें चार हजार छ्यानबे (४०९६) प्रासाद हैं । अब यहाँसे आगे भवनोंकी ऊँचाई आदि का निरूपण किया जाता है ॥ १९५ ॥

मण्डल स्थित प्रासादोंकी ऊँचाई आदि का कथन

सव्वब्भंतर - मुक्खं, पासादुस्सेह - वास-गाढ-समा ।
आदिम-दुग[2]-मंडलए, तस्स दलं तदिय-तुरियम्मि ॥१९६॥

पंचमए छट्ठीए, तद्दलमेत्तं हवेदि उदयादी ।
एक्केक्के पासादे, एक्केक्का वेदिया विचित्तयरा ॥१९७॥

अर्थ—आदिके दो मण्डलोंमें स्थित प्रासादोंकी ऊँचाई, विस्तार और अवगाह सबके मध्य स्थित प्रमुख प्रासादकी ऊँचाई, विस्तार और अवगाहके सदृश है । तृतीय और चतुर्थ मण्डल के प्रासादों की ऊँचाई आदि उससे अर्ध है । इससे भी आधी पञ्चम और छठे मण्डल के प्रासादों की ऊँचाई आदिक है । प्रत्येक प्रासादकी एक-एक विचित्रतर वेदिका है ॥ १९६-१९७ ॥

---

१. द. क. ज. एक्को २. ब. दुग ।

विशेषार्थ—

प्रासाद	विस्तार	ऊँचाई	नींव
राजांगणके मध्य स्थित प्रमुख प्रासाद का	१२५ कोस	२५० कोम	२ कोम
१ले, २ रे मण्डलोंमें स्थित प्रासादों का	१२५ कोस	२५० कोस	२ कोम
३ रे, ४ थे मण्डलोंमें स्थित प्रासादों का	६२½ कोस	१२५ कोस	१ कोस
५ वें, ६ ठे मण्डलोंमें स्थित प्रासादों का	३१¼ कोस	६२½ कोस	½ कोस

प्रासादोंके आश्रित स्थित वेदियों की ऊँचाई आदि

बे-कोसुच्छेहाओ, पंच-सयाणि धणूणि वित्थिण्णा ।
आदिल्लय - पासादे, पढमे बिदियम्मि तम्मेत्ता ।।१९८।।

अर्थ—प्रमुख प्रासाद के आश्रित जो वेदी है वह दो कोस ऊँची और पाँचसौ (५००) धनुष विस्तीर्ण है । प्रथम और द्वितीय मण्डलमें स्थित प्रासादोंकी वेदियाँ भी इतनी ही ऊँचाई आदि सहित (२ कोस ऊँची और ५०० धनुष विस्तीर्ण) हैं ।। १९८ ।।

पुव्विल्ल-वेदि-अद्धं, तदिए तुरियम्मि होंति मंडलए ।
पंचमए छट्ठीए, तस्सद्ध - पमाण - वेदीओ ।।१९९।।

अर्थ—तृतीय और चतुर्थ मण्डल के प्रासादों की वेदिका की ऊँचाई एवं विस्तार का प्रमाण पूर्वोक्त वेदियों के प्रमाण से आधा अर्थात् ऊँचाई १ कोस तथा विस्तार २५० धनुष है और इससे भी आधा अर्थात् ऊँचाई ½ कोस और विस्तार १२५ धनुष प्रमाण पाँचवें तथा छठे मण्डलके प्रासादों की वेदिकाओं का है ।। १९९ ।।

सर्व भवनोंका एकत्र प्रमाण

गुण-संकलण[1]-सरूवं, ठिदाण भवणाण होदि परिसंखा ।
पंच - सहस्सा [2]चउ - सय - संजुत्ता एक्क-सट्ठी य ।।२००।।

५४६१ ।

अर्थ—गुणित-क्रमसे स्थित इन सब भवनोंकी संख्या—पाँच हजार चार सौ इकसठ (१+४+१६+६४+२५६+१०२४+४०९६=५४६१) है ।। २०० ।।

सुधर्म-सभाकी अवस्थिति और उसका विस्तार आदि

आदिम-पासादादो[3], उत्तर-भागे ट्ठिदा सुधम्म-सभा ।
दलिद-पणुवीस - जोयण - दीहा तस्सद्ध - वित्थारा ।।२०१।।

$\frac{25}{2}$ । $\frac{25}{4}$ ।

१. द. ब. क. ज. संकरण । २. ब. चउस्सय । ३. द. पासादो ।

अर्थ—प्रथम प्रासादके उत्तर-भागमें पच्चीस योजन के आधे (१२½) योजन लम्बी और इससे आधे (६¼ यो०) विस्तार वाली सुधर्म-सभा स्थित है ॥ २०१ ॥

णव-जोयण-उच्छेहा[1], गाउद-गाढा सुवण्ण-रयणमई ।
तीए उत्तर - भागे, जिण - भवणं होदि तम्मेत्तं ॥२०२॥

९ । को १ ।

अर्थ—सुवर्ण और रत्नमयी यह सभा नौ (९) योजन ऊँची और एक गव्यूति (१ कोस) अवगाह सहित है । इसके उत्तर-भागमें इतने ही प्रमाणसे संयुक्त जिन-भवन है ॥ २०२ ॥

उपपाद आदि छह सभाओं (भवनों) की अवस्थिति आदि

पवण-दिसाए पढमं, पासादादो जिणिंद-पासादा ।
चेट्ठदि उववाद-सभा, कंचण-वर-रयण-णिवहमई ॥२०३॥

$\frac{२५}{२}$ । $\frac{२५}{४}$ । यो ९ । को १ ।

अर्थ—प्रथम प्रासादसे वायव्य-दिशामें जिनेन्द्रभवन सदृश (१२½ योजन लम्बी, ६¼ यो० चौड़ी, ९ यो० ऊँची और १ कोस अवगाह वाली) स्वर्ण एवं उत्तम रत्न-समूहोंसे निर्मित उपपाद सभा स्थित है ॥ २०३ ॥

पुव्व-दिसाए पढमं, पासादादो विचित्त-विण्णासा ।
चेट्ठदि अभिसेय-सभा, उववाद-सभेहि-सारिच्छा ॥२०४॥

अर्थ—प्रथम प्रसादके पूर्वमें उपपाद सभाके सदृश विचित्र रचना संयुक्त अभिषेक-सभा (भवन) स्थित है ॥ २०४ ॥

तत्थं चिय दिब्भाए, अभिसेयसभा-सरिच्छ-वासादी ।
होदि अलंकार-सभा, मणि-तोरणदार-रमणिज्जा ॥२०५॥

अर्थ—इसी दिशा-भागमें अभिषेक सभाके सदृश विस्तारादि सहित और मणिमय तोरण-द्वारोंसे रमणीय अलंकार-सभा (भवन) है ॥ २०५ ॥

तस्सि चिय दिब्भाए, पुव्व-सभा-सरिस-उदय-वित्थारा ।
मंत - सभा चामीयर - रयणमई सुन्दर - दुवारा ॥२०६॥

---

१. द. ब. क. ज. उच्छेहो ।

अर्थ—इसी दिशा-भागमें पूर्व सभाके सदृश ऊँचाई एवं विस्तार सहित, स्वर्ण एवं रत्नोंसे निर्मित और सुन्दर द्वारोंसे संयुक्त मन्त्र-सभा (भवन) है ।। २०६ ।।

एवे छप्पासावा, पुव्वेहिं मंदिरेहिं मेलविवा ।
पंच सहस्सा चउ-सय-अब्भहिया सत्त-सट्ठीहिं ।।२०७।।

५४६७ ।

अर्थ—इन छह प्रासादोंको पूर्व प्रासादोंमें मिला देनेपर प्रासादों (भवनों) की समस्त संख्या पाँच हजार चार सौ सड़सठ (५४६१ + ६ = ५४६७) होती है ।। २०७ ।।

भवनोंकी विशेषताएँ

ते सव्वे पासादा, चउ-विम्मुह[1]-विप्फुरंत-किरणेहिं ।
वर-रयण-पईवेहिं, णिच्चं चिय णिब्भरुज्जोवा ।।२०८।।

अर्थ—वे सब भवन चारों दिशाओंमें प्रकाशमान् किरणोंसे युक्त उत्तम रत्नमयी प्रदीपोंसे नित्य अर्चित और नित्य उद्योतित रहते हैं ।। २०८ ।।

पोक्खरणी-रम्मेहिं, उववण-संडेहिं[2] विविह-रुक्खेहिं ।
कुसुमफल-सोहिदेहिं, सुर - मिहुण जुदेहिं सोहंति ।।२०९।।

अर्थ— वे प्रासाद पुष्करिणियोंसे रमणीय, फल-फूलोंसे सुशोभित, अनेक प्रकारके वृक्षों सहित और देव-युगलोंसे संयुक्त उपखण्डोंसे शोभायमान होते हैं ।। २०९ ।।

विद्दुम-वण्णा केई, केई कप्पूर-कुंद-संकासा ।
कंचण - वण्णा केई, केई [3]वज्जिद-णील-णिहा ।।२१०।।

अर्थ—(इनमेंसे) कितने ही (भवन) मूंगा सदृश वर्णवाले, कितने ही कपूर और कुन्द-पुष्प सदृश, कितने ही स्वर्ण वर्ण सदृश और कितने ही वज्र एवं इन्द्रनीलमणि सदृश वर्ण वाले हैं ।। २१० ।।

तेसुं पासादेसुं, विजओ देवी - सहस्स - सोहिल्लो ।
णिच्च - जुवाणा देवा, वर-रयण-विभूसिद-सरीरा ।।२११।।
लक्खण-वंजण-जुत्ता, धादु-विहीणा य वाहि-परिचत्ता ।
विविह - सुहेसुं सत्ता, कीडंते बहु - विणोदेण ।।२१२।।

---

१. ब. क. दिसुमुह । २. द. ब. क. ज. संडा । ३. द. ब. क. ज. जंविद ।

अर्थ—उन भवनोंमें हजारों देवियोंसे सुशोभित, विजय नामक देव शोभायमान है और वहाँ उत्तम रत्नोंसे विभूषित शरीर वाले लक्षण एवं व्यञ्जनों सहित, (सप्त) धातुओंसे विहीन, व्याधिसे रहित तथा विविध प्रकारके सुखोंमें आसक्त नित्य-युवा, देव बहुत विनोद पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ।। २११-२१२ ।।

सयणाणि आसणाणि, रयणमयाणि हवंति भवणेसुं ।
मउवाणि णिम्मलाणि, मण-णयणाणंद-जणणाणि ।।२१३।।

अर्थ—इन भवनोंमें मृदुल, निर्मल और मन तथा नेत्रोंको आनन्ददायक रत्नमय शय्याओं एवं आसन विद्यमान हैं ।। २१३ ।।

आदिम-पासादस्स य, बहु-मज्झे होदि कणय-रयणमयं ।
सिंहासणं विसालं, सपाद - पीढं परम - रम्मं ।।२१४।।

अर्थ—प्रथम प्रासादके बहु-मध्य-भागमें अतिशय रमणीय और पादपीठ सहित सुवर्ण एवं रत्नमय विशाल सिंहासन है ।। २१४ ।।

सिंहासणमारूढो, विजओ णामेण अहिवई तत्थ ।
पुव्व - मुहे पासादे, अत्थाणं वेदि लीलाए ।।२१५।।

अर्थ—वहाँ पूर्व-मुख प्रासादमें सिंहासन पर आरूढ विजय नामक अधिपति देव लीलासे आनन्दको प्राप्त होता है ।। २१५ ।।

विजयदेव के परिवार का अवस्थान एवं प्रमाण

तस्स य सामाणीया, चेट्ठंते छस्सहस्स-परिमाणा ।
उत्तर-दिसा-विभागे, विदिसाए विजय - पीढाओ ।।२१६।।

अर्थ—विजयदेवके सिंहासनसे उत्तर-दिशा और विदिशामें उसके छह हजार प्रमाण सामानिक देव स्थित रहते हैं ।। २१६ ।।

चेट्ठंति णिरुवमाओ[1], छस्सिय विजयस्स अग्ग-देवीओ ।
ताणं पीढा रम्मा, सिंहासण - पुव्व - दिब्भाए ।।२१७।।

अर्थ—मुख्य सिंहासनके पूर्व-दिशा-भागमें विजयदेवकी अनुपम छहों अग्र-देवियाँ स्थित रहती है । उनके सिंहासन रमणीय हैं ।। २१७ ।।

परिवारा देवीओ, तिण्णि सहस्सा हवंति पत्तेक्कं ।
साहिय-पल्लं आऊ, णिय-णिय-ठाणम्मि चेट्ठंति ।।२१८।।

---

१. द. क. ज. णिरुवमाणो ।

अर्थ—इनमेंसे प्रत्येक अग्र-देवीकी परिवार-देवियाँ तीन हजार हैं, जिनकी आयु एक पल्यसे अधिक होती है। ये परिवार देवियाँ अपने-अपने स्थानमें स्थित रहती हैं ।। २१८ ।।

बारस देव-सहस्सा, बाहिर-परिसाए विजयदेवस्स ।
णइरिदि-दिसाए ताणं, पीढाणि सामि - पीढादो ।।२१९।।

१२००० ।

अर्थ—विजय देवकी बाह्य परिषद्‌में बारह हजार (१२०००) देव हैं। उनके सिंहासन, स्वामीके सिंहासनसे नैऋत्य-दिशा-भागमें स्थित हैं ।। २१९ ।।

देवदस-सहस्साणि, मज्झिम-परिसाए होंति विजयस्स ।
दक्खिण-दिसा-विभागे, तप्पीढा णाह - पीढादो ।।२२०।।

१०००० ।

अर्थ—विजयदेवकी मध्यम परिषद्‌में दस हजार (१००००) देव होते हैं। उनके सिंहासन, स्वामीके सिंहासनसे दक्षिण-दिशा-भागमें स्थित रहते हैं ।। २२० ।।

अब्भंतर - परिसाए, अट्ठ सहस्साणि विजयदेवस्स ।
अग्गि - दिसाए होंति हु, तप्पीढा णाह - पीढादो ।।२२१।।

८००० ।

अर्थ—विजयदेवकी अभ्यन्तर परिषद्‌में जो आठ हजार (८०००) देव रहते हैं उनके सिंहासन स्वामीके सिंहासनसे अग्नि-दिशामें स्थित रहते हैं ।। २२१ ।।

सेणा - महत्तराणं, सत्ताणं होंति दिव्व - पीढाणि ।
सिंहासण - पच्छिमदो, वर - कंचण-रयण-रइदाइं ।।२२२।।

अर्थ—सात सेना-महत्तरोंके उत्तम स्वर्ण एवं रत्नोंसे रचित दिव्य पीठ मुख्य सिंहासनके पश्चिममें होते हैं ।। २२२ ।।

तणुरक्खा अट्ठारस - सहस्स - संखा हवंति पत्तेक्कं ।
ताणं चउसु दिसासुं, चेट्ठंते भद्द - पीढाणि ।।२२३।।

१८००० । १८००० । १८००० । १८००० ।

अर्थ—विजयदेवके शरीर-रक्षक देवोंके भद्रपीठ चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें अठारह हजार (पूर्वमें १८०००, दक्षिणमें १८०००, पश्चिममें १८००० और उत्तरमें १८०००) प्रमाण स्थित हैं ।। २२३ ।।

सत्त-सर-महुर-गीयं, गायंता पलह-वंस-पहुदीणि ।
वायंता णच्चंता[1], विजयं रज्जंति तत्थ सुरा ॥२२४॥

अर्थ—वहाँ देव सात स्वरोंसे परिपूर्ण मधुर गीत गाते हैं और पटह एवं बांसुरी आदिक बाजे बजाते एवं नाचते हुए विजयदेवका मनोरंजन करते हैं ॥ २२४ ॥

रायंगणस्स बाहिं, परिवार-सुराण होंति पासादा ।
विप्फुरिय-धय - वडाया, वर-रयणुज्जोइ-अहियंता ॥२२५॥

अर्थ—परिवार-देवोंके प्रासाद राजाङ्गणसे बाहर फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित और उत्तम रत्नोंकी ज्योतिसे अधिक रमणीय हैं ॥ २२५ ॥

बहुविह-रति-करणेहिं, कुसलाओ णिच्च-जोव्वण-जुदाओ ।
णाणा - विगुव्वणाओ, माया - लोहादि - रहिदाओ ॥२२६॥

उल्लसिद - विब्भमाओ, [2]छत्त - सहावेण पेम्मवंताओ ।
सव्वाओ देवीओ, ओलग्गंते विजयदेवं ॥२२७॥

अर्थ—बहुत प्रकारकी रति करनेमें कुशल, नित्य यौवन युक्त, नानाप्रकारकी विक्रिया करने वाली, माया एवं लोभादिसे रहित, उल्लास युक्त विलास सहित और छत्र[3]-योगके स्वभाव सदृश प्रेम करने वाली समस्त देवियाँ विजयदेवकी सेवा करती हैं ॥ २२६-२२७ ॥

णिय-णिय-ठाण णिविट्ठा, देवा सव्वे वि विणय-संपुण्णा ।
णिब्भर - भत्ति - पसत्ता, सेवंते विजयमणवरतं ॥२२८॥

अर्थ—अपने-अपने स्थान पर रहते हुए भी सब देव विनयसे परिपूर्ण होकर और अतिशय भक्तिमें आसक्त होकर निरन्तर विजयदेवकी सेवा करते हैं ॥ २२८ ॥

विजयदेवके नगरके बाहर स्थित वन-खण्डोंका निरूपण

तण्णयरीए बाहिं, गंतूणं जोयणाणि पणवीसं ।
चत्तारो वणसंडा, पत्तेक्कं चेत्त - तरु - जुत्ता ॥२२९॥

---

१. द. ब. ज. णं चित्ता, क. णं चत्ता । २. द. ब. क. ज. छित्त । ३. ज्योतिषमें छत्र योग दो प्रकारसे कहे गये हैं । (१) जन्मकुण्डलीमें सप्तम भावसे आगेके सातों स्थानोंमें समस्त ग्रह स्थित हों तो छत्र योग होता है । यह योग जातकको अपूर्व सुख-शान्ति देता है । (२) रविवारको पू० फा०, सोमवारको स्वाति, मंगलको मूल, बुधवारको श्रवण, गुरुवारको उत्तरा भा०, शुक्रवारको कृतिका और शनिवारको पुनर्वसु नक्षत्र हो तो छत्र योग बनता है । इस योगमें किया हुआ कार्य शुभ फलदायी होता है ।

अर्थ—उस नगरीके बाहर पच्चीस (२५) योजन जाकर चार वन-खण्ड स्थित हैं। प्रत्येक वनखण्ड चैत्यवृक्षोंसे संयुक्त है ॥ २२९ ॥

होंति हु ताणि[1] वणाणि, दिव्वाणि असोय-सत्त-वण्णाणं ।
चंपय - चूद - वणा तह, पुव्वादि - पदाहिणि - कमेणं ॥२३०॥

अर्थ—अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र वृक्षोंके ये वन पूर्वादिक दिशाओंमें प्रदक्षिणा क्रमसे हैं ॥ २३० ॥

बारस-सहस्स-जोयण-दीहा ते होंति पंच-सय-रुंदा ।
पत्तेक्कं वणसंडा, बहुविह रुक्खेहि परिपुण्णा ॥२३१॥

१२००० । ५०० ।

अर्थ—बहुत प्रकारके वृक्षोंसे परिपूर्ण वे प्रत्येक वन-खण्ड बारह हजार (१२०००) योजन लम्बे और पाँच सौ (५००) योजन चौड़े हैं ॥ २३१ ॥

चैत्य-वृक्ष

एदेसुं चेत्त-दुमा, भावण-चेत्त-द्दुमा य सारिच्छा ।
ताणं चउसु दिसासुं, चउ-चउ-जिण-णाह-पडिमाओ ॥२३२॥

अर्थ—इन वनोंमें भावनलोकके चैत्यवृक्षोंके सदृश जो चैत्यवृक्ष स्थित हैं, उनकी चारों दिशाओंमें चार जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं ॥ २३२ ॥

देवासुर-महिदाओ, सपाडिहेराओ[2] रयण-मइयाओ ।
पल्लंक - आसणाओ, जिणिंद - पडिमाओ विजयंते ॥२३३॥

अर्थ—देव एवं असुरोंसे पूजित, प्रातिहार्यों सहित और पद्मासन स्थित वे रत्नमय जिनेन्द्र प्रतिमाएँ जयवंत हैं ॥ २३३ ॥

अशोकदेवके प्रासादका सविस्तार वर्णन

चेत्तद्दुम[3] - ईसाणे, भागे चेट्ठेदि दिव्व - पासादो ।
इगितीस - जोयणाणिं, कोसब्भहियाणि विस्थिण्णो ॥२३४॥

३१ । को १ ।

---

१. द. ब. क. ज. ताणं । २. द. ब. सपादिहीराओ रमणमहराओ, क. ज. सपादिहेराओ रमणमहराओ । ३. द. ब. क. ज. चेत्तदुमीसाणे भागे चेट्ठेदि हु होदि दिव्वपासादो ।

अर्थ—प्रत्येक चैत्यवृक्षके ईशान-दिशा-भागमें एक कोस अधिक इकतीस योजन प्रमाण विस्तारवाला दिव्य प्रासाद स्थित है ।। २३४ ।।

वासाहि दुगुण-उदओ, दु-कोस गाढो विचित्त-मणि-खंभो ।
चउ - अट्ठ - जोयणाणिं, [1]रुंदुच्छेहाओ तद्दारे ।।२३५।।

६२।२ को । को २ । ४ । ८

अर्थ—अनुपम मणिमय खम्भोंसे संयुक्त इस प्रासादकी ऊंचाई विस्तारसे दुगुनी (६२½ योजन) और अवगाह दो कोस प्रमाण है । उसके द्वारका विस्तार चार (४) योजन और ऊँचाई आठ (८) योजन है ।। २३५ ।।

पजलंत-रयण-दीवा, विचित्त - सयणासणेहिं परिपुण्णा ।
सद्द - रस - रूव - गंध[2] - प्फासेहिं अय[3]-मणाणंदो ।।२३६।।

कणयमय-कुड्ड[4]-विरचिद-विचित्त-चित्त-प्पबंध-रमणिज्जो ।
अच्छरिय-जणण-रूवो, किं बहुणा सो णिरुवमाणो ।।२३७।।

अर्थ—उपर्युक्त प्रासाद देदीप्यमान रत्नदीपकों सहित, अनुपम शय्याओं एवं आसनोंसे परिपूर्ण और शब्द, रस, रूप, गन्ध तथा स्पर्शसे इन्द्रिय एवं मनको आनन्दजनक, सुवर्णमय भीतों पर रचे गये अद्भुत चित्रोंके सम्बन्धसे रमणीय और आश्चर्यजनक स्वरूपसे संयुक्त हैं । बहुत कहनेसे क्या ? वह प्रासाद अनुपम है ।। २३६-२३७ ।।

तस्सि असोयदेओ, रमेदि देवी - सहस्स - संजुत्तो ।
वर-रयण-मउडधारी, चमरं छत्तादि - सोहिल्लो ।।२३८।।

अर्थ—उस प्रासादमें उत्तम रत्न-मुकुटको धारण करने वाला और चमर तथा छत्रादिसे सुशोभित वह अशोक देव हजारों देवियोंसे युक्त होकर रमण करता है ।। २३८ ।।

सेसम्मि वइजयंत-तिदए विजयं व[5] वण्णणं सयलं ।
दक्खिण-पच्छिम-उत्तर-दिसासु ताणं पि णयराणि ।।२३९।।

[6]जंबूदीव-वण्णणा समत्ता ।

अर्थ—शेष वैजयन्तादि तीन देवोंका सम्पूर्ण वर्णन विजय देवके ही सदृश है । इनके भी नगर क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशामें स्थित हैं ।। २३९ ।।

इस प्रकार (द्वितीय) जम्बूद्वीपका वर्णन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ज. रुंदं छेवाओ, ब. रुंदं छेदाओ । २. द. ब. गंधे । ३. द. ज कुयमणाणंमा, ब. तुरंयमणाणंमा, क. कुणयमणाणंमा । ४. ब. कुंडल । ५. द. ब. क. ज. पि । ६. ब. जंबूद्वीप ।

स्वयम्प्रभ-पर्वत का वर्णन

दीओ[1] सयंभुरमणो, चरिमो सो होदि सयल-दीवाणं[2] ।
चेट्ठेदि तस्स मज्झे, वलएण सयंपहो सेलो ॥२४०॥

अर्थ—सब द्वीपोंमें अन्तिम वह स्वयम्भूरमणद्वीप है। उसके मध्य-भागमें मण्डलाकार स्वयंप्रभ शैल स्थित है ॥ २४० ॥

जोयण-सहस्समेक्कं, गाढो वर-विविह-रयण-दिप्पंतो ।
मूलोवरि-भाएसुं, तड - वेदी - उववणादि - जुदो ॥२४१॥

अर्थ—यह पर्वत एक हजार (१०००) योजन प्रमाण अवगाह सहित, उत्तम अनेक प्रकारके रत्नोंसे देदीप्यमान और मूल एवं उपरिम भागोंमें तट-वेदी तथा उपवनादिसे संयुक्त है ॥ २४१ ॥

तग्गिरिणो उच्छेहे[3], वासे कूडेसु जेत्तियं माणं ।
तस्सि काल - वसेणं,[4] उवएसो संपइ पणट्ठो ॥२४२॥

एवं विण्णासो समत्तो ॥४॥

अर्थ—इस पर्वतकी ऊँचाई, विस्तार और कूटोंका जितना प्रमाण है, उसका उपदेश इस समय कालवश नष्ट हो चुका है ॥ २४२ ॥

इसप्रकार विन्यास समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

वृत्ताकार क्षेत्रका स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधि

एत्तो दीव[5]-रयणायराणं बादर-खेत्तफलं वत्तइस्सामो। तत्थ जंबूदीवमादिं कादूण वट्टसरूवावट्ठिद-खेत्ताणं खेत्तफल-पमाणाणयणट्ठमिमा[6] सुत्त-गाहा—

अर्थ—अब यहाँसे आगे द्वीप-समुद्रोंके स्थूल क्षेत्रफलको कहते हैं। उनमेंसे जम्बूद्वीप को आदि करके गोलाकारसे अवस्थित क्षेत्रोंके क्षेत्रफलका प्रमाण लानेके लिए यह सूत्र-गाथा है—

ति-गुणिय-वासा परिही, तीए[7] विक्खंभ-पाव-गुणिदाए ।
जं लद्धं तं बादर - खेत्तफलं सरिस - वट्टाणं[8] ॥२४३॥

---

१. द. क. ज. आदीओ। २. द. देवाण। ३. द. ब. क. ज. उच्छेहो। ४. द. ब. क. ज. वसेसा। ५. द. ब. क. ज. दीवरणायराठाण बादरभेदतप्फलं। ६. द. ब. क. ज. मिस्सा। ७. द. ब. क. ज. परिहीए। ८. द. ब. क. ज. दंडाणं।

अर्थ—गोल क्षेत्रके विस्तारसे तिगुनी उसकी बादर परिधि होती है, इस परिधिको विस्तारके चतुर्थ भागसे गुणा करने पर जो राशि प्राप्त हो उतना समान-गोल-क्षेत्रोंका बादर क्षेत्रफल होता है ।। २४३ ।।

उदाहरण—जम्बूद्वीपका विस्तार १००००० योजन है । १०००००×३=३००००० योजन स्थूल परिधि । ३०००००×१०००००/४=७५००००००००० वर्ग योजन बादर क्षेत्रफल ।

वलयाकार क्षेत्रका आयाम एवं स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधियाँ

लवणसमुद्दमादिं कादूण उवरि वलय-सरूवेण ठिवदीव-समुद्दाणं खेत्तफलमाण-यत्थं एदा वि सुत्त-गाहाओ—

अर्थ—लवणसमुद्रको आदि करके आगे वलयाकारसे स्थित द्वीप-समुद्रोंका क्षेत्रफल लानेके लिए ये सूत्र-गाथाएँ हैं—

लक्खेणूणं रुंदं, णवहि गुणं इच्छियस्स आयामो ।
तं रुंदेण य गुणिदं, खेत्तफलं दीव - उवहीणं ।।२४४।।

अर्थ—इच्छित क्षेत्रके विस्तारमेंसे एक लाख कम करके शेष को नौसे गुणा करने पर इच्छित द्वीप या समुद्रका आयाम होता है । पुनः इस आयामको विस्तारसे गुणा करने पर द्वीप-समुद्रोंका क्षेत्रफल होता है ।। २४४ ।।

उदाहरण—लवणसमुद्रका विस्तार २ लाख यो० है ।

ल० स० का आयाम=(२ ला० — १ ला०)×९=९००००० योजन ।

,, ,, ,, बादर क्षेत्रफल=९ ला० आयाम×२ ला० वि०=१८०००००००००० वर्ग योजन ।

अहवा आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूईण मेलिदं माणं ।
विक्खंभ - हदे इच्छिय - वलयाणं बादरं खेत्तं ।।२४५।।

अर्थ—अथवा—आदि, मध्य एवं बाह्य सूचियोंके प्रमाणको मिलाकर विस्तारसे गुणित करने पर इच्छित वलयाकार क्षेत्रोंका बादर क्षेत्रफल होता है ।। २४५ ।।

उदाहरण—लवण समुद्रकी आदि सूची १ ला० यो०+मध्य सूची ३ ला० यो०+बाह्य सूची ५ ला० यो०=९ लाख योजन । ल० स० का बादर क्षेत्रफल=९ लाख×२ लाख विस्तार=१८०००००००००० वर्ग योजन ।

अहवा ति-गुणिय-मज्झिम-सूई आणेज्ज इट्ठ-वलयाणं ।
तह य पमाणं तं चिय, रुंद - हदे वलय - खेत्तफलं ।।२४६।।

अर्थ—अथवा-तिगुनी मध्य-सूचीको इष्ट वलय-क्षेत्रोंका पूर्वोक्त अर्थात् आदि, मध्यम और बाह्य सूचियोंका सम्मिलित प्रमाण जानना चाहिए। इसे विस्तारसे गुणित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतना उन वलय-क्षेत्रोंका बादर क्षेत्रफल होता है ।। २४६ ।।

उदाहरण - लवण समुद्रकी तीनों सूचियोंका योग (१ ल० + ३ ल० + ५ ल० =) ९ लाख होता है और मध्यम सूची ३ लाख को ३ से गुणित करनेपर भी (३ लाख × ३ =) ९ लाख होता है।

ल० स० का बादर क्षेत्रफल = ९ लाख × २ लाख विस्तार = १८०००००००००० वर्ग योजन।

द्वीप-समुद्रोंके बादर क्षेत्रफलका प्रमाण

जंबूदीवस्स बादर - खेत्तफलं सत्त - सय - पण्णास - कोडि-जोयण-पमाणं—७५०००००००० । लवणसमुद्दस्स खेत्तफलं अट्ठारस-सहस्स-कोडि-जोयण-पमाणं—१८०००००००००० । धादइसंड-दीवस्स बादर-खेत्त-फलं अट्ठ-सहस्स-कोडि-अब्भहिय-एक्क-लक्ख-कोडि-जोयण-पमाणं—१०८०००००००००० । कालोदग - समुद्दस्स बादर-खेत्तफलं चत्तारि - सहस्स - कोडि - अब्भहिय - पंच - लक्ख - कोडि - जोयण-पमाणं—५०४०००००००००० । पोक्खरवर - दीवस्स खेत्तफलं सट्ठि-सहस्स-कोडि-अब्भहिय[1]-एक्क-वीस-लक्ख-कोडि-जोयण-पमाणं—२१६०००००००००० । पोक्खरवर - समुद्दस्स खेत्तफलं अट्ठावीस - सहस्स - कोडि - अब्भहिय - उणणउदि-लक्ख-कोडि-जोयण-पमाणं—८९२८०००००००००० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपका बादर क्षेत्रफल सात सौ पचास करोड़ (७५००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है। लवणसमुद्र का बादर क्षेत्रफल अठारह हजार करोड़ (१८००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है। धातकी खण्डद्वीपका बादर क्षेत्रफल एक लाख आठ हजार करोड़ (१०८००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है। कालोदसमुद्रका बादर क्षेत्रफल पाँच लाख चार हजार करोड़ (५०४००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है। पुष्करवरद्वीपका बादर क्षेत्रफल इक्कीस लाख साठ हजार करोड़ (२१६००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है और पुष्करवर समुद्रका बादर क्षेत्रफल नवासी लाख अट्ठाईस हजार करोड़ (८९२८००००००००००) वर्ग योजन प्रमाण है।

---

1. द. अब्भहिएक्क ।

विशेषार्थ—

क्र०	नाम	(विस्तार–१ लाख)×९=आयाम	आयाम×वि०=बादर क्षेत्रफल
१.	लवण समुद्र	(२ ला०—१ ला०)×९=९ ला० यो०	९ ला०×२ ला०=१८००० करोड़ वर्ग यो०
२.	धातकी खण्ड	(४ ला०—१ ला०)×९=२७ ला० यो०	२७ ला०×४ ला०=१०८००० क० ,, ,,
३.	कालोद स०	(८ ला०—१ ला०)×९=६३ ला० यो०	६३ ला०×८ ला०=५०४००० क० ,, ,,
४.	पुष्कर० द्वीप	(१६ ला०—१ ला०)×९=१३५ ला० यो०	१३५ ला०×१६ ला०=२१६०००० ,, ,,
५.	पुष्कर० समुद्र	(३२ ला०—१ ला०)×९=२७९ ला० यो०	२७९ ला०×३२ ला०=८९२८००० ,, ,,

जघन्य-परीतासंख्यातवें क्रमवाले द्वीप या समुद्रका बादर क्षेत्रफल

एवं जंबूदीव-प्पहुदि-जहण्ण-परित्तासंखेज्जयस्स रूवाहिय-च्छेदणय-मेत्तट्ठाणं[1] जंबूदीव-हिद-दीवस्स[2] खेत्तफलं जहण्ण-परित्तासंखेज्जयं रूऊण-जहण्ण-परित्तासंखेज्जएण गुणिय-पुणो णव-सहस्स-कोडि-जोयणेहिं गुणिदमेत्तं[3] खेत्तफलं होदि । तस्सेदं—१६ । १६ । ९०००००००००० ।

अर्थ—इसप्रकार जम्बूद्वीपको आदि लेकर जघन्य-परीतासंख्यातके एक अधिक अर्धच्छेद प्रमाण स्थान जाकर जो द्वीप स्थित है उसका क्षेत्रफल जघन्य-परीतासंख्यातको एक कम जघन्य-परीतासंख्यातसे गुणा करके फिर नौ हजार करोड़ योजनोंसे भी गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतना है। वह प्रमाण यह है—१६×(१६ — १)×९०००००००००० ।

(संदृष्टिमें ग्रहण किया गया १६, जघन्यपरीतासंख्यातका कल्पित मान है)।

पल्योपमके एक अधिक अर्धच्छेद स्थानपर स्थित द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल

पुणो जंबूदीव-प्पहुदि-पलिदोवमस्स रूवाहियच्छेदणय-मेत्त[4] ठाणं जंबूदीव-हिद-दीवस्स खेत्तफलं पलिदोवमं रूऊण-पलिदोवमेण गुणिय पुणो णव-सहस्स-कोडि-जोयणेहिं गुणिदमेत्तं होदि । तस्सेदं [पमाणं]—प । प १ । ९०००००००००० । एवं जाणिदूण[5] णेदव्वं जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ।

---

१. द. ब. क. रूवोहिय, ब. रूवोच । २. द. क. मेत्तठाणं । ३. द. दीवस्स । ४. द. ब. गुणिद मेत्तं होदि । ५. द. ब. जाणिदूण, ब. जाणिदूण ।

अर्थ—पश्चात् जम्बूद्वीपको आदि लेकर पल्योपमके एक अधिक अर्धच्छेदप्रमाण स्था जाकर जो द्वीप स्थित है उसका क्षेत्रफल पल्योपमको एक कम पल्योपमसे गुणा करके फिर नौ हजा करोड़ योजनोंसे भी गुणा करनेपर प्राप्त हुई राशिके प्रमाण है। वह प्रमाण यह है—पल्य × (पल्य—१) × ९०००००००००० यो०। इसप्रकार जानकर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त क्षेत्रफल जाना चाहिए।

स्वयम्भूरमण समुद्रका बादर क्षेत्रफल

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो-सयंभूरमण-समुद्दस्स खेत्तफलं जगसेढीए वग्ग णव-रूवेहि गुणिय सत्त-सय-चउसीदि-रूवेहिं भजिदमेत्तं पुणो एक्क - लक्ख बारस-सहस्स पंच-सय-जोयणेहिं गुणिद-रज्जूए अब्भहियं होदि। पुणो एक्क-सहस्स-छस्सय-सत्तासीदि कोडीओ पण्णास-लक्ख-जोयणेहि पुव्विल्ल-दोण्णि-रासीहिं परिहीणं होदि। तस्स ठवण $=\frac{९}{७८४}$ धण रज्जू ७ । ११२५०० रिण जोयणाणि १६८७५०००००० ।

अर्थ—इनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—

जगच्छ्रेणीके वर्गको नौसे गुणा करके प्राप्त राशिमें सात सौ चौरासीका भाग देनेपर ज लब्ध प्राप्त हो उसमें फिर एक लाख बारह हजार पाँच सौ योजनोंसे गुणित राजूको जोड़कर पुन एक हजार छह सौ सतासी करोड़ पचास लाख योजनोंसे पूर्वोक्त दोनों राशियोंको कम करनेपर ज शेष रहे उतना स्वयम्भूरमण समुद्रका क्षेत्रफल है। उसकी स्थापना—{ (७ × ७ × ९) ÷ (७८४) + (१ राजू × ११२५००)—१६८७५०००००० योजन।

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका बादर-क्षेत्रफल निकालनेके लिए इसी अधिकारकी गाथा २४४ का उपयोग किया गया है। स्वयम्भूरमण समुद्रके बादर-क्षेत्रफलकी प्राप्ति हेतु सूत्र—
स्वयं० का बा० क्षे० = (स्वयं० समुद्रका व्यास) × ९ × (स्वयं० सं० का व्यास—१ ला० यो०
नोट—स्वयम्भूरमण समुद्रका व्यास $\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{२८}$ + ७५००० योजन है।

$$\text{बादर क्षेत्रफल} = \left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५०००\text{यो०}\right) \times ९ \times \left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५०००\text{यो०} - १०००००\text{ यो०}\right)$$

$$= \left(\frac{९}{२८}\text{ जगच्छ्रेणी} + ६७५०००\text{ यो०}\right) \times \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५०००\text{ यो०}\right)$$

$$\text{क्षेत्रफल} = \frac{९\,(\text{जगच्छ्रेणी})^2}{७८४} + \text{जग०}\left[\frac{९}{२८} \times (-२५०००\text{ यो०}) + \frac{६७५००}{२८}\text{ यो०}\right] - (२५०००\text{ यो०} \times ६७५०००\text{ यो०})$$

$= \frac{६}{७८४}$ (जगच्छ्रेणी)^{२} + (११२५०० वर्ग यो० × १ राजू) — १६८७५०००००० वर्ग योजन बादर क्षेत्रफल है।

नोट—(२८)^{२} = ७८४ होता है और जगच्छ्रेणी = ७ राजू है।

उन्नीस विकल्पों द्वारा द्वीप-समुद्रोंका अल्पबहुत्व

एत्तो दीव-रयणायराणं एऊणवीस-वियप्पं अप्पबहुअं वत्तइस्सामो। तं जहा—

पढम-पक्खे जंबूदीव-सयल-रुंदादो लवणणीर-रासिस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे सिज्जइ। जंबूदीव-लवणसमुद्दादो धादइ-संडस्स। एवं सव्वब्भंतरिम-दीव-रयणायराणं एय-दिस-रुंदादो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स वा तरंगिणी-रमणस्स वा एय-दिस-रुंद-वड्ढी-गदे सिज्जइ॥

अर्थ—अब यहांसे उन्नीस विकल्पों द्वारा द्वीप-समुद्रोंके अल्पबहुत्वको कहते हैं। वह इसप्रकार है—

प्रथम पक्षमें जम्बूद्वीपके सम्पूर्ण विस्तारकी अपेक्षा लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है। जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रके सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डके विस्तारमें वृद्धिका प्रमाण ज्ञात किया जाता है। इसप्रकार समस्त अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके अनन्तर बाह्य-भागमें स्थित द्वीप अथवा समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिके प्रमाणकी सिद्धि ज्ञात की जाती है॥

बिदिय-पक्खे जंबूदीवस्सद्धादो लवण-णिण्णगाणाहस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी गदे सिज्जइ। तदो जंबूदीवस्सद्धम्मि सम्मिलिद-लवणसमुद्दादो धादइसंडस्स। एवं सव्वब्भंतरिम-दीव-उवहीणं एय-दिस-रुंदादो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स वा तरंगिणी रमणस्स वा एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे-सिज्जइ॥

अर्थ—द्वितीय-पक्षमें जम्बूद्वीपके अर्ध-विस्तारसे लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है। पश्चात् जम्बूद्वीपके अर्ध-विस्तारसे लवणसमुद्रके विस्तारको मिलाकर इस सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डद्वीपके विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है। इसप्रकार संपूर्ण अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके एक दिशा संबन्धी विस्तारसे उनके अनन्तर बाह्य भागमें स्थित द्वीप अथवा समुद्रके एक दिशा संबन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है॥

तदिय-पक्खे इच्छिय-सलिलरासिस्स एय-दिस-रुंदादो तदणंतर-तरंगिणी-णाहस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे सिज्जइ॥

अर्थ—तृतीय-पक्षमें अभीष्ट समुद्रके एक दिशा संबन्धी विस्तारसे उसके अनन्तर स्थित समुद्रके एक दिशासंबन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

तुरिम-पक्खे अब्भंतरिम-णीरधीणं एय-दिस-विक्खम्भादो तदणंतर-तरंगिणी-णाहस्स एय-दिस-विक्खम्मि वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—चतुर्थ-पक्षमें अभ्यन्तर समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर समुद्रके एक-दिशासम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी खोज की जाती है ।।

पंचम-पक्खे इच्छिय-दीवस्स एय-दिस-रुंदादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—पंचम-पक्षमें इच्छित द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारसे तदनन्तर उपरिम द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि को जाती है ।।

छट्ठम-पक्खे अब्भंतरिम-सव्व-दीवाणं एय-दिस-रुंदादो तदणंतोवरिम-दीवस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—छठे पक्षमें अभ्यन्तर सब द्वीपोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर उपरिम द्वीपके एकदिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

सत्तम-पक्खे अब्भंतरिमस्स दीवाणं दोण्णि-दिस-रुंदादो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ दीवस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—सातवें पक्षमें अभ्यन्तर द्वीपोंके दोनों दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर बाह्य स्थित द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

अट्ठम-पक्खे हेट्ठिम-सयल-मयरहराणं दोण्णि दिस-रुंदादो तदणंतर-वाहिरणी-रमणस्स एय-दिस-रुंदम्मि वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—आठवें पक्षमें अधस्तन सम्पूर्ण समुद्रोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

णवम-पक्खे जंबूदीव-बादर-सुहुम-खेत्तफलप्पमाणेण उवरिमापगाकंत-दीवाणं खेत्तफलस्स खंड[1]-सलागं कादूण वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

---

१. द. ब. क. ज. खंद ।

अर्थ—नवमपक्षमें जम्बूद्वीपके बादर और सूक्ष्म क्षेत्रफलके प्रमाणसे आगेके समुद्र और द्वीपोंके क्षेत्रफलकी खण्ड-शलाकाएँ करके वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

दसम-पक्खे जंबूदीवादो लवणसमुद्दस्स लवणसमुद्दादो धादईसंडस्स एवं दीवादो उवहिस्स उवहीदो दीवस्स वा खंडसलागाणं वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—दसवें पक्षमें जम्बूद्वीपसे लवणसमुद्रकी और लवणसमुद्रसे धातकीखण्डद्वीपकी इसप्रकार द्वीपसे समुद्रकी अथवा समुद्रसे द्वीपकी खण्डशलाकाओंकी वृद्धिके प्रमाणकी सिद्धि की जाती है ।।

एक्कारसम-पक्खे अब्भंतर-कल्लोलिणी-रमण-दीवाणं खंडसलागाणं समूहादो बाहिर-णिविट्ठ-णीररासिस्स वा दीवस्स वा खंडसलागाणं वड्ढी-गदे-सिज्जइ ।।

अर्थ—ग्यारहवें-पक्षमें अभ्यन्तरसमुद्र एवं द्वीपोंकी खण्डशलाकाओंके समूहसे बाह्य भागमें स्थित समुद्र अथवा द्वीपकी खण्डशलाकाओंकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

बारसम पक्खे इच्छिय-सायरादो दीवस्स दीवादो णीररासिस्स खेत्तफलस्स वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—बारहवें-पक्षमें इच्छित समुद्रसे द्वीपके और द्वीपसे समुद्रके क्षेत्रफलकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

तेरसम-पक्खे अब्भंतरिम-दीव-पयोहीणं खेत्तफलादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स वा तरंगिणी-णाहस्स वा खेत्तफलस्स वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—तेरहवें-पक्षमें अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके क्षेत्रफलकी अपेक्षा तदनन्तर अग्रिम द्वीप अथवा समुद्रके क्षेत्रफलकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

चोद्दसम-पक्खे लवणसमुद्दादि-इच्छिय-समुद्दादो तदणंतर-तरंगिणी-रासिस्स खेत्तफलस्स वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—चौदहवें-पक्षमें लवणसमुद्रको आदि लेकर इच्छित समुद्रके क्षेत्रफलसे उससे अनन्तर स्थित समुद्रके क्षेत्रफलकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

पण्णारसम - पक्खे सव्वब्भंतरिम-मयरहराणं खेत्तफलादो तदणंतरोवरिम-णिण्णगा-णाहस्स [खेत्तफलस्स] वड्ढी-गदे सिज्जइ ।।

अर्थ—पन्द्रहवें-पक्षमें समस्त अभ्यन्तर समुद्रोंके क्षेत्रफलसे उनके अनन्तर स्थित अग्रिम समुद्रके क्षेत्रफलकी वृद्धिकी सिद्धि की जाती है ।।

सोलसम-पक्खे धादइसंडादि-इच्छिद-दीवादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स खेत्त-फलस्स वड्ढी-पदे सिज्जइ ॥

अर्थ—सोलहवें-पक्षमें धातकीखण्डादि इच्छित द्वीपसे उसके अनन्तर स्थित अग्रिम द्वीपके क्षेत्रफलकी वृद्धि सिद्ध की जाती है ॥

सत्तरसम-पक्खे धादइसंड-प्पहुदि अब्भंतरिम-दीवाणं खेत्तफलादो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स खेत्तफलस्स वड्ढी-पदे सिज्जइ ॥

अर्थ—सत्तरहवें-पक्षमें धातकीखण्डादि अभ्यन्तर द्वीपोंके क्षेत्रफलसे उनके अनन्तर बाह्य भागमें स्थित द्वीपके क्षेत्रफलमें होनेवाली वृद्धि सिद्ध की जाती है ॥

अट्ठारसम-पक्खे इच्छिद-दीवस्स वा तरंगिणी-णाहस्स वा आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूईणं परिमाणादो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स वा तरंगिणी-णाहस्स वा आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूईणं पत्तेक्कं वड्ढी-पदे सिज्जइ ॥

अर्थ—अठारहवें-पक्षमें इच्छित द्वीप अथवा इच्छित समुद्रकी आदि-मध्य और बाह्य-सूचीके प्रमाणसे उसके अभ्यन्तर बाह्य-भागमें स्थित द्वीप अथवा समुद्रकी आदि-मध्य एवं बाह्य सूचियोंमेंसे प्रत्येककी वृद्धि सिद्ध की जाती है ॥

एऊणवीसदिम-पक्खे इच्छिद-दीव-णिण्णगा-णाहाणं आयामादो तदणंतर-बाहिर-णिविट्ठ-दीवस्स वा णीररासिस्स वा आयाम-वड्ढी-पदे सिज्जइ ॥

अर्थ—उन्नीसवें-पक्षमें इच्छित द्वीप-समुद्रोंके आयामसे उनके अनन्तर-बाह्य-भागमें स्थित द्वीप अथवा समुद्रके आयामकी वृद्धि सिद्ध की जाती है ॥

प्रथम-पक्ष

पूर्वोक्त उन्नीस विकल्पोंमेंसे प्रथमपक्ष द्वारा दो सिद्धान्त कहते हैं—

(१) अपरवर्ती द्वीप-समुद्रके सम्मिलित एक दिशा सम्बन्धी विस्तारसे पूर्ववर्ती द्वीप या समुद्रका विस्तार १ लाख यो० अधिक होता है—

तत्थ पढम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—जंबूदीवस्स सयल-विक्खंभादो लवणसमुद्दस्स एय-दिस-रुंदं एक्क-लक्खेणब्भहियं होइ । जंबूदीवेणब्भहिय-लवणसमुद्दस्स एय-दिस-रुंदादो धादइसंडस्स एय-दिस-रुंदं एक्क-लक्खेणब्भहियं होइ । एवं जंबूदीव-लवण-रुंदेणब्भहियं अब्भंतरिम रयणायर-दीवाणं एय-दिस-रुंदादो तदणंतर बाहिर-

णिविट्ठ-दीवस्स वा तरंगिणी-रमणस्स वा एय-दिस-रुंदं एक्क-लक्खेणब्भहियं होदूण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ।

अर्थ—उपर्युक्त उन्नीस विकल्पोंमेंसे प्रथम पक्षमें अल्पबहुत्वको कहते हैं वह इसप्रकार है—

जम्बूद्वीपके समस्त विस्तारकी अपेक्षा लवण समुद्रका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार एक लाख योजन अधिक है। जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार एक लाख योजन अधिक है। इसप्रकार जम्बूद्वीपके समस्त विस्तार सहित अभ्यन्तर समुद्र एवं द्वीपोंके सम्मिलित एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके आगे (बाहर) स्थित द्वीप अथवा समुद्रका विस्तार एक-एक लाख योजन अधिक है। इसप्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र-पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—यहाँ जम्बूद्वीपसे लेकर इष्ट द्वीप या समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी सम्मिलित विस्तारसे उनके आगे स्थित द्वीप या समुद्रका विस्तार निकाला जाता है। इस तुलनामें वह एक-एक लाख योजन अधिक रहता है। यथा—जम्बूद्वीपके पूर्ण विस्तारकी अपेक्षा लवणसमुद्रका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार एक लाख योजन अधिक है।

पुन: जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रका विस्तार यदि एक दिशामें सम्मिलित किया जाय तो ३ लाख योजन होगा, जिसकी अपेक्षा धातकीखण्डद्वीपका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार ४ लाख योजन होनेसे (४ लाख — ३ लाख =) १ लाख योजन अधिक है।

तव्वड्ढी-आणयण-हेदुं इमा सुत्त-गाहा—

इच्छिय-दीवुवहीणं[1], चउ-गुण-रुंदम्मि पढम-सूइ-जुदं ।
तिय-भजिदं तं सोहसु, दुगुणिद-रुंदम्मि सा हवे वड्ढी ॥२४७॥

अर्थ—इस वृद्धि-प्रमाणको प्राप्त करनेके लिए यह गाथा सूत्र है—

इच्छित द्वीप-समुद्रोंके चौगुने विस्तारमें आदि सूचीके प्रमाणको मिलाकर तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे विवक्षित द्वीप-समुद्रके दुगुने विस्तारमेंसे कम कर देनेपर शेष वृद्धिका प्रमाण होता है ॥२४७॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथामें शेष वृद्धिका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि दर्शाई गई है। जिसका सूत्र इसप्रकार है—

---

१. द. ब. क. ज. दीवोवहीणं।

$$\text{शेषवृद्धि} = २\,(\text{इष्ट द्वीप या समुद्रका व्यास}) - \left(\frac{४ \times \text{इष्ट द्वीप या समुद्रका व्यास} + \text{उसकी आदि सूची}}{३}\right)$$

$$= \frac{२ \times (\text{इष्टद्वीप या समुद्रका व्यास}) - (\text{उसकी आदि सूची})}{३}$$

उदाहरण—यहाँ पुष्करवरद्वीप विवक्षित है अत: उसकी विस्तार वृद्धिका प्रमाण निकालना है। पुष्करवरद्वीपका व्यास १६ लाख योजन तथा उसकी आदि सूची २९ लाख योजन है, अतएव यहाँ—

$$\text{शेषवृद्धि} = (२ \times १६\ \text{लाख यो०}) - \left(\frac{४ \times १६\ \text{ला० यो०} + २९\ \text{ला० यो० आदि सूची}}{३}\right)$$

$$= ३२\ \text{लाख यो०} - \frac{९३\ \text{ला० यो०}}{३}$$

$= ३२$ लाख यो० — ३१ लाख यो० $=$ १ लाख योजन शेष वृद्धि।

(२) इष्ट द्वीप या समुद्रकी अर्ध आदिम सूची प्राप्त करनेकी विधि—

इट्ठस्स दीवस्स वा सायरस्स वा आदिम-सूइस्सद्धं
लक्खद्ध-संजुदस्स आणयण-हेदुमिमा सुत्त-गाहा—
इच्छिय-दीवुवहीणं,[1] रुंदं दो-लक्ख-विरहिदं मिलिदं।
बाहिर-सूइम्मि तदो, पंच-हिदं तत्थ जं लद्धं ॥२४८॥
आदिम-सूइस्सद्धं, लक्खद्ध-जुदं हवेदि इट्ठस्स।
एवं लवणसमुद्द-प्पहुदिं आणेज्ज अंतो त्ति ॥२४९॥

अर्थ—विवक्षित द्वीप अथवा समुद्रकी अर्ध-लाख योजनोंसे संयुक्त अर्ध आदिम सूची प्राप्त करने हेतु ये सूत्र-गाथाएँ हैं—

इच्छित द्वीप-समुद्रोंके विस्तारमेंसे दो लाख कम करके शेषको बाह्य सूचीमें मिलाकर पाँचका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो, उतना अर्ध-लाख सहित इष्ट द्वीप अथवा समुद्रकी अर्ध-आदिम सूचीका प्रमाण होता है। इसीप्रकार लवणसमुद्रसे लेकर अन्तिम समुद्र पर्यन्त (सूची प्रमाणको) लाना चाहिए ॥ २४८-२४९ ॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथासे सम्बन्धित सूत्र इसप्रकार है—अर्ध लाख यो० + इष्ट द्वीप समुद्रकी अर्ध आदि सूची $= ५००००\ \text{योजन} + \frac{\text{आदिम सूची}}{२}$

---

1. द. दीवाबहीणं, ब. क. ज. दीवोवहीणं।

$= \frac{\text{उसकी बाह्य सूची} + (\text{उसका व्यास} - २००००० \text{ यो॰})}{५}$

उदाहरण—मानलो—धातकीखण्डद्वीपकी अर्धलाख योजन सहित आदिम सूची प्राप्त करना है। धातकीखण्डका व्यास ४ लाख योजन, आदिम सूची व्यास ५ लाख योजन और बाह्य सूची व्यास १३ लाख योजन प्रमाण है। इसकी अर्धलाख (५००००) यो॰ सहित अर्ध आदि (५ लाख ÷ २ = २५०००० यो॰) सूची प्राप्त करनेके लिए—

$= \frac{१३ \text{ लाख यो॰} + (४ \text{ लाख यो॰} - २ \text{ लाख यो॰})}{५}$

$= \frac{१३ \text{ ला॰ यो॰} + २ \text{ लाख यो॰}}{५}$

$= \frac{१५ \text{ ला॰ यो॰}}{५} = ३ \text{ लाख योजन}$

= ५०००० यो॰ + २५०००० योजन।

द्वितीय-पक्ष

उन्नीस विकल्पोंमेंसे द्वितीय पक्षमें दो सिद्धान्त कहते हैं

(१) विवक्षित सम्पूर्ण अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा अग्रिम द्वीप या समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें १½ लाख यो॰ की वृद्धि होती है—

बिदिय - पक्खे अप्पबहुलं [1]वत्तइस्सामो - जंबूदीवस्सद्धस्स विक्खंभादो लवण-समुद्दस्स एय-दिस-रुंदं दिवड्ढ - लक्खेणब्भहियं होइ। जंबूदीवस्सद्धस्स विक्खंभेण वि बद्धेणब्भहिय-लवणसमुद्दस्स एय-दिस-रुंदादो तदणंतर-उवरिम-दीवस्स वा सायरस्स वा एय-दिस-रुंद-वड्ढी दिवड्ढी-लक्खेणब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ।।

अर्थ – द्वितीय-पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके अर्ध-विस्तारकी अपेक्षा लवणसमुद्र का एक-दिशा-सम्बन्धी विस्तार डेढ़ लाख योजन अधिक है।

जम्बूद्वीपके अर्धविस्तार सहित लवणसमुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डद्वीपका एक दिशा-सम्बन्धी विस्तार भी डेढ़ लाख योजन अधिक है।

---

१. द. ज. वण्णइस्सामो, ब. बतेइस्सामो।

इसीप्रकार सम्पूर्ण अभ्यन्तर द्वीप-समुद्रोंके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके अनन्तर स्थित अग्रिम द्वीप अथवा समुद्रके एक दिशा विस्तारमें स्वयम्भूरमरण-समुद्र पर्यन्त डेढ़ लाख योजन वृद्धि होती गई है ।।

तव्वड्ढी-आणयण-हेदुमिमा सुत्त-गाहा—

इच्छिय-दीवुवहीणं,[1] बाहिर-सूइस्स अद्धमेसम्मि ।
आदिम - सूई सोहसु, जं[2] सेसं तं च परिवड्ढी ।।२५०।।

अर्थ—इस वृद्धि-प्रमाणको प्राप्त करने हेतु ये सूत्र-गाथाएं हैं—

इच्छित द्वीप-समुद्रोंकी बाह्य सूचीके अर्ध-प्रमाणमेंसे आदिम सूचीका प्रमाण घटा देनेपर जो शेष रहे उतना उस वृद्धि का प्रमाण है ।। २५० ।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके अर्ध-विस्तार सहित इष्ट द्वीप या समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा उससे अग्रिम द्वीप या समुद्रका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार $१\frac{१}{२}$ लाख योजन अधिक होता है । इस वृद्धिका प्रमाण प्राप्त करने हेतु इष्ट द्वीप या समुद्रकी बाह्य सूचीके अर्ध प्रमाणमेंसे उसीकी आदि सूचीका प्रमाण घटा देना चाहिए । उसका सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या समुद्रके विस्तारमें उपर्युक्त वृद्धि—

=[$\frac{१}{२}$ (इष्टद्वीप या समुद्रकी बाह्यसूची) — (उसकी आदि सूची)]= $१\frac{१}{२}$ ला० यो० ।

उदाहरण—यहाँ इष्ट कालोदक समुद्र है । इसके विस्तारमें उपर्युक्त वृद्धि प्राप्त करना है । कालोदक समुद्रका विस्तार ८ लाख यो०, बाह्य सूची २९ लाख योजन और आदि सूचीका प्रमाण १३ लाख योजन है । तदनुसार—

कालोदकसमुद्रके विस्तारमें उपर्युक्त वृद्धि—

= $\frac{२९०००००}{२}$ — १३००००० योजन ।

=१४५०००० — १३००००० योजन ।

=१५०००० या $१\frac{१}{२}$ लाख योजन वृद्धि ।

(२) इष्ट द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप या समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार अपनी आदि सूचीके अर्ध-भाग-प्रमाण होता है—

---

१. द. दीवोवहीणं । २. द. ब. क. ज. तं सेसं तच्च ।

इच्छिय-दीवुवहीदो,[1] हेट्ठिम-दीवोवहीण[2] सं पिंडं ।
सग-सग - आदिम - सूइस्सद्धं लवणादि - चरिमंतं ।।२५१।।

अर्थ—लवणसमुद्रसे लेकर अन्तिम समुद्र पर्यन्त इच्छित द्वीप या समुद्रसे अधस्तन (पहिलेके) द्वीप-समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार अपनी-अपनी आदिम सूचीके अर्ध-भाग-प्रमाण होता है ।। २५१ ।।

विशेषार्थ—मानलो-पुष्करवरद्वीप इष्ट है । इसका विस्तार १६ लाख यो० और आदि सूची २६ लाख यो० है । इस आदि सूचीका अर्ध भाग (२६ लाख ÷ २ =) १४५०००० योजन होता है । जो जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्ड और कालोद समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी सम्मिलित विस्तार (½ ला० + २ ला० + ४ ला० + ८ लाख =) १४५०००० योजनके बराबर है । इसकी सिद्धिका सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप या समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार = अपनी-आदि सूची ÷ २ ।

उदाहरण—मानलो—इष्ट द्वीप पुष्करवरद्वीप है । उसके पहले स्थित द्वीप-समुद्रोंका सम्मिलित विस्तार—

$$= \frac{\text{पुष्करवर द्वीपकी आदि सूची}}{२}$$

$$= \frac{\text{२९ लाख यो०}}{२} = \text{१४५०००० योजन ।}$$

तृतीय-पक्ष

विवक्षित समुद्रके विस्तारकी अपेक्षा उससे अग्रिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें उत्तरोत्तर चौगुनी वृद्धि होती है—

तदिय-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—

लवणसमुद्दस्स एय-दिस-रुंदादो कालोदग-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढि छल्ल-क्खेणब्भहियं होदि । कालोदग-समुद्दस्स एय-दिस-रुंदादो पोक्खरवर समुद्दस्स एय-दिस-रुंद -. वड्ढी चउवीस - लक्खेणब्भहियं होदि । एवं कालोदग - समुद्दप्पहुदि विवक्खिद-

---

१. द. क. ज. दीवउवहीदो, ब. दीवोवहीदो । २. द. दीवाबहीण ।

तरंगिणीरमण-रुंदादो तदणंतरोवरिम-णीररासिस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी चउ-गुणं होदूण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ।।

अर्थ—तृतीय-पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—

लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा कालोदकसमुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि छह लाख योजन अधिक है। कालोदकसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि चौबीस लाख योजन अधिक है। इसप्रकार कालोदक-समुद्रसे स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त विवक्षित समुद्रके विस्तारकी अपेक्षा उसके अनन्तर स्थित अग्रिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें उत्तरोत्तर चौगुनी वृद्धि होती गई है।।

विशेषार्थ—लवणसमुद्रका एक दिशाका विस्तार दो लाख योजन है। उसकी अपेक्षा कालोद समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी ८ लाख योजन विस्तारकी वृद्धि (८ लाख यो० — २ लाख यो०=) ६ लाख योजन है। कालोदके एक दिशा सम्बन्धी ८ लाख यो० विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी ३२ लाख यो० विस्तारकी वृद्धि (३२ लाख यो० — ८ लाख यो०=२४ लाख योजन अधिक है। पुष्करवर समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी ३२ लाख योजन विस्तार की अपेक्षा वारुणीवरसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी १२८ लाख यो० की वृद्धि (१२८ लाख यो० — ३२ लाख यो०=) ९६ लाख योजन है, जो पुष्करवर समुद्रकी वृद्धिसे (२४×४=९६) चौगुनी है। इसप्रकार स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए।

अन्तिम स्वयम्भूरमणसमुद्रकी वृद्धि

तस्स अंतिम - वियप्पं वत्तइस्सामो—अहिंदवर-सायरस्स एय-दिस-रुंदादो सयंभूरमण - समुद्दस्स एय - दिस - रुंद-वड्ढी बारसुत्तर - सएण भजिद-ति-गुण-सेढीओ पुणो छप्पण्ण-सहस्स-दु-सद-पण्णास-जोयणेहिं अब्भहियं होदि। तस्स ठवणा—$\frac{-3}{112}$। एदस्स धण जोयणाणि ५६२५०।

अर्थ—उसका अन्तिम विकल्प कहते हैं—अहीन्द्रवर-समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तार की अपेक्षा स्वयम्भूरमण-समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें एकसौ बारहसे भाजित तिगुनी जगच्छ्रेणियाँ और छप्पन हजार दो सौ पचास योजन-प्रमाण वृद्धि हुई है।

उसकी स्थापना इसप्रकार है—$\frac{\text{जगच्छ्रेणी} \times 3}{112}$ + ५६२५० यो०।

उपर्युक्त वृद्धि प्राप्त करनेकी विधि

तव्वड्ढीणं आणयण-सुत्त-गाहा—

इच्छिय-जलणिहि-रुंदं, ति-गुणं दलिदूण तिण्णि-लक्खूणं।
ति-लक्खूण-ति-गुण-वासे सोहिय दलिदम्मि सा हवे वड्ढी ।।२५२।।

अर्थ—उन वृद्धियोंको लानेके लिए यह सूत्र गाथा है—

इच्छित समुद्रके तिगुने विस्तारको आधा करके उसमेंसे तीन लाख कम कर देनेपर जो शेष रहे उसे तीन लाख कम तिगुने विस्तारमेंसे घटाकर शेषको आधा करने पर वह वृद्धि-प्रमाण आता है ।। २५२ ।।

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथासे सम्बन्धित सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट समुद्रके विस्तारमें वर्णित वृद्धि—

$$=\frac{(\text{३}\times\text{इष्ट समुद्रका व्यास}-\text{३००००० यो०})-\left(\frac{\text{३}\times\text{इष्ट समुद्रका व्यास}}{\text{२}}-\text{३००००० यो०}\right)}{\text{२}}$$

उदाहरण—मानलो-कालोद समुद्रकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रके विस्तारमें हुई वृद्धिका प्रमाण ज्ञात करना है।

सूत्रानुसार—

$$\text{वर्णित वृद्धि}=\frac{(\text{३}\times\text{३२ ला० यो०}-\text{३००००० यो०})-\left(\frac{\text{३}\times\text{३२ला० यो०}}{\text{२}}-\text{३०००००यो.}\right)}{\text{२}}$$

$$=\frac{\text{९३००००० यो०}-\text{४५००००० यो०}}{\text{२}}$$

$$=\frac{\text{४८००००० यो०}}{\text{२}}=\text{२४००००० यो० वृद्धि ।}$$

अब यहाँ गाथा-सूत्रानुसार अन्तिम विकल्पमें (अहीन्द्रवर-समुद्रकी अपेक्षा स्वयम्भूरमण समुद्रके विस्तारमें) वर्णित वृद्धि कहते हैं—

वर्णित वृद्धि=

$$=\frac{\left\{\text{३}\times\left(\frac{\text{ज०}}{\text{२८}}+\text{७५००० यो०}\right)-\text{३००००० यो०}\right\}-\left\{\frac{\text{३}\times\left(\frac{\text{ज०}}{\text{२८}}+\text{७५००० यो०}\right)}{\text{२}}-\text{३ ला० यो०}\right\}}{\text{२}}$$

$$=\frac{\text{३}\times\left(\frac{\text{जग०}}{\text{२८}}+\text{७५०००}\right)-\text{३००००० यो०}-\left\{\frac{\text{३}}{\text{२}}\left(\frac{\text{जग०}}{\text{२८}}+\text{७५०००}\right)-\text{३००००० यो०}\right\}}{\text{२}}$$

$$=\frac{\frac{\text{३}}{\text{२}}\left(\frac{\text{जग०}}{\text{२८}}+\text{७५०००}\right)}{\text{२}}$$

$$=\frac{\text{३ जग०}}{\text{२}\times\text{२}\times\text{२८}}+\frac{\text{३}\times\text{७५०००}}{\text{४}}\text{ यो०}$$

$= \frac{\text{३ जगच्छ्रेणी}}{\text{११२}}$ + ५६२५० योजन ।

चतुर्थ-पक्ष

चतुर्थपक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं ।

(१) अधस्तन समुद्र-समूहसे उसके आगे स्थित समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें दो लाख कम चौगुनी वृद्धि होती है—

चउत्थ-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—लवणणीर-रासिस्स एय-दिस-रुंदादो कालोदग-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी छल्लक्खेणब्भहियं होइ । लवण-समुद्द-संमिलिद-कालोदग-समुद्दादो पोक्खरवर-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी बावीस - लक्खेण अब्भहियं होदि । एवं हेट्ठिम-सायराणं समूहादो तवणंतरोवरिम-णीररासिस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी चउ-गुणं दो-लक्खेहि रहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ।।

अर्थ—चतुर्थ-पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा कालोद समुद्रका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार छह लाख योजन अधिक है । लवणसमुद्र सहित कालोदसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवरसमुद्रकी एक दिशा सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि बाईस लाख योजन अधिक है । इसप्रकार अधस्तन समुद्र-समूहसे उसके अनन्तर स्थित अग्रिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें दो लाख कम चौगुनी वृद्धि स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त होती गई है ।।

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी २ लाख यो० विस्तारकी अपेक्षा कालोदक-समुद्रका एक दिशा सम्बन्धी ८ लाख यो० विस्तार (८ ला० यो० — २ ला० यो०=) ६ लाख यो० अधिक है । लवणसमुद्र सहित कालोदकके एक दिशा सम्बन्धी (२ ला० यो० + ८ ला० यो०=) १० लाख योजन विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रकी एक दिशा सम्बन्धी ३२ ला० यो० विस्तारमें वृद्धिका-प्रमाण (३२ लाख यो० — १० लाख यो० =) २२ लाख यो० है ।

इसप्रकार अधस्तन समुद्र समूहसे उस समुद्रके बादमें (अनन्तर) स्थित अग्रिम समुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें २ लाख योजन कम ४ गुनी वृद्धि स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त होती गई है । अर्थात् (६ लाख × ४)—२ लाख=२२ लाख योजनोंकी वृद्धि होती गयी है ।।

स्वयम्भूरमणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धिका प्रमाण

तस्स अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो-सयंभूरमणसमुद्दस्स हेट्ठिम-सयल-सायराणं एय-दिस-रुंद-समूहादो सयंभूरमण-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी छ-रूवेहि भजिद-रज्जू

पंचम-पक्ष

इष्ट द्वीपके विस्तारसे उसके आगे स्थित द्वीपके विस्तारमें तिगुनी वृद्धि होती है—

पंचम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—सयल-जम्बूदीवस्स रुंदादो धादइसंडस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी तिय-लक्खेणब्भहियं होदि। धादईसंडस्स एय-दिस-रुंदादो पोक्खरवर-दीवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी बारस-लक्खेणब्भहियं होदि। एवं तवणंतर-हेट्ठिम-दीवादो अणंतरोवरिम-दीवस्स वास-वड्ढी ति-गुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणदीओ त्ति ।।

अर्थ—पाँचवेंपक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके सम्पूर्ण विस्तारसे धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें तीन लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है। धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारसे पुष्करवर द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें बारह लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है। इसप्रकार स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त अनन्तर अधस्तनद्वीपसे उसके आगे स्थित द्वीपके विस्तारमें तिगुनी वृद्धि होती गई है ।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके पूर्ण (१ लाख यो०) विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी ४ लाख यो० विस्तारमें (४ — १ =) ३ लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है। धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी ४ लाख यो० विस्तारसे पुष्करवरद्वीपके एक दिशा सम्बन्धी १६ लाख यो० विस्तारमें (१६ लाख — ४ लाख =) १२ लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है।

इसप्रकार यहाँ सभी अधस्तनद्वीपोंसे स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त आगे-आगे स्थित द्वीपके विस्तारसे (१२ लाख -- ३ लाख = ९ लाख यो० अर्थात्) ३ गुनी वृद्धि होती है।

अहीन्द्रवरद्वीपसे अन्तिम स्वयम्भूरमणद्वीपके विस्तारमें होनेवाली वृद्धिका प्रमाण—

तस्स अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो-दुचरिम-अहिंदवर-दीवादो अंतिम-सयंभूरमण-दीवस्स वड्ढि-पमाणं तिय-रज्जूओ बत्तीस-रूवेहिं अवहरिद-पमाणं पुणो अट्ठावीस-सहस्स-एक्क-सय-पणुवीस-जोयणेहिं अब्भहियं होइ। $\frac{}{७}$ । $\frac{३}{३२}$ । धण जोयण २८१२५ ।।

अर्थ—उसका अन्तिम विकल्प कहते हैं—द्विचरम अहीन्द्रवर-द्वीपसे अन्तिम स्वयम्भूरमण-द्वीपके विस्तारमें होने वाली वृद्धिका प्रमाण बत्तीससे भाजित तीन राजू और अट्ठाईस हजार एकसौ पच्चीस योजन अधिक है। अर्थात् राजू $\frac{३}{३२}$ + २८१२५ योजन है ।।

विशेषार्थ—द्विचरम अहीन्द्रवरद्वीपसे अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीपके विस्तारमें अधिक वृद्धि का प्रमाण ३२ से भाजित ३ राजू तथा २८१२५ योजन है।

लब्धवड्ढीणं आणयणे गाहा-सुत्तं—

इच्छिय-दीवे रुंदं, ति-गुणं दलिदूण तिण्णि-लक्खूणं ।
ति-लक्खूण-ति-गुण-वासे, सोहिय दलिदे हुवे वड्ढी ॥२५५॥

अर्थ—इस वृद्धि प्रमाणको लानेके लिए यह गाथा सूत्र है—इच्छित द्वीपके तिगुने विस्तार-को आधा करके उसमेंसे तीन लाख कम कर देनेपर जो शेष रहे उसे तीन लाख कम तिगुने विस्तारमेंसे घटाकर शेषको आधा करनेपर वृद्धिका प्रमाण होता है ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{(३ \times \text{इष्ट द्वीपका व्यास} — ३०००००) — \left(\frac{३ \times \text{उसका विस्तार}}{२} — ३०००००\right)}{२}$$

उदाहरण—मानलो—इष्टद्वीप पुष्करवरद्वीप है। जिसका विस्तार १६ लाख योजन है। उसकी

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{(३ \times १६००००० — ३०००००) — \left(\frac{३ \times १६०००००}{२} — ३०००००\right)}{२}$$

$$= \frac{४५००००० - २१०००००}{२} = १२००००० \text{ योजन वृद्धि ।}$$

इसीप्रकार अन्तिम विकल्पमें इष्टद्वीप स्वयम्भूरमण द्वीप है। जिसका विस्तार $\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{२ \times २८} + \frac{७५०००}{२}$ योजन है। इसलिए उसकी

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{\left[३ \times \left(\frac{\text{जग०}}{२ \times २८} + \frac{७५०००}{२}\right) — ३०००००\right] — \left[३ \times \frac{१}{२} \times \left(\frac{\text{जग०}}{२ \times २८} + \frac{७५०००}{२}\right) - ३०००००\right]}{२}$$

$$= \frac{३\left(\frac{\text{जग०}}{२ \times २८} + \frac{७५०००}{२}\right) — ३००००० — \frac{३}{२}\left(\frac{\text{जग०}}{२ \times २८} + \frac{७५०००}{२}\right) + ३०००००}{२}$$

$$= \frac{\frac{३}{२}\left(\frac{\text{जग०}}{२ \times २८} + \frac{७५०००}{२}\right)}{२}$$

$$= \frac{३ \text{ जग०}}{२ \times २ \times २ \times ४ \times ७} + \frac{३ \times ७५०००}{२ \times २ \times २} = \frac{३ \text{ राजू}}{३२} + २८१२५ \text{ योजन ।}$$

✲

षष्ठम-पक्ष

छठे पक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं—

(१) इच्छित द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा अग्रिम द्वीपके विस्तारमें २½ लाख कम चौगुनी वृद्धि होती है—

छट्ठम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो। तं जहा—जंबूदीवस्स अद्ध-रुंदादो धादइसंडस्स एय-दिस-रुंदं अड्डाइज्ज-लक्खेणब्भहियं होदि ३५००००। जंबूदीवस्स अद्धेण सम्मिलिदे धादईसंडस्स एय-दिस-रुंदादो पोक्खरवर-दीवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी एयारस-लक्ख-पण्णास-सहस्स-जोयणेहिं अब्भहियं होइ ११५००००। एवं धादईसंड-प्पहुदि-इच्छिय-दीवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढीदो तदणंतर-उवरिम-दीवस्स वड्ढी चउ-गुणं अड्ढाइज्ज-लक्खेणूणं होदूण गच्छइ जाव सयंभूरमणदीओ त्ति ।।

अर्थ—छठे पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है—जम्बूद्वीपके अर्ध विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डका एक दिशा-सम्बन्धी विस्तार साढ़े तीन लाख योजन अधिक है—३५००००। जम्बूद्वीपके अर्ध विस्तार सहित धातकीखण्डके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवरद्वीपके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि ग्यारह लाख पचास-हजार योजन अधिक है—११५००००। इसप्रकार धातकीखण्ड-प्रभृति इच्छित द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा तदनन्तर अग्रिम द्वीपके विस्तारमें अढ़ाई लाख कम चौगुनी वृद्धि स्वयम्भूरमण द्वीप तक होती चली गई है।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके अर्ध विस्तारकी अपेक्षा धातकीखण्डका एक दिशा सम्बन्धी विस्तार (४ लाख यो० — ½ लाख यो० =) ३½ लाख योजन अधिक है। पुनः जम्बूद्वीपके अर्ध विस्तार सहित धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवरद्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि (१६ — ४½ लाख यो०) = ११५०००० योजन है।

इसप्रकार धातकीखण्ड आदि इष्ट द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा बादमें आगे आनेवाले द्वीपके विस्तारमें २½ लाख यो० कम ४ गुनी वृद्धि अन्तिम द्वीप तक चली गई है।

अधस्तन द्वीपोंके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणद्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—['सयंभूरमणदीवस्स हेट्ठिम-सयल-दीवाणं एय-दिस-रुंद-समूहादो सयंभूरमणदीवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी] चउरासीदि - लक्खेहिं

भजिद-सेढी पुणो तिय-हिद-तिण्णि-लक्ख-पणुवीस-सहस्स-जोयणेहि अब्भहियं होइ । तस्स ठवणा $\frac{-}{८४}$ धण-जोयण $\frac{३२५०००}{३}$ ।

अर्थ—उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-द्वीपसे पहलेके समस्त द्वीपोंके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणद्वीपके एक-दिशा सम्बन्धी विस्तारमें चौरासी रूपोंसे भाजित जगच्छ्रेणी और तीनसे भाजित तीन लाख पच्चीस हजार योजन अधिक वृद्धि हुई है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—(जगच्छ्रेणी ÷ ८४) + $\frac{३२५०००}{३}$ ।

तव्वड्ढीणं आणयणट्ठं गाहा-सुत्तं—

> **अंतिम-रुंद-पमाणं, लक्खूणं तीहि भाजिदं दुगुणं ।**
> **दलिद-तिय-लक्ख-जुत्तं, परिवड्ढी होदि दीवाणं ।।२५६।।**

अर्थ—उन वृद्धियोंको प्राप्त करने हेतु गाथा-सूत्र—

एक लाख कम अन्तिम विस्तार-प्रमाणमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे दुगुना करके अर्धित तीन लाख ($\frac{३०००००}{२}$) और मिला देनेपर द्वीपोंकी वृद्धिका प्रमाण होता है ।। २५६ ।।

उदाहरण—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{\text{इष्ट द्वीपका व्यास} - १०००००}{३} \times २ + \frac{३०००००}{२}$$

उदाहरण—मानलो— पुष्करवरद्वीपकी वर्णित - वृद्धि निकालना है जिसका व्यास १६०००००० यो० है। सूत्रानुसार

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{१६०००००० - १०००००}{३} \times २ + \frac{३०००००}{२}$$

$$= (५०००००\times२) + १५०००० = ११५०००० \text{ योजन ।}$$

इसीप्रकार स्वयम्भूरमणद्वीपकी

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \left(\frac{\frac{\text{जग०}}{२८\times२} + \frac{७५०००}{२} - १०००००}{३}\right) \times २ + \frac{३०००००}{२}$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८\times२\times३} \times २\right) + \left(\frac{७५०००}{२\times३} \times २\right) - \left(\frac{१०००००}{३} \times २\right) + \frac{३०००००}{२}$$

$$= \frac{\text{जग०}}{८४} + \left(\frac{७५०००}{३} - \frac{२०००००}{३} + \frac{१५००००}{१}\right) \text{ यो०}$$

$$= \frac{\text{जग०}}{८४} + \frac{७५००० - २००००० + ४५००००}{३} \text{ यो०}$$

$= \frac{\text{जग०}}{२४} + \frac{३२५०००}{३}$ योजन ।

(२) इष्टद्वीपसे पहलेके द्वीपोंके विस्तार समूहको प्राप्त करनेकी विधि

इच्छिय-दीवादो हेट्ठिम-दीवाणं रुंद-समासाणं आणयणट्ठं गाहा-सुत्तं—

चउ-भजिद-इट्ठ-रुंदं, [1]हेट्ठं च ट्ठाविदूण तत्थेक्कं ।
लक्खूणे तिय-भजिदे, उवरिम-रासिम्मि सम्मिलिदे ॥२५७॥

लक्खद्ध हीण-कदे, जंबूदीवस्स अद्ध - पहुदि तदो ।
इट्ठस्स दुचरिमंतं, दीवाणं मेलणं होदि ॥२५८॥

अर्थ—इच्छित द्वीपसे पहलेके द्वीपोंके विस्तार-समूहको प्राप्त करने हेतु गाथा-सूत्र—

चारसे भाजित इष्ट द्वीपके विस्तारको अलग रखकर इच्छित द्वीपसे पहले द्वीपका जो विस्तार हो उसमेंसे एक लाख कम करके शेषमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उपरिम राशिमें मिलाकर आधा लाख कम करनेपर अर्ध जम्बूद्वीपसे लेकर इच्छित द्विचरम (अहीन्द्रवर) द्वीप तक उन द्वीपोंका सम्मिलित विस्तार होता है ॥ २५७-२५८ ॥

विशेषार्थ—अर्धजम्बूद्वीपसे इष्ट द्वीप पर्यन्तके द्वीपोंका सम्मिलित विस्तार प्राप्त करने हेतु दोनों गाथाओंके अनुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{सम्मिलित विस्तार} = \frac{\text{इष्ट द्वीपका विस्तार}}{४} + \frac{\text{इष्ट द्वीपसे पहलेके द्वीपका व्यास} - १०००००}{३} - \frac{१०००००}{२}$$

उदाहरण—इस सूत्रसे अर्धजम्बूद्वीप सहित पुष्करवर द्वीप तकका विस्तार योग प्राप्त करने हेतु उससे आगेके वारुणीवर-द्वीपका विस्तार ६४ लाख योजन और पुष्करवरका विस्तार १६ लाख योजन प्रमाण है । तदनुसार—

$$\text{उपर्युक्त सम्मिलित विस्तार} = \frac{६४०००००}{४} + \frac{१६००००० - १०००००}{३} - \frac{१०००००}{२}$$

$= १६००००० + ५००००० - ५०००० \text{ योजन ।}$

$= २०५०००० \text{ योजन ।}$

---

1. द. ब. क ज. चेट्ठाहे ट्ठाविदूण तद्धेक्कं ।

सप्तम-पक्ष

सातवें पक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं —

(१) इच्छित द्वीपोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके
अनन्तर स्थित अग्रिम द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारमें
पांच लाख कम चौगुनी वृद्धि प्राप्त होती है ।

सत्तम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—सयल-जंबूदीव-रुंदादो धादईसंडस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी तिण्णि-लक्खेणब्भहियं होइ ३००००० । जंबूदीप-सम्मिलित-धादई-संड-दीवस्स दोण्णि-दिस-रुंदादो पोक्खरवर-दीवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी सत्त-लक्खेहि अब्भहियं होइ ७००००० । एवं धादईसंड-प्पहुदि-इच्छिय-दीवाणं दोण्णि-दिस-रुंदादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स एय-दिस रुंद-वड्ढी चउ-गुणं पंच-लक्खेणूणं होदूण गच्छदि जाव सयंभूरमणदीओ त्ति ।।

अर्थ —सातवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके सम्पूर्ण विस्तारसे धातकीखण्डके एक-दिशा-सम्बन्धी बिस्तारमें तीन लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है— ३००००० । जम्बूद्वीप सहित धातकीखण्डके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवरद्वीपके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें सात लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है—७००००० । इसप्रकार धातकीखण्ड आदि इच्छित द्वीपोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके अनन्तर स्थित अग्रिम द्वीपके एक-दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें पाँच लाख कम चौगुनी वृद्धि स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त होती चली गई है ।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके १ लाख यो० विस्तारसे धातकीखण्डके एक दिशा सम्बन्धी ४ लाख यो० विस्तारमें (४००००० — १००००० यो० =) ३००००० यो० अधिक वृद्धि हुई है । जम्बूद्वीप के (१ लाख यो०) सहित धातकीखण्डके दोनों दिशाओं सम्बन्धी (४ ला० + ४ ला० = ८ लाख योजन) विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर-द्वीपके एक दिशा सम्बन्धी (१६००००० यो०) विस्तारमें (१६००००० — ९००००० =) ७००००० योजनकी अधिक वृद्धि हुई है । इसप्रकार धातकीखण्ड आदि इष्ट द्वीपोंके दोनों दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उनके बाद (अनन्तर) स्थित आगेके द्वीपके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें (३ लाख × ४ = १२ लाख । १२ लाख — ७ लाख =) ५००००० कम चौगुनी वृद्धि स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त चली गई है ।

अधस्तन समस्त द्वीपोंके दोनों दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणद्वीपके
एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंभूरमण-दीवस्स हेट्ठिम-सयल-दीवाणं दोण्णि-दिस-रुंद-समूहादो सयंभूरमण-दीवस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी चउवीस-रूवेहि भजिद-

रज्जू पुणो तिय-हिव-पंच-लक्ख-सत्तीस-सहस्स-पंच-सय जोयणेहि अब्भहियं होदि। तस्स ठवणा ७̅ । २४ धण जोयणाणि ५३५५००/३ ।

अर्थ—इनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-द्वीपसे अधस्तन सम्पूर्ण द्वीपोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणद्वीपके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें चौबीससे भाजित एक राजू और तीनसे भाजित पाँच लाख सैंतीस हजार पाँचसौ योजन अधिक वृद्धि हुई है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—राजू १/२४ + ५३७५००/३ यो० ।

तव्वड्ढीणं आणयणट्ठं गाहा-सुत्तं—

सग-सग-वास-पमाणं, लक्खूणं तिय-हिदं दु-लक्ख-जुदं ।
अहवा पण-लक्खाहिय-वास-ति-भागं तु परिवड्ढी ॥२५९॥

अर्थ—उन वृद्धियोंको प्राप्त करने हेतु गाथा-सूत्र—

एक लाख कम अपने-अपने विस्तार-प्रमाणमें तीनका भाग देकर दो लाख और मिलानेपर उस वृद्धिका प्रमाण होता है। अथवा पाँच लाख अधिक विस्तारमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना उक्त वृद्धिका प्रमाण होता है ॥ २५९ ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णितवृद्धि} = \frac{\text{विस्तार} - १०००००}{३} + २००००० \text{ यो० ।}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{विस्तार} + ५००००० \text{ यो०}}{३}$$

उदाहरण—मानलो-इष्ट-द्वीप पुष्करवर है। तदनुसार—

$$\text{वर्णितवृद्धि (प्रथम सूत्र से)} = \frac{१६००००० - १०००००}{३} + २००००० \text{ यो० ।}$$

$$= ७००००० \text{ योजन वृद्धि ।}$$

$$\text{अथवा, वर्णितवृद्धि (द्वितीय सूत्रसे)} = \frac{१६००००० + ५०००००}{३}$$

$$= ७००००० \text{ योजन वृद्धि ।}$$

इसीप्रकार स्वयम्भूरमणद्वीपकी

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{५६} + ३७५०० - १००००० \text{ यो०}}{३} + २००००० \text{ यो०}$$

$$= \frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{७ \times ८ \times ३} + \frac{३७५००}{३} - \frac{१०००००}{३} + २००००० \text{ यो०}$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{७} \times \frac{१}{२४} \right) + \left(\frac{३७५०० - १००००० + ६०००००}{३} \right) \text{ यो०}$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{७} \times \frac{१}{२४} \right) + \frac{५३७५००}{३} \text{ योजन वृद्धि ।}$$

(२) इष्ट द्वीपसे अधस्तन समस्त द्वीपोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारके योगका प्रमाण—

पुणो इच्छिय-दीवादो हेट्ठिम-सयल-दीवाणं दोण्णि-दिस-रुंदस्स समासो वि एक्क-लक्खादि-चउ-गुणं पंच-लक्खेहि अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव अहिंदवरदीवो त्ति ।।

अर्थ—पुनः इच्छित द्वीपसे अधस्तन समस्त द्वीपोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारका योग भी एक लाखको आदि लेकर चौगुना और पांच लाख अधिक होकर अहीन्द्रवर-द्वीप तक चला जाता है ।।

तव्वड्ढीणं आणयण-हेदुं [1]इमं गाहा-सुत्तं—

दु-गुणिय-सग-सग-वासे, पण-लक्खं अवणिदूण तिय-भजिदे ।
हेट्ठिम-दीवाण पुढं, दो-दिस-रुंदम्मि होदि [2]पिंड-फलं ।।२६०।।

अर्थ—उस वृद्धिको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अपने-अपने दुगुने विस्तारमेंसे पांच लाख कम करके शेषमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना अधस्तन द्वीपोंके दोनों दिशाओ-सम्बन्धी विस्तारका योगफल होता है ।। २६० ।।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित विस्तार योगफल} = \frac{२ \times \text{व्यास} - ५०००००}{३}$$

---

१. द. ब. क. ज. इमा । २. द. ज. हिंदफलं, ब. तिंदफलं, क. बिंदुफलं ।

मानलो—पुष्करवरद्वीप इष्ट है। उसका व्यास १६००००० योजन है। अतएव उसके अधस्तन द्वीपोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी द्वीपोंका—

$$\text{विस्तार योगफल} = \frac{२ \times १६००००० - ५०००००}{३} \text{ यो०}$$

$$= ९००००० \text{ योजन ।}$$

अष्टम-पक्ष

आठवें पक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं।

(१) इच्छित समुद्रोंकी एक दिशा सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि अधस्तन सब समुद्रोंकी दोनों दिशा-सम्बन्धी विस्तार वृद्धिसे ४ लाख यो० कम चौगुनी होती है—

अट्ठम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो-लवणसमुद्दस्स दोण्णि-दिस-रुंदादो कालोदग-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी चउ-लक्खेणब्भहियं होदि ४००००० । लवण-कालोदग-समुद्दाणं दोण्णि-दिस-रुंदादो पोक्खरवर-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी बारस-लक्खेणब्भ-हियं होदि १२००००० । एवं कालोदग-समुद्द-प्पहुदि तत्तो उवरिम-तदणंतर-इच्छिय-रयणायराणं एय-दिस-रुंद-वड्ढी हेट्ठिम-सव्व-णीररासीणं दोण्णि-दिस-रुंद-वड्ढीदो चउ-गुणं चउ-लक्ख-विहीणं होऊण[1] गच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।।

अर्थ—आठवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तार की अपेक्षा कालोद-समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें चार लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है—४००००० यो०। लवण और कालोद समुद्रके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी सम्मिलित विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर-समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें बारह लाख योजन अधिक वृद्धि हुई है—१२००००० यो०। इसप्रकार कालोद समुद्रसे लेकर उपरिम तदनन्तर इच्छित समुद्रोंकी एक दिशा-सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि अधस्तन सब समुद्रोंकी दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारवृद्धिसे चार लाख कम चौगुनी होकर स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त चली गई है ।।

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके दोनों दिशाओं सम्बन्धी (२ लाख + २ लाख = ४ लाख यो०) विस्तारकी अपेक्षा कालोद-समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी (८ लाख यो०) विस्तारमें (८ लाख — ४ लाख यो० =) ४००००० योजन अधिक वृद्धि होती है। लवण और कालोद समुद्रके दोनों

---

१. द. ब. क. ज. होदिऊण।

दिशाओं सम्बन्धी सम्मिलित [(२+२)+(८+८)=२० लाख यो०] विस्तारकी अपेक्षा पुष्करवर समुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी (३२ लाख यो०) विस्तारमें (३२ लाख यो० — २० लाख यो० =) १२००००० योजन अधिक वृद्धि होती है।

इसप्रकार कालोदसमुद्रसे लेकर उससे उपरिम तदनन्तर इष्ट समुद्रोंकी एक दिशा-सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि अधस्तन समस्त समुद्रोंकी दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तार-वृद्धिसे ४००००० कम ४ गुनी होकर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चली जाती है।

अधस्तन समस्त समुद्रोंके दोनों दिशा सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणसमुद्रके एक दिशा सम्बन्धी विस्तारकी वृद्धि—

तत्थ अंतिम - वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंभूरमणस्स हेट्ठिम-सव्व-सायराणं दोण्णि-दिस-रुंदादो सयंभूरमण-समुद्दस्स एय-दिस-रुंद-वड्ढी रज्जूए बारस-भागो पुणो तिय-हिद-चउ-लक्ख-पंचहत्तरि-सहस्स-जोयणेहि अब्भहियं होदि। तस्स ठवणा— ७̄। १२। धण जोयणाणि $\frac{475000}{3}$।

अर्थ—उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-समुद्रके अधस्तन सम्पूर्ण समुद्रोंके दोनों दिशा-सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा स्वयम्भूरमणसमुद्रके एक दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें राजूका बारहवां भाग और तीनसे भाजित चार-लाख पचहत्तर हजार योजन अधिक वृद्धि हुई है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—राजू $\frac{1}{12}+\frac{475000}{3}$ यो०।

तव्वड्ढीणं आणयण-हेदुं इमं[1] गाहा-सुत्तं—

इट्ठोवहि-विक्खंभे, चउ-लक्खं मेलिदूण तिय-भजिदे।
तीद-रयणायराणं, दो-दिस-रुंदादु उवरिमेय-दिसं॥२६१॥

अर्थ—उस वृद्धिको प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

इष्ट समुद्रके विस्तारमें चार लाख मिलाकर तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी अतीत समुद्रोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उपरिम समुद्रके एक-दिशा-सम्बन्धी विस्तारमें वृद्धि होती है॥ २६१॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णितवृद्धि} = \frac{\text{इष्ट समुद्रका विस्तार} + 400000}{3}$$

---

1. द. ब. क. ज. इमा।

उदाहरण—मानलो—इष्ट समुद्र वारुणीवर है। उसका विस्तार १२८ लाख योजन है। तदनुसार—

वारुणीवर समुद्रके अतीत समुद्रोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारकी अपेक्षा उपरिम समुद्रकी एक दिशा सम्बन्धी—

$$\text{विस्तार वृद्धि} = \frac{१२८००००० + ४०००००}{३}$$

$$= ४४००००० \text{ योजन ।}$$

इसीप्रकार स्वयम्भूरमण समुद्रकी

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० + ४०००००}{३}$$

$$= \frac{\text{जग०}}{७ \times ४ \times ३} + \frac{४७५०००}{३}$$

$$= \frac{१}{१२} \text{ राजू} + \frac{४७५०००}{३} \text{ योजन ।}$$

(२) अभ्यन्तर समुद्रोंके दोनों दिशाओं सम्बन्धी विस्तारसे तदनन्तर स्थित उपरिम समुद्रकी दोनों दिशा-सम्बन्धी विस्तारवृद्धि चौगुनी और चार लाख अधिक है—

हेट्ठिम-समासो वि-इट्ठस्स-कालोदग-समुद्दादो हेट्ठिमेक्कस्स समुद्दस्स दोण्णि-विस-रु द-समासं चउ-लक्खं होदि ४०००००। पोक्खरवर-समुद्दादो हेट्ठिम-दोण्णि-समुद्दाणं दोण्णि-विस-रु द-समासं बीस-लक्ख-जोयण-पमाणं होदि २००००००। एवमब्भंतरिम-णीररासीणं दोण्णि-विस-रु द-समासादो तदणंतरोवरिम-समुद्दस्स एय-विस-रु द-वड्ढी चउगुणं चउ-लक्खेणब्भहियं होऊण गच्छइ जाव अहिंदवर-समुद्दो त्ति ।।

अर्थ—अधस्तन योग भी—इष्ट कालोद समुद्रसे अधस्तन (केवल) एक लवणसमुद्रका दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तार-समास चार लाख है—४००००० यो०। पुष्करवर-समुद्रसे अधस्तन दोनों समुद्रोंका दोनो दिशाओं-सम्बन्धी विस्तार-समास बीस लाख—२०००००० योजन-प्रमाण है। इसप्रकार अभ्यन्तर समुद्रोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारसमाससे तदनन्तर स्थित उपरिम समुद्रकी दोनों दिशा-सम्बन्धी विस्तार-वृद्धि चौगुनी और चार लाख अधिक होकर अहीन्द्रवर-समुद्र पर्यन्त चली गई है ।।

तव्वड्ढीणं आणयण-हेदुं इमं गाहा-सुत्तं—

दु-गुणिय-सग-सग-वासे, चउ-लक्खे अवणिदूण तिय-भजिदे ।
तीद - रयणायराणं, दो - दिस - भायम्मि पिंड - फलं ।।२६२।।

अर्थ—उस वृद्धिको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अपने-अपने दुगुने विस्तारमेंसे चार लाख कम करके शेषमें तीनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना अतीत समुद्रोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी विस्तारका योग होता है ।। २६२ ।।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित विस्तार} = \frac{(\text{इष्ट द्वीपका विस्तार} \times २) - ४०००००}{३}$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ पुष्करवरद्वीप इष्ट है और उसका विस्तार ३२ लाख यो० है।

अतीत समुद्रोंके दोनों दिशाओं-सम्बन्धी (लवण और कालोद समुद्रका) सम्मिलित विस्तार योग= $\frac{(3200000 \times 2) - 400000}{3}$ यो० ।

=२०००००० योजन ।

नवम-पक्ष

इष्ट द्वीप या समुद्रमें जम्बूद्वीपके समान खण्डोंकी संख्या
प्राप्त करनेकी विधि—

णवम - पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—जंबूदीवस्स बादर-सुहुम-खेत्तफल-प्पमाणेण लवण-समुद्दस्स खेत्तफलं किज्जंतं[1] चउवीस-गुणं होदि २४ । जंबूदीवस्स खेत्त-फलादो धादईसंडस्स खेत्तफलं चउदालीसब्भहियं एक्क-सयमेत्तं होदि १४४ । एवं जाणि-दूण णेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।।

अर्थ—नवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके बादर एवं सूक्ष्म क्षेत्रफलके प्रमाणसे लवणसमुद्रका क्षेत्रफल करनेपर चौबीस-गुणा होता है २४ । जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे धातकीखण्डका क्षेत्रफल एक सौ चवालीस गुणा है १४४ । इसप्रकार जानकर स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए ।।

---

१. द. ब. क. ज. किज्जुतं ।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका बादर क्षेत्रफल $३ \times \left(\frac{१०००००}{२}\right)^{२}$ अथवा $३ \times (२५००००००००)$ वर्ग योजन है और उसका सूक्ष्मक्षेत्रफल $\sqrt{१०} \times (२५००००००००)$ वर्ग यो० है।

इसीप्रकार लवणसमुद्रका बादर क्षेत्रफल—

$$३ \times \left[\left(\frac{५०००००}{२}\right)^{२} - \left(\frac{१०००००}{२}\right)^{२} \right]$$

अथवा $३ \times [६२५००००००००० - २५००००००००]$ वर्ग यो०

अथवा $३ \times [६००००००००००]$ वर्ग योजन है। और उसका सूक्ष्म-क्षेत्रफल—

$\sqrt{१०} \times [६००००००००००]$ वर्ग योजन है।

लवणसमुद्रका बादर एवं सूक्ष्म (प्रत्येक) क्षेत्रफल जम्बूद्वीपके बादर एवं सूक्ष्म (प्रत्येक) क्षेत्रफलसे २४ गुणा है। यथा—लवणसमुद्रका बादर क्षेत्रफल = (जम्बूद्वीपका बादर क्षेत्र० × २४)

$= ३ \times (२५०००००००० \times २४)$

$= ३ \times (६००००००००००)$ वर्ग यो०।

लवणसमुद्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल = (जम्बूद्वीपका सूक्ष्म क्षेत्र० × २४)

$= \sqrt{१०} \times (२५०००००००० \times २४)$

$= \sqrt{१०} \times (६००००००००००)$ वर्ग योजन।

इसीप्रकार जम्बूद्वीपके बादर एवं सूक्ष्म क्षेत्रफलसे धातकीखण्डके बादर एवं सूक्ष्म क्षेत्रफल प्रत्येक १४४ गुणे हैं।

धातकीखण्डका बादर क्षेत्रफल $= ३ \times \left[\left(\frac{१३०००००}{२}\right)^{२} - \left(\frac{५०००००}{२}\right)^{२} \right]$
अथवा $३ \times [३६००००००००००]$ वर्ग योजन है।

उसीका सूक्ष्मक्षेत्रफल $= \sqrt{१०} \times [३६००००००००००]$ वर्ग योजन है। जो जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे क्रमशः १४४ गुने हैं।

जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे स्वयम्भूरमण समुद्रका क्षेत्रफल कितना गुणा है ? उसका कथन—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो-जगसेढीए वग्गं ति-गुणिय एक्क-लक्ख-छण्णउदि-सहस्स-कोडि-रूवेहिं भजिदमेत्तं पुणो ति गुणिद-सेढिं चोद्दस-लक्ख-रूवेहि भजिय-मेत्तेहिं अब्भहियं होदि पुणो णव-कोसेहिं परिहीणं। तस्स ठवणा—

=३ —३
१९६०००००००००० धण खेत्तं १४००००० रिण कोसाणि ९ ॥

अर्थ – उनमेंसे अन्तिम-विकल्प कहते हैं—जगच्छ्रेणीके वर्गको तिगुना करके उसमें एक लाख छयानबे हजार करोड़ रूपोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना और तिगुनी जगच्छ्रेणीमें चौदह लाखका भाग देनेपर प्राप्त हुए लब्ध प्रमाणसे अधिक तथा नौ कोस कम है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—

[(जग० × जग० × ३) ÷ १९६००००००००००] + [{ (जग० × ३) ÷ १४००००० }—९ को०]

तव्वड्ढीणं आणयण-हेदुं इमं गाहा-सुत्तं—

लक्खूण-इट्ठ-रुंदं, ति-गुणं चउ-गुणिद-इट्ठ-वास-गुणं ।
लक्खस्स कदिम्मि हिदे, जंबूदीवोवमा खंडा ॥२६३॥

अर्थ—उस वृद्धिको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

एक लाख कम इष्ट द्वीप या समुद्रके विस्तारको तिगुना करके फिर उसे चौगुने अपने विस्तारसे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसमें एक लाखके वर्गका भाग-देनेपर जम्बूद्वीप सदृश खण्डोंकी संख्या प्राप्त होती है ॥ २६३ ॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

इष्टद्वीप या समुद्रमें जम्बूद्वीप सदृश खण्डोंकी संख्या अथवा

वर्णित क्षेत्रफलमें वृद्धिका प्रमाण—

$$= \frac{३ \times (\text{इष्ट द्वीप या समुद्रका विस्तार}-१०००००) \times ४ \times (\text{उसका विस्तार})}{(१०००००)^{२}}$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ वारुणीवर समुद्र इष्ट है और उसका विस्तार १२८ लाख योजन है, इसमें जम्बूद्वीप सदृश खण्डोंकी संख्या—

$$= \frac{३ \times (१२८००००० - १०००००) \times ४ \times (१२८०००००)}{(१०००००)^{२}}$$

$$= \frac{३ \times १२७००००० \times ४ \times १२८०००००}{१००००० \times १०००००}$$

= १२ × १२७ × १२८ = १९५०७२ खण्ड होते हैं।

इसीप्रकार [उपर्युक्त सूत्रानुसार] स्वयम्भूरमणसमुद्रमें—

$$\text{वर्णित-खण्ड-वृद्धि} = \frac{३ \times \left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० - १००००० \right) \times ४ \times \left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० \right)}{(१०००००)^{२}}$$

$$= \frac{३ \times \frac{\text{जग०}}{२८} \times ४\left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५०००\right) + ३ \times (-२५०००) \times ४\left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५०००\right)}{(१०)^{१०}}$$

$$= \frac{३ \ (\text{जग०} \times \text{जग०})}{१९६ \times (१०)^{१०}} + \frac{३ \ \text{जग०} \times ७५०००}{७ \times (१०)^{१०}} - \frac{३ \ \text{जग०} \times २५०००}{७ \times (१०)^{१०}} - ३ \times २५००० \times \frac{४ \times ७५०००}{(१०)^{१०}}$$

$$= \frac{३ \ (\text{जग०} \times \text{जग०})}{१९६ \times (१०)^{१०}} + \frac{३ \ \text{जग०}}{७ \times (१०)^{१०}} (७५००० - २५०००) - \frac{३ \times ४ \times २५००० \times ७५०००}{१००००० \times १०००००}$$

$$= \frac{३ \ (\text{जग०} \times \text{जग०})}{१९६ \times (१०००००)^{२}} + \frac{३ \ \text{जग०} \times ५००००}{७ \times (१०००००) \times (१०००००)} - \frac{९}{४} \ \text{योजन ।}$$

$$= \frac{३ \ (\text{जग०} \times \text{जग०})}{१९६००००००००००} + \frac{३ \ \text{जगच्छ्रेणी}}{१४०००००} - ९ \ \text{कोस ।}$$

$$= \frac{३ \times \text{जग०}^{२}}{१९६००००००००००} + \frac{३ \ \text{जग०}}{१४०००००} - ९ \ \text{कोस ।}$$

दसवाँ-पक्ष

अधस्तन द्वीप या समुद्रसे उपरिम द्वीप या समुद्रकी खण्ड-शलाकाएँ चौगुनी हैं और
प्रक्षेपभूत ९६ उत्तरोत्तर दुगने-दुगुने होते गये हैं—

दसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—जंबूदीवस्स बादर-सुहुम-खेत्त-फल-प्पमाणेण लवणसमुद्दस्स खेत्तफलं किज्जंतं चउवीस-गुण-प्पमाणं होदि २४ । लवण-समुद्दस्स खंड-सलागाणं संखादो धादइसंडस्स खंड-सलागा छग्गुणं होदि । धादइसंडस्स-खंड-सलागादो कालोदग-समुद्दस्स खंड-सलागा चउ-गुणं होऊण[1] छण्णउदि-रूवेणब्भहियं होदि तत्तो उवरिम-तदणंतर-हेट्ठिम-दीव-उवहीदो अणंतरोवरिम-दीवस्स उवहिस्स वा खंड-सलागा चउग्गुणं-चउग्गुणं पक्खेव-भूद-छण्णउदी दुगुण-दुगुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभू-रमण-समुद्दो त्ति ॥

---

१. द. होदिऊण ।

अर्थ—दसवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है—जम्बूद्वीपके बादर एवं सूक्ष्म क्षेत्रफलके बराबर लवण-समुद्रका क्षेत्रफल करनेपर वह उससे चौबीस-गुणा होता है २४। लवण-समुद्र सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी संख्यासे धातकीखण्डकी खण्ड-शलाकाएँ छह-गुणी हैं धातकीखण्ड-द्वीपकी खण्डशलाकाओंसे कालोद-समुद्रकी खण्डशलाकाएँ चार-गुणी होकर छयानबै रूपोंसे अधिक हैं। पुनः इससे ऊपर तदनन्तर अधस्तन द्वीप या समुद्रसे अनन्तर उपरिम द्वीप या समुद्रकी खण्ड-शलाकाएँ चौगुनी हैं और इनके प्रक्षेपभूत छयानबै उत्तरोत्तर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यंन्त दुगुने-दुगुने होते गये हैं।

विशेषार्थ—धातकीखण्डका बादर क्षेत्रफल—

$$३\left[\left(\frac{१३०००००}{२}\right)^{२} — \left(\frac{५०००००}{२}\right)^{२}\right]$$

अथवा ३×३६०००००००००० वर्ग योजन।

उसीका सूक्ष्म क्षेत्रफल—

$$\sqrt{१०}\left[\left(\frac{१३०००००}{२}\right)^{२} — \left(\frac{५०००००}{२}\right)^{२}\right]$$

$= \sqrt{१०} \times ३६००००००००००$ वर्ग योजन।

कालोदकका बादर क्षेत्रफल—

$$= ३\,(१०)^{८}\left[\left(\frac{२६०}{२}\right)^{२} — \left(\frac{१३०}{२}\right)^{२}\right]$$

$= ३ \times (१०)^{८} \times १६८००$ वर्ग योजन।

उसीका सूक्ष्म क्षेत्रफल—

$$= \sqrt{१०} \times (१०)^{८}\left[\left(\frac{२६०}{२}\right)^{२} — \left(\frac{१३०}{२}\right)^{२}\right]$$

$= \sqrt{१०} \times (१०)^{८} \times १६८००$ वर्ग योजन।

पुष्करवर द्वीपका बादर क्षेत्रफल—

$$= ३\,(१०)^{८}\left[\left(\frac{६१०}{२}\right)^{२} — \left(\frac{२६०}{२}\right)^{२}\right]$$

$= ३ \times ७२००००००००००००$ वर्ग योजन।

उसीका सूक्ष्मक्षेत्रफल—

$$= \sqrt{१०} \times (१०)^{८}\left[\left(\frac{६१०}{२}\right)^{२} — \left(\frac{२६०}{२}\right)^{२}\right]$$

$= \sqrt{१०} \times (१०)^{८}\,[\,७२०००\,]$ वर्ग योजन।

जम्बूद्वीपके सूक्ष्म क्षेत्रफल $\sqrt{१०} \times (१०)^{८} \times (२५)$ वर्ग योजनसे लवणसमुद्रका सूक्ष्म-क्षेत्रफल $\sqrt{१०} \times (१०)^{८} \times (६००)$ वर्ग योजन २४ गुणा है।

उसी (जम्बूद्वीप) के सूक्ष्म क्षेत्रफलसे धातकीखण्डद्वीपका सूक्ष्म-क्षेत्रफल $\sqrt{१०} \times (१०)^{८} \times$ (३६००) वर्ग योजन १४४ गुणा है। उसीके सूक्ष्मक्षेत्रफलसे कालोदक समुद्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल $\sqrt{१०} \times (१०)^{८} \times$ (१६८००) वर्ग योजन ६७२ गुणा है।

उसी (जम्बूद्वीप) के सूक्ष्मक्षेत्रफलसे पुष्करवर द्वीपका $\sqrt{१०} \times (१०)^{८} \times (७२०००)$ वर्ग योजन सूक्ष्म क्षेत्रफल २८८० गुणा है।

खण्डशलाकाएँ—धातकीखण्ड द्वीपकी १४४ खण्ड शलाकाओंसे कालोदधिसमुद्रकी ६७२ खण्डशलाकाएँ ४ गुणी होकर ९६ अधिक हैं।

यथा—६७२=(१४४×४)+९६।

कालोदधि समुद्रकी ६७२ खण्डशलाकाओंसे पुष्करवरद्वीपकी २८८० खण्डशलाकाएँ ४ गुणी होकर ९६×२ अधिक हैं।

यथा—२८८०=(६७२×४)+(९६×२)। इत्यादि।

इसीप्रकार $\sqrt{१०}$ के स्थान पर ३ रख देनेपर उपर्युक्त समस्त द्वीप-समुद्रोंके बादर क्षेत्रफल के लिए घटित हो जावेगा।

उपर्युक्त गणित-प्रक्रियासे स्पष्ट हो जाता है कि अधस्तन द्वीप या समुद्रकी खण्डशलाकाओंसे अनन्तर उपरिम द्वीप या समुद्रकी खण्डशलाकाएँ चौगुनी हैं और इनके प्रक्षेप-भूत ९६ उत्तरोत्तर दुगुने-दुगुने होते गये हैं। इसीप्रकार स्वयम्भूरमण पर्यन्त जानना चाहिए।

स्वयम्भूरमणद्वीपकी खण्डशलाकाओंसे स्वयम्भूरमण-समुद्रकी खण्डशलाकाएँ
कितनी अधिक हैं? उन्हें कहते हैं—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—[सयंभूरमणदीव-खंड-सलागादो सयंभूरमणसमुद्दस्स खंड-सलागा] तिण्णि-सेढीओ सत्त-लक्ख-जोयणेहिं भजिदाओ पुणो णव-जोयणेहिं अब्भहियाओ होदि। तस्स ठवणा— $\frac{-३}{७०००००}$ धण जोयणाणि ९॥

अर्थ—उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—(स्वयम्भूरमणद्वीपकी खण्ड-शलाकाओंसे स्वयम्भूरमणसमुद्रकी खण्डशलाकाएँ) सात लाख योजनोंसे भाजित तीन जगच्छ्रेणी और नौ योजनोंसे अधिक हैं। उसकी स्थापना इसप्रकार है—जगच्छ्रेणी ३÷७००००० यो०+९ यो०।

तत्थ अविरेगस्स पमाणाणयणट्ठं इमा सुत्त-गाहा—

लक्खेण भजिद-सग-सग-वासं इगि-रूव-विरहिदं तेण।
सग-सग-खंड-सलागं, भजिदे अविरेग - परिमाणं ॥२६४॥

अर्थ—उनमें (चौगुनीसे) अतिरिक्त प्रमाण लानेके लिए यह गाथा-सूत्र है—

एक लाखसे भाजित अपने-अपने विस्तारमेंसे एक रूप कम करके शेषका अपनी-अपनी खण्ड-शलाकाओंमें भाग देनेपर अतिरिक्त संख्याका प्रमाण आता है ।। २६४ ।।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

अतिरिक्त खण्ड-शलाकाएं अथवा प्रक्षेप

$$= \frac{\text{क्षेत्रकी निज खण्ड-शलाकाएँ}}{\frac{\text{निज विस्तार}}{१०००००} - १}$$

उदाहरण—मानलो—कालोद समुद्रकी ४ गुणित खण्ड-शलाकाओंसे अतिरिक्त खण्ड-शलाकाओं (प्रक्षेप) का प्रमाण ज्ञात करना है । कालोद समुद्रका विस्तार ८ लाख यो० है । इसमें १ लाखका भाग देनेपर ८ प्राप्त होते हैं । ८ मेंसे एक घटाकर जो शेष बचे उसका कालोदकी खण्ड-शलाकाओंके प्रमाणमें भाग देनेपर प्रक्षेपका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$\text{प्रक्षेप} = \frac{६७२}{\frac{८०००००}{१०००००} - १} = \frac{६७२}{७} = ९६$$ प्रक्षेप अथवा अतिरिक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।

स्वयम्भूरमणद्वीपके क्षेत्रफलमें जम्बूद्वीप सदृश खण्डोंकी संख्या ।

अथवा जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे स्वयम्भूरमणद्वीप का क्षेत्रफल कितना गुना है ? उसका प्रमाण ।

गाथा २६३ से सम्बन्धित सूत्रानुसार ।

स्वयम्भूरमणद्वीपका बादर क्षेत्रफल $= ३ \times \frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० $ यो० ।

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{३ \times \left(\frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० - १००००० \right) \times ४ \times \left(\frac{\text{जग०}}{५६}\right) + ३७५००)}{(१०००००)^{२}}$$

$$= \frac{१}{(१०)^{१०}} \left[३ \times ४ \left\{ \frac{\text{जग०}}{५६} \times \left(\frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० \right) - ६२५०० \times \left(\frac{\text{जग०}}{५६} + ३७५०० \right) \right\} \right]$$

$$= \frac{१}{(१०)^{१०}} \left[३ \times ४ \left\{ \frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{५६ \times ५६} + \frac{\text{ज०} \times ३७५००}{५६} - \frac{\text{ज०} \times ६२५००}{५६} - ६२५०० \times ३७५०० \right\} \right]$$

$$=\frac{१}{(१०)^{१०}}[३\times४\{\frac{\text{ज०}\times\text{ज०}}{३१३६}+\frac{\text{जग०}}{५६}(३७५००-६२५००)-६२५००\times३७५००\}]$$

$$=\frac{१}{(१०)^{१०}}[३\times४\{\frac{\text{ज०}\times\text{ज०}}{३१३६}-(\frac{\text{जग०}}{५६}\times२५०००)-६२५००\times३७५००\}]$$

$$=\frac{१}{(१०)^{१०}}\times\frac{१२\times\text{ज०}\times\text{ज०}}{३१३६}-(\frac{१२\times\text{ज०}\times२५०००}{५६\times(१०)^{१०}})-(\frac{१२}{(१०)^{१०}}\times६२५००\times३७५००)\text{यो.}$$

$$=\frac{३}{७८४}\times\frac{\text{जग०}\times\text{जग०}}{(१०)^{१०}}-\frac{३\times४\times\text{जग०}\times२५०००}{१४\times४\times(१०००००)\times१०००००}-\frac{३\times४\times६२५००\times३७५००}{(१०००००)\times(१०००००)}\text{यो.}$$

$$=३\times(\frac{\text{जग०}\times\text{जग०}}{७८४\times(१०)^{१०}})-\frac{३\ \text{जग०}}{५६०००००}-\frac{४५}{१६}\ \text{योजन ।}$$

इन खण्डशलाकाओंको ४ से गुणित करके स्वयम्भूरमण-समुद्र की खण्ड-शलाकाओंमेंसे घटा देनेपर स्वयम्भूरमणसमुद्र की प्रक्षेपभूत (अतिरिक्त) संख्या का प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

स्वयम्भूरमणसमुद्रकी खण्ड-शलाकाएँ—

$$=[(\frac{३\times\text{जग०}\times\text{जग०}}{१९६\times(१०)^{१०}})+(\frac{३\text{जग०}}{१४०००००})-(\frac{९}{४}\ \text{यो०})]-[\text{स्वयम्भूरमण- द्वीप की}$$

$$\text{खण्ड शलाकाएँ}\times४=(\frac{३\times\text{ज०}\times\text{ज०}\times४}{७८४\times(१०)^{१०}})-\frac{३\ \text{ज०}\times४}{५६०००००}-\frac{४५\times४}{१६}]$$

$$=(\frac{३\ \text{जग०}}{१४०००००}+\frac{३\ \text{जग०}}{१४०००००})-(\frac{९}{४}\text{यो०}-\frac{४५}{४}\text{यो०})$$

$$=\frac{३\ \text{जग०}}{७०००००}+९\ \text{योजन ।}$$ अथवा उ३०००० धरण जोयणाणि ९ ।

ग्यारहवाँ-पक्ष

ग्यारहवें-पक्षके अल्पबहुत्वमें दो सिद्धान्त कहते हैं—

(१) अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी शलाकाओंसे उपरिम द्वीप या समुद्र की शलाका-वृद्धि चौगुनी से २४ अधिक है—

एक्कारसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा-लवणसमुद्दस्स खंड-सलागाणं संखादो धादईसंड-दीवस्स खंड-सलागाणं वड्ढी वीसुत्तर-एक्क-सएणब्भहियं होदि १२० । लवणसमुद्दस्स-खंड-सलागाणं सम्मिलिद-धादईसंड-दीवस्स खंड-सलागाणं संखादो कालो-

वग समुद्दस्स खंड-सलागाणं वड्ढी चउरुत्तर-पंच-सएणब्भहियं होदि ५०४। एवं धादई-संडस्स वड्ढि[1]-प्पहुदि हेट्ठिम-दीव-उवहीणं समूहादो अणंतरोवरिम-दीवस्स वा रयणा-यरस्स वा खंड[2]-सलागाणं वड्ढी चउग्गुणं चउवीस-रूवेहि अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ॥

अर्थ—ग्यारहवें-पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है—लवणसमुद्र-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओं की संख्या से धातकीखण्ड-द्वीपकी खण्ड-शलाकाओं की वृद्धि का प्रमाण एक सौ बीस है १२०। लवणसमुद्र की खण्ड-शलाकाओं को मिलाकर धातकीखण्ड द्वीप-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओं की संख्यासे कालोदकसमुद्र-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी वृद्धि का प्रमाण पांच सौ चार है ५०४। इसप्रकार धातकीखण्डद्वीप-सम्बन्धी शलाका-वृद्धिसे प्रारम्भ कर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त अधस्तन द्वीप-समुद्रों के शलाका-समूह से अनन्तर उपरिम द्वीप अथवा समुद्र की खण्ड-शलाकाओं की वृद्धि चौगुनी और चौबीस संख्या से अधिक होती गई है।

विशेषार्थ—लवणसमुद्र सम्बन्धी २४ खण्डशलाकाओं से धातकीखण्ड-द्वीप की १४४ खण्ड-शलाकाओं में वृद्धि का प्रमाण (१४४—२४=) १२० है। लवणसमुद्र और धातकीखण्ड द्वीप की सम्मिलित (२४+१४४=) १६८ खण्डशलाकाओं से कालोद समुद्र सम्बन्धी ६७२ खण्डशलाकाओं में वृद्धिका प्रमाण (६७२—१६८=) ५०४ है। जो ४ गुनी होकर २४ अधिक हैं। यथा—
५०४=(१२०×४)+२४।

इसप्रकार धातकी खण्डद्वीप सम्बन्धी शलाका वृद्धि से प्रारम्भ कर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त अधस्तन द्वीप-समुद्रों के शलाका-समूह से उपरिम द्वीप या समुद्र की शलाकाओं की वृद्धि ४ गुनी और २४ से अधिक होती गई है। यथा—पुष्करवर द्वीप की २८८० खण्ड-शलाकाओं में वृद्धि का प्रमाण २०४०=[{ (५०४)×४ }+२४] है।

अधस्तन द्वीप-समुद्रों के शलाका समूह से स्वयम्भूरमण समुद्र की शलाकाओं में
वृद्धि का प्रमाण कितना है ?

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो-सयंभूरमण-समुद्दादो हेट्ठिम-सव्व-दीव-रयणा-यराणं खंड-सलागाण-समूहं सयंभूरमण-समुद्दस्स खंड-सलागम्मि अवणिदे वड्ढि-पमाणं केत्तियमिदि भणिदे जगसेढीए वग्गं अट्ठाणउदि-सहस्स-कोडि-जोयणेहि भजिदं पुणो सत्त-लक्ख-जोयणेहि भजिद-तिण्णि-जग-सेढी-अब्भहियं पुणो चोद्दस-कोसेहि परिहीणं होदि। तस्स ठवणा— ९८०००००००००० धण जोयणाणि ७०००० रिण कोस १४।

---

१ द. ब. क. ज. वड्ढिं पुहवी। २. द. ब. धादइसंडसलागाणं।

अर्थ—स्वयम्भूरमण समुद्र से अधस्तन समस्त द्वीप-समुद्रोंके खण्ड-शलाका-समूहको स्वयम्भूरमणसमुद्रकी खण्ड-शलाकाओंमेंसे घटा देनेपर वृद्धिका प्रमाण कितना है? ऐसा कहनेपर अट्ठानबे हजार करोड़ योजनोंसे भाजित जगच्छ्रेणीके वर्गसे अतिरिक्त सात लाख योजनोंसे भाजित तीन जगच्छ्रेणी अधिक तथा १४ कोस कम है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$$= \frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{९८ \times (१०)^{१०}} + \frac{३ \text{ जग०}}{७००००० \text{ यो०}} - १४ \text{ कोस।}$$

तव्वड्ढी-आणयण-हेदुमिमं गाहा-सुत्तं—

> **लक्खेण भजिद-अंतिम-वासस्स[1] कदीए एग-ऊणं ।**
> **अट्ठ[2]-गुणं हिट्ठाणं, संकलणादो दु उवरिमे वड्ढी ॥२६५॥**

अर्थ—इस वृद्धि-प्रमाणको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

एक लाखसे भाजित अन्तिम विस्तारका जो वर्ग हो उसमेंसे एक कम करके शेषको आठसे गुणा करने पर अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके शलाका-समूहसे उपरिम द्वीप एवं समुद्रकी खण्ड-शलाकाओंकी वृद्धिका प्रमाण आता है ॥२६५॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित खण्ड-शलाका वृद्धि} = \left[\left(\frac{\text{अन्तिम विस्तार}}{१००००० } \right)^{२} - १ \right] \times ८$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ वारुणीवर समुद्र इष्ट है। उसका विस्तार १२८ लाख योजन है।

वारुणीवर समुद्रकी वर्णित खण्ड-शलाका वृद्धि—

$$= \left[\left(\frac{१२८०००००}{१०००००} \right)^{२} - १ \right] \times ८$$

$$= (१६३८४ - १) \times ८$$

$$= १३११०६४ \text{ योजन।}$$

इसीप्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र-सम्बन्धी—

$$\text{वर्णित खण्ड-शलाका वृद्धि} = \left[\left(\frac{\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० \text{ यो०}}{१०००००} \right)^{२} - १ \right] \times ८$$

---

१. द. वास, ब. वास्स । २. द. ब. क. ज. अट्ठं गुणंतिद्वाणं ।

$$= [(\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{२८०००००} + \frac{३}{४})^२ - १] \times ८$$

$$= (\frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{२८००००० \times २८०००००} \times ८) + (\frac{९}{१६} \times ८) + (\frac{२ \times ३ \text{ जग०}}{२८००००० \times ४} \times ८) - ८$$

$$= \frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{७००००० \times १४०००००} + \frac{९}{२} - ८ + \frac{३ \text{ जग०}}{७००००० \text{ यो०}}$$

$$= \frac{\text{जग०} \times \text{जग०}}{९८०००००००००० \text{ यो०}} + \frac{३ \text{ जग०}}{७००००० \text{ यो०}} - १४ \text{ कोस ।}$$

(२) इच्छित द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-शलाकाओंका पिंड-फल प्राप्त करनेकी विधि —

पुणो इट्ठस्स दीवस्स वा समुद्दस्स वा हेट्ठिम-दीव-रयणायराणं मेलावणं भण्णमाणे[1] लवणसमुद्दस्स खंड-सलागादो लवणसमुद्द-संमिलित-धादईसंड-दीवस्स खंड-सलागाओ[2] सत्त - गुणं होदि । लवण-णीररासि-खंड-सलाग-संमिलिद-धादईसंड-खंड-सलागादो कालोदग-समुद्द-खंड-सलाग-संमिलिद-हेट्ठिम-खंड-सलागाओ पंच-गुणं होदि । कालोदग-समुद्दस्स खंड-सलाग-संमिलिद-हेट्ठिम-दीवोवहीणं खंड-सलागादो पोक्खरवर-दीव-खंड-सलाग-संमिलिद-हेट्ठिम-दीव-रयणायराणं खंड-सलागा चउग्गुणं होऊण तिण्णि-सय-सट्ठि - रूवेहि अब्भहियं होदि । पोक्खरवरदीव खंड-सलाग-संमिलिद-हेट्ठिम-दीव-रयणायराणं खंड-सलागादो पोक्खरवर-समुद्दस्स संमिलिद-हेट्ठिम-दीवोवहीणं खंड-सलागा चउग्गुणं होऊण सत्त-सय-चउदाल-रूवेहि अब्भहियं होदि । एत्तो उवरिम-चउग्गुणं चउग्गुणं पक्खेव-भूद-सत्त-सय-चउदालं दुगुण-दुगुणं होऊण चउवीस-रूवेहि अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ।।

अर्थ — पुनः इष्ट द्वीप अथवा समुद्रके अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-शलाकाओंका मिश्रित कथन करने पर लवण-समुद्रकी खण्ड-शलाकाओं से लवणसमुद्र-सम्मिलित धातकीखण्ड द्वीपकी खण्ड-शलाकाएँ सात-गुणी हैं । लवणसमुद्रकी खण्ड-शलाकाओंसे सम्मिलित धातकीखण्डद्वीप-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी अपेक्षा कालोदसमुद्रकी खण्डशलाकाओं सहित अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-शलाकाएँ पाँच-गुणी हैं । कालोदसमुद्रकी खण्ड-शलाका-सम्मिलित अधस्तन द्वीप-समुद्रों-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी अपेक्षा पुष्करवरद्वीपकी खण्डशलाकाओं सहित अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-

---

१. द. ब. क. ज. भण्णिमाणे । २. द. ब. क. ज. सलागादो ।

शलाकाएँ चौगुनी होकर तीन सौ साठ अधिक हैं। पुष्करवरद्वीप की खण्ड-शलाकाओं सहित अधस्तन द्वीप-समुद्रों-सम्बन्धी खण्ड-शलाकाओंकी अपेक्षा पुष्करवर-समुद्र-सम्मिलित अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्डशलाकाएं चौगुनी होकर सात सौ चवालीस अधिक हैं। इससे ऊपर स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त चौगुनी-चौगुनी होनेके अतिरिक्त प्रक्षेप-भूत सात सौ चवालीस दुगुने-दुगुने और चौबीस अधिक होते गये हैं ।।

विशेषार्थ—इष्ट द्वीप अथवा समुद्रके अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी खण्ड-शलाकाओंका मिश्रित कथन किया जाता है। लवणसमुद्रकी खण्डशलाकाओं (२४) से लवणसमुद्र सहित धातकीखण्ड द्वीपकी खण्डशलाकाएं (२४ + १४४ = १६८) सात गुनी (२४ × ७ = १६८) हैं।

लवणसमुद्र और धातकी खण्ड द्वीप सम्बन्धी सम्मिलित १६८ खण्ड-शलाकाओं में कालोद-समुद्रकी ६७२ खण्ड शलाकाएं मिला देनेपर (२४ + १४४ + ६७२ =) ८४० खण्ड-शलाकाएं प्राप्त होती हैं। जो लवणसमुद्र और धातकीखण्ड की सम्मिलित (२४ + १४४ =) १६८ खण्ड-शलाकाओं से ५ गुनी (१६८ × ५ = ८४०) हैं।

पुष्करवरद्वीपसे अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित (२४ + १४४ + ६७२ =) ८४० खण्ड-शलाकाओं में पुष्करवर द्वीप की २८८० खण्ड-शलाकाओं में मिला देनेपर (८४० + २८८०) = ३७२० खण्ड-शलाकाएं होती हैं; जो अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित ८४० खण्ड-शलाकाओं की अपेक्षा ३६० अधिक ४ गुनी हैं। यथा—(८४० × ४) + ३६० = ३७२० ।

पुष्करवर समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रों की सम्मिलित (२४ + १४४ + ६७२ + २८८० =) ३७२० खण्ड-शलाकाओंमें पुष्करवरसमुद्रकी ११९०४ खण्ड-शलाकाएं मिला देनेपर पुष्करवरसमुद्र पर्यन्तकी सम्मिलित खण्ड-शलाकाएं (३७२० + ११९०४ =) १५६२४ हैं। जो अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित ३७२० खण्डशलाकाओंकी अपेक्षा ७४४ अधिक ४ गुनी हैं। यथा—(३७२० × ४) + ७४४ = १५६२४ ।

इससे ऊपर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त ४ गुना-४ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत खण्ड-शलाकाएं २४ अधिक ७४४ की दुगुनी-दुगुनी होती चली गई हैं। यथा—

वारुणीवर द्वीपसे अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित (२४ + १४४ + ६७२ + २८८० + ११९०४ =) १५६२४ खण्ड-शलाकाओंमें वारुणीवर द्वीपकी ४८३८४ खण्डशलाकाएं मिला देनेपर वारुणीवरद्वीप पर्यन्त की सम्मिलित खण्डशलाकाएं (१५६२४ + ४८३८४ =) ६४००८ हैं। जो अधस्तन द्वीप-समुद्रोंकी सम्मिलित १५६२४ खण्डशलाकाओंकी अपेक्षा ४ गुनी होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत शलाकाएं २४ अधिक ७४४ की दुगुनी हैं। यथा—

६४००८=[(१५६२४×४)+(७४४×२)+२४]

तव्वड्ढी-आणयण-हेदुमिमं गाहा-सुत्तं—

अंतिम-विक्खंभद्धं, लक्खूणं लक्ख-हीण-वास-गुणं ।
पण-घण-कोडीहि हिदं, इट्ठादो हेट्ठिमाण पिंड-फलं ।।२६६।।

अर्थ—इस वृद्धि को प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अन्तिम विस्तारके अर्ध भागमेंसे एक लाख कम करके शेष को एक लाख कम विस्तार से गुणा करके प्राप्त राशिमें पाँचके घन अर्थात् एक सौ पच्चीस करोड़ का भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना इच्छित द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रों का पिण्डफल होता है ।।२६६।।

गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप–समुद्रका पिण्डफल—

$$=\left(\frac{\text{अन्तिम विस्तार}}{२}-१००००० \right)\times\left(\frac{\text{अन्तिम विस्तार}-१०००००}{१२५००००००}\right)$$

उदाहरण—मानलो—यहाँ क्षीरवर द्वीप इष्ट है । जिसका विस्तार २५६ लाख योजन प्रमाण है ।

क्षीरवर द्वीपसे अधस्तन (जम्बूद्वीपसे वारुणीवर समुद्र पर्यन्त) द्वीप - समुद्रका पिण्डफल—

$$\text{पिण्डफल}=\left(\frac{२५६०००००}{२}-१००००० \right)\times\left(\frac{२५६०००००-१०००००}{१२५००००००}\right)$$

$$=\frac{१२७००००००\times२५५०००००}{१२५००००००}=२५९०८० \text{ योजन ।}$$

साधिरेय-पमाणाणयणट्ठं इमं गाहा-सुत्तं—

दो-लक्खेहि विभाजिद-सग-सग-वासम्मि लद्ध-रूवेहिं ।
सग-सग-खंडसलागं, भजिदे अदिरेग - परिमाणं ।।२६७।।

अर्थ :—अतिरिक्त प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अपने-अपने विस्तारमें दो लाखका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसका अपनी-अपनी खण्डशलाकाओं में भाग देनेपर अतिरेकका प्रमाण आता है ।। २६७ ।।

विशेषार्थ :—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{वर्णित अतिरेक} = \frac{\text{निज खण्डशलाकाएँ}}{\frac{\text{निज विस्तार}}{२०००००}}$$

उदाहरण—मानलो-यहाँ क्षीरवर द्वीप इष्ट है। जिसका विस्तार २५६०००००० योजन है और खण्डशलाकाएँ ७८३३६० हैं।

$$\text{वर्णित अतिरेक} = \frac{७८३३६०}{\frac{२५६००००००}{२०००००}}$$

$$= \frac{७८३३६०}{१२८} = ६१२० \text{।}$$

बारहवाँ—पक्ष

जम्बूद्वीपको छोड़कर समुद्रसे द्वीप और द्वीपसे समुद्रका विष्कम्भ
दुगुना एवं आयाम दुगुनेसे ९ लाख योजन अधिक है—

बारसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो। तं जहा-जाव जंबूदीवमवणिज्ज लवण-समुद्दस्स विक्खंभं वेण्णि-लक्खं आयामं णव-लक्खं, धादईसंड-दीवस्स विक्खंभं चत्तारि-लक्खं आयामं सत्तावीस-लक्खं, कालोदगसमुद्दस्स विक्खंभं अट्ठ-लक्खं आयामं तेसट्ठि-लक्खं, एवं समुद्दादो दीवस्स दीवादो समुद्दस्स विक्खंभादो विक्खंभं दुगुणं आयामादो आयामं दुगुणं णव-लक्खेहि अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।।

अर्थ—बारहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है—जम्बूद्वीपको छोड़कर लवणसमुद्र का विस्तार दो लाख यो० और आयाम नौ लाख योजन है। धातकीखण्डका विस्तार चार लाख यो० और आयाम सत्ताईस लाख योजन है। कालोदसमुद्र का विस्तार आठ लाख यो० और आयाम तिरेसठ लाख योजन है। इसप्रकार समुद्रसे द्वीपका और द्वीपसे समुद्रका विस्तार दुगुना तथा आयामसे आयाम दुगुना और नौ लाख अधिक होकर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त चला गया है।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपको छोड़कर लवणसमुद्रका विस्तार २ लाख योजन है और आयाम ९००००० योजन है।

इसी अधिकारकी गाथा २४४ के अनुसार—

आयाम निकालनेकी विधि :—इच्छित क्षेत्रके विस्तारमेंसे एक लाख कम करके शेषको नौसे गुणा करने पर इच्छित द्वीप या समुद्रका आयाम होता है। तदनुसार लवणसमुद्रका आयाम (२ लाख — १ लाख) × ९ = ९ लाख योजन है।

धातकीखण्डद्वीपका विस्तार ४ लाख योजन है और आयाम (४ लाख यो०—१ लाख) × ९ = २७ लाख योजन है।

कालोद समुद्र का विस्तार ८ लाख योजन है और आयाम (८ लाख यो०—१ लाख) × ९ = ६३ लाख यो० है।

इसीप्रकार समुद्रसे द्वीपका और द्वीपसे समुद्रका विस्तार दुगुना तथा आयाम से आयाम दुगुना और ९ लाख योजन अधिक होकर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चला जाता है।

अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल चौगुना तथा प्रक्षेप ७२००० करोड़ योजन है—

लवणसमुद्दस्स खेत्तफलादो धादईसंडस्स खेत्तफलं छग्गुणं, धादईसंडदीवस्स खेत्तफलादो कालोदगसमुद्दस्स खेत्तफलं चउग्गुणं बाहत्तरि-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होदि। खेत्तफलं ७२०००००००००० । एवं हेट्ठिम-दीवस्स वा णीररासिस्स वा खेत्त-फलादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा खेत्तफलं चउग्गुणं पक्खेवभूद-बाहत्तरि-सहस्स-कोडि-जोयणाणि दुगुण-दुगुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमण-समुद्दो त्ति ॥

अर्थ—लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे धातकीखण्डका क्षेत्रफल छह-गुणा और धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे कालोदसमुद्रका क्षेत्रफल चौगुना एवं बहत्तर हजार करोड़ योजन अधिक है—७२००००००००००। इसप्रकार अधस्तन द्वीप अथवा समुद्रके क्षेत्रफलसे तदनन्तर उपरिम द्वीप अथवा समुद्र का क्षेत्रफल चौगुना और प्रक्षेपभूत बहत्तर हजार करोड़ योजन स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त दुगुने होते गये हैं ॥

विशेषार्थ—गा० २४३ के अनुसार जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल ३ × (५००००)² या ७५००००००००० वर्ग योजन है अतः अन्य द्वीप-समुद्रोंके क्षेत्रफलमें जम्बूद्वीप सदृश जो खण्ड हुए हैं उनमेंसे प्रत्येक खण्डका प्रमाण ७५० करोड़ वर्ग योजन है।

लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे धातकीखण्डद्वीपका क्षेत्रफल ६ गुणा अर्थात् (लवण० की खंड-शलाकाएँ २४ हैं अतः) २४ × ६ = १४४ है। धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे कालोदक-समुद्रका क्षेत्रफल ९६ से अधिक ४ गुना है। अर्थात् ६७२ = (१४४ × ४) + ९६ खण्डशलाकाएँ हैं।

जब एक खण्डशलाका का प्रमाण ७५० करोड़ वर्ग योजन है तब ९६ खण्डशलाकाओंका क्या प्रमाण होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर उपर्युक्त (७५० करोड़ × ९६ =) ७२००० करोड़ वर्ग योजन अतिरेक रूपमें प्राप्त होते हैं ।

इसप्रकार अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे तदनन्तर उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल ४ गुना और प्रक्षेपभूत ७२०००००००००० वर्ग योजन दुगुना-दुगुना होता हुआ स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चला गया है ।

स्वयम्भूरमण द्वीप का विस्तार, आयाम एवं क्षेत्रफल—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो-सयंभूरमण-दीवस्स विक्खंभं छप्पण्ण-रूवेहि भजिद-जगसेढी पुणो सत्त-तीस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहिं अब्भहियं होदि । तस्स ठवणा— $\frac{-}{५६}$ । धण जोयणाणि ३७५०० ।

आयामं पुण छप्पण्ण-रूवेहिं हिद-णव-जगसेढीओ पुणो पंच-लक्ख-बासट्ठि-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहिं परिहीणं होदि । तस्स ठवणा $\frac{-९}{५६}$ । रिण जोयणाणि ५६२५०० ।

पुणो विक्खंभायामं परोप्पर-गुणिदे खेत्तफलं रज्जूवे कदि णव-रूवेहिं गुणिय चउसट्ठि-रूवेहि भजिदमेत्तं किंचूणं होदि । तस्स किंचूणं पमाणं रज्जू ठविय अट्ठावीस-सहस्स-एक्क-सय-पंच-वीस-रूवेहिं गुणिदमेत्तं पुणो पण्णास-सहस्स-सत्त[1]-तीस-लक्ख-णव-कोडि-अब्भहिय-दोण्णि-सहस्स-एक्क-सय-कोडि-जोयणमेत्तं होदि । तस्स ठवणा[2] $\frac{=}{६४}$ । $\frac{९}{६४}$ रिण $\overline{७}$ । २८१२५ रिण जोयणाणि २१०९३७५०००० ॥

अर्थ—इनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-द्वीपका विस्तार छप्पनसे भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण और सैंतीस हजार पाँच सौ योजन अधिक है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$\frac{जग०}{५६}$ + ३७५०० योजन ।

स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम छप्पनसे भाजित नौ जगच्छ्रेणियोंमेंसे पाँच लाख बासठ हजार पाँचसौ योजन कम है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$\frac{जग० ९}{५६}$ — ५६२५०० योजन ।

---

१. ब. तेत्तीस । २. द. ब. ठवणा ४ । ६ । ६४ ।

इस विस्तार और आयामको परस्पर गुणित करने पर स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके चौंसठका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उससे कुछ कम होता है। इस किंचित् कमका प्रमाण राजूको स्थापित करके अट्ठाईस हजार एक सौ पच्चीससे गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उतना और दो हजार एकसौ नौ करोड़ सैंतीस लाख पचास हजार वर्ग योजन प्रमाण है। इसकी स्थापना इसप्रकार है—

राजू × राजू × $\frac{९}{६४}$ — (१ राजू × २८१२५ यो० + २१०९३७५००००) ॥

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका विस्तार = $\frac{जग०}{५६}$ + ३७५०० योजन

अर्थात् $\frac{१}{८}$ राजू + ३७५०० योजन है।

स्वयम्भूरमण द्वीपका आयाम =

= (द्वीपका विस्तार — १०००००) × ९

= ($\frac{जग०}{५६}$ + ३७५००—१०००००) × ९

= ($\frac{जग० \times ९}{५६}$) —५६२५०० योजन या $\frac{९}{८}$ राजू — ५६२५०० यो०।

स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल—

इस द्वीपके विस्तार ओर आयाम को परस्पर गुणित करनेसे स्वयम्भूरमण द्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको ९ से गुणित कर ६४ का भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उससे कुछ कम होता है। यथा—

कुछ कम स्वयं० द्वीपका क्षेत्रफल = विस्तार × आयाम।

= ($\frac{१}{८}$ राजू + ३७५०० यो०) × ($\frac{९}{८}$ राजू — ५६२५०० यो०)

= $\frac{९}{६४}$ × (राजू)^{२} + राजू (— $\frac{५६२५००}{८}$ + $\frac{९ \times ३७५००}{८}$) — ३७५०० × ५६२५००

= $\frac{९}{६४}$ (राजू)^{२} — $\frac{२२५०००}{८}$ राजू — २१०९३७५०००० वर्ग योजन।

स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल $\frac{९}{६४}$ (राजू)^{२} से कुछ कम कहा गया है। इस किञ्चित् कमका प्रमाण—

—२८१२५ राजू — २१०९३७५०००० वर्ग योजन है।

इसकी स्थापना इसप्रकार है—

$\frac{=}{४९}$ । $\frac{९}{६४}$ । रिण $\frac{-}{७}$ । २८१२५ रिण जोयणाणि २१०९३७५०००० ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रके विष्कम्भ, आयाम और क्षेत्रफलका प्रमाण—

सयंभूरमणसमुद्दस्स विक्खंभं अट्ठावीस-रूवेहिं भजिद-जगसेढी पुणो पंचहत्तरि-सहस्स-जोयणेहिं अब्भहियं होदि। आयामं अट्ठावीस-रूवेहिं भजिद-णव-जगसेढी पुणो दोण्णि-लक्ख-पंचवीस-सहस्स-जोयणेहिं परिहीणं होदि। तस्स ठवणा— $\frac{-}{२८}$ धण ७५००० । आयाम $\frac{-९}{२८}$ रिण २२५००० ।

खेत्तफलं रज्जूए कदी णव-रूवेहिं गुणिय सोलस-रूवेहिं भजिदमेत्तं पुणो रज्जू ठविय एक्क-लक्ख-बारस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहिं गुणिद-किंचूणिय-कदिमेत्तेहिं अब्भहियं होदि। तं किंचूण-पमाणं पण्णास-लक्ख-सत्तासीदि-कोडि-अब्भहिय-छस्सय-एक्क-सहस्स-कोडि-जोयणमेत्तं होदि।

तस्स [1]ठवणा— $\frac{=}{४९}$ । $\frac{९}{१६}$ । धण $\frac{-}{७}$ । ११२५०० । रिण १६८७५०००००० ।

अर्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार अट्ठाईससे भाजित जगच्छ्रेणी और पचहत्तर हजार योजन अधिक है तथा आयाम अट्ठाईससे भाजित नौ जगच्छ्रेणीमेंसे दो लाख पच्चीस हजार योजन कम है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—विस्तार = $\frac{\text{जग०}}{२८}$ + ७५०००योजन ।

आयाम = $\frac{\text{जग० ९}}{२८}$ — २२५००० योजन ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके प्राप्त राशिमें सोलहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना और राजूको स्थापित करके एक लाख बारह हजार पाँच सौ योजनसे गुणित लब्धमेंसे कुछ कम करके जो शेष रहे उससे अधिक है। इस किञ्चित् कमका प्रमाण एक हजार छह सौ सतासी करोड़ पचास लाख योजन है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—

[(राजू)² × ९ ÷ १६] + (राजू १ × ११२५०० यो०) — १६८७५०००००० ।

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमण समुद्रका विस्तार = $\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{२८}$ + ७५००० योजन ।

= $\frac{१}{४}$ राजू + ७५००० योजन ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका आयाम = (विस्तार — १०००००) × ९

= [$\frac{१}{४}$ राजू + ७५००० — १०००००] × ९

= $\frac{९}{४}$ राजू — २२५००० योजन ।

---

१. द. ब. ठवणा ४९ । १६ ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल = (विस्तार × आयाम)

= (१/४ राजू + ७५००० यो०) × (९/४ राजू — २२५००० योजन ।

= ९/१६ (राजू)^2 + राजू [१/४ × (—२२५०००) + (९/४ × ७५०००)] — ७५०००
× २२५००० यो० ।

= ९/१६ × (राजू)^2 + राजू (—५६२५० + १६८७५०) — १६८७५०००००० ।

= ९/१६ × (राजू)^2 + (११२५००) राजू — १६८७५०००००० वर्ग योजन ।

गोलाकार क्षेत्रका क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधि—

एवं दीवोवहीणं विक्खंभायाम-खेत्तफलं च परूवण-हेदुमिमं गाहा-सुत्तं—

लक्ख-विहीणं रुंदं, णवहि गुणं इच्छियस्स दीहत्तं ।
तं चेव य रुंद - गुणं, खेत्तफलं होदि वलयाणं[1] ॥२६८॥

अर्थ—इसप्रकार द्वीप-समुद्रके विस्तार, आयाम और क्षेत्रफलके निरूपण हेतु यह गाथा सूत्र है—

एक लाख कम विस्तारको नौसे गुणा करनेपर इच्छित द्वीप या समुद्रकी लम्बाई होती है । इस लम्बाईको विस्तारसे गुणा करनेपर गोलाकार क्षेत्रोंका क्षेत्रफल होता है ॥ २६८ ॥

उदाहरण—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या समुद्रका आयाम (लम्बाई) = (विस्तार—१०००००) × ९

इष्ट द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल = लम्बाई (आयाम) × विस्तार

मानलो—यहाँ नन्दीश्वर द्वीप इष्ट है, जिसका विस्तार १६३८४००००० योजन है ।

नन्दीश्वरद्वीपका आयाम = (१६३८४००००० — १०००००) × ९

= १४७४४७००००० योजन ।

नन्दीश्वरद्वीपका क्षेत्रफल = १४७४४७००००० × १६३८४००००० ।

= २४१५७७१६४८०००००००००० वर्ग योजन ।

---

१. ब. लवयाणं ।

अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलकी सातिरेकताका प्रमाण—

हेट्ठिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा खेत्तफलादो उवरिम-दीवस्स वा तरंगिणी-णाहस्स वा खेत्तफलस्स सादिरेयत्त-परूवण-हेदुमिमा गाहा-सुत्तं—

कालोदगोवहीदो, उवरिम-दीवोवहीण पत्तेक्कं ।
रुंदं णव-लक्ख-गुणं, परिवड्ढी होदि उवरुवरिं ॥२६९॥

अर्थ—अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलकी सातिरेकता के निरूपण हेतु यह गाथा-सूत्र है—

कालोदसमुद्रसे उपरिम द्वीप-समुद्रोंमेंसे प्रत्येकके विस्तारको नौ लाखसे गुणा करनेपर ऊपर-ऊपर वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ॥ २६९ ॥

विशेषार्थ—कालोद समुद्रके बाद अधस्तन द्वीप या समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल चार-चार गुना होता गया है और प्रक्षेप (७२००० करोड़) दूना-दूना होता गया है। उपर्युक्त गाथा द्वारा प्रक्षेप (सातिरेक) का प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि दर्शाई गई है। यथा—

गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

वर्णित ऊपर-ऊपर वृद्धि=(कालोदसे ऊपर इष्ट द्वीप या स० का विस्तार) × ९

मानलो—नन्दीश्वर समुद्रके प्रक्षेप (सातिरेक) का प्रमाण इष्ट है। इससे अधस्तन स्थित नन्दीश्वर द्वीपका विस्तार १६३८४ लाख योजन है अतः—

१६३८४००००००×९०००००=१४७४५६०००००००००० योजन है जो ७२००० करोड़ योजनोंका दूना होता हुआ २०४८ गुना है

यथा—७२००० करोड़×२०४८=१४७४५६००००००००००।

तेरहवाँ—पक्ष

अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके पिण्डफल एवं प्रक्षेपभूत क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल कितना होता है ? उसे कहते हैं—

तेरसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो जंबूदीवस्स खेत्तफलादो लवणणीरधिस्स खेत्तफलं चउवीस[1]-गुणं । जंबूदीव-सहिय-लवणसमुद्दस्स खेत्तफलादो धादईसंडदीवस्स खेत्त-

---

१. द. उणवीस ।

फलं पंच-गुणं होऊण चोद्दस-सहस्स बे-सय-पण्णास-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होदि १४२५०००००००० । जंबूदीव-लवणसमुद्द-सहिय-धादईसंडदीवस्स खेत्तफलादो कालोदग-समुद्दस्स खेत्तफलं तिगुणं होऊण एय-लक्ख-तेवीस-सहस्स-सत्तसय-पण्णास-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होदि । तस्स ठवणा—१२३७५०००००००० । एवं कालोदग-समुद्द-प्पहुदि-हेट्ठिम-दीव-रयणायराणं पिंड-फलादो उवरिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा खेत्तफलं पत्तेयं तिगुणं पक्खेवभूद-एय-लक्ख-तेवीस-सहस्स-सत्तसय-पण्णास-कोडि-जोयणाणि कमसो दुगुण-दुगुणं होऊण वीस-सहस्स-दु-सय-पण्णास-कोडि-जोयणेहि पमाणं २०२५०००००००० अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।।

अर्थ—तेरहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलसे लवणसमुद्रका क्षेत्रफल चौबीस (२४) गुना है। जम्बूद्वीप सहित लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे धातकीखण्डद्वीपका क्षेत्रफल पाँच-गुना होकर चौदह हजार दो सौ पचास करोड़ योजन अधिक है—१४२५०००००००० । जम्बूद्वीप और लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे युक्त धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे कालोदसमुद्रका क्षेत्रफल तिगुना होकर एक-लाख तेईस हजार सात सौ पचास करोड़ योजन अधिक है। उसकी स्थापना—१२३७५०००००००० । इसप्रकार कालोदसमुद्र आदि अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके पिण्डफलसे उपरिम द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल प्रत्येक तिगुना होनेके साथ प्रक्षेपभूत एक लाख तेईस हजार सात सौ पचास करोड़ योजन क्रमसे दुगुने-दुगुने होकर बीस हजार दो सौ पचास करोड़ योजन २०२५०००००००० अधिक होता हुआ स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चला गया है ।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल १ खण्ड-शलाका और लवणसमुद्रका क्षेत्रफल २४ खण्ड शलाका स्वरूप है। जम्बूद्वीप सहित लवणसमुद्रके (१+२४=२५ खंडशलाका स्वरूप) क्षेत्रफलसे धातकीखण्डद्वीपका (१४४ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफल ५ गुना होकर १९ खण्ड-शलाका प्रमाण वर्ग योजनसे अधिक है। यथा—

(२५ × ५) + १९ = १४४ ।

एक खण्डशलाका ३ × (५००००)² अथवा ७५ × (१०)⁸ वर्ग योजन प्रमाण होती है अतः १९ खण्डशलाकाओंके [१९ × ३ (५००००)² या ५७ × २५ × (१०)⁸ =] १४२५०००००००० वर्ग योजन प्राप्त हुए ।

धातकी खण्डका प्रक्षेपभूत (अधिक धनका) यही प्रमाण ऊपर कहा गया है ।

जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र और धातकीखण्डके सम्मिलित (१+२४+१४४=१६९ खण्ड-शलाका स्वरूप) क्षेत्रफलसे कालोदका (६७२ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफल ३ गुना (१६९×३= ५०७) होकर (६७२ — ५०७=) १६५ खण्डशलाका प्रमाण वर्ग योजनसे अधिक है।

यथा—६७२=(१६९×३)+१६५ ।

एक खण्डशलाका ७५×(१०)^{८} वर्ग योजन प्रमाण है अतः १६५ खण्डशलाकाओंका प्रमाण १६५×७५×(१०)^{८}=१२३७५००००००००० वर्ग योजन है। कालोदधिका प्रक्षेपभूत (अधिक धनका) यही प्रमाण ऊपर कहा गया है।

इसप्रकार अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके पिण्डफलसे कालोदकका क्षेत्रफल=६७२ खण्ड०= (१+२४+१४४)×३ खंडश०+१२३७५००००००००० वर्ग यो० है।

मानलो—यहाँ पुष्करवरद्वीपकी प्रक्षेप वृद्धि प्राप्त करना इष्ट है। जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखण्डद्वीप और कालोदसमुद्रके सम्मिलित (१+२४+१४४+६७२=८४१ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका (२८८० खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफल तिगुना (८४१×३= २५२३) होकर (२८८० — २५२३=) ३५७ खण्डशलाका प्रमाण वर्ग योजनोंसे अधिक है। यथा—

२८८०=(८४१×३)+३५७ ।

एक खण्डशलाका ७५×(१०)^{८} वर्ग योजन प्रमाण है अतः ३५७ खण्डशलाकाओंका प्रमाण (३५७×७५×(१०)^{८})=२६७७५००००००००० वर्ग योजन प्राप्त होता है। यही पुष्करवर द्वीपका प्रक्षेपभूत (अधिक धन) क्षेत्र है। जो कालोदधिके प्रक्षेपभूत क्षेत्रके दुगुनेसे २०२५००००००००० वर्ग यो० अधिक है। इसका सूत्र पु० द्वीपका प्रक्षेप० क्षेत्र=(कालोदधिका प्रक्षेप × २)+२०२५×(१०)^{८}। २६७७५×(१०)^{८}=(१२३७५००००००००० × २) + २०२५००००००००० ।

कालोदधि समुद्रके ऊपर द्वीप या समुद्रका क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधिमें दो नियम निर्णीत हैं—

१. अधस्तन द्वीप-समुद्रके पिण्डफल क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप-समुद्रका पिण्डफल क्षेत्रफल नियमसे तिगुना होता हुआ अन्त-पर्यन्त जाता है।

२. अधस्तन द्वीप या समुद्रके प्रक्षेप [१२३७५×(१०)^{८}] से उपरिम द्वीप या समुद्रका प्रक्षेप नियमसे दुगुना होता हुआ अन्त पर्यन्त जाता है।

अब यहाँ प्रक्षेपके ऊपर जो २०२५ $(१०)^८$ अधिक धन कहा गया है वह ऊपर-ऊपर किस विधिसे प्राप्त होता है ? उसे दर्शाते हैं—

कालोद समुद्रके प्रक्षेपसे पुष्करवर द्वीपका प्रक्षेपभूत दुगुनेसे २०२५ $(१०)^८$ वर्ग योजन अधिक है। इस २०२५ × $(१०)^८$ वर्ग योजन अधिककी १ शलाका मानकर उपरिम द्वीप या समुद्रका यह अधिक धन अधस्तन द्वीप-समुद्रकी शलाकासे १ अधिक दुगुना है। इसका सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या स० का अधिक धन = [(अधस्तन द्वीप या स० की खण्ड श० × २) + १] × २०२५ × $(१०)^८$ ।

पुष्करवर समुद्रका अधिक धन = [(१ × २) + १] × २०२५०००००००० ।

= ३ × [२०२५ × $(१०)^८$ = ६०७५०००००००० वर्ग योजन है।

अर्थात् पु० स० का अधिक धन = (प्रक्षेप युक्त अधिक धन) — (प्रक्षेप × ४)

पु० समुद्रका अ० धन ६०७५ × $(१०)^८$ = [५५५७५ × $(१०)^८$]—[१२३७५ × $(१०)^८$ × ४]

वारुणीवर द्वीपका अधिक धन = [(३ × २) + १] × २०२५ × $(१०)^८$

= १४१७५०००००००० = [७ × २०२५००००००००] वर्ग योजन।

इसीप्रकार आगे भी जानना चाहिए।

जम्बूद्वीप और स्वयम्भूरमणसमुद्रके मध्य स्थित समस्त द्वीप-समुद्रोंके क्षेत्रफलका प्रमाण—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंभूरमण-समुद्दस्स हेट्ठिम-दीव-उवहीओ सव्वाओ जंबूदीव-विरहिदाओ ताणं खेत्तफलं रज्जूवे कदी ति-गुणिय सोलसेहिं भजिदमेत्तं, पुणो णव-सय-सत्तत्तीस-कोडि-पण्णास-लक्ख-जोयणेहिं अब्भहियं होदि। पुणो एक्क-लक्ख-बारस[1]-सहस्स पंच-सय-जोयणेहिं गुणिद-रज्जूए हीणं होदि। तस्स ठवणा—

$\frac{=\,२}{४९}$ । $\frac{३}{१६}$ धण जोयणाणि ९३७५०००००० रिण-रज्जूओ ७ । ११२५०० ।

अर्थ— इसमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमण-समुद्रके नीचे जम्बूद्वीपको छोड़कर जितने द्वीप-समुद्र हैं उन सबका क्षेत्रफल राजूके वर्गको तिगुना करके सोलहका भाग देनेपर जो लब्ध

---

१. ब. बारसहस्स। २. द. ब. ठवणा—४९ । १६ ।

प्राप्त हो उतना और नौ सौ सैंतीस करोड़ पचास लाख योजन अधिक एवं एक लाख बारह हजार पाँच सौ योजनोंसे गुणित राजूसे हीन है। उसकी स्थापना इस प्रकार है—

$$\left(\frac{३ \times (\text{राजू})^२}{१६} \right) + ९३७५०००००० \text{ वर्ग यो०}) - \text{राजू} \times ११२५०० \text{ यो०})$$

इट्ठादो हेट्ठिम-दीवोवहीणं पिंडफलमाणयणट्ठं गाहा-सुत्तं—

इच्छिय-दीवुवहीए, विक्खंभायामयम्मि अवणेज्जं।
इगि-णव-लक्खं सेसं, ति-हिदं इच्छादु हेट्ठिमाणफलं ।।२७०।।

अर्थ—इच्छित द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके पिण्डफलको प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

इच्छित द्वीप या समुद्रके विष्कम्भ एवं आयाममेंसे क्रमशः एक लाख और नौ लाख कम करे। पुनः शेष (के गुणनफल) में तीनका भाग देनेपर इच्छित द्वीप या समुद्रके (जम्बूद्वीपको छोड़कर) अधस्तन द्वीप-समुद्रोंका पिण्डफल प्राप्त होता है ।। २७० ।।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट द्वीप या समुद्रसे अधस्तन द्वीप-समुद्रोंका सम्मिलित पिण्डफल

= (इष्ट द्वीप या स० का विस्तार — १०००००) × [{ (इष्ट द्वीप या स० का विस्तार — १०००००) × ९ } — ९०००००] ÷ ३ ।

उदाहरण—मानलो—यहाँ नन्दीश्वर द्वीप इष्ट है। जिसका विस्तार १६३८४००००० योजन है और आयाम [(१६३८४००००० — १०००००) × ९ =] १४७४४७००००० योजन है। अतः लवणसमुद्रसे क्षौद्रवरसमुद्रका पिण्डरूप—

क्षेत्रफल = (१६३८४००००० — १०००००) × (१४७४४७००००० — ९ ला०) ÷ ३

$$= \frac{१६३८३००००० \times १४७४३८०००००}{३}$$

= ८०५१५८९१८०००००००००० वर्ग योजन ।

इसीप्रकार जम्बूद्वीप और स्वयम्भूरमण समुद्रके मध्यवर्ती समस्त द्वीप-समुद्रोंका—

क्षेत्रफल—

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० - १००००० \right) \times \left[\left(\frac{\text{जग०}}{२८} + ७५००० - १००००० \right) \times ९ - १००००० \right] \div ३$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left[\left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times ९ - १००००० \right] \div ३$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left[\left(\frac{९ \text{ जग०}}{२८} - २२५००० \right) - १००००० \right] \div ३$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left(\frac{९ \text{ जग०}}{२८} - ३२५००० \right) \div ३$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left(\frac{९ \text{ जग०}}{३ \times २८} - \frac{११२५०००}{३} \right)$$

$$= \left(\frac{\text{जग०}}{२८} - २५००० \right) \times \left(\frac{३ \text{ जग०}}{२८} - ३७५००० \right)$$

$$= \frac{३ \times (\text{जग०})^२}{(२८)^२} - \frac{\text{जग०}}{२८} \times (३७५००० + ७५०००) \text{ यो०} + २५००० \times ३७५००० \text{ वर्ग योजन ।}$$

$$= \frac{३ \times (\text{जग०})^२}{(२८)^२} - \frac{\text{जग०}}{७ \times ४} \times (४५००००) \text{यो०} + ९३७५०००००० \text{ वर्ग यो० ।}$$

$$= \frac{३ \text{ जग०}}{७ \times ४} \times \frac{\text{जग०}}{७ \times ४} - \frac{\text{जग०}}{७} \times (११२५००) \text{ यो०} + ९३७५०००००० \text{ वर्ग यो० ।}$$

$$= \frac{३ (\text{राजू०})^२}{१६} + (९३७५००००००) \text{ वर्ग यो०} - (\text{राजू} \times ११२५०० \text{ यो०}) \text{ ।}$$

$$= \frac{\equiv}{४९} \times \frac{३}{१६} + ९३७५०००००० - \frac{-}{७} \times ११२५०० \text{ ।}$$

सादिरेयस्स आणयणट्ठं गाहा-सुत्तं—

इच्छिय-वासं दुगुणं, दो-लक्खूणं ति-लक्ख-संगुणियं ।
जंबूदीव - फलूणं, सेसं तिगुणं हवेदि अदिरेगं ।।२७१।।

अर्थ—सातिरेकका प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

इच्छित द्वीप या समुद्रके दुगुने विस्तारमेंसे दो लाख कम करके शेष को तीन लाखसे गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसमेंसे जम्बूद्वीपके क्षेत्रफलको कम करके शेषको तिगुना करने पर अतिरेक (प्रक्षेपभूत) का प्रमाण प्राप्त होता है ।। २७१ ।।

गाथानुसार सूत्र इस प्रकार है—

वर्णित अतिरेक प्रमाण = ३ [{ २ × इष्ट द्वीप या स० का विस्तार—२००००० } × (३०००००)—३ × ($\frac{१०००००}{२}$)^{२}]

उदाहरण—मानलो—यहाँ पुष्करवर समुद्र इष्ट है । जिसका विस्तार ३२००००० लाख योजन है । इसका प्रक्षेपभूत—

अतिरेक प्रमाण = ३ [{ २ × ३२००००० — २००००० } × ३००००० — ३ × २५००००००]

= ३ [६२००००० × ३००००० — ७५००००००]

= ३ × [१८५२५००००००००] = ५५५७५०००००००० वर्ग योजन ।

अर्थात् पुष्करवर द्वीपके क्षेत्रफलको तिगुनाकर ५५५७५ × (१०)^{८} जोड़ देनेसे पुष्करवर समुद्रका क्षेत्रफल प्राप्त होता है ।

चौदहवाँ—पक्ष

अधस्तन समुद्रके विष्कम्भ और आयामसे उपरिम समुद्रका विष्कम्भ और आयाम
कितना अधिक होता हुआ गया है ? उसे कहते हैं—

चोद्दसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—लवणसमुद्दस्स विक्खंभं वेण्णि-लक्खं २०००००, आयामं णव-लक्खं ९००००० । कालोदगसमुद्द-विक्खंभं अट्ठ-लक्खं ८०००००, आयामं तेसट्ठि - लक्खं ६३००००० । पोक्खरवरसमुद्दस्स विक्खंभं बत्तीस - लक्खं ३२०००००, आयामं एऊणसीदि-लक्खेणब्भहिय-बे-कोडीओ होइ २७९००००० । एवं हेट्ठिम-समुद्द-विक्खंभादो उवरिम-समुद्दस्स विक्खंभं चउग्गुणं, आयामादो आयामं चउग्गुणं सत्तावीस-लक्खेहिं अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।।

अर्थ—चौदहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रका विस्तार दो लाख योजन और आयाम नौ लाख योजन है। कालोदक समुद्रका विस्तार आठ लाख योजन और आयाम तिरेसठ लाख ६३००००० योजन है। पुष्करवरसमुद्रका विस्तार ३२ लाख योजन और आयाम दो करोड़ उन्यासी लाख २७९००००० योजन है। इसप्रकार अधस्तन समुद्रके विष्कम्भसे उपरिम समुद्रका विष्कम्भ चौगुना तथा आयाम से आयाम चौगुना और २७ लाख योजन अधिक होकर स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त चला गया है।

विशेषार्थ—अधस्तन समुद्रकी अपेक्षा उपरिम समुद्रका विस्तार चार गुना होता हुआ जाता है। यथा—

कालो० स० का वि० ८००००० यो०=(ल० स० का वि० २०००००)×४।

पुष्कर० स० का वि० ३२००००० यो०=(का० स० का वि० ८०००००)×४।

वारुणी स० का वि० १२८००००० यो०=(पु० स० का वि० ३२०००००)×४ आदि।

अधस्तन समुद्रकी अपेक्षा उपरिम समुद्रका आयाम चौगुना और २७००००० योजन अधिक होता हुआ जाता है। यथा—

कालोद समुद्रका आयाम ६३००००० यो०=(९ लाख × ४)+२७ लाख।

पुष्कर० स० का आयाम २७९००००० यो०=(६३००००० × ४)+२७००००० यो०।

वारुणी स० का आयाम ११४३००००० यो०=(२७९ लाख × ४)+२७००००० यो०।

अधस्तन समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल—

लवणसमुद्दस्स खेत्तफलादो कालोदक समुद्दस्स खेत्तफलं अट्ठावीस-गुणं, कालोदकसमुद्दस्स खेत्तफलादो पोक्खरवर-समुद्दस्स खेत्तफलं सत्तारस-गुणं होऊण तिण्णि-लक्ख-सट्ठि-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होदि ३६०००००००००००। पोक्खरवर-समुद्दस्स खेत्तफलादो वारुणिवर समुद्दस्स खेत्तफलं सोलस-गुणं होऊण पुणो चोत्तीस-लक्ख-छप्पण्ण-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होदि ३४५६००००००००००। एत्तो पहुदि हेट्ठिम-णीररासिस्स खेत्तफलादो तदणंतरोवरिम-णीररासिस्स खेत्तफलं सोलस-गुणं पक्खेव-भूद-चोत्तीस-लक्ख-छप्पण्ण-सहस्स-कोडि-जोयणाणि चउग्गुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभू-रमणसमुद्दो त्ति ॥

अर्थ—लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे कालोदकका क्षेत्रफल अट्ठाईस-गुना और कालोदक-समुद्र के क्षेत्रफलसे पुष्करवरसमुद्रका क्षेत्रफल सत्तरह-गुना होकर तीन लाख साठ हजार करोड़ योजन अधिक है ३६०००००००००००। पुष्करवरसमुद्रके क्षेत्रफलसे वारुणीवरसमुद्रका क्षेत्रफल सोलह-गुना होकर चौंतीस लाख छप्पन हजार करोड़ योजन अधिक है ३४५६००००००००००। यहाँसे आगे अधस्तन समुद्रके क्षेत्रफलसे अनन्तर उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यन्त क्रमशः सोलह-गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत चौंतीस लाख छप्पन हजार करोड़ योजनोंसे भी चौगुना होता गया है।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल $३ \times (५००००)^२$ वर्ग योजन है। जिसका मान १ खण्ड शलाका है। इसप्रकार लवणसमुद्रकी २४, कालोदककी ६७२, पुष्करवरसमुद्रकी ११९०४ और वारुणीवरसमुद्रकी १९५०७२ खण्ड-शलाकाएँ हैं।

लवणसमुद्रके (२४ खं० श० स्वरूप) क्षेत्रफलसे कालोदक-समुद्रका क्षेत्रफल २८ गुना है। यथा—

कालोदकका क्षेत्रफल ६७२ खं० श० प्रमाण = (२४ खं० श० × २८)

कालोदके क्षेत्रफलसे पुष्करवरसमुद्रका (११९०४ खण्डशलाका स्वरूप) क्षेत्रफल १७ गुनेसे $३६ \times (१०)^{११}$ वर्ग योजन अधिक है। जो ११९०४—(६७२ × १७) = ४८० खं० श० प्रमाण है। यथा—

$११९०४ = (६७२ \times १७ \text{ खं० श०}) + [४८० \times ३ \ (५००००)^२]$

$= (६७२ \times १७ \text{ खं० श०}) + ४८० \times ७५०००००००० \text{ वर्ग यो०}$।

$= ६७२ \times १७ \text{ खं० श०} + ३६०००००००००००० \text{ वर्ग योजन}$।

पुष्करवर समुद्रके क्षेत्रफलसे वारुणीवरसमुद्रका (१९५०७२ खण्ड शलाका स्वरूप) क्षेत्रफल १६ गुनेसे $३४५६ \times (१०)^{१०}$ वर्गयोजन अधिक है। जो १९५०७२—(११९०४ × १६) = ४६०८ खण्डशलाका प्रमाण है। यथा—

$१९५०७२ = (११९०४ \times १६ \text{ खं० श०}) + [४६०८ \times ३ \ (५००००)^२]$

$= (११९०४ \times १६ \text{ खं० श०}) + ४६०८ \times ७५०००००००० \text{ वर्ग यो०}$

$= ११९०४ \times १६ \text{ खं० श०} + ३४५६०००००००००० \text{ वर्ग योजन}$।

इससे आगे अधस्तन समुद्रके क्षेत्रफलसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल अन्तिम समुद्र पर्यन्त क्रमशः १६ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत $३४५६ \times (१०)^{१०}$ वर्ग योजनोंसे भी चौगुना होता गया है। यथा—

मानलो—क्षीरवरसमुद्र इष्ट है। इसका विस्तार ५१२०००००० यो० और खण्डशलाकाएं ३११३९५८४ हैं।

३११३९५८४—(१९५०७२ × १६ खं० श०)=१८४३२ खं० श० वारुणी० समुद्र से अधिक हैं।

३११३९५८४=(१९५०७२ × १६ खं० श०)+[१८४३२ × ३ (५००००)^{२}]

=(१९५०७२ × १६ खं० श०)+१३८२२४०००००००००० वर्ग यो० है।

क्षीरवर समुद्रका यह १३८२२४ × (१०)^{१०} वर्ग योजन प्रक्षेप वारुणीवर समुद्रके ३४५६ × (१०)^{१०} वर्ग योजनसे ४ गुना है।

तत्थ विक्खंभायाम-खेत्तफलाणं अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—

अर्थ—उनमें विस्तार, आयाम और क्षेत्रफलके अन्तिम विकल्पको कहते हैं—

अहीन्द्रवर समुद्रका विस्तार और आयाम—

अहिंदवरसमुद्दस्स विक्खंभं रज्जूए सोलस-भागं पुणो अट्ठारस-सहस्स सत्तसय-पण्णास-जोयणेहि अब्भहियं होदि। तस्स ठवणा ७ । $\frac{१}{१६}$ । धण जोयणाणि १८७५०।

तस्स आयाम णव रज्जू ठविय सोलस-रूवेहि भजिदमेत्तं पुणो सत्त-लक्ख-एक्कत्तीस-सहस्स बेण्णि-सय-पण्णास जोयणेहि परिहीणं होदि। तस्स ठवणा— ७ । $\frac{९}{१६}$ । रिण जोयणाणि ७३१२५० ॥

अर्थ—अहीन्द्रवर समुद्रका विस्तार राजूका सोलहवां भाग और अठारह हजार सात सौ पचास योजन अधिक है। उसकी स्थापना इसप्रकार है:—राजू $\frac{१}{१६}$+१८७५० यो०।

इस समुद्रका आयाम नौ राजुओंको रखकर सोलहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे सात लाख इकतीस हजार दो सौ पचास योजन हीन है। उसकी स्थापना—$\frac{९}{१६}$ राजू — ७३१२५० योजन॥

विशेषार्थ—अहीन्द्रवरसमुद्रका विस्तार=राजू × $\frac{१}{१६}$ + १८७५० योजन है।

इसी समुद्रका आयाम= ($\frac{\text{राजू}}{१६}$ + १८७५०—१००००००) × ९

= $\frac{९ \text{ राजू}}{१६}$ — (८१२५० × ९)

= $\frac{९ \text{ राजू}}{१६}$ — ७३१२५० योजन।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार और आयाम—

सयंभूरमणसमुद्दस्स विक्खंभं एक्क-सेढिं ठविय अट्ठावीस-रूवेहि भजिदमेत्तं पुणो पंचहत्तरि-सहस्स-जोयणेहि अब्भहियं होदि। तस्स ठवणा—$\frac{—}{२८}$ धण जोयणाणि ७५००० । तस्सेव आयामं णव-सेढिं ठविय अट्ठावीसेहि भजिदमेत्तं, पुणो दोण्णि-लक्ख-पंचवीस-सहस्स-जोयणेहि परिहीणं होदि। तस्स ठवणा— $\frac{९}{२८}$ । रिण जोयणाणि २२५००० ।

अर्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार एक जगच्छ्रेणीको रखकर उसमें अट्ठाईसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना और पचहत्तर हजार योजन अधिक है। उसकी स्थापना—जग॰ $\frac{}{२८}$—७५००० योजन।

उसका आयाम नौ जगच्छ्रेणियोंको रखकर अट्ठाईसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें दो लाख पच्चीस हजार योजन कम है।

उसकी स्थापना—जग॰ $\frac{९}{२८}$ — २२५००० योजन।

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमण समुद्रका विस्तार $=\frac{\text{जग०}}{२८}$ + ७५००० योजन।

स्वयम्भूरमण समुद्रका आयाम $=\left(\frac{\text{जग०}}{२८}+७५०००-१०००००\right)\times ९$

$=\frac{९\ \text{जग०}}{२८}$ — २२५००० योजन।

अहीन्द्रवर समुद्रका क्षेत्रफल —

अहिंदवरसमुद्दस्स खेत्तफलं रज्जूए कदी णव-रूवेहि गुणिय बेसद-छप्पण्ण-रूवेहि भजिदमेत्तं, पुणो एक्क-लक्ख-चालीस-सहस्स-छस्सय-पंचवीस-जोयणेहि गुणिद-मेत्तं रज्जूए चउब्भागं, पुणो एक्क-सहस्स-तिण्णि-सय-एक्कहत्तरि-कोडीओ णव-लक्ख-सत्ततीस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि-परिहीणं होदि। तस्स ठवणा—$\frac{=}{४९}$ । $\frac{९}{२५६}$ । रिण रज्जू $\frac{१}{४}$ । १४०६२५ रिण जोयणाणि १३७१०९३७५०० ।

अर्थ—अहीन्द्रवरसमुद्रका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणाकर दो सौ छप्पनका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे एक लाख चालीस हजार छह सौ पच्चीस योजनोंसे गुणित राजू का चतुर्थ भाग और एक हजार तीन सौ इकहत्तर करोड़ नौ लाख सैंतीस हजार पाँचसौ योजन कम है। स्थापना इसप्रकार है—

$= \frac{९\ रा^{२}}{२५६}$ — (राजू $\frac{१}{४}$ × १४०६२५)—१३७१०९३७५०० ।

विशेषार्थ—महीन्द्रवरसमुद्रका क्षेत्रफल = आयाम × विस्तार

$= (\frac{९}{१६}$ राजू — ७३१२५०) × ($\frac{१}{१६}$ राजू + १८७५०)

$= \frac{९ (राजू)^{२}}{२५६}$ + [राजू { $\frac{९}{१६}$ × १८७५० — $\frac{१}{१६}$ × ७३१२५० }]—७३१२५० × १८७५०

$= \frac{९ (राजू)^{२}}{२५६}$ + [राजू × ($\frac{८४३७५}{८}$ — $\frac{३६५६२५}{८}$)]—१३७१०९३७५०० ।

$= \frac{९ (राजू)^{२}}{२५६}$ — ($\frac{राजू}{४}$ × १४०६२५)—१३७१०९३७५०० वर्ग यो० ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल—

सयंभूरमण-णिण्णग-रमणस्स खेत्तफलं रज्जूए कदी णव-रूवेहि गुणिय सोलस-रूवेहि भजिदमेत्तं, पुणो एक्क-लक्ख-बारस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि (गुणिद-रज्जूए) अब्भहियं, पुणो एक्क-सहस्स-छस्सय-सत्तासीदि-कोडि-पण्णास-लक्ख-जोयणेहि परिहीणं होदि। तस्स ठवणा—$\frac{=}{४६}$ । $\frac{९}{१६}$ धण रज्जू $\bar{७}$ । ११२५०० रिण जोयणाणि १६८७५०००००० ॥

अर्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके सोलहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना होकर एक लाख बारह हजार पाँचसौ योजनोंसे गुणित राजूसे अधिक और एक हजार छह सौ सतासी करोड़ पचास लाख योजन कम है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$\frac{९\ राजू^{२}}{१६}$ + (राजू × ११२५०० यो०) — १६८७५००००००।

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल = आयाम × विस्तार

= ($\frac{९\ जग०}{२८}$—२२५००० यो०) × ($\frac{जग०}{२८}$ + ७५००० यो०)

$= \frac{९ (जग०)^{२}}{(२८)^{२}}$ + जग०[($\frac{९}{२८}$ × ७५०००)–($\frac{१}{२८}$ × २२५०००)]–२२५००० × ७५०००

$= \frac{९ (जग०)^{२}}{(७)^{२} \times (४)^{२}} + \frac{जग०}{७}$ × [१६८७५०—५६२५०]—२२५००० × ७५००० यो० ।

$= \frac{९ (राजू)^{२}}{१६}$ + राजू × ११२५०० यो०—१६८७५०००००० वर्ग योजन ।

अविरेयस्स पमाणं आणयण-हेदुं इमं गाहा-सुत्तं—

वारुणिवराबि-उवरिम-इच्छिय-रयणायरस्स वंदस्सं ।
सत्तावीसं लक्खे गुणिदे, अहियस्स परिमाणं ॥२७२॥

अर्थ—अतिरेकका प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

वारुणीवर समुद्रको आदि लेकर उपरिम इच्छित समुद्रके विस्तारको सत्ताईस लाखसे गुणा करने पर अधिकताका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२७२॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

वर्णित अतिरेक धन = (उपरिम इच्छित समुद्रका विस्तार) × २७००००० ।

उदाहरण—मानलो—यहाँ क्षीरवरसमुद्रका अतिरेक धन प्राप्त करना इष्ट है । जिसका विस्तार ५१२०००००० योजन है अतः क्षीर० स० का अतिरेक धन = ५१२०००००० × २७००००० ।
= १३८२४०००००००००० योजन ।

पन्द्रहवाँ-पक्ष

अधस्तनसमुद्रके (पिण्डफल + प्रक्षेपभूत) क्षेत्रफलसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल कितना होता है ?

पण्णारस-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो—तं जहा—लवणसमुद्दस्स खेत्तफलादो कालोदगसमुद्दस्स खेत्तफलं अट्ठावीस-गुणं । लवणसमुद्द-सहिद-कालोदगसमुद्दस्स खेत्तफलादो पोक्खरवरसमुद्दस्स खेत्तफलं सत्तारस-गुणं होऊण चउवण्ण-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होदि ५४००००००००००० । लवण-कालोदग-सहिद-पोक्खरवर-समुद्दस्स खेत्तफलादो वारुणिवर-णीररासिस्स खेत्तफलं पण्णारस-गुणं होऊण पणदाल-लक्ख-चउवण्ण-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होइ ४५५४०००००००००००० । एवं वारुणिवरणीररासिप्पहुदि-हेट्ठिम-णीररासीणं खेत्तफल-समूहादो उवरिम-णिण्णगणाहस्स खेत्तफलं पत्तेय पण्णारस-गुणं पक्खेवभूद-पणदाल-लक्ख-चउवण्ण-सहस्स-कोडीओ चउग्गुणं होऊण पुणो एक्क-लक्ख-बासट्ठि-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होइ १६२०००००००००००० । एवं णेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।

अर्थ—पन्द्रहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इस प्रकार है–लवणसमुद्रके क्षेत्रफल से कालोदकसमुद्रका क्षेत्रफल अट्ठाईस-गुणा है। लवणसमुद्र सहित कालोदक समुद्रके क्षेत्रफलसे पुष्करवरसमुद्रका क्षेत्रफल सत्तरह-गुणा होकर चौवन हजार करोड़ योजन अधिक है ५४०००००००००० । लवण एवं कालोद सहित पुष्करवरसमुद्रके क्षेत्रफलसे वारुणीवर-समुद्रका क्षेत्रफल पन्द्रह गुना होकर पैंतालीस लाख चौवन हजार करोड़ योजन अधिक है ४५५४०००००००००००। इसप्रकार वारुणीवरसमुद्रसे सब अधस्तन समुद्रोंके क्षेत्रफल समूहसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल प्रत्येक पन्द्रह-गुणा होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत पैंतालीस-लाख चौवन हजार करोड़ योजनोंसे चौगुणा होकर एक लाख बासठ हजार करोड़ योजन अधिक है १६२०००००००००००। इसप्रकार यह क्रम स्वयम्भूरमण-समुद्र पर्यन्त जानना चाहिए ॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके क्षेत्रफलसे कालोदकका क्षेत्रफल २८ गुना है। यथा—

=६७२=२४ × २८ खण्डशलाका स्वरूप है।

लवणसमुद्र और कालोदकके (२४+६७२=६९६ खण्डशलाकारूप) क्षेत्रफलसे पुष्कर वर समुद्रका (११९०४ खं० श० रूप) क्षेत्रफल १७ गुना होकर [११९०४—(६९६ × १७)=७२ खं० श० रूप] $५४ \times (१०)^{१०}$ वर्ग योजन अधिक है। यथा—

वृद्धि सहित क्षेत्रफल ११९०४=(६९६ × १७ खं० श०)+(७२ × ७५००००००००)

=(६९६ × १७ खं० श०)+५४०००००००००० वर्ग योजन।

लवणसमुद्र, कालोदक और पुष्करवरसमुद्रके (२४+६७२+११९०४=१२६०० खं० श० रूप) क्षेत्रफलसे वारुणीवर समुद्रका (१९५०७२ खं० श० रूप) क्षेत्रफल १५ गुना होकर [१९५०७२—(१२६०० × १५)=६०७२ । खं० श० रूप)] $४५५४ \times (१०)^{१०}$ वर्ग योजन अधिक है। यथा—

वृद्धि सहित क्षेत्रफल १९५०७२ खं० श० रूप=(१२६०० × १५ खं० श०)+[६०७२ खं० श० × ७५ × $(१०)^{८}$]

=(१२६०० × १५ खं० श०)+४५५४०००००००००००० वर्ग यो०।

इसप्रकार वारुणीवर समुद्रसे लेकर सर्व अधस्तन समुद्रोंके क्षेत्रफल समूहसे उपरिम समुद्रका क्षेत्रफल प्रत्येक १५ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत $४५५४ \times (१०)^{१०}$ से ४ गुना होकर $१६२ \times (१०)^{१०}$ वर्ग योजन अधिक है। यथा—

वारुणीवरसमुद्रसे उपरिम क्षीरवर समुद्रका विस्तार ५१२ लाख योजन है और इसकी खं० श० ३१३९५८४ हैं। जो लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र, पुष्करवरसमुद्र और वारुणीवर समुद्रकी

(२४+६७२+११९०४+१९५०७२)=२०७६७२ सम्मिलित खण्डशलाकाओंसे १५ गुना होकर [३११३९५८४—(२०७६७२×१५)+२४५०४ खण्ड श० रूप] ४५५४×(१०)^१० वर्ग योजनका ४ गुना होते हुए १६२×(१०)^१० वर्ग योजन अधिक है। यथा—

क्षी० स० का क्षेत्र० ३११३९५८४ खं० श० रूप=(२०७६७२ खं० श०×१५) +(२४५०४ खं० श०) है।

अथवा

२०७६७२×१५=३११५०८० खं० श० रूप क्षेत्रफल+[४५५४×(१०)^१०×४= १८२१६×(१०)^१०]+१६२०००००००००० वर्ग यो० है।

अधिक धन प्राप्त करनेकी दूसरी विधि—

क्षीरवर समुद्रके क्षेत्रफलमें अधिक धनका प्रमाण १६२०००००००००० वर्ग योजन प्रमाण है। इस अधिक धनकी एक शलाका मानकर उपरिम समुद्रका अधिक धन अधस्तन समुद्रकी शलाकासे १ अधिक ४ गुना होता है। इसका सूत्र इसप्रकार है—

इष्ट स० का अधिक धन=[(अधस्तन स० की शलाका×४)+१]×१६२×(१०)^१०

घृतवरसमुद्रका अधिक धन=[(१×४)+१]×१६२×(१०)^१०

=५×१६२×(१०)^१०=८१०००००००००००० वर्ग योजन है।

लवणसमुद्रसे अहीन्द्रवरसमुद्र पर्यन्तके सब समुद्रोंके क्षेत्रफलका प्रमाण—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंभूरमण-णिण्णग-णाहादो हेट्ठिम-सव्व-णीररासीणं खेत्तफल-पमाणं रज्जूए वग्गं ति-गुणिय असीदि-रूवेहि भजिदमेत्तं, पुणो एक्क-सहस्स-छस्सय-सत्तसीदि-कोडि-पण्णास[1]-लक्ख-जोयणेहि अब्भहियं होदि पुणो बावण्ण-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि गुणिद-रज्जूहि परिहीणं होदि। तस्स ठवणा—= ४६ । ३ ८० । धण जोयणाणि १६८७५०००००० रिण रज्जूओ ७ ५२५००।

अर्थ—इसमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—

स्वयम्भूरमणसमुद्रके नीचे अधस्तन सब समुद्रोंके क्षेत्रफलका प्रमाण राजूके वर्गको तीनसे गुणा करके अस्सीका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतने प्रमाण होकर एक हजार छह सौ सतासी

---

१. द. ब. क. ज. पण्णारस।

करोड़ पचास लाख योजन अधिक और बावन हजार पाँच सौ योजनोंसे गुणित राजूसे हीन है। उसकी स्थापना—

$$\left(\frac{(\text{राजू})^2 \times ३}{८०}\right) + १६८७५०००००० \text{ वर्ग योजन} - \text{राजू} \times ५२५०० \text{ वर्ग यो०} \;॥$$

स्वयम्भूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल--

सयंभूरमणसमुद्दस्स खेत्तफलं रज्जूए वग्गं णव-रूवेहि गुणिय सोलस-रूवेहि भजिदमेत्तं, पुणो एक्क-लक्खं बारस-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि गुणिद-रज्जू-अब्भहियं होइ, पुणो पण्णास-लक्ख-सत्तासीदि-कोडि-अब्भहिय-छस्सय-एक्क-सहस्स-कोडि-जोयणेहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा — $\frac{=}{४९}$ । $\frac{९}{१६}$ । धण $\bar{७}$ । ११२५०० रिण १६८७५०००००० ।

अर्थ—स्वयम्भूरमणसमुद्रका जो क्षेत्रफल है उसका प्रमाण राजूके वर्गको नौसे गुणा करके सोलहका भाग देनेपर जो प्राप्त हो उतना होनेके अतिरिक्त एक लाख बारह हजार पाँच सौ योजनोंसे गुणित राजूसे अधिक और एक हजार छह सौ सतासी करोड़ पचास लाख योजन कम है। उसकी स्थापना—

$$= \frac{(\text{राजू})^2 \times ९}{१६} + (\text{राजू} \times ११२५०० \text{ वर्ग यो०}) - १६८७५०००००० \text{ वर्ग यो०} \;।$$

तव्वड्ढीणं आणयण-हेदुमिमं गाहा-सुत्तं—

तिय-लक्खूणं अंतिम-रुंदं णव-लक्ख-रहिद-आयामो ।
पण्णरस-हिदे संगुण-लद्धं हेट्ठिल्ल-सव्व-उवहि-फलं ॥२७३॥

अर्थ—इन वृद्धियोंको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

तीन लाख कम अन्तिम विस्तार और नौ लाख कम आयामको परस्पर गुणित करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसमें पन्द्रहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना अधस्तन सब समुद्रोंका क्षेत्रफल होता है ॥२७३॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\left.\begin{array}{l}\text{अधस्तन समस्त}\\ \text{समुद्रोंका क्षेत्रफल}\end{array}\right\} = \frac{(\text{इष्ट समुद्रका विस्तार} - ३००००००) \times (\text{आयाम} - ९००००००)}{१५}$$

उदाहरण—१. पुष्करवर समुद्रका विस्तार ३२००००० योजन और आयाम २७९००००० योजन है।

$$\text{वर्णित क्षेत्रफल} = \frac{(\text{३२०००००}-\text{३०००००})\times(\text{२७९०००००}-\text{९०००००})}{\text{१५}}$$

$$= \frac{\text{२९०००००}\times\text{२७००००००}}{\text{१५}} = \text{५२२००००००००००० वर्ग योजन।}$$

यह पुष्करवर समुद्रके पूर्व स्थित लवण और कालोदसमुद्रका सम्मिलित क्षेत्रफल है।

२. स्वयम्भूरमणसमुद्रसे अधस्तन समस्त समुद्रोंका क्षेत्रफल—

$$\text{स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार} = \frac{\text{राजू}}{\text{४}} + \text{७५००० योजन।}$$

$$\text{स्वयम्भूरमणसमुद्रका आयाम} = \frac{\text{९ राजू}}{\text{४}} - \text{२२५००० योजन।}$$

$$\left.\begin{array}{l}\text{स्वयं० समुद्रसे अधस्तन}\\ \text{समुद्रों का क्षेत्रफल}\end{array}\right\} = \frac{\left[\frac{\text{राजू}}{\text{४}}+\text{७५०००}-\text{३००००००}\right]\times\left[\frac{\text{९राजू}}{\text{४}}-\text{२२५०००यो०}-\text{९०००००}\right]}{\text{१५}}$$

$$= \frac{\left[\frac{\text{राजू}}{\text{४}}-\text{२२५०००}\right]\times\left[\frac{\text{९राजू}}{\text{४}}-\text{११२५०००}\right]}{\text{१५}}$$

$$= \frac{\frac{\text{९ राजू}^{\text{२}}}{\text{१६}}-\frac{\text{राजू}}{\text{४}}\left[\text{९}\times\text{२२५०००}\times\text{११२५००० यो०}\right]+(\text{२२५०००}\times\text{११२५००० यो०})}{\text{१५}}$$

$$= \frac{\text{३ (राजू)}^{\text{२}}}{\text{१६}\times\text{५}} - \frac{\text{७८७५०० राजू}}{\text{१५}}\text{ यो०} + \frac{\text{२५३१५}\times(\text{१०})^{\text{६}}}{\text{१५}}\text{ वर्ग योजन।}$$

$$= \frac{\text{३ (राजू)}^{\text{२}}}{\text{८०}} - \text{५२५०० राजू यो०} + \text{१६८७५}\times\text{१०}^{\text{६}}\text{ वर्ग योजन।}$$

यहां राजू × योजन का अर्थ है राजुओंका योजनोंके साथ गुणा करना।

सादिरेय-पमाणमाणयण-णिमित्तं गाहा-सुत्तं—

तिविहं सूइ-समूहं, वारुणिवर-उवहि-पहुदि-उवरिल्लं।
चउ-लक्ख-गुणं अहियं, अट्ठरस-सहस्स-कोडि-परिहीणं ॥२७४॥

अर्थ—सातिरेक प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

वारुणीवरसमुद्र आदि उपरिम समुद्रकी तीनों प्रकारकी सूचियोंके समूहको चार लाखसे गुणा करके प्राप्त राशिमेंसे अठारह हजार करोड़ कम कर देनेपर अधिकताका प्रमाण आता है ॥२७४॥

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

वर्णित सातिरेकता = (समुद्रकी तीनों सूचियोंका योग) × ४०००००—१८ × $(१०)^{१०}$

उदाहरण—

वारुणीवर समुद्र सम्बन्धी सातिरेकता } = (२५३०००००+३८१००००० + ५०९०००००) × ४०००००

—१८०००००००००० ।

=४५५४०००००००००० वर्ग योजन ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रकी अभ्यन्तर सूची $\frac{१}{२}$ राजू—१५०००० योजन है, मध्यम सूची $\frac{३}{४}$ राजू—७५००० यो० और बाह्य सूची १ राजू प्रमाण है। इन सूचियोंके सम्बन्धसे उक्त—

समुद्र सम्बन्धी सातिरेकता } = [($\frac{१}{२}$ रा०—१५००००) + ($\frac{३}{४}$ रा०—७५००० यो०) + (१ राजू)] ×

४०००००—१८ × $(१०)^{१०}$ यो० ।

= [$\frac{१}{२}$ रा० + $\frac{३}{४}$ रा० + १ रा०) — २२५००० यो० | × ४०००००—

१८०००००००००० यो० ।

= $\frac{९}{४}$ राजू × ४०००००)—९०००००००००० — १८०००००००००० योजन ।

= ९००००० राजू—२७ × $(१०)^{१०}$ यो० ।

अधस्तन समुद्रोंके क्षेत्रफलका प्रमाण—

= [$\frac{३}{८०}$ × $(\text{राजू})^{२}$—५२५०० रा० × यो० + १६८७५ × $(१०)^{८}$ वर्ग यो०] है।

इसमें १५ का गुणाकर उपर्युक्त सातिरेकताका प्रमाण जोड़ देनेपर स्वयंभूरमणसमुद्रका क्षेत्रफल प्राप्त होता है। यथा—

स्वयं० स० का क्षेत्र० = [$\frac{३}{८०}$ राजू^{२} — ५२५०० रा० × यो० + १६८७५ × $(१०)^{८}$] × १५ +

९००००० रा०—२७ × $(१०)^{१०}$ वर्ग योजन

$=\frac{९}{१६}$ राजू^{२} — (५२५०० रा० यो० × १५ — ९०००० राजू) + [१६८७५ × १५ × (१०)^{६} — २७ × (१०)^{१०}] वर्ग यो०

$=\frac{९}{१६}$ राजू^{२} — (७८७५०० — ९०००००) रा० यो० + (२५३१२५०००००० — २७००००००००००)

$=\frac{९}{१६}$ राजू^{२} + ११२५०० राजू × यो० — १६८७५०००००० वर्ग योजन ।

सोलहवाँ-पक्ष

अधस्तन द्वीपके विष्कम्भ और आयामसे उपरिम द्वीपका विष्कम्भ और आयाम कितना अधिक होता हुआ गया है ? उसे कहते हैं—

सोलसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—धादईसंडदीवस्स विक्खंभं चत्तारि-लक्खं, आयामं सत्तावीस-लक्खं । पोक्खरवरदीव-विक्खंभं सोलस-लक्खं, आयामं पणतीस-लक्ख-सहिय-एय-कोडि-जोयण-पमाणं । वारुणिवरदीव-विक्खंभं चउसट्ठि-लक्खं, आयामं सत्तसट्ठि-लक्ख-सहिय-पंच-कोडीओ । एवं हेट्ठिम-विक्खंभादो उवरिम-विक्खंभं चउग्गुणं, आयामादो आयामं चउग्गुणं सत्तावीस-लक्खेहि अब्भहियं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणदीओ त्ति ।।

अर्थ—सोलहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इसप्रकार है—धातकीखण्डद्वीपका विस्तार चार लाख और आयाम सत्ताईस लाख योजन है । पुष्करवरद्वीपका विस्तार सोलह लाख और आयाम एक करोड़ पेंतीस लाख योजन है । वारुणीवरद्वीपका विस्तार चौंसठ लाख और आयाम पाँच करोड़ सड़सठ लाख योजन है । इसप्रकार अधस्तन द्वीपके विस्तारसे तदनन्तर उपरिम द्वीपका विस्तार चौगुना और आयामसे आयाम चौगुना होनेके अतिरिक्त सत्ताईस लाख योजन अधिक होता हुआ स्वयम्भूरमण-द्वीप पर्यन्त चला गया है ।

विशेषार्थ—अधस्तन द्वीपकी अपेक्षा उपरिम द्वीपका विस्तार ४ गुना होता हुआ जाता है । यथा—

धातकी० द्वीपका वि० ४००००० यो० = (जम्बूद्वीपका वि० १०००००) × ४

पुष्कर० द्वीपका वि० १६००००० यो० = (धातकी०का विस्तार ४०००००) × ४

वारुणी० द्वीपका वि० ६४००००० यो०=(पुष्कर० का विस्तार १६०००००)×४ आदि

अधस्तन द्वीपके आयामकी अपेक्षा उपरिम द्वीपका आयाम चौगुना होनेके अतिरिक्त २७००००० योजन अधिक होता हुआ जाता है। यथा—

धातकी० द्वीपका आयाम २७००००० यो०=(४००००० — १०००००)×९

पुष्कर० द्वीपका आयाम १३५००००० यो०=(२७०००००×४)+२७००००० यो०।

वारुणी० द्वीपका आयाम ५६७००००० यो०=(१३५०००००×४)+२७००००० यो० आदि।

अधस्तनद्वीपके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीपका क्षेत्रफल—

धादईसंडदीव-खेत्तफलादो पोक्खरवरदीवस्स खेत्तफलं बीस-गुणं। पुक्खरवर-दीवस्स खेत्तफलादो वारुणीवरदीवस्स खेत्तफलं सोलस-गुणं होऊण सत्तारस-लक्ख-अट्ठावीस-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होइ १७२८०००००००००००। एवं हेट्ठिम-दीवस्स खेत्तफलादो तदणंतरोवरिम-दीवस्स खेत्तफलं सोलस-गुणं पक्खेवभूद-सत्तारस-लक्ख-अट्ठावीस-सहस्स-कोडीओ चउग्गुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभूरमणदीओ त्ति ॥

अर्थ—धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल बीस-गुना है। पुष्करवर-द्वीपके क्षेत्रफलसे वारुणीवर द्वीपका क्षेत्रफल सोलह गुना होकर सत्तरह लाख अट्ठाईस हजार करोड़ वर्ग योजन अधिक है १७२८०००००००००००। इसप्रकार स्वयम्भूरमण-द्वीप पर्यन्त अधस्तन द्वीपके क्षेत्रफलसे अनन्तर उपरिम द्वीपका क्षेत्रफल सोलह गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत सत्तरह लाख अट्ठाईस हजार करोड़ योजनोंसे चौगुना होता गया है ॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल $७५\times(१०)^{९}$ वर्ग योजन है। इसकी एक शलाका मानी गई है। इसी मापके अनुसार धातकी खण्डकी १४४, पु० द्वीपकी २८८० और वारुणी० द्वीपकी ४८३८४ खण्डशलाकाएँ हैं।

धातकीखण्डद्वीपके क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल २० गुना है। यथा—

पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल २८८० खं० श० प्रमाण=१४४×२०।

पुष्करवरद्वीपके क्षेत्रफलसे वारुणीवरद्वीपका क्षेत्रफल १६ गुना होकर $१७२८\times(१०)^{१०}$ वर्ग यो० अधिक है। जो ४८३८४ — (२८८०×१६ खं० श०)=२३०४ खंड श० प्रमाण है। यथा—

४८३८४=(२८८० × १६ खं० श०)+[२३०४ खं० श० × ७५ × $(१०)^{८}$]

=२८८० × १६+१७२८०००००००००० वर्ग योजन।

इससे आगे अधस्तन द्वीपके क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीपका क्षेत्रफल अन्तिम द्वीप पर्यन्त क्रमशः १६ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत १७२८ × $(१०)^{१०}$ वर्ग योजनोंसे भी चौगुना होता गया है। यथा—

मानलो—क्षीरवरद्वीप इष्ट है। इसका विस्तार २५६ लाख योजन और खण्डशलाकाएँ ७८३३६० हैं—

७८३३६० खं० श० — (४८३८४ × १६ खं० श०)=९२१६ खं० श० वारुणी० द्वीपसे अधिक हैं

७८३३६०=(४८३८४ × १६ खं० श०)+(९२१६ × ७५ × $(१०)^{८}$

=(४८३८४ × १६ खं० श०)+६९१२०००००००००० वर्ग योजन।

क्षीरवरद्वीपका यह ६९१२ × (१०)^{१०} वर्ग योजन प्रक्षेप वारुणीवरद्वीपके १७२८ × $(१०)^{१०}$ वर्ग योजनसे ४ गुना है।

एत्थ विक्खंभायाम-खेत्तफलाणं अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—

अर्थ—उनमें विस्तार, आयाम और क्षेत्रफलका अन्तिम विकल्प कहते हैं—

महीन्द्रवरद्वीपका विस्तार और आयाम—

अहिंदवरदीवस्स विक्खंभं रज्जूए बत्तीसम-भागं, पुणो णव-सहस्स-तिण्णि-सय-पंचहत्तरि-जोयणेहि अब्भहियं होदि। आयामं णव-रज्जू ठविय बत्तीस-रूवेहि भागं घेत्तूण पुणो अट्ठ-लक्ख-पण्णारस-सहस्स-छस्सय-पणवीस-जोयणेहि परिहीणं होइ। तस्स ठवणा— ७ । ३२ धण जोयणाणि ९३७५। आयामं ७ । $\frac{९}{३२}$ । रिण जोयणाणि ८१५६२५।

अर्थ—अहीन्द्रवरद्वीपका विस्तार राजूके बत्तीसवें भाग और नौ हजार तीन सौ पचहत्तर योजन अधिक है तथा इसका आयाम नौ राजुओंको रखकर बत्तीसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे आठ लाख पन्द्रह हजार छह सौ पच्चीस योजन हीन है। उसकी स्थापना इसप्रकार है—

विस्तार=राजू $\frac{१}{३२}$+९३७५ यो०। आयाम=राजू $\frac{९}{३२}$ — ८१५६२५ यो०।

विशेषार्थ—अहीन्द्रवरद्वीपका विस्तार=राजू × $\frac{१}{३२}$ + ९३७५ योजन।

इसी द्वीपका आयाम=(राजू × $\frac{१}{३२}$+९३७५ — १०००००) × ९

=$\frac{९ \text{ राजू}}{३२}$—(९०६२५ × ९)=$\frac{९ \text{ राजू}}{३२}$—८१५६२५ योजन।

अहीन्द्रवर द्वीपका क्षेत्रफल—

अहिंदवरदीवस्स खेत्तफलं रज्जूए वग्गं णव-रूवेहि गुणिय एक्क-सहस्स-चउवीस रूवेहि भजिदमेत्तं, पुणो रज्जूए सोलसम-भागं ठविय तिण्ण-लक्ख-पंच-सट्ठि-सहस्स-छस्सय-पणवीस-जोयणेहि गुणिदमेत्तं परिहीणं होदि, पुणो सत्तसय-चउसट्ठि-कोडि-चउसट्ठि-लक्ख-चउसीदि-सहस्स-ति-सय-पंचहत्तरि-जोयणेहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा— $\frac{=}{४९}$ । $\frac{९}{१०२४}$ रिण रज्जूओ $\bar{७}$ । $\frac{३६५६२५}{१६}$ रिण जोयणाणि ७६४६४८४३७५ ।

अर्थ—अहीन्द्रवरद्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके एक हजार चौबीसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे, राजूके सोलहवें भागको रखकर तीन लाख पैंसठ हजार छह सौ पच्चीस योजनोंसे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उतना कम है, पुनः सातसौ चौंसठ करोड़ चौंसठ लाख चौरासी हजार तीन सौ पचहत्तर योजन कम हैं । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

$\frac{९ \text{ राजू}^2}{१०२४}$—(रा० $\frac{१}{१६}$ × ३६५६२५ यो०)—७६४६४८४३७५ ।

विशेषार्थ—अहीन्द्रवरद्वीपका क्षेत्रफल = विस्तार × आयाम ।

$= (\frac{\text{राजू}}{३२} + १३७५) \times (\frac{९ \text{ राजू}}{३२} — ८१५६२५ \text{ यो०})$

$= \frac{९ (\text{राजू})^2}{(३२)^2} + \frac{\text{राजू}}{३२} \times [(१३७५ \times ९) — ८१५६२५ \text{ यो०}] — १३७५ \times ८१५६२५ \text{ वर्ग यो०}$ ।

$= \frac{९ \text{ राजू}^2}{(३२)^2} — \frac{\text{राजू}}{३२} \times ७३१२५० \text{ यो०} — ७६४६४८४३७५ \text{ वर्ग यो०}$ ।

$= \frac{९ \text{ राजू}^2}{(३२)^2} — \frac{\text{राजू}}{१६} \times ३६५६२५ \text{ यो०} — ७६४६४८४३७५ \text{ वर्ग योजन}$ ।

स्वयम्भूरमणद्वीपका विस्तार एवं आयाम—

सयंभूरमणदीवस्स विक्खंभं रज्जूए अट्ठम-भागं पुणो सत्तत्तीस-सहस्स-पंचसय-जोयणेहि अब्भहियं होदि, आयामं पुणो णव-रज्जूए अट्ठम-भागं पुणो पंच-लक्ख-बासट्ठि-सहस्स-पंच-सय-जोयणेहि परिहीणं होइ । तस्स ठवणा — $\bar{७}$ । $\frac{१}{८}$ धण जोयणाणि ३७५०० । आयाम $\bar{७}$ । $\frac{९}{८}$ रिण जोयणाणि ५६२५०० ॥

अर्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका विस्तार राजूका आठवाँ भाग होकर सैंतीस हजार पाँच सौ योजन अधिक है और इसका आयाम नौ राजुओंके आठवें भागमेंसे पाँच लाख बासठ हजार पाँच सौ योजन हीन है । उसकी स्थापना इसप्रकार है—

वि० = $\frac{१}{८}$ राजू + ३७५०० यो० । आयाम = $\frac{९}{८}$ राजू — ५६२५०० यो० ॥

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका विस्तार $= \frac{\text{राजू}}{८} + ३७५००$ योजन।

स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम $= \left(\frac{\text{राजू}}{८} + ३७५०० - १००००० \right) \times ९$

$= \frac{९ \text{ रा०}}{८} - ५६२५००$ योजन है।

स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल—

पुणो खेत्तफलं रज्जूए कदी णव-रूवेहि गुणिय चउसट्ठि-रूवेहि भजिदमेत्तम्मि-पुणो रज्जू ठविय अट्ठावीस-सहस्स-एक्कसय-पंचवीस-रूवेहि गुणिदमेत्तं, पुणो पण्णास-सहस्स-सत्ततीस-लक्ख-णव-कोडि-अब्भहिय-दोण्णि-सहस्स-एक्कसय-कोडि-जोयणं एदेहि[1] दोहि रासीहि परिहीणं पुव्विल्ल-रासी होदि। तस्स ठवणा— $\frac{=}{४९}$ । $\frac{९}{६४}$ रिण रज्जूओ $\overline{७}$ । २८१२५ रिण जोयणाणि २१०९३७५०००० ॥

अर्थ—पुनः इस (स्वयम्भूरमण) द्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके प्राप्त राशिमें चौंसठका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे, राजूको स्थापित करके अट्ठाईस हजार एक सौ पच्चीससे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसे और दो हजार एकसौ नौ करोड़ सेंतीस लाख पचास हजार योजन, इन दो राशियोंको कम कर देनेपर अवशिष्ट पूर्वोक्त राशि प्रमाण है। उसकी स्थापना इसप्रकार है— $\frac{९ \text{ राजू}^2}{६४} - (\text{रा० } १ \times २८१२५ \text{ यो०}) - २१०९३७५००००$ ॥

विशेषार्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल = विस्तार × आयाम इस द्वीपका विस्तार = $\frac{\text{राजू}}{८} + ३७५००$ योजन है और आयाम = $\frac{९ \text{ राजू}}{८} - ५६२५००$ यो० है।

इस द्वीपका क्षेत्रफल $= \left(\frac{\text{राजू}}{८} + ३७५०० \text{ यो०}\right) \times \left(\frac{९ \text{ रा०}}{८} - ५६२५०० \text{ यो०}\right)$

$= \frac{९ \text{ राजू}^2}{६४} + \frac{\text{राजू}}{८} [९ \times ३७५०० - ५६२५०० \text{ यो०}] - ३७५०० \times ५६२५००]$

$= \frac{९ \text{ राजू}^2}{६४} + (\text{राजू} \times २८१२५ \text{ यो०}) - २१०९३७५००००$ वर्ग यो०।

$= \frac{९}{६४}$ राजू^{2} — २८१२५ राजू यो० — २१०९३७५०००० वर्ग योजन।

---

१. द. एदे हुदा, ब. एदे हवाह।

अदिरेयस्स पमाणाणयण-हेदुमिमा सुत्त-गाहा—

सग-सग-मज्झिम-सूई, णव-लक्ख-गुणं पुणो वि मिलिदव्वं ।
सत्तावीस - सहस्सं, कोडीओ तं हवेदि अदिरेगं ।।२७५।।

अर्थ—अतिरेकका प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

अपनी-अपनी मध्यम-सूचीको नौ लाखसे गुणा करके उसमें सत्ताईस हजार करोड़ और मिला देनेपर वह अतिरेक-प्रमाण होता है ।।२७५।।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

अतिरेक का प्रमाण=(निज मध्यम सूची × ९०००००) + २७ × (१०)^{१०} वर्ग योजन ।

उदाहरण—(१) वारुणीवरद्वीपकी मध्यम सूचीका प्रमाण १८९ ला० योजन है ।

वारुणी० द्वीप सम्बन्धी अतिरेक-प्रमाण=(१८९००००० × ९०००००) + २७०००००००००० वर्ग योजन ।

=१७२८०००००००००० वर्ग योजन है ।

(२) स्वयम्भूरमणद्वीपकी मध्यम सूचीका प्रमाण ($\frac{३}{८}$ रा०—१८७५०० यो०) है ।

इसके अतिरेक प्रमाण=[($\frac{३}{८}$ रा०—१८७५०० यो०) × ९०००००]+२७ × (१०)^{१०} वर्ग यो०

=($\frac{३}{८}$ रा० × ९००००० यो०) — (१८७५०० × ९०००००) + २७०००००००००० वर्ग योजन

=$\frac{२७०००००}{८}$ रा० यो० — १६८७५०००००००० + २७०००००००००० वर्ग यो०

=३३७५०० रा० यो० + १०१२५०००००००० वर्ग योजन है ।

इस अतिरेकके प्रमाणमें अहीन्द्रवरद्वीपका १६ गुना क्षेत्रफल जोड़ देनेपर स्वयम्भूरमण-द्वीपका क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है । यथा—

(अहीन्द्रवर द्वीपका १६ गुना क्षेत्रफल=$\frac{९}{६४}$ राजू^{२} — ३६५६२५ रा० यो० — १२२३४३७५०००० वर्ग यो०) + (अतिरेकका प्रमाण=३३७५०० रा० यो० + १०१२५००००००० वर्ग यो०) ।

$=\frac{९}{६४}$ राजू² — २८१२५ रा० यो० — २१०६३७५०००० वर्ग योजन स्वयम्भूरमण द्वीपका क्षेत्रफल है।

सत्तरहवाँ–पक्ष

अधस्तन द्वीपके (पिण्डफल + प्रक्षेपभूत) क्षेत्रफलसे उपरिम द्वीप का क्षेत्रफल
कितना होता है ?

सत्तारसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो । तं जहा—धादईसंड-खेत्तफलादो पुक्खरवरदीवस्स खेत्तफलं बीस-गुणं । धादईसंड - सहिद - पोक्खरवरदीव - खेत्तफलादो वारुणिवर-खेत्तफलं सोलस-गुणं । धादईसंड-पोक्खरवरदीव-सहिय-वारुणिवरदीव-खेत्त-फलादो खीरवरदीव-खेत्तफलं पण्णारस-गुणं होऊण सीदि-सहस्स-सहिय-एक्काणउदि-लक्ख-कोडीओ अब्भहियं होइ ९१८०००००००००० । एवं खीरवर-दीव-प्पहुदि अब्भंतरिम-सव्व-दीव णउदि-लक्ख-कोडीओ चउग्गुणं होऊण एयलक्ख-अट्ठ[1]-सहस्स-कोडि-जोयणेहि अब्भहियं होइ १०८०००००००००० । एवं णेदव्वं जाव सयंभूरमण-दीओ त्ति ॥

अर्थ—सत्तरहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है—धातकीखण्डके क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल बीस गुना है। धातकीखण्ड सहित पुष्करवरद्वीपके क्षेत्रफलसे वारुणीवर-द्वीपका क्षेत्रफल सोलह गुना है। धातकीखण्ड और पुष्करवरद्वीप सहित वारुणीवरद्वीपके क्षेत्रफलसे क्षीरवरद्वीपका क्षेत्रफल पन्द्रह गुना होकर इक्यानबै लाख अस्सी हजार करोड़ योजन अधिक है ९१८०००००००००० । इसप्रकार क्षीरवर आदि अभ्यन्तर सब द्वीपोंके क्षेत्रफलसे अनन्तर बाह्य भागमें स्थित द्वीपका क्षेत्रफल पन्द्रह गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत इक्यानबै लाख अस्सी हजार करोड़ चौगुने होकर एक लाख आठ हजार करोड़ योजनोंसे अधिक है १०८०००००००००० । यह क्रम स्वयम्भूरमणद्वीप पर्यन्त जानना चाहिए।

विशेषार्थ—धातकीखण्डके क्षेत्रफलसे पुष्करवरद्वीपका क्षेत्रफल २० गुना है। यथा—

पु० द्वीपकी खं० श० २८८० = (धा० की खं० श० १४४) × २० ।

---

१. द. ब. अट्ठारस ।

धातकीखण्ड और पुष्करवरद्वीपके (१४४ + २८८० = ३०२४ खं० श० रूप) क्षेत्रफलसे वारुणीवरद्वीपका (४८३८४ खण्डशलाका रूप) क्षेत्रफल १६ गुना है। यथा—

वारुणीवर द्वीपकी खं० श० ४८३८४ = (३०२४ खं० श०) × १६।

धातकीखण्ड, पुष्करवरद्वीप और वारुणीवरद्वीपके (१४४ + २८८० + ४८३८४ = ५१४०८ खं० श० रूप) क्षेत्रफलसे क्षीरवरद्वीपका (७८३३६० खं० श० रूप) क्षेत्रफल १५ गुना होकर [७८३३६० खं० श० — (५१४०८ खं० श० × १५) = १२२४० खं० श० रूप] ९१८ × $(१०)^{११}$ वर्ग योजन अधिक है। यथा—

वृद्धि सहित क्षेत्रफल ७८३३६० खं० श० रूप = (५१४०८ × १५ खं० श०) + १२२४० खं० श० × ७५ × $(१०)^{९}$

= (५१४०८ × १५ खं० श०) + ९१८०००००००००० वर्ग यो०

इसप्रकार क्षीरवर आदि अभ्यन्तर सब द्वीपोंके क्षेत्रफलसमूहसे उपरिम द्वीपका क्षेत्रफल प्रत्येक १५ गुना होनेके अतिरिक्त प्रक्षेपभूत ९१८ × $(१०)^{११}$ से ४ गुना होकर ०८ × $(१०)^{१०}$ वर्ग योजन अधिक है। यथा—

क्षीरवरद्वीपसे ऊपर घृतवरद्वीप है। जिसका विस्तार १०२४ लाख योजन और आयाम [(१०२४ लाख) × (१०२४ ला० — १ ला०) × ९] योजन है। इस द्वीपकी खण्ड श० १२५७०६२४ हैं। जो धातकी खण्ड, पुष्करवरद्वीप, वारुणीवरद्वीप और क्षीरवरद्वीपकी (१४४ + २८८० + ४८३८४ + ७८३३६० =) ८३४७६८ सम्मिलित खण्ड शलाकाओंसे १५ गुना होकर [१२५७०६२४ — (८३४७६८ × १५) + ४९१०४ खं० श० रूप] ९१८ × $(१०)^{११}$ वर्ग योजन का ४ गुना होते हुए १०८ × $(१०)^{१०}$ वर्ग योजन अधिक है। यथा—

घृत० द्वीपका क्षेत्र० १२५७०६२४ खं० श० रूप = (८३४७६८ खं० श० × १५) + (४९१०४ खं० श०) अथवा ८३४७६८ × १५ = १२५२१५२० खं० श० रूप क्षेत्र० + [९१८ × $(१०)^{११}$ × ४ = ३६७२०००००००००००] + १०८०००००००००००० वर्ग योजन है।

स्वयम्भूरमणद्वीपके अधस्तन सर्व-द्वीपोंके क्षेत्रफलका प्रमाण—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंभूरमणदीवस्स हेट्ठिम-सव्व-दीवाणं खेत्तफल-पमाणं रज्जूए वग्गं ति-गुणिय वीसुत्तर-तिय-सदेहि भजिदमेत्तं, पुणो एक्क-सहस्सं तिण्णि-सय-उणसट्ठि—कोडीओ सत्ततीस-लक्खं पण्णास-सहस्स-जोयणेहि अब्भहियं होइ। पुणो एक्कतीस-सहस्सं अट्ठ-सय-पंचहत्तरि-जोयणेहि गुणिद-रज्जूए[1] परिहीणं होइ।

---

१. द. ब. रज्जूएवि।

तस्स ठवणा—$\frac{=}{४९}$ । $\frac{३}{३२०}$ । धण जोयणाणि १३५९३७५०००० । रिण रज्जू $\bar{७}$ । ३१८७५ ।

अर्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपके अधस्तन सब द्वीपोंके क्षेत्रफलका प्रमाण राजूके वर्गको तिगुना करके तीनसौ बीसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें एक हजार तीन सौ उनसठ करोड़ सैंतीस लाख पचास हजार योजन अधिक तथा इकतीस हजार आठ सौ पचहत्तर योजनोंसे गुणित राजूसे हीन है। उसकी स्थापना—

$$\left(\frac{३ \text{ रा}^{२}}{३२०}\right) + १३५९३७५०००० \text{ यो०} - (\text{रा०} \times ३१८७५)\text{ ।}$$

स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल—

सयंभूरमणदीवस्स खेत्तफलं रज्जूए कदी णव-रूवेहि गुणिय चउसट्ठि - रूवेहि भजिदमेत्तं, पुणो रज्जू ठविय अट्ठावीस-सहस्स-एक्कसय-पंचवीस[1]-रूवेहि गुणिदमेत्तं, पुणो पण्णास[2]-सहस्स-सत्ततीस-लक्ख-णव-कोडि-अब्भहिय-दोण्णि-सहस्स-एक्कसय-कोडि-जोयणं, एदेहि दोहि रासीहि परिहीणं पुव्विल्ल-रासी होदि । तस्स ठवणा—$\frac{=}{४९}$ । $\frac{९}{६४}$ । रिण रज्जूओ $\bar{७}$ । २८१२५ रिण जोयणाणि २१०९३७५०००० ।

अर्थ—स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल राजूके वर्गको नौसे गुणा करके चौंसठका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे, राजूको स्थापित करके अट्ठाईस हजार एक सौ पच्चीससे गुणा करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसको तथा दो हजार एक सौ नौ करोड़ सैंतीस लाख पचास हजार योजन, इन दो राशियोंको कम कर देनेपर अवशिष्ट पूर्वोक्त राशि प्रमाण है। उसकी स्थापना—$\left[\frac{९ (\text{राजू})^{२}}{६४}\right]$ —(१ राजू × २८१२५)—२१०९३७५०००० ।

अभ्यन्तर समस्त द्वीपोंका क्षेत्रफल प्राप्त करनेकी विधि—

अब्भंतरिम-सव्व-दीव-खेत्तफलं मेलावेदूण आणयण-हेदुमिमा सुत्त-गाहा—

विक्खंभायामे इगि सगवीसं लक्खमवणमंतिमए ।
पण्णरस-हिदे लद्धं, इच्छादो हेट्ठिमाण[3] संकलणं ।।२७६।।

अर्थ—अभ्यन्तर सब द्वीपोंके क्षेत्रफलको मिलाकर निकालनेके लिए यह गाथा-सूत्र है—

१ द ब. ज. पंचवीमसहस्स । २. द. ब. क. ज. पण्णारससहस्स । ३. द. हेट्ठिमाह ।

अन्तिम द्वीपके विष्कम्भ और आयाममें क्रमशः एक लाख और सत्ताईस लाख कम करके (शेषके गुणनफलमें) पन्द्रहका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना इच्छित द्वीपसे (जम्बूद्वीपको छोड़कर) अधस्तन द्वीपोंका संकलन होता है ।।२७६।।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

अभ्यन्तर समस्त द्वीपोंका क्षेत्रफल $\Big\} = \frac{(\text{अन्तिम द्वीपका विष्कम्भ} — १०००००) \times (\text{उसीका आयाम} — २७०००००)}{१५}$

उदाहरण—(१) मानलो—यहां अन्तिम इष्ट द्वीप वारुणीवर है। जिसका विष्कम्भ ६४००००० योजन और आयाम ५६७००००० योजन है।

घातकी० और पु० द्वीपका सम्मिलित क्षेत्रफल $\Big\} = \frac{(६४००००० - १०००००) \times (५६७००००० — २७०००००)}{१५}$

$= \frac{६३००००० \times ५४००००००}{१५} = २२६८०००००००००००$ वर्ग यो० ।

(२) स्वयम्भूरमणद्वीपसे अधस्तन समस्त (जम्बूद्वीपको छोड़कर) द्वीपोंके सम्मिलित क्षेत्रफलका प्रमाण—

स्वयम्भूरमणद्वीपका विष्कम्भ $= \frac{१}{८}$ राजू $+ ३७५००$ योजन ।

स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम $= \frac{९}{८}$ राजू $- ५६२५००$ योजन ।

स्वयम्भूरमण द्वीप से अधस्तन द्वीपों का सम्मिलित क्षेत्रफल समस्त $\Big\} = \frac{(\frac{१}{८}\text{राजू} + ३७५०० - १०००००) \times (\frac{९}{८}\text{राजू} - ५६२५०० - २७००००० \text{ वर्ग यो०})}{१५}$

$= \frac{(\frac{१}{८}\text{ राजू} + ६२५००) \times (\frac{९}{८}\text{ राजू} — ३२६२५००)}{१५}$

$= \frac{[\frac{९}{६४}\text{ राजू}^2 + \frac{\text{राजू}}{८}(—३२६२५०० — ९ \times ६२५००)\text{यो०} + ६२५०० \times ३२६२५०० \text{ वर्ग यो०}]}{१५}$

$= \frac{\frac{९}{६४}\text{राजू}^2 — ४७८१२५ \text{ रा० यो०} + २०३९०६२५०००० \text{ वर्ग यो०}}{१५}$

$= \frac{३ \text{ रा}^2}{३२०}$ — रा० यो० ३१८७५ + १३५९३७५०००० वर्ग योजन ।

अहिय-पमाणमाणयण-हेदुमिमा सुत्त-गाहा—

खीरवरदीव-पहुदिं, उवरिम-दीवस्स दीह-परिमाणं ।
चउ - लक्खे संगुणिदे, परिवड्ढी होइ उवरुवरिं ।।२७७।।

अर्थ—अधिक प्रमाण प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

क्षीरवरद्वीपको आदि लेकर उपरिम द्वीपकी दीर्घताके प्रमाण अर्थात् आयामको चार लाखसे गुणित करने पर ऊपर-ऊपर वृद्धिका प्रमाण होता है ।।२७७।।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

वर्णित वृद्धि=(द्वीपका आयाम) × ४०००००

उदाहरण—(१) क्षीरवर द्वीपका आयाम २२९५०००००० योजन है ।

वर्णित वृद्धि=२२९५०००००० × ४०००००

=९१८०००००००००० वर्ग योजन ।

यह क्षीरवरद्वीपसे अधस्तन (पहलेके) द्वीपोंके क्षेत्रफलसे १५ गुना होकर अधिकका प्रमाण है । जो क्षीरवरद्वीपमें प्राप्त होता है ।

(२) अधस्तन द्वीपोंके क्षेत्रफलसे १५ गुना होकर जो अधिकताका प्रमाण स्वयम्भूरमण-द्वीपमें पाया जाता है वह इसप्रकार है—

स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम = $\frac{९}{८}$ राजू—५६२५०० योजन

वृद्धि-प्रमाण-क्षेत्रफल = ($\frac{९}{८}$ रा०—५६२५०० यो०) × ४००००० यो०

= ४५०००० रा० यो० — २२५ × (१०)^{९} वर्ग यो०

इसलिए स्वयम्भूरमणद्वीपका क्षेत्रफल

= $\frac{८१}{६४}$ राजू^{२}—४७८१२५ रा० यो० + २०३९०६२५०००० वर्ग यो०

सातिरेकका प्रमाण ४५०००० रा० यो०—२२५०००००००००० वर्ग योजन

= $\frac{८१}{६४}$ राजू^{२}—२८१२५ रा० यो०—२१०९३७५०००० वर्ग योजन ।

✿

अठारहवाँ पक्ष

अधस्तन द्वीप-समुद्रोंके त्रिस्थानक सूची-व्यास द्वारा उपरिम द्वीप-समुद्रोंका सूची-व्यास प्राप्त करनेकी विधि—

अट्ठारसम-पक्खे अप्पबहुलं वत्ताइस्सामो—

लवणणीरधीए[1] आदिम-सूई एक्क-लक्खं, मज्झिम-सूई तिण्णि-लक्खं, बाहिर-सूई पंच-लक्खं, एदेसिं ति-ट्ठाण-सूईणं मज्झे कमसो चउ-छक्कट्ठ-लक्खाणि मेलिदे धादई-संडदीवस्स आदिम-मज्झिम-बाहिर-सूईओ होंति । पुणो धादईसंडदीवस्स ति-ट्ठाण-सूईणं मज्झे पुव्विल्ल-पक्खेवं दुगुणिय कमसो मेलिदे कालोदग-समुद्दस्स ति-ट्ठाण-सूईओ होदि । एवं हेट्ठिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा ति-ट्ठाण-सूईणं मज्झे चउ-छक्कट्ठ-लक्खाणि अब्भहियं करिय उवरिम-दुगुण-दुगुणं कमेण मेलावेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।।

अर्थ—अठारहवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रकी आदिम सूची एक लाख, मध्यम सूची तीन लाख और बाह्य सूची पाँच लाख योजन है । इन तीन सूचियोंके मध्यमें क्रमशः चार लाख, छह लाख और आठ लाख मिलाने पर धातकी खण्डकी आदिम, मध्यम और बाह्य सूची होती है । पुनः धातकीखण्डकी तीनों सूचियोंमें पूर्वोक्त प्रक्षेपको दुगुनाकर क्रमशः मिला देनेपर कालोदक समुद्रकी तीनों सूचियाँ होती हैं । इसप्रकार अधस्तन द्वीप अथवा समुद्रकी त्रिस्थान सूचियोंमें चार, छह और आठ लाख अधिक करके आगे-आगे स्वयम्भरमण समुद्र पर्यन्त दूने-दूने क्रमसे मिलाते जाना चाहिए ।।

विशेषार्थ—

	आदिम सूची + प्रक्षेप	मध्यम सूची + प्रक्षप	बाह्य सूची + प्रक्षेप
लवणसमुद्र की = प्रक्षेप	१००००० यो० + ४००००० यो०	३००००० यो० + ६००००० यो०	५००००० यो० + ८००००० यो०
धातकीखण्डद्वीपकी = दुगुना प्रक्षेप	५००००० यो० + ४०००००×२	९००००० यो० + ६०००००×२	१३००००० यो० + ८०००००×२
कालोदक समुद्रकी = दुगुना प्रक्षेप	१३००००० यो० + ८०००००×२	२१००००० यो० + १२०००००×२	२९००००० यो० + १६०००००×२
पुष्करवर द्वीपकी =	२९००००० यो०	४५००००० यो०	६१००००० यो०

इसीप्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

---

१. द. ब. लवणणीरद्धीए ।

स्वयम्भूरमणसमुद्रकी तीनों सूचियाँ प्राप्त करनेकी विधि—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्ताइस्सामो । तं जहा—सयंभूरमणदीवस्स आदिम-सूई-मज्झे रज्जूए चउब्भागं पुणो पंचहत्तरि-सहस्स-जोयणाणि संमिलिदे सयंभूरमणसमुद्दस्स आदिम-सूई होदि । तस्स ठवणा— ७ । ४ धण जोयणाणि ७५००० । पुणो तद्दीवस्स मज्झिम-सूइम्मि तिय-रज्जूणं अट्ठम-भाग पुणो एक्क-लक्ख बारस-सहस्स-पंचसय-जोयणाणि संमिलिदे सयंभूरमणसमुद्दस्स मज्झिम-सूई होइ । तस्स ठवणा— ७ । ३/८ धण जोयणाणि । ११२५०० । पुणो सयंभूरमणदीवस्स बाहिर-सूई-मज्झे रज्जूए [1]अद्धं पुणो दिवड्ढ-लक्ख-जोयणाणि समेलिदे[2] चरम-समुद्द-अंतिम-सूई होइ । तस्स ठवणा— ७ । २ धण जोयणाणि १५०००० ।।

अर्थ—उनमें अन्तिम विकल्प कहते हैं । वह इसप्रकार है—स्वयम्भूरमणद्वीपकी आदिम सूचीमें राजूके चतुर्थ-भाग और पचहत्तर हजार योजनों को मिलाने पर स्वयम्भूरमण समुद्रकी आदिम सूची होती है । उसकी स्थापना—¼ राजू + ७५००० यो० । पुनः इसी द्वीपकी मध्यम सूचीमें तीन राजुओं के आठवें भाग और एक लाख बारह हजार पाँच सौ योजनों को मिलाने पर स्वयम्भूरमण-समुद्र की मध्यम सूची होती है । उसकी स्थापना—⅜ राजू + ११२५०० यो० । पुनः स्वयम्भूरमण-द्वीपकी बाह्य सूचीमें राजूके अर्ध भाग और डेढ़ लाख योजनोंको मिलानेपर उपरिम (स्वयम्भूरमण) समुद्रकी अन्तिम सूची होती है । उसकी स्थापना—½ रा० + १५०००० यो० ।।

एत्थ वड्ढीण आणयण-हेदुमिमा सुत्त-गाहा—

धादइसंड-प्पहुदिं, इच्छिय दीवोवहीण रुंदद्धं ।
दु-ति-चउ-रूवेहिं, हदो ति-ट्ठाणे होदि परिवड्ढी ।।२७८।।

अर्थ—यहाँ वृद्धियोंको प्राप्त करने हेतु यह गाथा सूत्र है—

धातकीखण्ड आदि इच्छित द्वीप-समुद्रोंके आधे विस्तारको दो, तीन और चारसे गुणा करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो क्रमसे तीनों स्थानोंमें उतनी वृद्धि होती है ।।२७८।।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{क्रमशः तीनों वृद्धियाँ} = \frac{\text{इष्ट द्वीप या समुद्रका विस्तार}}{२} \times \text{क्रमशः २, ३ और ४ ।}$$

---

१. द. ब. ज. पिडं । २. द. ब. ज. मेमिदोपरिम, क. मेलिदोवरिम ।

उदाहरण—(१) मानलो—यहाँ क्षीरवर समुद्र इष्ट है। जिसका विस्तार ५१२०००० योजन है अतः—

क्षीर० स० में तीनों वृद्धियाँ $=\frac{५१२०००००}{२}\times$ २, ३ और ४ अर्थात्

२५६००००० × २ = ५१२००००० योजन आदिम सूची का वृद्धि प्रमाण।

२५६००००० × ३ = ७६८००००० योजन मध्यम सूची का वृद्धि प्रमाण।

२५६००००० × ४ = १०२४००००० योजन बाह्य सूची का वृद्धि प्रमाण।

अर्थात् क्षीरवरद्वीपके तीनों सूची-व्यासमें इन तीनों वृद्धियोंका प्रमाण जोड़ देनेपर क्षीरवर समुद्रके तीनों सूची-व्यास का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

(२) यहाँ अन्तिम समुद्र इष्ट है। जिसका विस्तार $\frac{१}{४}$ राजू + ७५००० योजन है अत :—

अन्तिम स० में तीनों वृद्धियाँ $=\frac{\frac{१}{४}\text{ राजू} + ७५०००\text{ यो०}}{२}\times$ क्रमशः २, ३ और ४ अर्थात्

राजू $\frac{१}{८}$ + ३७५०० यो० × २ = $\frac{१}{४}$ राजू + ७५००० यो०।

$\frac{१}{८}$ राजू + ३७५०० यो० × ३ = $\frac{३}{८}$ राजू + ११२५०० यो०।

$\frac{१}{८}$ राजू + ३७५०० यो० × ४ = $\frac{१}{२}$ राजू + १५०००० यो०।

स्वयम्भूरमणद्वीपकी आदि सूची $\frac{१}{४}$ रा०—२२५००० यो०, मध्यम सूची $\frac{३}{८}$ राजू—१८७५०० यो० और अन्त सूची $\frac{१}{२}$ राजू—१५०००० यो० है। इसमें उपर्युक्त प्रक्षेपभूत वृद्धियाँ क्रमशः जोड़ देनेसे अन्तिम समुद्रकी तीनों सूचियों का प्रमाण क्रमशः प्राप्त हो जाता है। यथा—

स्वयम्भूरमणद्वीपका आदि सूची-व्यास $\frac{१}{४}$ रा०—२२५००० यो०

प्रक्षेप $\frac{१}{४}$ रा० + ७५००० यो० ॥

स्वयम्भूरमणसमुद्रका आदि सूची-व्यास $\frac{१}{२}$ रा० — १५०००० यो०

स्वयम्भूरमणद्वीपका मध्यम सूची-व्यास $\frac{३}{८}$ रा० — १८७५०० यो०

प्रक्षेप $\frac{३}{८}$ रा० + ११२५०० यो०

स्वयम्भूरमण समुद्रका मध्यम सूची-व्यास $\frac{३}{४}$ रा० — ७५००० यो०

स्वयम्भूरमण द्वीपका अन्तिम सूची-व्यास $\frac{१}{२}$ राजू — १५०००० यो०

प्रक्षेप $\frac{१}{२}$ राजू + १५०००० यो०

स्वयम्भूरमण समुद्रका अन्तिम सूची-व्यास १ राजू

उन्नीसवाँ–पक्ष

अधस्तन द्वीप-समुद्रसे उपरिम द्वीप-समुद्रके आयाममें वृद्धिका प्रमाण—

एऊणवीसदिम-पक्खे अप्पबहुलं वत्तइस्सामो। तं जहा—लवणसमुद्दस्सायामं णव-लक्खं, तम्मि अट्ठारस-लक्खं संमेलिदे धादईसंडदीवस्स आयामं होदि। धादईसंड-दीवस्स[1] आयामम्मि पक्खेवभूद-अट्ठारस-लक्खं दु-गुणिय मेलिदे कालोदगसमुद्दस्स आयामं होइ। एवं पक्खेवभूद-अट्ठारस-लक्खं दुगुण-दुगुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभू-रमणसमुद्दो त्ति।।

अर्थ—उन्नीसवें पक्षमें अल्पबहुत्व कहते हैं—लवणसमुद्रका आयाम नौ लाख है। इसमें अठारह लाख मिलानेपर धातकीखण्डका आयाम होता है। धातकीखण्डके आयाममें प्रक्षेपभूत अठारह लाख को दुगुना करके मिलाने पर कालोदक समुद्र का आयाम होता है। इसप्रकार स्वयम्भू-रमणसमुद्र पर्यन्त प्रक्षेपभूत अठारह-लाख दुगुने-दुगुने होते गये हैं।

स्वयम्भूरमणद्वीपके आयामसे स्वयं० समुद्रके आयाममें वृद्धि का प्रमाण—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—तत्थ सयंभूरमण-दीवस्स आयामादो सयंभूरमणसमुद्दस्स आयाम-वड्ढी णव-रज्जूणं अट्ठम-भागं पुणो तिण्णि-लक्ख-सत्तीस-सहस्स-पंचसय-जोयणेहिं अब्भहियं होइ। तस्स ठवणा— ७ । $\frac{9}{8}$ **धण जोयणाणि ३३७५००।**

अर्थ—यहाँ अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयम्भूरमणद्वीपके आयामसे स्वयम्भूरमणसमुद्रके आयाममें नौ राजुओंके आठवें भाग तथा तीन लाख सैंतीस हजार पाँच सौ योजन अधिक वृद्धि होती है। उसकी स्थापना—$\frac{9}{8}$ राजू + ३३७५०० यो०।।

आयाम-वृद्धि प्राप्त करनेकी विधि—

लवणसमुद्दादि - इच्छिय दीव-रयणायराणं आयाम-वड्ढि-पमाणाणयण-हेदुं इमं गाहा-सुत्तं—

धादइसंड - प्पहुदिं, इच्छिय - दीवोवहीण वित्थारं।
अड्ढिय तं णवहि गुणं, हेट्ठिमदो होदि उवरिमे वड्ढी ।।२७९।।

एवं दीवोवहीणं णाणाविह-खेत्तफल-परूवणं समत्तं ।।५।।

---

१ द. ब. दीवे।

अर्थ—लवणसमुद्रको आदि लेकर इच्छित द्वीप-समुद्रोंकी आयाम-वृद्धिके प्रमाणको प्राप्त करने हेतु यह गाथा-सूत्र है—

धातकीखण्डको आदि लेकर द्वीप-समुद्रोंके विस्तारको आधा करके उसे नौसे गुणित करने पर प्राप्त राशि प्रमाण अधस्तन द्वीप या समुदसे उपरिम द्वीप या समुद्रके आयाममें वृद्धि होती है ॥२७९॥

विशेषार्थ—इसी अधिकारकी गाथा २४४ के नियमानुसार लवणसमुद्रका आयाम [(२ लाख — १ लाख) × ९]=९ लाख योजन, धातकीखण्ड द्वीपका [(४ लाख — १ लाख) × ९]=२७ लाख योजन और कालोदक-समुद्रका ६३ लाख योजन है। अधस्तन द्वीप-समुद्रके आयाम प्रमाणसे उपरिम द्वीप-समुद्रके आयाममें वृद्धि-प्रमाण प्राप्त करने हेतु उपर्युक्त गाथानुसार सूत्र इस प्रकार है—

$$\text{वर्णित वृद्धि} = \frac{\text{इष्ट द्वीप — समुद्रका विस्तार}}{२} \times ९$$

उदाहरण—(१) मानलो—यहाँ कालोदक समुद्र इष्ट है। जिसका विस्तार ८ लाख योजन है अतः

वर्णित वृद्धि = $\frac{८०००००}{२}$ यो० × ९ = ३६००००० यो० ।

धातकीखण्डद्वीपके २७ लाख योजन आयाममें ३६००००० यो० की वृद्धि होकर कालोदक-समुद्रके आयामका प्रमाण (२७ लाख + ३६ लाख =) ६३ लाख योजन प्राप्त होता है।

(२) स्वयम्भूरमणसमुद्रका विस्तार $\frac{१}{४}$ राजू + ७५००० योजन है। अतएव उपर्युक्त नियमानुसार स्वयम्भूरमणद्वीपके आयामसे उसकी आयामवृद्धिका प्रमाण इसप्रकार होगा—

$$\text{आयाम वृद्धि} = \frac{\frac{१}{४}\text{ राजू} + ७५००० \text{ यो०}}{२} \times ९$$

= $\frac{९}{८}$ राजू + ३३७५०० योजन। अर्थात्

वृद्धिका प्रमाण $\frac{९}{८}$ राज + ३३७५०० यो० =

(स्वयंभूरमणसमुद्रका आयाम $\frac{९}{४}$ रा० — २२५००० यो०) — (स्वयम्भूरमणद्वीपका आयाम $\frac{९}{८}$ रा० — ५६२५०० यो०)।

इसप्रकार द्वीप-समुद्रोंके नाना प्रकारके क्षेत्रफलका प्ररूपण समाप्त हुआ ॥५॥

तिर्यञ्च जीवोंके भेद-प्रभेद—

एयक्ख-वियल-सयला, बारस तिय दोण्णि होंति उत्त-कमे ।
भू - आउ - तेउ - वाऊ, पत्तेक्कं बादरा सुहमा ॥२८०॥

साहारण - पत्तेय - सरीर - वियप्पे वणप्फई[1] दुविहा ।
साहारण थूलिदरा[2], पदिट्ठिदिदरा[3] य पत्तेयं ॥२८१॥

अर्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय जीव कहे जाने वाले क्रमसे बारह, तीन और दो भेदरूप हैं। इनमेंसे एकेन्द्रियोंमें पृथिवी, जल, तेज और वायु, ये प्रत्येक बादर एवं सूक्ष्म होते हैं। साधारण शरीर और प्रत्येक शरीरके भेदसे वनस्पति कायिक जीव दो प्रकार हैं। इनमें साधारण-शरीर जीव बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक शरीर जीव प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित (के भेदसे दो-दो प्रकारके) होते हैं ॥२८०-२८१॥

विशेषार्थ— एकेन्द्रियोंके २४ भेद—
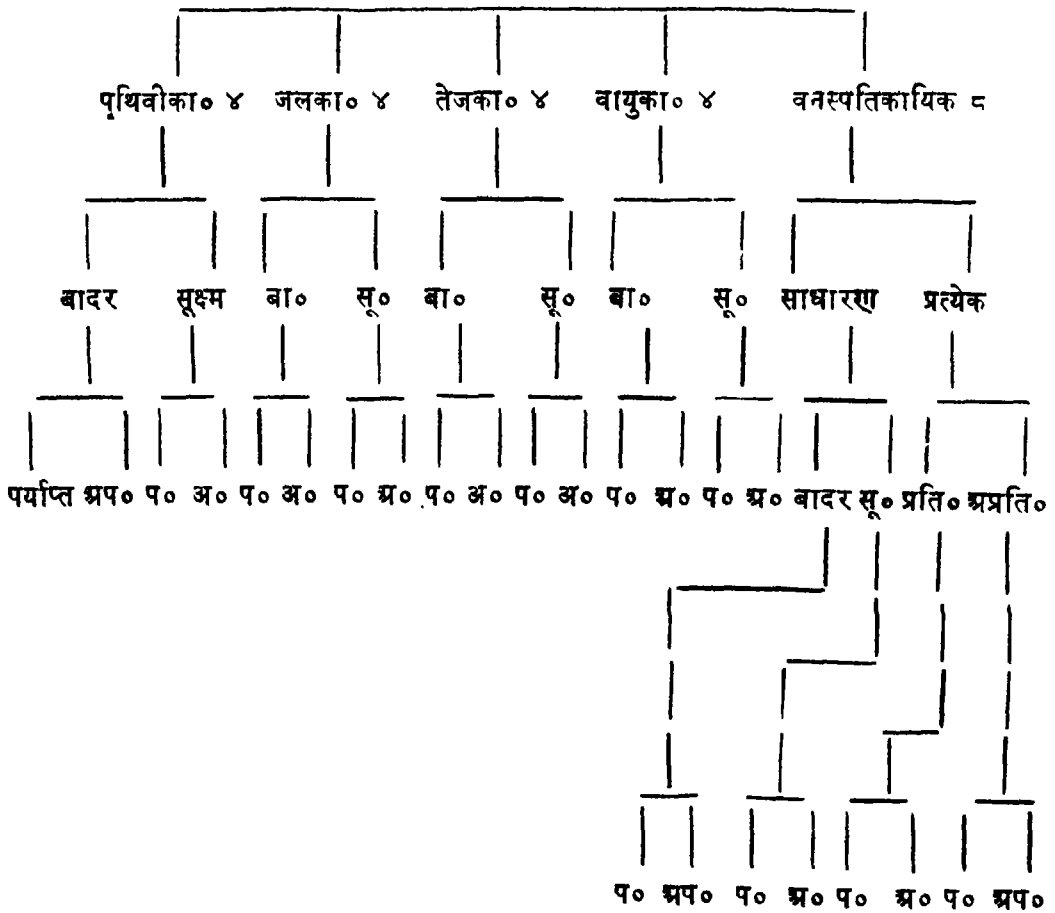
१. द. ब. क. ज. वणप्पई। २. द. ब. क. ज. थूलिदिदा। ३. द. ब. क. ज. परिदिट्ठिदिरा।

तिर्यञ्च त्रस जीवोंके १० भेद और कुल ३४ भेद—

वियला बि-ति-चउ-रक्खा, सयला सण्णी असण्णिणो एदे ।
पज्जत्तेदर - भेदा[1], चोत्तीसा अह अणेय - विहा ॥२८२॥

पृथिवी० ४	अप० ४	तेज० ४	वायु ४	साधा० ४	पत्तेय ४
बा० सू०	बा० सू०	बा० सू०	बा० सू०	बा० सू०	प० अ०

बि० २	ति० २	च० २	असंज्ञी २	संज्ञी २
प० अ०	प० अ०	प० अ०	प० अ०	प० अ०

एवं जीव-भेद-परूवणा गदा ॥६॥

अर्थ—दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय और चारइन्द्रियके भेदसे विकल जीव तीन प्रकार के तथा संज्ञी और असंज्ञीके भेदसे सकल जीव दो प्रकारके हैं। ये सब जीव (१२+३+२) पर्याप्त एवं अपर्याप्तके भेदसे चौंतीस प्रकारके होते हैं। अथवा अनेक प्रकारके हैं ॥२८२॥

विशेषार्थ —
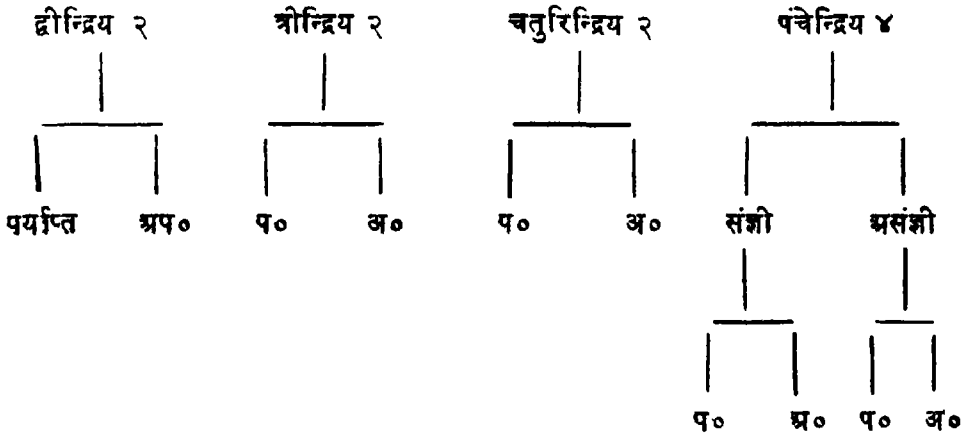
इसप्रकार एकेन्द्रियके २४, द्वीन्द्रियके २, त्रीन्द्रियके २, चतुरिन्द्रियके २ और पंचेन्द्रियके ४, ये सब मिलकर तिर्यञ्चोंके ३४ भेद होते हैं।

इसप्रकार जीवोंकी भेद-प्ररूपणा समाप्त हुई ॥६॥

---

१. द. ब. क. ज. भेदो ।

एत्तो चोत्तीस-विहाणं तिरिक्खाणं परिमाणं उच्चदे—

अर्थ—यहाँसे आगे चौंतीस प्रकारके तिर्यञ्चोंका प्रमाण कहते हैं—

तेजस्कायिक जीव राशिका उत्पादन विधान—

सुत्ताविरुद्धेण आइरिय-परंपरा-गदोवदेसेण तेउक्काइय-रासि-उप्पायण-विहाणं वत्तइस्सामो । तं जहा—एग [1]घणलोगं सलागा-भूदं ठविय अवरेगं [2]घणलोगं विरलिय एक्केक्क[3]-रूवस्स घणलोगं दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो एगरूवमवणेयव्वं । ताहे एक्का अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा लद्धा हवंति । तस्सुप्पण्ण-रासिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता वग्ग सलागा हवंति । तस्सद्धच्छेदणय-सलागा असंखेज्जा लोगा, रासी वि असंखेज्जलोगमेत्तो जादो ।

अर्थ—सूत्रसे अविरुद्ध आचार्य-परम्परासे प्राप्त उपदेशके अनुसार तेजस्कायिक राशिका उत्पादन-विधान कहते हैं। वह इसप्रकार है—एक घनलोकको शलाकारूपसे स्थापित कर और दूसरे घनलोकका विरलन करके एक-एक-रूपके प्रति घनलोकप्रमाणको देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाका राशिमेंसे एक-रूप कम करना चाहिए। तब एक अन्योन्यगुणकार-शलाका प्राप्त होती है। इसप्रकारसे उत्पन्न हुई उस राशिकी वर्गशलाकाएँ पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण होती हैं। इसीप्रकारकी अर्धच्छेदशलाकाएँ असंख्यातलोक प्रमाण और वह राशि भी असंख्यातलोक प्रमाण होती है।

पुणो उट्ठिद[4]-महारासिं विरलिदूण तत्थ एक्केक्क-रूवस्स उट्ठिद-महारासि-पमाणं दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो अवरेगरूवमवणेयव्वं । ताहे[5] अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा दोण्णि, वग्ग-सलागा अद्धच्छेदणय-सलागा रासी च असंखेज्जा लोगा । एवमेदेण कमेण णेदव्वं जाव लोगमेत्त-सलागा-रासी समत्तो त्ति । ताहे अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा पमाणं लोगो[6], सेस-तिगमसंखेज्जा लोगा ।

अर्थ—पुनः उत्पन्न हुई इस महाराशिका विरलन करके उसमेंसे एक-एक रूपके प्रति इसी महाराशि-प्रमाणको देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाकाराशिमेंसे एक अन्य रूप कम करना चाहिए। इससमय अन्योन्य-गुणकार-शलाकाएँ दो और वर्गशलाका एवं अर्धच्छेद-शलाका-राशि असंख्यातलोक-प्रमाण होती है। इसप्रकार जब तक लोक प्रमाण शलाकाराशि समाप्त न हो जावे तब तक इसी क्रमसे करते जाना चाहिए। उस समय अन्योन्यगुणकार-शलाकाएँ लोकप्रमाण और शेष

---

१. द. ब. क. ज. पुणलोगस्स। २. द. ब. क. ज. पुणलोगं। ३. द. ब. एक्केक्कं सरूवस्स। ४. द. क. ज. इट्ठिद, ब. ईट्ठिद। ५. द ब. क. ज. ता जह। ६ द. ब. क. ज. लोगा।

तीन राशियों ((१) उस समय उत्पन्न हुई महाराशि (२) उसकी वर्गशलाकाओं और (३) अर्धच्छेद-शलाकाओं) का प्रमाण असंख्यातलोक होता है ।।

पुणो उट्ठिव - महारासि - विरलिदूण तं चेव सलागा-भूद ठविय विरलिय एक्केक्क-रूवस्स उप्पण्ण-महारासि-पमाणं दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय[1] सलागा-रासीदो एग-रूवमवणेयव्वं । ताहे अण्णोण्णगुणगार-सलागा लोगो रूवाहिओ, सेस-तिगम-संखेज्जा लोगा ।।

अर्थ—पुनः उत्पन्न हुई इस महाराशिका विरलन करके इसे ही शलाकारूपसे स्थापित करके विरलित राशिके एक-एक रूपके प्रति उत्पन्न महाराशि-प्रमाणको देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाकाराशिमेंसे एक रूप कम करना चाहिए। तब अन्योन्यगुणकार-शलाकाएँ एक अधिक लोक-प्रमाण और शेष तीनों राशियाँ असंख्यात-लोक-प्रमाण ही रहती हैं ।

पुणो उप्पण्णरासिं विरलिय रूवं पडि उप्पण्णरासिमेव दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो अण्णेग रूवमवणेयव्वं । ताहे अण्णोण्ण-गुणगार-सलागा लोगो दुरूवाहिओ, सेस-तिगमसंखेज्जा लोगा । एवमेदेण कमेण [2]दुरूवूणुक्कस्स-संखेज्जलोग-मेत्त लोग-सलागासु दुरूवाहिय लोगम्मि पविट्ठासु चत्तारि [3]वि असंखेज्जा-लोगा हवंति । एवं णेदव्वं जाव बिदियवार-ट्ठविद-सलागारासी समत्तो[4] त्ति । ताहे चत्तारि वि असंखेज्जा लोगा ।

अर्थ—पुनः उत्पन्न राशिका विरलन करके एक-एक रूपके प्रति उत्पन्न राशिको ही देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाकाराशिमेंसे अन्य एक रूप कम करना चाहिए। तब अन्योन्य-गुणकार-शलाकाएँ दो रूप अधिक लोक-प्रमाण और शेष तीनों राशियाँ असंख्यात लोक-प्रमाण ही रहती है। इसप्रकार इस क्रमसे दो कम उत्कृष्ट-संख्यातलोक-प्रमाण अन्योन्य-गुणकार-शलाकाओंके दो अधिक लोक-प्रमाण अन्योन्य-गुणकार-शलाकाओंमें प्रविष्ट होनेपर चारों ही राशियाँ असंख्यात लोकप्रमाण हो जाती हैं। इसप्रकार जब तक दूसरीबार स्थापित शलाकाराशि समाप्त न हो जावे तब तक इसी क्रमसे करना चाहिए। तब भी चारों राशियाँ असंख्यात - लोक - प्रमाण होती हैं।

---

१ द. ब. क. ज. वग्गिद करिय । २. द. ब. क. ज. दुरूवाणुक्कस्स । ३. द. ब. वि तियसखेज्जा । ४. द. ब. क. ज. पविट्ठो ।

पुणो उद्दिद-महारासिं सलागाभूदं ठविय अवरेगमुद्दिद[1]-महारासिं विरलिदूण उद्दिद-महारासि-पमाणं[2] दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो एग-रूवमवणेयव्वं। ताहे चत्तारि वि असंखेज्जा लोगा। एवमेदेण कमेण [3]णेदव्वं जाव तदियवारं ट्ठविद-सलागारासी समत्तो त्ति। ताहे[4] चत्तारि वि असंखेज्जा लोगा।

अर्थ--पुन: उत्पन्न हुई महाराशिको शलाकारूपसे स्थापित करके उसी उत्पन्न महाराशि का विरलन करके उत्पन्न महाराशि प्रमाणको एक-एक रूपके प्रति देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाकाराशिमेंसे एक कम करना चाहिए। इससमय चारों राशियाँ असंख्यात-लोकप्रमाण रहती हैं। इसप्रकार तीसरीवार स्थापित शलाका-राशिके समाप्त होने तक इसी क्रमसे ले जाना चाहिए। तब चारों ही राशियाँ असंख्यात-लोक-प्रमाण रहती हैं।

तेजकायिक जीव राशि और उनकी अन्योन्य-गुणकार-शलाकाओंका प्रमाण—

पुणो उट्ठिद-महारासिं तिप्पडि-रासिं कादूण तत्थेग सलागाभूदं ठविय अणेग-रासिं विरलिदूण तत्थ एक्केक्क-रूवस्स एग-रासि-पमाणं दादूण वग्गिद-संवग्गिदं करिय सलागा-रासीदो एग रूवमवणेयव्वं। एवं पुणो पुणो करिय णेदव्वं जाव[5] अदिक्कंत-अण्णोण्ण-गुणगार-सलागाहि ऊण-चउत्थवार-ट्ठविद-अण्णोण्ण-गुणगार-सलागारासी समत्तो त्ति। ताहे[6] तेउकाइय[7]-रासी उट्ठिदो हवदि ≡ रि। तस्स गुणगार-सलागा चउत्थवार-ट्ठविद-सलागा-रासि-पमाणं होदि ॥९॥[8]

अर्थ—पुन: इस उत्पन्न महाराशिकी तीन महाराशियाँ करके उनमेसे एकको शलाकारूपसे स्थापित कर और दूसरी एक राशिका विरलन करके उसमेंसे एक-एक-रूपके प्रति एक राशिको देकर और वर्गित-संवर्गित करके शलाका-राशिमेंसे एक रूप कम करना चाहिए। इसप्रकार पुन: पुन: करके जब तक अतिक्रान्त अन्योन्य-गुणकार-शलाकाओंसे रहित चतुर्थवार स्थापित अन्योन्य-गुणकार-शलाका-राशि समाप्त न हो जावे तब तक इसी क्रमसे ले जाना चाहिए। तब तेजस्कायिक-राशि उत्पन्न होती है जो असंख्यात-घनलोक-प्रमाण है। (यहाँ घनलोककी संदृष्टि ≡ तथा असंख्यात की सदृष्टि रि है।) उस तेजस्कायिक राशिकी अन्योन्य-गुणकार-शलाकाएँ चतुर्थवार स्थापित शलाका-राशिके सदृश होती हैं।

(इस राशिके असंख्यातको संदृष्टि ९ है।)

---

१ द. क. ज. वगेतमुट्ठिद, ब. वेत्तागमुट्ठिद। २. द. समाणं। ३ द. ब. णावव्वं। ४. द. ब. क. ज. तादे। ५. द ब. क. ज. जाम। ६ द. ब. क. ज. तादे। ७. द. ब. तेउकायपरासी। ८ द. ब. ॥०॥

सामान्य पृथिवी, जल और वायुकायिक जीवोंका प्रमाण—

पुणो तेउकाइयरासिमसंखेज्ज-लोगेण भागे हिवे लद्धं तम्मि चेव पक्खित्ते पुढविकाइयरासी होदि $\equiv$ रि । $\frac{10}{9}$ ।।

अर्थ—पुन: तेजस्कायिक-राशिमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे इसी (तेजस्कायिक) राशिमें मिला देनेपर पृथिवीकायिक जीव राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—यथा—इसका सूत्र इसप्रकार है—

(सामान्य) पृथिवीकायिक राशि=तेजस्कायिक राशि + $\frac{\text{ते० का० रा०}}{\text{असं० लोक}}$

या $\equiv$ रि + $\frac{\equiv \text{रि}}{9}$ या $\equiv$ रि $\frac{10}{9}$ ।

नोट—यहाँ १० का अंक असंख्यातलोक+१ का प्रतीक है ।

तम्मि असंखेज्जलोगेण भागे हिदे[1] लद्धं तम्मि चेव पक्खित्ते आउकाइय-रासी होदि $\equiv$ रि । $\frac{10}{9}$ । $\frac{10}{9}$[2] ।।

अर्थ—इसमें असंख्यातलोकका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे इसी राशिमें मिला देनेपर जलकायिक जीवराशिका प्रमाण प्राप्त होता है ।।

विशेषार्थ—(सामान्य) जलकायिक राशि = पृ० का० रा० + $\frac{\text{पृ० का० राशि}}{\text{असं० लोक}}$

या $\equiv$ रि $\frac{10}{9}$ + $\frac{\equiv \text{रि}}{9}$ $\frac{10}{9}$ या $\equiv$ रि $\frac{10}{9}$ $\frac{10}{9}$ ।

तम्मि असंखेज्जलोगेण भागे हिवे लद्धं तम्मि चेव पक्खित्ते वाउकाइय-रासी होइ $\equiv$ रि । $\frac{10}{9}$ । $\frac{10}{9}$ । $\frac{10}{9}$ ।[3]

अर्थ—इसमें असंख्यात लोकका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे इसी राशिमें मिला देनेपर वायुकायिक जीवराशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—(सामान्य) वायुकायिक राशि = वा० का० राशि + $\frac{\text{ज० का० रा०}}{\text{असं० लोक}}$

या $\equiv$ रि $\frac{10}{9}$ $\frac{10}{9}$ + $\frac{\equiv \text{रि}}{9}$ $\frac{10}{9}$ $\frac{10}{9}$

---

१. ब. हिद्वे । २ द. $\frac{\equiv}{9}$ । $\frac{\text{रि}}{10\ 10}$, ब, $\frac{\equiv}{9}$ । $\frac{\text{रि}}{9}$ । $\frac{10}{10}$ । ३. द. $\frac{\equiv}{9}$ ० $\frac{10}{9}$ ।

या $\equiv$ रि $\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}$ ।

बादर और सूक्ष्म जीव राशियोंका प्रमाण—

पुणो एदे चत्तारि सामण्ण रासीओ पत्तेक्कं तप्पाओग्ग-असंखेज्जलोगेण खंडिदे तत्थेग[1]-खंडं सग-सग-बादर-रासि-पमाणं होदि । तेउ $\equiv \frac{\text{रि}}{\text{९}}$ **पुढवि** $\equiv \frac{\text{रि}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}$ । **आउ** $\equiv \frac{\text{रि}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}$ । **वाउ** $\equiv \frac{\text{रि}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}$ । **सेस-बहुभागा सग-सग-सुहुम-जीवा होंति । तेउ** $\equiv$ रि $\frac{\text{८}}{\text{९}}$ । **पुढवि** $\equiv$ रि $\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{८}}{\text{९}}$ । **आउ** $\equiv$ रि $\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{८}}{\text{९}}$ । **वाउ** $\equiv$ रि $\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{८}}{\text{९}}$ ॥

अर्थ—पुनः इन चारों सामान्य राशियोंमेंसे प्रत्येकको अपने योग्य असंख्यात लोकसे खण्डित करने पर एक भाग रूप अपनी-अपनी बादर राशिका प्रमाण होता है और शेष बहुभाग-प्रमाण अपने-अपने सूक्ष्म जीव होते हैं ।

विशेषार्थ—बादर ते० का० राशि $= \frac{\text{तेज० राशि}}{\text{असं० लोक}}$

या $\equiv$ रि $\div \frac{\text{९}}{\text{१}}$ या $\equiv$ रि $\frac{\text{१}}{\text{९}}$

या $\equiv \frac{\text{रि}}{\text{९}}$ बादर तेजस्कायिक जीवोंका प्रमाण ।

सूक्ष्म ते० का० राशि = (सा०) ते० का० राशि—बादर तेज० राशि

या $\equiv$ रि — $\equiv \frac{\text{रि}}{\text{९}}$

या $\equiv$ रि — $\equiv$ रि $\div \frac{\text{९}}{\text{१}}$

या $\equiv$ रि — $\equiv$ रि $\times \frac{\text{१}}{\text{९}}$

या $\equiv$ रि $\left(\frac{\text{१}}{\text{१}} - \frac{\text{१}}{\text{९}} \right)$

या $\equiv$ रि $\frac{\text{८}}{\text{९}}$ सूक्ष्म ते० का० राशिका प्रमाण ।

नोट—यहाँ ८ का अंक असंख्यात लोक — १ का प्रतीक है ।

बादर पृ० का० राशि $= \frac{\text{पृ० का० राशि}}{\text{असं० लोक}}$

या $\equiv$ रि $\frac{\text{१०}}{\text{९}} \div \frac{\text{९}}{\text{१}}$

या $\equiv$ रि $\frac{\text{१०}}{\text{९}}\,\frac{\text{१}}{\text{९}}$ बादर पृ० का० जीवोंका प्रमाण ।

सूक्ष्म पृ० का० राशि = पृ० का० राशि— बादर पृ० का० राशि

---

१. द. तज्जग, ब. क ज. तज्जेग ।

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ — ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१}{९}$

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ ($\frac{१}{१}$ — $\frac{१}{९}$)

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{८}{९}$ सूक्ष्म पृ० का० जीवोंका प्रमाण।

बादर जल का० राशि = $\frac{\text{जलका० राशि}}{\text{असं० लोक}}$

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ ÷ $\frac{९}{१}$

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१}{९}$ बादर जलका० राशिका प्रमाण।

सूक्ष्म जलका० राशि = जलका० राशि — बादर जलका० राशि

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ — ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१}{९}$

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ ($\frac{१}{१}$ — $\frac{१}{९}$) या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{८}{९}$ सूक्ष्म ज० का० राशिका प्रमाण।

बादर वायु का० राशि = $\frac{\text{वायु का० राशि}}{\text{असं० लोक}}$

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ ÷ $\frac{९}{१}$

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१}{९}$ बादर वायु का० जीवोंका प्रमाण

सूक्ष्म वायु का० राशि = वायु का० रा० — बादर वायु का० राशि

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ — ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१}{९}$

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ ($\frac{१}{१}$ — $\frac{१}{९}$)

या ≡ रि $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{१०}{९}$ $\frac{८}{९}$ सूक्ष्म वायु का० जीवोंका प्रमाण।

पृथिवीकायिक आदि चारोंकी पर्याप्त अपर्याप्त जीव राशिका प्रमाण—

पुणो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागमेत्त-जगपदरं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिद - पदरंगुलेहि भागे हिदे पुढविकाइय-बादर-पज्जत्त-रासि-पमाणं होदि

=
४ २
प ९ ।
रि

अर्थ – पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित प्रतरांगुलका जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसका पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीव राशिका प्रमाण होता है ।।

विशेषार्थ—

$$\text{पृथिवीका० बादर पर्याप्त राशि} = \frac{\dfrac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्र०} \times \dfrac{\text{आ०}}{\text{असं०}}}}{\dfrac{\text{पल्य०}}{\text{असं०}}}$$

$$\text{या } \frac{\dfrac{=}{\frac{४}{१} \times \frac{२}{८}}}{\dfrac{\text{प}}{\text{रि}}} \text{ या } \frac{\dfrac{=}{४}}{\dfrac{\text{प}}{\text{रि}}} \text{ या } \frac{=८}{४} \div \frac{\text{प}}{\text{रि}}$$

$$\text{या } \frac{=९}{४} \times \frac{\text{रि}}{\text{प}} \text{ बादर पृथिवीका० पर्याप्त जीवोंका प्रमाण ।}$$

तम्मि आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदेहि बादर-आउ-पज्जत्त-रासि-पमाणं होदि $\dfrac{\dfrac{=}{४}}{\dfrac{\text{प}}{\text{रि}}}$ **।**

अर्थ—इसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर बादर जलकायिक पर्याप्त जीव-राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—जलका० बादर पर्याप्त राशि = पृथिवी० बादर पर्याप्त $\times \dfrac{\text{आवली०}}{\text{असं०}}$

या $\dfrac{=\text{प०}\ ९}{४\ \text{रि}} \times \dfrac{१}{९}$ या $\dfrac{=\text{प}}{४\ \text{रि}}$ जलकायिक बादर पर्याप्त राशिका प्रमाण ।

पुणो घणावलिस्स असंखेज्जदि-भागे बादर-तेउ-पज्जत्त-जीव-परिमाणं होदि $\dfrac{८}{\text{रि}}$ **।।**

अर्थ—पुनः घनावलीके असंख्यातवें-भाग-प्रमाण बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव राशि होती है ।।

विशेषार्थ—तेजस्कायिक बादर पर्याप्त राशि = $\frac{\text{घनावली}}{\text{अस०}}$ या $\frac{८}{\text{रि}}$ ।

पुणो लोगस्स संखेज्जदि-भागे बादर-वाउ-पज्जत्त-जीव-पमाणं होदि $\frac{\equiv}{७}$ ।

अर्थ—पुनः लोकके संख्यातवें भागरूप बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवराशि होती है ।

विशेषार्थ—वायु बादर पर्याप्त राशि = $\frac{\text{लोक}}{\text{सं०}}$ या $\frac{\equiv}{७}$ ।

सग-सग-बादर-पज्जत्त-रासिं सग-सग-बादर-रासीदो सोहिदे सग-सग-बादर-अपज्जत्त-रासी होदि ।

पुढ $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\,\frac{\ }{९}$ रिण = $\frac{२}{४\,\text{प}\,\text{रि}\ \ ९}$ | आउ $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\,\frac{१०}{९}\,\frac{\ }{९}$ रिण = $\frac{\ }{४\,\text{प}\,\text{रि}}$ |

तेउ $\equiv$ रि $\frac{\ }{९}$ रिण $\frac{८}{\text{रि}}$ | बाउ $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\,\frac{१०}{९}\,\frac{१०}{९}\,\frac{\ }{९}$ रिण $\frac{\equiv}{७}$ ।

अर्थ—अपनी-अपनी बादर राशिमेंसे अपनी-अपनी बादर पर्याप्त राशिको घटा देनेपर शेष अपनी-अपनी बादर अपर्याप्त राशिका प्रमाण प्राप्त होता है ।

विशेषार्थ—तेजस्का० बादर अपर्याप्त राशि = ते० बा० राशि — ते० बा० पर्याप्त राशि या $\equiv$ रि $\frac{१}{९}$ — $\frac{८}{\text{रि}}$ या $\equiv$ $\frac{\text{रि}}{९}$ रिण $\frac{८}{\text{रि}}$ ।

पृ० का० बादर अप० राशि = पृ० का० बादर — पृ० का बादर पर्याप्त राशि

या $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\,\frac{१}{९}$ — $\frac{=}{४}\times\frac{\text{रि}}{\text{प}}$ ।

या $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\,\frac{१}{९}$ — $\frac{=}{४\,\text{प}\,\text{रि}}$ | $\frac{१}{९}$ पृ० कायिक बा० अपर्याप्त राशि ।

जलका० बादर अप० राशि = जलका० बादर — जलका० पर्याप्त राशि ।

या $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\,\frac{१०}{९}\,\frac{१}{९}$ — $\frac{=\text{प}}{४\,\text{रि}}$ ।

या $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{१}{९} - \frac{=}{४\ प\ रि}$ जलका० बादर अपर्याप्त राशि ।

वायुका० बादर अप० राशि = वायुका० बादर राशि — वायुका० पर्याप्त राशि ।

या $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{१}{९} - \frac{\equiv}{७}$ वायुका० बादर अपर्याप्त राशि ।

पुणो पुढविकायादीणं सुहुम-रासि-पत्तेयं तप्पाओग्ग संखेज्ज-रूवेहिं खंडिदे बहुभाग सुहुम-पज्जत्त-जीव-रासि-पमाणं होदि ।

पुढवि $\equiv$ रि $\frac{१०\ ८\ ४}{९\ ९\ ५}$ | आउ $\equiv$ रि $\frac{१०\ १०\ ८\ ४}{९\ ९\ ९\ ५}$ |

तेउ $\equiv$ रि $\frac{८\ ४}{९\ ५}$ | वायु $\equiv$ रि $\frac{१०\ १०\ १०\ ८\ ४}{९\ ९\ ९\ ९\ ५}$ |

अर्थ—पुनः पृथिवीकायिकादि जीवोंकी प्रत्येक सूक्ष्मराशिको अपने योग्य संख्यात रूपोंसे खण्डित करनेपर बहुभागरूप सूक्ष्म पर्याप्त जीव राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—पृथिवीकायिक सूक्ष्म पर्याप्त राशि = $\frac{\text{पृ० सूक्ष्म रा०}}{\text{संख्यात}}$ (बहुभाग) ।

या $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\ \frac{८}{९}\ \frac{४}{५}$ ।

जलकायिक सूक्ष्म पर्याप्त राशि = $\frac{\text{ज० सूक्ष्म रा०}}{\text{संख्यात}}$

या $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{८}{९}\ \frac{४}{५}$ ।

तेजस्कायिक सूक्ष्म पर्याप्त राशि = $\frac{\text{ते० सूक्ष्म रा०}}{\text{संख्यात}}$

या $\equiv$ रि $\frac{८}{९}\ \frac{४}{५}$ ।

वायुकायिक सूक्ष्म पर्याप्त राशि = $\frac{\text{वायु० सूक्ष्म रा०}}{\text{संख्यात}}$

या $\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{८}{९}\ \frac{४}{५}$

तत्थेगभागं सग-सग-सुहुम-अपज्जत्त-रासि परिमाणं होदि । पुढवि $\equiv$ रि $\frac{१०\ ८}{९\ ९\ ५}$ । **आउ** $\equiv$ रि $\frac{१०\ १०\ ८}{९\ ९\ ९\ ५}$ । **तेउ** $\equiv$ रि $\frac{८}{९\ ५}$ । **वाउ** $\equiv$ रि $\frac{१०\ १०\ १०\ ८}{९\ ९\ ९\ ९\ ५}$ ।

अर्थ—इसमेंसे एक भागरूप अपनी-अपनी सूक्ष्म अपर्याप्त जीवराशिका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—पृथिवी० सूक्ष्म अपर्याप्त राशि $\equiv \frac{\text{रि}}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{८}{९}$।

जलकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त राशि $\equiv \frac{\text{रि}}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{६}{५}$।

तेजस्कायिक सूक्ष्म अपर्याप्त राशि $\equiv \frac{\text{रि}}{९}\ \frac{८}{५}$।

वायुकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त राशि $\equiv \frac{\text{रि}}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{८}{८}$।

[तालिका को अगले पृष्ठ पर देखिये]

सामान्य वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण—

पुणो सव्व-जीव-रासीदो सिद्ध-रासि-तसकाइय-पुढविकाइय-आउकाइय-तेउ-काइय-वाउकाइय जीवरासि पमाणमवणिदे अवसेसं सामण्ण-वणप्फदिकाइय-जीवरासि परिमाणं होदि ॥१३॥

अर्थ—पुनः सब जीवराशिमेंसे सिद्धराशि, त्रसकायिक, पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेज-स्कायिक और वायुकायिक जीवोंके राशि-प्रमाणको घटा देनेपर शेष सामान्य वनस्पतिकायिक जीव-राशिका प्रमाण होता है ॥१३॥

विशेषार्थ—सामान्य वन० जीवराशि = [सर्व जीवराशि] रिण { (सिद्ध) धण (त्रस) धण (तेज०) धण (पृ०) धण (जल) धण (वायु) }

या [१६] − { (३) + $\left(\frac{\overline{\overline{४}}}{२}\ \text{रि}\right)$ + ($\equiv$ रि) + ($\equiv$ रि $\frac{१०}{९}$) + ($\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}$) + ($\equiv$ रि $\frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}\ \frac{१०}{९}$) }

या १३ − { $\left(\frac{\overline{\overline{४}}}{२}\ \text{रि}\right)$ + $\equiv$ रि ($\frac{१}{१} + \frac{१०}{९} + \frac{१००}{८१} + \frac{१०००}{७२९}$) }

या १३ − { $\left(\frac{\overline{\overline{४}}}{२}\ \text{रि}\right)$ + $\equiv$ रि $\frac{३४३९}{७२९}$ }

चार स्थावर जीवोंमें सामान्य, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त राशियों का प्रमाण—

क्र०	स्थावर जीवोंके नाम	सामान्य राशिका प्रमाण	बादर राशिका प्रमाण	सूक्ष्म राशिका प्रमाण	बादर पर्याप्त राशि	बादर अपर्याप्त राशि	सूक्ष्म पर्याप्त राशि	सूक्ष्म अपर्याप्त राशि	प्रतीक
१.	पृथिवीकायिक	≡ रि १०/९	≡ रि १०/९ १/९	≡ रि १०/९ ८/९	= १ ४ ९ प रि	≡ रि १०/९ १/९ रिण = १/९ ४ प रि	≡ रि १०/९ ८/९ ४/५	≡ रि १०/९ ८/९ १/५	≡ लोकका चिह्न । रि असंख्यातका चिह्न । ९ असंख्यात लोकका चिह्न ४/५ संख्यात बहुभाग का और १/५ संख्यात एक भागका चिह्न है ।
२.	जल-कायिक	≡ रि १०/९ १०/९	≡ रि १०/९ १०/९ १/९	≡ रि १०/९ १०/९ ८/९	= ४ प रि	≡ रि १०/९ १०/९ १/९ रिण = ४ प रि	≡ रि १०/९ १०/९ ८/९ ४/५	≡ रि १०/९ १०/९ ८/९ १/५	
३.	तेजस्कायिक	≡ रि	≡ रि १/९	≡ रि ८/९	८ रि	≡ रि १/९ रिण ८ रि	≡ रि ८/९ ४/५	≡ रि ८/९ १/५	
४.	वायु कायिक	≡ रि १०/९ १०/९ १०/९	≡ रि १०/९ १०/९ १०/९ १/९	≡ रि १०/९ १०/९ १०/९ ८/९	≡ ७	≡ रि १०/९ १०/९ १०/९ १/९ रिण ≡ ७	≡ रि १०/९ १०/९ १०/९ ८/९ ४/५	≡ रि १०/९ १०/९ १०/९ ८/९ १/५	

या, संसार राशि १३—{ (=२ / ४रि) + ≡ रि ४३३३ } सामान्य वनस्पतिकायिक जीव-राशिका प्रमाण है ।

साधारण वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण—

तम्मि असंखेज्जलोग-परिमाणमवणिदे सेसं साधारण-वणप्फदिकाइय-जीव-परिमाणं होदि । १३ ≡ ।

अर्थ—इसमें (सामान्य वनस्पतिकायिक जीवराशिमें) से असंख्यात लोकप्रमाणको घटानेपर शेष साधारण वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—सामान्य वनस्पतिकायिक जीवराशि — असंख्यात लोक ।

१३ —{ (≡ ४/२ / रि) + ≡ रि ३४३३ } —{ ≡ रि ≡ रि }

अर्थात् १३ ≡ प्रमाण है ।

साधारण बादर वनस्पतिका० और साधारण सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण—

तं तप्पाओग्ग-असंखेज्जलोगेण खंडिदे तत्थ एग-भागो साहारण-बादर-जीव परिमाणं होदि । १३ ≡/९ ।

अर्थ—इसे अपने योग्य असंख्यातलोकसे खण्डित (भाजित) करने पर उसमेंसे एक भाग साधारण बादर जीवोंका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—साधारण बादर वन० जीव राशि = साधारण वनस्पति० जीव राशि / असंख्यात लोक

= (१३ ≡ / ९) प्रमाण है ।

सेस-बहुभागा साहारण-सुहुमरासि परिमाणं होदि । १३ ≡ ८/९ ।

अर्थ—शेष बहुभाग साधारण सूक्ष्म जीव राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—साधारण सूक्ष्म वन० जीवराशि = साधा० वन० जीवराशि / असंख्यात लोक × असं० लोक—१ / १

अर्थात् (१३ ≡ । ८/९) प्रमाण है ।

साधारण बादर पर्याप्त-अपर्याप्त राशिका प्रमाण—

पुणो साहारण-बादररासिं तप्पाओग्ग-असंखेज्जलोगेण खंडिदे तत्थेग भागं साहारण-बादर-पज्जत्तरासि परिमाणं होदि १३ ≡ ९ १/७ । सेस-बहुभागा साहारण-बादर-अपज्जत्त-रासि परिमाणं होदि १३ ≡ ९ ६/७ ।

अर्थ—पुन: साधारण बादर वनस्पतिकायिक जीव राशिको अपने योग्य असंख्यात लोकसे खण्डित करनेपर उसमेंसे एक भाग साधारण बादर पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है और शेष बहुभाग साधारण बादर अपर्याप्त जीव राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—साधारण बादर पर्याप्त वन० का० जीवराशि = (साधारण बादर वन० का० जीव) / (असंख्यात लोक) या १३ ≡ ९ ÷ ७ अर्थात् १३ ≡ ९ १/७) प्रमाण है ।

साधारण बादर अपर्याप्त वन० का० जीवराशि = (सा० बादर वन० जीव) / (असंख्यात) × (असं — १) / (१) अर्थात् (१३ ≡ ९ ६/७) प्रमाण है ।

साधारण सूक्ष्म पर्याप्त-अपर्याप्त जीवोंका प्रमाण—

पुणो साहारण-सुहुमरासिं तप्पाओग्ग-संखेज्ज-रूवेहिं खंडिय तत्थ बहुभागं साहारण-सुहुम-पज्जत्त-परिमाणं होदि १३ ≡ ९ ४/५ । सेसेगभागं साहारण-सुहुम-अपज्जत्तरासि-पमाणं होदि १३ ≡ ९ १/५ ।

अर्थ—पुन: साधारण सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव राशिको अपने योग्य संख्यात रूपोंसे खण्डित करनेपर उसमेंसे बहुभाग साधारण सूक्ष्म पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है और शेष एक भाग साधारण सूक्ष्म-अपर्याप्त जीवोंकी राशिका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—साधारण सूक्ष्म वन० पर्याप्त जीव = (सा० सूक्ष्म वन० जीव) / (संख्यात) × (संख्यात — १) / (१) = (१३ ≡ ९ ४/५ प्रमाण है ।

साधारण सूक्ष्म वन० अपर्याप्त जीवराशि = (साधारण सूक्ष्म वन० जीव राशि) / (संख्यात) अर्थात् (१३ ≡ ९ १/५) प्रमाण है ।।

प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीवोंके भेद-प्रभेद और उनका प्रमाण—

पुणो पुव्वमवणिद-असंखेज्जलोग-परिमाणरासी पत्तेयसरीर-वणप्फदि-जीव-परिमाणं होदि ≡ रि ≡ रि ।।

अर्थ—पुनः पूर्वमें घटाई गई असंख्यात लोक प्रमाण राशि प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीवोंका प्रमाण होता है ।।

विशेषार्थ—सामान्य वनस्पतिकायिक जीव राशिमेंसे साधारण-वनस्पतिकायिक जीवराशि घटा देनेपर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवराशि शेष रहती है। जिसका प्रमाण ≡ रि $\underline{\overline{=}}$ $\overline{रि}$ है।

तप्पत्तेयसरीर-वणप्फई दुविहा बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-अपदिट्ठिद-भेदेण । तत्थ अपदिट्ठिद-पत्तेय-सरीर-वणप्फई असंखेज्जलोग-परिमाणं होइ ≡ रि तम्मि असंखेज्ज-लोगेण गुणिदे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-रासि-परिमाणं होदि ≡ रि ≡ रि ।।

अर्थ—बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित (सहित) और अप्रतिष्ठित (रहित) होने के कारण वे प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार हैं। इनमेंसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीव असंख्यातलोक प्रमाण हैं। इस अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवराशिको असंख्यात लोकोंसे गुणा करने पर बादर निगोद जीवोंसे प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पति जीवराशि का प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक जीवराशिका प्रमाण असंख्यात-लोक प्रमाण (≡ रि) है।

सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवराशि = अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवराशि × असंख्यात लोक। अर्थात् (≡ रि ≡ रि) है।

बादर निगोद प्रतिष्ठित–अप्रतिष्ठित पर्याप्त जीवोंका प्रमाण—

ते दो वि रासी पज्जत्त-अपज्जत्त-भेदेण दुविहा होंति । पुणो पुव्वुत्त-बादर-पुढवि-पज्जत्त-रासि-मावलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-पज्जत्त रासि परिमाणं होदि $\frac{\overline{\overline{४}}}{प\ रि}\ \frac{९}{८}\ \frac{९}{८}$ **। तं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण भागे ।**

हिदे बादर-णिगोद-अपदिट्ठिद-पज्जत्तरासि परिमाणं होदि $\frac{\overline{\overline{४}}}{प\ रि}\ \frac{९}{८}\ \frac{९}{८}\ \frac{९}{८}$ **।।**

अर्थ—ये दोनों ही राशियां पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे दो प्रकार हैं। पुनः पूर्वोक्त बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त जीवराशिको आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करनेपर बादर-निगोद-प्रतिष्ठित-पर्याप्त-जीवोंकी राशिका प्रमाण होता है। इसमें आवलीके असंख्यातवें भागका भाग

देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना बादर-निगोद-अप्रतिष्ठित-पर्याप्त-जीवोंकी राशिका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—बादर-निगोद-प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीव राशि =पृथिवीका० बादर पर्याप्त जीव–राशि $\div \frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$

$$= \left(\frac{\text{=प ९}}{\text{४ रि}} \div \frac{\text{१}}{\text{९}} \right) = \left(\frac{\text{=प ९}}{\text{४ रि}} \, \frac{\text{९}}{\text{१}} \text{=} \right)$$

बादर-निगोद-अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर वन० का० पर्याप्त जीवराशि=

बादर-नि० प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर वन० पर्याप्त जीवराशि $\div \frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$

$$= \left(\frac{\text{=प}}{\text{४ रि}} \, \frac{\text{९}}{\text{१}} \, \frac{\text{९}}{\text{१}} \div \frac{\text{१}}{\text{९}} \right) = \left(\frac{\text{=}}{\text{४}} \, \frac{\text{प}}{\text{रि}} \, \frac{\text{९}}{\text{१}} \, \frac{\text{९}}{\text{१}} \, \frac{\text{९}}{\text{१}} \right)$$

बादर निगोद प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित अपर्याप्त जीवराशिका प्रमाण—

सग-सग-पज्जत्त-रासिं सग-सग-सामण्ण-रासिम्मि अवणिदे सग-सग-अपज्जत्त-रासि-पमाणं होदि।

बादर-णिगोद-पदिट्ठिद ≡ रि ≡ रि रिण = ८ ८ ।
४
प
रि

बादर-णिगोद-अपदिट्ठिद ≡ रि रिण = ८ ८ ८ ।
४
प
रि

अर्थ—अपनी-अपनी सामान्य राशिमेंसे अपनी-अपनी पर्याप्त राशि घटा देनेपर शेष अपनी-अपनी अपर्याप्त राशिका प्रमाण होता है।।

विशेषार्थ—बादर-निगोद अप्रतिष्ठित प्रत्येक० वनस्पति० अपर्याप्त जीवराशि

=अप्रति० प्रत्येक० वन० जीवराशि—अप्रति० प्रत्येक० वन० पर्याप्त जीवराशि

$$= (\equiv \text{रि}) - \left(\frac{\text{=प ९}}{\text{४ रि}} \, \frac{\text{८}}{\text{१}} \, \frac{\text{८}}{\text{१}} \right)$$

बादर-निगोद सप्रतिष्ठित प्रत्येक० वनस्पति अपर्याप्त जीवराशि

=सप्रति० प्रत्येक शरीर वन० जीवराशि—सप्रति० प्रत्येक० वन० जीव राशि

= (≡ रि ≡ रि) — (=प ९ / ४ रि　६ / १) ।

त्रस जीवोंका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

पुणो आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण पदरंगुल-मवहारिय लद्धेण जगपदरे भागं घेत्तूण लद्धं = ।
४
२
रि

तं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडियूणेगखंडं पि पुधं ठविय सेस-बहुभागे घेत्तूण चत्तारि सम-पुंजं कादूण पुधं ठवेयव्वं[1] ॥

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे आवलीके असंख्यातवें भागसे खंडित कर एक भागको पृथक् स्थापित करके और शेष बहुभागको ग्रहण करके उसके चार समान पुञ्ज करके पृथक् स्थापित करना चाहिए।

विशेषार्थ—आवलीके असंख्यातवें भागसे भाजित प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरमें देने से = लब्ध प्राप्त होता है।
४
२
रि

यही सामान्य त्रस-राशिका प्रमाण है। इसमें आवलीके असंख्यातवें (९) भागका भाग देना चाहिए। यथा—(= ९) ।
४
२
रि

इसका एक भाग अर्थात् (= ९ के चार समान पुञ्ज करके पृथक् स्थापित करना
४
२
रि

चाहिए। यथा—

---

१. द. ब. क. ज. ठुवेयंतये ।

$\frac{=}{४\,२\,रि}\ \big\vert\ \frac{६}{८}\,\frac{९}{८}$	$\frac{=}{४\,२\,रि}\ \big\vert\ \frac{६}{८}\,\frac{९}{८}$	$\frac{=}{४\,२\,रि}\ \big\vert\ \frac{६}{८}\,\frac{९}{८}$	$\frac{=}{४\,२\,रि}\ \big\vert\ \frac{६}{८}\,\frac{९}{८}$

द्वीन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुणो आवलियाए असंखेज्जदि-भागे विरलिदूण अवणिद-एगखंड करिय दिण्णे तत्थ बहुखंडे पढम-पुंजे पक्खित्ते[1] बे-इंदिया होंति ।

अर्थ—पुन: आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर अपनीत एक खण्डके समान खण्डकर उसमेंसे बहुभागको प्रथम पुञ्जमें मिला देनेपर दो इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है ।।

विशेषार्थ—अलग स्थापित $\frac{=}{४\,२\,रि}\,\frac{१}{८}$ राशिका बहुभाग प्राप्त करने हेतु उसे आवलीके असंख्यातवें भाग ($\frac{१}{८}$) से गुणित करने पर [$\frac{=}{४\,२\,रि}$ ($\frac{१}{८}\times\frac{१}{८}$) $=\frac{=}{४\,२\,रि}\,\frac{१}{८\,९}$] प्राप्त होते हैं । इन्हें गुण्य-मान राशिमेंसे घटा देने पर जो शेष बचता है, वही उसका बहुभाग है ।

यथा । $\frac{=}{४\,२\,रि}\,\frac{१}{८}-\frac{१}{८\,९}=\frac{=}{४\,२\,रि}\,\frac{८}{८\,९}\,\frac{८}{८}$ । इस राशिको प्रथम स्थापित राशि पुञ्जमें जोड़ देनेपर दो-इन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा — $\frac{=}{४\,२\,रि}\,\frac{६}{८}\,\frac{९}{८}+\frac{=}{४\,२\,रि}\,\frac{८}{८\,९}\,\frac{८}{८}$ ।

अथवा $\frac{=}{४\,२\,रि}$ [($\frac{६}{८}\times\frac{९}{८}\times\frac{६\,९}{६\,९}\times\frac{८}{८}$) $+\frac{=}{४\,२\,रि}$ ($\frac{६}{६\,९}\times\frac{८}{८}\times\frac{६\,९}{६\,९}$)]

या $\frac{=}{४\,२\,रि}\,\frac{९}{८}$ [($\frac{६}{८}\times\frac{६\,९}{६\,९}\times\frac{८}{८}$) + ($\frac{६}{६\,९}\times\frac{८}{८}\times\frac{६\,९}{६\,९}$)]

---

१. द. ब. क. ज. पक्खेत्ते ।

या $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{१}{४}$ = $\frac{(८\times८१\times९)+(८\times४\times८१)}{८१\times८१}$ या $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{१}{४}$ $\left(\frac{५८३२+२५९२}{६५६१}\right)$

अथवा $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{१}{४}$ $\frac{८४२४}{६५६१}$ सामान्य द्वीन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण है ।

तेन्द्रिय जीव राशिका प्रमाण—

पुणो आवलियाए असंखेज्जभागं विरलिदूण दिण्ण-सेस-सम-खंडं करिय दादूण तत्थ बहुभागे बिदियपुंजे पक्खित्ते तेइंदिया होंति । पुव्व-विरलणादो[1] संपहि विरलणा किं सरिसा किं साहिया किं ऊणेत्ति पुच्छिदे णत्थि एत्थ उवएसो ।।

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलन करके देनेसे अवशिष्ट रही राशिके सदृश खण्ड करके देनेपर उसमेंसे बहुभागको द्वितीय पुंजमें मिलानेसे तीन इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण होता है । इस समयका विरलन पूर्व विरलनसे क्या सदृश है ? क्या साधिक है, कि वा न्यून है ? इसप्रकार पूछनेपर यही उत्तर है कि इसका उपदेश नहीं है ।

विशेषार्थ—अलग स्थापित $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{१}{९}$ राशिका बहुभाग प्राप्त करनेके लिए उसे $\frac{१}{९}$ से गुणित करने पर $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{८}{८१}$ प्राप्त होते हैं । इसे गुण्यमान राशिमेंसे घटा देनेपर शेष बहुभागका प्रमाण $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{६४}{८१}$ प्राप्त होता है । इसको पुनः आवलीके असंख्यातवें रूप $\frac{१}{९}$ से गुणित कर प्राप्त लब्ध $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{६४}{८१}$ $\frac{१}{९}$ को पूर्व स्थापित राशिके द्वितीय पुञ्जमें मिला देनेसे तीन इन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{१}{४}$ $\frac{८}{९}$ $\frac{७२९}{७२९}$ या $\frac{(९)^3}{(९)^3}$ + $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ $\frac{६४}{८१}$ $\frac{१}{४}$ $\frac{९}{८१}$

या $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ [($\frac{१}{४}\times\frac{८}{९}\times\frac{७२९}{७२९}$) + $\underset{\text{रि}}{\underset{२}{\underset{४}{=}}}$ ($\frac{६४}{८१}\times\frac{१}{४}\times\frac{९}{८१}$)]

---

1. द. ब. क. ज. विरलणाउ ।

या $\frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \frac{३}{४} \left[\left(\frac{९}{८} \times \frac{७२९}{६५६१} \right) + \left(\frac{९}{८१} \times \frac{४}{९} \times \frac{८}{८१} \right) \right]$

$\frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \frac{३}{४} \frac{(८ \times ७२९) + (८ \times ४ \times ९)}{८१ \times ८१}$ या $\frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \frac{३}{४} \frac{५८३२ + २८८}{८१ \times ८१}$

या $\frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \frac{३}{४} \frac{६१२०}{६५६१}$ सामान्य तीन इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण ।

चार इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुणो तप्पाओग्ग आवलियाए असंखेज्जदिभागं विरलिदूण सेस-खंडं सम-खंडं करिय दिण्णे तत्थ बहुखंडे तदिय पुंजे पक्खित्ते चउरिंदिया होंति ॥

अर्थ—पुनः तत्प्रायोग्य आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर शेष खण्डके सदृश (समान) खण्ड करके देनेपर उनमेंसे बहुभागको तृतीय पुञ्जमें मिला देनेसे चार इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है ॥

विशेषार्थ—अलग स्थापित राशि $\frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \frac{१}{९}$ को $\frac{१}{९}$ से गुणितकर लब्धराशि को (पूर्ववत्) गुण्यमान राशिमेंसे घटा देनेपर $\frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \frac{८}{८१}$ लब्ध प्राप्त होता है । इसे $\frac{१}{९}$ से गुणितकर लब्ध को पुनः $\frac{१}{९}$ से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे पूर्व स्थापित तृतीय पुञ्जमें मिला देनेसे चार इन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$\frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \frac{३}{४} \frac{९}{८} \frac{७२९}{६५६१} + \frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \frac{८}{८१} \times \frac{८}{८१} \times \frac{४}{९}$

या $\frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \left[\left(\frac{३}{४} \times \frac{९}{८} \times \frac{७२९}{६५६१} \right) + \frac{=}{\frac{४}{२}\text{रि}} \left(\frac{८}{८१} \times \frac{८}{८१} \times \frac{४}{९} \right) \right]$

या (= / ४ / २ / रि) १/४ [(८/९ × ७२९/६५६१) + (८/८१ × ८/८१ × ४/९)]

या (= / ४ / २ / रि) १/४ [(८ × ७२९) + (८ × ४)] / (८१ × ८१) या (= / ४ / २ / रि) १/४ (५८३२ + ३२)/६५६१

या (= / ४ / २ / रि) १/४ ५८६४/६५६१ सामान्य चार इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण है।

पंचेन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण—

सेसेग-खंडं चउत्थ-पुंजे पक्खित्ते पंचेंदिय—मिच्छाइट्ठी होंति। तस्स ठवणा—

बी	ती	च	प
(= / ४ / २ / रि) १/४ | ८४२४/६५६१	(= / ४ / २ / रि) १/४ | ६१२०/६५६१	(= / ४ / २ / रि) १/४ | ५८६४/६५६१	(= / ४ / २ / रि) १/४ | ५८३६/६५६१

अर्थ—शेष एक खण्डको चतुर्थ पुञ्जमें मिलानेपर पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवोंका प्रमाण होता है। उनकी स्थापना इसप्रकार है—

विशेषार्थ—सामान्य त्रस-राशिके (= / ४ / २ / रि) प्रमाणमें आवलीके असंख्यातवें भाग (९/८) का भाग देनेपर प्राप्त हुए उसके एक भाग (= / ४ / २ / रि) १/९ को जो पूर्वमें अलग स्थापित किया था उसमेंसे प्रत्येक बार अपने-अपने बहुभागको प्रथम, द्वितीय और तृतीय पुञ्जमें मिला देनेके पश्चात् जो शेष बचा है उसे चतुर्थ पुञ्जमें मिला देनेपर पंचेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

(= / ४ / २ / रि) १/४ ८/९ ७२९/६५६१ + (= / ४ / २ / रि) ८/८१ ८/८१ ४/९

या $\frac{=}{\text{४ २ रि}}\left[\left(\frac{१}{४}\times\frac{८}{९}\times\frac{७२९}{६५६१}\right)+\frac{=}{\text{४ २ रि}}\left(\frac{१}{८१}\times\frac{१}{८१}\times\frac{४}{४}\right)\right]$

या $\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\left[\left(\frac{८}{९}\times\frac{७२९}{६५६१}\right)+\left(\frac{१}{८१}\times\frac{१}{८१}\times\frac{४}{१}\right)\right]$

या $\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\left(\frac{८\times७२९+१\times४}{८१\times८१}\right)$ या $\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\left(\frac{५८३२+४}{८१\times८१}\right)$

या $\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\left(\frac{५८३६}{६५६१}\right)$ सामान्य पचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण है।

सामान्य द्वीन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण—

क्र०	नाम	समभाग +	देय-भाग =	प्रमाण
१.	द्वीन्द्रिय जीव-राशि	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\ \frac{८}{९}$ +	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{८}{९}\ \frac{१}{९}$ =	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\ \frac{८४२४}{६५६१}$
२.	त्रीन्द्रिय जीव राशि	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\ \frac{८}{९}$ +	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{८}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}$ =	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\ \frac{६१२०}{६५६१}$
३.	चतुरिन्द्रिय जीव राशि	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\ \frac{८}{९}$ +	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{८}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}$ =	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\ \frac{५८६४}{६५६१}$
४.	पंचेन्द्रिय जीव राशि	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\ \frac{८}{९}$ +	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}$ =	$\frac{=}{\text{४ २ रि}}\ \frac{१}{४}\ \frac{५८३६}{६५६१}$

पर्याप्त त्रस जीवोंका प्रमाण प्राप्त करने की विधि—

पुणो पदरंगुलस्स संखेज्जदिभागेण जगपदरे[1] भागं घेत्तूण जं लद्धं तं आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदूणेग-खंडं पुधं ठवेदूण सेस-बहुभागं घेत्तूण चत्तारि सरिस-पुंजं कादूण ठवेयव्वं[2] ॥

१. द. क ज. जगपदर, ब. जगपदरं। २. द ब. क ज. ठुवेयं वा।

अर्थ—पुनः जगत्प्रतरमें प्रतरांगुलके संख्यातवें भागका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित कर एक भागको पृथक् स्थापित करके शेष बहुभागके चार सदृश पुञ्ज करके स्थापित करना चाहिए।

जगत्प्रतरमें प्रतरांगुलके संख्यातवें भागका भाग देनेपर $\frac{=}{४\,५}$ लब्ध प्राप्त होता है। यही पर्याप्त त्रस राशिका प्रमाण है। इसमें आवलीके असंख्यातवें भाग ($\frac{१}{९}$) का भाग देना चाहिए। यथा—$\frac{=}{४\,५}\frac{१}{९}$। इसका एक भाग ($\frac{=}{४\,५}\frac{१}{९}$) अलग स्थापित कर शेष बहुभाग ($\frac{=}{४\,५}\frac{८}{९}$) के चार समान पुञ्ज करके पृथक् स्थापित करना चाहिए।

पर्याप्त तीन-इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुणो आवलियाए असंखेज्जविभागं विरलिदूण अवणिद-एय-खंडं सम-खंडं करिय दिण्णे[1] तत्थ बहुखंडे पढम-पुंजे पक्खित्ते ते-इंदिय-पज्जत्ता होंति ॥

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर पृथक् स्थापित किये हुए एक खण्डके सदृश करके देनेपर उसमेंसे बहुभागको प्रथम पुञ्जमें मिला देनेसे तीन-इन्द्रिय पर्याप्त जीवों का प्रमाण होता है ॥

विशेषार्थ—अलग स्थापित ($\frac{=}{४\,५}\frac{१}{९}$) राशिका बहुभाग करने हेतु उसे आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित कर प्राप्त ($\frac{=}{४\,५}\frac{१}{९}\times\frac{१}{९}$) राशिको गुण्यमान राशिमेंसे घटा देनेपर जो ($\frac{=}{४\,५}\frac{१}{९}-\frac{१}{८१}=$) $\frac{=}{४\,५}\frac{८}{८१}\times\frac{४}{४}$ शेष बचा वही उसका बहुभाग है। इस राशिको प्रथम स्थापित राशि-पुञ्जमें जोड़ देनेसे पर्याप्त तीन इन्द्रिय जीव-राशिका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

$$\frac{=}{४\,५}\left[\left(\frac{८}{९}\times\frac{१}{४}\times\frac{९}{९}\times\frac{९}{८१}\right)+\frac{=}{४\,५}\left(\frac{८}{८१}\times\frac{४}{४}\times\frac{९}{८१}\right)\right]$$

$$\frac{=}{४\,५}\frac{१}{४}\frac{(८\times९\times८१)+(८\times४\times८१)}{८१\times८१}$$

$$\frac{=}{४\,५}\frac{१}{४}\frac{५८३२+२५९२}{८१\times८१}\ \text{या}\ \frac{=}{४\,५}\frac{१}{४}\frac{८४२४}{६५६१}$$

---

१. द. ब. ज. दिण्णो।

पर्याप्त दो इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुणो आवलियाए असंखेज्जदिभागं विरलिदूण सेस-एय-खंडं सम-खंडं कादूण दिण्णे तत्थ बहुखंड बिदिय-पुंजे पक्खित्ते बे-इंदिय-पज्जत्ता होंति ।।

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर शेष एक भागके सदृश खण्ड करके देनेपर उसमेंसे बहुभागको द्वितीय पुञ्जमें मिला देनेसे दो इन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है।

विशेषार्थ—$\underset{५}{\underset{४}{=}} \left[\left(\frac{८}{९} \times \frac{१}{४} \times \frac{९}{९} \times \frac{८१}{८१} \right) + \underset{५}{\underset{४}{=}} \left(\frac{८}{८१} \times \frac{४}{९} \times \frac{९}{९} \right) \right]$

$$\text{या } \underset{५}{\underset{४}{=}} \frac{१}{४} \frac{(८ \times ९ \times ८१) + (८ \times ४ \times ९)}{८१ \times ८१}$$

$$\text{या } \underset{५}{\underset{४}{=}} \frac{१}{४} \frac{५८३२ + २८८}{८१ \times ८१} \text{ या } \underset{५}{\underset{४}{=}} \frac{१}{४} \frac{६१२०}{६५६१}$$

पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुणो आवलियाए असंखेज्जदिभागं विरलिदूण सेस-एय-खंडं सम-खंडं कादूण दिण्णे तत्थ बहुभागं तदिय-पुंजे पक्खित्ते पंचेंदिय-पज्जत्ता होंति ।।

अर्थ—पुनः आवलीके असंख्यातवें भागका विरलनकर शेष खण्डके समान खण्ड करके देनेपर उसमेंसे बहुभागको तीसरे पुञ्जमें मिला देनेपर पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है ।।

$$\underset{५}{\underset{४}{=}} \left[\left(\frac{८}{९} \times \frac{१}{४} \times \frac{९}{९} \times \frac{८१}{८१} \right) + \left(\frac{८}{८१} \times \frac{१}{८१} \times \frac{४}{४} \right) \right]$$

$$\text{या } \underset{५}{\underset{४}{=}} \frac{१}{४} \frac{(८ \times ९ \times ८१) + (८ \times ४)}{८१ \times ८१}$$

$$\text{या } \underset{५}{\underset{४}{=}} \frac{१}{४} \frac{५८३२ + ३२}{६५६१} \text{ या } \underset{५}{\underset{४}{=}} \frac{१}{४} \frac{५८६४}{६५६१}$$

पर्याप्त चार-इन्द्रिय जीवोंका प्रमाण—

पुणो सेस - भागं चउत्थ - पुंजे पक्खित्ते चउरिंदिय - पज्जत्ता होंति । तस्स ठवणा—

ती	वि	प	च
$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ ।\ \frac{८४२४}{६५६१}$	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ ।\ \frac{६१२०}{६५६१}$	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ ।\ \frac{५८६४}{६५६१}$	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ ।\ \frac{५८३६}{६५६१}$

अर्थ—पुनः शेष एक भागको चतुर्थ पुञ्जमें मिला देनेपर चार इन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है। इसकी स्थापना इसप्रकार है—

$$\underset{४\,५}{=}\left[\left(\frac{८}{९}\times\frac{१}{४}\times\frac{९}{९}\times\frac{८१}{८१}\right)+\underset{४\,५}{=}\left(\frac{१}{८१}\times\frac{१}{८१}\times\frac{४}{४}\right)\right]$$

या $\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{(८\times९\times८१)+४}{८१\times८१}$

या $\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{५८३२+४}{६५६१}$ या $\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{५८३६}{६५६१}$

पर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण—

क्र०	नाम	समभाग +	देयभाग=	प्रमाण
१.	पर्याप्त तेन्द्रिय जीवों का प्रमाण	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{८}{९}$ +	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{८}{९}\ \frac{१}{९}$	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{८४२४}{६५६१}$
२.	पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों का प्रमाण	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{८}{९}$ +	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{८}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}$ −	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{६१२०}{६५६१}$
३.	पर्याप्त पञ्चेन्द्रियों का प्रमाण	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{८}{९}$ +	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{८}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}$ =	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{५८६४}{६५६१}$
४.	पर्याप्त चतुरिन्द्रियों का प्रमाण	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{८}{९}$ +	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}\ \frac{१}{९}$ ÷	$\underset{४\,५}{=}\ \frac{१}{४}\ \frac{५८३६}{६५६१}$

अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण—

पुणो [1]पुव्वुत्त-बीइंदियादि-सामाण्ण-रासिम्मि सग-सग-पज्जत्त-रासिमवणिदे सग-सग-अपज्जत्त-रासि-पमाणं होदि । तं चेदं—

बि	ती	च	पं
५ । ६१२० । =८४२४ । रि । ४ । ४ । ६५६१ ।	५ । ८४२४ =६१२० । रि । ४ । ४ । ६५६१	५ । ५८३६ =५८६४ । रि । ४ । ४ । ६५६१ ।	५ । ५८६४ । =५८३६ । रि । ४ । ४ । ६५६१ ।

अर्थ—पुनः पूर्वोक्त दोइन्द्रियादि सामान्य राशिमेंसे अपनी-अपनी पर्याप्त राशिको घटा देनेपर शेष अपनी-अपनी अपर्याप्त राशिका प्रमाण होता है ।। यथा—

अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका प्रमाण—

क्र०	नाम	सामान्य जीवराशि=	पर्याप्त जीवराशि=	अपर्याप्त जीव-राशि
१.	द्वीन्द्रिय जीव	=॥ ४ २ रि १/४ ८४२४/६५६१ —	=॥ ४ ५ १/४ ६१२०/६५६१ =	= १ ४ । ४ । ६५६१ [२/रि (८४२४)−५(६१२०)]
२.	तेइन्द्रिय जीव	=॥ ४ २ रि १/४ ६१२०/६५६१ —	=॥ ४ ५ १/४ ८४२४/६५६१ =	= १ ४ । ४ । ६५६१ [२/रि (६१२०)−५(८४२४)]
३.	चतुरिन्द्रिय	=॥ ४ २ रि १/४ ५८६४/६५६१ —	=॥ ४ ५ १/४ ५८३६/६५६१ =	= १ ४ । ४ । ६५६१ [३/रि (५८६४)−५ (५८३६)]
४.	पंचेन्द्रिय	=॥ ४ २ रि १/४ ५८३६/६५६१ —	=॥ ४ ५ १/४ ५८६४/६५६१ =	= १ । ४ । ४ । ६५६१ [३/रि (५८३६)−५ (५८६४)]

१. ब पुऊत्तर, य पुव्वत्तर ।

तिर्यञ्च असंज्ञी पर्याप्त जीवोंका प्रमाण—

पुणो पंचेन्दिय - पज्जत्तापज्जत्त - रासीणं मज्झे देव-णेरइय-मणुस-देवरासि-संखेज्जविभागमूद-तिरिक्ख-सण्णि-रासिमवणिदे अवसेसा तिरिक्ख - असण्णि - पज्जत्ता-पज्जत्ता होंति । तं चेदं पज्जत्त ।

$\frac{=}{४}$ $\frac{३}{४}$ $\frac{५८६४}{६५५३६}$ रिण रासि $\frac{=}{४ । ६५५३६}$ । —२ मू । $\frac{- \quad ८}{१।३ \text{ मू०}}$ $\frac{=}{४ । ६५५३६ । ७ । ७ ।}\frac{१}{५}$ ।

अर्थ—पुनः पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त राशियोंके मध्यमेंसे देव, नारकी, मनुष्य तथा देव-राशिके संख्यातवें भाग प्रमाण तिर्यञ्च संज्ञी जीवोंकी राशिको घटा देनेपर शेष तिर्यञ्च असंज्ञी पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है ।

विशेषार्थ—सम्पूर्ण पंचेन्द्रिय पर्याप्त राशिका प्रमाण $\frac{=}{४}$ । $\frac{३}{४}$ । $\frac{५८६४}{६५५३६}$ है। और देव राशिका प्रमाण $\frac{=}{४}$ । ६५५३६ । नरक राशिका — २ मू । पर्याप्त मनुष्य राशि का $\frac{- \quad ८}{१ । ३ \text{ मू}}$ तथा तिर्यंच संज्ञी राशिका प्रमाण $\frac{=}{४}$ । ६५५३६ । ७ । ७ । $\frac{१}{५}$ है। उपर्युक्त पंचेन्द्रिय पर्याप्त राशिमेंसे देव, नारकी, पर्याप्त मनुष्य और संज्ञी तिर्यंच, इन चारों राशियों को घटा देनेपर जो शेष बचता है वही असंज्ञी पर्याप्त जीवोंका प्रमाण होता है । जो स्थापना मूलमें की गई है उसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है — =जगत्प्रतर और ४ प्रतरांगुलका प्रतीक है । —२ मू का अर्थ है, जगच्छ्रेणीका दूसरा वर्गमूल । $\frac{- \quad ८}{१ । ३ । \text{ मू}}$ का अर्थ है, सूच्यांगुलके प्रथम एवं तृतीय मूल का परस्पर गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उससे जगच्छ्रेणीको भाजित कर १ घटा देना चाहिए । पश्चात् जो अवशेष रहे वह पर्याप्त मनुष्यकी संख्याका प्रमाण होता है ।

तिर्यञ्च संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त-अपर्याप्त जीवराशिका प्रमाण—

पुणो पुव्वं अवणिद-तिरिक्ख-सण्णि-रासीणं तप्पाओग्ग-संखेज्ज-रूवेहि खंडिदे तत्थ बहुभागा तिरिक्ख-सण्णि-पंचेंदिय-पज्जत्त-रासी होदि, सेसेगभागं सण्णि-पंचेंदिय-अपज्जत्त-रासि-पमाणं होदि । तं चेदं $\frac{=}{४}$ । ६५= । ७ । ७ । $\frac{४}{५}$ । $\frac{=}{४}$ । ६५= । ७ । ७ । $\frac{१}{५}$ ।

एवं संखा-परूवणा समत्ता ।।७।।

अर्थ—पुनः पूर्वमें अपनीत तिर्यञ्च संज्ञी राशिको अपने योग्य संख्यात रूपोंसे खण्डित करने पर उसमेंसे बहुभाग तिर्यञ्च संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवराशि होती है और शेष एक भाग (तिर्यञ्च) संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवराशिका प्रमाण होता है ।।

विशेषार्थ—तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय पर्याप्त राशिका प्रमाण देवराशि (= । ६५= । ७) के संख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् = । ६५= । ७ । ७ होता है। अथवा = । ६५५३६ । ७ । ७ । होती है। यहाँ =जगत्प्रतर, ४ प्रतरांगुल, ६५=पण्णट्ठी अर्थात् ६५५३६ तथा ७ संख्यातका प्रतीक है। इसलिए इस राशि को तत्प्रायोग्य संख्यात (५) से खण्डित करनेपर बहुभाग मात्र संज्ञी और पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवराशि = ६५५३६ । ७ । ७४/५ प्रमाण होती है। तथा शेष एक भाग संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीव राशि = । ६५५३६ । ७ । ७ । १/५ प्रमाण होती है।

इसप्रकार संख्या-प्ररूपणा समाप्त हुई ॥७॥

स्थावर जीवोंकी उत्कृष्टायु—

सुद्ध-खर-भू-जलाणं, बारस बावीस सत्त य सहस्सा ।
तेउ-तिय दिवस-तियं, वरिसं ति-सहस्स दस य जेट्ठाऊ ॥२८३॥

१२००० । २२००० । ७००० । दि ३ । व ३००० । व १०००० ।

अर्थ—शुद्ध पृथिवीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु बारह हजार (१२०००) वर्ष, खर पृथिवीकायिक की बाईस हजार (२२०००) वर्ष, जलकायिक की सात हजार (७०००) वर्ष, तेजस्कायिक की तीन दिन, वायुकायिककी तीन हजार (३०००) वर्ष और वनस्पतिकायिक जीवोंकी दस हजार (१००००) वर्ष प्रमाण है ॥२८३॥

विकलेन्द्रियों और सरीसृपोंकी उत्कृष्टायु—

वास-दिण-मास-बारसमुगुवण्णं छक्क वियल-जेट्ठाऊ ।
णव - पुव्वंग - पमाणं, उक्कस्साऊ सरिसवाणं[1] ॥२८४॥

व १२ । दि ४९ । मा ६ । पुव्वंग ९ ।

अर्थ—विकलेन्द्रियोंमें दोइन्द्रियोंकी उत्कृष्टायु बारह (१२) वर्ष, तीन इन्द्रियोंकी उनंचास दिन और चारइन्द्रियोंकी छह (६) मास प्रमाण है। (पंचेन्द्रियोंमें) सरीसृपोंकी उत्कृष्टायु नौ पूर्वाङ्गप्रमाण होती है ॥२८४॥

पक्षियों, सर्पों और शेष तिर्यंचोंकी उत्कृष्टायु—

बाहत्तरि बादालं, वास-सहस्साणि पक्खि-उरगाणं ।
अवसेसा - तिरियाणं, उक्कस्सं पुव्व - कोडीओ ॥२८५॥

७२००० । ४२००० । पुव्वकोडि १ ।

---

१. द. ब. सरिसाणं ।

अर्थ—पक्षियोंकी उत्कृष्ट आयु बहत्तर हजार (७२०००) वर्ष और सर्पोंकी बयालीस हजार (४२०००) वर्ष प्रमाण होती है। शेष तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट आयु एक पूर्वकोटि प्रमाण है ॥२८५॥

तिर्यञ्चोंके यह उत्कृष्ट आयु कहाँ-कहाँ और कब प्राप्त होती है—

एदे उक्कसाऊ, पुव्वावर-विदेह-जाद[1]-तिरियाणं ।
कम्मावणि-पडिबद्धे, बाहिरभागे सयंपह-गिरीदो[2] ॥२८६॥

तत्थेव सव्वकालं, केई जीवाण भरह - एरवदे ।
तुरिमस्स पढमभागे, एदाणं होदि उक्कस्सं ॥२८७॥

अर्थ—उपर्युक्त उत्कृष्ट आयु पूर्वापर विदेह क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुए तिर्यञ्चोंके तथा स्वयम्प्रभ पर्वतके बाह्य कर्मभूमि-भागमें उत्पन्न हुए तिर्यञ्चोंके ही सर्वकाल पायी जाती है। भरत और ऐरावत क्षेत्रके भीतर चतुर्थकालके प्रथम भागमें भी किन्हीं तिर्यंचोंके उक्त उत्कृष्ट आयु पायी जाती है ॥ २८६-२८७ ॥

कर्मभूमिज तिर्यंचोंकी जघन्य आयु—

उस्सासस्स - ट्ठारस - भागं एइंदिए जहण्णाऊ ।
वियल - सयलिंदियाणं, तत्तो संखेज्ज - संगुणिदे ॥२८८॥

अर्थ—एकेन्द्रिय जीवोंकी जघन्य आयु उच्छ्वासके अठारहवें भाग प्रमाण और विकलेन्द्रिय एवं सकलेन्द्रिय जीवोंकी क्रमशः इससे उत्तरोत्तर संख्यात-गुणी है ॥२८८॥

भोगभूमिज तिर्यंचोंकी आयु—

वर-मज्झिमवर-भोगज-तिरियाणं तिय-दुगेक्क-पल्लाऊ ।
अवरे वरम्मि तत्तिय - मविणस्सर - भोगभूवाणं ॥२८९॥

प ३ । प २ । प १ ।

अर्थ—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भोगभूमिज तिर्यंचोंकी आयु क्रमशः तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य प्रमाण है। अविनश्वर भोगभूमियोंमें जघन्य एवं उत्कृष्ट आयु उक्त तीन प्रकार ही है ॥ २८९ ॥

---

१. ब. जदि। २. द. क. ब. गिरिदो।

समय-जुद-पुव्व-कोडी, जहण्ण-भोगज-जहण्णयं आऊ ।
उक्कस्समेक्क - पल्लं, मज्झिम - भेयं अणेयविहं ।।२९०।।

अर्थ—जघन्य भोगभूमिजोंकी जघन्य आयु एक समय अधिक पूर्वकोटि और उत्कृष्ट आयु एक पल्य-प्रमाण है। मध्यम आयुके अनेक प्रकार हैं ।।२९०।।

समय-जुद-पल्लमेक्कं, जहण्णयं मज्झिमम्मि अवराऊ ।
उक्कस्सं दो - पल्लं, मज्झिम - भेयं अणेय - विहं ।।२९१।।

अर्थ—मध्यम भोगभूमिमें जघन्य आयु एक समय अधिक एक पल्य और उत्कृष्ट आयु दो पल्य प्रमाण है। मध्यम आयुके अनेक प्रकार हैं ।।२९१।।

समय-जुद-दोण्णि-पल्लं, जहण्णयं तिण्णि-पल्लमुक्कस्सं ।
उक्कसिय - भोयभुए, मज्झिम - भेयं अणेय - विहं ।।२९२।।

आऊ समत्ता ।।८।।

अर्थ—उत्कृष्ट भोगभूमिमें जघन्य आयु एक समय अधिक दो पल्य और उत्कृष्ट तीन पल्य—प्रमाण है। मध्यम आयुके अनेक भेद हैं ।।२९२।।

आयुका वर्णन समाप्त हुआ ।।८।।

तिर्यञ्च आयुके बन्धक भाव—

आउग-बंधण-काले[1], भू - भेदट्ठी -[2]उरब्भयस्सिगा ।
चक्क-मलो व्व कसाया, छल्लेस्सा - मज्झिमंसेहिं ।।२९३।।

जे जुत्ता णर-तिरिया, सग-सग-जोगेहिं लेस्स-संजुत्ता ।
णारइ - देवा केई, णिय-जोग-तिरिक्खमाउ बंधंति ।।२९४।।

आउग-बंधण-भावं समत्तं ।।९।।

अर्थ—आयुके बन्धकालमें भूरेखा, हड्डी, मेढ़के सींग और पहियेके मल (ओंगन) सदृश क्रोधादि कषायोंसे संयुक्त जो मनुष्य और तियंच जीव अपने-अपने योग्य छह लेश्याओंके मध्यम अंशों सहित होते हैं तथा अपने-अपने योग्य लेश्याओं सहित कोई-कोई नारकी एवं देव भी अपने-अपने योग्य तियंच आयुका बन्ध करते हैं ।।२९३-२९४।।

आयु-बन्धक भावोंका कथन समाप्त हुआ ।।९।।

---

१ द. ब क. ज. कालो । २. उग्गुब्भयस्सिगा ।

तिर्यंचोंकी उत्पत्ति योग्य योनियाँ—

उप्पत्ती तिरियाणं, गब्भज-संमुच्छिमो त्ति पत्तेक्कं ।
सच्चित्त-सीद-संवद-सेदर-मिस्सा य जहा - जोग्गं ॥२९५॥

अर्थ—तिर्यञ्चोंकी उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे होती है। इनमेंसे प्रत्येक जन्मकी सचित्त, शीत, संवृत तथा इनसे विपरीत अचित्त, उष्ण, विवृत और मिश्र (सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत), ये यथायोग्य योनियाँ होती हैं ॥२९५॥

गब्भुब्भव[1]-जीवाणं, मिस्सं सच्चित्त - णामधेयस्स ।
सीदं उण्हं मिस्सं, संवद - जोणिम्मि मिस्सा य ॥२९६॥

अर्थ—गर्भसे उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सचित्त नामक योनिमेंसे मिश्र (सचित्ताचित्त), शीत, उष्ण, मिश्र (शीतोष्ण) और संवृत योनिमेंसे मिश्र (संवृत-विवृत) योनि होती है ॥२९६॥

संमुच्छिम-जीवाणं, सचित्ताचित्त-मिस्स-सीदुसिणा ।
मिस्सं संवद - विवुदं, णव-जोणीओ हु सामण्णा ॥२९७॥

अर्थ—सम्मूर्च्छन जीवोंके सचित्त, अचित्त, मिश्र, शीत, उष्ण, मिश्र, संवृत, विवृत और संवृत-विवृत, ये साधारणरूपसे नो ही योनियाँ होती हैं ॥२९७॥

तिर्यंचोंकी योनियोंका प्रमाण—

पुढवी-आइ[2]-चउक्के, णिच्चिदरे सत्त-लक्ख पत्तेक्कं ।
दस लक्खा रुक्खाणं, छल्लक्खा वियल-जीवाणं ॥२९८॥

पंचक्खे चउ-लक्खा, एवं बासट्ठि-लक्ख-परिमाणं ।
णाणाविह - तिरियाणं, होंति हु जोणी विसेसेणं ॥२९९॥

एवं जोणी समत्ता ॥१०॥

अर्थ—पृथिवी आदिक चार तथा नित्यनिगोद एवं इतरनिगोद इनमें प्रत्येकके सात लाख, वृक्षोंके दस लाख, विकल-जीवोंके छह लाख और पंचेन्द्रियोंके चार लाख, इसप्रकार विशेष रूपसे नाना प्रकारके तिर्यंचोंके ये बासठ लाख प्रमाण योनियाँ होती हैं ॥२९८-२९९॥

इसप्रकार योनियोंका कथन समाप्त हुआ ॥१०॥

---

१. द. ब. गब्भुविभव । २. द. ब. क. ज. आउ ।

तिर्यंचोंमें सुख-दुःखकी परिकल्पना—

सव्वे भोगभुवाणं, संकप्पवसेण होइ सुहमेक्कं ।
कम्मावणि-तिरियाणं, सोक्खं दुक्खं च संकप्पो ॥३००॥

सुह-दुक्खं समत्तं ॥११॥

अर्थ—सब भोगभूमिज तिर्यंचोंके संकल्पवश केवल एक ही (मात्र) सुख होता है और कर्मभूमिज तिर्यंच जीवोंके सुख एवं दुःख दोनोंकी कल्पना होती है ॥३००॥

सुख-दुःखका वर्णन समाप्त हुआ ॥११॥

तिर्यचोंके गुणस्थानोंका कथन—

तेत्तीस-भेद-संजुद-तिरिक्ख-जीवाण सव्व-कालम्मि ।
मिच्छत्त - गुणट्ठाणं, वोच्छं सण्णीण तं माणं ॥३०१॥

अर्थ—संज्ञी (पर्याप्त) जीवोंको छोड़कर शेष तैंतीस प्रकारके भेदोंसे युक्त तिर्यच जीवोंके सब कालमें एक मिथ्यात्व गुणस्थान रहता है। अब संज्ञी जीवोंके गुणस्थान-प्रमाणका कथन करते हैं ॥३०१॥

पण-पण अज्जाखंडे, भरहेरावदम्मि मिच्छ-गुणठाणं ।
अवरे वरम्मि पण गुणठाणाणि कयाइ दीसंति ॥३०२॥

अर्थ—भरत और ऐरावत क्षेत्र स्थित पाँच-पाँच आर्यखण्डोंमें जघन्य रूपसे एक मिथ्यात्व गुणस्थान और उत्कृष्ट रूपसे कदाचित् पाँच गुणस्थान भी देखे जाते हैं ॥३०२॥

पंच-विदेहे सट्ठी, समण्णिद-सद-अज्जखंडए तत्तो ।
विज्जाहर - सेढीए, बाहिरभागे सयंपह - गिरीदो ॥३०३॥

सासण-मिस्स-विहीणा, ति-गुणट्ठाणाणि थोव-कालम्मि ।
अवरे वरम्मि पण गुणठाणाइ कयाइ दीसंति ॥३०४॥

अर्थ—पाँच विदेहक्षेत्रोंके एक सौ साठ आर्य-खण्डोंमें, विद्याधर श्रेणियोंमें और स्वयम्प्रभ-पर्वतके बाह्य भागमें सासादन एवं मिश्र गुणस्थानको छोड़ तीन गुणस्थान जघन्यरूपसे स्तोक कालके होते हैं। उत्कृष्टरूपसे पाँच गुणस्थान भी कदाचित् देखे जाते हैं ॥३०३-३०४॥

सव्वेसु वि भोगभुवे, दो गुणठाणाणि थोवकालम्मि ।
दीसंति चउ-वियप्पं, सव्व-मिलिच्छम्मि[1] मिच्छत्तं ॥३०५॥

अर्थ—सर्व भोगभूमियोंमें दो (मिथ्यात्व और अविरत स०) गुणस्थान और स्तोक-कालके लिए चार गुणस्थान देखे जाते हैं। सब म्लेच्छ खण्डोंमें एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है ॥३०५॥

जीवसमास आदिका वर्णन—

पज्जत्तापज्जत्ता, जीवसमासाणि सयल-जीवाणं ।
पज्जत्ति - अपज्जत्ती, पाणाओ होंति णिस्सेसा ॥३०६॥

अर्थ—सम्पूर्ण जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों जीव-समास, पर्याप्ति एवं अपर्याप्ति तथा सब ही प्राण होते हैं ॥३०६॥

चउ-सण्णा तिरिय-गदी, सयलाओ इंदियाओ छक्काया ।
एक्कारस जोगा तिय - वेदा कोहादिय - कसाया ॥३०७॥

छण्णाणा दो संजम, तिय-दंसण [2]दव्व-भावदो लेस्सा ।
छच्चेव य भविय - दुगं छस्सम्मत्तेहिं संजुत्ता ॥३०८॥

सण्णि-असण्णी होंति हु, ते आहारा तहा अणाहारा ।
णाणोवजोग - दंसण - उवजोग - जुदाणि ते सव्वे ॥३०९॥

एवं गुणठाणादि-समत्ता ॥१२॥

अर्थ—सब तिर्यंच जीवोंके चारों संज्ञाएँ, तिर्यंचगति, समस्त इन्द्रियाँ, छहों काय, ग्यारह योग (वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक और आहारक मिश्रको छोड़कर), तीनों वेद, क्रोधादिक चारों कषाय, छह ज्ञान (३ ज्ञान, ३ अज्ञान), दो संयम (असंयम एवं देशसंयम), केवलदर्शनको छोड़कर शेष तीन दर्शन, द्रव्य और भावरूपसे छहों लेश्याएँ, भव्यत्व-अभव्यत्व और छहों सम्यक्त्व होते हैं। ये सब तिर्यंच संज्ञी एवं असंज्ञी, आहारक एवं अनाहारक तथा ज्ञान एवं दर्शनरूप दोनों उपयोगों सहित होते हैं ॥३०७-३०९॥

इसप्रकार गुणस्थानादिका कथन समाप्त हुआ ॥१२॥

---

१. द. क. मेलच्छम्मि । २. ब. सव्व ।

तिर्यंचोंमें सम्यक्त्व ग्रहणके कारण—

केइ पडिबोहणेण य, केइ सहावेण तासु भूमीसुं ।
दट्ठूणं सुह - दुक्खं, केइ तिरिक्खा बहु–पयारा ।।३१०।।

जादि-भरणेण केई, केइ जिणिंदस्स महिम-दंसणदो ।
जिणबिंब-दंसणेण य, पढमुवसमं[1] वेदगं च गेण्हंति ।।३११।।

सम्मत्त-गहणं गदं ।।१३।।

अर्थ—उन भूमियोंमें कितने ही तिर्यंच जीव प्रतिबोधसे और कितने ही स्वभावसे भी प्रथमोपशम एवं वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत प्रकारके तिर्यंचोंमेंसे कितने ही सुख–दु:खको देखकर, कितने ही जातिस्मरणसे, कितने ही जिनेन्द्र महिमाके दर्शनसे और कितने ही जिनबिम्बके दर्शनसे प्रथमोपशम एवं वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करते हैं ।।३१०–३११।।

इसप्रकार सम्यक्त्व ग्रहणका कथन समाप्त हुआ ।।१३।।

तिर्यंच जीवोंकी गति–आगति—

पुढवि-प्पहुदि-वणप्फदि-अंतं वियला य कम्म-णर-तिरिए ।
ण लहंति तेउ - वाउ, मणुवाउ अणंतरे जम्मे ।।३१२।।

अर्थ—पृथिवीको आदि लेकर वनस्पतिकायिक पर्यन्त स्थावर और विकलेन्द्रिय जीव कर्म-भूमिज मनुष्य एवं तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं। परन्तु विशेष इतना है कि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव अनन्तर जन्ममें मनुष्यायु नहीं पाते हैं ।।३१२।।

बत्तीस-भेद-तिरिया, ण होंति कइयाइ भोग-सुर-णिरए ।
सेढिघणमेत्त - लोए, सव्वे अवखेसु जायंति ।।३१३।।

अर्थ—बत्तीस प्रकारके तिर्यंच जीव, भोगभूमिमें तथा देव और नारकियोंमें कदापि उत्पन्न नहीं होते। शेष जीव श्रेणीके घनप्रमाण लोकमें सर्वत्र (कहीं भी) उत्पन्न होते हैं ।।३१३।।

विशेषार्थ—गाथा २८२ में तिर्यंच जीवोंके ३४ भेद कहे हैं इनमेंसे संज्ञी पर्याप्त और असंज्ञी पर्याप्त (जीवों) को छोड़कर शेष ३२ प्रकारके तिर्यंच जीव भोगभूमिमें तथा देव और नारकियोंमें कदापि उत्पन्न नहीं होते ।

---

१. द. ब. क. ज. पढमुवसमे ।

पढम-धरंतमसण्णी, भवणतिए सयल-कम्म-णर-तिरिए ।
सेढिघणमेत्त - लोए, सव्वे अक्खेसु जायंति ॥३१४॥

अर्थ—असंज्ञीजीव प्रथम पृथिवीके नरकोंमें, भवनत्रिकमें और समस्त कर्मभूमियोंके मनुष्यों एवं तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं। ये सब श्रेणीके घनप्रमाण लोकमें कहीं भी पैदा होते हैं ॥३१४॥

संखेज्जाउव-सण्णी, सदर-सहस्सारओ त्ति जायंति ।
णर-तिरिए णिरएसु, वि संखातीदाउ जाव ईसाणं ॥३१५॥

अर्थ—संख्यातवर्षकी आयुवाले संज्ञी तिर्यंच जीव शतार-सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त (देवोंमें) तथा मनुष्य, तिर्यंच और नारकियोंमें भी उत्पन्न होते हैं। परन्तु असंख्यातवर्ष की आयुवाले संज्ञी जीव ईशान कल्प पर्यन्त ही उत्पन्न होते हैं ॥३१५॥

चोत्तीस-भेद-संजुद-तिरिया हु अणंतरम्मि जम्मम्मि ।
ण हुंति सलाग - णरा, भजणिज्जा णिव्वुदि-पवेसे ॥३१६॥

एवं संकमणं गदं ॥१४॥

अर्थ—चौंतीस भेदोंसे संयुक्त तिर्यंच जीव निश्चय ही अनन्तर जन्ममें शलाका-पुरुष नहीं होते। परन्तु मुक्ति-प्रवेशमें ये भजनीय हैं। अर्थात् अनन्तर जन्ममें ये कदाचित् मुक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं ॥३१६॥

इसप्रकार संक्रमणका कथन समाप्त हुआ ॥१४॥

तिर्यंच जीवोंके प्रमाणका चौंतीस पदोंमें अल्पबहुत्व—

एत्तो चोत्तीस-पदमप्पबहुलं वत्तइस्सामो। तं जहा—सव्वत्थोवा तेउकाइय-बादर-पज्जत्ता । $\overset{८}{रि}$ **। पंचेंदिय - तिरिक्ख - सण्णि - अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा** $\frac{=}{४}$ । ४ । ६५५३६ । ७ । ७ । $\frac{१}{५}$ । **सण्णि-पज्जत्ता संखेज्जगुणा** $\frac{=}{४}$ । ४ । ६५५३६ । ७ । ७ । $\frac{४}{५}$ । **चउरिंदिय-पज्जत्ता संखेज्जगुणा** $\frac{\equiv}{५}$ $\frac{१}{४}$ । $\frac{५८३६}{६५६१}$ । **पंचेंदिय-तिरिक्खा असण्णि-पज्जत्ता विसेसाहिया** $\frac{\equiv}{५}$ $\frac{१}{४}$ । $\frac{५८६४}{६५६१}$ । **रिण रासि** $\frac{=}{४}$ । ६५५३६ ।

— २ मू । $\overline{१ । ३ । मू}$ । $\frac{=}{४}$ । ६५५३६ । ५ ।

बीइंदिय-पज्जत्ता विसेसाहिया $\frac{\equiv}{५}$ $\frac{१}{४}$ । $\frac{६१२०}{६५६१}$ ।

तीइंदिय-पज्जत्ता विसेसाहि $\frac{\equiv}{५}$ $\frac{१}{४}$ । $\frac{८४२४}{६५६१}$ ।

चउरिंदिय-असण्णि-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा

५ । ५८६४
=/४ । ३/४ । ५८३३/६८६१ । रि | रिण =/४ । ६५५३६ । ७ । ७ । १/५ |

चउरिंदिय-अपज्जत्ता विसेसाहिया
५ । ५८३६ ।
= । ५८६४ । रि ।
४ । ४ । ६५६१ ।

तीइंदिय-अपज्जत्ता विसेसाहिया
५ । ८४२४
= । ६१२० । रि ।
४ । ४ । ६५६१ ।

बीइंदिय-अपज्जत्ता विसेसाहिया
५ । ६१२० ।
= । ८४२४ । रि ।
४ । ४ । ६५६१ ।

अपदिट्ठिद-पज्जत्ता असंखेज्जगुणा =/४ ९ ९ ९ ।
प
रि

पदिट्ठिद-पज्जत्ता असंखेज्जगुणा =/४ ९ ९ ।
प
रि

पुढवि-बादर-पज्जत्ता-असंखेज्जगुणा =/४ ९ ।
प
रि

आउ-बादर-पज्जत्ता असंखेज्जगुणा =/४ |
प
रि

वाउ-बादर-पज्जत्ता असंखेज्जगुणा ≡ ७ ।

अपदिट्ठिद-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ≡ रि रिण =/४ । ९ । ९ । ९ ।
प
रि

पदिट्ठिद-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ≡ रि ≡ रि रिण =/४ । ९ । ९ ।
प
रि

तेउ-बादर-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ≡ रि १/९ रिण ८/रि ।

पुढवि-बादर-अपज्जत्ता विसेसाहिया ≡ रि १०/९ १/९ रिण ≡/(४ प रि) । ९ ।

आउ-बादर-अपज्जत्ता विसेसाहिया ≡ रि १०/९ १०/९ १/९ रिण ≡/(४ प रि) ।

वाउ[1]-बादर-अपज्जत्ता विसेसाहिया ≡ रि १०/९ १०/९ १०/९ १/९ रिण ≡/७ ।

तेउ-सुहुम-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा ≡ रि ८/९ १/५ ।

पुढवि-सुहुम-अपज्जत्ता विसेसाहिया ≡ रि १०/९ ८/९ १/५ ।

आउ-सुहुम-अपज्जत्ता[2] विसेसाहिया ≡ रि १०/९ १०/९ ८/९ १/५ ।

वाउ-सुहुम-अपज्जत्ता विसेसाहिया ≡ रि १०/९ १०/९ १०/९ ८/९ १/५ ।

तेउकाय-सुहुम-पज्जत्ता संखेज्जगुणा ≡ रि ८/९ ४/५ ।

पुढवि-सुहुम-पज्जत्ता विसेसाहिया ≡ रि १०/९ ८/९ ४/५ ।

आउ-सुहुम-पज्जत्ता विसेसाहिया ≡ रि १०/९ १०/९ ८/९ ४/५ ।

वाउ-सुहुम-पज्जत्ता विसेसाहिया ≡ रि १०/९ १०/९ १०/९ ८/९ ४/५ ।

साहारण-बादर-पज्जत्ता-अणंतगुणा १३ ≡ १/९ १/७ ।

साहारण-बादर-अपज्जत्ता असंखेज्जगुणा १३ ≡ १/९ ८/७ ।

साहारण-सुहुम-अपज्जत्ता[3] असंखेज्जगुणा १३ ≡ १/९ ८/५ ।

साहारण-सुहुम-पज्जत्ता असंखेज्जगुणा १३ ≡ १/९ ८/५ ४/१ ।

एवमप्पबहुलं समत्तं ॥१५॥

---

१. द. ब. आउबादरपज्जत्ता । २. द. ब. पज्जत्ता । ३. द. ब. पज्जत्ता ।

अर्थ—अब यहाँसे आगे चौंतीस प्रकारके तिर्यंचोंमें अल्पबहुत्व कहते हैं। वह इसप्रकार है :—

(१) बादर तेजस्कायिक पर्याप्त जीव सबसे थोड़े हैं।

(२) इनसे असंख्यातगुणे पंचेन्द्रिय तिर्यंच संज्ञी अपर्याप्त हैं।

(३) इनसे संख्यातगुणे संज्ञी पर्याप्त हैं।

(४) इनसे संख्यातगुणे चार इन्द्रिय पर्याप्त हैं।

(५) इनसे विशेष अधिक पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्त हैं।

(६) इनसे विशेष अधिक दो इन्द्रिय पर्याप्त हैं।

(७) इनसे विशेष अधिक तीन इन्द्रिय पर्याप्त हैं।

(८) इनसे असंख्यात गुणे असंज्ञी अपर्याप्त हैं।

(९) इनसे विशेष अधिक चार इन्द्रिय अपर्याप्त हैं।

(१०) इनसे विशेष अधिक तीन इन्द्रिय अपर्याप्त हैं।

(११) इनसे विशेष अधिक दो इन्द्रिय अपर्याप्त हैं।

(१२) इससे असंख्यातगुणे अप्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येक हैं।

(१३) इनसे असंख्यातगुणे प्रतिष्ठित पर्याप्त प्रत्येक जीव हैं।

(१४) इनसे असंख्यातगुणे पृथिवीकायिक बादर पर्याप्त जीव हैं।

(१५) इनसे असंख्यातगुणे बादर जलकायिक पर्याप्त जीव हैं।

(१६) इनसे असंख्यातगुणे बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव हैं।

(१७) इनसे असंख्यातगुणे अप्रतिष्ठित अपर्याप्त हैं।

(१८) इनसे असंख्यातगुणे प्रतिष्ठित अपर्याप्त हैं।

(१९) इनसे असंख्यातगुणे तेजस्कायिक बादर अपर्याप्त हैं।

(२०) इनसे विशेष अधिक पृथिवीकायिक बादर अपर्याप्त जीव हैं।

(२१) इनसे विशेष अधिक जलकायिक बादर अपर्याप्त जीव हैं।

(२२) इनसे विशेष अधिक वायुकायिक बादर अपर्याप्त जीव हैं।

(२३) इनसे असंख्यातगुणे तेजस्कायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं।

(२४) इनसे विशेष अधिक पृथिवीकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं।

(२५) इनसे विशेष अधिक जलकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं ।

(२६) इनसे विशेष अधिक वायुकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं ।

(२७) इनसे संख्यातगुणे तेजस्कायिक सूक्ष्म पर्याप्त हैं ।

(२८) इनसे विशेष अधिक पृथिवीकायिक सूक्ष्म पर्याप्त हैं ।

(२९) इनसे विशेष अधिक जलकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त हैं ।

(३०) इनसे विशेष अधिक वायुकायिक सूक्ष्म पर्याप्त हैं ।

(३१) इनसे अनन्तगुणे साधारण बादर पर्याप्त हैं ।

(३२) इनसे असंख्यात गुणे साधारण बादर अपर्याप्त हैं ।

(३३) इनसे असंख्यातगुणे साधारण सूक्ष्म अपर्याप्त हैं । और

(३४) इनसे संख्यातगुणे साधारण सूक्ष्म पर्याप्त हैं ।

इसप्रकार अल्पबहुत्वका कथन समाप्त हुआ ।।१५।।

सर्व जघन्य अवगाहनाका स्वामी—

ओगाहणं तु अवरं, सुहुम-णिगोदस्सपुण्ण-लद्धिस्स ।
अंगुल - असंखभागं, जादस्स य तदिय-समयम्मि ।।३१७।।

अर्थ—सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य अवगाहना पायी जाती है ।।३१७।।

सर्वोत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण—

तत्तो पदेस-वड्ढो, जाव य दीहं तु जोयण-सहस्सं ।
तस्स दलं विक्खंभं, तस्सद्धं बहलमुक्कस्सं ।।३१८।।

अर्थ—तत्पश्चात् एक हजार योजन लम्बे, इससे आधे अर्थात् पाँच सौ योजन चौड़े और इससे आधे अर्थात् ढाईसौ योजन मोटे शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त प्रदेश-वृद्धि होती गई है ।।३१८।।

एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यन्त उत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण—

जोयण-सहस्समहियं, बारस कोसूणमेक्कमेक्कं च ।
दीह-सहस्सं पम्मे, वियले सम्मुच्छिमे महामच्छे ।।३१९।।

१००० । १२ । ३/४ । १ । १००० ।

अर्थ—कुछ अधिक एक हजार (१०००) योजन, बारह योजन, एक कोस कम एक योजन, एक योजन और एक हजार (१०००) योजन यह क्रमशः पद्म, विकलेन्द्रिय जीव और सम्मूर्च्छन महामत्स्यकी अवगाहनाका प्रमाण है ।।३१९।।

पर्याप्त त्रस जीवोंमें जघन्य अवगाहनाके स्वामी—

बि-ति-चउ-पुण्ण-जहण्णे, अणुद्धरी - कुंथु-काण-मच्छीसु ।
सित्थय - मच्छोगाहं, विंदंगुल-संख-संख-गुणिद-कमा ।।३२०।।

६/७७७७	६/७७७	६/७७	६/७

अर्थ—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें क्रमशः अनुन्धरी, कुन्थु और कानमक्षिका तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें सिक्थक-मत्स्यके जघन्य अवगाहना होती है । इनमेंसे अनुन्धरीकी अवगाहना घनांगुलके संख्यातवेंभागप्रमाण और शेष तीनकी उत्तरोत्तर क्रमशः संख्यातगुणी है ।।३२०।।

विशेषार्थ—पर्याप्त दो इन्द्रिय अनुन्धरीकी जघन्य अवगाहना चार बार संख्यातसे भाजित घनांगुल प्रमाण अर्थात् ६/७७७७ है । पर्याप्त तीन इन्द्रिय कुन्थुकी जघन्य अवगाहना तीन बार संख्यातसे भाजित घनांगुल (६/७७७) प्रमाण है । पर्याप्त चार इन्द्रिय कानमक्षिकाकी जघन्य अवगाहना दो बार संख्यातसे भाजित घनांगुल (६/७७) प्रमाण है और पर्याप्त पंचेन्द्रिय तन्दुल मत्स्यकी जघन्य अवगाहना एक बार संख्यातसे भाजित घनांगुल (६/७) प्रमाण है ।

नोट—संदृष्टिमें ६ का अंक घनांगुलके और ७ का अंक संख्यातके स्थानीय हैं ।

अवगाहनाके विकल्पोंका क्रम—

एत्थ ओगाहण-वियप्पं वत्तइस्सामो । तं जहा—सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स तदिय-समयतब्भवत्थस्स एगमुस्सेह - घणंगुलं ठविय तप्पाओग्ग - पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण भागे हिदे वलद्धं एदिस्से सव्व-जहण्णोगाहणा-पमाणं होदि ।।

अर्थ—अब यहाँ अवगाहनाके विकल्प कहते हैं। वे इसप्रकार हैं—उत्पन्न होनेके तीसरे समयमें उस भवमें स्थित सूक्ष्मनिगोदिया(१)-लब्ध्यपर्याप्त जीवकी सर्व जघन्य अवगाहनाका प्रमाण, एक उत्सेध-घनांगुल रखकर उसके योग्य पल्योपमके असंख्यातवें भागसे भाजित करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना है ॥

एदस्स उवरि एग-पदेसं वड्ढिदे सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स मज्झिमोगाहण-वियप्पं होदि। तदो दु-पदेसुत्तर-ति-पदेसुत्तर-चदु-पदेसुत्तर-जाव सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा-णुवरि जहण्णोगाहणा रूऊणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तं वड्ढिदा[1] त्ति। ताधे सुहुम-वाउकाइय-लद्धि-[2]अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—इसके ऊपर एक प्रदेशकी वृद्धि होनेपर सूक्ष्म-निगोदिया-लब्ध्यपर्याप्तकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प होता है। इसके पश्चात् दो प्रदेशोत्तर, तीन प्रदेशोत्तर एवं चार प्रदेशोत्तर क्रमशः सूक्ष्मनिगोदिया-लब्ध्यपर्याप्तकी सर्व-जघन्य अवगाहनाके ऊपर, यह जघन्य अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो, उतनी बढ़ जाती है। उस समय सूक्ष्म वायुकायिक(२) लब्ध्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

एदमवि सुहुमणिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स मज्झिमोगाहियाण वियप्पं होदि। तदो इमा ओगाहणा पदेसुत्तर-कमेण वड्ढावेदव्वा। तदणंतरोगाहणा रूवूणावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं वड्ढिदो त्ति। ताधे सुहुम-तेउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स-सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—यह भी सूक्ष्म-निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तककी मध्यम अवगाहनाका विकल्प है। तत्पश्चात् इस अवगाहनाके ऊपर प्रदेशोत्तर क्रमसे वृद्धि करना चाहिए। इसप्रकार वृद्धिके होनेपर वह अनन्तर अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र वृद्धिको प्राप्त हो जाती है। तब सूक्ष्म तेजस्कायिक(३) लब्ध्यपर्याप्तकका सर्वजघन्य अवगाहना स्थान प्राप्त होता है ॥

एदमवि पुव्विल्ल-दोण्णं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं होदि। पुणो एदस्सुवरिम-पदेसुत्तर-कमेण इमा ओगाहणा रूऊणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तं वड्ढिदो त्ति। ताधे सुहुम-आउकाइय-लद्धि[3]-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

---

१. द. ब. क. ज. वड्ढीदो त्ति। २. द. ब. पज्जत्तयस्स। ३. द. ब. लदपज्जत्तयस्स।

अर्थ—यह भी पूर्वोक्त दो जीवोंकी मध्यम अवगाहना का ही विकल्प होता है। पुनः इसके ऊपर प्रदेशोत्तर-क्रमसे वृद्धि होनेपर यह अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित मात्र वृद्धिको प्राप्त हो जाती है। तब सूक्ष्म जलकायिक(४)-लब्ध्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना प्राप्त होती है ।।

एवमवि पुव्विल्ल-तिण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं होदि । तदो पदेसुत्तर-कमेण चउण्हं जीवाण मज्झिमोगाहण-वियप्पं वट्टदि जाव इमा श्रोगाहणा रूवूणावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-पुढविकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—यह भी पूर्वोक्त तीन जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प है। पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे चार जीवोंकी मध्यम अवगाहना चालू रहती है। जब यह अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र वृद्धिको प्राप्त होती है, तब सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(५) लब्ध्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना ज्ञात होती है ।।

तदो पहुदि पदेसुत्तर-कमेण पंचण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वट्टदि । इमा श्रोगाहणा रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-वाउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—यहाँसे लेकर प्रदेशोत्तर क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहना चालू रहती है। यह अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र वृद्धि प्राप्त हो जाती है। तब बादर वायुकायिक(६) लब्ध्यपर्याप्तककी सर्व-जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तत्तो उवरि पदेसुत्तर-कमेण छण्णं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वट्टदि जाव इमा श्रोगाहणा रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तं वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-तेउकाइय-अपज्जत्तस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—इसके ऊपर प्रदेशोत्तर क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प प्रारम्भ रहता है। जब यह अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र वृद्धिको प्राप्त होती है, तब बादर तेजस्कायिक(७)-अपर्याप्तककी सर्व-जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहणा-वियप्पं वड्ढदि जाव इमा ओगाहणामुवरि [1]रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिद-तदणंतरोगाहण-पमाणं वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-आउ-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ – पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चालू रहता है जब इस अवगाहनाके ऊपर एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित उस अनन्तर अवगाहना का प्रमाण बढ़ चुकता है, तब बादर जलकायिक(८) लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वड्ढदि जाव तदणंतरोवगाहणा रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-पुढवि-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चालू रहता है । जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है, तब बादर पृथिवीकायिक(९) लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण णवण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि जाव तदणंतरोगाहणा रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-णिगोद-जीव-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णोगाहणा होदि ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उपर्युक्त नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है । जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवेंभागसे गुणितमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है, तब बादर निगोद(१०)-लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी सर्व जघन्य अवगाहना होती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि एदिस्से ओगाहणाए उवरि इमा ओगाहणा रूऊण - पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं वड्ढिदो त्ति । तादे णिगोद-पदिट्ठिद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

---

१. द. ब. रूऊणा ।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे उक्त दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है, जब इस अवगाहनाके ऊपर यह अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित-मात्र वृद्धिको प्राप्त हो चुकती है, तब निगोदप्रतिष्ठित(११) लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण एक्कारस-जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि जाव इमा ओगाहणा-मुवरि रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिद-तदणंतरोगाहणमेत्तं वड्ढिदो[1] त्ति । ताहे[2] बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेय-सरीर-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णो-गाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे उक्त ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है, जब इस अवगाहनाके ऊपर एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित तदनन्तर अवगाहना प्रमाण वृद्धि हो चुकती है, तब बादर वनस्पतिकायिक(१२)-प्रत्येक शरीर लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण बारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि तदणं-तरोवगाहणा रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बीइंदिय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उक्त बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (उस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त हो चुकती है, तब दो इन्द्रिय(१३) लब्ध्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पहुदि पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि जाव तदणंतरोगाहण-रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तदो तीइंदिय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् यहाँसे आगे प्रदेशोत्तर-क्रमसे उक्त तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है जब तदनन्तर अवगाहना-विकल्प एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (उस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त हो चुकती है, तब तीन इन्द्रिय(१४) लब्ध्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

---

१. द. ब. वड्ढिदि । २. द. ज. तदे ।

तदो पदेसुत्तर - कमेण चोद्दसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वड्ढदि तदणंतरोगाहणं रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे चउरिंदिय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—इसके पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उक्त चौदह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (उस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त हो चुकती है, तब चार-इन्द्रिय(१५) लब्ध्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण पण्णारसण्हं जीवाण मज्झिमोगाहण - वियप्पं वड्ढदि तदणंतरोगाहणा रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे[1] पंचेंदिय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—इसके पश्चात् प्रदेशोत्तर क्रमसे उक्त पन्द्रह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है जब तदनन्तर अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त कर लेती है, तब पंचेन्द्रिय(१६)-लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण सोलसण्हं [जीवाण] मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-वड्ढिदो त्ति । तदो सुहुम-णिगोद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णा ओगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उक्त सोलह [जीवोंकी] मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है, जब तक इसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि प्राप्त होती है। पश्चात् सूक्ष्म-निगोद(१७)-निर्वृत्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं होदि जाव तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर - क्रमसे उक्त सत्तारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प होता है जब इसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि हो जाती है । तब सूक्ष्मनिगोद(१८)-लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।

---

१. द. तदे ।

तदुवरि णत्थि[1] सुहुम-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स ओगाहण-वियप्पं, सव्वुक्कस्सोगाहणं [2]पत्तत्तादो। तदुवरि सुहुम-वाउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तय-प्पहुदि सोलसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि, तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसणूण-पंचेंदिय-लद्धि-अपज्जत्त-जहण्णोगाहणा रूऊणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—इसके ऊपर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी अवगाहनाका विकल्प नहीं रहता, क्योंकि वह उत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त हो चुका है, इसलिए इसके आगे सूक्ष्मवायुकायिक-लब्ध्यपर्याप्तकको आदि लेकर उक्त सोलह जीवोंकी ही मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है। जब इसके योग्य असंख्यात प्रदेश कम पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है, तब सूक्ष्मनिगोद(१९) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पहुदि पदेसुत्तर-कमेण सत्तारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि तदणंतरोगाहणावलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदेगभागमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-णिगोद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—फिर यहाँसे आगे प्रदेशोत्तर-क्रमसे तदनन्तर अवगाहनाके आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र (इस)के ऊपर बढ़ जाने तक उक्त सत्तरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है, तब सूक्ष्मनिगोद(२०) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो उवरि णत्थि तस्स ओगाहण-वियप्पा। तं कस्स होदि? से काले पज्जत्तो होदि त्ति ठिदस्स। तदो पहुदि पदेसुत्तर-कमेण सोलसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि जाव इमा ओगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स ओगाहण-वियप्पं थक्कदि, सव्व-उक्कस्सोगाहण[3]-पत्तत्तादो। तदो पदेसुत्तर - कमेण पण्णारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-वाउकाइय-णिव्वत्ति अपज्जत्तयस्स सव्व जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

---

१. द. ब. क. ज. अट्ठिद। २. द. ब. क. ज. पत्तं तादो। ३. द. ब. गाहणं पत्तं तदो।

अर्थ—इसके आगे उस सूक्ष्म निगोद निर्वृ त्यपर्याप्तककी अवगाहनाके विकल्प नहीं रहते। यह अवगाहना किसके होती है? अनन्तरकालमें पर्याप्त होनेवालेके उक्त अवगाहना होती है। यहाँसे आगे प्रदेशोत्तर-क्रमसे अवगाहनाके आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र (उस)के ऊपर बढ़ जाने तक उक्त सोलह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता जाता है। इस समय सूक्ष्म-निगोद(२१) निर्वृ त्ति-पर्याप्तककी अवगाहनाका विकल्प स्थगित हो जाता है, क्योंकि वह सर्वोत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त हो चुका है। पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होनेतक पन्द्रह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है। तदनन्तर सूक्ष्म-वायुकायिक(२२) निर्वृ त्यपर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सोलसण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-वड्ढिदो त्ति। तावे सुहुम-वाउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स ओगाहण[1]-वियप्पं थक्कदि, समुक्कस्सोगाहण-पत्तादो। तादे पदेसुत्तर - कमेण पण्णारसण्हं च मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि। केत्तियमेत्तेण? सुहुम-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तस्स उक्कस्सोगाहणं रूऊणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तं हेट्ठिम तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसेणूणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-वाउकाइय-णिव्वत्ति - पज्जत्तयस्स जहण्णो गाहणा दीसइ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक सोलह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है। तब सूक्ष्मवायुकायिक(२३) लब्ध्यपर्याप्तककी अवगाहनाका विकल्प स्थगित हो जाता है, क्योंकि वह उत्कृष्ट अवगाहनाको पा चुका है। तब प्रदेशोत्तर-क्रमसे पन्द्रह जीवोंके समान मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता रहता है। कितने मात्रसे? सूक्ष्मनिगोद निर्वृ त्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम आवलीके असंख्यावें भागसे गुणित-मात्र अधस्तन उसके योग्य असंख्यात प्रदेश कम उसके ऊपर वृद्धि होने तक। तब सूक्ष्म-वायु-कायिक(२४) निर्वृ त्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है।

तदो पदेसुत्तर - कमेण सोलसण्हं ओगाहण - वियप्पं वच्चदि इमा ओगाहणा आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदेग - खंडं वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम - वाउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सोलह जीवोंकी अवगाहनाका विकल्प तब तक चालू रहता है, जब तक ये अवगाहनायें आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भाग प्रमाण वृद्धिको

---

१. द. ब. संमोगाहणं।

प्राप्त न हो जायें। उस समय सूक्ष्म-वायुकायिक(२५) निर्वृत्ति-अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण पण्णारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदिभागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-वाउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा होदि । तदो पदेसुत्तर-कमेण चोद्दसण्हं ओगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढदो त्ति । तादे सुहुम-तेउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पन्द्रह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक कि तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक खण्ड-प्रमाण इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो चुके । उस समय सूक्ष्म-वायुकायिक(२६) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना होती है । तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक बढ़ता जाता है । उस समय सूक्ष्म तेजस्कायिक(२७) निर्वृत्ति-अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण पण्णारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढदो त्ति । तादे सुहुम-तेउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स ओगाहण-वियप्पं थक्कदि, स उक्कस्सोगाहणं पत्तत्तादो । तदो पदेसुत्तर-कमेण चोद्दसण्हं ओगाहण-वियप्पं वच्चदि । केत्तियमेत्तेण ? सुहुम-वाउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा रूऊणावलियाए असंखेज्जदि - भागेण गुणिदं तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसेणूणं तदुवरि वड्ढदो त्ति । तादे सुहुम - तेउकाइय - णिव्वत्ति पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक पन्द्रह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है । उस समय सूक्ष्मतेजस्कायिक(२८)-लब्ध्यपर्याप्तककी अवगाहनाका विकल्प विश्रान्त हो जाता है, क्योंकि वह उत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त हो चुका है। तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी अवगाहनाका विकल्प चलता रहता है । कितने मात्रसे ? सूक्ष्मवायुकायिक-निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणित इसके योग्य असंख्यात प्रदेश कम (उस)के ऊपर वृद्धिके होने तक । तब सूक्ष्मतेजस्कायिक(२९)-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण पण्णारसण्हं ओगाहण-वियप्पं गच्छदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडं वड्ढिदो त्ति। ताधे सुहुम-तेउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पन्द्रह जीवोंकी अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागप्रमाण वृद्धिको प्राप्त न हो जावे। उस समय सूक्ष्म-तेजस्कायिक(३०) निर्वृत्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण चोद्दसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए संखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । ताधे सुहुम-तेउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ। एत्तियमेत्ताणि चेव तेउकाइय जीवस्स ओगाहण-वियप्पा । कुदो ? समुक्कस्सोगाहण-वियप्पं पत्तं ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक कि तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र (इस)के ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो जावे, तब सूक्ष्म-तेजस्कायिक(३१) निर्वृत्ति पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। इतने मात्र ही तेजस्कायिक जीवकी अवगाहनाके विकल्प हैं, क्योंकि वह उत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त हो चुका है।

तादे पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पा-ओग्ग असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे सुहुम-आउकाइय - णिव्वत्ति - अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—इसके पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चालू रहता है जब तक कि उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि न हो चुके, तब फिर सूक्ष्म-जलकायिक(३२)-निर्वृत्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है।

तदो पदेसुत्तर-कमेण चोद्दसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पा-ओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । ताहे सुहुम-आउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्क-स्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। इस समय सूक्ष्म-जलकायिक(३३) लब्ध्य-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि। केत्तिय-मेत्तेण ? सुहुम-तेउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तुक्कस्सोगाहणं रूऊणावलियाए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तं पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तावे सुहुम-आउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता रहता है। कितने मात्रसे ? सूक्ष्मतेजस्कायिक निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाके एक कम आवलीके असंख्यातवें-भागसे गुणितमात्र पुनः उसके योग्य असंख्यात-प्रदशोंसे रहित इसके ऊपर वृद्धि होने तक। तब सूक्ष्मजलकायिक(३४)-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण चोद्दसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा[1] आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तावे सुहुम-आउकाइय-णिव्वत्ति-अप्पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चौदह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक कि तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो चुके। तब सूक्ष्म-जलकायिक(३५)-निर्वृत्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तावे सुहुम-आउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा होदि। एत्तियमेत्ता आउकाइय-जीवाणं ओगाहण-वियप्पा[2]। कुदो ? सव्वोक्कस्सोगाहणं पत्तादो[3] ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो चुके। उस समय सूक्ष्मजलकायिक(३६)-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट

---

१. द. ब. तदंतरोगाहणा। २. द. ब. वियप्पं। ३. द. ब. क. ज. पत्तं तादो।

अवगाहना होती है। इतने मात्र ही जलकायिक जीवोंकी अवगाहनाके विकल्प हैं, क्योंकि सर्वोत्कृष्ट अवगाहना प्राप्त हो चुकी है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण बारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह-जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चालू रहता है। तब सूक्ष्मपृथिवीकायिक(३७)-निर्वृत्य-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पहुदि पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-पुढवि-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—यहांसे आदि लेकर प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(३८)-लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो[1] पदेसुत्तर - कमेण बारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि। केत्तियमेत्तेण ? सुहुम-आउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं रूऊणावलियाए असंखेज्जविभागेण गुणिदमेत्तं पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसेणूणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प बढ़ता रहता है। कितने मात्रसे ? सूक्ष्म-जलकायिक-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाके एक कम आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र पुनः उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंसे कम इसके ऊपर वृद्धि होने तक। उस समय सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(३९) निर्वृत्तिपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण तेरसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेय-खंडमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे सुहुम-पुढवि-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ।।

---

१. द. ब. क. ज. तदा।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तेरह-जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है, जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो जाए। तब सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(४०) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो[1] पदेसुत्तर-कमेण बारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-भागं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तदो सुहुम-पुढवि-काइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ। तदोवरि सुहुम-पुढविकाइयस्स ओगाहण-वियप्पं णत्थि ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाको आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धि होने तक चलता रहता है। तत्पश्चात् सूक्ष्म-पृथिवीकायिक(४१)-निर्वृत्तिपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। इसके आगे सूक्ष्म-पृथिवीकायिककी अवगाहनाका विकल्प नहीं है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण एक्कारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-वाउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर-वायुकायिक(४२) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण बारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वड्ढदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-वाउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक बढ़ता रहता है। उस समय बादर वायुकायिक(४३) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

---

१. द. ब. तदा।

तदो पदेसुत्तर-कमेण एक्कारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि । तं केत्तिय-मेत्तेण ? इदि उत्ते सुहुम-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा रूऊण-पलिदोवमसंखेज्जदि-भागेण गुणिदं पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर - वाउकाइय - णिव्वत्ति - पज्जत्तयस्स जहण्णिया ओगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता रहता है। वह कितने मात्रसे ? इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि सूक्ष्म-पृथिवीकायिक निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाके एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित पुनः उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंसे हीन उसके ऊपर वृद्धि होने तक। उस समय बादर वायुकायिक(४४) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण बारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडियमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-वाउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे बारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक कि तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित मात्र इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है। तब बादर वायुकायिक(४५) निर्वृत्य पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण एक्कारसण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरो-गाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-वाउकाइय-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ । तदुवरि तस्स ओगाहण-वियप्पा णत्थि, सव्वुक्कस्सं पत्तत्तादो ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चालू रहता है, जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करनेपर एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त होती है। तब बादर वायुकायिक(४६) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है।

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पा-ओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे बादर - तेउकाइय - णिव्वत्ति - अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर तेजस्कायिक(४७)-निर्वृत्त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण-एक्कारसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्जदि-पदेसं वड्ढिदो[1] त्ति। तादे बादर-तेउकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सो-गाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर-तेजस्कायिक(४८)-लब्ध्य-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि बादर-वाउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिय पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-तेउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक बादर वायुकायिक-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणा करके पुनः इसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंसे रहित उसके ऊपर वृद्धि होती है। तब बादर-तेजस्कायिक(४९) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण एक्कारसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-तेउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे ग्यारह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहनाको आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धि न हो जावे। तब बादर-तेजस्कायिक(५०) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

---

१. द. ब. वड्ढिदि।

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेगभागं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे[1] बादर-तेउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ। [तदुवरि तस्स ओगाहण वियप्पं णत्थि, उक्कस्सोगाहणं पत्तणादो।]

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक तदनन्तर अवगाहनाको आवलीके असख्यातवें भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धि हो चुकती है। तब बादर-तेजस्कायिक(५१) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। [इसके आगे उसकी अवगाहनाके विकल्प नहीं हैं, क्योंकि वह उत्कृष्ट अवगाहनाको प्राप्त कर चुका है।]

तदो पदेसुत्तर - कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-आउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। इस समय बादर जलकायिक(५२)-निर्वृत्य-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं गच्छदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-आउ-लद्धि-अपज्जत्तयस्स[2] उक्कस्सोगाहणा दीसइ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर-जलकायिक(५३) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं गच्छदि रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिद-तेउकाइय-णिव्वत्ति पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-आउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ॥

---

१. द. ब. क. ज. तदे। २. द. ब. पज्जत्तयस्स।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित तेजस्कायिक निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना पुनः उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंसे हीन इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती। तब बादर जलकायिक(५४) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-आउकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यात भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक खण्ड प्रमाण इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती। तब बादर जलकायिक(५५) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरो-गाहणा आवलियाए असंखेज्जदि भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे बादर आउकाइय - णिव्वत्ति - पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ। तदोवरि णत्थि एदस्स ओगाहण-वियप्पं ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भाग प्रमाण इसके ऊपर नहीं बढ़ जाती। तब बादर जलकायिक(५६) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। इसके आगे उसकी अवगाहनाके विकल्प नहीं हैं ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो[1] त्ति। तादे बादर-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णो-गाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर-पृथिवीकायिक(५७) निर्वृत्त्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

---

१. द. ब. क. ज. वड्ढिदि।

तदो पदेसुत्तर - कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । ताधे बादर-पुढविकाइय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सो-गाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प इसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर पृथिवीकायिक(५८) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि । बादर आउकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागेण गुणिदमेत्तं तप्पाओग्ग असंखेज्ज-पदेसं परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । ताधे बादर पुढविकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक बादर जलकायिक-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम पल्योपम के असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र उसके योग्य असंख्यातप्रदेशोंसे रहित उसके ऊपर वृद्धि होनी है। तब बादर पृथिवीकायिक(५९) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । ताधे बादर-पुढवि-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहण दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है, जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित कर एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो चुके। तब बादर-पृथिवीकायिक(६०)-निर्वृत्ति-अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणा आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण-खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । ताधे बादर-पुढवि काइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—तब प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करके उसमेंसे एक खण्ड प्रमाण

उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती। तब बादर-पृथिवीकायिक(६१) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-णिगोद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर-निगोद(६२) निर्वृत्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-णिगोद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर निगोद(६३) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिद-बादर-पुढविकाइय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर - णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक एक कम पल्योपम असंख्यातवे भागसे गुणित बादर-पृथिवीकायिक-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना उसके योग्य असंख्यात प्रदशोंसे हीन होकर इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती। तब बादर निगोद(६४)-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं गच्छदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि - भागेण खंडिदेग - खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-णिगोद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प चलता है। जब तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित एक भागमात्र इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त हो जाती है तब बादर-निगोद(६५) निर्वृत्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित कर उसमेंसे एक भाग प्रमाण इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त न हो जावे। तब बादर-निगोद(६६) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर-निगोद(६७)प्रतिष्ठित-निर्वृत्त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सो-गाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चालू रहता है। तब बादर-निगोद (६८) प्रतिष्ठित लब्ध्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि बादर-णिगोद-णिव्वत्ति-पज्जत्त-उक्कस्सोगाहणं रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि - भागेण गुणिय पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसेणूणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति। तादे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चालू रहता है जब तक बादर-निगोद-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित होकर पुनः उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंसे रहित इसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती है। तब बादर-निगोद(६९) प्रतिष्ठित-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिदेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित करनेपर एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो चुकती। तब बादरनिगोद(७०) प्रतिष्ठित-निर्वृत्त्य-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं आवलियाए असंखेज्जदि-भागेण खंडिय तत्थेग-खंडं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चालू रहता है जब तक तदनन्तर अवगाहना आवलीके असंख्यातवें भागसे खण्डित कर उसमेंसे एक भाग प्रमाण उसके ऊपर वृद्धिको प्राप्त नहीं हो जाती। तब बादरनिगोद(७१) प्रतिष्ठित-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण पंचण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पा-ओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर-वनस्पतिकायिक(७२)-प्रत्येकशरीर-निर्वृत्त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेय-सरीर-लद्धि-अपज्जत्तयस्स-उक्क-स्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब बादर वनस्पतिकायिक (७३) प्रत्येकशरीर लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण पंचण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि - भागेण गुणिद-बादर-णिगोद-पदिट्ठिद-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स

उक्कस्सोगाहणं पुणो तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेस-परिहीणं तदुवरि वड्ढिदो त्ति । तादे बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता रहता है जब तक बादर-निगोद-प्रतिष्ठित-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाको एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणा करके पुनः उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंसे रहित उसके ऊपर वृद्धि नहीं हो जाती । तब बादर-वनस्पतिकायिक(७४) प्रत्येकशरीर-निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे बीइंदिय - लद्धि - अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात-प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब दो-इन्द्रिय(७५) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण पंचण्हं जीवाणं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे तीइंदिय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब तीन-इन्द्रिय(७६) लब्ध्य-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण चउण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे चउरिंदिय-लद्धि-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चार जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है । तब चार-इन्द्रिय(७७) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर - कमेण तिण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं[1] वड्ढिदो त्ति । तादे पंचिंदिय - लद्धि - अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा

---

१. द. ब. पदेस सवड्ढिदो ।

दीसइ। तदो एदमवि घणंगुलस्स असंखेज्जदि[1]-भागो। एत्तो उवरि ओगाहणा घणंगुलस्स संखेज्ज-भागो कत्थ वि घणंगुलो, कत्थ वि संखेज्ज-घणंगुलो त्ति घेत्तव्वं ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तीन जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चालू रहता है। तब पंचेन्द्रिय(७८) लब्ध्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। तब यह भी घनांगुलके असंख्यातवें भागसे है। इससे आगे अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भाग, कहीं पर घनांगुल प्रमाण और कहींपर संख्यात घनांगुल-प्रमाण ग्रहण करनी चाहिए ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण दोण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे तीइंदिय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दो जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता रहता है। तब तीनइन्द्रिय(७९) इन्द्रिय निर्वृ त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण तिण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे चउरिंदिय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तीन जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता है। तब चार-इन्द्रिय(८०) निर्वृ त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण चउण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति। तादे बीइंदिय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चार जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता है। तब दो इन्द्रिय(८१) निर्वृ त्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

---

१. द ब. असंखेयदिभागेण।

तदो पदेसुत्तर - कमेण पंचण्हं मज्झिमोगाहण - वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज-पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे पंचेंदिय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता है। तब पंचेन्द्रिय(८२) निर्वृत्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्णं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तप्पाओग्ग-असंखेज्ज पदेसं वड्ढिदो त्ति । तादे बीइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प उसके योग्य असंख्यात प्रदेशोंकी वृद्धि होने तक चलता है। तब दो इन्द्रिय(८३) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

ताव एदाणं गुणगार-रूवं विचारेमो-बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहण-पहुदि बीइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्त-जहण्णोगाहणमवसाणं जाव एदम्मि अंतराले[1] जादाणं सव्वाणं मिलिदे कित्तिया इदि उत्ते बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणं रूऊण-पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-भागेण गुणिदमेत्तं तदुवरि वड्ढिदो त्ति घेत्तव्वं । तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं तप्पाओग्ग-संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति। तादे तीइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स सव्व-जहण्णोगाहणा दीसइ ।।

अर्थ—अब इनकी गुणकार संख्याका विचार करते हैं—बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर निर्वृत्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाको लेकर दोइन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना तक इनके अन्तरालमें उत्पन्न सबके सम्मिलित करनेपर 'कितनी हैं' इसप्रकार पूछने पर बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाको एक कम पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो उतनी इसके ऊपर वृद्धि होती है, इसप्रकार ग्रहण करना चाहिए। पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना उसके योग्य संख्यातगुणी प्राप्त न हो जावे। तब तीन इन्द्रिय (८४) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी सर्व जघन्य अवगाहना दिखती है ।।

---

१. द. ब. क. ज. अन्तरालो।

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं ओगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहण - वियप्पं तप्पाओग्ग-संखेज्ज गुणं पत्तो[1] त्ति । तादे चउरिंदिय - णिव्वत्ति - पज्जत्तयस्स जहण्णो-गाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तब तक चलता है जब तक तदनन्तर अवगाहना-विकल्प उसके योग्य संख्यात-गुणा प्राप्त न हो जावे। तब चार इन्द्रिय (८५) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर - कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । तादे पंचेंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है। तब पंचेन्द्रिय(८६) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी जघन्य अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण दसण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । तादे तीइंदिय - णिव्वत्ति - अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दस जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है। तब तीनइन्द्रिय(८७) निर्वृत्त्यपर्याप्तक की उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण णवण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज - गुणं पत्तो त्ति । तादे चउरिंदिय - णिव्वत्ति - अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे नौ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता है। तब चारइन्द्रिय(८८) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण अट्ठण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज - गुणं पत्तो त्ति । तादे बीइंदिय - णिव्वत्ति - अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

---

१. द. ब. क. ज. पज्जत्तो ।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे आठ जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है। तब दोइन्द्रिय(८९) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण सत्तण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति। तादे बादर वणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स[1] उक्कस्सोगाहणा दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे सात जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता है। तब बादर-वनस्पतिकायिक(९०) प्रत्येकशरीर निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

तदो पदेसुत्तर-कमेण छण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति। तादे पंचेंदिय-णिव्वत्ति-अपज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे छह जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी प्राप्त होने तक चलता है। तब पंचेन्द्रिय(९१) निर्वृत्त्यपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ॥

त्रीन्द्रिय जीव (गोम्ही) की उत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तर-कमेण पंचण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति। [तादे तीइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ।] तं [2]कस्स होदि त्ति भणिदे तीइंदियस्स-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणा वट्टमाणस्स सयंपहाचल-परभाग-ट्ठिय-खेत्ते उप्पण्ण-गोहीए उक्कस्सोगाहणं कस्सइ जीवस्स दीसइ। तं केत्तिया इदि उत्ते उस्सेह-जोयणस्स तिण्णि-चउब्भागो आयामो [3]तदट्ठ-भागो विक्खंभो विक्खंभद्द[4]-बहलं। एदे तिण्णि वि परोप्परं गुणिय पमाण-घणंगुले कदे [5]एक्क-कोडि-उणवीस-लक्ख[6]-तेदाल-सहस्स-णव-सय-छत्तीस रूवेहि गुणिद - घणंगुला होंति। ६। ११९४३९३६।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पाँच जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है। [तब तीनइन्द्रिय(९२) निर्वृत्ति-

---

१. द. ब. पज्जत्तयस्स। २. द. ब. क. ज. अंतं-उक्कस्स। ३. द. ब. क. ज. तदद्धभागे। ४. द. ब. क. विक्खंभद्द। ५. द. क. एक्कक्कादीए, ब. एक्केकोडीए, ज. एक्कोकोडी। ६. द. ब. लक्खा।

पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है ।] यह अवगाहना किस जीवके होती है ? ऐसा पूछने पर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभाचलके बाह्य भागमें स्थित क्षेत्रमें उत्पन्न और उत्कृष्ट अवगाहनामें वर्तमान किसी गोम्हीके वह उत्कृष्ट अवगाहना होती है, यह उत्तर है । वह कितने प्रमाण है ? इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि उसका एक उत्सेध योजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग प्रमाण आयाम, इसके आठवें भाग प्रमाण विस्तार और विस्तारसे आधा बाहल्य है । इन तीनोंका परस्पर गुणा करके प्रमाण घनांगुल करनेपर एक करोड़ उन्नीस लाख तैंतालीस हजार नौ सौ छत्तीस रूपोंसे गुणित घनांगुल होते हैं ।

विशेषार्थ—असंख्यात द्वीपोंमें स्वयम्भूरमण अन्तिम द्वीप है, इस द्वीपके वलयव्यासके बीचों-बीच एक स्वयम्प्रभ नामक पर्वत है । इस पर्वतके बाह्य भागमें कर्मभूमिकी रचना है । उत्कृष्ट अवगाहना वाले दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय (त्रस) जीव वहीं पाये जाते हैं । यहाँ स्थित त्रीन्द्रिय जीव गोम्ही (चींटी) का व्यास उत्सेध (व्यवहार) योजनसे $\frac{३}{८}$ योजन (६ मील), लम्बाई $\frac{३}{१६}$ योजन ($\frac{३}{१}$ मील) और ऊँचाई $\frac{३}{६४}$ योजन ($\frac{३}{४}$ मील) है । जिसका घनफल ($\frac{३}{८}$ यो० × $\frac{३}{१६}$ यो० × $\frac{३}{६४}$ यो० =) $\frac{२७}{८१९२}$ उत्सेध घन योजन प्राप्त होता है ।

जबकि एक योजनके ७६८००० अंगुल होते हैं तब $\frac{२७}{८१९२}$ घन योजनके कितने अंगुल होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{२७}{८१९२}$ × ७६८००० × ७६८००० × ७६८००० घनांगुल होते हैं । ये उत्सेध घनांगुल हैं । ५०० उत्सेध घनांगुलोंका एक प्रमाणागुल होता है अतः उपर्युक्त उत्सेधांगुलोंके प्रमाणांगुल बनाने हेतु उन्हें ५०० के घनसे भाजित करनेपर $\frac{७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००}{५०० \times ५०० \times ५००}$ = ३६२३८७८६५६ होते हैं । इनका गोम्हीके शरीरके $\frac{२७}{८१९२}$ उत्सेध घन योजनोमें गुणा कर देनेपर ($\frac{२७}{८१९२}$ × ३६२३८७८६५६ =) संख्यात घनांगुल (६) प्राप्त होते हैं । यहाँ घनांगुलका चिन्ह ६ है ।

अथवा—$\frac{२७}{८१९२}$ × ३६२३८७८६५६ = ११९४३९३६ प्रमाण घनांगुल गोम्हीकी अवगाहनाका घनफल है ।

चतुरिन्द्रिय जीव (भ्रमर) की उत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तर-कमेण चदुण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । ताधे चउरिंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स-उक्कस्सोगाहणं दीसइ । तं कस्स होदि त्ति भणिदे सयंपहाचल-परभाग-ट्ठिय-खेत्ते उप्पण्ण-भमरस्स उक्कस्सोगाहणं कस्सइ दीसइ । तं केत्तिया इदि उत्ते उस्सेह-जोयणायामं अद्धं जोयणुस्सेहं जोयणद्ध-परिहि-विक्खंभं ठविय विक्खंभद्धमुस्सेह-गुणमायामेण गुणिदे उस्सेह - जोयणस्स तिण्णि

अट्ठभागा हवंति । तं चेदं $\frac{३}{८}$ । ते पमाण-घणंगुला कीरमाणे एक्कसय[1]-पंचतीस-कोडीए उणणउदि-लक्ख-चउवण्ण-सहस्स-चउ-सय-छण्णउदि-रूवेहिं गुणिद - घणंगुलाणि हवंति । तं चेदं । ६ । १३५८९५४४९६ ।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे चार जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी होने तक चलता रहता है। तब चारइन्द्रिय(९३) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। वह किस जीवके होती है, इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभाचलके बाह्य भागस्थ क्षेत्रमें उत्पन्न किसी भ्रमरके उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। वह कितने मात्र है, इसप्रकार कहने पर उत्तर देते हैं कि उत्सेध योजनसे एक योजन प्रमाण आयाम, आधा योजन ऊँचाई और अर्ध योजनकी परिधि प्रमाण विष्कम्भ को रखकर विष्कम्भके आधेको ऊँचाईसे गुणा करके फिर आयामसे गुणा करनेपर एक उत्सेध योजनके आठ भागोंमेंसे तीन भाग होते हैं। इनके प्रमाणांगुल करनेपर एक सौ पैंतीस करोड़ नवासी लाख चौपन हजार चारसो छयानबे रूपोंसे गुणित घनांगुल होते हैं। वह इसप्रकार है। ६ । १३५८९५४४९६ ।

विशेषार्थ—चतुरिन्द्रिय जीव भ्रमरके शरीरकी अवगाहनाका प्रमाण उत्सेध योजनोंसे १ योजन लम्बा, $\frac{१}{२}$ योजन ऊँचा और ($\frac{१}{२}$ × ३ =) १$\frac{१}{२}$ योजन चौड़ा है। उपर्युक्त कथनानुसार अर्ध योजन ऊँचाईकी परिधि ($\frac{३}{२}$ यो०) के प्रमाण स्वरूप विष्कम्भके अर्धभाग ($\frac{३}{२} \div \frac{२}{१}$) = $\frac{३}{४}$ यो० को ऊँचाई और आयामसे गुणित करनेपर उत्सेध योजनोंमें ($\frac{१}{१} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{४}$ =) $\frac{३}{८}$ घन यो० घनफल प्राप्त होता है। इसके प्रमाणांगुल बनानेके लिए = ($\frac{७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००}{५०० \times ५०० \times ५००}$ =) ३६२३८७८६५६ से गुणा करना चाहिए। यथा — $\frac{३}{८}$ × ३६२३८७८६५६ = संख्यात घनांगुल (६) अथवा १३५८९५४४९६ घनांगुल भ्रमरकी अवगाहनाका घनफल है।

द्वीन्द्रिय जीव (शंख) की उत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तर-कमेण तिण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति । [2]तावे बीइंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं होइ । तं कम्हि होइ त्ति भणिदे सयपहाचल-परभाग-ट्ठिय-खेत्ते उप्पण्ण - बीइंदियस्स (संखस्स) उक्कस्सोगाहणा कस्सइ दीसइ । तं केत्तिया इदि उत्ते बारस-जोयणायाम-चउ-जोयण-मुहस्स-खेत्तफलं—

---

१. द ज. एक्कसमयंकसमय, ब. क. एक्कसमयंकसेस य । २. द. ब. तदा ।

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे तीन जीवोंकी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यात-गुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है। तब दोइन्द्रिय(९४) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना होती है। यह कहाँ होती है ? इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभाचलके बाह्य भागमें स्थित क्षेत्रमें उत्पन्न किसी दोइन्द्रिय (शंख) की उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। वह कितने प्रमाण है ? ऐसा कहनेपर उत्तर देते हैं कि बारह योजन लम्बे और चार योजन मुखवाले (शंखका) क्षेत्रफल—

व्यासं[1] तावत् कृत्वा, वदन-दलोनं मुखार्ध-वर्ग-युतम् ।
द्विगुणं चदुर्विभक्तं, सनाभिकेऽस्मिन् गणितमाहुः ॥३२१॥

एदेण सुत्तेण खेत्तफलमाणिदे [2]तेहत्तरि-उस्सेह-जोयणाणि हवंति ॥७३॥

अर्थ—विस्तारको उतनी बार करके अर्थात् विस्तारको विस्तारसे गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो उसमेंसे मुखके आधे प्रमाणको कम करके शेषमें मुखके आधे प्रमाणके वर्गको जोड़ देनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसे दूना करके चारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे शंखक्षेत्रका गणित कहते हैं ॥३२१॥

इस सूत्रसे क्षेत्रफलके लानेपर तिहत्तर (७३) उत्सेध वर्ग योजन होते हैं।

विशेषार्थ—शंखका आयाम १२ योजन और मुख ४ यो० प्रमाण है। क्षेत्रफल प्राप्त करने हेतु गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{शंखका क्षेत्र०} = \frac{२ \times [\ (\text{आयाम} \times \text{आ०}) - (\text{मुख व्यास} \div २) + (\text{अर्ध मुख व्यास}^२)\ ]}{४}$$

यथा—

$$\text{शंखका क्षेत्रफल} = \frac{२ \times [\ (१२ \times १२) - (४ \div २) + (२ \times २)\ ]}{४}$$

$$= \frac{२\ [\ १४४ - २ + ४\ ]}{४} = ७३ \text{ वर्ग योजन ।}$$

शंखका बाहल्य—

आयामे मुह-सोहिय, पुणरवि आयाम-सहिद-मुह-भजियं ।
बाहल्लं णायव्वं, संखायारट्ठिए खेत्ते ॥३२२॥

---

१. यह श्लोक संस्कृतमें है किन्तु इस पर भी गाथा नं० दिया गया है।

२ द. ब तेहत्तर।

एदेण सुत्तेण बाहल्ले आणिदे पंच-जोयण-पमाणं होदि ।५।

अर्थ—आयाममेंसे मुख कम करके शेषमें फिर आयामको मिलाकर मुखका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना शंखके आकारसे स्थित क्षेत्रका बाहल्य जानना चाहिए ।।३२२।।

इस सूक्ष्म बाहल्यको लानेपर उसका प्रमाण पाँच योजन होता है।

विशेषार्थ—गाथानुसार सूत्र इसप्रकार है—

$$\text{शंखका बाहल्य} = \frac{(\text{आयाम} - \text{मुख}) + \text{आयाम}}{\text{मुख}}$$

$$= \frac{(१२ - ४) + १२}{४} = ५ \text{ यो० बाहल्य ।}$$

पुव्वमाणीद-तेहत्तरि-भूद-खेत्तफलं पंच-जोयण-बाहल्लेण गुणिदे घण-जोयणा तिण्णि-सय-पण्णट्ठी होंति । ३६५ । एदं घण-पमाणंगुलाणि कदे एक्क-लक्ख-बत्तीस-सहस्स दोण्णि-सय-एक्कहत्तरी-कोडीओ सत्तावण्ण - लक्ख णव-सहस्स-चउ-सय-चालीस-रूवेहि गुणिद-घणंगुलमेदं होदि । तं चेदं । ६ । १३२२७१५७०९४४० ।।

अर्थ—पूर्वमें लाये हुए तिहत्तर वर्ग योजन प्रमाण क्षेत्रफलको पाँच योजन प्रमाण बाहल्यसे गुणा करनेपर तीनसौ पैंसठ (३६५) घन योजन होते हैं। इसके घन-प्रमाणांगुल करनेपर एक लाख बत्तीस हजार दो सौ इकहत्तर करोड़ सत्तावन लाख नौ हजार चार सौ चालीस (१३२२७१५७०९४४०) रूपोंसे गुणित घनांगुलप्रमाण होता है ।।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त ७३ उत्सेध वर्ग योजनोंको ५ योजन बाहल्यसे गुणित कर देनेपर (७३ × ५ =) ३६५ उत्सेध घन योजन प्राप्त होते हैं। इनके प्रमाणांगुल बनानेके लिए $\frac{७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००}{५०० \times ५०० \times ५००}$ का गुणा करना चाहिए यथा—

३६५ × ३६२३८७८६५६ = १३२२७१५७०९४४० घनांगुल शंखकी अवगाहनाका घनफल है।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर निर्वृत्ति-पर्याप्तक (कमल) की
उत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तर - कमेण दोण्हं मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं वड्ढो त्ति । ताधे बादर-वणप्फदिकाइय-पत्तेय-सरीर-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स

उक्कस्सोगाहणं दीसइ । कम्हि खेत्ते कस्स वि जीवस्स कम्मि ओगाहणे वट्टमाणस्स होदि त्ति भणिदे सयंपहाचल-परभाग-ट्ठिय-खेत्त-उप्पण्ण-पउमस्स उक्कस्सोगाहणा कस्सइ दीसइ । तं केत्तिया इदि उत्ते उस्सेह-जोयणेण कोसाहिय-एक्क-सहस्सं उस्सेहं एक्क-जोयण-बहलं समवट्टं । तं पमाणं जोयण-फल ७५० । को १ । घणंगुले कदे दोण्णि-लक्ख-एक्कहत्तरि-सहस्स-अट्ठसय-अट्ठावण्ण-कोडि-चउरासीदि-लक्ख-ऊणहत्तरि - सहस्स-दु-सय-अट्ठत्ताल-रूवेहि गुणिद-पमाणंगुलाणि होदि । तं चेदं ॥१।६।२७१८५८८४६९२४८ ॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे दो जीवोंकी मध्यम-अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणी प्राप्त होने तक चलता रहता है । तब बादर-वनस्पतिकायिक(९५) प्रत्येक शरीर निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । किस क्षेत्र और कौनसी अवगाहनामें वर्तमान किस जीवके यह उत्कृष्ट अवगाहना होती है, इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभा-चलके बाह्य भागमें स्थित क्षेत्रमें उत्पन्न किसी पद्म (कमल) के उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है । वह कितने प्रमाण है ? इसप्रकार पूछनेपर उत्तर देते हैं कि उत्सेध योजनसे एक कोस अधिक एक हजार योजन ऊँचा और एक योजन मोटा समवृत्त कमल है । उसकी इस अवगाहनाका घनफल योजनोंमें सातसौ पचास योजन और एक कोस प्रमाण है । इसके प्रमाण-घनांगुल करनेपर दो लाख इकहत्तर-हजार आठ सौ अट्ठावन करोड़ चौरासी लाख उनहत्तर हजार दो सौ अड़तालीस (२७१८५८८४६९२४८) रूपोंसे गुणित प्रमाण-घनांगुल होते हैं ॥

विशेषार्थ—कमलकी ऊँचाई १०००$\frac{१}{४}$ योजन और बाहल्य १ योजन है ।

> वासो तिगुणो परिही, वास-चउत्था-हदो दु खेत्तफलं ।
> खेत्तफलं वेह - गुणं, खादफलं होइ सव्वत्थ ॥

इस गाथानुसार घनफल प्राप्त करनेका सूत्र एवं घनफलका प्रमाण इसप्रकार है—

कमलका घनफल $= ($ व्यास $\times ३ \times \frac{\text{व्यास}}{४} \times$ ऊँचाई $)$

यथा—

$$= \frac{१ \times ३ \times १}{४} \times \frac{४००१}{४} = \frac{१२००३}{१६}$$ या ७५०$\frac{३}{१६}$ घन योजन ।

इन ७५०$\frac{३}{१६}$ उत्सेध घन योजनोंके प्रमाणांगुल बनानेके लिये इनमें $\frac{७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००}{५०० \times ५०० \times ५००}$ का गुणा करना चाहिए । यथा—

$७५०\frac{३}{१६}$ या $\frac{१२००३}{१६}$ × ३६२३८७८६५६ = २७१८५८८४६९२४८ घनांगुल कमल की अवगाहनाका घनफल है।

पंचेन्द्रिय जीव (महामत्स्य) की सर्वोत्कृष्ट अवगाहना—

तदो पदेसुत्तर - कमेण पंचेंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स मज्झिमोगाहण-वियप्पं वच्चदि तदणंतरोगाहणं संखेज्ज-गुणं पत्तो त्ति। [ताधे पंचेंदिय-णिव्वत्ति-पज्जत्तयस्स उक्कस्सोगाहणं दीसइ।] तं कम्मि खेत्ते कस्स जीवस्स होदि त्ति उत्ते सयंपहाचल-परभागट्ठिए खेत्ते उप्पण्ण-संमुच्छिम-महामच्छस्स सव्वोक्कस्सोगाहणं कस्सइ दीसइ। तं केत्तिया इदि उत्ते उस्सेह-जोयणेण एक्क-सहस्सायामं पंच-सय-विक्खंभं तदद्ध-उस्सेहं। तं पमाणंगुले कीरमाणे चउ-सहस्स-पंच-सय-एऊणतीस-कोडीओ चुलसीदि-लक्ख-तेसीदि-सहस्स - दु - सय - कोडि - रूवेहि गुणिद - पमाण - घणंगुलाणि हवंति। तं चेदं। ६। ४५२९८४८३२०००००००० ॥

। एवं ओगाहण-वियप्पं समत्तं ॥१६॥

अर्थ—पश्चात् प्रदेशोत्तर-क्रमसे पंचेन्द्रिय निर्वृत्ति-पर्याप्तककी मध्यम अवगाहनाका विकल्प तदनन्तर अवगाहनाके संख्यातगुणो प्राप्त होने तक चलता है। [तब पंचेन्द्रिय(९६) निर्वृत्ति-पर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहना दिखती है।] यह अवगाहना किस क्षेत्रमें और किस जीवके होती है? इसप्रकार पूछनेपर उत्तर देते हैं कि स्वयम्प्रभाचलके बाह्य-भाग स्थित क्षेत्रमें उत्पन्न किसी सम्मूर्च्छन महामत्स्यके सर्वोत्कृष्ट अवगाहना दिखती है। वह कितने प्रमाण है? इसप्रकार कहनेपर उत्तर देते हैं कि उसकी अवगाहना उत्सेध योजनसे एक हजार योजन लम्बी, पाँचसौ योजन विस्तारवाली और इससे आधी अर्थात् ढाई सौ योजन प्रमाण ऊँचाई वाली है। इसके प्रमाणांगुल करनेपर चार हजार पाँच सौ उनतीस करोड़ चौरासी लाख तेरासी हजार दो सौ करोड़ रूपोंसे गुणित प्रमाण-घनांगुल होते हैं।

विशेषार्थ—महामत्स्यकी लम्बाई १००० उत्सेध यो०, विस्तार ५०० उत्सेध यो० और ऊँचाई २५० उ० यो० है।

मत्स्यका घनफल = लम्बाई × विस्तार × ऊँचाई

= १००० यो० × ५०० यो० × २५० यो० = १२५०००००० उत्सेध घन योजन।

इन उत्सेध घनयोजनोंके प्रमाणांगुल बनानेके लिए $\frac{७६८००० × ७६८००० × ७६८०००}{५०० × ५०० × ५००}$ का गुणा करना चाहिए।

यथा— १२५०००००० × ३६२३८७८६५६ = ४५२९८४८३२०००००००० घनांगुल महामत्स्यके शरीरकी अवगाहनाका घनफल है।

इसप्रकार अवगाहना-भेदोंका कथन समाप्त हुआ ॥१६॥

समस्त प्रकार के स्थावर एवं त्रस जीवोंकी

जघन्य अव० वाले सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्त जीव स्थान–५		जघन्य अवगाहना वाले सूक्ष्म-निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव स्थान–५		जघन्य अवगा० वाले सूक्ष्म निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव स्थान–५		जघन्य-अव० वाले बादर लब्ध्यपर्याप्त जीव स्थान–७	
१	निगोद	१७	निगोद	१९	निगोद	६	वायुकायिक
२	वायुकायिक	२२	वायुकायिक	२४	वायुकायिक	७	तेजस्कायिक
३	तेजस्कायिक	२७	तेजस्कायिक	२९	तेजस्कायिक	८	जलकायिक
४	जलकायिक	३२	जलकायिक	३४	जलकायिक	९	पृथिवीकायिक
५	पृथिवीकायिक	३७	पृथिवीकायिक	३९	पृथिवीकायिक	१०	निगोद
						११	निगोद प्रतिष्ठित
						१२	वनस्पति-प्रत्येक शरीर

जघन्य-उत्कृष्ट अवगाहनाका क्रम

जघन्य अवगाहना वाले बादर निर्वृत्त्य पर्याप्त जीव स्थान–७		जघन्य अव० वाले बादर निर्वृत्ति-पर्याप्तक जीव स्थान–७		जघन्य अव० वाले त्रस लब्ध्यपर्याप्त जीव स्थान–४		जघन्य अव० वाले त्रस निर्वृत्ति-अपर्याप्तक जीव स्थान–४		जघन्य अव० वाले त्रस निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव स्थान–४	
४२	वायुकायिक	४४	वायुकायिक	१३	द्वीन्द्रिय	७९	तेइन्द्रिय	८३	द्वीन्द्रिय
४७	तेजस्कायिक	४९	तेजस्कायिक	१४	तेइन्द्रिय	८०	चतुरिन्द्रिय	८४	तेइन्द्रिय
५२	जलकायिक	५४	जलकायिक	१५	चतुरिन्द्रिय	८१	द्वीन्द्रिय	८५	चतुरिन्द्रिय
५७	पृथिवी-कायिक	५९	पृथिवीकायिक	१६	पंचेन्द्रिय	८२	पंचेन्द्रिय	८६	पंचेन्द्रिय
६२	निगोद	६४	निगोद						
६७	निगोद प्रतिष्ठित	६९	निगोद प्रतिष्ठित						
७२	वनस्पति प्रत्येक शरीर	७४	वनस्पति प्रत्येक शरीर						

उत्कृष्ट अव० वाले सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक जीव स्थान-५		उत्कृष्ट अव० वाले सूक्ष्म निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव स्थान-५		उत्कृष्ट अव० वाले सूक्ष्म निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव स्थान-५		उत्कृष्ट अव० वाले बादर लब्ध्यपर्या० जीव स्थान-७	
१८	निगोद	२०	निगोद	२१	निगोद	४३	वायुकायिक
२३	वायुकायिक	२५	वायुकायिक	२६	वायुकायिक	४८	तेजस्कायिक
२८	तेजस्कायिक	३०	तेजस्कायिक	३१	तेजस्कायिक	५३	जलकायिक
३३	जलकायिक	३५	जलकायिक	३६	जलकायिक	५८	पृथिवीकायिक
३८	पृथिवीकायिक	४०	पृथिवीकायिक	४१	पृथिवीकायिक	६३	निगोद
						६८	निगोद प्रति०
						७३	वनस्पति प्रत्येक शरीर

उत्कृष्ट अव० वाले बादर निर्वृत्ति-अपर्याप्तक जीव स्थान-७		उत्कृष्ट अव० वाले बादर निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव स्थान-७		उत्कृष्ट अव० वाले त्रस लब्ध्यपर्याप्तक जीव स्थान-४		उत्कृष्ट अव० वाले निर्वृत्ति अपर्याप्तक जीव स्थान-४		उत्कृष्ट अव० वाले निर्वृत्ति पर्याप्तक जीव स्थान-४	
४५	वायुकायिक	४६	वायुकायिक	७५	द्वीन्द्रिय	८७	तेइन्द्रिय	९२	तेइन्द्रिय
५०	तेजस्कायिक	५१	तेजस्कायिक	७६	तेइन्द्रिय	८८	चतुरिन्द्रिय	९३	चतुरिन्द्रिय
५५	जलकायिक	५६	जलकायिक	७७	चतुरिन्द्रिय	८९	द्वीन्द्रिय	९४	द्वीन्द्रिय
६०	पृथिवीकायिक	६१	पृथिवीकायिक	७८	पंचेन्द्रिय	९१	पंचेन्द्रिय	९६	पंचन्द्रिय
६५	निगोद	६६	निगोद						
७०	निगोद प्रति०	७१	निगोद प्रति०						
९०	वनस्पति प्रत्येक शरीर	९५	वनस्पति प्रत्येक शरीर						

अधिकारान्त मङ्गल—

जं णाण[1]-रयण-दीओ, लोयालोय-प्पयासण-समत्थो ।
पणमामि पुप्फयंतं, सुमइकरं भव्व - संघस्स ॥३२३॥

एवमाइरिय-परंपरागय-तिलोयपण्णत्तीए तिरिय-लोय-सरूव-णिरूवण-पण्णत्ती णाम पंचमो महाहियारो समत्तो ॥५॥

अर्थ—जिनका ज्ञानरूपी रत्नदीपक लोक एवं अलोकको प्रकाशित करनेमें समर्थ है और जो भव्य-समूहको सुमति प्रदान करनेवाले हैं ऐसे पुष्पदन्त जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥३२३॥

इसप्रकार आचार्य-परम्परागत त्रिलोक-प्रज्ञप्तिमें तिर्यग्लोक स्वरूप
निरूपण प्रज्ञप्ति नामक

पाँचवाँ महाधिकार

समाप्त हुआ ॥५॥

१. ब. क. ज. णरायरयण । ब. णरणारय ।

तिलोयपण्णत्ती

छट्ठो महाहियारो

मङ्गलाचरण—

चोत्तीसादिसएहिं[1], विम्हय-जणणं सुरिंद-पहुदीणं ।
णमिऊण सीदल-जिणं, वेंतरलोयं णिरूवेमो ॥१॥

अर्थ—चौंतीस अतिशयोंसे देवेन्द्र आदिको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले शीतल जिनेन्द्रको नमस्कार करके व्यन्तरलोकका निरूपण करता हूँ ॥१॥

अन्तराधिकारोंका निरूपण—

वेंतर-णिवासखेत्तं, भेदा एदाण विविह-चिण्हाणि ।
कुलभेदो णामाइं, भेदविही दक्खिणुत्तरिंदाणं ॥२॥

आऊणि आहारो, उस्सासो ओहिणाण-सत्तीओ ।
उस्सेहो संखाणि, जम्मण-मरणाणि एक्क-समयम्मि ॥३॥

आउग-बंधण-भावो, दंसण-गहणस्स कारणं विविहं ।
गुणठाणादि-वियप्पा, सत्तरस हवंति अहियारा ॥४॥

१. द. चउतीसा ।

अर्थ—व्यन्तर देवोंका निवास-क्षेत्र१, उनके भेद२, विविध चिन्ह३, कुलभेद४, नाम५, दक्षिण-उत्तर इन्द्रोंके भेद६, आयु७, आहार८, उच्छ्वास९, अवधिज्ञान१०, शक्ति११, ऊँचाई१२, संख्या१३, एक समयमें जन्म-मरण१४, आयुके बन्धक भाव१५, सम्यक्त्वग्रहणके विविध कारण१६ और गुणस्थानादि-विकल्प१७, ये सत्तरह (अन्तर) अधिकार होते हैं ।।२-४।।

व्यन्तरदेवोंके निवासक्षेत्रका निरूपण—

रज्जु-कदी गुणिदव्वा, णवणउदि-सहस्स-अहिय-लक्खेणं ।
तम्मज्झे ति - वियप्पा, वेंतरदेवाण होंति पुरा ।।५।।

$\frac{=}{४९}$ । १९९००० ।

अर्थ—राजूके वर्गको एक लाख निन्यानबे हजार (१९९०००) योजनसे गुणा करनेपर जो प्राप्त हो उसके मध्यमें व्यन्तर देवोंके तीन प्रकारके पुर होते हैं ।।५।।

विशेषार्थ—"जगसेढि-सत्त भागो रज्जू" इस गाथा-सूत्रानुसार जगच्छ्रेणीके सातवें भाग को राजू कहते हैं । संदृष्टिके $\frac{=}{४९}$ का अर्थ एक वर्ग राजू है । क्योंकि जगच्छ्रेणी (—) के वर्ग (=) में ७ के वर्ग (४९) का भाग देने पर जो एक वर्ग राजू का प्रमाण प्राप्त होता है वही तिर्यग्लोकका विस्तार है अर्थात् तिर्यंग्लोक एक राजू लम्बा और एक राजू चौड़ा (१ × १ = १ वर्ग राजू) है ।

रत्नप्रभा पृथिवी १८०००० हजार योजन मोटी है । इसके तीन भाग हैं । अन्तिम अब्बहुल-भाग ८०,००० योजन मोटा है, जिसमें नारकियोंका वास है । अवशेष एक लाख योजन रहा । सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है जिसमेंसे १००० यो० की उसकी नींव उपर्युक्त एक लाखमें गर्भित है अत: चित्रा पृथिवीके ऊपर मेरुकी ऊँचाई ९९ हजार योजन है । इसप्रकार पंकभागसे मेरुपर्वतकी पूर्ण ऊँचाई पर्यन्तका क्षेत्र (१००००० + ९९००० =) १९९००० यो० होता है । इसीलिए गाथामें राजूके वर्ग को एक लाख निन्यानबे हजार योजनसे गुणा करने को कहा गया है ।

व्यन्तर देवोंके निवास, भेद, उनके स्थान और प्रमाण आदिका निरूपण—

भवणं[1] भवणपुराणि, आवासा इय हवंति ति-वियप्पा[2] ।
जिण - मुहकमल - विणिग्गद-वेंतर-पण्णत्ति णामाए ।।६।।

रयणप्पह-पुढवीए, भवणाणि [3]दीव-उवहि-उवरिम्मि ।
भवणपुराणि दह - गिरि - पहुदीणं उवरि आवासा ।।७।।

---

१. द. ब. भवणि । २. द. ब. ज. तिविहप्पा । ३. द. दीवओहि ।

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान्‌के मुखरूपी कमलसे निकले हुए व्यन्तर-प्रज्ञप्ति नामक महाधिकारमें भवन, भवनपुर और आवास इसप्रकार तीन प्रकारके निवास कहे गये हैं। इनमेंसे रत्नप्रभा पृथिवीमें भवन, द्वीप-समुद्रोंके ऊपर भवनपुर और द्रह (तालाब) एवं पर्वतादिकोंके ऊपर आवास होते हैं ॥६-७॥

बारस-सहस्स-जोयण-परिमाणं होदि जेट्ठ-भवणाणं ।
पत्तेक्कं विक्खंभो, तिण्णि सयाणि च बहलत्तं ॥८॥

१२००० । ब ३०० ।

अर्थ—ज्येष्ठ भवनोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार बारह हजार (१२०००) योजन और बाहल्य तीनसौ (३००) योजन प्रमाण है ॥८॥

पणुवीस जोयणाणि, रुंद-पमाणं जहण्ण-भवणाणं ।
पत्तेक्कं बहलत्तं, ति - चउब्भाग - प्पमाणं च ॥९॥

अर्थ—जघन्य (लघु) भवनोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार पच्चीस योजन और बाहल्य एक योजनके चार भागोंमेंसे तीन भाग ($\frac{3}{4}$ यो०) प्रमाण है ॥९॥

अहवा रुंद-पमाणं, पुह-पुह कोसा जहण्ण-भवणाणं ।
तव्वेदी उच्छेहो, कोदंडाणि पि पणुवीसं ॥१०॥

को १ । दं २५ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—अथवा जघन्य भवनोंके विस्तारका प्रमाण पृथक्-पृथक् एक कोस और उनकी वेदी की ऊँचाई पच्चीस (२५) धनुष प्रमाण है ॥१०॥

कूट एवं जिनेन्द्र भवनोंका निरूपण—

बहल-ति-भाग-पमाणा, कूडा भवणाण होंति बहुमज्झे ।
वेदी चउ - वण - तोरण - दुवार - पहुदीहि रमणिज्जा ॥११॥

अर्थ—भवनोंके बहुमध्य भागमें वेदी, चार वन और तोरण-द्वारादिकोंसे रमणीय ऐसे बाहल्यके तीसरे भाग [($३०० \times \frac{1}{3}$) अर्थात् १०० योजन] प्रमाण ऊँचे कूट होते हैं ॥११॥

कूडाण उवरि भागे, चेट्ठंते जिणवरिंद-पासादा ।
कणयमया रजदमया, रयणमया विविह-विण्णासा ॥१२॥

अर्थ—इन कूटोंके उपरिम भागपर अनेक-प्रकारके विन्याससे संयुक्त सुवर्णमय, रजतमय और रत्नमय जिनेन्द्र-प्रासाद हैं ।।१२।।

भिंगार-कलस-दप्पण-धय-चामर-वियरण-छत्त-सुपइट्ठा ।
इय अट्ठुत्तर - सय-वर - मंगल - जुत्ता य पत्तेक्कं ।।१३।।

अर्थ—प्रत्येक जिनेन्द्र प्रासाद झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चंवर, बीजना, छत्र और ठौना, इन एक सौ आठ-एकसौ आठ उत्तम मंगल द्रव्योंसे संयुक्त है ।।१३।।

दुंदुहि-मयंग-मद्दल - जयघंटा - पडह - कंसतालाणं ।
वीणा - वंसावीणं, [1]सद्देहिं णिच्च - हलबोला ।।१४।।

अर्थ—(वे) जिनन्द्र प्रासाद दुन्दुभी, मृदङ्ग, मर्दल, जयघण्टा, भेरी, झांझ, वीणा और बांसुरी आदि वादित्रोंके शब्दोंसे सदा मुखरित रहते हैं ।।१४।।

अकृत्रिम जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ एवं उनकी पूजा—

सिंहासणादि-सहिदा, चामर-कर-णाग-जक्ख-मिहुण-जुदा ।
तेसुं अकिट्टिमाओ, जिणिंद - पडिमाओ विजयंते ।।१५।।

अर्थ—उन जिनेन्द्र-भवनोंमें सिंहासनादि प्रातिहार्यों सहित और हाथमें चामर लिए हुए नागयक्ष देव-युगलोंसे संयुक्त अकृत्रिम जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ जयवन्त होती हैं ।।१५।।

कम्मक्खवण-णिमित्तं, णिब्भर-भत्तीय विविह-दव्वेहिं ।
सम्माइट्ठी देवा, जिणिंद - पडिमाओ पूजंति ।।१६।।

अर्थ—सम्यग्दृष्टि देव कर्मक्षयके निमित्त गाढ़ भक्तिसे विविध द्रव्यों द्वारा उन जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ।।१६।।

एवे कुलदेवा इय, मण्णंता देव - बोहण - बलेण ।
मिच्छाइट्ठी देवा, पूजंति जिणिंद - पडिमाओ ।।१७।।

अर्थ—अन्य देवोंके उपदेशवश मिथ्यादृष्टि देव भी 'ये कुलदेवता हैं' ऐसा मानकर उन जिनेन्द्र-प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ।।१७।।

---

१. द. क. ज. सव्वेहिं ।

व्यन्तर प्रासादों (भवनों) की अवस्थिति एवं उनकी संख्या—

एदाणं कूडाणं, समंतदो वेंतराण पासादा ।
सत्तट्ठ-पहुदि-भूमी, विण्णास - विचित्त - संठाणा ॥१८॥

अर्थ—इन जिनेन्द्र कूटोंके चारों ओर व्यन्तरदेवोंके सात-आठ आदि भूमियोंके विन्यास और अद्भुत रचनाओं वाले प्रासाद हैं ॥१८॥

लंबंत-रयणमाला, वर-तोरण-रइद-सुंदर-दुवारा ।
णिम्मल-विचित्त-मणिमय-सयणासण-णिवह-परिपुण्णा ॥१९॥

अर्थ—ये प्रासाद लटकती हुई रत्नमालाओं सहित, उत्तम तोरणोंसे रचित सुन्दर द्वारों वाले हैं और निर्मल एवं अद्भुत मणिमय शय्याओं तथा आसनोंके समूहसे परिपूर्ण हैं ॥१९॥

एवं विह-रूवाणि, तीस-सहस्साणि होंति भवणाणि ।
पुव्वोदिद-भवणामर - भवण - समं वण्णणं सयलं ॥२०॥

भवणा समत्ता ॥१॥

अर्थ—इसप्रकारके स्वरूपवाले ये प्रासाद तीस हजार (३००००) प्रमाण है । इनका सम्पूर्ण वर्णन पूर्वमें कहे हुए भवनवासी देवोंके भवनोंके सदृश है ॥२०॥

भवनोंका वर्णन समाप्त हुआ ।

भवनपुरोंका निरूपण—

वट्टादि[1] - सरूवाणं, भवण - पुराणं हवेदि जेट्ठाणं ।
जोयण - लक्खं रुंदो, जोयणमेक्कं जहण्णाणं ॥२१॥

१००००० जो । १ ।

अर्थ—वृत्तादि स्वरूपवाले उत्कृष्ट भवनपुरोंका विस्तार एक लाख (१०००००) योजन और जघन्य भवनपुरोंका विस्तार एक योजन प्रमाण है ॥२१॥

कूडा जिणिंद-भवणा, पासादा वेदिया वण-प्पहुदी ।
भवण - सरिच्छं सव्वं, भवणपुरेसुं पि दट्ठव्वं ॥२२॥

भवणपुरं ।

---

१. ब. वट्टावि ।

अर्थ—कूट, जिनेन्द्र-भवन, प्रासाद, वेदिका और वन आदि सब (की स्थिति) भवनोंके सदृश ही भवनपुरोंमें भी जाननी चाहिए ॥२२॥

भवनपुरोंका वर्णन समाप्त हुआ।

आवासोंका निरूपण—

बारस-सहस्स-बे-सय-जोयण-वासा य जेट्ठ-आवासा।
होंति जहण्णावासा, ति-कोस-परिमाण-वित्थारा ॥२३॥

जो १२२०० । को ३ ।

अर्थ—व्यन्तरदेवोंके ज्येष्ठ आवास बारह हजार दो सौ (१२२००) योजन प्रमाण और जघन्य आवास तीन (३) कोस प्रमाण विस्तारवाले हैं ॥२३॥

कूडा जिणिंद-भवणा पासादा वेदिया वण-प्पहुदी[1]।
भवण - पुराण सरिच्छं, आवासाणं पि णादव्वा ॥२४॥

आवास समत्ता।

णिवास-खेत्तं समत्तं ॥१॥

अर्थ—कूट, जिनेन्द्र-भवन, प्रासाद, वेदिका और वन आदि भवनपुरोंके सदृश ही आवासों के भी जानने चाहिए ॥२४॥

आवासोंका वर्णन समाप्त हुआ।

इसप्रकार निवास क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ॥१॥

व्यन्तरदेवोंके (कुल—) भेद एवं (कुल) भेदोंकी अपेक्षा भवनोंके प्रमाणका निरूपण—

किंणर-किंपुरुस-महोरगा य गंधव्व-जक्ख-रक्खसया।
भूद - पिसाचा एवं, अट्ठ - विहा वेंतरा होंति ॥२५॥

अर्थ—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच, इसप्रकार व्यन्तरदेव आठ प्रकारके होते हैं ॥२५॥

चोद्दस-सहस्स-मेत्ता, भवणा भूदाण रक्खसाणं पि।
सोलस - सहस्स - संखा, सेसाणं णत्थि भवणाणि ॥२६॥

१४००० । १६००० ।

वेंतरभेदा समत्ता ॥२॥

---

१. द. क. ज. पहुदि ।

अर्थ—भूतोंके चौदह हजार (१४०००) प्रमाण और राक्षसोंके सोलह हजार (१६०००) प्रमाण भवन हैं। शेष व्यन्तर देवोंके भवन नहीं होते हैं ॥२६॥

विशेषार्थ—रत्नप्रभा पृथिवीके खरभागमें भूत-व्यन्तरदेवोंके १४००० भवन हैं तथा पङ्क-भागमें राक्षसोंके १६००० भवन हैं। शेष किन्नरादि छह कुलोंके भवन नहीं होते हैं।

व्यन्तरदेवोंके भेदोंका कथन समाप्त हुआ ॥२॥

चैत्य-वृक्षोंका निर्देश—

किणर-किंपुरुसादिय-वेंतर-देवाण अट्ठ - भेयाणं ।
ति-वियप्प-णिलय-पुरदो, चेत्त-दुमा होंति एक्केक्का ॥२७॥

अर्थ—किन्नर-किम्पुरुषादिक आठ प्रकारके व्यन्तर देवों सम्बन्धी तीनों प्रकारके (भवन, भवनपुर, आवास) भवनोंके सामने एक-एक चैत्य-वृक्ष है ॥२७॥

कमसो असोय-चंपय-णागद्दुम-तुंबुरू य णग्गोधो ।
कंटय - रुक्खो तुलसी, कदंब विडओ त्ति ते अट्ठं ॥२८॥

अर्थ—अशोक, चम्पक, नागद्रुम, तुम्बुरु, न्यग्रोध (वट) कण्टकवृक्ष, तुलसी और कदम्ब वृक्ष, इसप्रकार क्रमशः वे चैत्यवृक्ष आठ प्रकारके हैं ॥२८॥

ते सव्वे चेत्त-तरू, भावण-सुर-चेत्त-रुक्ख-सारिच्छा ।
जीवुप्पत्ति - लयाणं, हेदू पुढवी - सरूवा य ॥२९॥

अर्थ—ये सब चैत्यवृक्ष भवनवासी देवोंके चैत्यवृक्षोंके सदृश (पृथिवीकायिक) जीवोंकी उत्पत्ति एवं विनाशके कारण हैं और पृथिवीस्वरूप हैं ॥२९॥

विशेषार्थ—चैत्यवृक्ष अनादि-निधन हैं अतः उनका कभी उत्पत्ति या विनाश नहीं होता है किन्तु उनके आश्रित रहने वाले पृथिवीकायिक जीवों का अपनी-अपनी आयु के अनुसार जन्म-मरण होता रहता है। इसीलिये चैत्यवृक्षोंको जीवोंकी उत्पत्ति और विनाश का कारण कहा है।

जिनेन्द्र प्रतिमाओंका निरूपण—

मूलम्मि चउ-दिसासुं, चेत्त-तरूणं जिणिंद-पडिमाओ ।
चत्तारो चत्तारो, चउ - तोरण - सोहमाणाओ ॥३०॥

अर्थ—चैत्यवृक्षोंके मूलमें चारों ओर चार तोरणोंसे शोभायमान चार-चार जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ विराजमान हैं ॥३०॥

पल्लंक-आसणाओ, सपाडिहेराओ रयण-मइयाओ ।
दंसणमेत्त - णिवारिद - दुरिताओ देंतु वो मोक्खं ।।३१।।

चिण्हाणि समत्ताणि ।।३।।

अर्थ—पल्यङ्कासनसे स्थित, प्रातिहार्यों सहित और दर्शनमात्रसे ही पापको दूर करनेवाली वे रत्नमयी जिनेन्द्र-प्रतिमाएँ आप लोगोंको मोक्ष प्रदान करें ।।३१।।

इसप्रकार चिन्होंका कथन समाप्त हुआ ।।३।।

व्यन्तरदेवोंके कुल-भेद, उनके इन्द्र और देवियोंका निरूपण—

किणर-पहुदि-चउक्कं, दस-दस-भेदं हवेदि पत्तेक्कं ।
जक्खा बारस-भेदा, सत्त-वियप्पाणि रक्खसया ।।३२।।

भूदाणि तेत्तियाणि, पिसाच-णामा चउद्दस-वियप्पा ।
दो द्दो इंदा दो द्दो, देवीओ दो-सहस्स-वल्लहिया ।।३३।।

कि १०, किंपु १०, म १०, गं १०, ज १२, र ७, भू ७, पि १४ । २ । २ । २००० ।

कुल-भेदा समत्ता ।।४।।

अर्थ—किन्नर आदि चार प्रकारके व्यन्तर देवोंमेंसे प्रत्येकके दस-दस, यक्षोंके बारह, राक्षसोके सात, भूतोंके सात और पिशाचोंके चौदह भेद हैं । इनमें दो-दो इन्द्र और उनके दो-दो (अग्र) देवियाँ होती हैं । ये देवियाँ दो हजार वल्लभिकाओं सहित (अर्थात् प्रत्येक अग्रदेवीकी एक-एक हजार वल्लभिका देवियाँ) होती हैं ।।३२-३३।।

कुल-भेदोंका वर्णन समाप्त हुआ ।।४।।

किन्नर जातिके दस भेद, उनके इन्द्र और उनकी देवियोंके नाम—

ते किंपुरिसा किणर-हिदयंगम-रूवपालि-किणरया ।
किणरणिंदिद णामा, मणरम्मा किणरुत्तमया ।।३४।।

रतिपिय-जेट्ठा ताणं, किंपुरिसा किणरा दुवे इंदा ।
अवतंसा केदुमदी, रदिसेणा-रदिपियाओ देवीओ ।।३५।।

किणरा गदा ।

अर्थ—किम्पुरुष, किन्नर, हृदयङ्गम, रूपपाली, किन्नरकिन्नर, अनिन्दित, मनोरम, किन्नरोत्तम, रतिप्रिय और ज्येष्ठ, ये दस प्रकारके किन्नर जातिके देव होते हैं। इनके किम्पुरुष और किन्नर नामक दो इन्द्र तथा इन इन्द्रोंके अवतंसा, केतुमती, रतिसेना एवं रतिप्रिया नामक (दो-दो) देवियाँ होती हैं ॥३४-३५॥

किन्नरोंका कथन समाप्त हुआ।

किम्पुरुषोंके भेद आदि—

पुरुसा पुरुसुत्तम-सप्पुरुस-महापुरुस-पुरुसपभ-णामा।
अतिपुरुसा तह मरुओ[1], मरुदेव-मरुप्पहा जसोवंता ॥३६॥

इय किंपुरुसा-इंदा[2], सप्पुरुसो ताण तह महापुरुसो।
रोहिणी-णवमी हिरिया, पुप्फवदीओ वि देवीओ ॥३७॥

किंपुरुसा गदा।

अर्थ—पुरुष, पुरुषोत्तम, सत्पुरुष, महापुरुष, पुरुषप्रभ, अतिपुरुष, मरु, मरुदेव, मरुत्प्रभ और यशस्वान्, इसप्रकार ये किम्पुरुष जातिके (देवोंके) दस भेद हैं। इनके सत्पुरुष और महापुरुष नामक दो इन्द्र तथा इन इन्द्रोंके रोहिणी, नवमी, ह्री एवं पुष्पवती नामक (दो-दो) देवियाँ होती हैं ॥३६-३७॥

। किम्पुरुषोंका कथन समाप्त हुआ।

महोरगदेवोंके भेद आदि—

भुजगा भुजंगसाली, महतणु-अतिकाय-खंधसाली य।
मणहर-असणिज-महसर, गहिरं पियदंसणा महोरगया ॥३८॥

महकाओ अतिकाओ, इंदा एदाण होंति देवीओ।
भोगा भोगवदीओ, अणिदिदा पुप्फगंधीओ ॥३९॥

महोरगा गदा।

अर्थ—भुजग, भुजंगशाली, महातनु, अतिकाय, स्कन्धशाली, मनोहर, अशनिजव, महेश्वर, गम्भीर और प्रियदर्शन, ये महोरग जातिके देवोंके दस भेद हैं। इनके महाकाय और अतिकाय नामक

---

१. द. ब. क. ज. अमरा। २ द. ब. क. ज. इंद।

इन्द्र तथा इन इन्द्रोंके भोगा, भोगवती, अनिन्दिता और पुष्पगन्धी नामक (दो-दो) देवियाँ होती हैं ।।३८-३९।।

महोरग जातिके देवोंका कथन समाप्त हुआ ।

गन्धर्वदेवोंके भेद आदि—

हाहा-हूहू-णारद-तुंबुर-वासव-कदंब - महसरया ।
गोदरदी - गोदयसा, वइरवतो होंति गंधव्वा ।।४०।।

गीदरदी गीदयसा, इंदा ताणं पि होंति देवीओ ।
सरसइ-सरसेणाओ, णंदिणि-पियदंसणाओ वि ।।४१।।

गंधव्वा गदा ।

अर्थ—हाहा, हूहू, नारद, तुम्बुरु, वासव, कदम्ब, महास्वर, गीतरति, गीतयश और वज्रवान्, ये दस भेद गन्धर्वोंके हैं । इनके गीतरति और गीतयश नामक इन्द्र और इन इन्द्रोंके सरस्वती, स्वरसेना, नन्दिनी और प्रियदर्शना नामक (दो-दो) देवियाँ हैं ।।४०-४१।।

गन्धर्वजातिके देवोंका कथन समाप्त हुआ ।

यक्षदेवोंके भेद आदि—

अह माणि-पुण्ण-सेल-मणो-भद्दा भद्दका सुभद्दा य ।
तह सव्वभद्द-माणुस-धणपाल-सरूव - जक्खक्खा ।।४२।।

जक्खुत्तम-मणहरणा, ताणं बे माणि-पुण्ण-भद्दिंदा ।
कुंदा - बहुपुत्ताओ, तारा तह उत्तमाओ देवीओ ।।४३।।

जक्खा गदा ।

अर्थ—माणिभद्र, पूर्णभद्र, शैलभद्र, मनोभद्र, भद्रक, सुभद्र, सर्वभद्र, मानुष, धनपाल, स्वरूपयक्ष, यक्षोत्तम और मनोहरण, ये बारह भेद यक्षोंके हैं । इनके माणिभद्र और पूर्णभद्र नामक दो इन्द्र हैं और उन इन्द्रोंके कुन्दा, बहुपुत्रा, तारा तथा उत्तमा नामक (दो-दो) देवियाँ हैं ।।४२-४३।।

यक्षोंका कथन समाप्त हुआ ।

राक्षसोंके भेद आदि—

भीम-महभीम-विग्घा[1]-विणायका उदक-रक्खसा तह य ।
रक्खस - रक्खस - णामा, सत्तमया बम्हरक्खसया ।।४४।।

---

१. द. क. ज. विप्पू, ब. भीप्पू ।

रक्खस-इंदा भीमो, [1]महभीमो ताण होंति देवीओ ।
पउमा - वसुमित्ताओ, [2]रयणड्ढा - कंचणपहाओ ।।४५।।

रक्खसा गदा ।

अर्थ—भीम, महाभीम, विघ्न-विनायक, उदक, राक्षस, राक्षसराक्षस और सातवाँ ब्रह्म-राक्षस, इसप्रकार ये सात भेद राक्षस देवोंके हैं । इन राक्षसोंके भीम तथा महाभीम नामक इन्द्र और इन इन्द्रोंके पद्मा, वसुमित्रा, रत्नाढ्या तथा कञ्चनप्रभा नामक (दो-दो) देवियाँ हैं ।।४४-४५।।

राक्षसोंका कथन समाप्त हुआ ।

भूतदेवोंके भेद आदि—

भूदा इमे सुरूवा, पडिरूवा भूदउत्तमा होंति ।
पडिभूद - महाभूदा, पडिछण्णाकासभूद त्ति ।।४६।।
भूविंदा य सरूवो, पडिरूवो ताण होंति देवीओ ।
रूववदी बहुरूवा, सुमुही णामा सुसीमा य ।।४७।।

भूदा गदा ।

अर्थ—स्वरूप, प्रतिरूप, भूतोत्तम, प्रतिभूत, महाभूत, प्रतिच्छन्न और आकाशभूत, इस-प्रकार ये सात भेद भूतदेवोंके हैं । उन भूतोंके इन्द्र स्वरूप एवं प्रतिरूप हैं और उन इन्द्रोंके रूपवती, बहुरूपा, सुमुखी तथा सुसीमा नामक देवियाँ हैं ।।४६-४७।।

भूतोका कथन समाप्त हुआ ।

पिशाचदेवोंके भेद आदि—

कुंभंड-जक्ख-रक्खस-संमोहा तारआ अचोक्खक्खा ।
काल-महकाल-चोक्खा, सतालया देह - महदेहा ।।४८।।
तुण्हिअ-पवयण-णामा, पिसाच-इंदा य काल-महकाला ।
कमला - कमलपहुप्पल - सुदंसणा ताण देवीओ ।।४९।।

पिसाचा गदा ।

अर्थ—कुष्माण्ड, यक्ष, राक्षस, संमोह, तारक, अशुचि (नामक), काल, महाकाल, शुचि, सतालक, देह, महादेह, तूष्णीक और प्रवचन, इसप्रकार पिशाचोंके ये चौदह भेद हैं । काल एवं महा-

---

१. ब. क. ज. महा । २. क. ज. द. रयणंदा ।

काल, ये पिशाचोंके इन्द्र हैं तथा इन इन्द्रोंके कमला, कमलप्रभा, उत्पला एवं सुदर्शना नामक (दो-दो) देवियाँ हैं ।।४८-४९।।

पिशाचोंका कथन समाप्त हुआ ।

गणिका महत्तरियोंका निरूपण—

सोलस- भोम्मिदाणं, किणर-पहुदीण होंति पत्तेक्कं ।
गणिका महद्धियाओ[1], दुवे दुवे रूववत्तीओ ।।५०।।

अर्थ—किन्नर आदि सोलह व्यन्तरेन्द्रोंमेंसे प्रत्येक इन्द्रके दो-दो रूपवती गणिकामहत्तरी होती हैं ।।५०।।

महुरा महुरालावा, सुस्सर-मिदुभासिणीओ णामेहिं ।
पुरिसपिय-पुरिसकंता, सोमाओ पुरिसदंसिणिया[2] ।।५१।।

भोगा - भोगवदीओ, भुजगा भुजगप्पिया य णामेणं ।
विमला सुघोस - णामा अणिंदिदा सुस्सरक्खा य ।।५२।।

तह य सुभद्दा भद्दाओ मालिणी पम्ममालिणीओ वि ।
सव्वसिरि - सव्वसेणा, रुद्दावइ रुद्द - णामा य ।।५३।।

भूदा य भूदकंता, महबाहू भूदरत्त - णामा य ।
अंबा य कला णामा, रस-सुलसा तह सुदरिसणया ।।५४।।

अर्थ—मधुरा, मधुरालापा, सुस्वरा, मृदुभाषिणी, पुरुषप्रिया, पुरुषकान्ता, सौम्या, पुरुष-दर्शिनी, भोगा, भोगवती, भुजगा, भुजगप्रिया, विमला, सुघोषा, अनिन्दिता, सुस्वरा, सुभद्रा, भद्रा, मालिनी, पद्ममालिनी, सर्वश्री, सर्वसेना, रुद्रा, रुद्रवती, भूता, भूतकान्ता, महाबाहू, भूतरक्ता, अम्बा, कला, रस-सुरसा और सुदर्शनिका, ये उन गणिका-महत्तरियोंके नाम हैं ।।५१-५४।।

व्यन्तरोंके शरीर-वर्णका निर्देश—

किण्णरदेवा, सव्वे, पियंगु - सामेहि देह - वण्णेहिं ।
उब्भासंते कंचण - सारिच्छेहिं पि किंपुरुसा ।।५५।।

अर्थ—सब किन्नर देव प्रियंगु सदृश देह वर्णसे और सब किम्पुरुषदेव सुवर्ण सदृश देह-वर्णसे शोभायमान होते हैं ।।५५।।

कालस्सामल-वण्णा, महोरया जक्ख[3] कंचण-सवण्णा ।
गंधव्वा जक्खा तह, कालस्सामा विराजंति ।।५६।।

---

१. द. ब. क. ज. महज्झियाओ । २. द. ब. क. ज. देसिणिया । ३. द. ब. क. ज. जंभ ।

अर्थ—महोरगदेव काल-श्यामल वर्णवाले, गन्धर्वदेव शुद्ध सुवर्ण सदृश तथा यक्ष देव काल-श्यामल वर्णसे युक्त होकर शोभायमान होते हैं ॥५६॥

सुद्ध-स्सामा रक्खस-देवा भूदा वि कालसामलया ।
सव्वे पिसाचदेवा, कज्जल - इंगाल - कसण - तणू ॥५७॥

अर्थ—राक्षसदेव शुद्ध-श्यामवर्ण, भूत कालश्यामल और समस्त पिशाचदेव कज्जल एवं इंगाल अर्थात् कोयले सदृश कृष्ण शरीर वाले होते हैं ॥५७॥

किणर-पहुदी वेंतरदेवा सव्वे वि सुंदरा होंति ।
सुभगा विलास - जुत्ता, सालंकारा महातेजा ॥५८॥

एवं णामा समत्ता ॥५॥

अर्थ—किन्नर आदि सब ही व्यन्तरदेव सुन्दर, सुभग, विलासयुक्त, अलङ्कारों सहित और महान् तेजके धारक होते हैं ॥५८॥

इसप्रकार नामोंका कथन समाप्त हुआ ॥५॥

दक्षिण-उत्तर इन्द्रोंका निर्देश—

पढमुच्चारिद-णामा, दक्खिण-इंदा हवंति एदेसुं ।
चरिमुच्चारिद-णामा, उत्तर - इंदा पभाव-जुदा ॥५९॥

अर्थ—इन इन्द्रोंमें प्रथम उच्चारणवाले दक्षिणेन्द्र और अन्तमें (पीछे) उच्चारण नामवाले उत्तरेन्द्र हैं । ये सब इन्द्र प्रभावशाली होते हैं ॥५९॥

[तालिका पृष्ठ २२८ पर देखिये]

क्र.	कुल-नाम	चैत्यवृक्ष	शरीरवर्ण	इन्द्रोंके नाम	दक्षिणोत्तरेन्द्र	अग्र-देवियोंके नाम	इन्द्रकी वल्लभिकाएँ गा० ३३	गणिका-महत्तरी
१.	किन्नर	अशोक	प्रियंगु-सदृश	किम्पुरुष	दक्षिणेन्द्र	अवतंसा, केतुमती	२०००	मधुरा मधुरालापा
				किन्नर	उत्तरेन्द्र	रतिसेना, रतिप्रिया	२०००	सुस्वरा मृदुभाषिणी
२.	किम्पुरुष	चंपक	स्वर्ण-सदृश	सत्पुरुष	दक्षिणेन्द्र	रोहिणी, नवमी	२०००	पुरुषप्रिया पुरुषकान्ता
				महापुरुष	उत्तरेन्द्र	ह्री पुष्पवती	२०००	सौम्या पुरुषदर्शिनी
३.	महोरग	नागद्रुम	कालश्यामल	महाकाय	दक्षिणेन्द्र	भोगा, भोगवती	२०००	भोगा भोगवती
				अतिकाय	उत्तरेन्द्र	अनिंदिता, पुष्पगं.	२०००	भुजगा भुजगप्रिया
४.	गन्धर्व	तुंबुरु	शुद्ध स्वर्ण	गीतरति	दक्षिणेन्द्र	सरस्वती, स्वरसेना	२०००	विमला सुघोषा
				गीतयशा	उत्तरेन्द्र	नंदिनी, प्रियदर्शना	२०००	अनिन्दिता सुस्वरा
५.	यक्ष	वट	कालश्यामल	मणिभद्र	दक्षिणेन्द्र	कुन्दा, बहुपुत्रा	२०००	सुभद्रा भद्रा
				पूर्णभद्र	उत्तरेन्द्र	तारा, उत्तमा	२०००	मालिनी पद्ममालिनी
६.	राक्षस	कंटक-वृक्ष	श्यामवर्ण	भीम	दक्षिणेन्द्र	पद्मा, वसुमित्रा	२०००	सर्वश्री सर्वसेना
				महाभीम	उत्तरेन्द्र	रत्नाढ्या कंचनप्रभा	२०००	रुद्रा रुद्रवती
७.	भूत	तुलसी	कालश्यामल	स्वरूप	दक्षिणेन्द्र	रूपवती, बहुरूपा	२०००	भूता भूतकान्ता
				प्रतिरूप	उत्तरेन्द्र	सुमुखी, सुसीमा	२०००	महाबाहू भूतरक्ता
८.	पिशाच	कदम्ब	कज्जल-सदृश	काल	दक्षिणेन्द्र	कमला, कमलप्रभा	२०००	अम्बा कला
				महाकाल	उत्तरेन्द्र	उत्पला, सुदर्शना	२०००	रस-सुरसा सुदर्शनिका

व्यन्तरदेवोंके नगरोंके आश्रयरूप द्वीपोंका निरूपण—

ताण णयराणि अंजणक-वज्जधातुक-सुवण्ण-मणिसिलका ।
दीवे वज्जे रजदे, हिंगुलके होंति हरिदाले ।।६०।।

अर्थ—उन व्यन्तरदेवोंके नगर अंजनक, वज्रधातुक, सुवर्ण मनःशिलक, वज्र, रजत, हिंगुलक और हरिताल द्वीपमें स्थित हैं ।।६०।।

नगरोंके नाम एवं उनका अवस्थान—

णिय-णामकं मज्झे, पहू-कंतावत्त-मज्झ-णामाणि ।
पुव्वादिसु इंदाणं, सम-भागे पंच पंच णयराणि ।।६१।।

अर्थ—सम-भागमें इन्द्रोंके पाँच-पाँच नगर होते हैं । उनमें अपने नामसे अंकित नगर मध्यमें और प्रभ, कान्त, आवर्त एवं मध्य, इन नामोंसे अंकित नगर पूर्वादिक दिशाओंमें होते हैं ।।६१।।

विशेषार्थ—व्यन्तरदेवोंके नगर समतल भूमिपर बने हुए हैं; भूमिके नीचे या पर्वत आदिके ऊपर नहीं हैं । प्रत्येक इन्द्रके पाँच-पाँच नगर होते हैं । मध्यका नगर इन्द्रके नामवाला ही होता है तथा पूर्वादि दिशाओंके नगरोंके नाम इन्द्रके नामके आगे क्रमशः प्रभ, कान्त, आवर्त और मध्य जुड़कर बनते हैं । यथा—

क्र०	इन्द्र-नाम	मध्य-नगर	पूर्वदिशामें	दक्षिण दिशामें	पश्चिम दिशामें	उत्तर दिशामें
१.	किम्पुरुष	किम्पुरुषनगर	किम्पुरुषप्रभ	किम्पुरुषकान्त	किम्पुरुषावर्त	किम्पुरुषमध्य
२.	किन्नर	किन्नरनगर	किन्नरप्रभ	किन्नरकान्त	किन्नरावर्त	किन्नरमध्य
३.	सत्पुरुष	सत्पुरुषनगर	सत्पुरुषप्रभ	सत्पुरुषकान्त	सत्पुरुषावर्त	सत्पुरुषमध्य
४.	महापुरुष	महापुरुषनगर	महापुरुषप्रभ	महापुरुषकान्त	महापुरुषावर्त	महापुरुषमध्य

इसीप्रकार शेष बारह इन्द्रोंके नगर भी जानने चाहिए ।

आठों द्वीपोंमें इन्द्रोंका निवास-विभाग—

जंबूदीव-सरिच्छा, दक्खिण-इंदा य दक्खिणे भागे ।
उत्तर - भागे उत्तर - इंदा णं तेसु दीवेसुं ।।६२।।

अर्थ—जम्बूद्वीप सदृश उन द्वीपोंमें दक्षिण-इन्द्र दक्षिण भागमें और उत्तर इन्द्र उत्तर भागमें निवास करते हैं ॥६२॥

विशेषार्थ—

अञ्जनकद्वीपकी दक्षिण दिशामें किम्पुरुष और उत्तर दिशामें किन्नर इन्द्र रहता है।
वज्रधातुकद्वीपकी दक्षिणदिशामें सत्पुरुष और उत्तर दिशामें महापुरुष इन्द्र रहता है।
सुवर्णद्वीपकी दक्षिण दिशामें महाकाय और उत्तरदिशामें अतिकाय इन्द्र रहता है।
मनःशिलकद्वीपकी दक्षिण दिशामें गीतरति और उत्तरदिशामें गीतयश इन्द्र रहता है।
वज्रद्वीपकी दक्षिण दिशामें माणिभद्र और उत्तर दिशामें पूर्णभद्र इन्द्र रहता है।
रजतद्वीपकी दक्षिण दिशामें भीम और उत्तरदिशामें महाभीम इन्द्र रहता है।
हिंगुलकद्वीपकी दक्षिण दिशामें स्वरूप और उत्तर दिशामें प्रतिरूप इन्द्र रहता है।
हरिताल द्वीपकी दक्षिण दिशामें काल और उत्तरदिशामें महाकाल इन्द्र रहता है।

व्यन्तरदेवोंके नगरोंका वर्णन—

समचउरस्स ठिदीणं, पायारा तप्पुराण कणयमया ।
विजयसुर-णयर-वण्णिद-पायार-चउत्थ-भाग-समा ॥६३॥

अर्थ—समचतुष्करूपसे स्थित उन पुरोंके स्वर्णमय कोट विजयदेवके नगरके वर्णनमें कहे गये कोटके चतुर्थ भाग प्रमाण है ॥६३॥

विशेषार्थ—अधिकार ५ गाथा १८३-१८४ में विजयदेवके नगर-कोटका प्रमाण ३७$\frac{1}{2}$ योजन ऊँचा, $\frac{1}{2}$ योजन अवगाह, १२$\frac{1}{2}$ योजन भूविस्तार और ६$\frac{1}{4}$ योजन मुख विस्तार कहा गया है। यहाँ व्यन्तरदेवोंके नगर-कोटोंका प्रमाण इसका चतुर्थभाग है। अर्थात् ये कोट ९$\frac{3}{8}$ यो॰ ऊँचे, $\frac{1}{8}$ योजन अवगाह, ३$\frac{1}{8}$ यो॰ भूविस्तार और १$\frac{9}{16}$ यो॰ मुख-विस्तारवाले हैं।

ते णयराणं बाहिर, असोय-सत्तच्छदाण वणसंडा ।
चंपय - चूदाण[1] तहा, पुव्वादि - दिसासु पत्तेक्कं ॥६४॥

अर्थ—उन नगरोंके बाहर पूर्वादिक दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें अशोक, सप्तच्छद, चम्पक तथा आम्र-वृक्षोंके वनसमूह स्थित हैं ॥६४॥

जोयण-लक्खायामा, पण्णास-सहस्स-रुंद-संजुत्ता ।
ते वणसंडा बहुविह - विडव - विभूदीहि रेहंति ॥६५॥

---

१. ब. क. ज. चूवाण।

अर्थ—एक लाख योजन लम्बे और पचास हजार योजन प्रमाण विस्तार युक्त वे वन-समूह बहुत प्रकारकी विटप (वृक्ष) विभूतिसे सुशोभित होते हैं अर्थात् अनेकानेक प्रकारके वृक्ष वहाँ और भी हैं ।।६५।।

णयरेसु तेसु दिव्वा, पासादा कणय-रजद-रयणमया ।
उच्छेहादिसु तेसुं, उवएसो संपइ पणट्ठो ।।६६।।

अर्थ—उन नगरोंमें सुवर्ण, चाँदी एवं रत्नमय जो दिव्य प्रासाद हैं । उनकी ऊँचाई आदिका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ।।६६।।

व्यन्तरेन्द्रोंके परिवार देवोंकी प्ररूपणा—

एदेसु वेंतरिंदा, कीडंते बहु - विभूदि - भंगीहिं ।
णाणा-परिवार-जुदा, भणिमो परिवार-णामाइं ।।६७।।

अर्थ—इन नगरोंमें नाना परिवारसे संयुक्त व्यन्तरेन्द्र प्रचुर ऐश्वर्य पूर्वक क्रीड़ा करते हैं । (अब) उनके परिवारके नाम कहता हूँ ।।६७।।

पडिइंदा सामाणिय, तणुरक्खा होंति तिण्णि परिसाओ ।
सत्ताणीय - पइण्णा, अभियोगा ताण पत्तेयं ।।६८।।

अर्थ—उन इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्ष, तीनों पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक और आभियोग्य, इसप्रकार ये परिवार देव होते हैं ।।६८।।

प्रतीन्द्र एवं सामानिकादि देवोंके प्रमाण—

एक्केक्को पडिइंदो, एक्केक्काणं हवेदि इंदाणं ।
चत्तारि सहस्साणि, सामाणिय - णाम - देवाणं ।।६९।।

१ । सा ४००० ।

अर्थ—प्रत्येक इन्द्रके एक-एक प्रतीन्द्र और चार-चार हजार (४००० — ४०००) सामानिक देव होते हैं ।।६९।।

एक्केक्कस्सिं इंदे, तणुरक्खाणं पि सोलस-सहस्सा ।
अट्ठ-दह - बारस - कमा, तिप्परिसासुं सहस्साणि ।।७०।।

१६००० । ८००० । १०००० । १२००० ।

अर्थ—एक-एक इन्द्रके तनुरक्षकोंका प्रमाण सोलह हजार (१६०००) और तीनों पारिषद देवोंका प्रमाण क्रमशः आठ हजार (८०००), दस हजार (१००००) तथा बारह हजार (१२०००) है ॥७०॥

सप्त अनीक सेनाओंके नाम एवं प्रमाण—

करि-हय-पाइक्क तहा, गंधव्वा णट्टआ रहा वसहा ।
इय सत्ताणीयाणि, पत्तेक्कं होंति इंदाणं ॥७१॥

अर्थ—हाथी, घोड़ा, पदाति, गन्धर्व, नर्तक, रथ और बैल, इसप्रकार प्रत्येक इन्द्रके ये सात-सात सेनाएँ होती हैं ॥७१॥

कुंजर-तुरयादीणं पुह पुह चेट्ठंति सत्त कक्खाओ ।
तेसुं पढमा कक्खा, अट्ठावीसं सहस्साणि ॥७२॥

२८००० ।

अर्थ—हाथी और घोड़े आदिकी पृथक्-पृथक् सात कक्षाएँ स्थित हैं । इनमेंसे प्रथम कक्षाका प्रमाण अट्ठाईस हजार (२८०००) है ॥७२॥

बिदियादीणं दुगुणा, दुगुणा ते होंति कुंजर-प्पहुदी ।
एदाणं मिलिदाणं परिमाणाइं परूवेमो ॥७३॥

अर्थ—द्वितीयादिक कक्षाओंमें वे हाथी आदि दूने-दूने हैं । इनका सम्मिलित प्रमाण कहता हूँ ॥७३॥

पंचत्तीसं लक्खा, छप्पण्ण-सहस्स-संजुदा ताणं ।
एक्केक्कस्सिं इंदे, हत्थीणं होंति परिमाणं ॥७४॥

३५५६००० ।

अर्थ—उनमेंसे प्रत्येक इन्द्रके हाथियोंका (हाथी, घोड़ा, पदाति आदि सातों सेनाओंका पृथक्-पृथक्) प्रमाण पैंतीस लाख और छप्पन हजार (३५५६०००) है ॥७४॥

बाणउदि-सहस्साणि, लक्खा अडदाल बेण्णि कोडीओ ।
इंदाणं पत्तेक्कं, सत्ताणीयाण परिमाणं ॥७५॥

२४८९२००० ।

अर्थ—प्रत्येक इन्द्रकी सात अनीकोंका प्रमाण दो करोड़ अड़तालीस लाख बानवै हजार (३५५६०००×७=२४८९२०००) है ॥७५॥

विशेषार्थ--पदका जितना प्रमाण हो उतने स्थानमें २ का अङ्क रखकर परस्पर गुणा करें। जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे एक घटाकर शेषमें एक कम गुणाकारका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, उसका मुखमें गुणाकर देनेसे सङ्कलित धनका प्रमाण प्राप्त होता है। इस नियमानुसार सङ्कलित धन—यहाँ पद प्रमाण ७ और मुख प्रमाण २८००० है अतः —

२८००० × [{ (२×२×२×२×२×२×२) — १ } ÷ (२ — १)] = ३५५६००० एक अनीककी सात कक्षाओंका प्रमाण और ३५५६०००×७=२४८९२००० सातों अनीकोंका कुल एकत्रित प्रमाण है।

अथवा—

कक्षाएं	हाथी	घोड़ा	पदाति	रथ	गन्धर्व	नर्तक	बैल
प्रथम	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००
द्वितीय	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००
तृतीय	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००
चतुर्थ	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००
पञ्चम	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००
षष्ठ	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००
सप्तम	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००
योग	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० +	३५५६००० =
							२४८९२०००

कुल इन्द्र १६ हैं और सभी समान अनीक-धनके स्वामी हैं अतः २४८९२०००×१६= ३९८२७२००० सम्पूर्ण व्यन्तरदेवोंकी सेनाका सर्वधन है।

प्रकीर्णकादि व्यन्तरदेवोंका प्रमाण—

भोमिंदाण पइण्णय-अभिजोग्ग-सुरा हवंति जे केई।
ताणं पमाण-हेदू उवएसो संपइ पणट्ठो ॥७६॥

अर्थ—व्यन्तरेन्द्रोंके जो कोई प्रकीर्णक और आभियोग्य आदि देव होते हैं, उनके प्रमाणका निरूपक उपदेश इस-समय नष्ट हो चुका है ॥७६॥

एवंविह - परिवारा, वेंतर - इंदा सुहाइ भुंजंता ।
णंदंति णिय - पुरेसुं, बहुविह कीडाओ[1] कुव्वमाणा ॥७७॥

अर्थ—इसप्रकारके परिवारसे संयुक्त होकर सुखोंका उपभोग करनेवाले व्यन्तरेन्द्र अपने-अपने पुरोंमें बहुत प्रकारकी क्रीडाएँ करते हुए आनन्दको प्राप्त होते हैं ॥७७॥

गणिकामहत्तरियोंके नगरोंका अवस्थान एवं प्रमाण—

णिय-णिय-इंदपुरीणं, दोसु वि पासेसु होंति णयराणि ।
गणिकामहल्लियाणं, वर - वेदी - पहुदि - जुत्ताणि ॥७८॥

अर्थ—अपने-अपने इन्द्रकी नगरियोंके दोनों पार्श्वभागोंमें उत्तम वेदी आदि सहित गणिका-महत्तरियोंके नगर होते हैं ॥७८॥

चुलसीदि-सहस्साणि, जोयणया तप्पुरीण वित्थारो ।
तेत्तियमेत्तं दीहं, पत्तेक्कं होदि णियमेण ॥७९॥

८४००० ।

अर्थ—उन नगरियोंमेंसे प्रत्येक नगरीका विस्तार चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण और लम्बाई भी नियमसे इतनी (८४००० यो०) ही है ॥७९॥

नीचोपपाद व्यन्तरदेवोंके निवास-क्षेत्रका निरूपण—

णीचोववाद - देवा, हत्थ - पमाणे वसंति भूमीदो ।
दिगुवासि-सुरा - अंतरणिवासि - कुंभंड - उप्पण्णा ॥८०॥
अणुपण्णा अ पमाणय, गंध-महगंध-भुजंग-पीदिकया ।
बारसमा आयासे, उववण्ण वि इंद - परिवारा ॥८१॥
उवरि उवरि वसंते, तिण्णि वि णीचोववाद-ठाणादो ।
दस हत्थ - सहस्साइं, सेसा विउणेहि पत्तेक्कं ॥८२॥
ताणं विण्णास रूव संदिट्ठी—

---

1. द. केढीओ, ब. क. ज. केढाओ ।

२००००
२००००
२००००
२००००
२००००
२००००
२००००
२००००
१००००
१००००
१००००
१

दक्खिण-उत्तर-इंदाणं परूवणा समत्ता ।।६।।

अर्थ—नीचोपपाद देव पृथिवीसे एक हाथ प्रमाण ऊपर निवास करते हैं। उनके ऊपर दिग्वासी, अन्तरनिवासी, कूष्माण्ड, उत्पन्न, अनुत्पन्न, प्रमाणक, गन्ध, महागन्ध, भुजंग, प्रीतिक और बारहवें आकाशोत्पन्न, इन्द्रके ये परिवार-देव क्रमशः ऊपर-ऊपर निवास करते हैं। इनमेंसे प्रारम्भके तीन प्रकारके देव नीचोपपाद देवोंके स्थानसे उत्तरोत्तर दस-दस हजार हस्त प्रमाण अन्तरसे तथा शेष देव बीस-बीस हजार हस्तप्रमाण अन्तरसे निवास करते हैं ।।८०-८२।।

विशेषार्थ—चित्रा पृथिवीसे एक हाथ ऊपर नीचोपपादिक देव स्थित हैं। इनसे १०००० हाथ ऊपर दिग्वासी देव हैं। इनसे १०००० हाथ ऊपर अन्तरवासी और इनसे १०००० हाथ ऊपर कूष्माण्ड देव निवास करते हैं। इनसे २०००० हाथ ऊपर उत्पन्न इनसे २०००० हाथ ऊपर अनुत्पन्न, इनसे २०००० हाथ ऊपर प्रमाणक, इनसे २०००० हाथ ऊपर गन्ध, इनसे २०००० हाथ ऊपर महागन्ध, इनसे २०००० हाथ ऊपर भुजङ्ग, इनसे २०००० हाथ ऊपर प्रीतिक और इनसे २०००० हाथ ऊपर आकाशोत्पन्न व्यन्तरदव निवास करते हैं।

यही इनकी विन्यासरूप संदृष्टि है।

इसप्रकार दक्षिण-उत्तर इन्द्रोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।।६।।

व्यन्तरदेवोंकी आयुका निर्देश—

उक्कस्साऊ पल्लं, होदि असंखो य मज्झिमो आऊ ।
दस वास - सहस्साणि, भोम्म - सुराणं जहण्णाऊ ।।८३।।

प १ । रि । १०००० ।

अर्थ—व्यन्तरदेवोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण, मध्यम आयु असंख्यात वर्ष प्रमाण और जघन्यायु दस हजार (१००००) वर्ष प्रमाण है ।।८३।।

इंद-पडिइंद-सामाणियाण - पत्तेक्कमेक्क - पल्लाऊ ।
गणिका-महल्लियाणं, पल्लद्धं सेसयाण जह-जोग्गं ।।८४।।

अर्थ—इन्द्र, प्रतीन्द्र एवं सामानिक देवोंमेंसे प्रत्येककी आयु क्रमशः एक-एक पल्य है । गणिकामहत्तरियोंकी आयु अर्धपल्य और शेष देवोंकी आयु यथायोग्य है ।।८४।।

दस वास-सहस्साणि, आऊ णीचोववाद - देवाणं ।
तत्तो जाव असीदिं, तेत्तियमेत्ताए वड्ढीए ।।८५।।
अह चुलसीदी पल्लट्ठमंस - पादं[1] कमेण पल्लद्धं ।
दिव्वासि - प्पहुदीणं, भणिदं आउस्स परिमाणं ।।८६।।

१०००० । २०००० । ३०००० । ४०००० । ५०००० । ६०००० ।

७०००० । ८०००० । ८४००० | प/८ | प/४ | प/२ |

आऊ परूवणा समत्ता ।।७।।

अर्थ—नीचोपपाद देवोंकी आयु दस हजार वर्ष है । पश्चात् दिग्वासी आदि शेष (७) देवोंकी आयु क्रमशः दस-दस हजार वर्ष बढ़ाते हुए अस्सी हजार वर्ष पर्यन्त है । शेष चार देवोंकी आयु क्रमशः चौरासी हजार वर्ष, पल्यका आठवाँ भाग, पल्यका एक पाद (चतुर्थ भाग) और अर्ध-पल्य प्रमाण कही गई है ।।८५-८६।।

विशेषार्थ—नीचोपपाद व्यन्तर देवोंकी आयुका प्रमाण १०००० वर्ष, दिग्वासीका २०००० वर्ष, अन्तरवासीका ३०००० वर्ष, कूष्माण्डका ४०००० वर्ष, उत्पन्न का ५०००० वर्ष, अनुत्पन्नका ६०००० वर्ष, प्रमाणकका ७०००० वर्ष, गन्धका ८०००० वर्ष, महागन्धका ८४००० वर्ष, भुजङ्ग देवोंका पल्यके आठवें भाग, प्रीतिकका पल्यके चतुर्थभाग और आकाशोत्पन्न देवोंकी आयु का प्रमाण पल्यके अर्धभाग प्रमाण है ।

। इसप्रकार आयु-प्ररूपणा समाप्त हुई ।।७।।

व्यन्तर देवोंके आहारका निरूपण—

दिव्वं अमयाहारं, मणेण भुंजंति किण्णर-प्पमुहा ।
देवा देवीओ तहा, तेसुं कवलासणं णत्थि ।।८७।।

---

१. द. ब. पादक्कमेण. क. पावकमे ।

अर्थ—किन्नर आदि व्यन्तर देव तथा देवियाँ दिव्य एवं अमृतमय आहारका उपभोग मनसे ही करते हैं, उनके कवलाहार नहीं होता ॥८७॥

पल्लाउ-जुदे देवे, कालो असणस्स पंच दिवसाणि ।
दोण्णि च्चिय णादव्वो, दस-वास-सहस्स-आउम्मि ॥८८॥

आहार-परूवणा समत्ता ॥८॥

अर्थ—पल्यप्रमाण आयुसे युक्त देवोंके आहारका काल पाँच दिन (बाद) और दस हजार वर्ष प्रमाण आयुवाले देवोंके आहारका काल दो दिन (बाद) जानना चाहिए ॥८८॥

आहार-प्ररूपणा समाप्त हुई ॥८॥

उच्छ्वास निरूपण—

पलिदोवमाउ-जुत्तो, पंच-मुहुत्तेहि एदि उस्सासो ।
सो अजुदाउ-जुदे वेंतर - देवम्मि अ सत्त पाणेहिं ॥८९॥

उस्सास-परूवणा समत्ता ॥९॥

अर्थ—व्यन्तर देवोंमें जो पल्यप्रमाण आयुसे युक्त हैं वे पाँच मुहूर्तों (के बाद) में और जो दस हजार वर्ष प्रमाण आयुमे संयुक्त हैं वे सात प्राणों (उच्छ्वास-निश्वास परिमित काल विशेषके बाद) में ही उच्छ्वासको प्राप्त करते है ॥८९॥

। उच्छ्वास–प्ररूपणा समाप्त हुई ॥९॥

व्यन्तरदेवोंके अवधिज्ञानका क्षेत्र—

अवरा ओहि-धरित्ती, अजुदाउ-जुदस्स पंच-कोसाणि ।
उक्किट्ठा पण्णासा, हेट्ठोवरि पस्समाणस्स ॥९०॥

को ५ । को ५० ।

अर्थ—दस हजार वर्ष प्रमाण आयुवाले व्यन्तर देवोंके अवधिज्ञानका विषय ऊपर और नीचे जघन्य पाँच (५) कोस तथा उत्कृष्ट पचास (५०) कोस प्रमाण है ॥९०॥

पलिदोवमाउ-जुत्तो, वेंतरदेवो तलम्मि उवरिम्मि ।
अवहीए जोयणाणि, एक्कं लक्खं पलोएदि ॥९१॥

१०००००

ओहि-णाणं समत्तं ॥१०॥

अर्थ—पल्योपम प्रमाण आयुवाले व्यन्तरदेव अवधिज्ञानसे नीचे और ऊपर एक-एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण देखते हैं ।।९१।।

अवधिज्ञानका कथन समाप्त हुआ ।।१०।।

व्यन्तरदेवोंकी शक्तिका निरूपण—

दस-वास-सहस्साऊ, एक्क-सयं माणुसाण मारेदुं ।
पोसेदुं पि समत्थो, एक्केक्को वेंतरो देवो ।।९२।।

अर्थ—दस हजार वर्ष प्रमाण आयुवाला प्रत्येक व्यन्तरदेव एकसौ मनुष्योंको मारने एवं पालन करनेमें समर्थ होता है ।।९२।।

पण्णाधिय-सय-दंडं, पमाण-विक्खंभ-बहल-जुत्तं सो ।
खेत्तं णिय-सत्तीए, उक्खणिदूणं [1]ठवेदि अण्णत्थ ।।९३।।

अर्थ—वह देव अपनी शक्तिसे एकसौ पचास धनुषप्रमाण विस्तार एवं बाहल्यसे युक्त क्षेत्र को उखाड़ (उठा) कर अन्यत्र रख सकता है ।।९३।।

पल्लट्टेदि[2] भुजेहिं, [3]छक्खंडाणि पि एक्क-पल्लाऊ ।
मारेदुं पोसेदुं, तेसु समत्थो ठिदं[4] लोयं ।।९४।।

अर्थ—एक पल्य प्रमाण आयुवाला व्यन्तरदेव अपनी भुजाओंसे छह्खण्डोंको उलटने में समर्थ है और उनमें स्थित मनुष्योंको मारने तथा पालनेमें भी समर्थ है ।।९४।।

उक्कस्से रूव - सदं, देवो विकरेदि अजुदमेत्ताऊ ।
अवरे सग-रूवाणि, मज्झिमयं विविह - रूवाणि ।।९५।।

अर्थ— दस हजार वर्षकी आयुवाला व्यन्तरदेव उत्कृष्ट रूपसे सौ रूपोंकी, जघन्यरूपसे सात रूपोंकी और मध्यमरूपसे विविध रूपोंकी अर्थात् सातसे अधिक और सौसे कम रूपोंकी विक्रिया करता है ।।९५।।

सेसा वेंतरदेवा, णिय-णिय-ओहीण जेत्तियं खेत्तं ।
पूरंति तेत्तियं पि हु, पत्तेक्कं विकरण-बलेणं ।।९६।।

अर्थ—शेष व्यन्तरदेवोंमेंसे प्रत्येक देव अपने-अपने अवधिज्ञानका जितना क्षेत्र है, उतने प्रमाण क्षेत्रको विक्रिया-बलसे पूर्ण करते हैं ।।९६।।

---

१. द. रवेदि । २. द. पल्लट्टेहि, ब. क. ज. पल्लट्टदि । ३. द. छक्खंडेण पि, क. छक्खंडं हि पि । ४. द. ब. दिदं ।

संखेज्ज - जोयणाणि, संखेज्जाऊ य एक्क-समयेणं ।
जादि असंखेज्जाणि, ताणि असंखेज्ज - आऊ य ॥९७॥

। सत्ति-परूवणा समत्ता ॥११॥

अर्थ—संख्यात वर्ष प्रमाण आयुवाला व्यन्तरदेव एक समयमें संख्यात योजन और असंख्यात वर्ष प्रमाण आयुवाला वह देव असंख्यात योजन जाता है ॥९७॥

शक्ति-प्ररूपणा समाप्त हुई ॥११॥

व्यन्तरदेवोंके उत्सेधका कथन—

अट्ठाण वि पत्तेक्कं, किणर-पहुदीण वेंतर-सुराणं ।
उच्छेहो णादव्वो, दस - कोदंड पमाणेणं ॥९८॥

उच्छेह-परूवणा समत्ता ॥१२॥

अर्थ—किन्नर आदि आठों व्यन्तरदेवोंमेंसे प्रत्येककी ऊंचाई दस धनुष प्रमाण जाननी चाहिए ॥९८॥

उत्सेध-प्ररूपणा समाप्त हुई ॥१२॥

व्यन्तरदेवोंकी संख्याका निरूपण—

चउ-लक्खाधिय-तेवीस-कोडि-अंगुलय-सूइ-वग्गेहिं ।
भजिदाए सेढीए, वग्गे भोमाण परिमाणं ॥९९॥

$\frac{=}{४}$ । ५३०८४१६०००००००००० ।

संखा समत्ता ॥१३॥

अर्थ—तेईस करोड़ चार लाख सूच्यंगुलोंके वर्गका जगच्छ्रेणीके वर्गमें अर्थात् ६५५३६ × ८१ × १० शून्य रूप प्रतरांगुलोंका जगत्प्रतरमें ($\frac{=}{४}$) भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना व्यन्तरदेवोंका प्रमाण है ॥९९॥

विशेषार्थ—जगच्छ्रेणीका चिह्न और जगत्प्रतरका चिह्न = है तथा एक सूच्यंगुलका चिह्न २ और सूच्यंगुलके वर्गका चिह्न (२ × २ = ४) होता है, अतः संदृष्टिके $\frac{=}{४}$ चिह्नका अर्थ है जगत्प्रतर में ५३०८४१६०००००००००० प्रतरांगुलोंका भाग देना ।

एक योजनमें ७६८००० अंगुल होते हैं अतः ३०० योजनोंमें (७६८००० × ३०० =) २३०४००००० अंगुल हुए । इनका वर्ग करनेपर $(२३०४०००००)^{२}$ = ५३०८४१६००००००००००

प्रतरांगुल प्राप्त होते हैं। जगत्प्रतरमें इन्हीं प्रतरांगुलोंका भाग देनेपर व्यन्तर देवोंका प्रमाण प्राप्त होता है।

संख्याका कथन समाप्त हुआ ।।१३।।

एक समयमें जन्म-मरणका प्रमाण —

संखातीद-विभत्ते, वेंतर-वासम्मि लद्ध-परिमाणा ।
उप्पज्जंता जीवा, मर - माणा होंति तम्मेत्ता ।।१००।।

। उप्पज्जण-मरणा समत्ता ।।१४।।

अर्थ—व्यन्तरदेवोंके प्रमाणमें असंख्यातका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो वहाँ उतने जीव (प्रति समय) उत्पन्न होते हैं और उतने ही मरते हैं ।।१००।।

उत्पद्यमान और म्रियमाण (व्यन्तर देवोंके) प्रमाणका कथन समाप्त हुआ ।।१४।।

आयु बन्धक भाव आदि—

आउस-बंधण-भावं, दंसण-गहणाण कारणं विविहं ।
गुणठाण - प्पहुदीणि, भउमाणं भावण - समाणि ।।१०१।।

अर्थ—व्यन्तरोंके आयु बन्धक परिणाम, सम्यग्दर्शन ग्रहणके विविध कारण और गुणस्थानादिकोंका कथन भवनवासियोंके सदृश ही जानना चाहिए ।।१०१।।

आयुबंधके परिणाम, सम्यक्त्व-ग्रहणकी विधि और गुणस्थानादिकों का
कथन करने वाले तीन अधिकार पूर्ण हुए ।।१५-१६-१७।।

व्यन्तरदेव-सम्बन्धी जिनभवनोंका प्रमाण—

जोयण-सद-तिदय-कदी, भजिदे पदरस्स संखभागम्मि ।
जं लद्धं तं माणं, वेंतर - लोए जिण - घराणं ।।१०२।।

= । ५३०८४१६०००००००००० ।

अर्थ—जगत्प्रतरके संख्यात भागमें तीनसौ योजनोंके वर्गका भाग देनेपर जो लब्ध आवे, जिनमन्दिरोंका उतना प्रमाण व्यन्तरलोकमें है ।।१०२।।

विशेषार्थ—व्यन्तरलोकके जिनभवन $= \dfrac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{संख्यात} \times (३००)^2}$

अथवा $= \dfrac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{संख्यात} \times ५३०८४१६००००००००००}$

अधिकारान्त मङ्गलाचरण—

इंद-सद-णमिद-चलणं, अणंत-सुह-णाण-विरिय-दंसणया ।
भव्वंबुज - वण - भाणुं, सेयंस - जिणं [1]णमंसामि ॥१०३॥

एवमाइरिय-परंपरागय-तिलोयपण्णत्तीए वेंतरलोय-सरूव-पण्णत्ती णाम छट्ठमो महाहियारो समत्तो ॥६॥

अर्थ—सौ इन्द्रोंसे नमस्करणीय चरणोंवाले, अनन्त सुख, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य एवं अनन्तदर्शनवाले तथा भव्यजीवरूप कमलवनको विकसित करनेके लिए सूर्य-सदृश श्रेयांस जिनेन्द्रको (मैं) नमस्कार करता हूँ ॥१०३॥

इसप्रकार आचार्य-परंपरागत त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें व्यन्तरलोक-स्वरूप-प्रज्ञप्ति नामक
छठा महाधिकार समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज. पसावम्मि ।

तिलोयपण्णत्ती

सत्तमो महाहियारो

मङ्गलाचरण—

अक्खलिय-णाण-दंसण-सहियं सिरि-वासुपुज्ज-जिणसामिं ।
णमिऊणं वोच्छामो, जोइसिय - जगस्स पण्णत्तिं ॥१॥

अर्थ—अस्खलित ज्ञान-दर्शनसे युक्त श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्रको नमस्कार करके ज्योतिर्लोककी प्रज्ञप्ति कहता हूँ ॥१॥

सत्तरह अन्तराधिकारोंका निर्देश—

जोइसिय-णिवासखिदी, भेदो संखा तहेव विण्णासो ।
परिमाणं चर - चारो, अचर - सरूवाणि आऊ य ॥२॥

आहारो उस्सासो, उच्छेहो ओहिणाण - सत्तीओ ।
जीवाणं उप्पत्ती - मरणाइं एक्क - समयम्मि ॥३॥

आउग-बंधण-भावं, दंसण-गहणस्स कारणं विविहं ।
गुणठाणादि - पवण्णणमहियारा सत्तरसिमाए ॥४॥

। १७ ।

अर्थ—ज्योतिषी देवोंका १निवासक्षेत्र, २भेद, ३संख्या, ४विन्यास, ५परिमाण, ६चर ज्योतिषियोंका संचार, ७अचर ज्योतिषियोंका स्वरूप, ८आयु, ९आहार, १०उच्छ्वास, ११उत्सेध, १२अवधिज्ञान, १३शक्ति, १४एक समयमें जीवोंकी उत्पत्ति एवं मरण, १५आयुके बन्धक भाव, १६सम्य-

नदर्शन ग्रहणके विविध कारण और १७गुणस्थानादि वर्णन, इसप्रकार ये ज्योतिर्लोकके कथनमें सत्तरह अधिकार हैं ॥२-४॥

ज्योतिषदेवोंका निवासक्षेत्र—

रज्जु-कदी गुणिदव्वं, एक्क-सय-दसुत्तरेहि जोयणए ।
तस्सि अगम्म-देसं[1], सोहिय सेसम्मि जोइसया ॥५॥

$\frac{=}{४९}$ । ११० ।

अर्थ—राजूके वर्गको एक सौ दस योजनोंसे गुणा (राजू^{२} × ११०) करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे अगम्य देशको छोड़कर शेषमें ज्योतिषी देव रहते हैं ॥५॥

अगम्य क्षेत्रका प्रमाण—

तं पि य अगम्म-खेत्तं, समवट्टं जंबुदीव-बहुमज्झे ।
पण-एक्क-ख-पण-दुग-णव-दो-ति-ख-तिय-एक्क-जोयणंक कमे ॥६॥

१३०३२९२५०१५ ।

णिवास-खेत्तं समत्तं ॥१॥

अर्थ—यह अगम्य क्षेत्र भी समवृत्त जम्बूद्वीपके बहुमध्य-भागमें स्थित है । उसका प्रमाण पांच, एक, शून्य, पांच, दो, नौ, दो, तीन, शून्य, तीन और एक इस अंक क्रमसे जो संख्या निर्मित हो उतने योजन प्रमाण है ॥६॥

विशेषार्थ—त्रिलोकसार गाथा ३४५ में कहा गया है कि "ज्योतिर्गण सुमेरु पर्वतको ११२१ योजन छोड़कर गमन करते हैं" । ज्योतिर्देवोंके संचारसे रहित सुमेरुके दोनों पार्श्वभागोंका यह प्रमाण (११२१×२)=२२४२ योजन होता है । भूमिपर सुमेरुका विस्तार १०००० योजन है । इन दोनों को जोड़ देनेपर ज्योतिर्देवों के अगम्य क्षेत्रका सूची-व्यास (१००००+२२४२=) १२२४२ योजन प्राप्त होता है ।

इसी ग्रन्थ के चतुर्थाधिकार की गाथा ९ के नियमानुसार उक्त सूची-व्यासका सूक्ष्म परिधि प्रमाण एवं क्षेत्रफल प्राप्त होता है । यथा— $\sqrt{१२२४२^२ \times १०}$ = ३८७१३ योजन परिधि । (वर्गमूल निकालने पर ३८७१२ यो० ही आते हैं । किन्तु शेष बची राशि आधे से अधिक है । अतः ३८७१३ योजन ग्रहण किये गये हैं ।) (परिधि ३८७१३)×($\frac{१२२४२}{४}$ व्यास का चतुर्थांश)=

---

1. ब. अम्ममदेसि ।

क्षेत्रफल प्राप्त हुआ । "खेत्तफलं वेह-गुणं खादफलं होइ सव्वत्थ" ॥१७॥ त्रि० सार के नियमानुसार क्षेत्रफलको ऊँचाईसे गुणित करनेपर अगम्य क्षेत्रका प्रमाण ($\frac{३८०१३}{९} \times \frac{१२२४२}{४} \times \frac{११०}{९}$) = १३०३२९२५०१५ घन योजन प्राप्त होता है ।

गाथा ६ में घन-योजन न कहकर मात्र योजन कहे गये हैं, जो विचारणीय हैं ।

॥ निवासक्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ॥१॥

ज्योतिषदेवोंके भेद एवं वातवलयसे उनका अन्तराल—

चंदा दिवायरा गह-णक्खत्ताणि पइण्ण-ताराओ ।
पंच - विहा जोदि - गणा, लोयंत घणोदहिं पुट्ठा ॥७॥

॥ = प्र ७̄ $\frac{७}{२}$, फ ७̄ २ । इ १९०० । ल १०८४ ॥

अर्थ—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा, इसप्रकार ज्योतिषी देवोंके समूह पाँच प्रकारके हैं । ये देव लोकके अन्तमें घनोदधि वातवलयको स्पर्श करते हैं ॥७॥

विशेषार्थ—संदृष्टिका स्पष्ट विवरण—

= जगत्प्रतर का चिह्न है ।

प्र प्रमाण है । यहाँ प्रमाण राशि ३½ रज्जू है ।

७̄ यह रज्जू शब्द का चिह्न है और $\frac{७}{२}$ ये ३½ रज्जू हैं ।

फ फल है । यहाँ फल राशि ७̄ २ अर्थात् २ रज्जू है ।

इ इच्छा है । जो १९०० योजन है । अर्थात् चित्रा पृथिवी एक हजार योजन मोटी है और ज्योतिषी देवोंकी अधिकतम ऊँचाई चित्राके उपरिम तलसे ९०० योजन की ऊँचाई पर्यन्त है अतः (१००० + ९००) = १९०० योजन इच्छा है ।

ल लब्ध है । जो १०८४ योजन है ।

शंका—१०८४ योजन लब्ध कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोकके समीप एक राजू चौड़ा है और ३½ राजूकी ऊँचाई पर ब्रह्मलोकके समीप ५ राजू चौड़ा है । एक राजू चौड़ी त्रस नाली छोड़ देनेपर लोकके एक पार्श्वभागमें (३½ राजूपर) दो राजूका अन्तराल प्राप्त होता है । ज्योतिषी देव मध्यलोकसे प्रारम्भकर १९०० योजनकी ऊँचाई पर्यन्त ही हैं अतः जबकि $\frac{७}{२}$ राजू की ऊँचाई पर (एक पार्श्वभागमें) २ राजू

अन्तराल है तब १९०० की ऊँचाई पर कितना अन्तराल प्राप्त होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{\text{फल × इच्छा}}{\text{प्रमाण}}$ = लब्ध । अर्थात् $\frac{२ \times १९०० \times २}{७} = \frac{७६००}{७}$ यो० अर्थात् १०८५$\frac{५}{७}$ यो० प्राप्त होता है । जो लब्धराशि १०८४ से १$\frac{५}{७}$ यो० अधिक है ।

सब ग्रहोंमें शनि ग्रह सर्वाधिक मन्दगतिवाला है, यदि इसकी तीन योजन ऊँचाई गौण करके मंगलग्रहकी ऊँचाई पर्यन्त इच्छा राशि (१०००+७९०+१०+८०+४+४+३+३+३) = १८९७ यो० ग्रहण की जाय तो लब्धराशि ($\frac{२ \times २ \times १८९७}{७}$) = १०८४ योजन प्राप्त हो जाती है । (यह विषय विद्वानों द्वारा विचारणीय है) ।

णवरि विसेसो पुव्वावर-दक्खिण-उत्तरेसु भागेसुं ।
अंतरमत्थि त्ति ण ते, छिवंति जोइग्गणा वाऊ ॥८॥

अर्थ—विशेष इतना है कि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर भागोंमें अन्तर है । इसलिए ज्योतिषी देव उस घनोदधि वातवलयको नहीं छूते हैं ॥८॥

विशेषार्थ—गाथा ७ में कहा गया है कि ज्योतिषी देव लोकके अन्तमें घनोदधि वातवलय का स्पर्श करते हैं और गाथा ८ में स्पर्शका निषेध किया गया है । इसका स्पष्टीकरण यह है कि लोक दक्षिण-उत्तर सर्वत्र ७ राजू चौड़ा है अतः इन दोनों दिशाओंमें तो इन देवों द्वारा वातवलयका स्पर्श हो ही नहीं सकता । इसका विवेचन गा० १० में किया जा रहा है । पूर्व-पश्चिम स्पर्शका विषय भी इसप्रकार है कि मध्यलोकमें लोककी पूर्व-पश्चिम चौड़ाई एक राजू है वहाँ ये देव घनोदधि वातवलयका स्पर्श करते हैं, क्योंकि गाथा ५ में इनका निवासक्षेत्र, अगम्यक्षेत्रसे रहित राजू × राजू × ११० घन योजन प्रमाण कहा गया है । किन्तु जो ज्योतिषी-देव चित्राके उपरिम तलसे ऊपर-ऊपर हैं वे पूर्व-पश्चिम दिशाओंमें भी वातवलयका स्पर्श नहीं करते । इसे ही गाथा ९ में दर्शाया जा रहा है ।

पूर्व-पश्चिम दिशामें अन्तरालका प्रमाण—

पुव्वावर-विच्चालं, एक्क-सहस्सं बिहत्तरब्भहिया ।
जोयणया पत्तेक्कं, रूवस्सासंखभाग - परिहीणं ॥९॥

१०७२ । रिण $\frac{१}{रि}$ ।

अर्थ—पूर्व-पश्चिम दिशाओंमें प्रत्येक ज्योतिषी-बिम्बका यह अन्तराल एक योजनके असंख्यातवें भाग हीन एक हजार बहत्तर (१०७२) योजन प्रमाण है ॥९॥

विशेषार्थ—मध्यलोक पूर्व-पश्चिम एक राजू है। यहाँ वातवलयोंका औसत-प्रमाण १२ योजन है। उपर्युक्त गाथा ८ में जो लब्धराशिरूप १०८४ योजन अन्तराल आया है। उसमेंसे वातवलयके १२ योजन घटा देनेपर (१०८४- १२)=१०७२ योजन शेष रहते हैं। यही वातवलय क्रमशः वृद्धिगत होते हुए ब्रह्मलोकके समीप (७+५+४)=१६ योजन हैं। इसप्रकार ३½ राजूकी ऊँचाई पर वातवलयोंकी वृद्धि (१६—१२)=४ योजन है, यह १९०० यो० की ऊँचाई पर आकर बढ़त-बढ़ते असंख्यातवें भाग प्रमाण हो जाएगी। अतएव ग्रन्थकारने संदृष्टिमें १०७२ योजनोंमेंसे रूप (एक अंक) का असख्यातवाँ भाग घटाया है।

दक्षिण-उत्तर दिशामें अन्तरालका प्रमाण—

तद्दक्खिणुत्तरेसुं, रूवस्सासंख - भाग - अहियाम्रो।
बारस - जोयण - होणा, पत्तेक्कं तिण्णि रज्जूम्रो ॥१०॥

ॅ ३। रिण जो १२। $\frac{१}{रि}$।

भेदो समत्तो ॥२॥

अर्थ—दक्षिण-उत्तर दिशाओंमें प्रत्येक ज्योतिषी-बिम्ब का यह अन्तराल रूपके असंख्यातवें भागसे अधिक एवं १२ योजन कम तीन राजू प्रमाण है ॥१०॥

विशेषार्थ—लोक दक्षिणोत्तर ७ राजू विस्तृत (मोटा) है और इसके मध्यमें त्रस नाली मात्र एक राजू प्रमाण मोटी है, अतः इन दिशाओंमें ज्योतिषीदेवोंका स्पर्श वातवलयोंसे नहीं होता अर्थात् त्रस नालीसे वातवलय ३ राजू दूर हैं। पूर्वोक्त गाथानुसार तीन राजूमेंसे वातवलय सम्बन्धी १२ योजन और रूपका असंख्यातवाँ भाग घटाया गया है। संदृष्टिमें ॅ का यह चिह्न राजूका है और $\frac{१}{रि}$ एक बटा असंख्यातवाँ भागका चिह्न है। अर्थात् ३ राजू — ($१२ + \frac{१}{असं०}$) अन्तर है।

भेदका कथन समाप्त हुआ ॥२॥

ज्योतिष देवोंकी संख्याका निर्देश—

भजिदम्मि सेढि-वग्गे, बे-सय-छप्पण्ण-अंगुल-कदीए।
जं लद्धं सो रासी, जोइसिय - सुराण सव्वाणं ॥११॥

= । ६५५३६ ।

अर्थ—दो सौ छप्पन अंगुलोंके वर्ग (२५६×२५६=६५५३६ प्रतरांगुलों) का जगच्छ्रेणी के वर्ग (जगत्प्रतर) में भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतनी सम्पूर्ण ज्योतिषीदेवोंकी (जगच्छ्रेणी² ÷ ६५५३६) राशि है ॥११॥

इन्द्र स्वरूप चन्द्र ज्योतिषी देवोंका प्रमाण—

अट्ठ-चउ-दु-ति-ति-सत्ता सत्त य ठाणेसु णवसु सुण्णाणि ।
छत्तीस-सत्त-दु-णव-अट्ठा-ति-चउक्का होंति अंक-कमा ॥१२॥

= । ४३८९२७३६०००००००००७७३३२४८ ।

एवेहि गुणिद-संखेज्ज-रूव-पदरंगुलेहिं भजिदाए ।
सेढि - कदीए लद्धं, माणं चंदाण जोइसिंदाणं ॥१३॥

अर्थ – आठ, चार, दो, तीन, तीन, सात, सात, नौ स्थानोंमें शून्य, छत्तीस, सात, दो, नौ, आठ, तीन और चार ये अंक क्रमशः होते हैं। चन्द्र ज्योतिषी देवोंके इन्द्र हैं और इनका प्रमाण उपर्युक्त अंकोंसे गुणित संख्यात रूप प्रतरांगुलोंका जगच्छ्रेणीके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना [जगच्छ्रेणी² ÷ { (संख्यात प्रतरांगुल) × (४३८९२७३६०००००००००७७३३२४८) }] है ॥१२-१३॥

प्रतीन्द्र स्वरूप सूर्य ज्योतिषी देवोंका प्रमाण—

तेत्तियमेत्ता रविणो, हवंति चंदाण ते पडिंद त्ति ।
अट्ठासीदि गहाणि, एक्केक्काणं मयंकाणं ॥१४॥

= । ४३८९२७३६०००००००००७७३३२४८ ।

अर्थ—सूर्य, चन्द्रोंके प्रतीन्द्र होते हैं। इन (सूर्यों) का प्रमाण भी उतना [जगच्छ्रेणी² ÷ { (संख्यात प्रतरांगुल) × (४३८९२७३६०००००००००७७३३२४८) }] ही है। प्रत्येक चन्द्रके अठासी ग्रह होते हैं ॥१४॥

अठासी ग्रहोंके नाम—

बुह-सुक्क-बिहप्पइणो, मंगल-सणि-काल-लोहिदा कणओ ।
णील - विकाला केसो, कवयवओ कणय - संठाणा ॥१५॥

। १३[1] ।

दुंदुभिगो रत्तणिभो, णीलब्भासो असोय - संठाणो ।
कंसो रूवणिभक्खो, [2]कंसयवण्णो य संखपरिणामा ॥१६॥

। ८ ।

---

१. ब. क. १४ । २. द. ब. क. ज. कंचयवण्णो ।

तिलपुच्छ-संखवण्णोदय-वण्णो पंचवण्ण-णामक्खा ।
उप्पाय - धूमकेदू, तिलो य णभ - छाररासी य ॥१७॥

। ९[1] ।

वीयण्हु-सरिस-संधी, कलेवराभिण्ण-गंधि-माणवया ।
कालक-कालककेदू, णियव-अणय-विज्जुजीहा य ॥१८॥

। १२ ।

सिंहालक-णिद्दुक्खा, काल-महाकाल-रुद्द-महरुद्दा ।
संताण - विउल - संभव - सव्वट्ठी खेम - चंदो य ॥१९॥

। १३[2] ।

णिम्मंत-जोइमंता, दिससंठिय-विरद-वीतसोका य ।
णिच्चल-पलंब-भासुर-सयंपभा विजय-वइजयंते य ॥२०॥

। ११[3] ।

सीमंकरावराजिय[4]-जयंत-विमलाभयंकरो वियसो[5] ।
कट्ठी वियडो[6] कज्जलि, अग्गीजालो असोकयो केदू ॥२१॥

। १२ ।

खीरसघस्सवरण-ज्जलकेदु-केदु-अंतरय-एक्कसंठाणा ।
अस्सो य भावग्गह, चरिमा य महग्गहा णामा ॥२२॥

। १० ।

अर्थ—१बुध, २शुक्र, ३बृहस्पति, ४मंगल, ५शनि, ६काल, ७लोहित, ८कनक, ९नील, १०विकाल, ११केश, १२कवयव, १३कनकसंस्थान, १४दुंदुभिक, १५रक्तनिभ, १६नीलाभास, १७अशोकसंस्थान, १८कंस, १९रूपनिभ, २०कंसकवर्ण, २१संखपरिणाम, २२तिलपुच्छ, २३संखवर्ण, २४उदकवर्ण, २५पंचवर्ण, २६उत्पात, २७धूमकेतु, २८तिल, २९नभ, ३०क्षारराशि, ३१विजिष्णु, ३२सदृश, ३३संधि, ३४कलेवर, ३५अभिन्न, ३६ग्रंथि, ३७मानवक, ३८कालक, ३९कालकेतु ४०निलय, ४१अनय, ४२विद्युज्जिह्व, ४३सिंह, ४४अलक, ४५निर्दुःख, ४६काल, ४७महाकाल, ४८रुद्र, ४९ महारुद्र, ५०सन्तान, ५१विपुल, ५२सम्भव, ५३सर्वार्थी, ५४क्षेम, ५५चन्द्र, ५६निर्मन्त्र, ५७ज्योतिष्मान्,

१. द. ब. १० । २. द. ब. क. ज. १२ । ३. द. ब. क. ज. १० । ४. द. ब. क. ज. जय ।
५. द. ब. क. ज. विमला । ६. द. ब. क. ज. विमलो ।

५८दिससंस्थित, ५९विरत, ६०वीतशोक, ६१निश्चल, ६२प्रलम्ब, ६३भासुर, ६४स्वयंप्रभ, ६५विजय, ६६वैजयन्त, ६७सीमङ्कर, ६८अपराजित, ६९जयन्त, ७०विमल, ७१अभयंकर, ७२विकस, ७३काष्ठी, ७४विकट, ७५कज्जली, ७६अग्निज्वाल, ७७अशोक, ७८केतु, ७९क्षीरस, ८०अघ, ८१श्रवण, ८२जलकेतु, ८३केतु, ८४अन्तरद, ८५एकसंस्थान, ८६अश्व, ८७भावग्रह और अन्तिम ८८महाग्रह, इसप्रकार ये अठासी ग्रह हैं ॥१५-२२॥

सम्पूर्ण ग्रहोंकी संख्याका प्रमाण—

छप्पण छक्कं छक्कं, छण्णव सुण्णाणि होंति[1] दस-ठाणा ।
दो - णव - पंचय - छक्कं, अट्ठ-चउ-पंच-अंक-कमे ॥२३॥
एदेण गुणिद - संखेज्ज - रूव - पदरंगुलेहि भजिदूणं ।
सेढि-कदी एक्कारस-हदम्मि सव्वग्गहाण परिमाणं ॥२४॥

= । ११ ५४८६५९२००००००००००९६६६५६ ।

अर्थ—छह, पाँच, छह, छह, छह, नौ, दस स्थानोमें शून्य, दो, नौ, पाँच, छह, आठ, चार और पाँच, इस अङ्क-क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यातरूप प्रतरांगुलोंका जगच्छ्रेणीके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे ग्यारहसे गुणित करनेपर सम्पूर्ण ग्रहोंका प्रमाण [{ ज० श्रे०^2 ÷ (सं० प्रतरांगुल) × (५४८६५९२००००००००००९६६६५६) } × ११] होता है ॥२३-२४॥

नोट—गाथा ११ से १४ और २३-२४ में संदृष्टि रूपसे स्थापित चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिषी देवोंका यह प्रमाण कैसे प्राप्त किया गया है ? इसे जाननेका एक मात्र साधन त्रिलोकसार गा० ३६१ की टीका है, अतः वहाँसे जानना चाहिए ।

एक-एक चन्द्रके नक्षत्रोंका प्रमाण एवं उनके नाम—

एक्केक्क - ससंकाणं, अट्ठावीसा हुवंति णक्खत्ता ।
एदाणं णामाइं, कम - जुत्तीए परूवेमो ॥२५॥

अर्थ—एक-एक चन्द्रके अट्ठाईस-अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं । यहाँ उनके नाम क्रम-युक्तिसे अर्थात् क्रमशः कहते हैं ॥२५॥

कित्तिय-रोहिणि-मिगसिर[2]-अद्दाओ[3] पुणव्वसु तहा पुस्सो ।
असिलेसादी मघओ, पुव्वाओ उत्तराओ हत्थो य ॥२६॥

---

१. ब. क. हुंति । २ द. ब. मिगसिरे । ३. ब. अद्दउ ।

चित्ताओ सादीओ, होंति विसाहाणुराह - जेट्ठाओ ।
मूलं पुव्वासाढा, तत्तो वि य उत्तरासाढा ॥२७॥

अभिजी-सवण-धणिट्ठा, सदभिस-णामाओ पुव्वभद्दपदा ।
उत्तरभद्दपदा रेवदीओ तह अस्सिणी भरणी ॥२८॥

अर्थ—१कृत्तिका, २रोहिणी, ३मृगशीर्ष, ४आर्द्रा, ५पुनर्वसु, ६ पुष्य, ७आश्लेषा, ८मघा, ९पूर्वाफाल्गुनी, १०उत्तराफाल्गुनी, ११हस्त, १२चित्रा, १३स्वाति, १४विशाखा, १५अनुराधा, १६ज्येष्ठा, १७मूल, १८पूर्वाषाढा, १९उत्तराषाढ़ा, २०अभिजित्, २१श्रवण, २२धनिष्ठा, २३शत-भिषा, २४पूर्वभाद्रपदा, २५उत्तराभाद्रपदा, २६रेवती, २७अश्विनी और २८भरणी ये उन नक्षत्रोंके नाम हैं ॥२६-२८॥

समस्त नक्षत्रोंका प्रमाण—

दुग-इगि-तिय-ति-ति-णवया, एक्का ठाणेसु णवसु सुण्णाणि ।
चउ-अट्ठ-एक्क-तिय-सत्त - णवय - गयणेक्क अंक - कमे ॥२९॥

एदेहि गुणिद - संखेज्ज - रूव - पदरंगुलेहि भजिदूणं ।
सेढि - कदी सत्त - हदे, परिसंखा सव्व - रिक्खाणं ॥३०॥

$\frac{=}{४}$ $\frac{७}{१}$ । १०९७३१८४०००००००००१९३३३१२ ।

अर्थ—दो, एक, तीन, तीन, तीन, नौ, एक, नौ स्थानोंमें शून्य, चार, आठ, एक, तीन, सात, नौ, शून्य और एक, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यात रूप प्रतरांगुलोंका जगच्छ्रेणीके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे सातसे गुणा करनेपर सब नक्षत्रोंकी संख्याका प्रमाण [{ जगच्छ्रेणी^{२} ÷ (संख्यात प्रतरांगुल) × (१०९७३१८४०००००००००१९३३३१२) } × ७] होता है ॥२९-३०॥

एक चन्द्र सम्बन्धी ताराओंका प्रमाण—

एक्केक्क - मयंकाणं, हवंति ताराण कोडिकोडीओ ।
छावट्ठि-सहस्साणं, णव - सया पंचहत्तरि - जुदाणि ॥३१॥

६६९७५०००००००००००००० ।

अर्थ—एक एक चन्द्रके छयासठ हजार नौ सौ पचहत्तर-कोड़ाकोड़ी तारागण होते हैं ॥३१॥

तारा्ओंके नामोंके उपदेशका अभाव—

संपहि काल-वसेणं, तारा-णामाण णत्थि उवएसो ।
एदाणं सव्वाणं, परमाणाणि परूवेमो ॥३२॥

अर्थ—इस समय कालके वशसे ताराओंके नामोंका उपदेश नहीं है। इन सबका प्रमाण कहता हूँ ॥३२॥

समस्त ताराओंका प्रमाण—

दुग-सत्त-चउक्काइं, एक्कारस - ठाणएसु सुण्णाइं ।
णव - सत्त - छद्दुगाइं, अंकाण कमेण एदेणं ॥३३॥
संगुणिदेहिं संखेज्जरूव - पदरंगुलेहिं भजिदव्वो ।
सेढी-वग्गो तत्तो, पण-सत्त - तिय - चउक्कट्ठा ॥३४॥
णव-अट्ठ-पंच-णव-दुग-अट्ठा-सत्तट्ठ-णह-चउक्काणि ।
अंक - कमे गुणिदव्वो, परिसंखा सव्व - ताराणं ॥३५॥

=४०८७८२९५८९८४३७५

४ । ७ । २६७९०००००००००००४७२ ।

एवं संखा समत्ता ॥३॥

अर्थ—दो, सात, चार, ग्यारह स्थानोंमें शून्य, नौ, सात, छह और दो, इस अंक क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यातरूप प्रतरांगुलोंका जगच्छ्रेणीके वर्गमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसको पाँच, सात, तीन, चार, आठ, नौ, आठ, पाँच, नौ, दो, आठ, सात, आठ, शून्य और चार, इन अंकोंसे गुणा करनेपर समस्त ताराओंका प्रमाण [{ जगच्छ्रेणी² ÷ (संख्यात प्रतरांगुल) × (२६७९०००००००००००४७२) } × (४०८७८२९५८९८४३७५)] होता है ॥३३-३५॥

इसप्रकार संख्याका कथन समाप्त हुआ ॥३॥

चन्द्र-मण्डलोंकी प्ररूपणा—

गंतूणं सीदि - जुदं, अट्ठसया जोयणाणि चित्ताए ।
उवरिम्मि मंडलाइं, चंदाणं होंति गयणम्मि ॥३६॥

। ८८० ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीसे आठ सौ अस्सी (८८०) योजन ऊपर जाकर आकाशमें चन्द्रोंके मण्डल (विमान) हैं ॥३६॥

उत्ताणावट्ठिद-गोलकद्ध[1] सरिसाणि ससि-मणिमयाणि ।
ताणं पुह पुह बारस-सहस्स-सिसिरतर-मंद-किरणाणि ।।३७।।

। १२००० ।

अर्थ—चन्द्रोंके मणिमय विमान उत्तानमुख अर्थात् ऊर्ध्वमुखरूपसे अवस्थित अर्ध-गोलक सदृश हैं। उनकी पृथक्-पृथक् बारह (१२०००) हजार प्रमाण किरणें अतिशय शीतल एवं मन्द हैं ।।३७।।

विशेषार्थ—जिसप्रकार एक गोले (गेंद) के दो खण्ड करके उन्हें ऊर्ध्वमुख रखा जावे तो चौड़ाईका भाग ऊपर और गोलाईवाला सँकरा भाग नीचे रहता है। उसीप्रकार ऊर्ध्वमुख अर्ध-गोलेके सदृश चन्द्र विमान स्थित हैं। सभी ज्योतिषी देवोंके विमान इसीप्रकार उत्तानमुख अवस्थित हैं ।।

तेसु ठिद-पुढवि-जीवा, जुत्ता उज्जोव-कम्म उदएणं ।
जम्हा तम्हा ताणि, फुरंत-सिसिरयर-मंद-किरणाणि ।।३८।।

अर्थ—उन (चन्द्रविमानों) में विद्यमान पृथिवीकायिक जीव उद्योत नामकर्मके उदयसे संयुक्त हैं अतः वे प्रकाशमान् अतिशय शीतल और मन्द किरणोंसे संयुक्त होते हैं ।।३८।।

एक्कट्ठी-भाग-कदे, जोयणए ताण होदि छप्पण्णा ।
उवरिम-तलाण रुंदं, तदद्ध[2] - बहलं पि पत्तेक्कं ।।३९।।

। ५६/६१ । २८/६१ ।

अर्थ :—एक योजनके इकसठ भाग करने पर उनमें से छप्पन भागोंका जितना प्रमाण है, उतना विस्तार उन चन्द्र-विमानोंमेंसे प्रत्येक चन्द्र विमानके उपरिम तलका है और बाहल्य इससे आधा है ।।३९।।

एदाणं परिहीओ, पुह पुह बे जोयणाणि अदिरेको ।
ताणि अकिट्टिमाणि, अणाइणिहणाणि बिंबाणि ।।४०।।

अर्थ :—इनकी परिधियाँ पृथक्-पृथक् दो योजनसे कुछ अधिक हैं। वे चन्द्र बिम्ब अकृत्रिम एवं अनादिनिधन हैं ।।४०।।

विशेषार्थ :—प्रत्येक चन्द्र विमान का व्यास ५६/६१ योजन और परिधि २ योजन ३ कोस, कुछ कम १२२५ धनुष प्रमाण है।

---

१. द. ब. गोलगकद्ध । २. द. ब. क. ज वलद्ध ।

चउ-गोउर-संजुत्ता, तड-वेदी तेसु होदि पत्तेक्कं ।
तम्मज्झे वर - वेदी - सहिदं रायंगणं रम्मं ।।४१।।

अर्थ :—उनमेंसे प्रत्येक विमानकी तट-वेदी चार गोपुरोंसे संयुक्त होती है। उसके बीचमें उत्तम वेदी सहित रमणीय राजाङ्गण होता है ।।४१।।

रायंगण-बहु-मज्झे, वर-रयणमयाणि दिव्व-कूडाणि ।
कूडेसु जिण - घराणि, वेदी चउ - तोरण जुदाणि ।।४२।।

अर्थ :—राजाङ्गणके ठीक बीचमें उत्तम रत्नमय दिव्य कूट और उन कूटोंपर वेदी एवं चार तोरणोंसे संयुक्त जिन-मन्दिर अवस्थित हैं ।।४२।।

ते सव्वे जिण-णिलया, मुत्तावलि-कणय-दाम-कमणिज्जा ।
वर-वज्ज-कवाड-जुदा, दिव्व - विदाणेहिं रेहंति ।।४३।।

अर्थ वे सब जिन-मन्दिर मोती एवं स्वर्णकी मालाओंसे रमणीक और उत्तम वज्रमय किवाड़ोंसे संयुक्त होते हुए दिव्य चन्दोवोंसे सुशोभित रहते हैं ।।४३।।

दिप्पंत-रयण-दीवा, अट्ठ-महामंगलेहिं परिपुण्णा ।
वंदणमाला-चामर - किंकिणिया - जाल - सोहिल्ला ।।४४।।

अर्थ—वे जिन-भवन देदीप्यमान रत्नदीपकों एवं अष्ट महामंगल द्रव्योंसे परिपूर्ण और वन्दनमाला, चँवर तथा क्षुद्र घण्टिकाओंके समूहसे शोभायमान होते हैं ।।४४।।

एदेसुं णट्टसभा, अभिसेय - सभा विचित्त-रयणमई ।
कीडण - साला विविहा, ठाण - ट्ठाणेसु सोहंति ।।४५।।

अर्थ—इन जिन-भवनोंमें स्थान-स्थान पर विचित्र रत्नोंसे निर्मित नाट्य सभा, अभिषेक सभा और विविध क्रीड़ा-शालाएँ सुशोभित होती हैं ।।४५।।

मद्दल-मुइंग-पटह-प्पहुदीहिं विविह दिव्व - तूरेहिं ।
उदहि-सरिच्छ-रवेहिं, जिण-गेहा णिच्च-हलबोला ।।४६।।

अर्थ—वे जिन-भवन समुद्र सदृश गम्भीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग और पटह आदि विविध दिव्य वादित्रोंसे नित्य शब्दायमान रहते हैं ।।४६।।

छत्त-त्तय - सिंहासण - भामंडल - चामरेहिं जुत्ताइं ।
जिण - पडिमाओ तेसुं, रयणमईओ विराजंति ।।४७।।

अर्थ—उन जिन-भवनोंमें तीन छत्र, सिंहासन, भामण्डल और चामरोंसे संयुक्त रत्नमयी जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं ॥४७॥

सिरिदेवी सुददेवी, सव्वाण सणक्कुमार-जक्खाणं[1] ।
रूवाणि मण - हराणि, रेहंति जिणिंद - पासेसु ॥४८॥

अर्थ—जिनेन्द्र बिम्बके पार्श्वमें श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाण्हयक्ष और सनत्कुमार यक्षकी मनोहर मूर्तियाँ शोभायमान होती हैं ॥४८॥

जल-गंध-कुसुम-तंडुल-वर-भक्ख-पदीव-धूव-फल-पुण्णं ।
कुव्वंति ताण पुज्जं, णिब्भर - भत्तीए सव्व - सुरा ॥४९॥

अर्थ—सब चन्द्रदेव गाढ़ भक्तिसे उन जिनेन्द्र प्रतिमाओं की जल, गन्ध, तन्दुल, फूल, उत्तम नैवेद्य, दीप, धूप और फलोंसे पूजा करते हैं ॥४९॥

चन्द्र-प्रासादोंका वर्णन—

एदाणं कूडाणं, समंतदो होंति चंद - पासादा ।
समचउरस्सा दीहा, णाणा - विण्णास - रमणिज्जा ॥५०॥

अर्थ—इन कूटोंके चारों ओर समचतुष्कोण लम्बे और अनेक प्रकारके विन्याससे रमणीय चन्द्रोंके प्रासाद होते हैं ॥५०॥

मरगय-वण्णा केई, केई कुंदेंदु-हार-हिम-वण्णा ।
अण्णे सुवण्ण-वण्णा, अवरे वि पवाल-णिह-वण्णा ॥५१॥

अर्थ—इनमेंसे कितने ही प्रासाद मरकतवर्ण वाले, कितने ही कुन्दपुष्प, चन्द्र, हार एवं बर्फ जैसे वर्णवाले; कोई स्वर्ण सदृश वर्णवाले; और दूसरे (कोई) मूँगे सदृश वर्णवाले हैं ॥५१॥

उववाद-मंदिराइं, अभिसेय-घराणि भूसण-गिहाणि ।
मेहुण-कीडण-सालाओ मंत - अत्थाण - सालाओ ॥५२॥

अर्थ—इन भवनोंमें उपपाद मन्दिर, अभिषेकपुर, भूषणगृह, मैथुनशाला, क्रीड़ाशाला, मन्त्रशाला और आस्थान-शालाएँ (सभाभवन) स्थित हैं ॥५२॥

ते सव्वे पासादा, वर-पायारा विचित्त-गोउरया ।
मणि-तोरण-रमणिज्जा, जुत्ता बहुविह-भित्तीहिं[2] ॥५३॥

---

१. द. क. रज्जाणं । २. द. ब. क. ज. भित्तीओ ।

उववण-पोक्खरणीहिं, विराजमाणा विचित्त-रूवाहिं ।
कणयमय-विउल-थंभा, सयणासण-पहुदि-पुण्णाणि ॥५४॥

अर्थ—वे सब प्रासाद उत्तम कोटों तथा विचित्र गोपुरोंसे संयुक्त, मणिमय तोरणोंसे रमणीय, नाना प्रकारके चित्रोंवाली दीवालोंसे युक्त, विचित्र रूपवाली उपवन-वापिकाओंसे सुशोभित और स्वर्णमय विशाल खम्भोंसे युक्त हैं तथा शयनासनों आदिसे परिपूर्ण हैं ॥५३-५४॥

सद्द-रस-रूव-गंधं, पासेहिं णिरुवमेहिं सोक्खाणि ।
देंति विविहाणि दिव्वा, पासादा धूव - गंधड्ढा ॥५५॥

अर्थ—धूपकी सुगन्धसे व्याप्त ये दिव्य प्रासाद शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्शसे विविध अनुपम सुख प्रदान करते हैं ॥५५॥

सत्तट्ठ - प्पहुदीओ, भूमीओ भूसिदाओ कूडेहिं ।
विप्फुरिद-रयण-किरणावलीओ भवणेसु रेहंति ॥५६॥

अर्थ—(उन) भवनोंमें कूटोंसे विभूषित और प्रकाशमान रत्न-किरण-पंक्तियोंसे संयुक्त सात-आठ आदि भूमियाँ शोभायमान होती हैं ॥५६॥

चन्द्रके परिवार देव-देवियोंका निरूपण—

तम्मंदिर - मज्झेसुं, चंदा सिंहासणस्समारूढा ।
पत्तेक्कं चंदाणं, चत्तारो अग्ग - महिसीओ ॥५७॥

। ४ ।

अर्थ—इन मन्दिरोंके बीचमें चन्द्रदेव सिंहासनोंपर विराजमान रहते हैं। उनमेंसे प्रत्येक चन्द्रके चार-अग्रमहिषियाँ (पट्टदेवियाँ) होती हैं ॥५७॥

चंदाभ-सुसीमाओ, पहंकरा[1] अच्चिमालिणी ताणं ।
पत्तेक्कं परिवारा, चत्तारि - सहस्स - देवीओ ॥५८॥

णिय-णिय-परिवार-समं, विक्किरियं धरिसियंति देवीओ ।
चंदाणं परिवारा, अट्ठ - वियप्पा य पत्तेक्कं ॥५९॥

पडिइंदा सामाणिय-तणुरक्खा तह हवंति तिप्परिसा ।
सत्ताणीय - पइण्णय - अभियोगा किब्बिसा देवा ॥६०॥

---

1. द. ब. क. ज. गहंकरा ।

अर्थ—चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभङ्करा और अर्चिमालिनी, ये उन अग्र-देवियों के नाम हैं। इनमेंसे प्रत्येक की चार-चार हजार प्रमाण परिवार देवियाँ होती हैं। अग्रदेवियाँ अपनी-अपनी परिवार देवियोंके सदृश अर्थात् चार हजार रूपों प्रमाण विक्रिया दिखलाती हैं। प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्ष, तीनों पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, अभियोग्य और किल्विष, इसप्रकार प्रत्येक चन्द्रके आठ प्रकारके परिवार देव होते हैं ॥५८-६०॥

सयलिंदाण पडिंदा, एक्केक्का होंति ते वि आइच्चा ।
सामाणिय - तणुरक्ख - प्पहुदी संखेज्ज - परिमाणा ॥६१॥

अर्थ—सब चन्द्र इन्द्रोंके एक-एक प्रतीन्द्र होता है। वे (प्रतीन्द्र) सूर्य ही हैं। सामानिक और तनुरक्ष आदि देव संख्यात प्रमाण होते हैं ॥६१॥

रायंगण - बाहिरए, परिवाराणं हवंति पासादा ।
विविह-वर-रयण-रइदा, विचित्त-विण्णास-भूदीहिं ॥६२॥

अर्थ—राजाङ्गणके बाहर विविध उत्तम रत्नोंसे रचित और अद्भुत विन्यासरूप विभूति सहित परिवार-देवोंके प्रासाद होते हैं ॥६२॥

चन्द्र विमानके वाहक देवोंके आकार एवं उनकी संख्या—

सोलस-सहस्समेत्ता, अभिजोग-सुरा हवंति पत्तेक्कं ।
चंदाण घरतलाइं, विक्किरिया - साविणो णिच्चं ॥६३॥

। १६००० ।

अर्थ—प्रत्येक (चन्द्र) इन्द्रके सोलह हजार प्रमाण आभियोग्य देव होते है जो चन्द्रोंके गृहतलों (विमानों) को नित्य ही विक्रिया धारण करते हुए वहन करते हैं ॥६३॥

चउ-चउ-सहस्समेत्ता, पुव्वादि-दिसासु कुंद-संकासा ।
केसरि-करि-वसहाणं, जडिल - तुरंगाण [1]रूवधरा ॥६४॥

अर्थ—सिंह, हाथी, बैल और जटा युक्त घोड़ोंको धारण करने वाले तथा कुन्द-पुष्प सदृश सफेद चार-चार हजार प्रमाण देव (क्रमशः) पूर्वादिक दिशाओंमें (चन्द्र-विमानोंको वहन करते) हैं ॥६४॥

चन्द्र-विमान का चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये ।

---

१. द. ब. क. ज. रूवधरा ।

चन्द्र विमान
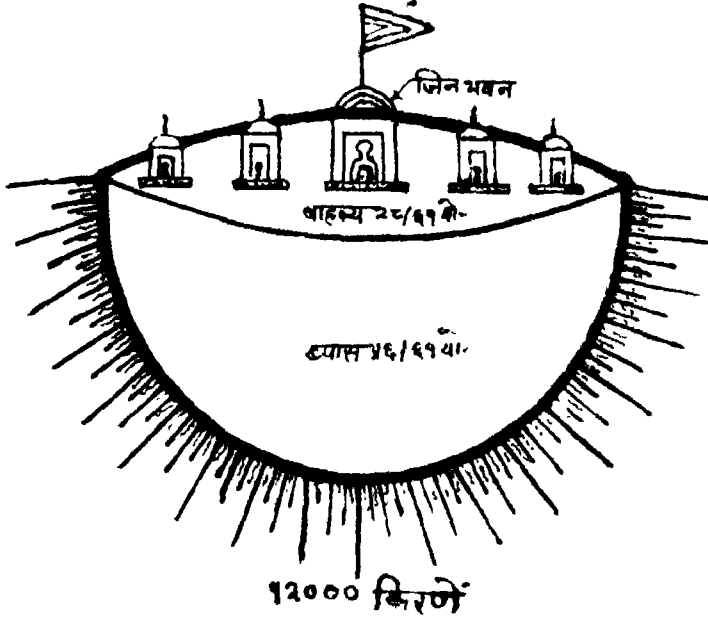
सूर्य-मण्डलोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलादो, उवरिं गंतूण जोयणट्ठ-सए ।
दिणयर-णयर-तलाइं, णिच्चं चेट्ठंति गयणम्मि ॥६५॥

। ८०० ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिमतलसे ऊपर आठ सौ (८००) योजन जाकर आकाशमें नित्य (शाश्वत) नगरतल स्थित हैं ॥६५॥

उत्ताणावट्ठिद-गोलकद्ध[1] सरिसाणि रवि-मणिमयाणि ।
ताणं पुह पुह बारस-सहस्स-उण्हयर-किरणाणि ॥६६॥

। १२००० ।

अर्थ—सूर्यके मणिमय विमान ऊर्ध्व अवस्थित अर्ध-गोलक सदृश हैं । उनकी पृथक्-पृथक् बारह हजार (१२०००) किरणें उष्णतर होती हैं ॥६६॥

---

१. द. ब. क. ज. गोलद्ध ।

तेसु ठिद-पुढवि-जीवा, जुत्ता आदाव-कम्म-उदएणं ।
जम्हा तम्हा ताणि, फुरंत उण्हयर - किरणाणि ।।६७।।

अर्थ—क्योंकि उन (सूर्य विमानों) में स्थित पृथिवीकायिक जीव आताप नामकर्मके उदयसे संयुक्त होते हैं अतः वे प्रकाशमान उष्णतर किरणोंसे युक्त होते हैं ।।६७।।

[1]एक्कट्ठी-भाग-कदे, जोयणए ताण होंति अडवालं ।
उवरिम - तलाण रुंदं, तदद्ध - बहलं पि पत्तेक्कं ।।६८।।

। $\frac{४८}{६१}$ । $\frac{२४}{६१}$ ।

अर्थ—एक योजनके इकसठ (६१) भाग करनेपर उनमेंसे अड़तालीस (४८) भागोंका जितना प्रमाण है उतना विस्तार उन सूर्य विमानोंमेंसे प्रत्येक सूर्य बिम्बके उपरिमतलका है और बाहल्य इससे आधा होता है ।।६८।।

एदाणं परिहीओ, पुह पुह बे जोयणाणि अदिरेगा ।
ताणि अकिट्टिमाणि, अणाइणिहणाणि बिंबाणि ।।६९।।

अर्थ—इनकी परिधियाँ पृथक्-पृथक् दो योजनोंसे अधिक हैं । वे सूर्य-बिम्ब अकृत्रिम एवं अनादिनिधन हैं ।।६९।।

विशेषार्थ—प्रत्येक सूर्य विमानका व्यास $\frac{४८}{६१}$ योजन और परिधि २ योजन १ कोस, कुछ कम १६०७ धनुष प्रमाण है ।

पत्तेक्कं तड - वेदी, चउ-गोउर-दार-सुंदरा ताणं ।
तम्मज्झे वर - वेदी - सहिदं रायंगणं होदि ।।७०।।

अर्थ—उनमेंसे प्रत्येक सूर्य-विमानकी तट-वेदी चार गोपुरद्वारों से सुन्दर होती है । उसके बीचमें उत्तम वेदीसे संयुक्त राजाङ्गण होता है ।।७०।।

रायंगणस्स मज्झे, वर-रयणमयाणि दिव्व-कूडाणि ।
तेसुं जिण - पासादा, चेट्ठंते सूरकंतमया ।।७१।।

अर्थ—राजाङ्गणके मध्यमें जो उत्तम रत्नमय दिव्य कूट होते हैं उनमें सूर्यकान्त मणिमय जिन-भवन स्थित हैं ।।७१।।

एदाणं मंदिराणं, मयंकपुर - कूड - भवण-सारिच्छं ।
सव्वं चिय वण्णणयं, णिउणेहिं एत्थ वत्तव्वं ।।७२।।

---

१. ब. क. ज. एक्कस्सट्ठिय, ब. एक्कस्सतिय ।

अर्थ—निपुण पुरुषोंको इन मन्दिरोंका सम्पूर्ण वर्णन चन्द्रपुरोंके कूटोंपर स्थित जिन-भवनोंके सदृश यहाँ भी करना चाहिए ॥७२॥

तेसु जिण-प्पडिमाओ, पुव्वोदिद-वण्णणा पयाराओ ।
विविहच्चण - दव्वेहिं, ताओ पूजंति सव्व - सुरा ॥७३॥

अर्थ—उनमें जो जिन-प्रतिमाएँ विराजमान हैं उनके वर्णनका प्रकार पूर्वोक्त के ही सदृश है। समस्त देव अनेक प्रकारके पूजा-द्रव्योंसे उन प्रतिमाओंकी पूजा करते हैं ॥७३॥

एदाणं कूडाणं, होंति समंतेण सूर - पासादा ।
ताणं पि वण्णणाओ, ससि - पासादेहिं सरिसाओ ॥७४॥

अर्थ—इन कूटोंके चारों ओर जो सूर्य-प्रासाद हैं उनका भी वर्णन चन्द्र-प्रासादोंके सदृश है ॥७४॥

तण्णिलयाणं मज्झे, दिवायरा दिव्व-सिंह-पीढेसु ।
वर - छत्त - चमर - जुत्ता, चेट्ठंते दिव्वयर - तेया ॥७५॥

अर्थ—उन भवनोंके मध्यमें उत्तम छत्र-चँवरोंसे संयुक्त और अतिशय दिव्य तेजको धारण करने वाले सूर्य देव दिव्य सिंहासनों पर स्थित होते हैं ॥७५॥

सूर्यके परिवार देव-देवियोंका निरूपण—

जुदिसुदि-पहंकराओ, सूरपहा-अच्चिमालिणीओ वि ।
पत्तेक्कं चत्तारो, दु - मणीणं अग्ग - देवीओ ॥७६॥

अर्थ—प्रत्येक सूर्यकी द्युतिश्रुति, प्रभङ्करा, सूर्यप्रभा और अर्चिमालिनी, ये चार अग्र-देवियाँ होती हैं ॥७६॥

देवीणं परिवारा, पत्तेक्कं चउ - सहस्स - देवीओ ।
णिय-णिय-परिवार-समं, विक्किरियं ताओ गेण्हंति ॥७७॥

अर्थ—इनमेंसे प्रत्येक अग्र-देवीकी चार हजार परिवार-देवियाँ होती हैं। वे अपने-अपने परिवार सदृश अर्थात् चार-चार हजार रूपोंकी विक्रिया ग्रहण करती हैं ॥७७॥

सामाणिय-तणुरक्खा, ति-प्परिसाओ पइण्णयाणीया ।
अभियोगा किब्बिसिया, सत्त-विहा सूर-परिवारा ॥७८॥

अर्थ—सामानिक, तनुरक्षक, तीनों पारिषद, प्रकीर्णक, अनीक, अभियोग्य और किल्बिषिक, इसप्रकार सूर्य देवोंके सात प्रकारके परिवार देव होते हैं ॥७८॥

रायंगण बाहिरए, परिवाराणं हवंति पासादा ।
वर - रयण - भूसिदाणं, फुरंत - तेयाण सव्वाणं ।।७९।।

अर्थ—उत्तम रत्नोंसे विभूषित और प्रकाशमान तेज को धारण करने वाले समस्त परिवार-देवों के प्रासाद राजाङ्गणके बाहर होते हैं ।।७९।।

सूर्यविमानके वाहक देवोंके आकार एवं उनकी संख्या—

सोलस-सहस्समेत्ता, अभिजोग-सुरा हवंति पत्तेक्कं ।
दिणयर-णयर-तलाइं, विक्किरिया-हारिणो[1] णिच्चं ।।८०।।

। १६००० ।

अर्थ—प्रत्येक सूर्यके सोलह (१६०००) हजार प्रमाण आभियोग्य देव होते हैं जो नित्य ही विक्रिया करके सूर्य-नगरतलोंको ले जाते हैं ।।८०।।

ते पुव्वादि-दिसासुं, केसरि-करि-वसह-जडिल-हय-रूवा ।
चउ चउ - सहस्समेत्ता, कंचण - वण्णा विराजंते ।।८१।।

सूर्य विमान

१. द. ब. क. ज. कारिणो ।
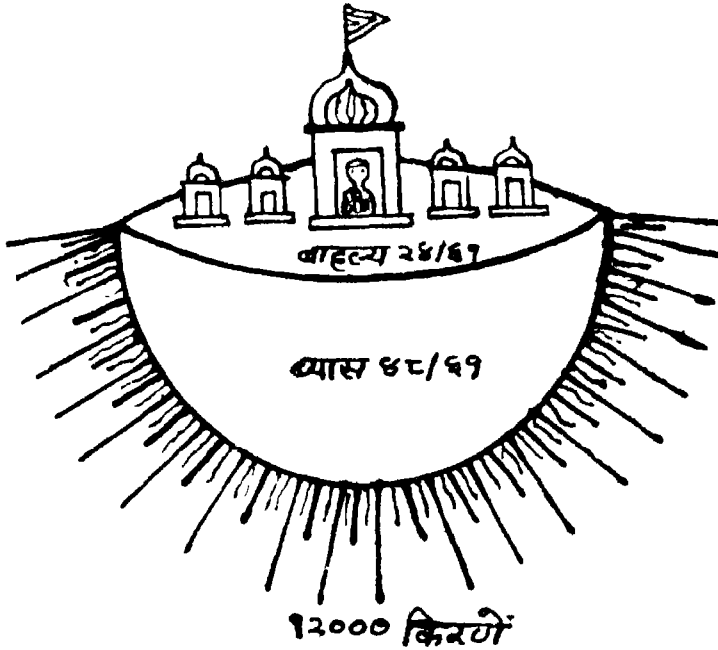
अर्थ—सिंह, हाथी, बैल और जटा-युक्त घोड़ेके रूपको धारण करनेवाले तथा स्वर्ण सदृश वर्ण संयुक्त वे आभियोग्य देव क्रमशः पूर्वादिक दिशाओंमें चार-चार हजार प्रमाण विराजमान होते हैं ॥८१॥

ग्रहोंका अवस्थान—

चित्तोवरिम - तलादो, गंतूणं जोयणाणि अट्ठ-सए ।
अडसीदि-जुदे गह-गण-पुरीओ दो-गुणिद-छक्क-बहलम्मि ॥८२॥

। ८८८ । १२ ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे आठ सौ अठासी (८८८) योजन ऊपर जाकर बारह (१२) योजन प्रमाण बाहल्य में ग्रह-समूह की नगरियाँ हैं ॥८२॥

बुध-नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलादो, पुव्वोदिद-जोयणाणि गंतूणं ।
तासुं बुह-णयरीओ, णिच्चं चेट्ठंति गयणम्मि ॥८३॥

अर्थ—उनमें से चित्रा पृथिवीके उपरिम-तलसे पूर्वोक्त आठ सौ अठासी योजन ऊपर जाकर आकाश में बुधकी नगरियाँ नित्य स्थित हैं ॥८३॥

एदाओ सव्वाओ, कणयमईओ य मंद-किरणाओ ।
उत्ताणावट्ठिद - गोलकद्ध - सरिसाओ णिच्चाओ ॥८४॥

अर्थ—ये सब नगरियाँ स्वर्णमयी, मन्द किरणोंसे संयुक्त, नित्य और ऊर्ध्व अवस्थित अर्ध-गोलक सदृश हैं ॥८४॥

उवरिम - तलाण रुंदो, कोसस्सद्धं तदद्ध-बहलत्तं ।
परिही दिवड्ढ - कोसो, सविसेसा ताण पत्तेक्कं ॥८५॥

अर्थ—उनमेंसे प्रत्येकके उपरिम तलका विस्तार अर्ध कोस, बाहल्य इससे आधा और परिधि डेढ़ कोससे कुछ अधिक है ॥८५॥

एक्केक्काए पुरीए, तड-वेदी पुव्व-वण्णणा होदि ।
तम्मज्झे वर - वेदी - जुत्तं रायंगणं रम्मं ॥८६॥

अर्थ—प्रत्येक पुरीकी तट-वेदी पूर्वोक्त वर्णनासे युक्त होती है । उसके बीचमें उत्तम वेदीसे संयुक्त रमणीय राजाङ्गण स्थित रहता है ॥८६॥

तम्मज्झे वर-कूडा, हवंति तेसुं जिणिद - पासादा ।
कूडाण-समंतेणं, बुह णिलया पुव्व सरिस-वण्णणया ।।८७।।

अर्थ—राजाङ्गणके मध्यमें उत्तम कूट और उन कूटोंपर जिनेन्द्र-प्रासाद होते हैं। कूटोंके चारों ओर पूर्व भवनों सदृश वर्णन वाले बुध-ग्रहके भवन हैं ।।८७।।

दो-दो सहस्समेत्ता, अभियोगा-हरि-करिंद-वसह-हया ।
पुव्वादिसु पत्तेक्कं, कणय-णिहा बुह-पुराणि धारंति ।।८८।।

अर्थ—सिंह, हाथी, बैल एवं घोड़ोंके रूपको धारण करनेवाले तथा स्वर्ण सदृश वर्ण संयुक्त दो-दो हजार प्रमाण आभियोग्य देव क्रमशः पूर्वादिक दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें बुधोंके पुरोंको धारण करते हैं ।।८८।।

शुक्रग्रहके नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलादो, णव-ऊणिय-णव-सयाणि जोयणया ।
गंतूण गहे उवरिं, सुक्काणि पुराणि चेट्ठंते ।।८९।।

। ८९१ ।

अर्थ – चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे नौ कम नौ सौ (८९१) योजन प्रमाण ऊपर जाकर आकाशमें शुक्रोंके नगर स्थित हैं ।।८९।।

ताणं णयर-तलाणं, पण-सय-दु-सहस्समेत्त-किरणाणि ।
उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि वर - रुप्प - मइयाणि ।।९०।।

। २५०० ।

अर्थ – ऊर्ध्व अवस्थित गोलकार्धके सदृश और उत्तम चांदीसे निर्मित उन शुक्र-नगरतलोंमेंसे प्रत्येककी दो हजार पाँच सौ (२५००) किरणें होती हैं ।।९०।।

उवरिम-तल-विक्खंभो, कोस-पमाणं तदद्ध-बहलत्तं ।
ताणं अकिट्टिमाणं, खचिदाणं विविह - रयणेहिं ।।९१।।

। को १ । को ½ ।

अर्थ—विविध रत्नोंसे खचित उन अकृत्रिम पुरोंके उपरिम तलका विस्तार एक कोस और बाहल्य इससे आधा अर्थात् अर्ध कोस प्रमाण है ।।९१।।

पुह पुह ताणं परिही, ति-कोसमेत्ता हवेदि सविसेसा ।
सेसाओ वण्णणाओ, बुह - णयराणं सरिच्छाओ ।।९२।।

अर्थ—उनकी परिधि पृथक्-पृथक् तीन कोससे कुछ अधिक है। इन नगरोंका शेष सब वर्णन बुध नगरोंके सदृश है ॥९२॥

गुरु-ग्रहके नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलादो, छक्कोणिय-णव-सएण जोयणए।
गंतूण णहे उवरिं, चेट्ठंति गुरूण णयराणि ॥९३॥

। ८९४ ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे छह कम नौ सौ (८९४) योजन ऊपर जाकर आकाशमें गुरु (बृहस्पति) ग्रहोंके नगर स्थित हैं ॥९३॥

ताणि [1]णयर-तलाणि, फलिह-मयाणि सुमंद-किरणाणि।
उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि णिच्चं सहावाणि ॥९४॥

अर्थ—स्फटिकमणिसे निर्मित, उन गुरु-ग्रहोंके नगर-तल सुन्दर मन्द किरणोंसे संयुक्त ऊर्ध्वमुख स्थित गोलकार्धके सदृश और नित्य-स्वभाव वाले हैं ॥९४॥

उवरिम-तल-विक्खंभा ताणं कोसस्स बहुम-भागा य।
सेसाओ वण्णणाओ, सुक्क - पुराणं सरिच्छाओ ॥९५॥

अर्थ—उनके उपरिम तलका विस्तार कोस के बहुभाग अर्थात् कुछ कम एक कोस प्रमाण है। उनका शेष वर्णन शुक्रपुरों के सदृश है ॥९५॥

मंगल ग्रहके नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलादो, तिय-ऊणिय-णव-सयाणि जोयणए।
गंतूण उवरि गयणे, मंगल - णयराणि चेट्ठंति ॥९६॥

। ८९७ ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे तीन कम नौ सौ (८९७) योजन ऊपर जाकर आकाशमें मङ्गलनगर स्थित हैं ॥९६॥

ताणि णयर-तलाणि, रुहिरारुण-पउमराय-मइयाणि।
उत्ताण-गोलकद्धोवमाणि सव्वाणि मंद-किरणाणि ॥९७॥

अर्थ—वे सब नगर-तल रुधिर सदृश लाल वर्णवाले पद्मराग-मणियोंसे निर्मित, ऊर्ध्वमुख स्थित गोलकार्ध सदृश और मन्द-किरणोंसे संयुक्त होते हैं ॥९७॥

---

१. ब. णयरि।

उवरिम-तल-विक्खंभा, कोसस्सद्धं तदद्ध-बहलत्तं[1] ।
सेसाओ वण्णणाओ, ताणं पुव्वुत्त - सरिसाओ ।।९८।।

अर्थ—उनके उपरिम तलका विस्तार अर्ध कोस एवं बाहल्य इससे आधा अर्थात् पाव कोस प्रमाण है । इनका शेष वर्णन पूर्वोक्त नगरोंके सदृश है ।।९८।।

शनि-ग्रहके नगरोंकी प्ररूपणा—

चित्तोवरिम-तलादो, गंतूणं णव-सयाणि जोयणए ।
उवरि सुवण्ण-मयाणि, सणि-णयराणि णहे होंति ।।९९।।

। ९०० ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीके उपरिम तलसे नौ सौ (९००) योजन ऊपर जाकर आकाशमें शनि-ग्रहोंके स्वर्णमय नगर हैं ।।९९।।

उवरिम-तल-विक्खंभा[1], कोसद्धं होंति ताण पत्तेक्कं ।
सेसाओ वण्णणाओ, पुव्व - पुराणं सरिच्छाओ ।।१००।।

अर्थ—उनमेंसे प्रत्येक शनि नगरके उपरिम तलका विस्तार अर्ध कोस प्रमाण है । इनका शेष वर्णन पूर्वोक्त नगरोंके सदृश ही है ।।१००।।

अवशेष ८३ ग्रहोंकी प्ररूपणा—

अवसेसाण गहाणं, णयरीओ उवरि चित्त-भूमीदो ।
गंतूण बुह - सणीणं, विच्चाले होंति णिच्चाओ ।।१०१।।

अर्थ—अवशिष्ट (८३) ग्रहोंकी नित्य (शाश्वत) नगरियां चित्रा पृथिवीके ऊपर जाकर बुध ग्रहों और शनि ग्रहों के अन्तरालमें अवस्थित हैं ।।१०१।।

विशेषार्थ—गाथा १५ से २२ तक अर्थात् आठ गाथाओंमें बुधको आदि लेकर ८८ ग्रहोंके नाम दर्शाये गये हैं । इनमेंसे बुध, शुक्र, गुरु, मंगल और शनि ग्रहोंका वर्णन ऊपर किया जा चुका है । शेष ८३ ग्रहोंका अवस्थान चित्रा पृथिवीसे ऊपर जाकर बुध और शनि ग्रहोंके अन्तराल अर्थात् ८८८ योजनसे ९०० योजनके बीचमें है ।

ताणि णयर-तलाणि, जह जोग्गुद्दिट्ठ-वास-बहलाणि ।
उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि बहु - रयण - मइयाणि ।।१०२।।

---

१. द. ज. बहलद्धं ।

अर्थ—ये (८३) नगर तल यथा-योग्य कहे हुए विस्तार एवं बाहल्यसे संयुक्त, ऊर्ध्वमुख गोलकार्ध सदृश और बहुत रत्नोंसे रचित हैं ॥१०२॥

सेसाओ वण्णणाओ, पुव्विल्ल-पुराण होंति सरिसाओ।
किं पारेमि[1] भणेदुं, जीहाए एक्कमेत्ताए ॥१०३॥

अर्थ—इन ग्रहोंका शेष वर्णन पूर्वोक्त पुरोंके सदृश है। मात्र एक जिह्वासे इनका विशेष कथन करते हुए क्या पार पा सकता हूँ ? ॥१०३॥

नक्षत्र नगरियोंकी प्ररूपणा—

अट्ठ-सय-जोयणाणिं, चउसीदि-जुदाणि उवरि-चित्तादो।
गंतूण गयण-मग्गे, हुवंति णक्खत्त-णयराणि ॥१०४॥

। ८८४ ।

अर्थ—चित्रा पृथिवीसे आठसौ चौरासी (८८४) योजन ऊपर जाकर आकाश-मार्गमें नक्षत्रोंके नगर हैं ॥१०४॥

ताणि णयर-तलाणि, बहु-रयण-मयाणि मंद-किरणाणि।
उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि रम्माणि रेहंति ॥१०५॥

अर्थ—वे सब (नक्षत्रोंके) रमणीय नगरतल बहुत रत्नोंसे निर्मित, मन्द किरणोंसे युक्त और ऊर्ध्वमुख गोलकार्ध सदृश होते हुए विराजमान होते हैं ॥१०५॥

उवरिम-तल-वित्थारो, ताणं कोसो तदद्ध-बहलाणि।
सेसाओ वण्णणाओ, दिणयर-णयराण सरिसाओ ॥१०६॥

अर्थ—उनके उपरिम तलका विस्तार एक कोस और बाहल्य इससे आधा है। इनका शेष वर्णन सूर्य-नगरोंके सदृश है ॥१०६॥

णवरि विसेसो देवा, अभियोगा सीह-हत्थि-वसहस्सा।
ते एक्केक्क - सहस्सा, पुव्व-दिसासु ताणि धारंति ॥१०७॥

अर्थ—इतना विशेष है कि सिंह, हाथी, बैल एवं घोड़ेके आकारको धारण करने वाले एक-एक हजार प्रमाण आभियोग्य देव क्रमशः पूर्वादिक दिशाओंमें उन नक्षत्र नगरोंको धारण किया करते हैं ॥१०७॥

---

१. द. ब. पावेदि भणामो।

तारा नगरियोंकी प्ररूपणा—

णउदि-जुद सत्त-जोयण-सदाणि गंतूण उवरि चित्तादो ।
गयण-तले ताराणं, पुराणि बहले बहुत्तर-सदम्मि ॥१०८॥

अर्थ—चित्रा पृथिवीसे सात सौ नब्बै (७९०) योजन ऊपर जाकर आकाश तलमें एक सौ दस (११०) योजन प्रमाण बाहल्यमें ताराओंके नगर हैं ॥१०८॥

ताणं पुराणि णाणा-वर-रयण-मयाणि मंद-किरणाणि ।
उत्ताण - गोलकद्धोवमाणि सासद - सरूवाणि ॥१०९॥

अर्थ—उन ताराओंके पुर नाना प्रकारके उत्तम रत्नोंसे निर्मित, मन्द किरणोंसे संयुक्त, ऊर्ध्वमुख स्थित गोलकार्ध सदृश और नित्य-स्वभाव वाले हैं ॥१०९॥

ताराओंके भेद और उनके विस्तारका प्रमाण—

वर-अवर-मज्झिमाणि, ति-वियप्पाणि हवंति एदाणि ।
उवरिम - तल - विक्खंभा, जेट्ठाणं दो-सहस्स-दंडाणि ॥११०॥

। २००० ।

अर्थ—ये उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम तीन प्रकारके होते हैं। इनमेंसे उत्कृष्ट नगरोंके उपरिम तलका विस्तार दो हजार (२०००) धनुष प्रमाण है ॥११०॥

पंच - सयाणि धणूणि, तं विक्खंभा हवेदि अवराणं ।
दु-ति-गुणिदावर-माणं, मज्झि - मयाणं दु-ठाणेसुं ॥१११॥

। ५०० । १००० । १५०० ।

अर्थ—जघन्य नगरोंका (वह) विस्तार पाँच सौ (५००) धनुष प्रमाण है। इस जघन्य प्रमाणको दो और तीनसे गुणा करनेपर क्रमशः दो स्थानोंमें मध्यम नगरोंका विस्तार क्रमशः (५००×२ =) १००० धनुष एवं (५००×३ =) १५०० धनुष है ॥१११॥

ताराओंका अन्तराल एवं अन्य वर्णन—

तेरिच्छमंतरालं, जहण्ण - ताराण कोस - सत्तंसो ।
जोयणया पण्णासा, मज्झिमए सहस्समुक्कस्से ॥११२॥

को ⅐ । जो ५० । १००० ।

अर्थ—जघन्य ताराओं का तिर्यग् अन्तराल एक कोस का सातवाँ भाग अथवा $\frac{1}{7}$ कोस, मध्यम ताराओंका यही अन्तराल ५० योजन और उत्कृष्ट ताराओंका तिर्यग् अन्तराल एक हजार (१०००) योजन प्रमाण है ॥११२॥

सेसाओ वण्णणाओ, पुव्व-पुराणं हवंति सरिसाणि ।
एत्तो गुरूवइट्ठं पुर - परिमाणं परूवेमो ॥११३॥

। एवं विण्णासं समत्तं[1] ॥४॥

अर्थ—इन ताराओंका शेष वर्णन पूर्व पुरोंके सदृश है । अब यहाँसे आगे गुरु द्वारा उपदिष्ट पुरों (नगरों) का प्रमाण कहते हैं ॥११३॥

॥ इसप्रकार विन्यासका कथन समाप्त हुआ ॥४॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. द. ब. क. ज. सम्मत्ता ।

चन्द्रादि ग्रहोंके अवस्थान, विस्तार, बाहल्य एवं वाहन देवोंका प्रमाण—

क्र.	ग्रह	चित्रा पृ० से ऊँचाई		विस्तार (मोटाई)		बाहल्य (गहराई)		वाहन देवोंका आकार और प्रमाण				योग
		योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों मे	पूर्व दिशामें सिंह	दक्षिण में हाथी	पश्चिम में बैल	उत्तरमें घोड़े	
१.	चन्द्र	८८०	३५२००००	५६/६१ यो०	३६७२ ८/६१	२८/६१ यो०	१८३६ ४/६१	४००० +	४००० +	४००० +	४००० =	१६०००
२.	सूर्य	८००	३२०००००	४८/६१ यो०	३१४७ ३३/६१	२४/६१ यो०	१५७३ ४८/६१	४००० +	४००० +	४००० +	४००० =	१६०००
३.	बुध	८८८	३५५२०००	१/२ को०	५०० मी०	१/४ को०	२५०	२००० +	२००० +	२००० +	२००० =	८०००
४.	शुक्र	८९१	३५६४०००	१ कोस	१००० मी	१/२ को०	५००	२००० +	२००० +	२००० +	२००० =	८०००
५.	गुरु	८९४	३५७६०००	कुछ कम १ कोस	कुछ कम १००० मी	कुछ कम १/२ को०	कुछ कम ५००	२००० +	२००० +	२००० +	२००० =	८०००
६.	मंगल	८९७	३५८८०००	१/२ को०	५०० मी०	१/४ को०	२५०	२००० +	२००० +	२००० +	२००० =	८०००
७.	शनि	९००	३६०००००	१/२ को०	५०० मी०	१/४ को०	२५०	२००० +	२००० +	२००० +	२००० =	८०००
८.	नक्षत्र	८८४	३५३६०००	१ कोस	१००० मी०		५००	१००० +	१००० +	१००० +	१००० =	४०००
९.	उ० तारा म० तारा ज० तारा	७९०	३१६००००	२००० धनुष {१५००/१०००} ध ५०० ध.	१००० मी० {७५०/५०० मी०} २५० मी०			५०० +	५०० +	५०० +	५०० =	२०००

चन्द्र आदि देवोंके नगरों आदिका प्रमाण—

णिय-णिय-रासि-पमाणं, [1]एदाणं जं [2]मयंक-पहुदीणं ।
णिय-णिय-णयर-पमाणं, तेत्तियमेत्तं च कूड-जिणभवणं ।।११४।।

अर्थ—इन चन्द्र आदि देवोंकी निज-निज राशिका जो प्रमाण है, उतना ही प्रमाण अपने-अपने नगरों, कूटों और जिन-भवनोंका है ।।११४।।

विशेषार्थ—गाथा ११ से ३५ पर्यन्त चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की निज-निज राशिका अलग-अलग जो प्रमाण कहा गया है, वही प्रमाण उनके नगरों, कूटों और जिन-भवनोंका है ।

लोकविभागानुसार ज्योतिष-नगरोंका बाहल्य—

जोइग्गण[3]- णयरीणं, सव्वाणं रुंद-माण-सारिच्छं ।
बहलत्तं मण्णंते, लोयविभायस्स आइरियाए ।।११५।।

पाठान्तरम् ।

।। एवं परिमाणं समत्तं ।।५।।

अर्थ:—'लोकविभाग' के आचार्य समस्त ज्योतिर्गणोंकी नगरियों के विस्तार प्रमाण के सदृश ही उनके बाहल्यको भी मानते हैं ।।११५।।

इसप्रकार परिमाणका कथन समाप्त हुआ ।।५।।

चन्द्र विमानोंकी संचार-भूमि—

चर-बिंबा मणुवाणं, खेत्ते तस्सि च जंबु-दीवम्मि ।
दोण्णि मियंका ताणं, एक्कं चिय होदि चारमही ।।११६।।

अर्थ—चर अर्थात् गमनशील ज्योतिष बिम्ब मनुष्य क्षेत्रमें ही हैं, मनुष्य क्षेत्रके मध्य स्थित जम्बूद्वीपमें जो दो चन्द्र हैं उनकी संचार-भूमि एक ही है ।।११६।।

पंच-सय-जोयणाणि, दसुत्तराइं हवेदि [4]विक्खंभो ।
ससहर - चारमहीए, दिणयर - बिंबादिरित्ताणि ।।११७।।

। ५१० । ४८/६१ ।

---

१. द. ब क. ज. पण्हाणं । २. द. क. ज. जम्हयंक, ब. जमयंक । ३. द. ब. क. ज. जोइट्ठणए ।
४. द. ब. क. ज. विक्खंभा ।

अर्थ—चन्द्रकी संचार-भूमिका विस्तार सूर्य-बिम्बके विस्तारसे अतिरिक्त अर्थात् ४८/६१ योजनसे अधिक पाँच सौ दस (५१०) अर्थात् ५१०४८/६१ योजन प्रमाण है ॥११७॥

बीसूण - बे - सयाणि, जंबूदीवे चरंति सीदकरा ।
रवि-मंडलाधियाणि, तीसुत्तर-तिय-सयाणि लवणम्मि ॥११८॥

। १८० । ३३० । ४८/६१ ।

अर्थ—चन्द्रमा, बीस कम दो सौ (१८०) योजन जम्बूद्वीपमें और सूर्यमण्डलसे अधिक तीन सौ तीस (३३०४८/६१) योजन प्रमाण लवणसमुद्रमें संचार करते हैं ॥११८॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप सम्बन्धी दोनों चन्द्रोंके संचार क्षेत्र का प्रमाण ५१०४८/६१ योजन प्रमाण है। इसमेंसे दोनों चन्द्र जम्बूद्वीपमें १८० योजन क्षेत्र में और अवशेष (५१०४८/६१ — १८० =) ३३०४८/६१ योजन लवणसमुद्रमें विचरण करते हैं।

चन्द्र गलीके विस्तार आदिका प्रमाण—

पण्णरस - ससहराणं, वीहीओ होंति चारखेत्तम्मि ।
मंडल - सम - रुंदाओ, तदद्ध - बहलाओ पत्तेक्कं ॥११९॥

। ५६/६१ । २८/६१ ।

अर्थ—चन्द्र बिम्बोंके चार क्षेत्र (५१०४८/६१ यो०) में पन्द्रह गलियाँ हैं। उनमेंसे प्रत्येक गलीका विस्तार चन्द्रमण्डलके बराबर ५६/६१ योजन और बाहल्य इससे आधा (२८/६१ योजन) है ॥११९॥

सुमेरुपर्वतसे चन्द्र की अभ्यन्तर वीथीका अन्तर-प्रमाण—

सट्ठि-जुदं ति-सयाणि, मंदर-रुंदं च जंबु-विक्खंभे ।
सोहिय दलिदे लद्धं, चंदादि-महीहि-मंदरंतरयं ॥१२०॥

चउदाल-सहस्साणि, वीसुत्तर-अड-सयाणि मंदरदो ।
गच्छिय सव्वब्भंतर - वीही इंदूण परिमाणं ॥१२१॥

। ४४८२० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे तीन सौ साठ योजन और सुमेरुपर्वतका विस्तार कम करके शेषको आधा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना चन्द्रकी प्रथम (अभ्यन्तर) संचार पृथिवी (वीथी) से सुमेरुपर्वतका अन्तर है। (अर्थात्) सुमेरुपर्वतसे चवालीस हजार आठ सौ बीस (४४८२०) योजन प्रमाण आगे जाकर चन्द्रकी सर्वाभ्यन्तर (प्रथम) वीथी प्राप्त होती है ॥१२०-१२१॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। जम्बूद्वीपके दोनों पार्श्वभागोंमें चन्द्रके चार क्षेत्रका प्रमाण (१८०×२)=३६० योजन है और सुमेरुपर्वतका भू-विस्तार १०००० योजन है। अत: १००००० — ३६०=९९६४० योजन जम्बूद्वीपको प्रथम (अभ्यन्तर) वीथी में स्थित दोनों चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर है और इसमेंसे सुमेरुका भू-विस्तार घटाकर शेषको आधा करने पर ($\frac{९९६४०-१००००}{२}$)=४४८२० योजन सुमेरुसे अभ्यन्तर (प्रथम) वीथीमें स्थित चन्द्रके अन्तरका प्रमाण प्राप्त होता है ।।

चन्द्रकी ध्रुवराशिका प्रमाण—

एक्क-सट्ठीए गुणिदा, पंच-सया जोयणाणि दस-जुत्ता ।
ते अडदाल - विमिस्सा, ध्रुवरासी णाम चारमही ।।१२२।।

अर्थ—पाँचसौ दस योजनको इकसठसे गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें वे अड़तालीस भाग और मिला देनेपर ध्रुवराशि नामक चारक्षेत्रका विस्तार होता है ।।१२२।।

विशेषार्थ—चन्द्रोंके संचार क्षेत्रका नाम चारक्षेत्र है। जिसका प्रमाण ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन है। गाथामें इसी प्रमाण को समान छेद करने (भिन्न तोड़ने) पर जो राशि उत्पन्न हो उसे ध्रुवराशि स्वरूप चारक्षेत्र कहा है। यथा—५१०×६१=३१११०, ३१११०+४८=३११५८ अर्थात् $\frac{३११५८}{६१}$ यो० ध्रुवराशि स्वरूप चारमही का प्रमाण है। गाथा १२३ में इन्हीं ३११५८ को ६१ से भाजितकर प्राप्त राशि ५१० $\frac{४८}{६१}$ को ध्रुवराशि कहा है।

एक्कत्तीस - सहस्सा, अट्ठावण्णुत्तरं सदं तह य ।
इगिसट्ठीए भजिदे, धुवरासि - पमाणमुद्दिट्ठं ।।१२३।।

$\frac{३११५८}{६१}$ ।

अर्थ—इकतीस हजार एक सौ अट्ठावन (३११५८) में इकसठ (६१) का भाग देनेपर जो (५१० $\frac{४८}{६१}$ यो०) लब्ध आवे उतना ध्रुव राशिका प्रमाण कहा गया है ।।

चन्द्रकी सम्पूर्ण गलियोंके अन्तरालका प्रमाण—

पण्णरसेहिं गुणिदं, हिमकर-बिंब-प्पमाणमवणेज्जं ।
धुवरासीदो सेसं, विच्चालं सयल - वीहीणं ।।१२४।।

$\frac{३०३१८}{६१}$ ।

अर्थ—चन्द्रबिम्बके प्रमाणको पन्द्रहसे गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे ध्रुवराशिमेंसे कम कर देनेपर जो अवशेष रहे वही सम्पूर्ण गलियोंका अन्तराल प्रमाण होता है ।।१२४।।

विशेषार्थ :—चन्द्रकी एक वीथीका विस्तार $\frac{५६}{६१}$ योजन है तो, १५ वोथियोंका विस्तार कितना होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर ($\frac{५६}{६१}$ × १५)=$\frac{८४०}{६१}$ योजन गलियोंका विस्तार हुआ। इसे चार क्षेत्रके विस्तार ५१०$\frac{४८}{६१}$ यो० में से घटा देनेपर ($\frac{३११५८}{६१}$ — $\frac{८४०}{६१}$ =) $\frac{३०३१८}{६१}$ योजन १५ गलियोंका अन्तराल प्रमाण प्राप्त होता है।

चन्द्रकी प्रत्येक वीथीका अन्तराल प्रमाण—

तं चोद्दस-पविहत्तं, हवेदि एक्केक्क-वीहि-विच्चालं।
पणुतीस - जोयणाणि, अदिरेकं तस्स परिमाणं ॥१२५॥

अदिरेकस्स पमाणं, चोद्दसमदिरित्त-वेण्णि-सदमंसा।
सत्तावीसब्भहिया, चत्तारि सया हवे हारो ॥१२६॥

३५ । $\frac{२१४}{४२७}$ ।

अर्थ :—इस ($\frac{३०३१८}{६१}$) में चोदहका भाग देनेपर एक-एक वीथीके अन्तरालका प्रमाण होता है। जो पैंतीस योजनों से अधिक है। इस अधिकताका जो प्रमाण है उसमें दो सौ चौदह (२१४) अंश और चार सौ सत्ताईस (४२७) भागहार है ॥१२५-१२६॥

विशेषार्थ—चन्द्रमा की गलियाँ १५ हैं किन्तु १५ गलियोंके अन्तर १४ ही होंगे, अतः सम्पूर्ण गलियोंके अन्तराल प्रमाणमें १४ का भाग देनेपर प्रत्येक गलीके अन्तरालका प्रमाण ($\frac{३०३१८}{६१}$ ÷ १४)=३५$\frac{२१४}{४२७}$ योजन प्राप्त होता है।

चन्द्रके प्रतिदिन गमन-क्षेत्रका प्रमाण—

पढम-पहादो चंदो, बाहिर-मग्गस्स गमण-कालम्मि।
वीहिं पडि मेलिज्जं, विच्चालं बिंब - संजुत्तं ॥१२७॥

३६ । $\frac{१७९}{४२७}$ ।

अर्थ—चन्द्रोंके प्रथम वीथीसे द्वितीयादि बाह्य वीथियोंकी ओर जाते समय प्रत्येक वीथीके प्रति, बिम्ब संयुक्त अन्तराल मिलाना चाहिए ॥१२७॥

विशेषार्थ- चन्द्रकी प्रत्येक गलीका विस्तार $\frac{५६}{६१}$ योजन है और प्रत्येक गलीका अन्तर प्रमाण ३५$\frac{२१४}{४२७}$ योजन है। इस अन्तरप्रमाणमें गलीका विस्तार मिला देनेपर (३५$\frac{२१४}{४२७}$+$\frac{५६}{६१}$=) ३६$\frac{१७९}{४२७}$ योजन प्राप्त होते हैं। चन्द्रको प्रतिदिन एक गली पारकर दूसरी गलीमें प्रवेश करने तक ३६$\frac{१७९}{४२७}$ यो० प्रमाण गमन करना पड़ता है।

द्वितीयादि वीथियोंमें स्थित चन्द्रोंका सुमेरु पर्वतसे अन्तर—

चउदाल-सहस्सा अड-सयाणि छप्पण्ण-जोयणा अहिया ।
उणसोदि-जुद-सयंसा, बिदियद्ध-गदेंदु-मेरु - विच्चालं ।।१२८।।

४४८५६ । $\frac{१७९}{४२७}$ ।

अर्थ—द्वितीय अध्व (गली) को प्राप्त हुए चन्द्रमाका मेरु पर्वतसे चवालीस हजार आठ सौ छप्पन योजन और (एक योजनके चारसौ सत्ताईस भागोंमेंसे) एक सौ उन्यासी भाग-प्रमाण अन्तर है ।।१२८।।

विशेषार्थ :- मेरु पर्वतसे चन्द्रकी प्रथम वीथीका अन्तर गाथा १२१ में ४४८२० योजन कहा गया है । उसमें चन्द्रकी प्रतिदिनकी गति का प्रमाण जोड़ देनेपर सुमेरुसे द्वितीय वीथी स्थित चन्द्र का अन्तर (४४८२० + ३६$\frac{१७९}{४२७}$)=४४८५६$\frac{१७९}{४२७}$ योजन प्रमाण है । यही प्रक्रिया आगे भी कही गई है ।

चउदाल-सहस्सा अड-सयाणि बाणउदि जोयणा भागा ।
अडवण्णुत्तर-ति-सया, तदियद्ध-गदेंदु-मंदर-पमाणं ।।१२९।।

४४८९२ । $\frac{३५८}{४२७}$ ।

अर्थ—तृतीय गलीको प्राप्त हुए चन्द्र और मेरु-पर्वतके बीचमें चवालीस हजार आठ सौ बानबे योजन और तीन सौ अट्ठावन भाग अधिक अन्तर-प्रमाण है ।।१२९।।

यथा—४४८५६$\frac{१७९}{४२७}$ यो० + ३६$\frac{१७९}{४२७}$ यो० = ४४८९२$\frac{३५८}{४२७}$ यो० ।

चउदाल-सहस्सा णव-सयाणि उणतीस जोयणा भागा ।
दस-जुत्त-सयं विच्चं, चउत्थ-पह-गद-हिमंसु-मेरूणं ।।१३०।।

४४९२९ । $\frac{११०}{४२७}$ ।

अर्थ—चतुर्थ पथको प्राप्त हुए चन्द्रमा और मेरुके मध्य चवालीस हजार नौ सौ उनतीस योजन और एक सौ दस भाग प्रमाण अधिक अन्तर है ।।१३०।।

४४८९२$\frac{३५८}{४२७}$ + ३६$\frac{१७९}{४२७}$=४४९२९$\frac{११०}{४२७}$ योजन ।

चउदाल-सहस्सा णव-सयाणि पण्णट्ठि जोयणा भागा ।
दोण्णि सया उणणउदी, पंचम-पह-इंदु-मंदर-पमाणं ।।१३१।।

४४९६५ । $\frac{२८९}{४२७}$ ।

अर्थ—पंचम पथको प्राप्त चन्द्रका मेरु पर्वतसे चवालीस-हजार नौ सौ पैंसठ योजन और दो सौ नवासी भाग (४४९६५ $\frac{२८९}{४२७}$ यो०) प्रमाण अन्तर है ॥१३१॥

४४९२९ $\frac{११०}{४२७}$ + ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ = ४४९६५ $\frac{२८९}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्सा बे-जोयण-जुत्ता कलाओ इगिदालं ।
छट्ठ-पह-ट्ठिद-हिमकर-चामीयर - सेल - विच्चालं ॥१३२॥

४५००२ । $\frac{४१}{४२७}$ ।

अर्थ—छटे पथमें स्थित चन्द्र और मेरु पर्वतके मध्य पैंतालीस हजार दो योजन और इकतालीस कला (४५००२ $\frac{४१}{४२७}$ यो०) प्रमाण अन्तर है ॥१३२॥

४४९६५ $\frac{२८९}{४२७}$ + ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ = ४५००२ $\frac{४१}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्सा जोयणाणि अडतीस दु-सय-वीसंसा ।
सत्तम-वीहि-गदं सिद - मयूख - मेरूण विच्चालं ॥१३३॥

४५०३८ । $\frac{२२०}{४२७}$ ।

अर्थ—सातवीं गली को प्राप्त चन्द्र और मेरुके मध्य पैंतालीस हजार अड़तीस योजन और दो सौ बीस भाग—(४५०३८ $\frac{२२०}{४२७}$ यो०) प्रमाण अन्तर है ॥१३३॥

४५००२ $\frac{४१}{४२७}$ + ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ = ४५०३८ $\frac{२२०}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्सा चउहत्तरि-अहिया कलाओ तिण्णि-सया ।
णवणवदी विच्चालं, अट्ठम - वीही - गदिंदु - मेरूणं ॥१३४॥

४५०७४ । $\frac{३९९}{४२७}$ ।

अर्थ—आठवीं गलीको प्राप्त चन्द्र और मेरुके बीच पैंतालीस-हजार चौहत्तर योजन और तीन सौ निन्यानबे कला (४५०७४ $\frac{३९९}{४२७}$ यो०) प्रमाण अन्तर है ॥१३४॥

४५०३८ $\frac{२२०}{४२७}$ + ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ = ४५०७४ $\frac{३९९}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्सा सयमेक्कारस-जोयणाणि कलाण सयं ।
इगिवण्णा विच्चालं, णवम - पहे चंद - मेरूणं ॥१३५॥

४५१११ । $\frac{१५१}{४२७}$ ।

अर्थ—नौवें पथमें चन्द्र और मेरुके मध्यमें पैंतालीस हजार एक सो ग्यारह योजन और एक सो इक्यावन कला (४५१११ $\frac{१५१}{४२७}$ यो०) प्रमाण अन्तराल है ॥१३५॥

४५०७४ $\frac{३९९}{४२७}$ + ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ = ४५१११ $\frac{१५१}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्सा सय, सत्तत्तालं कलाण तिण्णि सया।
तीस - जुदा दसम-पहे, विच्चं हिमकिरण - मेरूणं ॥१३६॥

४५१४७ । $\frac{३३०}{४२७}$ ।

अर्थ—दसवें पथमें स्थित चन्द्र और मेरुका अन्तराल पेंतालीस हजार एक सौ सेंतालीस योजन और तीन सौ तीस कला (४५१४७$\frac{३३०}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१३६॥

४५१११$\frac{१५१}{४२७}$ + ३६$\frac{१७९}{४२७}$=४५१४७$\frac{३३०}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्साणि, चुलसीदो जोयणाणि एक्क-सयं ।
बासीदि-कला विच्चं, एक्करस - पहम्मि एदाणं ॥१३७॥

४५१८४ । $\frac{८२}{४२७}$ ।

अर्थ—ग्यारहवें पथमें इन दोनोंका अन्तर पैंतालीस हजार एक सौ चौरासी योजन और बयासी कला (४५१८४$\frac{८२}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१३७॥

४५१४७$\frac{३३०}{४२७}$+ ३६$\frac{१७९}{४२७}$=४५१८४$\frac{८२}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्साणि, वीसुत्तर-दो-सयाणि जोयणया ।
इगिसट्ठि-दु-सय-भागा, बारसम - पहम्मि तं विच्चं ॥१३८॥

४५२२० । $\frac{२६१}{४२७}$ ।

अर्थ—बारहवें पथमें वह अन्तराल पैंतालीस हजार दो सौ बीस योजन और दो सौ इकसठ भाग (४५२२०$\frac{२६१}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१३८॥

४५१८४$\frac{८२}{४२७}$+ ३६$\frac{१७९}{४२७}$=४५२२०$\frac{२६१}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्साणि, दोण्णि सया जोयणाणि सगवण्णा ।
तेरस - कलाओ तेरस - पहम्मि एदाण विच्चालं ॥१३९॥

४५२५७ । $\frac{१३}{४२७}$ ।

अर्थ—तेरहवें पथमें इन दोनोंका अन्तराल पैंतालीस हजार दो सौ सत्तावन योजन और तेरह कला (४५२५७$\frac{१३}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१३९॥

४५२२०$\frac{२६१}{४२७}$+ ३६$\frac{१७९}{४२७}$= ४५२५७$\frac{१३}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्सा बे, सयाणि ते-णउदि जोयणा अहिया ।
अट्ठोण-दु-सय-भागा, चोद्दसम - पहम्मि तं विच्चं ॥१४०॥

४५२९३ । $\frac{१९२}{४२७}$ ।

अर्थ—चौदहवें पथमें वह अन्तराल पैंतालीस हजार दो सौ तेरानवे योजन और आठ कम दो सौ भाग अधिक अर्थात् (४५२९३$\frac{१९२}{४२७}$ यो०) है ॥

४५२५७$\frac{१३}{४२७}$+ ३६$\frac{१७९}{४२७}$= ४५२९३$\frac{१९२}{४२७}$ यो० ।

पणदाल-सहस्साणि, तिण्णि सया जोयणाणि उणतीसं ।
इगिहत्तरि-ति-सय-कला, पण्णरस-पहम्मि तं विच्चं ॥१४१॥

४५३२९ । $\frac{३७१}{४२७}$ ।

अर्थ—पन्द्रहवें पथमें वह अन्तराल पैंतालीस हजार तीन सो उनतीस योजन और तीन सौ इकहत्तर कला (४५३२९ $\frac{३७१}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१४१॥

विशेषार्थ—४५२९३ $\frac{१९२}{४२७}$ + ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ = ४५३२९ $\frac{३७१}{४२७}$ योजन ।

यह ४५३२९ $\frac{५३}{६१}$ योजन (१८१३१९४७५ $\frac{३५}{६१}$ मील) मेरु पर्वतसे बाह्य वीथी में स्थित चन्द्र का अन्तर है ।

बाहिर-पहादु ससिणो, आदिम-वीहीए आगमण-काले ।
पुव्वप-मेलिद-खेदं, [1]फेलसु जा चोद्दसादि-पढम-पहं ॥१४२॥

अर्थ—बाह्य (पन्द्रहवें) पथसे चन्द्रके प्रथम वीथीकी ओर आगमनकालमें पहिले मिलाए हुए क्षेत्र (३६ $\frac{१७९}{४२७}$ यो०) को उत्तरोत्तर कम करते जानेसे चौदहवीं गलीको आदि लेकर प्रथम गली तकका अन्तराल प्रमाण आता है ॥१४२॥

प्रथम वीथीमें स्थित दोनों चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर—

सट्ठि-जुदं ति-सयाणि, सोहेज्जसु जंबुदीव-वासम्मि ।
जं सेसं आबाहं, अब्भंतर - मंडलेंदूणं ॥१४३॥

णवणउदि-सहस्साणि, छस्सय-चालीस-जोयणाणि पि ।
चंदाणं विच्चालं, अब्भंतर - मंडल - ठिदाणं ॥१४४॥

९९६४० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे तीन सौ साठ योजन कम कर देनेपर जो शेष रहे उतना अभ्यन्तर मण्डलमें स्थित दोनों चन्द्रोंके आबाधा अर्थात् अन्तरालका प्रमाण है। अर्थात् अभ्यन्तर मण्डलमें स्थित दोनों चन्द्रोंका अन्तराल निन्यानबे हजार छह सौ चालीस (९९६४०) योजन प्रमाण है ॥१४३-१४४॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका व्यास एक लाख योजन है। जम्बूद्वीपके दोनों पार्श्वभागोंमें चन्द्रमाके चार क्षेत्रका प्रमाण (१८० × २) = ३६० योजन है। इसे जम्बूद्वीपके व्यासमेंसे घटा देने पर (१००००० — ३६० =) ९९६४० योजन शेष बचते हैं। यही ९९६४० योजन प्रथम वीथीमें स्थित दोनों चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर है।

---

१. द. फेलमु ।

चन्द्रोंकी अन्तराल वृद्धिका प्रमाण—

ससहर-पह-सूचि-वड्ढी, दोहिं गुणिदाए होदि जं लद्धं ।
सा आबाधा - वड्ढी, पडिमग्गं चंद - चंदाणं ।।१४५।।

७२ । $\frac{३५८}{४२७}$ ।

अर्थ—चन्द्रकी पथ-सूची वृद्धिका जो (३६$\frac{१७९}{४२७}$ यो०) प्रमाण है, उसे दो से गुणा करने पर जो (३६$\frac{१७९}{४२७}$ × २ = ७२$\frac{३५८}{४२७}$ यो०) लब्ध प्राप्त हो उतना प्रत्येक गलीमें दोनों चन्द्रोंके परस्पर एक दूसरेके बीचमें रहने वाले अन्तरालकी वृद्धिका प्रमाण होता है ।।१४५।।

प्रत्येक पथमें दोनों चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर—

बारस-जुद-सत्त-सया, णवणउदि-सहस्स जोयणाणं पि ।
अडवण्णा ति-सय-कला, बिदिय - पहे चंद - चंदस्स ।।१४६।।

९९७१२ । $\frac{३५८}{४२७}$ ।

अर्थ—द्वितीय पथमें एक चन्द्र से दूसरे चन्द्रका अन्तराल निन्यानवे हजार सात सौ बारह योजन और तीन सौ अट्ठावन कला (९९७१२$\frac{३५८}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ।।१४६।।

विशेषार्थ—गाथा १४३ में प्रथम वीथी स्थित दोनों चन्द्रोंके अन्तरका प्रमाण ९९६४० योजन कहा गया है । इसमें अन्तरालवृद्धिका (७२$\frac{३५८}{४२७}$ यो०) प्रमाण जोड़ देनेपर द्वितीय वीथी स्थित दोनों चन्द्रोंका अन्तराल प्रमाण (९९६४० + ७२$\frac{३५८}{४२७}$ =) ९९७१२$\frac{३५८}{४२७}$ योजन प्राप्त होता है । अन्य वीथियोंका अन्तराल भी इसी प्रकार निकाला गया है ।

णवणउदि-सहस्साणि, सत्त-सया जोयणाणि पणसीदी ।
उणणउदी - दु - सय - कला, तदिए विच्चं सिदंसूणं ।।१४७।।

९९७८५ । $\frac{२८९}{४२७}$ ।

अर्थ—तृतीय पथमें चन्द्रोंका (पारस्परिक) अन्तराल निन्यानबे हजार सात सौ पचासी योजन और दो सौ बीस कला (९९७८५$\frac{२८९}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ।।१४७।।

९९७१२$\frac{३५८}{४२७}$ + ७२$\frac{३५८}{४२७}$ = ९९७८५$\frac{२८९}{४२७}$ यो० ।

णवणउदि-सहस्साणि, अट्ठ-सया जोयणाणि अडवण्णा ।
बीसुत्तर-दु-सय-कला, ससीण - विच्चं तुरिम - मग्गे ।।१४८।।

९९८५८ । $\frac{२२०}{४२७}$ ।

अर्थ—चतुर्थ मार्गमें चन्द्रोंका अन्तराल निन्यानबे हजार आठ सौ अट्ठावन योजन और दो सौ बीस कला (९९८५८$\frac{२२०}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ।।१४८।।

९९७८५$\frac{३६९}{४२७}$+७२$\frac{३५६}{४२७}$=९९८५८$\frac{२२०}{४२७}$ यो० ।

णवणउदि-सहस्सा-णव-सयाणि इगितीस जोयणाणं पि ।
इगि-सय-इगि-वण्ण-कला, विच्चालं पंचम - पहम्मि ।।१४९।।

९९९३१ । $\frac{१५१}{४२७}$ ।

अर्थ—पाँचवें पथमें चन्द्रोंका अन्तराल निन्यानबे हजार नौ सौ इकतीस योजन और एक सौ इक्यावन कला (९९९३१$\frac{१५१}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ।।१४९।।

९९८५८$\frac{२२०}{४२७}$+७२$\frac{३५६}{४२७}$=९९९३१$\frac{१५१}{४२७}$ यो० ।

एक्कं जोयण-लक्खं, चउ-अब्भहियं हुवेदि सविसेसं ।
बासीदि - कला - छट्ठे, पहम्मि चंदाण विच्चालं ।।१५०।।

१००००४ । $\frac{८२}{४२७}$ ।

अर्थ—छठे पथमें चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख चार योजन और बयासी कला (१००००४$\frac{८२}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ।।१०५।।

९९९३१$\frac{१५१}{४२७}$+७२$\frac{३५६}{४२७}$=९९९३१$\frac{१५१}{४२७}$ यो० ।

सत्तत्तरि-संजुत्तं, जोयण - लक्खं च तेरस कलाओ ।
सत्तम - मग्गे दोण्हं, तुसारकिरणाण विच्चालं ।।१५१।।

१०००७७ । $\frac{१३}{४२७}$ ।

अर्थ—सातवें मार्गमें दोनों चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख सतत्तर योजन और तेरह कला (१०००७७$\frac{१३}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ।।१५१।।

१००००४$\frac{८२}{४२७}$+७२$\frac{३५६}{४२७}$=१०००७७$\frac{१३}{४२७}$ यो० ।

उणवण्ण-जुदेक्क-सयं, जोयण-लक्खं कलाओ तिण्णि-सया ।
एक्कत्तरी ससीणं, अट्ठम - मग्गम्मि विच्चालं ।।१५२।।

१००१४९ । $\frac{३७१}{४२७}$ ।

अर्थ—आठवें मार्गमें चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख एक सौ उनन्चास योजन और तीन सौ इकहत्तर कला (१००१४९$\frac{३७१}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ।।१५२।।

१०००७७$\frac{१३}{४२७}$+७२$\frac{३५६}{४२७}$=१००१४९$\frac{३७१}{४२७}$ यो० ।

एक्कं जोयण-लक्खं, बावीस-जुदाणि दोण्णि य सयाणि ।
दो-उत्तर-ति-सय-कला, णवम - पहे ताण विच्चालं ॥१५३॥

१००२२२ । $\frac{३०२}{४२७}$ ।

अर्थ—नौवें मार्गमें उन चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख दो सौ बाईस योजन और तीन सौ दो कला (१००२२२$\frac{३०२}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१५३॥

१००१४९$\frac{३७१}{४२७}$ + ७२$\frac{३५८}{४२७}$ = १००२२२$\frac{३०२}{४२७}$ यो० ।

एक्कं जोयण-लक्खं, पणणउदि-जुदाणि दोण्णि य सयाणि ।
बे - सय - तेत्तीस - कला, विच्चं दसमम्मि इंदूणं ॥१५४॥

१००२९५ । $\frac{२३३}{४२७}$ ।

अर्थ—दसवें पथमें चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख दो सौ पंचानबे योजन और दो सौ तेंतीस कला (१००२९५$\frac{२३३}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१५४॥

१००२२२$\frac{३०२}{४२७}$ + ७२$\frac{३५८}{४२७}$ = १००२९५$\frac{२३३}{४२७}$ यो० है ।

एक्कं जोयण-लक्खं, अट्ठा-सट्ठी-जुदा य तिण्णि सया ।
चउ-सट्ठि-सय-कलाओ, एक्करस-पहम्मि तं विच्चं ॥१५५॥

१००३६८ । $\frac{१६४}{४२७}$ ।

अर्थ—ग्यारहवें मार्गमें यह अन्तराल एक लाख तीन सौ अड़सठ योजन और एक सौ चौसठ कला—(१००३६८$\frac{१६४}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥

१००२९५$\frac{२३३}{४२७}$ + ७२$\frac{३५८}{४२७}$ = १००३६८$\frac{१६४}{४२७}$ यो० ।

एक्कं लक्खं चउ-सय, इगिदाला जोयणाणि अविरेगे ।
पणणउदि - कला मग्गे, बारसमे अंतरं ताणं ॥१५६॥

१००४४१ । $\frac{९५}{४२७}$ ।

अर्थ—बारहवें मार्गमें उन चन्द्रोंका अन्तर एक लाख चार सौ इकतालीस योजन पंचानबे कला (१००४४१$\frac{९५}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१५६॥

१००३६८$\frac{१६४}{४२७}$ + ७२$\frac{३५८}{४२७}$ = १००४४१$\frac{९५}{४२७}$ यो० ।

चउदस-जुद-पंच-सया, जोयण-लक्खं कलाओ छव्वीसं ।
तेरस - पहम्मि दोण्हं, विच्चालं सिसिरकिरणाणं ॥१५७॥

१००५१४ । $\frac{२६}{४२७}$ ।

अर्थ—तेरहवें पथमें दोनों चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख पाँच सौ चौदह योजन और छब्बीस कला (१००५१४$\frac{२६}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१५७॥

१००४४१$\frac{९५}{४२७}$+७२$\frac{३५८}{४२७}$=१००५१४$\frac{२६}{४२७}$ यो० ।

लक्खं पंच-सयाणि, [1]छासीदी जोयणा कला ति-सया ।
चउसीदी चोद्दसमे, पहम्मि विच्चं सिदकराणं[2] ॥१५८॥

१००५८६ । $\frac{३८४}{४२७}$ ।

अर्थ—चौदहवें पथमें चन्द्रोंका अन्तराल एक लाख पाँच सौ छयासी योजन और तीन सौ चौरासी कला (१००५८६$\frac{३८४}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१५८॥

१००५१४$\frac{२६}{४२७}$+७२$\frac{३५८}{४२७}$=१००५८६$\frac{३८४}{४२७}$ यो० ।

लक्खं छच्च सयाणि, उणसट्ठी जोयणा कला ति-सया ।
पण्णरस - जुदा मग्गे, पण्णरसं अंतरं ताणं ॥१५९॥

१००६५९ । $\frac{३१५}{४२७}$ ।

अर्थ—पन्द्रहवें मार्गमें उनका अन्तर एक लाख छह सौ उनसठ योजन और तीन सौ पन्द्रह कला (१००६५९$\frac{३१५}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१५९॥

१००५८६$\frac{३८४}{४२७}$+७२$\frac{३५८}{४२७}$=१००६५९$\frac{३१५}{४२७}$ यो० ।

बाहिर-पहादु-ससिणो, आदिम-मग्गम्मि आगमण-काले ।
पुव्वप-मेलिद-खेत्तं, सोहसु जा चोद्दसादि-पढम-पहं ॥१६०॥

अर्थ—चन्द्रके बाह्य पथसे प्रथम पथकी ओर आते समय पूर्वमें मिलाए हुए क्षेत्रको उत्तरोत्तर कम करने पर चौदहवें पथसे प्रथम पथ तक दोनों चन्द्रोंका अन्तराल प्रमाण होता है ॥१६०॥

चन्द्रपथकी अभ्यन्तर वीथीकी परिधिका प्रमाण—

तिय-जोयण-लक्खाणि, पण्णरस-सहस्सयाणि उणणउदी ।
अब्भंतर - वीहीए, परिरय - रासिस्स परिसंखा ॥१६१॥

३१५०८९ ।

अर्थ—अभ्यन्तर वीथीके परिरय अर्थात् परिधिकी राशिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार नवासी (३१५०८९) योजन है ॥१६१॥

---

१. द. उणसट्ठी । २. द. ब. क. ज. सीदकराणं ।

विशेषार्थ :—गाथा १२१ में मेरु पर्वतसे चन्द्रकी अभ्यन्तर वीथीका जो अन्तर प्रमाण ४४८२० योजन कहा गया है वह एक पार्श्वभागका है। दोनों पार्श्वभागोंका अन्तर अर्थात् चन्द्रकी अभ्यन्तर वीथीका व्यास और सुमेरुका मूल विस्तार [(४४८२० × २) + १००००] = ९९६४० योजन है। इसकी परिधिका प्रमाण $\sqrt{९९६४०^{२} \times १०}$ = ३१५०८९ योजन प्राप्त हुआ। जो शेष बचे वे छोड़ दिये गये हैं।

परिधिके प्रक्षेपका प्रमाण—

सेसाणं वीहीणं, परिही-परिमाण-जाणण-णिमित्तं[1] ।
परिहि[2] खेवं भणिमो, गुरूवदेसाणुसारेणं ॥१६२॥

अर्थ :—शेष वीथियोंके परिधि-प्रमाणको जाननेके लिए गुरुके उपदेशानुसार परिधिका प्रक्षेप कहते हैं ॥१६२॥

चंद - पह - सूइ-वड्ढी - दुगुणं कादूण वग्गिदूणं च ।
दस - गुणिदे जं मूलं, [3]परिहि खेवो स णादव्वो ॥१६३॥

७२ । $\frac{३९८}{४२७}$ ।

अर्थ—चन्द्रपथोंकी सूची-वृद्धिको दुगुना करके उसका वर्ग करनेपर जो राशि उत्पन्न हो उसे दससे गुणा करके वर्गमूल निकालनेपर प्राप्त राशिके प्रमाण परिधिप्रक्षेप जानना चाहिए ॥१६३॥

तीसुत्तर-बे-सय-जोयणाणि तेदाल - जुत्त - सयमंसा ।
हारो चत्तारि सया, सत्तावीसेहिं अब्भहिया ॥१६४॥

२३० । $\frac{१४३}{४२७}$ ।

अर्थ—प्रक्षेपकका प्रमाण दो सौ तीस योजन और एक योजनके चार सौ सत्ताईस भागोंमेंसे एक सौ तेंतालीस भाग अधिक (२३० $\frac{१४३}{४२७}$ यो०) है ॥१६४॥

विशेषार्थ—चन्द्रपथ सूची-वृद्धिके प्रमाण का दूना (३६ $\frac{१९९}{४२७}$ × २) = $\frac{३११४२}{४२७}$ यो० होता है, अतः $\sqrt{(\frac{३११४२}{४२७})^{२} \times १०}$ = $\frac{९८३५३}{४२७}$ योजन प्राप्त हुए और ५३४३१ अवशेष बचे जो छोड़ दिए गये हैं। इसप्रकार $\frac{९८३५३}{४२७}$ = २३० $\frac{१४३}{४२७}$ योजन परिधि प्रक्षेप का प्रमाण प्राप्त हुआ।

चन्द्रको द्वितीय आदि पथोंकी परिधियोंका प्रमाण—

तिय-जोयण-लक्खाणि, पण्णरस-सहस्स-ति-सय-उणवीसा ।
तेदाल - जुद - सयंसा, बिदिय - पहे परिहि - परिमाणं ॥१६५॥

३१५३१९ । $\frac{१४३}{४२७}$ ।

---

१. द. ब. णमित्तं। २. द. ब. परिहिक्खेवं। ३. द. ब. क. ज. परिक्खेओ।

अर्थ—द्वितीय पथमें परिधिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार तीन सौ उन्नीस योजन और एक सौ तैंतालीस भाग (३१५३१९ $\frac{१४३}{४२७}$ यो०) प्रमाण है ॥१६५॥

विशेषार्थ—गाथा १६१ में प्रथम पथ की परिधिका प्रमाण ३१५०८९ योजन कहा गया है। इसमें परिधि प्रक्षेपका प्रमाण मिला देनेपर (३१५०८९ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$) = ३१५३१९ $\frac{१४३}{४२७}$ यो० द्वितीय पथकी परिधिका प्रमाण होता है। यही प्रक्रिया सर्वत्र जाननी चाहिए।

उणवण्णा पंच-सया, पण्णरस-सहस्स जोयण-ति-लक्खा।
छासीदी दु-सय-कला, सा परिही तदिय - वीहीए ॥१६६॥

३१५५४९ । $\frac{२८६}{४२७}$ ।

अर्थ—तृतीय वीथीकी वह परिधि तीन लाख पन्द्रह हजार पाँच सौ उनंचास योजन और दो सौ छयासी भाग-प्रमाण है ॥१६६॥

३१५३१९ $\frac{१४३}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१५५४९ $\frac{२८६}{४२७}$ यो० है।

सीदी सत्त-सयाणि, पण्णरस-सहस्स जोयण-ति-लक्खा।
दोण्हि कलाओ परिही, चंदस्स चउत्थ - वीहीए ॥१६७॥

३१५७८० । $\frac{२}{४२७}$ ।

अर्थ– चन्द्रकी चतुर्थ वीथीकी परिधि तीन लाख पन्द्रह हजार सात सौ अस्सी योजन और दो कला है ॥१६७॥

३१५५४९ $\frac{२८६}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१५७८० $\frac{२}{४२७}$ यो०।

तिय-जोयण-लक्खाणि, दहुत्तरा तह य सोलस-सहस्सा।
पणदाल - जुद - सयंसा, सा परिही पंचम - पहम्मि ॥१६८॥

३१६०१० । $\frac{१४५}{४२७}$ ।

अर्थ—पाँचवें पथमें वह परिधि तीन लाख सोलह हजार दस योजन और एक सौ पैंतालीस भाग है ॥१६८॥

३१५७८० $\frac{२}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१६०१० $\frac{१४५}{४२७}$ यो०।

चालीस दु-सय सोलस-सहस्स तिय-लक्ख जोयणा अंसा।
अट्ठासीदी दु - सया, छट्ठ - पहे होदि सा परिही ॥१६९॥

३१६२४० । $\frac{२८८}{४२७}$ ।

अर्थ—छठे पथमें वह परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ चालीस योजन और दो सौ अठासी भाग प्रमाण है ॥१६९॥

३१६०१० $\frac{१४५}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१६२४० $\frac{२८८}{४२७}$ यो० ।

सोलस-सहस्स चउ-सय, एक्कत्तरि-अहिय-जोयणा ति-लक्खा ।
चत्तारि कला सत्तम - पहम्मि परिही मयंकस्स ॥१७०॥

३१६४७१ । $\frac{४}{४२७}$ ।

अर्थ—चन्द्रके सातवें पथमें वह परिधि तीन लाख सोलह हजार चार सौ इकहत्तर योजन और चार कला अधिक है ॥१७०॥

३१६२४० $\frac{२८८}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१६४७१ $\frac{४}{४२७}$ यो० ।

सोलस-सहस्स सग-सय, एक्कब्भहिया य जोयण-ति-लक्खा ।
इक्कसयं सगताला, भागा अट्ठम - पहे परिही ॥१७१॥

३१६७०१ । $\frac{१४७}{४२७}$ ।

अर्थ—आठवें पथमें उस परिधिका प्रमाण तीन लाख सोलह हजार सात सौ एक योजन और एक सौ सैंतालीस भाग अधिक है ॥१७१॥

३१६४७१ $\frac{४}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१६७०१ $\frac{१४७}{४२७}$ यो० ।

सोलस-सहस्स-णव-सय-एक्कत्तीसादिरित्त-तिय-लक्खा ।
णउदी-जुद-दु-सय-कला, ससिस्स परिही णवम - मग्गे ॥१७२॥

३१६९३१ । $\frac{२९०}{४२७}$ ।

अर्थ—चन्द्रके नौवें मार्गमें वह परिधि तीन लाख सोलह हजार नौ सौ इकतीस योजन और दो सौ नब्बे कला प्रमाण है ॥१७२॥

३१६७०१ $\frac{१४७}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१६९३१ $\frac{२९०}{४२७}$ यो० ।

बासट्ठि-जुत्त-इगि-सय-[1]सत्तरस-सहस्स जोयणा ति-लक्खा ।
छ च्चिय कलाओ परिही, हिमंसुणो दसम - वोहीए ॥१७३॥

३१७१६२ । $\frac{६}{४२७}$ ।

---

१. ब. क. द. सत्तर ।

अर्थ—चन्द्रकी दसवीं वीथीकी परिधि तीन लाख सत्तरह हजार एक सौ बासठ योजन और छह कला प्रमाण है ॥१७३॥

३१६९३१ $\frac{२९०}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१७१६२ $\frac{६}{४२७}$ यो० ।

तिय-जोयण-लक्खाणि, सत्तरस[1]-सहस्स-ति-सय-बाणउदी ।
उणवण्ण - जुद - सदंसा, परिही एक्कारस - पहम्मि ॥१७४॥

३१७३९२ । $\frac{१४९}{४२७}$ ।

अर्थ—ग्यारहवें पथमें वह परिधि तीन लाख सत्तरह हजार तीन सौ बानबै योजन और एक सौ उनंचास भाग प्रमाण है ॥१७४॥

३१७१६२ $\frac{६}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१७३९२ $\frac{१४९}{४२७}$ यो० ।

बाबोसुत्तर-छस्सय, [2]सत्तरस-सहस्स-जोयण-ति-लक्खा ।
अट्ठोणिय-ति-सय-कला बारसम - पहम्मि सा परिही ॥१७५॥

३१७६२२ । $\frac{२९२}{४२७}$ ।

अर्थ—बारहवें पथमें वह परिधि तीन लाख सत्तरह हजार छह सौ बाईस योजन और आठ कम तीन सौ अर्थात् दो सौ बानबै कला प्रमाण है ॥१७५॥

३१७३९२ $\frac{१४९}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१७६२२ $\frac{२९२}{४२७}$ यो० ।

तेवण्णुत्तर-अड-सय-सत्तरस[3]-सहस्स-जोयण-ति-लक्खा ।
अट्ठ-कलाओ परिही, तेरसम - पहम्मि सिद - रुचिणो ॥१७६॥

३१७८५३ । $\frac{८}{४२७}$ ।

अर्थ—चन्द्रके तेरहवें पथमें वह परिधि तीन लाख सत्तरह हजार आठ सौ तिरेपन योजन और आठ कला प्रमाण है ॥१७६॥

३१७६२२ $\frac{२९२}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१७८५३ $\frac{८}{४२७}$ यो० ।

तिय-जोयण-लक्खाणि, अट्ठरस-सहस्सयाणि तेसीदी ।
इगिवण्ण-जुद-सयंसा, चोद्दसम - पहे इमा परिही ॥१७७॥

३१८०८३ । $\frac{१५१}{४२७}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. सत्तर । २. द. ब. सत्तर । ३. द. ब. सत्तर ।

अर्थ—चौदहवें पथमें वह परिधि तीन लाख अठारह हजार तेरासी योजन और एक सौ इक्यावन भाग प्रमाण है ।।१७७।।

३१७८५३ $\frac{८}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१८०८३ $\frac{१५१}{४२७}$ यो० ।

तिय-जोयण-लक्खाणि, अट्ठरस-सहस्स-ति-सय-तेरसया ।
बे-सय-चउणउदि-कला, बाहिर - मग्गम्मि सा परिही ।।१७८।।

३१८३१३ । $\frac{२९४}{४२७}$ ।

अर्थ—बाह्य (पन्द्रहवें) मार्गमें वह परिधि तीन लाख अठारह हजार तीन सौ तेरह योजन और दो सौ चौरानवे कला प्रमाण है ।।१७८।।

३१८०८३ $\frac{१५१}{४२७}$ + २३० $\frac{१४३}{४२७}$ = ३१८३१३ $\frac{२९४}{४२७}$ यो० ।

समानकालमें असमान परिधियोंके परिभ्रमण कर सकनेका कारण—

चंदपुरा सिग्घगदी, णिग्गच्छंता हुवंति पविसंता ।
मंदगदी असमाणा, परिहीओ भमंति सरिस-कालेणं ।।१७९।।

अर्थ—चन्द्र विमान बाहर निकलते हुए (बाह्यमार्गोंकी ओर जाते समय) शीघ्र-गतिवाले और (अभ्यन्तर मार्गकी ओर) प्रवेश करते हुए मन्दगतिवाले होते हैं, इसलिए वे समान कालमें ही असमान परिधियोंका भ्रमण करते हैं ।।१७९।।

चन्द्रके गगनखण्ड एवं उनका अतिक्रमण-काल—

एक्कं चेव य लक्खं, णवय सहस्साणि अड-सयाणं पि ।
परिहीणं हिमंसुणो, ते कादव्वा गयणखंडा ।।१८०।।

। १०९८०० ।

अर्थ—उन परिधियोंमें दो चन्द्रोंके कुल गगनखण्ड एक लाख नौ हजार आठ सौ (१०९८००) प्रमाण हैं ।।१८०।।

चन्द्रके वीथी-परिभ्रमणका काल—

गच्छदि [1]मुहुत्तमेक्के, अडसट्ठि-जुत्त-सत्तरस-सयाणि ।
णभ-खंडाणि ससिणो, तम्मि हिदे सव्व-गयण-खंडाणि ।।१८१।।

१७६८ ।

---

१. ब. मुहुत्तमैत्तमेक्के ।

बासट्ठि - मुहुत्ताणि, भागा तेवीस तस्स हाराइं ।
इगिवीसाहिय बिसदं, लद्धं तं गयण - खंडादो ॥१८२॥

६२ । $\frac{२३}{२२१}$ ।[1]

अर्थ—चन्द्र एक मुहूर्तमें एक हजार सात सौ अड़सठ गगनखण्डों पर जाता है। इसलिए इस राशिका समस्त गगनखण्डोंमें भाग देने पर उन गगनखण्डोंको पार करने का प्रमाण बासठ मुहूर्त और तेईस भाग प्राप्त होता है। इस तेईस अंशका भागहार दो सौ इक्कीस है ॥१८१–१८२॥

विशेषार्थ :- एक परिधि को दो चन्द्र पूरा करते हैं। दोनों चन्द्र सम्बन्धी सम्पूर्ण गगनखण्ड १०९८०० हैं। दोनों चन्द्र एक मुहूर्त में १७६८ गगनखण्डों पर भ्रमण करते हैं, अतः १०९८०० गगनखण्डोंका भ्रमणकाल प्राप्त करने हेतु सम्पूर्ण गगनखण्डोंमें १७६८ का भाग देनेपर (१०९८०० ÷ १७६८) = ६२$\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं।

चन्द्रके वीथी-परिभ्रमणका काल—

अब्भंतर-वीहीदो, बाहिर-पेरंत दोण्णि ससि-बिंबा ।
कमसो परिब्भमंते, बासट्ठि - मुहुत्तएहि अहिएहिं ॥१८३॥

६२ ।

अदिरेयस्स पमाणं, अंसा तेवीसया मुहुत्तस्स ।
हारो दोण्णि सयाणि, जुत्ताणि एक्कवीसेणं ॥१८४॥

$\frac{२३}{२२१}$ ।

अर्थ—दोनों चन्द्रबिम्ब क्रमशः अभ्यन्तर वीथीसे बाह्य-वीथी पर्यन्त बासठ मुहूर्तसे कुछ अधिक कालमें परिभ्रमण (पूरा) करते हैं। इस अधिकता का प्रमाण एक मुहूर्तके तेईस भाग और दो सौ इक्कीस हार रूप अर्थात् $\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त हैं ॥१८३–१८४॥

प्रत्येक वीथीमें चन्द्रके एक मुहूर्त-परिमित गमनक्षेत्रका प्रमाण—

सम्मेलिय बासट्ठिं, इच्छिय - परिहीए भागमवहरिदं ।
तस्सिं तस्सिं ससिणो, एक्क - मुहुत्तम्मि गदिमाणं ॥१८५॥

$\frac{१३७२५}{२२१}$ । ३१५०८९ । १ ।

अर्थ—समच्छेदरूपसे बासठको मिलाकर उसका इच्छित परिधिमें भाग देनेपर उस-उस वीथीमें चन्द्रका एक मुहूर्तमें गमन प्रमाण आता है ॥१८५॥

---

१. द. ब. ६२/२३ ।

विशेषार्थ—६२$\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्तों को समच्छेद विधानसे मिलाने पर अर्थात् भिन्न तोड़नेपर '$\frac{१३७२५}{२२१}$' मुहूर्त होते हैं। इसका चन्द्रको प्रथम वीथीकी परिधिके प्रमाणमें भाग देनेपर—

($\frac{३१५०८९}{१}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$)=५०७३$\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन अर्थात् २०२९४२५६$\frac{४६६}{५४९}$ मील प्राप्त होते हैं।

चन्द्रका यह गमन क्षेत्र एक मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनिट का है ! इसो गमन क्षेत्र में ४८ का भाग देने से चन्द्र का एक मिनिट का गमन क्षेत्र (२०२९४२५६$\frac{४६६}{५४९}$ ÷ ४८)=४२२७९७$\frac{३१}{८७८४}$ मील होता है। अर्थात् प्रथम मार्गमे स्थित चन्द्र एक मिनिटमें ४२२७९७$\frac{३१}{८७८४}$ मील गमन करता है।

पंच-सहस्सं अहिया, तेहत्तरि-जोयणाणि तिय-कोसा।
लद्धं[1] मुहुत्त - गमणं, पढम - पहे सोदकिरणस्स ॥१८६॥

५०७३। को ३।

अर्थ—प्रथम पथमें चन्द्रके एक मुहूर्त (४८ मिनिट) के गमन क्षेत्रका प्रमाण पाँच हजार तिहत्तर योजन और तीन कोस प्राप्त होता है ॥१८६॥

विशेषार्थ—चन्द्रका प्रथम वीथीका गमनक्षेत्र गाथामें जो ५०७३ यो० और ३ कोस कहा गया है। वह स्थूलतासे कहा है। यथार्थ में इसका प्रमाण [$\frac{३१५०८९}{१}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५०७३ योजन, २ कोस, ५१३ धनुष, ३ हाथ और कुछ अधिक ५ अंगुल है।

सत्तत्तरि सविसेसा, पंच-सहस्साणि जोयणा कोसा।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, चंदस्स दुइज्ज - वीहीए ॥१८७॥

५०७७। को १।

अर्थ—द्वितीय वीथीमें चन्द्रका मुहूर्तकाल-परिमित गमनक्षेत्र पाँच हजार सतत्तर (५०७७) योजन और एक कोस प्राप्त होता है ॥१८७॥

विशेषार्थ—द्वितीय वीथीमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र [३१५३१९$\frac{१४३}{४२७}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५०७७ योजन, १ कोस, १८४ धनुष, २ हाथ और कुछ कम १३ अंगुल प्रमाण है।

जोयण-पंच-सहस्सा, सीदी-जुत्ता य तिण्णि कोसाणि।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, चंदस्स तइज्ज - वीहीए ॥१८८॥

५०८०। को ३।

अर्थ—तृतीय वीथीमें चन्द्रका मुहूर्त-परिमित गमनक्षेत्र पाँच हजार अस्सी (५०८०) योजन और तीन कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१८८॥

---

१. द. ज. अद्धं।

विशेषार्थ—तृतीय पथमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र [३१५५४९३६६ ÷ ३१७२५] ५०८० योजन, ३ कोस, १८५४ धनुष, ३ हाथ और कुछ अधिक १० अंगुल प्रमाण है ।।

पंच-सहस्सा जोयण, चुलसीदी तह दुवेहिया-कोसा ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, चंदस्स चउत्थ - मग्गम्मि ।।१८९।।

५०८४ । को २ ।

अर्थ—चतुर्थ मार्गमें चन्द्रका मुहूर्त-परिमित गमन पाँच हजार चौरासी (५०८४) योजन तथा दो कोस प्रमाण प्राप्त होता है ।।१८९।।

विशेषार्थ—चतुर्थ पथमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र [३१५७८०८२३ ÷ ३१७२५] ५०८४ योजन, २ कोस, १५२६ धनुष, १ हाथ और कुछ अधिक ३ अंगुल है ।

अट्ठासीदी अहिया, पंच-सहस्सा य जोयणा कोसो ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, पंचम - मग्गे मियंकस्स ।।१९०।।

५०८८ । को १ ।

अर्थ—पाँचवें मार्गमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार अठासी (५०८८) योजन और एक कोस प्रमाण प्राप्त होता है ।।१९०।।

विशेषार्थ—पाँचवें मार्गमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र [३१६०१०८४५ ÷ ३१७२५] ५०८८ योजन, १ कोस, ११९७ धनुष, ० हाथ और कुछ अधिक १० अंगुल प्रमाण प्राप्त होता है ।

बाणउदि-उत्तराणि, पंच-सहस्साणि जोयणाणि च ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं हिमंसुणो छट्ठ - मग्गम्मि ।।१९१।।

५०९२ ।

अर्थ—छठे मार्गमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार बानबे (५०९२) योजन प्रमाण प्राप्त होता है ।।१९१।।

विशेषार्थ—छठे मार्गमें गमन क्षेत्रका प्रमाण [३१६२४०२६६ ÷ ३१७२५] ५०९२ योजन, ० कोस, ३ हाथ और कुछ अधिक १८ अंगुल है ।

पंचेव सहस्साइं, पणणउदी जोयणा ति-कोसा य ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, सीदंसुणो सत्तम - पहम्मि ।।१९२।।

५०९५ । को ३ ।

अर्थ—सातवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार पंचानबे योजन और तीन कोस प्रमाण प्राप्त होता है ।।१९२।।

विशेषार्थ—सातवें पथमें चन्द्रका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र [३१६४७१८२० ÷ ३१७२५] ५०९५ योजन, ३ कोस, ५३८ धनुष, ३ हाथ और कुछ अधिक १ अंगुल है ।।

पण-संख-सहस्साणि, णवणउदी जोयणा दुवे कोसा ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, अट्ठम - मग्गे [1]हिमरुचिस्स ॥१९३॥

५०९९ । को २ ।

अर्थ—आठवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त गमन पाँच हजार निन्यानबे योजन और दो कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९३॥

विशेषार्थ—आठवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्त में [३१६७०१ $\frac{१४६}{२२१}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५०९९ योजन, २ कोस, २०९ धनुष, २ हाथ और कुछ कम ९ अंगुल गमन करता है।

पंचेव सहस्साणि, ति-उत्तरं जोयणाणि एक्क-सयं ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, णवम - पहे तुहिणरासिस्स ॥१९४॥

। ५१०३ ।

अर्थ—नौवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ तीन योजन प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९४॥

विशेषार्थ—नौवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्त (४८ मिनिट) में [३१६९३१ $\frac{३१०}{२२१}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५१०३ योजन, ० कोस, १८८० धनुष, १ हाथ और कुछ अधिक १६ अंगुल गमन करता है।

पंच-सहस्सा छाहियमेक्क-सयं जोयणा ति-कोसा य ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, दसम - पहे हिममयूखाणं ॥१९५॥

५१०६ । को ३ ।

अर्थ—दसवें पथमें चन्द्रोंका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ छह योजन और तीन कोस प्रमाण पाया जाता है ॥१९५॥

विशेषार्थ—दसवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१७१६२ $\frac{४६}{२२१}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५१०६ योजन, ३ कोस, १५५१ धनुष और कुछ कम १ हाथ गमन करता है।

पंच-सहस्सा दस-जुद-एक्क-सया जोयणा दुवे कोसा ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, एक्करस - पहे ससंकस्स ॥१९६॥

५११० । को २ ।

अर्थ—ग्यारहवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ दस योजन और दो कोस प्रमाण प्राप्त होता है ॥१९६॥

---

१. ब. हिमरविस्स, ब हिमरसिविस ।

विशेषार्थ—ग्यारहवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१७३९२ $\frac{१४६}{४२७}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५११० योजन, २ कोस, १२२२ धनुष, ० हाथ और कुछ कम ७ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।

जोयण-पंच-सहस्सा, एक्क-सयं चोद्दसुत्तरं कोसो ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, बारसम - पहे सिदंसुस्स ।।१९७।।

५११४ । को १ ।

अर्थ—बारहवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ चौदह योजन और एक कोस प्रमाण प्राप्त होता है ।।१९७।।

विशेषार्थ—बारहवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१७६२२ $\frac{२१३}{४२७}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५११४ योजन, १ कोस, ८९२ धनुष, ३ हाथ और कुछ अधिक १४ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।।

अट्ठारसुत्तर - सयं, पंच - सहस्साणि जोयणाणि च ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, तेरस - मग्गे हिमंसुस्स ।।१९८।।

५११८ ।

अर्थ—तेरहवें मार्गमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ अठारह योजन प्रमाण प्राप्त होता है ।।१९८।।

विशेषार्थ—तेरहवें पथमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१७८५३ $\frac{२८०}{४२७}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५११८ योजन, ० कोस, ५६३ धनुष, २ हाथ और कुछ अधिक २१ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।

पंच-सहस्सा इगिसयमिगिवीस-जुदं च जोयण ति-कोसा ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, चोद्दसम - पहम्मि चंदस्स ।।१९९।।

५१२१ । को ३ ।

अर्थ—चौदहवें पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन क्षेत्र पाँच हजार एक सौ इक्कीस योजन और तीन कोस प्रमाण प्राप्त होता है ।।१९९।।

विशेषार्थ—चौदहवे मार्ग में चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१८०८३ $\frac{३४७}{४२७}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५१२१ योजन, ३ कोस, २३४ धनुष, २ हाथ और कुछ अधिक ४ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।

पंच-सहस्सेक्क-सया, पणुवीसं जोयणा दुवे कोसा ।
लद्धं मुहुत्त - गमणं, सीदंसुणो बाहिर - पहम्मि ।।२००।।

५१२५ । को २ ।

अर्थ—बाह्य पथमें चन्द्रका मुहूर्त-गमन पाँच हजार एक सौ पच्चीस योजन और दो कोस प्रमाण प्राप्त होता है ।।२००।।

विशेषार्थ—बाह्य (पन्द्रहवें) मार्गमें चन्द्र एक मुहूर्तमें [३१८३१३ $\frac{४१४}{४२७}$ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$] ५१२५ योजन, १ कोस, १८९१ धनुष, २ हाथ और कुछ कम २२ अंगुल प्रमाण गमन करता है ।।

चन्द्रके अन्तर-प्रमाण आदिका विवरण—

वीथी संख्या	प्रत्येक वीथीमें मेरुसे चन्द्रका अन्तर (योजनोंमें)	प्रत्येक वीथीमें चन्द्रका चन्द्रसे अन्तर (योजनोंमें)	चन्द्रकी प्रत्येक वीथीकी परिधि का प्रमाण (योजनोंमें)	प्रत्येक वीथीमें चन्द्रका एक मुहूर्त (४८ मिनिट) का गमन-क्षेत्र: योजन	कोस	धनुष	हाथ	अंगुल
१.	४४८२० यो०	९९६४० यो०	३१५०८९ यो०	५०७३	२	५१३	३	कुछ अ० ५
२.	४४८५६ १७९/४२७ ,,	९९७१२ ३५८/४२७ ,,	३१५३१९ १४५/४२७ ,,	५०७७	१	१८४	२	कुछ कम १३
३.	४४८९२ ३५८/४२७ ,,	९९७८५ २८९/४२७ ,,	३१५५४९ २८९/४२७ ,,	५०८०	३	१८५४	३	कुछ अ. १०
४.	४४९२९ ११०/४२७ ,,	९९८५८ २२०/४२७ ,,	३१५७८० २/४२७ ,,	५०८४	२	१५२६	१	कु० अ० ३
५.	४४९६५ २८९/४२७ ,,	९९९३१ १५१/४२७ ,,	३१६०१० १४५/४२७ ,	५०८८	१	११९७	०	कु० अ० १०
६	४५००२ ४१/४२७ ,,	१००००४ ८२/४२७ ,,	३१६२४० २८८/४२७ ,,	५०९२	०	०	३	कु० अ० १८
७.	४५०३८ २२०/४२७ ,,	१०००७७ १३/४२७ ,,	३१६४७१ ४/४२७ ,,	५०९५	३	५३८	३	कु० अ० १
८.	४५०७४ ३९९/४२७ ,,	१००१४९ ३७१/४२७ ,,	३१६७०१ १४७/४२७ ,,	५०९९	२	२०९	२	कुछ कम ९
९.	४५१११ १५१/४२७ ,,	१००२२२ ३०२/४२७ ,,	३१६९३१ २९०/४२७ ,,	५१०३	०	१८८०	१	कु० अ० १६
१०.	४५१४७ ३३०/४२७ ,,	१००२९५ २३३/४२७ ,,	३१७१६२ ६/४२७ ,,	५१०६	३	१५५१	१	कु० कम ०
११.	४५१८४ ८२/४२७ ,,	१००३६८ १६४/४२७ ,,	३१७३९२ १४९/४२७ ,,	५११०	२	१२२२	०	कु० कम ७
१२.	४५२२० २६१/४२७ ,,	१००४४१ ९५/४२७ ,,	३१७६२२ २९२/४२७ ,,	५११४	१	८९२	३	कु. अ. १४
१३.	४५२५७ १३/४२७ ,,	१००५१४ २६/४२७ ,,	३१७८५३ ९/४२७ ,,	५११८	०	५६३	२	कु. अ. २१
१४.	४५२९३ १९२/४२७ ,,	१००५८६ ३८४/४२७ ,,	३१८०८३ १५१/४२७ ,,	५१२१	३	२३४	२	कु. अ. ४
१५.	४५३२९ ३७१/४२७ ,,	१००६५९ ३१५/४२७ ,,	३१८३१३ २९४/४२७ ,,	५१२५	१	१९०१	२	कु० कम २२

राहु विमानका वर्णन—

ससहर-णयर-तलादो, चत्तारि पमाण-अंगुलाणं पि ।
हेट्ठा गच्छिय होंति हु, राहु विमाणस्स धयदंडा ॥२०१॥

अर्थ—चन्द्रके नगरतलसे चार प्रमाणांगुल नीचे जाकर राहु-विमानके ध्वज-दण्ड होते हैं ॥२०१॥

विशेषार्थ—एक प्रमाणांगुल ५०० उत्सेधांगुलों के बराबर होता है । (ति० प० प्रथम अ० गाथा १०७-१०८ के) इस नियमके अनुसार ४ प्रमाणांगुलोंके धनुष आदि बनाने पर ($\frac{४×५००}{२४×४}$) = २० धनुष, ३ हाथ और ८ अंगुल प्राप्त होते हैं । चन्द्र-विमान तलसे राहु विमान का ध्वज दण्ड २० धनुष, ३ हाथ और ८ अंगुल नीचे है ।

ते राहुस्स विमाणा, अंजणवण्णा अरिट्ठ-रयणमया ।
किंचूणं जोयणयं, विक्खंभ - जुदा तदद्ध - बहलत्तं ॥२०२॥

अर्थ—अरिष्ट रत्नोंसे निर्मित अंजनवर्णवाले राहुके वे विमान कुछ कम एक योजन प्रमाण विस्तारसे संयुक्त और विस्तारसे अर्ध बाहुल्यवाले हैं ॥२०२॥

पण्णासाहिय-दु-सया, कोदंडा राहु-णयर-बहलत्तं ।
एवं लोय - विणिच्छय - कत्तायरिओ परूवेंति ॥२०३॥

पाठान्तरं ।

अर्थ—राहु-नगरका बाहल्य दो सौ पचास धनुष-प्रमाण है; ऐसा लोकविनिश्चय-कर्ता आचार्य प्ररूपण करते हैं ॥२०३॥

पाठान्तर ।

चउ-गोउर-जुत्तेसु य, जिणमंदिर-मंडिदेसु णयरेसुं ।
तेसुं बहु - परिवारा, राहू णामेण होंति सुरा ॥२०४॥

अर्थ—चार गोपुरोंसे संयुक्त और जिनमन्दिरोंसे सुशोभित उन नगरोंमें बहुत परिवार सहित राहु नामक देव होते हैं ॥२०४॥

राहुओंके भेद—

राहूण पुर-तलाणं, दु-वियप्पाणि हवंति गमणाणि ।
दिण-पव्व-वियप्पेहिं, दिणराहू ससि-सरिच्छ-गई ॥२०५॥

अर्थ—दिन और पर्वके भेदसे राहुओंके पुरतलोंके गमन दो प्रकार होते हैं । इनमेंसे दिन-राहुकी गति चन्द्रके सदृश होती है ॥२०५॥

पूर्णिमाकी पहिचान—

जम्सि मग्गे ससहर-बिंबं दिसेदि य तेसु परिपुण्णं ।
सो होदि पुण्णिमक्खो, दिवसो इह माणुसे लोए ॥२०६॥

अर्थ—उनमेंसे जिस मार्गमें चन्द्र-बिम्ब परिपूर्ण दिखता है, यहाँ मनुष्य लोकमें वह पूर्णिमा नामक दिवस होता है ॥२०६॥

कृष्ण-पक्ष होनेका कारण—

तव्वीहीदो लंघिय, दीवस्स मारुद-हुदास-दिसादो ।
तदणंतर - वीहीए, एंति हु दिणराहु-ससि-बिंबा ॥२०७॥

अर्थ—उस (अभ्यन्तर) वीथीको लांघकर दिनराहु और चन्द्र-बिम्ब जम्बूद्वीपकी वायव्य और आग्नेय दिशासे तदनन्तर (द्वितीय) वीथीमें आते हैं ॥२०७॥

ताधे ससहर-मंडल-सोलस-भागेसु एक्क - भागंसो ।
आवरमाणो दीसदि, राहू - लंघण - विसेसेणं ॥२०८॥

अर्थ—द्वितीय वीथीको प्राप्त होनेपर राहुके गमन विशेषसे चन्द्रमण्डलके सोलह भागोंमेंसे एक भाग आच्छादित दिखता है ॥२०८॥

अणल-दिसाए लंघिय, ससिबिंबं एदि वीहि-अद्धंसो ।
सेसद्धं खु ण गच्छदि, अवर-ससि-भमिद-हेदूदो ॥२०९॥

अर्थ—पश्चात् चन्द्रबिम्ब आग्नेय दिशासे लांघकर वीथीके अर्ध भागमें जाता है, द्वितीय चन्द्रसे भ्रमित होनेके कारण शेष अर्ध-भागमें नहीं जाता है (क्योंकि दो चन्द्र मिलकर एक परिधि को पूरा करते हैं) ॥२०९॥

तदणंतर-मग्गाइं, णिच्चं लंघंति राहु-ससि-बिंबा ।
पवणग्गि - दिसाहिंतो, एवं सेसासु वीहीसुं ॥२१०॥

अर्थ—इसीप्रकार शेष वीथियोंमें भी राहु और चन्द्रबिम्ब वायव्य एवं आग्नेय दिशासे नित्य तदनन्तर मार्गोंको लांघते हैं ॥२१०॥

ससि-बिंबस्स दिणं पडि, एक्केक्क-पहम्मि भागमेक्केक्कं ।
पच्छादेदि हु राहू, पण्णरस - कलाउ परियंतं ॥२११॥

अर्थ—राहु प्रतिदिन एक-एक पथमें पन्द्रह कला पर्यन्त चन्द्र-बिम्बके एक-एक भागको आच्छादित करता है ॥२११॥

अमावस्याकी पहिचान—

इय एक्केक्क-कलाए, आवरिदाए खु राहु - बिंबेणं ।
चंदेक्क-कला मग्गे, जस्सि दिस्सेदि सो य अमवस्सा ॥२१२॥

अर्थ—इसप्रकार राहु-बिम्बके द्वारा एक-एक करके कलाओंके आच्छादित हो जानेपर जिस मार्गमें चन्द्रकी एक ही कला दिखती है वह अमावस्या दिवस होता है ॥२१२॥

चान्द्र-दिवसका प्रमाण—

एक्कत्तीस - मुहुत्ता, अदिरेगो चंद-वासर-पमाणं ।
तेवीसंसा हारो, चउ - सय - बादाल - मेत्ता य ॥२१३॥

३१ । $\frac{२३}{४४२}$ ।

अर्थ—चान्द्र दिवसका प्रमाण इकतीस मुहूर्त और एक मुहूर्त के चार सौ बयालीस भागों-मेंसे तेईस भाग अधिक है ॥२१३॥

विशेषार्थ—चन्द्रकी अभ्यन्तर वीथीकी परिधि ३१५०८९ योजन है, जिसे दो चन्द्र ६२$\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्तमें पूर्ण करते हैं अतः एक चन्द्रका दिवस प्रमाण (६२$\frac{२३}{२२१}$ ÷ २ =) ३१$\frac{२३}{४४२}$ मुहूर्त होता है ।

अथवा

एक चन्द्रके कुल गगनखण्ड ५४९०० हैं और चन्द्र एक मुहूर्तमें १७६८ गगनखण्डोंपर भ्रमण करता है अतः सम्पूर्ण गगनखण्डोंपर भ्रमण करनेमें उसे (५४९००÷१७६८=) ३१$\frac{२३}{४४२}$ मुहूर्त लगेंगे । यही उसका दिवस प्रमाण है ।

१५ दिन पर्यन्त चन्द्र कलाकी प्रतिदिनकी हानिका प्रमाण—

पडिवाए वासरादो, वीहिं पडि ससहरस्स सो राहू ।
एक्केक्क - कलं मुंचदि, पुण्णिमयं जाव लंघणदो ॥२१४॥

अर्थ—वह राहु प्रतिपद् दिनसे एक-एक वीथीमें गमन विशेष द्वारा पूर्णिमा पर्यन्त चन्द्रकी एक-एक कला को छोड़ता है ॥२१४॥

विशेषार्थ—चन्द्र विमानका विस्तार $\frac{५६}{६१}$ योजन है और उसके भाग १६ हैं, अतः जब १६ भागोंका विस्तार $\frac{५६}{६१}$ यो० है तब एक भागका विस्तार ($\frac{५६}{६१}$ ÷ १६ =) $\frac{७}{१२२}$ योजन होता है अर्थात् राहु प्रतिदिन प्रत्येक परिधिमें $\frac{७}{१२२}$ यो० (२२९$\frac{३१}{६१}$ मील) व्यास वाली एक-एक कला को छोड़ता है ।

मतान्तरसे कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष होनेके कारण—

अहवा ससहर-बिंबं, पण्णरस-दिणाइ तस्सहावेणं ।
कसणाभं सुक्कलाभं, तेत्तियमेत्ताणि परिणमदि ।।२१५।।

अर्थ—अथवा, चन्द्र-बिम्ब अपने स्वभावसे ही पन्द्रह दिनोंतक कृष्ण कान्ति स्वरूप और इतने ही दिनों तक शुक्ल कान्ति स्वरूप परिणमता है ।।२१५।।

चन्द्र ग्रहणका कारण एवं काल—

पुह पुह ससि-बिंबाणि, छम्मासेसु च पुण्णिमंतम्मि ।
छादंति पव्व - राहू, णियमेणं गदि - विसेसेहिं ।।२१६।।

अर्थ—पर्व-राहु नियमसे गति-विशेषके कारण छह मासोंमें पूर्णिमाके अन्तमें पृथक्-पृथक् चन्द्र-बिम्बोंको आच्छादित करते हैं ।।२१६।।

विशेषार्थ—कुछ कम एक योजन विस्तारवाले राहु विमान चन्द्र विमानसे चार प्रमाणांगुल (२० धनुष, ३ हाथ और ८ अंगुल) नीचे हैं। इनमेंसे पर्वराहु अपनी गति विशेषके कारण पूर्णिमाके अन्तमें जो चन्द्र विमानोंको आच्छादित करते हैं तब चन्द्र ग्रहण होता है ।

सूर्यकी संचार भूमि का प्रमाण एवं अवस्थान—

जंबूदीवम्मि दुवे, दिवायरा ताण एक्क - चारमही ।
रविबिंबाहिय-पण-सय-दहुत्तरा जोयणाणि तव्वासो ।।२१७।।

५१० । $\frac{48}{61}$ ।

अर्थ—जम्बूद्वीपमें दो सूर्य हैं। उनकी चार-पृथिवी एक ही है। इस चार-पृथिवीका विस्तार सूर्य बिम्बके विस्तार ($\frac{48}{61}$ यो०) से अधिक पांच सौ दस (५१०$\frac{48}{61}$) योजन प्रमाण है ।।२१७।।

सीदी - जुदमेक्क - सयं, जंबूदीवे चरंति मत्तंडा ।
तीसुत्तर-ति-सयाणि, दिणयर-बिंबाहियाणि लवणम्मि ।।२१८।।

१८० । ३३० । $\frac{48}{61}$ ।

अर्थ—सूर्य एक सौ अस्सी (१८०) योजन जम्बूद्वीपमें और दिनकर बिम्ब (के विस्तार $\frac{48}{61}$ यो०) से अधिक तीनसौ तीस (३३०) योजन लवणसमुद्रमें गमन करते हैं ।।२१८।।

सूर्य-वीथियोंका प्रमाण, विस्तार आदि और अन्तरालका वर्णन—

चउसीदी-अहिय-सयं, दिणयर-मग्गाओ[1] होंति एदाणं ।
बिब - समाणा वासा, एक्केक्काणं तदद्ध - बहलत्तं ॥२१९॥

१८४ । $\frac{४८}{६१}$ । $\frac{२४}{६१}$ ।

अर्थ—सूर्यकी गलियाँ एक सौ चौरासी (१८४) हैं । इनमेंसे प्रत्येक गलीका विस्तार बिम्ब-विस्तार सदृश $\frac{४८}{६१}$ योजन और बाहल्य इससे आधा ($\frac{२४}{६१}$ योजन) है ॥२१९॥

तेसीदी-अहिय-सयं, दिणेस-वीहीण होदि विच्चालं ।
एक्क-पहम्मि चरंते, दोण्णि पि य भाणु-बिंबाणि ॥२२०॥

अर्थ—सूर्यकी (१८४) गलियोंमें एक सौ तेरासी (१८३) अन्तराल होते हैं । दोनों ही सूर्य-बिम्ब एक पथमें गमन करते हैं ॥२२०॥

सूर्यकी प्रथम वीथीका और मेरुके बीच अन्तर-प्रमाण—

सट्ठि-जुदं ति-सयाणि, मंदर-रुंदं च जंबुदीवस्स ।
वासे सोहिय दलिदे, सूरादिम-पह-सुरद्दि-विच्चालं ॥२२१॥

३६० । ४४८२० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे तीन सौ साठ (३६०) योजन और मेरुके विस्तारको घटाकर शेषको आधा करनेपर सूर्यके प्रथम पथ एवं मेरुके मध्यका अन्तरालप्रमाण प्राप्त होता है ॥२२१॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका वि० १००००० यो० — (१८० × २) = ९९६४० यो० । ९९६४० — १००००० मेरु वि० = ८९६४०; ८९६४० ÷ २ = ४४८२० यो० प्रथम पथ और मेरुके बीचका अन्तराल । विशेषके लिए इसी अ० की गाथा १२१ का विशेषार्थ द्रष्टव्य है ।

सूर्यकी ध्रुव राशिका प्रमाण—

एक्कत्तीस-सहस्सा, एक्क-सयं जोयणाणि अडवण्णा ।
इगिसट्ठीए भजिदे, धुव - रासी होदि दुमणीणं ॥२२२॥

$\frac{३११५८}{६१}$ ।

अर्थ—इकतीस हजार एक सौ अट्ठावन योजनोंमें इकसठका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना ($\frac{३११५८}{६१}$ या ५१० $\frac{४८}{६१}$ यो०) सूर्योंकी ध्रुवराशिका प्रमाण होता है ॥२२२॥

---

[1] द बिबाओ, ब. बीहीओ ।

सूर्य-पथोंके बीच अन्तरका प्रमाण—

विवसयर - बिंब - रुंदं, चउसीदीसमहिय - सएणं ।
धुवरासिस्स य मज्झे, सोहेज्जसु तत्थ अवसेसं ॥२२३॥

तेसीदि-जुद-सदेणं, भजिदव्वं तम्मि होदि जं लद्धं ।
वीहिं पडि णादव्वं, तरणीणं लंघण - पमाणं ॥२२४॥

२ ।

अर्थ—ध्रुवराशिमेंसे एक सौ चौरासी (१८४) से गुणित सूर्य-बिम्बका विस्तार घटा देनेपर जो शेष रहे उसमें एक सौ तेरासीका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो, उतना सूर्योंका प्रत्येक वीथीके प्रति लंघनका प्रमाण अर्थात् एक वीथीसे दूसरी वीथीके बीचका अन्तराल जानना चाहिए ॥२२३-२२४॥

विशेषार्थ—ध्रुवराशिका प्रमाण $\frac{३११५८}{६१}$ (५१०$\frac{४८}{६१}$) योजन, सूर्य-बिम्बका विस्तार $\frac{४८}{६१}$ योजन, सूर्यकी वीथियाँ १८४ और वीथियोंके अन्तराल १८३ हैं। सूर्यकी एक वीथीका विस्तार $\frac{४८}{६१}$ यो० है तब १८४ वीथियोंका विस्तार कितना होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{४८}{६१} \times \frac{१८४}{१} =$ $\frac{८८३२}{६१}$ योजन प्राप्त हुए । इसे ध्रुवराशि (चारक्षेत्र) के प्रमाणमेंसे घटा देनेपर ($\frac{३११५८}{६१} - \frac{८८३२}{६१}$) $= \frac{२२३२६}{६१}$ योजन १८४ गलियोंका अन्तराल प्राप्त होता है। १८४ गलियोंके अन्तराल १८३ ही होते हैं अतः सम्पूर्ण गलियोंके अन्तर-प्रमाणमें १८३ का भाग देनेपर एक गलीसे दूसरी गलीके बीचका अन्तर ($\frac{२२३२६}{६१} \div १८३$) = २ योजन प्राप्त होता है ।

सूर्यके प्रतिदिन गमनक्षेत्रका प्रमाण—

तम्मेत्तं पह-विच्चं, तं माणं दोण्णि जोयणा होंति ।
तस्सि रवि - बिंब - जुदे, पह - सूचीओ दिणिदस्स ॥२२५॥

$\frac{१७०}{६१}$ ।[1]

अर्थ—प्रत्येक वीथीके उतने अन्तरालका प्रमाण दो योजन है । जिसमें सूर्यबिम्बका विस्तार ($\frac{४८}{६१}$ यो०) मिला देनेपर सूर्यके पथ-सूचीका प्रमाण २$\frac{४८}{६१}$ योजन अथवा $\frac{१७०}{६१}$ योजन होता है अर्थात् सूर्यको प्रतिदिन एक गली पार कर दूसरी गलीमें प्रवेश करने तक २$\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण गमन करना पड़ता है ॥२२५॥

---

१. द. ब. क. ज. $\frac{१६३}{६१}$ ।

मेरुसे वीथियोंका अन्तर प्राप्त करनेका विधान—

पढम-पहादो रविणो, बाहिर-मग्गम्मि गमण-कालम्मि ।
पडि - मग्ग - मेत्तियं खिव - विच्चालं मंदरक्काणं ॥२२६॥

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथसे (द्वितीयादि) बाह्य वीथियोंकी ओर जाते समय प्रत्येक मार्गमें इतना ($\frac{१७०}{६१}$ यो०) मिलाते जाने पर मेरु और सूर्यके बीचका अन्तर प्राप्त होता है ॥२२६॥

अहवा—

रूऊणं इट्ठ - पहं, पह-सूचि-चएण गुणिय मेलवयं ।
तवणादिम-पह-मंदर-विच्चाले होदि इट्ठ - विच्चालं ॥२२७॥

अथवा, एक कम इष्ट पथको पथसूची चयसे गुणा करके प्राप्त प्रमाणको सूर्यके आदि (प्रथम) पथ और मेरुके बीच जो अन्तराल है उसमें मिला देनेपर इष्ट अन्तरालका प्रमाण होता है ॥२२७॥

विशेषार्थ—यथा—मेरुसे पाँचवें पथका अन्तराल प्राप्त करनेके लिए—

इष्ट पथ ५ — १ = ४; (पथसूचीचय $\frac{१७०}{६१}$) × ४ = $\frac{६८०}{६१}$ = ११$\frac{९}{६१}$; ४४८२० + ११$\frac{९}{६१}$ = ४४८३१$\frac{९}{६१}$ योजन अन्तर मेरुसे पाँचवीं वीथीका है ।

प्रथमादि पथोंमें मेरुसे सूर्योंका अन्तर—

चउदाल-सहस्साणि, अट्ठ-सया जोयणाणि वीसं पि ।
एवं पढम-पह-ट्ठिद-दिणयर - कणयद्दि - विच्चालं ॥२२८॥

४४८२० ।

अर्थ—प्रथम पथमें सूर्य और मेरुके बीच चवालीस हजार आठ सौ बीस (४४८२०) योजन प्रमाण अन्तराल है ॥२२८॥

चउदाल-सहस्सा अड-सयाणि बावीस [illegible]-जुदा ।
जोयणया बिदिय-पहे, तिग्मंसु सुमेरु - विच्चालं ॥२२९॥

४४८२२ । $\frac{४८}{६१}$ ।[1]

अर्थ—द्वितीय पथमें सूर्य और मेरुके बीच सूर्यबिम्ब सहित चवालीस हजार आठ सौ बाईस (४४८२२$\frac{४८}{६१}$) योजन-प्रमाण अन्तराल है ॥२२९॥

---

१. द. ४४८२२ । ब. ४४८२२ । ४८.

चउदाल-सहस्सा अड-सयाणि पणुवीस जोयणाणि कला।
पणुतीस तइज्ज - पहे, पतंग - हेमद्दि - विच्चालं ॥२३०॥

४४८२५ । $\frac{३५}{६१}$ ।

एवमादि-मज्झिम-पह-परियंतं णेदव्वं ।

अर्थ—तृतीय पथमें सूर्य और सुवर्ण पर्वतके बीच चवालीस हजार आठ सौ पच्चीस योजन और पैंतीस कला (४४८२५$\frac{३५}{६१}$ यो०) प्रमाण अन्तराल है ॥२३०॥

इसप्रकार आदि (प्रथम पथ) से लेकर मध्यम ($\frac{१८३}{२}$) मार्ग पर्यन्त जानना चाहिए।

मध्यम पथमें सूर्य और मेरुका अन्तर—

पंचदाल-सहस्सा, पणहत्तरि जोयणाणि अदिरेका ।
मज्झिम-पह-ठिद-दिवमणि-चामीयर-सेल-विच्चालं ॥२३१॥

४५०७५ ।

एवं दुचरिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—मध्यम पथमें स्थित सूर्य और सुवर्णशैलके बीचका अन्तराल पचहत्तर योजन अधिक पैंतालीस हजार है ॥२३१॥

इसप्रकार द्विचरम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—मध्यम वीथीमें स्थित सूर्यका मेरु पर्वतसे अन्तर-प्रमाण ४४८२० + ($\frac{१७०}{६१}$ × $\frac{१८३}{२}$) = ४५०७५ योजन है।

बाह्य पथ स्थित सूर्यका मेरुसे अन्तर—

पणदाल-सहस्साणि, तिण्णि-सया तीस-जोयणाधरिया ।
बाहिर-पह-ठिद-भासरकर - कंचण - सेल - विच्चालं ॥२३२॥

४५३३० ।

अर्थ—बाह्य पथमें स्थित सूर्य और सुवर्णशैलके बीच पैंतालीस हजार तीन सौ तीस (४५३३०) योजन प्रमाण अन्तराल कहा गया है ॥२३२॥

यथा—४४८२०+($\frac{१७०}{६१}$ × १८३)=४५३३० योजन।

बाहिर-पहादु आदिम-मग्गे तवणस्स आगमण-काले ।
पुव्वं खेवं सोहसु, दुचरिम-पह-पहुदि जाव पढम-पहं ॥२३३॥

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गसे प्रथम मार्गकी ओर आते समय पूर्व वृद्धिको कम करनेपर द्विचरम पथसे लेकर प्रथम पथ पर्यन्तका अन्तराल प्रमाण जानना चाहिए ॥२३३॥

दोनों सूर्योंका पारस्परिक अन्तर—

सट्ठि-जुदा ति-सयाणि, सोहज्जसु जंबुदीव-रु'दम्मि ।
जं सेसं पढम - पहे, दोण्हं दुमणीण विच्चालं ॥२३४॥

अर्थ—जम्बूद्वीपके विस्तारमेंसे तीन सौ साठ योजन कम करने पर जो शेष रहे उतना प्रथम पथ (स्थित) दोनों सूर्योंके बीच अन्तराल रहता है ॥२३४॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका विस्तार १००००० यो० — (१८०×२) = ९९६४० यो० अन्तराल ।

णवणउदि-सहस्सा छस्सयाणि चउदाल-जोयणाणि पि ।
तवणाणि आबाहा, अब्भंतर - मंडल - ठिदाणं ॥२३५॥

९९६४० ।

अर्थ—अभ्यन्तर मण्डलमें स्थित दोनों सूर्योंका अन्तराल निन्यानबै हजार छह सौ चालीस (९९६४०) योजन प्रमाण है ॥२३५॥

सूर्योंकी अन्तराल वृद्धिका प्रमाण—

दिणवइ-पह-सूचि-चए, दोसु' गुणिदे हवेदि भाणूणं ।
आबाहाए वड्ढी, जोयणया पंच पंचतीस - कला ॥२३६॥

५ । $\frac{३५}{६१}$ ।

अर्थ—सूर्यकी पथ-सूची-वृद्धिको दो से गुणित करने पर सूर्योंकी अन्तराल-वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है जो पाँच योजन और पैंतीस कला अधिक है ॥२३६॥

विशेषार्थ—सूर्य-पथ-सूची $\frac{१७०}{६१}$ × २ = $\frac{३४०}{६१}$ या ५$\frac{३५}{६१}$ योजन अन्तराल वृद्धिका प्रमाण है ।

सूर्योंका अभीष्ट अन्तराल प्राप्त करनेका विधान—

रूवोणं इट्ठ - पहं, गुणिदूणं मग्ग - सूइ - वड्ढीए ।
पढमाबाहामिलिदं, बासरणाहाण इट्ठ - विच्चालं ॥२३७॥

अर्थ—एक कम इष्ट-पथको द्विगुणित मार्ग-सूची-वृद्धिसे गुणा करनेपर जो प्रमाण प्राप्त हो उसे प्रथम अन्तरालमें मिला देनेसे सूर्योंका अभीष्ट अन्तराल प्रमाण प्राप्त होता है ॥२३७॥

द्वितीयादि पथोंमें सूर्योंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण—

णवणउदि-सहस्सा छस्सयाणि पणदाल जोयणाणि कला ।
पणतीस दुइज्ज - पहे, दोण्हं भाणूण विच्चालं ॥२३८॥

९९६४५ । $\frac{३५}{६१}$ ।

एवं मज्झिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—द्वितीय पथमें दोनों सूर्योंका अन्तराल निन्यानबै हजार छह सौ पैंतालीस योजन और पैंतीस भाग (९९६४५$\frac{३५}{६१}$ यो०) प्रमाण है ॥२३८॥

इसप्रकार मध्यम मार्ग तक लेजाना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ इष्ट पथ २रा है । गा० २३७ के नियमानुसार २ — १ = १ । [(१ × ५$\frac{३५}{६१}$) + ९९६४०] = ९९६४५$\frac{३५}{६१}$ यो० अन्तराल है ।

एक्कं लक्खं पण्णब्भहिय-सयं जोयणाणि अदिरेगो ।
मज्झिम-पहम्मि दोण्हं, सहस्स-किरणाण-विच्चालं ॥२३९॥

१००१५० ।

एवं दुचरिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—मध्यम पथमें दोनों सूर्योंका अन्तराल कुछ अधिक एक लाख एक सौ पचास (१००१५०) योजन प्रमाण होता है ॥२३९॥

विशेषार्थ—इष्ट पथ ९३ वाँ है । इसमेंसे १ घटा देनेपर ९२ शेष रहते हैं यही ९२ वीं वीथी मध्यम पथ है ।

(द्विगुणित पथ सूची $\frac{१७०}{६१}$ × २) × ९२ = ५१२$\frac{४८}{६१}$ यो० । (प्रथम पथमें सूर्योंका अन्तराल ९९६४० यो०) + ५१२$\frac{४८}{६१}$ यो० = १००१५२$\frac{४८}{६१}$ यो० मध्यम पथमें सूर्योंका अन्तराल है । मूल संदृष्टिसे यह प्रमाण अधिक है । इसीलिए गाथा में 'अदिरेगो' पद आया है ।

इसीप्रकार द्विचरम अर्थात् १८२ वीथियों पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यकी गलियाँ १८४ हैं किन्तु प्रक्षेप केवल १८३ पथोंमें मिलाया जाता है, इसलिए द्विचरम पथ १८२ होगा :

एक्कं जोयण-लक्खं, सट्ठी-जुत्ताणि छस्सयाणि पि ।
बाहिर - पहम्मि दोण्हं, सहस्सकिरणाण विच्चालं ॥२४०॥

१००६६० ।

अर्थ—बाह्य पथमें दोनों सूर्योंका (पारस्परिक) अन्तराल एक लाख छह सौ साठ (१००६६०) योजन प्रमाण है ॥२४०॥

विशेषार्थ—इष्ट पथ १८४ — १=१८३ ।

९९६४०+($\frac{३४०}{६१}$ × १८३)=१००६६० योजन अन्तराल है ।

सूर्यका विस्तार प्राप्त करनेकी विधि—

इच्छंतो रवि-बिंबं, सोहेज्जसु सयल वीहि विच्चालं ।
धुवरासिस्स य मज्झे, चुलसीदी-जुद-सदेण भजिदव्वं ॥२४१॥

$\frac{४८}{६१}$ । $\frac{३११५८}{६१}$ । $\frac{२२३२६}{६१}$ ।

अर्थ—यदि सूर्यबिम्बका विस्तार जाननेकी इच्छा हो तो ध्रुवराशिमेंसे समस्त मार्गान्तरालको घटाकर शेषमें एक सौ चौरासीका भाग देना चाहिए । इसका भागफल ही सूर्यबिम्ब के विस्तारका प्रमाण है ॥२४१॥

विशेषार्थ—ध्रुवराशिका प्रमाण $\frac{३११५८}{६१}$ यो० है और सर्व पथोंके अन्तरालका प्रमाण $\frac{२२३२६}{६१}$ योजन है ।

$\frac{३११५८}{६१}$ — $\frac{२२३२६}{६१}$ = $\frac{८८३२}{६१}$ यो० । $\frac{८८३२}{६१}$ ÷ १८४=$\frac{४८}{६१}$ योजन सूर्यबिम्बके विस्तार का प्रमाण ।

रविमग्गे इच्छंतो, वासरमणि-बिंब-बहल संखाए ।
तस्स य वीही बहलं, भजिदूणं ते वि आणयेदव्वं ॥२४२॥

अर्थ—यदि सूर्यके मार्गको जाननेकी इच्छा हो तो उसके बिम्बके बाहल्य ($\frac{४८}{६१}$ विस्तार का वीथी-विस्तार ($\frac{८८३२}{६१}$ यो०) में भाग देकर मार्गोंका प्रमाण ले आना चाहिए ॥२४२॥

अहवा—

सूर्य-मार्गोंका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

बिंबजुद-पहंतराणिं, सोहिय धुवरासियम्मि भजिदूणं ।
रवि - बिंबेणं आणसु, रविमग्गे विउणबाणउदी ॥२४३॥

$\frac{४८}{६१}$ । $\frac{८८३२}{६१}$ । १८४ ।[1]

अथवा—

अर्थ—ध्रुवराशिमेंसे सूर्यके मार्गान्तरालोंको घटाकर शेषमें रविबिम्ब (विस्तार) का भाग देनेपर लब्धांकके रूपमें अर्थात् एक सौ चौरासी सूर्यमार्गोंका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२४३॥

विशेषार्थ—(ध्रुवराशि $\frac{३११५८}{६१}$) — $\frac{२२३२६}{६१}$ = $\frac{८८३२}{६१}$ ।

$\frac{८८३२}{६१}$ ÷ $\frac{४८}{६१}$ = १८४ वीथियाँ (सूर्य की) हैं ।

चारक्षेत्रका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

बिम्बूण-पह-सूचि-वड्ढी[2], तिय-सीदी-जुद-सदेण संगुणिदे ।
होदि हु चारक्खेत्तं, बिंबूणं तज्जुदं सयलं ॥२४४॥

२ । $\frac{१७०}{६१}$ । १८३ । लद्ध ५१० ।

अर्थ—सूर्यकी पथ-सूची-वृद्धिको एक सौ तेरासीसे गुणा करने पर जो (राशि) प्राप्त हो उतना बिम्ब विस्तारसे रहित सूर्यका चारक्षेत्र होता है । इसमें बिम्ब विस्तार मिला देनेपर समस्त चार क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है ॥२४४॥

विशेषार्थ—(सूर्य पथ सूची वृद्धि $\frac{१७०}{६१}$ यो०) × १८३ = $\frac{३१११०}{६१}$ = ५१० यो० बिम्ब रहित चारक्षेत्र; ५१० + $\frac{४८}{६१}$ = ५१०$\frac{४८}{६१}$ यो० समस्त चारक्षेत्रका प्रमाण ।

प्रतिज्ञा—

दिण-रयणि-जाणणट्ठं, आदव-तिमिराण काल-परिमाणं ।
मंदर - परिहि - प्पहुदिं, चउणउदि - सयं परूवेमो ॥२४५॥

१९४ ।

अर्थ—(अब) दिन और रात्रिको जाननेके लिए आतप और तिमिरके काल प्रमाणका एवं मेरु परिधि आदि एक सौ चौरानबे (१९४) परिधियोंका प्ररूपण करते हैं ॥२४५॥

मेरु-परिधिका प्रमाण—

एक्कत्तीस-सहस्सा, छस्सयाणि बावीसाधिय जोयणाणि ।
मंदरगिरिंद - परिरय - रासिस्स हवेदि परिमाणं ॥२४६॥

३१६२२ ।

---

१. द. ब. क. ज. $\frac{६८८}{६१}$ । १ । १८८ । २. द. ब. क. ज. वीर ।

अर्थ—सुमेरु पर्वतकी परिधि-राशि इकतीस हजार छह सौ बाईस (३१६२२) योजन प्रमाण है ।।२४६।।

विशेषार्थ—मेरु विष्कम्भ १०००० योजन है और इसकी परिधि ३१६२२ योजन है। वर्गमूल निकालने पर जो अवशेष बचे हैं वे छोड़ दिये गये हैं ।

क्षेमा और अवध्या के प्रणिधि भागोंकी परिधि—

णभ-छक्क-सत्त-सत्ता, सत्तेक्कंक - क्कमेण जोयणया ।
अट्ठ-हिद[1]-पंच-भागा, खेमावज्झाण पणिधि-परिहि त्ति ।।२४७।।

१७७७६० । $\frac{५}{८}$ ।

अर्थ—क्षेमा और अवध्या नगरीके प्रणिधिभागोंमें परिधि शून्य, छह, सात, सात, सात और एक, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् १७७७६० योजन और एक योजनके आठ भागोंमेंसे पांच भाग प्रमाण है ।।२४७।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप स्थित सुमेरु पर्वतका तल विस्तार १०००० यो०, सुमेरुके दोनों ओर स्थित भद्रशाल वनोंका विस्तार (२२००० × २)=४४००० यो० और इसके आगे कच्छा, सुकच्छा आदि ३२ देशोंमेंसे प्रत्येक देशका विस्तार २२१२$\frac{७}{८}$ योजन है । गाथामें कच्छादेश स्थित क्षेमा नगरी और गन्धमालिनी देश स्थित अवध्या नगरीके प्रणिधिभाग पर्यन्तकी परिधि निकाली है; जो इसप्रकार है—

१००००+४४०००+२२१२$\frac{७}{८}$ यो०=५६२१२$\frac{७}{८}$ यो० ।

चतुर्थाधिकार गाथा ६ के नियमानुसार इसकी परिधि—

$\sqrt{(५६२१२\frac{७}{८})^{२} \times १०}$ = $\frac{१४२२०८५}{८}$ = १७७७६०$\frac{५}{८}$ योजन प्राप्त होती है ।

यहाँ एवं आगे भी सर्वत्र वर्गमूल निकालनेके उपरान्त जो राशि शेष रहती (बचती) है वह छोड़ दी गई है ।

क्षेमपुरी और अयोध्याके प्रणिधिभागमें परिधिका प्रमाण—

अट्ठेक्क-णव-चउक्का णवेक्क-अंक-क्कमेण जोयणया ।
ति-कलाओ परिहि संखा, खेमपुरी-अउज्झाण मज्झ-पणिधीए ।।२४८।।

१९४९१८ । $\frac{३}{८}$ ।

---

1 द. ब. क. ज. हिदा-पंचभागे ।

अर्थ—क्षेमपुरी और अयोध्या नगरीके प्रणिधिभागमें परिधिका प्रमाण आठ, एक, नौ चार, नौ और एक इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् १९४९१८ योजन और तीन कला अधिक है ॥२४८॥

विशेषार्थ—क्षेमपुरी और अयोध्या नगरीके पूर्व ५००-५०० योजन विस्तार वाले चित्रकूट एवं देवमाल नामक दो वक्षार पर्वत हैं। पूर्व परिधिमें दो क्षेत्रों और इन दो पर्वतोंकी परिधि मिला देनेसे क्षेमपुरी एवं अयोध्याके प्रणिधिभागोंकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

१००० + ४४२५ $\frac{३}{४}$ यो० = ५४२५ $\frac{३}{४}$ योजन।

$\sqrt{(५४२५\frac{३}{४})^२ \times १०}$ = $\frac{६८६३१}{४}$ = १७१५७ $\frac{३}{४}$ योजन।

(पूर्व परिधि १७७७६० $\frac{५}{८}$ यो०) + १७१५७ $\frac{३}{४}$ = १९४९१८ $\frac{३}{८}$ योजन।

खड्गपुरी और अरिष्टाके प्रणिधिभागोंकी परिधि—

चउ-गयरण-सत्त-णव-णह-दुगाण अंक-क्कमेण जोयणया।
ति-कलाओ खग्गरिट्ठा पणिधीए परिहि - परिमाणं ॥२४९॥

२०९७०४ । $\frac{३}{८}$ ।

अर्थ—खड्गपुरी और अरिष्टा नगरियोंके प्रणिधिभागमें परिधिका प्रमाण चार, शून्य, सात, नौ, शून्य और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २०९७०४ योजन और तीन कला अधिक है ॥२४९॥

विशेषार्थ—खड्गपुरी और अरिष्टाके पूर्वमें १२५-१२५ योजन विस्तार वाली उर्मिमालिनी और द्रहवती विभंगा नदियाँ हैं। पूर्व परिधिमें दो क्षेत्रों और इन दो नदियों की परिधि मिला देने पर उपर्युक्त प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

४४२५ $\frac{३}{४}$ + २५० = ४६७५ $\frac{३}{४}$ = $\frac{१८७०३}{४}$ यो०।

$\sqrt{(\frac{१८७०३}{४})^२ \times १०}$ = $\frac{५९१४४}{४}$ = १४७८६ योजन।

१९४९१८ $\frac{३}{८}$ + १४७८४ = २०९७०४ $\frac{३}{८}$ योजन।

चक्रपुरी और अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागोंकी परिधि—

दुग-छक्क-अट्ठ-छक्का, दुग-दुग-अंक-क्कमेण जोयणया।
एक्क-कला परिमाणं, चक्कारिट्ठाण पणिधि-परिहीए ॥२५०॥

२२६८६२ । $\frac{१}{८}$ ।

अर्थ—चक्रपुरी और अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागमें परिधिका प्रमाण दो, छह, आठ, छह, दो और दो इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २२६८६२ योजन और एक कला अधिक है ॥२५०॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्रों और नागगिरि एवं नलिनकूटकी परिधि पूर्व परिधिमें मिला देनेपर उपर्युक्त परिधि प्राप्त होती है।

यथा—२०९७०४ $\frac{३}{८}$ + १७१५७ $\frac{३}{४}$ = २२६८६२ $\frac{१}{८}$ यो०।

खड्गा और अपराजिताकी परिधि—

अट्ठ-चउ-छक्क-एक्का, चउ-दुग-अंक-क्कमेण जोयणया।
एक्क-कला खग्गापरजिदाण णयरीण मज्झ-परिही सा ॥२५१॥

२४१६४८ । $\frac{१}{८}$ ।

अर्थ—खड्गा और अपराजिता नगरियोंके मध्य उस परिधिका प्रमाण आठ, चार, छह, एक, चार और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २४१६४८ योजन और एक कला है ॥२५१॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्र और ग्राहवती एवं फेनमालिनी इन दो विभंगा नदियोंकी परिधि पूर्व परिधिमें मिला देनेपर (२२६८६२ $\frac{१}{८}$ + १४७८६) = २४१६४८ $\frac{१}{८}$ योजन परिधि प्राप्त होती है।

मंजूषा और जयन्ता पर्यन्त परिधि-प्रमाण—

पंच-गयणट्ठ-अट्ठा, पंच - दुगंक - क्कमेण जोयणया।
सत्त - कलाओ मंजुस-जयंतपुर-मज्झ-परिही सा ॥२५२॥

२५८८०५ । $\frac{७}{८}$ ।

अर्थ—मंजूषा और जयन्तपुरोंके मध्यमें परिधि पाँच, शून्य, आठ, आठ, पाँच और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २५८८०५ योजन और सात कला प्रमाण है ॥२५२॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्रों और पद्मकूट एवं सूर्यगिरि वक्षार पर्वतोंकी परिधि, पूर्व प्रमाण में मिला देनेपर उपर्युक्त क्षेत्रोंकी (२४१६४८ $\frac{१}{८}$ + १७१५७ $\frac{३}{४}$ यो०) = २५८८०५ $\frac{७}{८}$ योजन परिधि प्राप्त होती है।

ओषधिपुर और वैजयन्तीकी परिधि—

एक्क-णव-पंच-तिय-सत्त-दुगा अंक-क्कमेण जोयणया।
सत्त - कलाओ परिही, ओसहिपुर - वइजयंताणं ॥२५३॥

२७३५९१ । $\frac{७}{८}$ ।

अर्थ—ओषधि और वैजयन्ती नगरीकी परिधि एक, नौ, पाँच, तीन, सात और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २७३५९१ योजन और सात कला प्रमाण है ॥२५३॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्रों एवं पंकवती और गम्भीरमालिनी नदियोंकी परिधि, पूर्व प्रमाणमें मिला देनेपर (२५८८०५$\frac{६}{८}$ + १४७८६ यो०)=२७३५९१$\frac{६}{८}$ योजन उपर्युक्त परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है।

विजयपुरी और पुण्डरीकिणीकी परिधि—

णव-चउ-सत्त-णहाइं, णवय-दुगा जोयणाणि अंक-कमे ।
पंच-कलाओ परिही, विजयपुरी-पुंडरीगिणीणं पि ॥२५४॥

२९०७४९ । $\frac{५}{८}$ ।

अर्थ - विजयपुरी और पुण्डरीकिणी नगरियोंकी परिधि नौ, चार, सात, शून्य, नौ और दो, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् २९०७४९ योजन और पाँच कला प्रमाण है ॥२५४॥

विशेषार्थ—दो क्षेत्रों और चन्द्रगिरि एवं एक शैल वक्षारोंकी परिधि, पूर्व परिधिके प्रमाणमें मिला देनेपर (२७३५९१$\frac{६}{८}$ + १७१५७$\frac{७}{८}$)=२९०७४९$\frac{५}{८}$ योजन उपर्युक्त परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है।

सूर्यकी अभ्यन्तर वीथीकी परिधि—

तिय-जोयण-लक्खाणि, पण्णरस-सहस्सयाणि उणणउदी ।
सव्वब्भंतर - मग्गे, परिरय - रासिस्स परिमाणं ॥२५५॥

३१५०८९ ।

अर्थ—सूर्यके सब मार्गोंमेंसे अभ्यन्तर मार्गमें परिधि-राशिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार नवासी (३१५०८९) योजन है ॥२५५॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपमें सूर्यके चारक्षेत्रका प्रमाण १८० योजन है। दोनों पार्श्वभागोंका (१८०×२)=३६० योजन।

(ज० का वि० १००००० यो०) — ३६० यो०=९९६४० योजन सूर्यकी प्रथम वीथीका व्यास है और इसकी परिधि—

$\sqrt{(९९६४०)^२ \times १०}$=३१५०८९ योजन है। जो शेष बचे वे छोड़ दिए गये हैं।

सूर्यके परिधि प्रक्षेपका प्रमाण—

सेसाणं मग्गाणं, परिही-परिमाण-जाणण-णिमित्तं ।
परिहि खेवं वोच्छं, गुरूवदेसाणुसारेणं ॥२५६॥

अर्थ—शेष मार्गोंके परिधि-प्रमाणको जानने हेतु गुरु-उपदेशके अनुसार परिधि-प्रक्षेप कहते हैं ।।२५६।।

सूर-पह-सूइ-वड्ढी, दुगुणं कादूण वग्गिदूणं च ।
दस - गुणिदे जं मूलं, परिहिक्खेवो इमो होइ ।।२५७।।

अर्थ—सूर्य-पथोंकी सूची-वृद्धिको दुगुना करके उसका वर्ग करनेके पश्चात् जो प्रमाण प्राप्त हो उसे दससे गुणा करनेपर प्राप्त हुई राशिके वर्गमूल प्रमाण उपर्युक्त परिधिक्षेप (परिधि-वृद्धि) होता है ।।२५७।।

विशेषार्थ—सूर्यपथ-सूचीवृद्धिका प्रमाण $२\frac{४८}{६१} = \frac{१७०}{६१}$ यो० है ।

$\sqrt{(\frac{१७०}{६१} \times २)^{२} \times १०} = १७\frac{३८}{६१}$ यो० परिधि वृद्धि ।

सत्तरस-जोयणाणि, अदिरेगा तस्स होई परिमाणं ।
अट्ठत्तीसं अंसा, हारो तह एक्कसट्ठी य ।।२५८।।

$१७ । \frac{३८}{६१} ।$

अर्थ—उक्त परिधि-प्रक्षेपका प्रमाण सत्तरह योजन और एक योजनके इकसठ भागोंमेंसे अड़तीस भाग अधिक ($१७\frac{३८}{६१}$ यो०) है ।।२५८।।

द्वितीय आदि वीथियोंकी परिधि—

तिय-जोयण-लक्खाणि, पण्णरस-सहस्स एक्क-सय छक्का ।
अट्ठत्तीस कलाओ, सा परिही बिदिय - मग्गम्मि ।।२५९।।

$३१५१०६ । \frac{३८}{६१} ।$

अर्थ—द्वितीय मार्गमें वह परिधि तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ छह योजन और अड़तीस कला है ।।२५९।।

$३१५०८९ + १७\frac{३८}{६१} = ३१५१०६\frac{३८}{६१}$ योजन ।

चउवीस-जुदेक्क-सयं, पण्णरस-सहस्स जोयण ति-लक्खा ।
पण्णरस - कला परिही, परिमाणं तदिय - वीहीए ।।२६०।।

$३१५१२४ । \frac{१५}{६१} ।$

अर्थ—तृतीय वीथीमें परिधिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ चौबीस और पन्द्रह कला ($३१५१२४\frac{१५}{६१}$ यो०) है ।।२६०।।

३१५१०६$\frac{३८}{६१}$ + १७$\frac{३८}{६१}$ = ३१५१२४$\frac{१५}{६१}$ योजन ।

एक्कत्तालेक्क-सयं, पण्णरस-सहस्स जोयण ति-लक्खा ।
तेवण्ण - कला तुरिमे, पहम्मि परिहीए परिमाणं ॥२६१॥

३१५१४१ । $\frac{५३}{६१}$ ।

अर्थ—चतुर्थपथमें परिधिका प्रमाण तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ इकतालीस योजन और तिरेपन कला (३१५१४१$\frac{५३}{६१}$ यो०) है ॥२६१॥

३१५१२४$\frac{१५}{६१}$ + १७$\frac{३८}{६१}$ = ३१५१४१$\frac{५३}{६१}$ योजन है ।

उणसट्ठि-जुदेक्क-सयं, पण्णरस-सहस्स जोयण ति-लक्खा ।
इगिसट्ठी - पविहत्ता, तीस - कला पंचम - पहे सा ॥२६२॥

३१५१५९ । $\frac{३०}{६१}$ ।

अर्थ—पंचम पथमें वह परिधि तीन लाख पन्द्रह हजार एक सौ उनसठ योजन और इकसठ से विभक्त तीस कला अधिक है ॥२६२॥

३१५१४१$\frac{५३}{६१}$ + १७$\frac{३८}{६१}$ = ३१५१५९$\frac{३०}{६१}$ योजन ।

एवं पुव्वुप्पण्णे, परिहि-खेव [1]मेलिदूण उवरि-उवरिं ।
परिहि-पमाणं जाव - दुचरिम - परिहिं ति णेदव्वं [2] ॥२६३॥

अर्थ—इसप्रकार पूर्वोत्पन्न परिधि-प्रमाणमें परिधिक्षेप मिलाकर द्विचरम परिधि पर्यन्त आगे-आगे परिधि प्रमाण जानना चाहिए ॥२६३॥

सूर्यके बाह्य-पथका परिधि प्रमाण—

चोद्दस-जुद-ति-सयाणि, अट्ठरस-सहस्स जोयण ति-लक्खा ।
सूरस्स बाहिर - पहे, हवेदि परिहीए परिमाणं ॥२६४॥

३१८३१४ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें परिधिका प्रमाण तीन लाख अठारह हजार तीन सौ चौदह (३१८३१४) योजन है ॥२६४॥

विशेषार्थ—सूर्यकी अन्तिम (बाह्य) वीथीकी परिधिका प्रमाण {३१५०८९ + (१७$\frac{३८}{६१}$ × १८३) } = ३१८३१४ योजन है ॥

---

१. द. माण उवरिव्वरि, ब. माण उवरुवरि । २. द. ब. क. ज. आणेदव्वं ।

लवणसमुद्रके जलषष्ठ भागकी परिधिका प्रमाण—

सत्ताबीस-सहस्सा, छादालं जोयणाणि पण-लक्खा ।
परिही लवणमहण्णव - विक्खंभं छट्ठ - भागम्मि ॥२६५॥

५२७०४६ ।

अर्थ—लवण समुद्रके विस्तारके छठे भागमें परिधिका प्रमाण पाँच लाख सत्ताईस हजार छयालीस (५२७०४६) योजन है ॥२६५॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके सूर्य तम और तापके द्वारा लवण-समुद्रके छठे भाग पर्यन्त क्षेत्रको प्रभावित करते हैं ।

जिसका व्यास इसप्रकार है—

लवणसमुद्रका वलय व्यास दो लाख योजन है । इसके दोनों पार्श्वभागोंका छठा भाग ($\frac{२००००० \times २}{६}$)=६६६६६$\frac{२}{३}$ योजन हुआ । इसमें जम्बूद्वीपका व्यास जोड़ देनेपर जलषष्ठ भागका व्यास (१००००० + ६६६६६$\frac{२}{३}$)=१६६६६६$\frac{२}{३}$ योजन होता है । जिसकी परिधि—

$\sqrt{(१६६६६६\frac{२}{३})^२ \times १०}$ = ५२७०४६ योजन प्राप्त होती है । यहाँ जो शेष बचे, वे छोड़ दिये गये हैं ।

समान कालमें विसदृश प्रमाणवाली परिधियोंका भ्रमण पूर्ण कर सकनेका कारण—

रवि-बिंबा सिग्घ-गदी, णिग्गच्छंता हवंति पविसंता ।
मंद - गदी असमाणा, परिही साहंति सम - काले ॥२६६॥

अर्थ—सूर्यबिम्ब बाहर निकलते हुए शीघ्रगतिवाले और प्रवेश करते हुए मन्दगतिवाले होते हैं, इसलिए ये समान कालमें भी असमान परिधियोंको सिद्ध करते हैं ॥२६६॥

सूर्यके कुल गगनखण्डोंका प्रमाण—

एक्कं चेवय लक्खं, णवय-सहस्साणि अड-सयाणं पि ।
परिहीणं पयंगका, कादव्वा[1] गयण - खंडाणि ॥२६७॥

१०९८०० ।

अर्थ—इन परिधियोंमें (दोनों) सूर्योंके (सर्व) गगनखण्डोंका प्रमाण एक लाख नौ हजार आठ सौ (१०९८००) है ॥२६७॥

---

१. द. ब. क. ज. काल वा ।

गगनखण्डोंका अतिक्रमण काल—

गच्छदि मुहुत्तमेक्के, तीसब्भहियाणि अट्ठर - सयाणि ।
णभ-खंडाणि रविणो, तम्मि[1] हिदे सव्व-गयण-खंडाणि ॥२६८॥

१८३० ।

अर्थ—सूर्य एक मुहूर्तमें अठारह सौ तीस (१८३०) गगनखण्डोंका अतिक्रमण करता है, इसलिये इस राशिका समस्त गगनखण्डोंमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतने मुहूर्त प्रमाण सम्पूर्ण गगनखण्डोंके अतिक्रमणका काल होगा ॥२६८॥

विशेषार्थ—सूर्य एक मुहूतमें १८३० गगनखण्डोंका अतिक्रमण करता है, तब १०९८०० गगनखण्डों पर भ्रमण करनेमें कितना समय लगेगा ? १०९८००÷१८३०=६० मुहूर्त लगेंगे ।

अब्भंतर-वीहीदो, दु-ति-चदु-पहुदीसु सव्व-वीहीसुं ।
कमसो बे रविबिंबा, भमंति सट्ठी - मुहुत्तेहिं ॥२६९॥

अर्थ—अभ्यन्तर वीथीसे प्रारम्भकर दो, तीन, चार इत्यादि सब वीथियोंमें क्रमसे (प्रत्येक वीथीमें आमने-सामने रहते हुए) दो सूर्य-बिम्ब साठ मुहूर्तोंमें भ्रमण करते हैं ॥२६९॥

सूर्यका प्रत्येक परिधिमें एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

इच्छिय-परिहि-पमाणं, सट्ठि-मुहुत्तेहिं भाजिदे लद्धं ।
सेसं दिवसकराणं, मुहुत्त - गमणस्स परिमाणं ॥२७०॥

५२५१ । $\frac{29}{60}$ ।

अर्थ—इष्ट परिधिमें साठ (६०) मुहूर्तोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो और जो ($\frac{29}{60}$ आदि) शेष बचे वह सूर्योंके एक मुहूर्त कालके गमन क्षेत्रका प्रमाण जानना चाहिए ॥२७०॥

विशेषार्थ—यथा—प्रथम परिधिका प्रमाण ३१५०८९ योजन है, अतः ३१५०८९÷६०= ५२५१$\frac{29}{60}$ योजन प्रथम वीथीमें एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र है ।

पंच-सहस्साणि दुवे, सयाणि इगिवण्ण जोयणा अहिया ।
उणतीस-कला पढम-प्पहम्मि दिणयर-मुहुत्त-परिमाणं ॥२७१॥

५२५१ । $\frac{29}{60}$ ।

एवं दुचरिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

1. ब. तम्मि लिदं, क. ज. त मिलिदे ।

अर्थ—प्रथम पथमें सूर्यकी एक मुहूर्त (४८ मिनिट) की गतिका प्रमाण पाँच हजार दो सौ इक्यावन योजन और एक योजनको साठ कलाओंमेंसे उनतीस कला अधिक (५२५१ $\frac{२९}{६०}$ योजन) है ॥२७१॥

इसप्रकार द्विचरम अर्थात् एक सौ तेरासीवें मार्ग तक ले जाना चाहिए ।

बाह्य वीथीमें एक मुहूर्तका प्रमाण क्षेत्र—

पंच-सहस्सा ति-सया, पंचब्भिय जोयणाणि अदिरेगो ।
चोद्दस-कलाओ बाहिर-पहम्मि दिणवइ-मुहुत्त-गदिमाणं ॥२७२॥

५३०५ । $\frac{१४}{६०}$ ।

अर्थ—बाह्य अर्थात् एक सौ चौरासीवें (१८४ वें) मार्गमें सूर्यकी एक मुहूर्त परिमित गतिका प्रमाण पाँच हजार तीन सौ पाँच योजन और चौदह कला अधिक है ॥२७२॥

विशेषार्थ—सूर्यकी बाह्य वीथीकी परिधि ३१८३१४ योजन है । ३१८३१४ ÷ ६० = ५३०५ $\frac{१४}{६०}$ योजन बाह्यपथमें स्थित सूर्यकी एक मुहूर्तकी गतिका प्रमाण है ।

केतु बिंबोंका वर्णन—

दिणयर-णयर-तलादो, चत्तारि पमाण-अंगुलाणि च ।
हेट्ठा गच्छिय होंति, अरिट्ठ - विमाणाण धय-दंडा ॥२७३॥

४ ।[1]

अर्थ—सूर्यके नगरतलसे चार प्रमाणांगुल नीचे जाकर अरिष्ट (केतु) विमानोंके ध्वज-दण्ड होते हैं ॥२७३॥

विशेषार्थ—केतु विमानके ध्वजा-दण्डसे ४ प्रमाणांगुल अथात् (उत्सेधांगुलके अनुसार) $\frac{४ \times ५००}{२४ \times ४}$ = २० धनुष, ३ हाथ और ८ अंगुल ऊपर सूर्यका विमान है ।

रिट्ठाणं णयरतला, अंजणवण्णा अरिट्ठ-रयणमया ।
किंचूणं जोयणयं, पत्तेक्कं वास - संजुत्तं ॥२७४॥

अर्थ—अरिष्ट रत्नोंसे निर्मित केतुओंके नगरतल अंजनवर्णवाले होते हैं । इनमेसे प्रत्येक कुछ कम एक योजन प्रमाण विस्तारसे संयुक्त होता है ॥२७४॥

---

१. द. ब. क. ज. २५६ ।

पण्णाधिय-दु-सयाणि, कोदंडाणं हवंति पत्तेक्कं ।
बहलत्तण - परिमाणं, तण्णयराणं[1] सुरम्माणं ।।२७५।।

२५० ।

अर्थ—उन सुरम्य नगरोंमेंसे प्रत्येकका बाहल्य प्रमाण दो सौ पचास (२५०) धनुष होता है ।।२७५।।

नोट :—गाथा २०२ में राहु नगरका बाहल्य कुछ कम अर्ध यो० कहा गया है तथा पाठान्तर गाथा में २५० धनुष प्रमाण कहा गया है । किन्तु गाथा २७५ में ग्रन्थकर्ता स्वयं केतु के विमान का व्यास कुछ कम एक योजन मानते हुए भी उसका बाहल्य २५० धनुष स्वीकार कर रहे हैं । जो विचारणीय है, क्योंकि राहु और केतुका व्यास आदि बराबर ही होता है ।

चउ-गोउर-जुत्तेसुं[2], जिणभवण-भूसिदेसु रम्मेसुं ।
चेट्ठंते रिट्ठ - सुरा, बहु - परिवारेहि परियरिया ।।२७६।।

अर्थ—चार गोपुरोंसे संयुक्त और जिन भवनोंसे विभूषित उन रमणीय नगरतलोंमें बहुत परिवारोंसे घिरे हुए केतुदेव रहते हैं ।।२७६।।

छम्मासेसुं पुह पुह, रवि-बिंबाणं अरिट्ठ - बिंबाणि ।
अमवस्सा अवसाणे, छादंते गदि - विसेसेणं ।।२७७।।

अर्थ—गति विशेषके कारण अरिष्ट (केतु) विमान छह मासोंमें अमावस्याके अन्तमें पृथक्-पृथक् सूर्य-बिम्बोंको आच्छादित करते हैं ।।२७७।।

अभ्यन्तर और बाह्य वीथीमें दिन-रात्रिका प्रमाण—

मत्तंड-मंडलाणं, गमण - विसेसेण मणुव - लोयम्मि ।
जे [3]दिण - रत्ति भेदा, जादा तेसिं परूवेमो ।।२७८।।

अर्थ—मनुष्यलोक (अढ़ाई द्वीप) में सूर्य-मण्डलोंके गमन-विशेषसे जो दिन एवं रात्रिके विभाग हुए हैं उनका निरूपण करते हैं ।।२७८।।

पढम-पहे दिणवइणो, संठिद-कालम्मि सव्व-परिहीसुं ।
अट्ठरस - मुहुत्ताणि, दिवसो बारस णिसा होदि ।।२७९।।

१८ । १२ ।

---

१. द. ब. तं तं णयराणं । २. द. ब. क. ज. खेत्तेसुं । ३. द. ब. दिणवरत्ति ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते समय सब परिधियोंमें अठारह (१८) मुहूर्तका दिन और बारह (१२) मुहूर्तकी रात्रि होती है ।।२७९।।

बाहिर-मग्गे रविणो, संठिद-कालम्मि सव्व-परिहीसु ।
अट्ठरस - मुहुत्ताणि, रत्ती बारस दिणं होदि ।।२८०।।

१८ । १२ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्यमार्गमें स्थित रहते समय सर्व परिधियोंमें अठारह (१८) मुहूर्तकी रात्रि और बारह (१२) मुहूर्तका दिन होता है ।।२८०।।

विशेषार्थ—श्रावणमासमें कर्क राशिपर स्थित सूर्य जब जम्बूद्वीप सम्बन्धी १८० योजन चार क्षेत्रकी प्रथम (अभ्यन्तर) परिधिमें भ्रमण करता है तब सर्व (सूर्यकी १८४, क्षेमा-अवध्या नगरियोंसे पुण्डरीकिणी-विजया पर्यन्त क्षेत्रोंकी ८, मेरु सम्बन्धी १ और लवणसमुद्रगत जलषष्ठ सम्बन्धी १, इसप्रकार १८४+८+१+१=१९४) परिधियोंमें १८ मुहूर्त (१४ घण्टा २४ मिनिट) का दिन और १२ मुहूर्त (९ घण्टा ३६ मिनिट) की रात्रि होती है । किन्तु जब माघ मासमें मकर-राशि स्थित सूर्य लवणसमुद्र सम्बन्धी ३३० योजन चार क्षेत्रकी बाह्य परिधिमें भ्रमण करता है तब सर्व (१९४) परिधियोंम १८ मुहूर्तकी रात्रि और १२ मुहूर्तका दिन होता है ।

रात्रि और दिनकी हानि-वृद्धिका चय प्राप्त करने की विधि एवं उसका प्रमाण—

भूमीए [1]मुहं सोहिय, रूऊणेणं पहेण भजिदव्वं ।
सा रत्तीए दिणादो, वड्ढी दिवसस्स रत्तीदो[2] ।।२८१।।

तस्स पमाणं दोण्णि य, मुहुत्तया एक्क-सट्ठि-पविहत्ता ।
दोण्हं दिण - रत्तीणं, पडिदिवसं हाणि - वड्ढीओ ।।२८२।।

$\frac{२}{६१}$ ।[3]

अर्थ—भूमिमेंसे मुखको कम करके शेषमें एक कम पथ-प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी वृद्धि दिनसे रात्रिमें और रात्रिसे दिनमें होती है । उस वृद्धिका प्रमाण इकसठसे विभक्त दो ($\frac{२}{६१}$) मुहूर्त है । प्रतिदिन दिन-रात्रि दोनोंमें मिलकर उतनी हानि-वृद्धि हुआ करती है ।।२८१-२८२।।

विशेषार्थ—भूमिका प्रमाण १८ मुहूर्त, मुखका प्रमाण १२ मुहूर्त और पथका प्रमाण १८४ है ।

---

१. द. ब. क. ज. दिणं । २. ब. रत्तित्तो । ३. द. १२ । $\frac{२}{६१}$ । ब. [illegible] । ते था १७३ । १ ।

(१८ — १२) ÷ (१८४ — १) = $\frac{६}{१८३}$ या $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त । ४८ मिनिट का १ मुहूर्त होता है अतः $\frac{२}{६१}$ मुहूर्तमें १ मिनिट ३४$\frac{२६}{६१}$ सेकेण्ड की वृद्धि या हानि होती है ।

सूर्यके द्वितीयादि पथोंमें स्थित रहते दिन-रात्रिका प्रमाण—

बिदिय-पह-ट्ठिद-सूरे, सत्तरस-मुहुत्तयाणि होदि दिणं ।
उणसट्ठि - कलब्भहियं, छक्कोणिय-दु-सय-परिहीसुं ।।२८३।।

१७ । $\frac{५९}{६१}$ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित रहनेपर छह कम दो सौ अर्थात् १९४ परिधियोंमें दिन का प्रमाण सत्तरह मुहूर्त और उनसठ कला अधिक (१७$\frac{५९}{६१}$) होता है ।।२८३।।

बारस-मुहुत्तयाणि, दोण्णि कलाओ णिसाए परिमाणं ।
बिदिय-पह-ट्ठिद-सूरे, तेत्तिय - मेत्तासु परिहीसुं ।।२८४।।

१२ । $\frac{२}{६१}$ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय मार्गमें स्थित रहनेपर उतनी (१९४) ही परिधियोंमें रात्रिका प्रमाण बारह मुहूर्त और दो कला (१२$\frac{२}{६१}$ मुहूर्त) होता है ।।२८४।।

तदिय-पह-ट्ठिद-तवणे, सत्तरस-मुहुत्तयाणि होदि दिणं ।
सत्तावण्ण कलाओ, तेत्तिय - मेत्तासु परिहीसुं ।।२८५।।

१७ । $\frac{५७}{६१}$ ।

अर्थ—सूर्यके तृतीयमार्गमें स्थित रहनेपर उतनी ही परिधियोंमें दिनका प्रमाण सत्तरह मुहूर्त और सत्तावन कला (१७$\frac{५७}{६१}$ मुहूर्त) होता है ।।२८५।।

बारस-मुहुत्तयाणि, चत्तारि कलाओ रत्ति-परिमाणं ।
तप्परिहीसुं सूरे, अवट्ठिदे [1]तिदिय - मग्गम्मि ।।२८६।।

१२ । $\frac{४}{६१}$ ।

अर्थ—सूर्यके तृतीय मार्गमें स्थित रहनेपर उन परिधियोंमें रात्रिका प्रमाण बारह मुहूर्त और चार कला अधिक (१२$\frac{४}{६१}$ मु०) होता है ।।२८६।।

सत्तरस-मुहुत्ताइं, पंचावण्णा कलाओ परिमाणं ।
दिवसस्स तुरिम-मग्ग-ट्ठिदम्मि तिव्वंसु - बिबम्मि ।।२८७।।

१७ । $\frac{५५}{६१}$ ।

---

१. द. बिदिय ।

अर्थ—तीव्रांशुबिम्ब (सूर्यमण्डल) के चतुर्थ मार्गमें स्थित रहनेपर दिनका प्रमाण सत्तरह मुहूर्त और पचपन कला अधिक ($१७\frac{५५}{६१}$ मु०) होता है ॥२८७॥

बारस मुहुत्तयाणि, छक्क-कलाओ वि रत्ति-परिमाणं ।
तुरिम-पह - ट्ठिद - पंकयबंधव - बिबम्मि परिहीसुं ॥२८८॥

१२ । $\frac{६}{६१}$ ।

एवं मज्झिम-पहंतं णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्य बिम्बके चतुर्थ पथमें स्थित रहने पर सब परिधियोंमें रात्रिका प्रमाण बारह मुहूर्त और छह कला ($१२\frac{६}{६१}$ मु०) होता है ॥२८८॥

इसप्रकार मध्यम पथ पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यके मध्यमपथमें रहनेपर दिन एवं रात्रि का प्रमाण—

पण्णरस - मुहुत्ताइं, पत्तेयं होंति दिवस - रत्तीओ ।
पुव्वोदिद - परिहीसुं, मज्झिम-मग्ग-ट्ठिदे तवणे ॥२८९॥

। १५ ।

एवं दुचरिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्यके मध्यम पथमें स्थित रहनेपर पूर्वोक्त परिधियोंमें दिन और रात्रि दोनों पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त प्रमाणके होते हैं ॥२८९॥

विशेषार्थ—जब एक पथमें $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त की हानि या वृद्धि होती है तब मध्यम पथ $\frac{१८३}{२}$ में कितनी हानि-वृद्धि होगी ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर ($\frac{२}{६१}\times\frac{१८३}{२}$)=३ मुहूर्त प्राप्त हुए। इन्हें प्रथम पथके दिन प्रमाण १८ मु० में से घटाकर उसी पथके रात्रि प्रमाण १२ मुहूर्तमें जोड़ देनेपर मध्यम पथमें दिन और रात्रि का प्रमाण १५-१५ मुहूर्त प्राप्त होता है।

इसप्रकार द्विचरम पथ तक ले जाना चाहिए।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते दिन-रात्रिका प्रमाण—

अट्ठरस-मुहुत्ताणि, रत्ती बारस दिणो व दिणणाहे ।
बाहिर-मग्ग-पवण्णे, पुव्वोदिद - सव्व - परिहीसुं ॥२९०॥

१८ । १२ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गको प्राप्त होनेपर पूर्वोक्त सब (१९४) परिधियोंमें अठारह (१८) मुहूर्त प्रमाण रात्रि और बारह (१२) मुहूर्त प्रमाण दिन होता है ॥२९०॥

बाहिर - पहादु पत्ते, मग्गं अब्भंतरं सहस्सकरे ।
पुव्वावण्णिद - खेवं, पक्खेवसु दिण - प्पमाणम्मि ॥२९१॥

$\frac{2}{61}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथसे अभ्यन्तर मार्गको प्राप्त होनेपर पूर्व-वर्णित क्रमसे दिन-प्रमाणमें उत्तरोत्तर इस वृद्धि-प्रमाणको मिलाना चाहिए ॥२९१॥

इय वासर-रत्तीओ, एक्कस्स रविस्स गदि-विसेसेणं ।
एदाणं दुगुणाओ, हवंति दोण्हं दिणिंदाणं ॥२९२॥

। दिण-रत्तीणं भेदं समत्तं ।

अर्थ—इसप्रकार एक सूर्यकी गति-विशेषसे उपर्युक्त प्रकार दिन-रात हुआ करते हैं । इनको दुगुना करनेपर दोनों सूर्योंकी गति-विशेषसे होने वाले दिन-रात का प्रमाण प्राप्त होता है ॥२९२॥

दिन-रातके भेदका कथन समाप्त हुआ ।
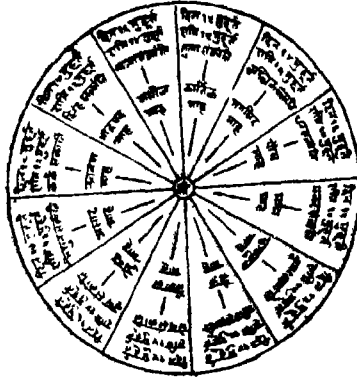
प्रतिज्ञा—

एत्तो वासर-पहुणो, गमण-विसेसेण मणुव-लोयम्मि ।
जे आदव - तम - खेत्ता, जादा ताणि परूवेमो ॥२९३॥

अर्थ—अब यहाँसे आगे वासरप्रभु (सूर्य) के गमन विशेषसे जो मनुष्यलोकमें आतप एवं तम क्षेत्र हुए हैं उनका प्ररूपण करते हैं ॥२९३॥

आतप एवं तम क्षेत्रोंका स्वरूप—

मंदरगिरि-मज्झादो, लवणोवहि-छट्ठ-भाग-परियंतं ।
णियदायामा आदव - तम - खेत्तं सकट-उद्धि-णिहा ॥२९४॥

अर्थ—मन्दरपर्वतके मध्य भागसे लेकर लवणसमुद्रके छठे भाग पर्यन्त नियमित आयाम-वाले गाड़ीकी उद्धि (पहियेके आरे) के सदृश आतप एवं तम-क्षेत्र हैं ॥२९४॥

प्रत्येक आतप एवं तम क्षेत्रकी लम्बाई—

तेसीदि-सहस्साणि, तिण्णि-सया जोयणाणि तेत्तीसं ।
स-ति-भागा पत्तेक्कं, आदव - तिमिराण आयामो ॥२९५॥

८३३३३ । $\frac{१}{३}$ ।

अर्थ—प्रत्येक आतप एवं तिमिर क्षेत्रकी लम्बाई तेरासी हजार तीनसौ तेंतीस योजन और एक योजनके तृतीय भाग सहित है ॥२९५॥

विशेषार्थ—मेरुके मध्यसे लवणसमुद्रके छठे भाग पर्यन्तका क्षेत्र सूर्यके आतप एवं तमसे प्रभावित होता है । लवणसमुद्रका अभ्यन्तर सूची-व्यास ५ लाख योजन है । इसमें ६ का भाग देनेपर (५०००००÷६)=८३३३३$\frac{१}{३}$ योजन होता है । यही प्रत्येक आतप एवं तम क्षेत्रकी लम्बाईका प्रमाण है ॥

प्रथम पथ स्थित सूर्यकी परिधियोंमें ताप क्षेत्र निकालनेकी विधि—

इट्ठं परिरय-रासिं, ति-गुणिय दस-भाजिदम्मि जं लद्धं ।
सा घम्म - खेत्त - परिही, पढम - पहावट्ठिदे सूरे ॥२९६॥

$\frac{३}{१०}$ ।

अर्थ—इच्छित परिधि-राशिको तिगुना करके दसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर उस ताप क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण होता है ॥२९६॥

विशेषार्थ—दो सूर्य मिलकर प्रत्येक परिधिको ६० मुहूर्तमें पूरा करते हैं । सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते सर्व (१९४) परिधियोंमें १८ मुहूर्तका दिन होता है । विवक्षित परिधिमें १८ मुहूर्तोंका गुणा करके ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर ताप व्याप्त क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है । इसीलिए गाथामें ($\frac{१८}{६०}=\frac{३}{१०}$) ३ का गुणाकर दसका भाग देने को कहा गया है ।

प्रथम पथ स्थित सूर्यकी क्रमशः दस परिधियोंमें ताप परिधियोंका प्रमाण—

णव य सहस्सा चउसय, छासीदी जोयणाणि तिण्णि-कला ।
पंच-हिदा ताव-खिदी, मेरु-णगे पढम - पह - ट्ठिदंकम्मि ।।२९७।।

९४८६ । $\frac{३}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर मेरु पर्वतके ऊपर नौ हजार चार सौ छयासी योजन और पाँचसे भाजित तीन कला प्रमाण ताप-क्षेत्र रहता है ।।२९७।।

विशेषार्थ—मेरु पर्वतकी परिधिको ३ से गुणित कर १० का भाग देनेपर मेरु पर्वतके ऊपर ताप क्षेत्रका प्रमाण ($\frac{३१६२२ \times ३}{१०}$)=९४८६$\frac{३}{५}$ योजन प्राप्त होता है ।

खेमक्खा-पणिधीए, तेवण्ण-सहस्स ति-सय-अडवीसा[1] ।
सोलस-हिदा तियंसा, ताव-खिदी पढम-पह-ट्ठिदंकम्मि ।।२९८।।

५३३२८ । $\frac{३}{१६}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर क्षेमा नामक नगरीके प्रणिधिभागमें ताप क्षेत्रका प्रमाण तिरेपन हजार तीन सौ अट्ठाईस योजन और एक योजनके सोलह भागोंमेंसे तीन भाग अधिक होता है ।।२९८।।

विशेषार्थ—क्षेमा नगरीके प्रणिधिभागकी परिधि १७७७६०$\frac{५}{८}$ यो० = ($\frac{१४२२०८५}{८}$)× $\frac{३}{१०}$=$\frac{८५३२५१}{१६}$=५३३२८$\frac{३}{१६}$ योजन ।

खेमपुरी-पणिधीए, अडवण्ण-सहस्स चउसयाणं पि ।
पंचत्तरि जोयणया, इगिदाल-कलाओ सीदि-हिदा ।।२९९।।

५८४७५ । $\frac{४१}{८०}$ ।

अर्थ—वह तापक्षेत्र क्षेमपुरीके प्रणिधिभागमें अट्ठावन हजार चार सौ पचत्तर योजन और अस्सीसे भाजित इकतालीस कला प्रमाण रहता है ।।२९९।।

विशेषार्थ—क्षेमपुरीके प्रणिधिभागकी परिधि १९४९१८$\frac{३}{८}$ यो०=($\frac{१५५९३४७}{८}$) × $\frac{३}{१०}$= ५८४७५$\frac{४१}{८०}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण ।

रिट्ठाए पणिधीए, बासट्ठि-सहस्स णव - सयाणं पि ।
एक्कारस जोयणया, सोलस-हिद-पण-कलाओ ताव-खिदी ।।३००।।

६२९११ । $\frac{५}{१६}$ ।

---

१. ब. अडतीसा ।

अर्थ—यह तापक्षेत्र अरिष्टनगरीके प्रणिधिभागमें बासठ हजार नौ सौ ग्यारह योजन और सोलहसे भाजित पांच कला प्रमाण है ॥३००॥

विशेषार्थ—अरिष्ट नगरीके प्रणिधिभागकी परिधि २०९७०४$\frac{३}{६}$=($\frac{१२५८२२७}{६}$)×$\frac{३}{१०}$= ६२९११$\frac{५}{१६}$ योजन तापक्षेत्र है ।

अट्ठासट्ठि-सहस्सा, अट्ठावण्णा य जोयणा होंति ।
एक्कावण्ण कलाओ, रिट्ठपुरी-पणिधि-ताव-खिदी ॥३०१॥

६८०५८ । $\frac{५१}{८०}$ ।

अर्थ–यह तापक्षेत्र अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागमें अड़सठ हजार अट्ठावन योजन और एक योजनके अस्सी भागोंमेंसे इक्यावन कला अधिक रहता है ॥३०१॥

विशेषार्थ—अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागमें परिधि २२६८६२$\frac{५}{६}$=($\frac{१३६११७७}{६}$)×$\frac{३}{१०}$ = ६८०५८$\frac{५१}{८०}$ योजन तापक्षेत्र ।

बाहत्तरी सहस्सा, चउस्सया जोयणाणि चउणवदी ।
सोलस-हिद-सत्त-कला, खग्गपुरी-पणिधि-ताव-मही ॥३०२॥

७२४९४ । $\frac{७}{१६}$ ।

अर्थ—खड्गपुरीके प्रणिधिभागमें ताप क्षेत्रका प्रमाण बहत्तर हजार चारसो चौरानबे योजन और सोलहसे भाजित सात कला अधिक है ॥३०२॥

विशेषार्थ—खड्गपुरीके प्रणिधिभाग की परिधि २४१६४८$\frac{३}{६}$=($\frac{१४४९८९१}{६}$)×$\frac{३}{१०}$= ७२४९४$\frac{७}{१६}$ योजन ताप क्षेत्र ।

सत्तत्तरी सहस्सा, छच्च सया जोयणाणि इगिदालं ।
सीदि-हिदा इगिसट्ठी, कलाओ मंजुसपुरम्मि ताव-मही ॥३०३॥

७७६४१ । $\frac{६१}{८०}$ ।

अर्थ—मंजूषपुरमें ताप क्षेत्रका प्रमाण सतत्तर हजार छह सौ इकतालीस योजन और अस्सीसे भाजित इकसठ कला अधिक है ॥३०३॥

विशेषार्थ—२५८८०५$\frac{४}{६}$=$\frac{१५५२८३४}{६}$×$\frac{३}{१०}$=७७६४१$\frac{६१}{८०}$ यो० मंजूषपुरमें तापक्षेत्र का प्रमाण ।

बासीदि-सहस्साणि, सत्तत्तरि जोयणाणि णव अंसा ।
सोलस-भजिदा ताओ, [1]ओसहि-णयरस्स पणिधीए ।।३०४।।

८२०७७ । ९/१६ ।

अर्थ—औषधिपुरके प्रणिधिभागमें तापक्षेत्र बयासी हजार सतत्तर योजन और सोलहसे भाजित नौ भाग अधिक है ।।३०४।।

विशेषार्थ—२७३५९१ ७/८ = २१८८७३५/८ × ३/१० = ८२०७७ ९/१६ यो० औषधिपुरमें तापक्षेत्रका प्रमाण ।

सत्तासीदि-सहस्सा, दु-सया चउवीस जोयणा अंसा ।
एक्कत्तरि सीदि-हिदा, ताव-खिदी पुंडरीगिणी[2]-णयरे ।।३०५।।

८७२२४ । ७१/८० ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी नगरमें तापक्षेत्र सतासी हजार दो सौ चौबीस योजन और अस्सीसे भाजित इकहत्तर भाग अधिक है ।।३०५।।

विशेषार्थ—२९०७४९ ५/८ = २३२५९९७/८ × ३/१० = ८७२२४ ७१/८० योजन पुण्डरीकिणीपुरके ताप क्षेत्रका प्रमाण ।

चउणउदि-सहस्सा पण-सयाणि छव्वीस जोयणा सत्ता ।
अंसा दसेहि भजिदा, पढम - पहे ताव-खिदि-परिही ।।३०६।।

९४५२६ । ७/१० ।

अर्थ—प्रथम पथमें ताप क्षेत्रकी परिधि चौरानबै हजार पाँच सौ छब्बीस योजन और दससे भाजित चार भाग अधिक है ।।३०६।।

विशेषार्थ—(प्रथम पथकी अभ्यन्तर परिधि ३१५०८९ यो०) × ३/१० = ९४५२६ ७/१० यो० तापक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण ।

द्वितीय पथमें तापक्षेत्रकी परिधि—

चउणउदि-सहस्सा, पण-सयाणि इगितीस जोयणा अंसा ।
चत्तारो पंच - हिदा, बिदिय - पहे ताव-खिदि-परिही ।।३०७।।

---

१. द ब. क. ज. होदि । २. द. ब. पुरगिणी, क. ज. पुंरिगिणी ।

९४५३१ । $\frac{४}{५}$ ।

एवं मज्झिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—द्वितीय पथमें ताप-क्षेत्रकी परिधि चौरानबै हज़ार पाँच सौ इकतीस योजन और पाँचसे भाजित चार भाग अधिक है ॥३०७॥

विशेषार्थ—द्वितीय पथमें परिधिका प्रमाण ३१५१०६$\frac{३६}{६१}$ योजन प्रमाण है । इसमेंसे $\frac{३६}{६१}$ योजन छोड़कर $\frac{३}{१०}$ का गुणा करनेपर तापक्षेत्रकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—३१५१०६ × $\frac{३}{१०}$ = ९४५३१$\frac{४}{५}$ योजन ।

इसप्रकार मध्यम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

मध्यम पथमें तापक्षेत्रकी परिधि—

पंचा-णउदि-सहस्सा, दसुत्तरा जोयणाणि तिण्णि कला ।
पंच - विहत्ता मज्झिम - पहम्मि तावस्स परिमाणं ॥३०८॥

९५०१० । $\frac{३}{५}$ ।

एवं दुचरिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—मध्यम पथमें तापका प्रमाण पंचानबै हज़ार दस योजन और पाँचसे विभक्त तीन कला अधिक (९५०१०$\frac{३}{५}$ योजन) है ॥३०८॥

इसप्रकार द्विचरम मार्ग तक ले जाना चाहिए ।

बाह्य पथमें तापक्षेत्रका प्रमाण—

पणणउदि-सहस्सा चउ-सयाणि चउणउदि जोयणा अंसा ।
पंच - हिदा बाहिरए, पढम - पहे संठिदे सूरे ॥३०९॥

९५४९४ । $\frac{१}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर बाह्य मार्गमें तापक्षेत्रका प्रमाण पंचानबै हज़ार चार सौ चौरानबै योजन और एक योजन के पाँचवें भागसे अधिक है ॥३०९॥

३१८३१४ × $\frac{३}{१०}$ = ९५४९४$\frac{१}{५}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण—

लवणोदधिके छठे भागकी परिधिमें तापक्षेत्रका प्रमाण—

अट्ठावण्ण सहस्सा, एक्क - सयं तेरसुत्तरं [1]लक्खं ।
जोयणया चउ - अंसा, पविहत्ता पंच - रूवेहिं ॥३१०॥

१५८११३ । $\frac{४}{५}$ ।

एवं होदि पमाणं, लवणोवहि-वास[2]-छट्ठ-भागस्स ।
परिहीए ताव-खेत्तं, दिवसयरे पढम - मग्ग - ठिदे ॥३११॥

अर्थ—सूर्यके प्रथम मार्गमें स्थित रहनेपर लवणोदधिके विस्तारके छठे भागकी परिधिमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण एक लाख अट्ठावन हजार एक सौ तेरह योजन और पाँच रूपोंसे विभक्त चार भाग अधिक है ॥३१०-३११॥

विशेषार्थ—लवण समुद्रके षष्ठ भागकी परिधि ५२७०४६ यो० है। $\frac{५२७०४६ \times ३}{१०}$ = १५८११३$\frac{४}{५}$ योजन ताप क्षेत्रका प्रमाण।

सूर्यके द्वितीय पथ स्थित होनेपर इच्छित परिधियोंमें
ताप-क्षेत्र निकालनेकी विधि—

इट्ठं परिरय - रासिं, चउहत्तरि दो - सएहिं गुणिदव्वं ।
णव-सय-पण्णरस-सहिदे, ताव-खिदी बिदिय-पह-ट्ठिदक्कस्स ॥३१२॥

$\frac{२७४}{६१५}$ ।

अर्थ—इष्ट-परिधि-राशिको दो सौ चौहत्तरसे गुणा करके नौ सौ पन्द्रहका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना द्वितीय पथमें स्थित सूर्यके ताप-क्षेत्रका प्रमाण होता है ॥३१२॥

विशेषार्थ—दो सूर्य मिलकर प्रत्येक परिधि को ६० मुहूर्तमें पूरा करते हैं। सूर्यके द्वितीय-पथमें स्थित रहते सर्व (१८४) परिधियोंमें १७$\frac{५९}{६१}$ मुहूर्तका दिन होता है। विवक्षित परिधिमें १७$\frac{५९}{६१}$ मुहूर्त का गुणाकर ६० मुहूर्तका भाग देनेपर ताप क्षेत्रकी परिधिका प्रमाण प्राप्त होता है, इसलिए गाथामें २७४ का गुणा कर ६१५ का भाग देनेको कहा गया है।

सूर्यके द्वितीय पथ स्थित होनेपर मेरु आदि परिधियोंमें ताप क्षेत्रका प्रमाण—

णवय-सहसा चउ-सय, उणहत्तरि जोयणा दु-सय-अंसा ।
ते-णउदि जुदा [3]ताही मेरुणगे-बिदिय-पह-ठिदे तपणे ॥३१३॥

६४६६ । $\frac{२१३}{६१५}$ ।

---

१. द. ब. क ज. लक्खा। २. द. ज. वासरछभाग। ३. द. ब. क. ज. तहा।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित रहनेपर मेरु पर्वतके ऊपर ताप क्षेत्रका प्रमाण नौ हजार चार सौ उनहत्तर योजन और दो सौ तेरानबै भाग अधिक है ।।३१३।।

मेरु परिधि ३१६२२ × २७४/९१५ = ९४६९ २९३/९१५ तापक्षेत्र ।

इगि-ति-दु-ति-पंच-कमसो, जोयणया तह कलाओ सग-तीसं ।
सग-सय-बत्तीस-हिदा, खेमा - पणिधीए ताव - खिदी ।।३१४।।

५३२३१ । ३७/७३२ ।

अर्थ—क्षेमा नगरीके प्रणिधिभागमें एक, तीन, दो, तीन और पाँच, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् तिरेपन हजार दो सौ इकतीस योजन और सातसौ बत्तीससे भाजित सैंतीस कला अधिक है ।।३१४।।

(क्षेमा-परिधि १७७७६० ५/८ = १४२२०८५/८) × २७४/९१५ = ३८९६५१२९०/७३२० = ५३२३१ ३७/७३२ ताप-क्षेत्रका प्रमाण ।

अट्ठ-छ-ति-अट्ठ-पंचा, अंक-कमे णव-पण-छ-तिय अंसा ।
णभ-छ-च्छत्तिय-भजिदा, खेमपुरी-पणिधि-ताव-खिदी ।।३१५।।

५८३६८ । ३६५९/३६६० ।

अर्थ—क्षेमपुरीके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण आठ, छह, तीन, आठ और पाँच, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् अट्ठावन हजार तीन सौ अड़सठ योजन और तीन हजार छह सौ साठसे भाजित तीन हजार छह सो उनसठ भाग अधिक है ।।३१५।।

(क्षेमपुरीकी परिधि १९४९१८ ३/८ = १५५९३४७/८) × २७४/९१५ = २१३६३०५३९/३६६० = ५८३६८ ३६५९/३६६० योजन ताप क्षेत्र ।

छण्णव-सग-दुग-छक्का, अंक-कमे पंच-तिय-छ-दोण्णि कमे ।
णभ-छ-च्छत्तिय-हरिदा, रिट्ठा - पणिधीए ताव - खिदी ।।३१६।।

६२७९६ । २६३५/३६६० ।

अर्थ—अरिष्टा नगरीके प्रणिधि-भागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण छह, नौ, सात, दो और छह इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् बासठ हजार सात सौ छयानबै योजन और तीन हजार छह सौ साठसे भाजित दो हजार छह सौ पैंतीस भाग अधिक है ।।३१६।।

(अरिष्टा की परिधि २०९७०४ ३/८ = १६७७६३५/८) × २७४/९१५ = २२९८३५९९५/३६६० = ६२७९६ २६३५/३६६० यो० ताप-क्षेत्र है ।

चउ-तिय-णव-सग-छक्का, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।
णव-चउ-चउक्क-दुगया, रिट्ठपुरी-पणिधि-ताव-खिदी ॥३१७॥

६७९३४ । $\frac{२४४९}{३६६०}$ ।

अर्थ—अरिष्टपुरीके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण चार, तीन, नौ, सात और छह इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् सड़सठ हजार नौ सौ चौंतीस योजन और दो हजार चार सौ उनंचास भाग अधिक है ॥३१७॥

(अरिष्टपुरीकी परिधि — २२६८६२$\frac{१}{८}$ = $\frac{१८१४८९७}{८}$) × $\frac{२७४}{९१५}$ = $\frac{२४८६४०८८९}{३६६०}$ = ६७९३४$\frac{२४४९}{३६६०}$ यो० तापक्षेत्र ।

दुग-छक्क-ति-दुग-सत्ता, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।
पंच-दु-चउक्क-एक्का, खग्गपुरं पणिधि-ताव-खिदी ॥३१८॥

७२३६२ । $\frac{१४२५}{३६६०}$ ।

अर्थ—खड्गपुरीके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण दो, छह, तीन, दो और सात इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् बहत्तर हजार तीन सौ बासठ योजन और एक हजार चार सौ पच्चीस भाग अधिक होता है ॥३१८॥

(खड्गपुरीकी परिधि २४१६४८$\frac{१}{८}$ = $\frac{१९३३१८५}{८}$) × $\frac{२७४}{९१५}$ = $\frac{२६४८४६३४५}{३६६०}$ = ७२३६२$\frac{१४२५}{३६६०}$ यो० ताप-क्षेत्र ।

णभ-गयण-पंच-सत्ता, सत्तंक-कमेण जोयणा अंसा ।
णव-तिय-दुगेक्कमेत्ता, मंजुसपुर-पणिधि-ताव-खिदी ॥३१९॥

७७५०० । $\frac{१२३९}{३६६०}$ ।

अर्थ—मंजूषपुरके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण शून्य, शून्य, पाँच, सात और सात, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् सतत्तर हजार पाँच सौ योजन और एक हजार दो सौ उनतालीस भाग प्रमाण होता है ॥३१९॥

(मंजूषपुरकी परिधि — २५८८०५$\frac{७}{८}$ = $\frac{२०७०४४७}{८}$) × $\frac{२७४}{९१५}$ = $\frac{२८३६५१२३९}{३६६०}$ = ७७५००$\frac{१२३९}{३६६०}$ यो० ताप-क्षेत्रका प्रमाण ।

अट्ठ-दु-णवेक्क-अट्ठा, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।
पंचेक्क-दुग-पमाणा, ओसहिपुर-पणिधि-ताव-खिदी ॥३२०॥

८१९२८ । $\frac{२१५}{३६६०}$ ।

अर्थ—औषधिपुरके प्रणिधिभागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण आठ, दो, नौ, एक और आठ, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् इक्यासी हजार नौ सौ अट्ठाईस योजन और दो सौ पन्द्रह भाग अधिक होता है ।।३२०।।

(औषधिपुरकी परिधि — २७३५९१$\frac{७}{८}$ = $\frac{२१८८७३५}{८}$) × $\frac{२७४}{९१५}$ = $\frac{५९९७१३३९०}{७३२०}$ = ८१९२८$\frac{२१५}{३६६०}$ यो० तापक्षेत्रका प्रमाण है ।

छ-च्छक्क-गयण-सत्ता, अट्ठंक-कमेण जोयणाणि कला ।
एक्कोणत्तीस - मेत्ता, ताव - खिदी पुंडरिगिणिए ।।३२१।।

८७०६६ । $\frac{२९}{३६६०}$ ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी नगरीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण छह, छह, शून्य, सात और आठ, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् सतासी हजार छ्यासठ योजन और उनतीस कला प्रमाण होता है ।।३२१।।

(पुण्डरीकिणीपुरकी परिधि — २९०७४९$\frac{५}{८}$ = $\frac{२३२५९९७}{८}$) × $\frac{२७४}{९१५}$ = $\frac{६३७३२३१७८}{७३२०}$ = ८७०६६$\frac{२९}{३६६०}$ योजन ताप-क्षेत्रका प्रमाण है ।

सूर्यके द्वितीय पथ स्थित होनेपर अभ्यन्तर (प्रथम) वीथीमें ताप क्षेत्रका प्रमाण—

चउ-पंच-ति-चउ-णवया, अंक-कमे छक्क-सत्त-चउ-अंसा ।
पंचेक्क-णव-हिदाओ, बिदिय-पहक्कम्मि पढम-पह तावो ।।३२२।।

९४३५४ । $\frac{४७६}{९१५}$ ।

अर्थ—द्वितीय पथ स्थित सूर्यका तापक्षेत्र प्रथम (अभ्यन्तर) वीथीमें चार, पाँच, तीन, चार और नौ, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् चौरानबै हजार तीन सौ चौवन योजन और नौ सौ पन्द्रहसे भाजित चार सौ छ्यत्तर भाग अधिक होता है ।।३२२।।

(अभ्यन्तर वीथीकी परिधि—३१५०८९) × $\frac{२७४}{९१५}$ = ९४३५४$\frac{४७६}{९१५}$ योजन ताप-क्षेत्रका प्रमाण ।

द्वितीय पथकी द्वितीय वीथीका तापक्षेत्र—

चउ-णउदि-सहस्सा तिय-सयाणि उणसट्ठि जोयणा अंसा ।
उणसट्ठी पंच-सया, बिदिय-पहक्कम्मि बिदिय-पह-तावो ।।३२३।।

९४३५९ । $\frac{५५९}{९१५}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) द्वितीय पथमें स्थित रहनेपर द्वितीय-वीथीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण चौरानबै हजार तीन सौ उनसठ योजन और पाँच सौ उनसठ भाग अधिक होता है ॥३२३॥

विशेषार्थ—द्वितीय पथकी परिधि प्रमाण ३१५१०६ $\frac{३८}{६१}$ योजनमेंसे $\frac{३८}{६१}$ यो० छोड़कर $\frac{५४८}{१८३०}$ यो० का गुणा करनेपर यहाँ के तापक्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा :—

३१५१०६ यो० × $\frac{५४८}{१८३०}$ = ९४३५९ $\frac{५५९}{९१५}$ योजन परिधि है।

द्वितीय पथकी तृतीय वीथीका तापक्षेत्र—

चउणउदि-सहस्सा तिय-सयाणि पण्णट्ठि जोयणा अंसा।
इगि-रूवं होंति तवो, बिदिय-पहक्कम्मि तदिय-पह-तावो ॥३२४॥

९४३६५। $\frac{१}{९१५}$।

एवं मज्झिम-पहस्स आइल्ल-पह-परियंतं णेदव्वं।

अर्थ—(सूर्यके) द्वितीय पथमें स्थित रहने पर तृतीय वीथीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण चौरानबै हजार तीन सौ पेंसठ योजन और एक भाग प्रमाण अधिक ९४३६५ $\frac{१}{९१५}$ यो० होता है ॥३२४॥

इसप्रकार मध्यम पथके आदि पथ पर्यन्त ले जाना चाहिए।

द्वितीय पथकी मध्यम वीथीका ताप-क्षेत्र—

सत्त-तिय-अट्ठ-चउ-णव-अंक-क्कमेण जोयणाणि अंसा।
तेणउदी चारि-सया, बिदिय-पहक्कम्मि मज्झ-पह-तावो ॥३२५॥

९४८३७। $\frac{४९३}{९१५}$।

एवं बाहिर-पह-हेट्ठिम-पहंतं णेदव्वं।

अर्थ—(सूर्यके) द्वितीय मार्गमें स्थित रहनेपर मध्यम पथमें तापका प्रमाण सात, तीन, आठ, चार और नौ, इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् चौरानबै हजार आठ सौ सेंतीस योजन और चार सौ तेरानबै भाग अधिक ९४८३७ $\frac{४९३}{९१५}$ योजन होता है ॥३२५॥

इसप्रकार बाह्य पथके अधस्तन पथ तक ले जाना चाहिए।

द्वितीय पथकी बाह्य वीथीका ताप-क्षेत्र—

पणणउदि सहस्सा तिय-सयाणि वीसुत्तराणि जोयणया ।
छत्तीस-दु-सय-अंसा, बिदिय-पहक्कम्मि अंत-पह-तावो ॥३२६॥

९५३२० । $\frac{२३६}{९१५}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) द्वितीय पथमें स्थित होनेपर अन्तिम पथमें तापका प्रमाण पंचानबै हजार तीन सौ बीस योजन और दो सौ छत्तीस भाग अधिक (९५३२०$\frac{२३६}{९१५}$ योजन) है ॥३२६॥

सूर्यके द्वितीय पथ में स्थित होनेपर लवणसमुद्रके छठे भागमें ताप-क्षेत्र—

पंच-दुग-अट्ठ-सत्ता, पंचेक्कंक - क्कमेण जोयणया ।
अंसा णव-दुग-सत्ता, बिदिय-पहक्कम्मि लवण-छट्ठंसे ॥३२७॥

१५७८२५ । $\frac{७२९}{९१५}$ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय-पथमें स्थित होनेपर लवणसमुद्रके छठे भागमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण पांच, दो, आठ, सात, पांच और एक इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् एक लाख सत्तावन हजार आठ सौ पच्चीस योजन और सात सौ उनतीस भाग अधिक (१५७८२५$\frac{७२९}{९१५}$ योजन) है ॥३२७॥

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित होनेपर परिधियोंमें ताप-क्षेत्र प्राप्त करनेकी विधि—

इट्ठं परिरय - रासिं, सगदालब्भहिय-पंच-सय-गुणिदं ।
णभ-तिय-अट्ठेक्क-हिदे, तावो तवणम्मि तदिय-मग्ग-ठिदे ॥३२८॥

$\frac{५४७}{१८३०}$ ।

अर्थ—इष्ट परिधिको पांच सौ सैंतालीससे गुणित करके उसमें एक हजार आठ सौ तीसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहनेपर विवक्षित परिधिमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण रहता है ॥३२८॥

विशेषार्थ—*यहाँ* सूर्य तृतीय पथमें स्थित है और इस पथमें दिनका प्रमाण ($\frac{३६}{२}$ — $\frac{४}{६१}$ =) १७$\frac{५७}{६१}$ = $\frac{१०९४}{६१}$ मुहूर्त है । अतः विवक्षित परिधिके प्रमाणमें $\frac{१०९४}{६१}$ मुहूर्तोंका गुणाकर ६० मुहूर्तों का भाग देनेपर अर्थात् ($\frac{१०९४}{६१}$ × $\frac{१}{६०}$ = $\frac{५४७}{१८३०}$) ५४७ का गुणाकर १८३० का भाग देनेपर ताप-क्षेत्र प्राप्त होता है ।

सूर्य के तृतीय पथमें स्थित होनेपर मेरु आदि परिधियोंमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण—

णवय-सहस्सा चउस्सयाणि बावण्ण-जोयणाणि कला ।
चउहत्तरि-मेत्ताओ, तदिय - पहक्कम्मि मंदरे ताओ ॥३२९॥

९४५२ । $\frac{७४}{१८३०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित होनेपर सुमेरु पर्वतके ऊपर ताप-क्षेत्रका प्रमाण नौ हजार चार सौ बावन योजन और चौहत्तर कला प्रमाण अधिक है ॥३२९॥

(मेरु परिधि — $\frac{३१६२२}{१}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$ = ९४५२ $\frac{७४}{१८३०}$ योजन तापक्षेत्र है ।

तिय-तिय-एक्क-ति-पंचा, अंक-कमे पंच-सत्त-छ-दुग-कला ।
अट्ठ-दु-णव-दुग-भजिदा, तावो खेमाए तदिय - पह - सूरे ॥३३०॥

५३१३३ । $\frac{२६७५}{२९२८}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित होनेपर क्षेमा नगरी में तापका प्रमाण तीन, तीन, एक, तीन और पांच इन अंकोंके क्रमसे अर्थात् तिरेपन हजार एक सौ तेंतीस योजन और दो हजार नौ सौ अट्ठाईससे भाजित दो हजार छह सौ पचहत्तर कला है ॥३३०॥

(क्षेमाकी परिधि १७७७६० $\frac{५}{८}$ = $\frac{१४२२०८०५}{८}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$ = $\frac{१५५५७५६०३३}{२९२८}$ = ५३१३३ $\frac{२६७५}{२९२८}$ योजन सूर्यके तृतीय पथ स्थित क्षेमानगरीके ताप क्षेत्रका प्रमाण ।

दुग-छ-दुग-अट्ठ-पंचा, अंक - कमे णव-दुगेक्क-सत्त-कला ।
ख-चउ-छ-चउ-इगि-भजिदा, तदिय-पहक्कम्मि खेमपुर-तावो ॥३३१॥

५८२६२ । $\frac{७१२९}{१४६४०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित रहते क्षेमपुरीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण दो, छह, दो, आठ और पांच, इन अंकोंके क्रमसे अट्ठावन हजार दो सौ बासठ योजन और चौदह हजार छह सौ चालीससे भाजित सात हजार एक सौ उनतीस कला है ॥३३१॥

(क्षेमपुरीकी परिधि १९४९१८ $\frac{३}{८}$ = $\frac{१५५९३४७}{८}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$ = $\frac{८५२९६१८०९}{१४६४०}$ = ५८२६२ $\frac{७१२९}{१४६४०}$ योजन ताप-क्षेत्र ।

दुग-अट्ठ-छ-दुग-छक्का, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।
पंचय-छ-अट्ठ-एक्का, तावो रिट्ठाम्र तदिय-पह-सूरे ॥३३२॥

६२६८२ । $\frac{१८६५}{१४६४०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित रहते अरिष्टा नगरीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण दो, आठ, छह, दो और छह, इन अंकोंके क्रमसे बासठ हजार छह सौ बयालीस योजन और एक हजार आठ सौ पैंसठ भाग है ॥३३२॥

(अरिष्टाको परिधि २०९७०४ $\frac{३}{८}$ = $\frac{१६७७६३५}{८}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$ = $\frac{१८३५३३२६९०}{२९२८०}$ = ६२६८२ $\frac{१८६५}{१४६४०}$ यो० तापक्षेत्र ।

गयणेक्क-अट्ठ-सत्ता, छक्कं अंक-क्कमेण जोयणया ।
अंसा णव-पण-दु-ख-इगि, तदिय-पहक्कम्मि रिट्ठपुरे ॥३३३॥

६७८१० । $\frac{१०२५९}{१४६४०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होने पर अरिष्टपुरमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण शून्य, एक, आठ, सात और छह, इन अंकोंके क्रमसे सड़सठ हजार आठ सौ दस योजन और दस हजार दो सौ उनसठ भाग है ॥३३३॥

(अरिष्टपुरी की परिधि २२६८६२ $\frac{१}{८}$ = $\frac{१८१४८९७}{८}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$ = $\frac{९९२७४८६५९}{१४६४०}$ = ६७८१० $\frac{१०२५९}{१४६४०}$ योजन तापक्षेत्र ।

णभ-तिय-दुग-दुग-सत्ता, अंक-कमे जोयणाणि अंसा य ।
पण-णव-णव-चउमेत्ता, तावो खग्गाए तदिय-पह-तवणे ॥३३४॥

७२२३० । $\frac{४९९५}{१४६४०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित रहने पर खड्गापुरीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण शून्य, तीन, दो, दो और सात इन अंकोंके क्रमसे बहत्तर हजार दो सौ तीस योजन और चार हजार नौ सौ पंचानबै भाग है ॥३३४॥

(खड्गपुरीकी परिधि २४१६४८ $\frac{१}{८}$ = $\frac{१९३३१८५}{८}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$ = $\frac{२११४९०४३९०}{२९२८०}$ = ७२२३० $\frac{४९९५}{१४६४०}$ योजन ताप-क्षेत्रका प्रमाण है ।

अट्ठ-पण-तिदय-सत्ता, सत्तंक-कमे णवट्ठ-ति-ति-एक्का ।
होंति कलाओ तावो, तदिय-पहक्कम्मि मंजुसपुरीए ॥३३५॥

७७३५८ । $\frac{१३३८९}{१४६४०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित होनेपर मंजूषापुरीमें तापक्षेत्रका प्रमाण आठ, पाँच, तीन, सात और सात इन अंकोंके क्रमसे सतत्तर हजार तीन सौ अट्ठावन योजन और तेरह हजार तीन सौ नवासी कला अधिक है ॥३३५॥

(मंजूषपुरकी परिधि २५८८०५$\frac{७}{८}$ = $\frac{२०७०४४७}{८}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$ = $\frac{११३२५३४५०९}{१४६४०}$ =७७३५८$\frac{१३३८९}{१४६४०}$ योजन ताप-क्षेत्र है।

अट्ठ-सग-सत्त-एक्का, अट्ठंक-कमेण पंच-दुग-एक्का ।
अट्ठ य अंसा तावो, तदिय-पहक्कम्मि ओसहपुरीए ।।३३६।।

८१७७८ । $\frac{८१२५}{१४६४०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होने पर औषधिपुरीमें तापक्षेत्रका प्रमाण आठ, सात, सात, एक और आठ, इन अंकोंके क्रमसे इक्यासी हजार सात सौ अठहत्तर योजन और आठ हजार एक सौ पच्चीस भाग है ।।३३६।।

(औषधिपुरीकी परिधि २७३५९१$\frac{७}{८}$ = $\frac{२१८८७३५}{८}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$ = $\frac{११९७२३८०४५}{१४६४०}$ = ८१७७८$\frac{८१२५}{१४६४०}$ यो० तापक्षेत्र ।

सत्त-णभ-णवय-छक्का, अट्ठंक-कमेण णव-सगट्ठेक्का ।
अंसा होदि हु तावो, तदिय-पहक्कम्मि पुंडरिगिणिए ।।३३७।।

८६९०७ । $\frac{१८७९}{१४६४०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होनेपर पुंडरीकिणी नगरीमें तापक्षेत्र सात, शून्य, नौ, छह और आठ, इन अंकोंके क्रमसे छयासी हजार नौ सौ सात योजन और एक हजार आठ सौ उन्यासी भाग है ।।३३७।।

(पुण्डरीकिणीपुरीकी परिधि २९०७४९$\frac{५}{८}$=$\frac{२३२५९९७}{८}$) × $\frac{५४७}{१८३०}$=$\frac{१२७२३२०३५९}{१४६४०}$= ८६९०७$\frac{१८७९}{१४६४०}$ योजन तापक्षेत्र ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते अभ्यन्तर वीथी का तापक्षेत्र—

दुग-अट्ठ-एक्क-चउ-णव, अंक-कमे ति-दुग-छक्क अंसा य ।
णभ-तिय-अट्ठेक्क-हिदा, तदिय-पहक्कम्मि पढम-पह-तावो ।।३३८।।

९४१८२ । $\frac{६२३}{१८३०}$ ।

अर्थ—(सूर्य के) तृतीय पथमें स्थित होनेपर प्रथम वीथी में ताप-क्षेत्र दो, आठ, एक, चार और नौ, इन अंकोंके क्रमसे चौरानबे हजार एक सौ बयासी योजन और एक हजार आठ सौ तीस से भाजित छह सौ तेईस भाग प्रमाण है ।।३३८।।

(अभ्यन्तर वीथी की परिधि ३१५०८९) × $\frac{५४७}{१८३०}$=$\frac{१७२३५३६८३}{१८३०}$=९४१८२$\frac{६२३}{१८३०}$ योजन ताप-क्षेत्र ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते द्वितीय वीथी का ताप-क्षेत्र—

चउ-णउदि-सहस्सा इगि-सयं च सगसीदि जोयणा अंसा ।
बाहत्तरि सत्त-सया, तदिय-पहक्कम्मि बिदिय-पह-तावो ॥३३९॥

९४१८७ । $\frac{७७२}{१८३०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित रहने पर द्वितीय वीथीमें ताप-क्षेत्र चौरानबै हजार एक सो सतासी योजन और सात सौ बहत्तर भाग प्रमाण है ॥३३९॥

द्वितीय पथकी परिधि ३१५१०६ यो० × $\frac{५४७}{१८३०}$ यो० = ९४१८७$\frac{७७२}{१८३०}$ यो० ताप क्षेत्र है ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते तृतीय वीथी का ताप-क्षेत्र—

चउणउदि-सहस्सा इगि-सयं च बाणउदि जोयणा अंसा ।
सोलस-सया तिरधिया, तदिय-पहक्कम्मि तदिय-पह-तावो ॥३४०॥

९४१९२ । $\frac{१६०३}{१८३०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होनेपर तृतीय वीथीमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण चौरानबै हजार एक सौ बानबै योजन और सोलह सौ तीन भाग अधिक अर्थात् (९४१९२$\frac{१६०३}{१८३०}$ योजन) है ॥३४०॥

सूर्य के तृतीय पथमें स्थित रहते चतुर्थ वीथीका ताप-क्षेत्र—

चउ-णउदि-सहस्सा इगि-सयं च अडणउदि जोयणा अंसा ।
तेसट्ठी दोण्णि सया, तदिय-पहक्कम्मि तुरिम-पह-तावो ॥३४१॥

९४१९८ । $\frac{२६३}{१८३०}$ ।

एवं मज्झिम-पह-आइल्ल-परिहि-परियंतं णेदव्वं ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होनेपर चतुर्थ वीथीमें तापक्षेत्र चौरानबै हजार एक सो अट्ठानबै योजन और दो सौ तिरेसठ भाग (९४१९८$\frac{२६३}{१८३०}$ योजन) प्रमाण है ॥३४१॥

इसप्रकार मध्यम पथकी आदि (प्रथम) परिधि पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते मध्यम पथका ताप-क्षेत्र—

चउणउदि सहस्सा छस्सयाणि चउसट्ठि जोयणा अंसा ।
चउहत्तरि अट्ठ-सया, तदिय-पहक्कम्मि मज्झ-पह-तावो ॥३४२॥

९४६६४ । $\frac{८७४}{१८३०}$ ।

एवं दुचरिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित रहते मध्यम पथमें ताप-क्षेत्र चौरानबे हजार छह सौ चौंसठ योजन और आठ सौ चौहत्तर भाग (९४६६४ $\frac{८७४}{१८३०}$ योजन) प्रमाण है ॥३४२॥

इसप्रकार द्विचरम मार्ग तक ले जाना चाहिए।

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते बाह्य वीथीका तापक्षेत्र—

पणणउदि सहस्सा इगि-सयं च छादाल जोयणाणि कला ।
अट्ठत्तरि पंच-सया, तदिय-पहक्कम्मि बहि-पहे-तावो ॥३४३॥

९५१४६ । $\frac{५७८}{१८३०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय पथमें स्थित होनेपर बाह्य पथमें ताप-क्षेत्र पंचानबे हजार एक सौ छयालीस योजन और पाँच सौ अठहत्तर कला (९५१४६ $\frac{५७८}{१८३०}$ योजन) प्रमाण है ॥३४३॥

सूर्यके तृतीय पथमें स्थित रहते लवणसमुद्रके छठे-भागमें ताप-क्षेत्र—

सग-तिय-पण-सग-पंचा, एक्कं कमसो दु-पंच-चउ-एक्का ।
अंसा हवेदि तावो, तदिय-पहक्कम्मि लवण - छट्ठंसे ॥३४४॥

१५७५३७ । $\frac{१४५२}{१८३०}$ ।

अर्थ—(सूर्यके) तृतीय मार्गमें स्थित होनेपर लवण-समुद्रके छठे भागमें ताप-क्षेत्र सात, तीन, पाँच, सात, पाँच और एक इन अंकोंके क्रमसे एक लाख सत्तावन हजार पाँच सौ सैंतीस योजन और एक हजार चार सौ बावन भाग प्रमाण है ॥३४४॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके छठे भागकी परिधिका प्रमाण ५२७०४६ यो० है। सूर्य तृतीय वीथीमें स्थित है और उस समय दिन १७ $\frac{५७}{६१}$ = $\frac{१०९४}{६१}$ मुहूर्तोंका होता है। इन मुहूर्तोंका परिधिके प्रमाणमें गुणा कर ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर ताप-क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

$\frac{५२७०४६}{१}$ × $\frac{१०९४}{६१}$ × $\frac{१}{६०}$ = $\frac{५७६५८८३२४}{३६६०}$ = १५७५३७ $\frac{२९०४}{३६६०}$ योजन।

शेष वीथियोंमें तापक्षेत्रका प्रमाण—

धरिऊण दिण-मुहुत्तं[1], पडि-वीहिं सेसएसु मग्गेसु ।
सव्व - परिहीण तावं, दुचरिम - मग्गंत णेदव्वं ॥३४५॥

---

१. द. ब. क. ज. मुहुत्त।

अर्थ—इसीप्रकार प्रत्येक वीथीमें दिनके मुहूर्तोंका आश्रय करके शेष मार्गोंमें द्विचरम मार्ग पर्यन्त सब-परिधियोंमें ताप-क्षेत्र ज्ञात कर लेना चाहिए ।।३४५।।

विशेषार्थ—प्रथम, द्वितीय और तृतीय पथ स्थित सूर्यके तापक्षेत्रका प्रमाण प्रत्येक वीथीके दिन मुहूर्तोंका आश्रय कर १९४ परिधियोंमेंसे कुछ परिधियोंमें कहा जा चुका है और बाह्य वीथी स्थित सूर्यके तापक्षेत्रका प्रमाण कुछ परिधियोंमें आगे कहा जा रहा है । शेष (१८४ — ४=) १८० वीथियोंमें स्थित सूर्यके ताप क्षेत्रका प्रमाण प्रत्येक वीथीके दिन मुहूर्तोंका आश्रय कर पूर्वोक्त नियमानुसार ही सर्व परिधियोंमें ज्ञात कर लेना चाहिए ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होने पर इच्छित परिधिमें तापक्षेत्र
निकालनेकी विधि—

पंच - विहत्ते इच्छिय-परिरय-रासिम्मि होदि जं लद्धं ।
सा [1]ताव-खेत्त-परिही, बाहिर-मग्गम्मि दुमणि-ठिद-समए ।।३४६।।

अर्थ—इच्छित परिधिकी राशिमें पाँचका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतनी सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित रहते समय ताप क्षेत्रकी परिधि होती है ।।३४६।।

विशेषार्थ—यहाँ सूर्य बाह्य (१८४ वीं) वीथीमें स्थित है और इस वीथी में दिनका प्रमाण केवल १२ मुहूर्तका है । विवक्षित परिधिके प्रमाणमें १२ मुहूर्तका गुणा कर ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर अर्थात् ($\frac{१२}{६०}$)= ५ का भाग देनेपर तापक्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मेरु आदि की परिधियोंमें
ताप-क्षेत्रका प्रमाण—

छस्स सहस्सा ति-सया, चउवीसं जोयणाणि दोण्णि कला ।
पंच-हिदा मेरु - णगे, तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ।।३४७।।

६३२४ । $\frac{२}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मेरु पर्वतके ऊपर ताप-क्षेत्रका प्रमाण छह हजार तीन सौ चौबीस योजन और पाँचसे भाजित दो कला रहता है ।।३४७।।

(मेरु परिधि ३१६२२) ÷ ५=६३२४$\frac{२}{५}$ योजन तापक्षेत्र है ।

---

१ ब. तवखेत्ता ।

पंचत्तीस-सहस्सा, पण-सय बावण्ण जोयणा अंसा ।
अट्ठ-हिदा खेमोवरि, तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३४८॥

३५५५२ । $\frac{१}{८}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहनेपर क्षेमा नगरीके ऊपर ताप-क्षेत्र पैंतीस हजार पाँच सौ बावन योजन और योजनके आठवें भाग प्रमाण रहता है ॥३४८॥

(क्षेमानगरी की परिधि १७७७९६० $\frac{५}{८}$ = $\frac{१४२२३६८५}{८}$) × $\frac{१}{५}$ = $\frac{२८४४७३७}{८}$ = ३५५५२ $\frac{१}{८}$ योजन तापक्षेत्र है ।

तिय-अट्ठ-णवट्ठ-तिया, अंक-कमे सत्त वोण्णि अंसा य ।
चाल - विहत्ता तावो, खेमपुरी बाहि-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३४९॥

३८९८३ । $\frac{२७}{४०}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर क्षेमपुरीमें तापक्षेत्र तीन, आठ, नौ, आठ और तीन, इन अंकोंके क्रमसे अड़तीस हजार नौ सौ तेरासी योजन और चालीससे विभक्त सत्ताईस भाग प्रमाण रहता है ॥३४९॥

(क्षेमपुरीकी परिधि १९४९१८ $\frac{३}{८}$ = $\frac{१५५९३४७}{८}$) × $\frac{१}{५}$ = $\frac{१५५९३४७}{४०}$ = ३८९८३ $\frac{२७}{४०}$ योजन तापक्षेत्र है ।

एक्कत्ताल-सहस्सा, णव-सय-चालीस जोयणा भागा ।
पणतीसं रिट्ठाए, [1]तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३५०॥

४१९४० । $\frac{३५}{४०}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्यपथमें स्थित होनेपर अरिष्टा नगरीमें तापक्षेत्र इकतालीस हजार नौ सौ चालीस योजन और पैंतीस भाग प्रमाण रहता है ॥३५०॥

(अरिष्टा नगरीकी परिधि २०९७०४ $\frac{३}{८}$ = $\frac{१६७७६३५}{८}$) × $\frac{१}{५}$ = $\frac{३३५५२७}{८}$ = ४१९४० $\frac{७}{८}$ योजन तापक्षेत्र है ।

पंचत्ताल-सहस्सा, बाहत्तरि ति-सय जोयणा अंसा ।
सत्तरस अरिट्ठपुरे, तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३५१॥

४५३७२ । $\frac{१७}{४०}$ ।

---

१. द. ब. ताहो ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर अरिष्टपुरमें तापक्षेत्र पैंतालीस हजार तीन सौ बहत्तर योजन और सत्तरह भाग प्रमाण रहता है ॥३५१॥

(अरिष्टपुरी की परिधि २२६८६२$\frac{१}{८}$=$\frac{१८१४८९७}{८}$)×$\frac{१}{५}$=$\frac{१८१४८९७}{४०}$ = ४५३७२$\frac{१७}{४०}$ योजन तापक्षेत्र है ।

अट्ठत्ताल-सहस्सा, ति-सया उणतीस जोयणा अंसा ।
पणुवीसा लग्गोवरि, तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३५२॥

४८३२९ । $\frac{५}{८}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्यपथमें स्थित होनेपर खड्गानगरीमें ताप-क्षेत्र अड़तालीस हजार तीन सौ उनतीस योजन और पच्चीस भाग प्रमाण है ॥३५२॥

(खड्गानगरी की परिधि २४१६४८$\frac{१}{८}$=$\frac{१९३३१८५}{८}$)×$\frac{१}{५}$=$\frac{३८६६३७}{८}$=४८३२९$\frac{५}{८}$ योजन तापक्षेत्र है ।

एक्कावण्ण-सहस्सा, सत्त-सया एक्कसट्ठि जोयणया ।
सत्तंसा बाहिर - पह - ठिद - सूरे मंजुसे तावो ॥३५३॥

५१७६१ । $\frac{७}{४०}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मंजूषा नगरीमें तापक्षेत्र इक्यावन हजार सात सौ इकसठ योजन और सात भाग प्रमाण रहता है ॥३५३॥

(मंजूषापुरकी परिधि २५८८०५$\frac{७}{८}$ = $\frac{२०७०४४७}{८}$)×$\frac{१}{५}$=$\frac{२०७०४४७}{४०}$ = ५१७६१$\frac{७}{४०}$ योजन तापक्षेत्र है ।

चउवण्ण-सहस्सा, सग-सयाणि अट्ठरस जोयणा अंसा ।
पण्णरस ओसहिपुरे, तावो बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥३५४॥

५४७१८ । $\frac{१५}{४०}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर औषधिपुरमें तापक्षेत्र चौवन हजार सात सौ अठारह योजन और पन्द्रह भाग प्रमाण रहता है ॥३५४॥

(औषधिपुरकी परिधि २७३५९१$\frac{७}{८}$=$\frac{२१८८७३५}{८}$)×$\frac{१}{५}$=$\frac{४३७७४७}{८}$=५४७१८$\frac{३}{८}$ योजन तापक्षेत्र है ।

अट्ठावण्ण-सहस्सा, इगि-सय-उणवण्ण जोयणा अंसा ।
सगतीस बहि-पह-ट्ठिद-तवणे तावो पुरम्मि चरिमम्मि ।।३५५।।

५८१४९ । $\frac{३७}{४०}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर अन्तिमपुर अर्थात् पुण्डरीकिणी नगरीमें ताप-क्षेत्र अट्ठावन हजार एक सौ उनंचास योजन और सैंतीस भाग प्रमाण रहता है ।।३५५।।

(पुण्डरीकिणीपुरकी परिधि २९०७४९$\frac{५}{८}$ = $\frac{२३२५९९७}{८}$) × $\frac{१}{५}$ = $\frac{२३२५९९७}{४०}$ = ५८१४९$\frac{३७}{४०}$ योजन तापक्षेत्र है ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर प्रथम पथमें ताप-क्षेत्र—

तेसट्ठि - सहस्साणि, सत्तरसं जोयणाणि चउ-अंसा ।
पंच-हिदा बहि-मग्ग-ट्ठिदम्मि दुमणिम्मि पढम-पह-तावो ।।३५६।।

६३०१७ । $\frac{४}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्यमार्गमें स्थित होनेपर प्रथम पथ (अभ्यन्तर वीथी) में ताप-क्षेत्र तिरेसठ हजार सत्तरह योजन और पाँचसे भाजित चार भाग प्रमाण रहता है ।।३५६।।

(प्रथम पथ की परिधि ३१५०८९) ÷ ५ = ६३०१७$\frac{४}{५}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण है ।

सूर्यके बाह्यपथ स्थित रहते द्वितीय वीथीमें तापक्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, जोयणया एक्कवीस एक्ककला ।
बिदिय-पह-ताव-परिही, बाहिर-मग्ग-ट्ठिदे तवणे ।।३५७।।

६३०२१ । $\frac{१}{५}$ ।

एवं मज्झिम-पहंत णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर द्वितीय वीथी की ताप-परिधिका प्रमाण तिरेसठ हजार इक्कीस योजन और एक भाग प्रमाण है ।।३५७।।

(द्वितीय पथ की परिधि ३१५१०६ यो०) × $\frac{१}{५}$ = ६३०२१$\frac{१}{५}$ योजन ताप-परिधि है ।

इसप्रकार मध्यम पथ पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यके बाह्यमार्गमें स्थित होनेपर मध्यम पथमें तापक्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, ति-सया चालीस जोयणा दु-कला ।
मज्झ-पह-ताव-खेत्तं, विरोचणे बाहि - मग्ग - ट्ठिदे ।।३५८।।

६३३४० । $\frac{2}{5}$ ।

एवं दुचरिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—वैरोचन (सूर्य) के बाह्यमागमें स्थित होनेपर मध्यम पथमें ताप-क्षेत्रका प्रमाण तिरेसठ हजार तीन सौ चालीस योजन और दो कला रहता है ।।३५८।।

(मध्यम पथकी परिधि ३१६७०२) ÷ ५ = ६३३४०$\frac{2}{5}$ योजन ताप-क्षेत्र है ।

इसप्रकार द्विचरम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

सूर्यके बाह्य पथ स्थित होनेपर बाह्यपथमें तापक्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, छस्सय बासट्ठि जोयणाणि कला ।
चत्तारो बहि-मग्ग-ट्ठिदम्मि तरणिम्मि बहि-पहे-ताओ ।।३५९।।

६३६६२ । $\frac{4}{5}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर बाह्यमार्गमें ताप-क्षेत्र तिरेसठ हजार छह सौ बासठ योजन और चार कला प्रमाण रहता है ।।३५९।।

(बाह्य पथकी परिधि ३१८३१४) ÷ ५ = ६३६६२$\frac{4}{5}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण है ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते लवण-समुद्रके छठे भागमें
तापक्षेत्रका प्रमाण—

एक्कं लक्खं पण-जुद-चउवण्ण-सयाणि जोयणा अंसा ।
बाहिर-पह-ट्ठिदक्के, ताव - खिदी लवण - छट्ठंसे ।।३६०।।

१०५४०९ । $\frac{1}{5}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर लवणसमुद्रके छठे भागमें ताप-क्षेत्र एक लाख पाँच हजार चार सौ नौ योजन और एक भाग प्रमाण है ।।३६०।।

(लवणसमुद्रके छठे भागकी परिधि ५२७०४६) ÷ ५ = १०५४०९$\frac{1}{5}$ योजन तापक्षेत्रका प्रमाण है ।

सूर्यकी किरण-शक्तियोंका परिचय—

आदिम-पहादु बाहिर-पहम्मि भाणुस्स गमण-कालम्मि ।
हाएदि किरण - सत्ती, वड्ढदि आगमण - समयम्मि ।।३६१।।

अर्थ—प्रथम पथसे बाह्य पथकी ओर जाते समय सूर्यकी किरण-शक्ति हीन होती है और बाह्य पथसे आदि पथकी ओर वापिस आते समय वह किरण-शक्ति वृद्धिगत होती है ॥३६१॥

दोनों सूर्योंका तापक्षेत्र—

ताव खिदो परिहीओ, एदाओ एक्क-कमलणाहम्मि ।
दुगुणिद-परिमाणाओ, सहस्स - किरणेसु दोण्हम्मि ॥३६२॥

ताव-खिदि-परिही समत्ता ।

अर्थ—एक सूर्यके रहते ताप-क्षेत्र-परिधिमें जितना ताप रहता है उससे दुगुने प्रमाण ताप दो सूर्योंके रहनेपर होता है ॥३६२॥

ताप-क्षेत्र परिधिका कथन समाप्त हुआ ।

सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते रात्रिका प्रमाण—

सव्वासुं परिहीसुं, पढम-पह-ट्ठिद-सहस्स-किरणम्मि ।
बारस - मुहुत्तमेत्ता, पुह पुह उप्पज्जदे रत्ती ॥३६३॥

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहनेपर पृथक्-पृथक् सब (१९४) परिधियोंमें बारह मुहूर्त प्रमाण रात्रि होती है ॥३६३॥

सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते इच्छित परिधिमें तिमिरक्षेत्र
प्राप्त करने की विधि—

इच्छिद-परिहि-पमाणं, पंच-विहत्तम्मि होदि जं लद्धं ।
सा तिमिर-खेत्त-परिही, पढम-पह-ट्ठिद-विणेसम्मि ॥३६४॥

५ ।

अर्थ—इच्छित परिधि-प्रमाणको पाँचसे विभक्त करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर तिमिर क्षेत्रको परिधिका प्रमाण होता है ॥३६४॥

विशेषार्थ—यहाँ सूर्य प्रथम वीथीमें स्थित है और इस वीथीमें रात्रिका प्रमाण १२ मुहूर्तका है । विवक्षित परिधिके प्रमाणमें १२ मुहूर्तका गुणाकर ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर अर्थात् ($\frac{१२}{६०}$)=$\frac{१}{५}$ अर्थात् ५ का भाग देनेपर तिमिर-क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है ।

सूर्यके प्रथम पथमें रहते मेरु आदि परिधियोंमें तिमिर क्षेत्रका प्रमाण—

छस्स सहस्सा ति-सया, चउवीसं जोयणाणि दोण्णि कला ।
मेरुगिरि - तिमिर - खेत्तं, आदिम - मग्गट्ठिदे तवणे ॥३६५॥

६३२४ । $\frac{२}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके आदि (प्रथम) मार्गमें स्थित होनेपर मेरु पर्वतके ऊपर तिमिरक्षेत्रका प्रमाण छह हजार तीन सौ चौबीस योजन और दो भाग अधिक है ॥३६५॥

(मेरु परिधि $\frac{३१६२२}{१}$) × $\frac{१}{५}$ = ६३२४$\frac{२}{५}$ योजन तिमिरक्षेत्र ।

पणतीस-सहस्सा पण-सयाणि बावण्ण-जोयणा अंसा ।
अट्ठ-हिदा खेमाए, तिमिर-खिदी पढम-पह-ठिद-पयंगे ॥३६६॥

३५५५२ । $\frac{१}{८}$ ।

अर्थ—पतंग (सूर्य) के प्रथम पथमें स्थित होनेपर क्षेमा नगरीमें तिमिरक्षेत्र पैंतीस हजार पाँच सौ बावन योजन और एक योजनके आठवें भाग-प्रमाण रहता है ॥३६६॥

(क्षेमाकी परिधि १७७७६०$\frac{५}{८}$ = $\frac{१४२२०८५}{८}$) × $\frac{१}{५}$ = $\frac{२८४४१७}{८}$ = ३५५५२$\frac{१}{८}$ योजन तिमिरक्षेत्र ।

तिय-अट्ठ-णवट्ठ-तिया, अंक-कमे सग-दुगंस चाल-हिदा ।
खेमपुरी-तम-खेत्तं, दिवायरे पढम - मग्ग - ठिदे ॥३६७॥

३८९८३ । $\frac{२७}{४०}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम मार्गमें स्थित होनेपर क्षेमपुरीमें तम-क्षेत्र तीन, आठ, नौ, आठ और तीन, इन अंकोंके क्रमसे अड़तीस हजार नौ सौ तेरासी योजन और सत्ताईस भाग-प्रमाण रहता है ॥३६७॥

(क्षेमपुरीकी परिधि १९४९१८$\frac{३}{८}$ = $\frac{१५५९३४७}{८}$) × $\frac{१}{५}$ = $\frac{१५५९३४७}{४०}$ = ३८९८३$\frac{२७}{४०}$ योजन तिमिरक्षेत्र है ।

एक्कत्ताल-सहस्सा, णव-सय-चालीस जोयणाणि कला ।
पणतीस तिमिर-खेत्तं, रिट्ठाए पढम-पह-गद-दिणेसे ॥३६८॥

४१९४० । $\frac{३५}{४०}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथको प्राप्त होनेपर अरिष्टा नगरीमें तिमिर-क्षेत्र इकतालीस हजार नौ सौ चालीस योजन और पैंतीस कला-प्रमाण रहता है ॥३६८॥

(अरिष्टानगरीकी परिधि २०९७०४$\frac{३}{८}$ = $\frac{१६७७६३५}{८}$)×$\frac{१}{५}$ = $\frac{३३५५२७}{८}$ = ४१९४०$\frac{७}{८}$ ($\frac{३५}{४०}$) योजन तिमिरक्षेत्र है।

बावत्तरि ति-सयाणि, पणदाल-सहस्स जोयणा अंसा ।
सत्तरस अरिट्ठपुरे, तम - खेत्तं पढम - पह - सूरे ॥३६९॥

४५३७२ । $\frac{१७}{४०}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर अरिष्टपुरमें तम-क्षेत्र पैंतालीस हजार तीन सौ बहत्तर योजन और सत्तरह भाग-प्रमाण रहता है ॥३६९॥

(अरिष्टपुरीकी परिधि २२६८६२$\frac{१}{८}$=$\frac{१८१४८९७}{८}$)×$\frac{१}{५}$ = $\frac{१८१४८९७}{४०}$ = ४५३७२$\frac{१७}{४०}$ योजन तिमिरक्षेत्र है।

अट्ठत्ताल-सहस्सा, ति-सया उणतीस जोयणा अंसा ।
पणुवीसं खग्गाए, बहुमज्झिम-पणिधि-तम-खेत्तं ॥३७०॥

४८३२९ । $\frac{२५}{४०}$ ।

अर्थ—खड्गा नगरीके बहुमध्यम प्रणिधिभागमें तमक्षेत्र अड़तालीस हजार तीन सौ उनतीस योजन और पच्चीस भाग-प्रमाण रहता है ॥३७०॥

(खड्गा नगरीकी परिधि २४१६४८$\frac{१}{८}$=$\frac{१९३३१८५}{८}$) ×$\frac{१}{५}$ = $\frac{१९३३१८५}{४०}$= ४८३२९$\frac{५}{८}$ ($\frac{२५}{४०}$) योजन तमक्षेत्र है।

एक्कावण्ण-सहस्सा, सत्त-सया एक्कसट्ठि जोयणया ।
सत्तंसा तम - खेत्तं, मंजुसपुर - मज्झ - पणिधीए ॥३७१॥

५१७६१ । $\frac{७}{४०}$ ।

अर्थ—मंजूषपुरकी मध्य-प्रणिधिमें तम-क्षेत्र इक्यावन हजार सात सौ इकसठ योजन और सात भाग-प्रमाण रहता है ॥३७१॥

(मंजूषापुरकी परिधि २५८८०५$\frac{७}{८}$=$\frac{२०७०४४७}{८}$)×$\frac{१}{५}$=$\frac{२०७०४४७}{४०}$=५१७६१$\frac{७}{४०}$ योजन तम-क्षेत्र है।

चउवण्ण-सहस्सा सग-सयाणि अट्ठरस-जोयणा अंसा ।
पण्णरस ओसहोपुर-बहुमज्झिम-पणिधि-तिमिर-खिदी ।।३७२।।

५४७१८ । $\frac{१५}{४०}$ ।

अर्थ—ओषधिपुरकी बहुमध्यप्रणिधिमें तिमिरक्षेत्र चौवन हजार सात सौ अठारह योजन और पन्द्रह भाग-प्रमाण रहता है ।।३७२।।

(ओषधिपुरकी परिधि २७३५९१$\frac{७}{८}$=$\frac{२१८८७३५}{८}$) × $\frac{१}{५}$=$\frac{४३७७४७०}{८०}$=५४७१८$\frac{३}{८}$ ($\frac{१५}{४०}$) योजन तमक्षेत्र है ।

अट्ठावण्ण-सहस्सा, इगिसय उणवण्ण जोयणा अंसा ।
सगतीस पुंडरीगिणि-पुरीए बहु-मज्झ-पणिधि-तमं ।।३७३।।

५८१४९ । $\frac{३७}{४०}$ ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी पुरीकी बहुमध्य-प्रणिधिमें तमका प्रमाण अट्ठावन हजार एकसौ उनंचास योजन और सैंतीस भाग अधिक रहता है ।।३७३।।

(पुण्डरीकिणी नगरीकी परिधि २९०७४९$\frac{५}{८}$ = $\frac{२३२५९९७}{८}$) × $\frac{१}{५}$=५८१४९$\frac{३७}{४०}$ योजन तमक्षेत्र है ।

सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते अभ्यन्तर वीथीमें तमक्षेत्रका प्रमाण—

तेसट्ठि-सहस्साणि, सत्तरसं जोयणा चउ-कलाओ ।
पंच-हिदा पढम-पहे, तम - परिही पह-ठिद-दिणेसे ।।३७४।।

६३०१७ । $\frac{४}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर प्रथम पथमें तमक्षेत्रकी परिधि तिरेसठ हजार सत्तरह योजन और चार भाग-प्रमाण होती है ।।३७४।।

(प्रथम पथकी परिधि $\frac{३१५०८९}{१}$) × $\frac{१}{५}$=६३०१७$\frac{४}{५}$ योजन ।

द्वितीय पथमें तम-क्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, जोयणया एक्कवीस एक्क-कला ।
बिदिय-पह-तिमिर-खेत्तं, आदिम - मग्ग - ट्ठिदे सूरे ।।३७५।।

६३०२१ । $\frac{१}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर द्वितीय वीथीमें तिमिर-क्षेत्र तिरेसठ हजार इक्कीस योजन और एक कला अधिक रहता है ॥३७५॥

(द्वितीय वीथीकी परिधि $\frac{३१५१०६}{५}$) × $\frac{१}{५}$ = ६३०२१ $\frac{१}{५}$ योजन ।

तृतीय पथमें तम-क्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, चउवीसं जोयणाणि चउ अंसा ।
तदिय-पह-तिमिर-भूमी, मत्तंडे पढम - मग्ग - गदे ॥३७६॥

६३०२४ । $\frac{४}{५}$ ।

एवं मज्झिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम मार्गमें स्थित रहने पर तृतीय पथमें तिमिर क्षेत्र तिरेसठ हजार चौबीस योजन और चार भाग अधिक रहता है ॥३७६॥

(तृतीय पथकी परिधि $\frac{३१५१२४}{५}$ ×) $\frac{१}{५}$ = ६३०२४ $\frac{४}{५}$ योजन ।

इसप्रकार मध्यम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

मध्यम पथमें तम-क्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, ति-सया चालीस जोयणा दु-कला ।
मज्झिम-पह-तिमिर-खिदी, तिव्वकरे पढम-मग्ग-ठिदे ॥३७७॥

६३३४० । $\frac{२}{५}$ ।

एवं दुचरिम-परियंतं णेदव्वं ।

अर्थ—तीव्रकर (सूर्य) के प्रथम पथमें स्थित होनेपर मध्यम पथमें तिमिर-क्षेत्र तिरेसठ हजार तीन सौ चालीस योजन और दो कला अधिक रहता है ॥३७७॥

(मध्यम पथकी परिधि = $\frac{३१६७०२}{५}$) × $\frac{१}{५}$ = ६३३४० $\frac{२}{५}$ योजन ।

इसप्रकार द्विचरम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

बाह्य पथमें तम-क्षेत्र—

तेसट्ठि-सहस्साणि, छस्सय-बासट्ठि-जोयणाणि कला ।
चत्तारो बहिमग्गे, तम - खेत्तं पढम-पह-ठिदे तवणे ॥३७८॥

६३६६२ । $\frac{४}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम पथमें स्थित होनेपर बाह्य मार्गमें तम-क्षेत्र तिरेसठ हजार छह सौ बासठ योजन और चार कला अधिक रहता है ॥३७८॥

(बाह्य पथकी परिधि $=\frac{३१८३१४}{५}$) $\times \frac{१}{५}=६३६६२\frac{४}{५}$ योजन तमक्षेत्र ।

लवण समुद्रके छठे भागमें तम-क्षेत्र—

एक्कं लक्खं णव-जुद-चउवण्ण-सयाणि जोयणा अंसा ।
जल-छट्ठ-भाग-तिमिरं, उण्हयरे पढम - मग्ग - ठिदे ॥३७९॥

१०५४०९ । $\frac{१}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रथम मार्गमें स्थित होनेपर लवणसमुद्र-सम्बन्धी जलके छठे भागमें तिमिर-क्षेत्र एक लाख पाँच हजार चार सौ नौ योजन और एक भाग अधिक रहता है ॥३७९॥

(लवणसमुद्रके छठे भागकी परिधि $=\frac{५२७०४६}{५}$) $\times \frac{१}{५}=१०५४०९\frac{१}{५}$ योजन तिमिर-क्षेत्र है ।

(तालिका पृष्ठ ३४५ पर देखिये)

दोनों सूर्योंके प्रथम पथमें स्थित रहते ताप और तम-क्षेत्रका प्रमाण—

क्र०	विवक्षित परिधि-क्षेत्र	सूर्यके प्रथम पथमें स्थित रहते		दो सूर्योंका सम्मिलित क्षेत्र	परिधियोंका प्रमाण गाथा— २४६–२६५
		ताप-क्षेत्रका प्रमाण (योजनों में) गाथा-२९७-३१०	तम-क्षेत्रका प्रमाण (योजनों में) गाथा-३६५-३७९		
१	मेरु पर	९४८६ $\frac{३}{५}$ +	६३२४ $\frac{२}{५}$ =	१५८११ × २ =	३१६२२ योजन
२	क्षेमा पर	५३३२८ $\frac{३}{१९}$ +	३५५५२ $\frac{२}{१९}$ =	८८८८० $\frac{५}{१९}$ × २ =	१७७७६० $\frac{१०}{१९}$,,
३	क्षेमपुरी पर	५८४७५ $\frac{४}{१९}\frac{१}{१०}$ +	३८९८३ $\frac{१}{१९}\frac{७}{१०}$ =	९७४५९ $\frac{३}{१९}$ × २ =	१९४९१८ $\frac{६}{१९}$,,
४	अरिष्टा पर	६२९११ $\frac{५}{१९}$ +	४११४० $\frac{६}{१९}$ =	१०४८५२ $\frac{३}{१९}$ × २ =	२०९७०४ $\frac{६}{१९}$,,
५	अरिष्टपुरी	६८०५८ $\frac{७}{१९}\frac{१}{१०}$ +	४५३७२ $\frac{१}{१९}\frac{७}{१०}$ =	११३४३१ $\frac{१}{१९}$ × २ =	२२६८६२ $\frac{२}{१९}$,,
६	खड्गपुरी	७२४९४ $\frac{७}{१९}$ +	४८३२९ $\frac{५}{१९}$ =	१२०८२४ $\frac{१}{१९}$ × २ =	२४१६४८ $\frac{२}{१९}$,,
७	मंजूषापुरी	७७६४१ $\frac{५}{१९}\frac{१}{१०}$ +	५१७६१ $\frac{१}{४}\frac{७}{१०}$ =	१२९४०२ $\frac{१}{२}\frac{५}{१९}$ × २ =	२५८८०५ $\frac{७}{१९}$,,
८	औषधिपुरी	८२०७७ $\frac{६}{१९}$ +	५४७१८ $\frac{३}{१९}$ =	१३६७९५ $\frac{१}{२}\frac{९}{१९}$ × २ =	२७३५९१ $\frac{९}{१९}$,,
९	पुण्डरीकिणी पुरीपर	८७२२४ $\frac{७}{१९}\frac{१}{१०}$ +	५८१४९ $\frac{३}{४}\frac{७}{१०}$ =	१४५३७४ $\frac{१}{२}\frac{१}{१९}$ × २ =	२९०७४९ $\frac{५}{१९}$,,
१०	प्रथम वीथी	९४५२६ $\frac{७}{१०}$ +	६३०१७ $\frac{४}{५}$ =	१५७५४४ $\frac{१}{२}$ × २ =	३१५०८९ ,,
११	द्वितीय वीथी	९४५३१ $\frac{४}{५}$ +	६३०२१ $\frac{१}{५}$ =	१५७५५३ × २ =	३१५१०६ ,,
१२	तृतीय वीथी	९४५३७ $\frac{१}{५}$ +	६३०२४ $\frac{४}{५}$ =	१५७५६२ × २ =	३१५१२४ ,,
१३	मध्यम वीथी	९५०१० $\frac{३}{५}$ +	६३३४० $\frac{२}{५}$ =	१५८३५१ × २ =	३१६७०२ ,,
१४	बाह्य वीथी	९५४९४ $\frac{१}{५}$ +	६३६६२ $\frac{४}{५}$ =	१५९१५७ × २ =	३१८३१४ ,,
१५	लवणोदधि के छठे भाग पर	१५८११३ $\frac{४}{५}$ +	१०५४०९ $\frac{१}{५}$ =	२६३५२३ × २ =	५२७०४६ ,,

नोट—ताप और तम क्षेत्रकी कुल (१+८+१८४+१=) १९४ परिधियाँ हैं। इनमें से मेरु पर्वतकी १+क्षेमा आदि नगरियोंकी ८+लवण० की १+और सूर्यकी (प्रारम्भिक ३+ मध्यम १+ और बाह्य १=) ५ परिधियोंका अर्थात् १५ परिधियोंका विवेचन किया जा चुका है। इसीप्रकार शेष १७९ परिधियोंका भी जानना चाहिए।

सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित रहते इच्छित परिधिमें
तिमिर क्षेत्र प्राप्त करनेकी विधि—

इच्छिय-परिरय-रासिं, सगसट्ठी-तिय-सएहिं गुणिदूणं।
णभ-तिय-अट्ठेक्क-हिदे, तम-खेत्तं बिदिय-पह-ठिदे-सूरे ॥३८०॥

$\frac{३६७}{१८३०}$ ।

अर्थ—इष्ट परिधि राशि को तीन सौ सड़सठसे गुणा करके प्राप्त गुणनफलमें अठारह सौ तीसका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उतना सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित रहने पर विवक्षित परिधिमें तम-क्षेत्रका प्रमाण होता है ॥३८०॥

विशेषार्थ—यहाँ सूर्य द्वितीय पथमें स्थित है। इस वीथीमें रात्रिका प्रमाण (१२+$\frac{२}{६१}$) =१२$\frac{२}{६१}$=$\frac{७३४}{६१}$ मुहूर्तका है। विवक्षित परिधिके प्रमाणमें $\frac{७३४}{६१}$ मुहूर्तोंका गुणाकर ६० मुहूर्तों का भाग देनेपर अर्थात् $\frac{७३४}{६१}\times\frac{१}{६०}=\frac{३६७}{१८३०}$ में से ३६७ का गुणाकर १८३० का भाग देनेपर तम-क्षेत्रका प्रमाण प्राप्त होता है।

सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर मेरु आदिकी परिधियोंमें
तम-क्षेत्रका प्रमाण—

एक्क-चउक्क-ति-छक्का, अंक-कमे दुग-दुग-छ-अंसा य।
पंचेक्क-णवय-भजिदा, मेरु-तमं बिदिय-[1]पह-ठिदे सूरे ॥३८१॥

६३४१ । $\frac{६२२}{९१५}$ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर मेरु पर्वतके ऊपर तम-क्षेत्र एक, चार, तीन और छह इन अंकोंके क्रमसे छह हजार तीन सौ इकतालीस योजन और नौ सौ पन्द्रहसे भाजित छह सौ बाईस भाग अधिक रहता है ॥३८१॥

(मेरुकी परिधि=$\frac{३१६२२}{२}$) $\times\frac{३६७}{९१५}=\frac{५८०२६३७}{९१५}$=६३४१$\frac{६२२}{९१५}$ योजन तम-क्षेत्र है।

---

१. द. ब. क. ज. परिधितवणे।

णव-चउ-छ-प्पंच-तिया, अंक-कमे सत्त-छक्क-सत्तंसा ।
अट्ठ-दु-णव-दुग-भजिदा, खेमाए मज्झ-पणिधि-तमं ॥३८२॥

३५६४९ । $\frac{७६७}{२९२८}$ ।

अर्थ—क्षेमा नगरीके मध्य प्रणिधि भागमें तम-क्षेत्र नौ, चार, छह, पाँच और तीन, इन अंकोंके क्रमसे पैंतीस हजार छह सौ उनंचास योजन और दो हजार नौ सौ अट्ठाईससे भाजित सात सौ सड़सठ भाग प्रमाण रहता है ॥३८२॥

(क्षेमा नगरीकी परिधि = १७७७६०९ $\frac{५}{६}$ = $\frac{१०६६५६५९}{६}$) × $\frac{३१७}{९८३०}$ = $\frac{१०४३८१०३९}{२९२८}$ = ३५६४९ $\frac{७६७}{२९२८}$ योजन तम-क्षेत्र है ।

णभ-णव-णभ-णवय-तिया, अंक-कमे णव-चउक्क-सग-दु-कला ।
णभ-चउ-छ-चउ-एक्क-हिदा, खेमपुरी - पणिधि - तम-खेत्तं ॥३८३॥

३९०९० । $\frac{२७४९}{१४६४०}$

अर्थ—क्षेमपुरीके प्रणिधिभागमें तम क्षेत्र शून्य, नौ, शून्य, नौ और तीन इन अंकोंके क्रमसे उनतालीस हजार नब्बे योजन और चौदह हजार छह सौ चालीससे भाजित दो हजार सात सौ उनंचास कला प्रमाण रहता है ॥३८३॥

(क्षेमपुरीकी परिधि = १९४९११८ $\frac{३}{६}$ = $\frac{११६९४७१}{३}$) × $\frac{३१७}{९८३०}$ = $\frac{५७२३८०३४९}{१४६४०}$ = ३९०९० $\frac{२०४९}{१४६४०}$ योजन तम-क्षत्रका प्रमाण है ।

पंच-पण-गयण-दुग-चउ, अंक-कमे पण-चउक्क-अड-छक्का ।
अंसा तिमिरक्खेत्ते, मज्झिम - पणिधीए रिट्ठाए ॥३८४॥

४२०५५ । $\frac{६८४५}{१४६४०}$ ।

अर्थ—अरिष्टा नगरीके मध्यम प्रणिधिभागमें तिमिर क्षेत्र पाँच, पाँच, शून्य, दो और चार, इन अंकोंके क्रमसे बयालीस हजार पचपन योजन और छह हजार आठ सौ पैंतालीस भाग अधिक रहता है ॥३८४॥

(अरिष्टाकी परिधि २०९७०४ $\frac{३}{६}$ = $\frac{१२५८२३५}{६}$) × $\frac{३१७}{९८३०}$ = $\frac{१२३११३८४०६}{२९२८}$ = ४२०५५ $\frac{१३८९}{२९२८}$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

छण्णव-चउक्क-पण चउ, अंक-कमे णवय-पंच-सग-पंचा ।
अंसा मज्झिम-पणिही - तम - खेत्तमरिट्ठ - णयरीए ॥३८५॥

४५४९६ । $\frac{५७५९}{१४६४०}$ ।

अर्थ—अरिष्टपुरीके मध्यम प्रणिधिभागमें तम-क्षेत्र छह, नौ, चार, पाँच और चार, इन अंकोंके क्रमसे पैंतालीस हजार चार सौ छयानबे योजन और पाँच हजार सात सौ उनसठ भाग अधिक रहता है ॥३८५॥

(अरिष्टपुरीकी परिधि $= २२६८६२\frac{१}{८} = \frac{१८१४८९७}{८}$) $\times \frac{३६७}{१८३०} = \frac{६६६०६७१९९}{१४६४०} =$ ४५४९६ $\frac{५७५९}{१४६४०}$ योजन तम-क्षेत्र है।

एक्कं छच्चउ-अट्ठा, चउ अंक-कमेण पंच - पंचट्ठा ।
णव य कलाओ खग्गा-मज्झिम-पणधीए तिमिर-खिदी ॥३८६॥

४८४६१ । $\frac{९८५५}{१४६४०}$ ।

अर्थ—खड्गापुरीके मध्यम प्रणिधिभागमें तिमिर-क्षेत्र एक, छह, चार, आठ और चार, इन अंकोंके क्रमसे अड़तालीस हजार चार सौ इकसठ योजन और नौ हजार आठ सौ पचपन कला अधिक रहता है ॥३८६॥

(खड्गपुरीकी परिधि $= २४१६४८\frac{१}{८} = \frac{१९३३१८५}{८}$) $\times \frac{३६७}{१८३०} = \frac{१४१८९५७७९}{२९२८} =$ ४८४६१ $\frac{१९७१}{२९२८}$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है।

दुग-णभ-णवेक्क-पंचा, अंक-कमे णवय-छक्क-सगट्ठा ।
अंसा मंजुसणयरी - मज्झिम - पणधीए तम - खेत्तं ॥३८७॥

५१९०२ । $\frac{८७६९}{१४६४०}$ ।

अर्थ—मंजूषा नगरीके मध्यम प्रणधिभागमें तम-क्षेत्र दो, शून्य, नौ, एक और पाँच इन अंकोंके क्रमसे इक्यावन हजार नौ सौ दो योजन और आठ हजार सात सौ उनहत्तर भाग प्रमाण रहता है ॥३८७॥

(मंजूषा नगरीकी परिधि$=२५८८०५\frac{७}{८}=\frac{२०७०४४७}{८}$)$\times\frac{३६७}{१८३०} = \frac{७५९८५४०४९}{१४६४०} =$ ५१९०२ $\frac{८७६९}{१४६४०}$ योजन ताप-क्षेत्रका प्रमाण है।

सत्त-छ-अट्ठ-चउक्का, पंचंक - कमेण जोयणा अंसा ।
पंच-छ-अट्ठ - दुगेक्का, ओसहिपुर-पणिधि-तम-खेत्तं ॥३८८॥

५४८६७ । $\frac{१२८६५}{१४६४०}$ ।

अर्थ—औषधिपुरके प्रणिधिभागमें तम-क्षेत्र सात, छह, आठ, चार और पाँच इन अंकोंके क्रमसे चौवन हजार आठ सौ सड़सठ योजन और बारह हजार आठ सौ पैंसठ भाग प्रमाण रहता है ॥३८८॥

(औषधिपुरकी परिधि $= २७३५९१\frac{७}{८} = \frac{२१८८७३५}{८}$)$\times\frac{३६७}{१८३०} = \frac{१६०६५३१४९}{२९२८} =$ ५४८६७ $\frac{२५७३}{२९२८}$ योजन तमक्षेत्रका प्रमाण है।

अट्ठ-ख-ति-अट्ठ-पंचा, अंक-कमेण जोयणाणि अंसा य ।
णव-सग-सग-एक्केक्का, तम-खेत्तं पुंडरिगिणी - णयरे ॥३८९॥

५८३०८ । $\frac{११००६}{१४६४०}$ ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी नगरीमें तम-क्षेत्र आठ, शून्य, तीन, आठ और पाँच इन अंकोंके क्रमसे अट्ठावन हजार तीन सो आठ योजन और ग्यारह हजार सात सौ उन्यासी भाग प्रमाण रहता है ॥३८९॥

(पुण्डरीकिणीपुरकी परिधि = २९०७४९ ५/८ = २३२५९९७/८) × ३६७/१८३० = ८५३६४०८९९/१४६४० = ५८३०८ ११७७९/१४६४० योजन तम-क्षेत्र ।

अभ्यन्तर पथमें तम-क्षेत्र—

णव-अट्ठेक्क-ति-छक्का, अंक - कमे ति-णव-सत्त-एक्कंसा ।
णभ-तिय-अट्ठेक्क-हिदा, बिदिय-पहक्कम्मि पढम-पह-तिमिरं ॥३९०॥

६३१८९ । १७९३/१८३० ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर प्रथम मार्गमें तमक्षेत्र नौ, आठ, एक, तीन और छह इन अंकोंके क्रमसे तिरेसठ हजार एक सौ नवासी योजन और एक हजार आठ सौ तीससे भाजित एक हजार सात सौ तेरानबै भाग अधिक रहता है ॥३९०॥

(प्रथम पथकी परिधि = ३१५०८९) × ३६७/१८३० = ११५६३७६६३/१८३० = ६३१८९ १७९३/१८३० योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण ।

द्वितीय पथमें तम-क्षेत्र—

तिय-णव-एक्क-ति-छक्का, अंकाण कमे दुगेक्क-सत्तंसा ।
पंचेक्क-णव-विहत्ता, बिदिय-पहक्कम्मि बिदिय-पह-तिमिरं ॥३९१॥

६३१९३ । ७१२/९१५ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर द्वितीय वीथीमें तिमिर-क्षेत्र तीन, नौ, एक, तीन और छह, इन अंकोंके क्रमसे तिरेसठ हजार एक सौ तेरानबै योजन और नौ सौ पन्द्रहसे भाजित सात सौ बारह भाग प्रमाण रहता है ॥३९१॥

(द्वितीय पथकी परिधि ३१५१०६ यो०) × ३६७/१८३० = ६३१९३ ७१२/९१५ यो० ।

तृतीय पथमें तम-क्षेत्र—

छण्णव-एक्क-ति-छक्का, अंक - कमे अड - दुगट्ठ एक्कंसा ।
णभ-तिय-अट्ठेक्क-हिदा, बिदिय-पहक्कम्मि तदिय-मग्ग-तमं ॥३९२॥

६३१९६ । १८२८/१८३० ।

एवं मज्झिम-मग्गंतं णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर तृतीय मार्गमें तम-क्षेत्र छह, नौ, एक, तीन और छह, इन अंकोंके क्रमसे तिरेसठ हजार एक सौ छयानबै योजन और एक हजार आठ सौ तीससे भाजित एक हजार आठ सौ अट्ठाईस भाग प्रमाण रहता है ॥३९२॥

(तृतीय पथकी परिधि = ३१५१२४) × $\frac{३६७}{१८३०}$ = $\frac{५७८२५२५४}{९१५}$ = ६३१९६ $\frac{१८२८}{१८३०}$ योजन तम-क्षेत्र है ।

इसप्रकार मध्यम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

मध्यम पथमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

तेसट्ठि-सहस्सा पण-सयाणि तेरस य जोयणा अंसा ।
चउदाल-जुदट्ठ-सया, बिदिय-पहक्कम्मि मज्झ-मग्ग-तमं ॥३९३॥

६३५१३ । $\frac{८४४}{१८३०}$ ।

एवं दुचरिम-मग्गंतं[1] णेदव्वं ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय पथमें स्थित होनेपर मध्यम मार्गमें तम-क्षेत्र तिरेसठ हजार पाँच सौ तेरह योजन और आठ सौ चवालीस भाग अधिक रहता है ॥३९३॥

(मध्यम पथकी परिधि = ३१६७०२) × $\frac{३६७}{१८३०}$ = $\frac{५८११४८१७}{९१५}$ = ६३५१३ $\frac{४२२}{९१५}$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है ।

इसप्रकार द्विचरममार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए ।

बाह्य पथमें तम-क्षेत्र—

छ-त्तिय-अट्ठ-ति-छक्का, अंक-कमे णवय-सत्त-छक्केसा ।
पंचेक्क-णव-विहत्ता, बिदिय-पहक्कम्मि बाहिरे तिमिरं ॥३९४॥

६३८३६ । $\frac{६७९}{९१५}$ ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय मार्गमें स्थित होने पर बाह्य पथमें तिमिर-क्षेत्र छह, तीन, आठ, तीन और छह, इन अंकोंके क्रमसे तिरेसठ हजार आठ सौ छत्तीस योजन और नौ सौ पन्द्रहसे भाजित छह सौ उन्यासी भाग अधिक है ॥३९४॥

(बाह्य क्षेत्रकी परिधि = ३१८३१४) × $\frac{३६७}{९१५}$ = $\frac{५८४१०६१९}{९१५}$ = ६३८३६ $\frac{६७९}{९१५}$ योजन तम-क्षेत्र का प्रमाण है ।

लवणोदधिके छठे भागमें तम-क्षेत्र—

सत्त-णव-छक्क-पण-णभ-एक्कंक-कमेण दुग-सग-तियंसा ।
णभ-तिय-अट्ठेक्क-हिदा, लवणोदहि - छट्ठ - भागंतं ॥३९५॥

१०५६९७ । $\frac{३७२}{१८३०}$ ।

---

1. द. ब. क. ज. मग्गो त्ति ।

अर्थ—सूर्यके द्वितीय मार्गमें स्थित होनेपर लवणोदधिके छठे भागमें तिमिरक्षेत्र सात, नौ, छह, पांच, शून्य और एक, इन अंकोंके क्रमसे एक लाख पांच हजार छह सौ सत्तानबे योजन और एक हजार आठ सौ तीससे भाजित तीन सौ बहत्तर भाग अधिक है ॥३९५॥

(लवणसमुद्रके छठे भाग की परिधि = ५२७०४६) × $\frac{३६७}{१८३०}$ = १०५६९७ $\frac{३७२}{१८३०}$ योजन तम-क्षेत्रका प्रमाण है।

शेष परिधियोंमें तम-क्षेत्र—

एवं सेस - पहेसुं, वोहिं पडि जामिणी - मुहुत्ताणि ।
ठविऊणाणेज्ज तमं, छक्कोणिय-बु-सय-परिहीसुं ॥३९६॥

१९४ ।

अर्थ—इसप्रकार शेष पथोंमेंसे प्रत्येक वीथीमें रात्रि-मुहूर्तोंको स्थापित करके छह कम दो सौ (१९४) परिधियोंमें तिमिर-क्षेत्र ज्ञात कर लेना चाहिए ॥३९६॥

नोट—विशेष के लिए गाथा ३४५ का विशेषार्थ द्रष्टव्य है।

सूर्यके बाह्यपथमें स्थित होनेपर तम-क्षेत्रका प्रमाण—

सव्व-परिहीसु रत्तिं, अट्ठरस-मुहुत्तयाणि रविबिंबे[1] ।
बहि-पह-ठिदम्मि एदं, धरिऊण भणामि तम-खेत्तं ॥३९७॥

अर्थ—सूर्य बिम्बके बाह्य पथमें स्थित होनेपर सब परिधियोंमें अठारह मुहूर्त-प्रमाण रात्रि है, इसका आश्रय करके तम-क्षेत्रका वर्णन करता हूं ॥३९७॥

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते विवक्षित परिधिमें तम-क्षेत्र
प्राप्त करनेकी विधि—

इच्छिय-परिरय-रासिं, तिगुणं कादूण दस-हिदे लद्धं ।
होदि तिमिरस्स खेत्तं, बाहिर - मग्ग - ट्ठिदे सूरे ॥३९८॥

$\frac{३}{१०}$ ।

अर्थ—इच्छित परिधि-राशिको तिगुणा करके दसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर विवक्षित परिधिमें तिमिर-क्षेत्र होता है ॥३९८॥

---

१. द. ब. क. ज. बिंबं ।

विशेषार्थ—बाह्य पथमें रात्रिका प्रमाण १८ मुहूर्त है इसमें ६० मुहूर्तोंका भाग देनेपर $(\frac{१८}{६०}) = \frac{३}{१०}$ प्राप्त होते हैं। विवक्षित परिधिके प्रमाणमें ३ का गुणाकर १० का भाग देनेपर तम-क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मेरु आदि की परिधियोंमें

तम-क्षेत्रका प्रमाण—

णव य सहस्सा चउ-सय, छासीदी जोयणाणि तिण्णि कला।
पंच - हिदा मेरु - तमं, बाहिर - मग्गे ठिदे तवणे ॥३९९॥

९४८६ । $\frac{३}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित रहनेपर मेरुके ऊपर तम-क्षेत्र नौ हजार चार सौ छयासी योजन और पाँचसे भाजित तीन कला (९४८६$\frac{३}{५}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥३९९॥

तेवण्ण-सहस्साणि, ति-सया अडवीस-जोयणा ति-कला।
सोलस-हिदा य खेमा - मज्झिम - पणधीए तम-खेत्तं ॥४००॥

५३३२८ । $\frac{३}{१६}$ ।

अर्थ—क्षेमा नगरीके मध्यम प्रणिधिभागमें तम-क्षेत्र तिरेपन हजार तीन सौ अट्ठाईस योजन और सोलहसे भाजित तीन कला (५३३२८$\frac{३}{१६}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४००॥

अट्ठावण्ण-सहस्सा, चउ-सय-पणहत्तरी य जोयणया।
एक्कत्ताल - कलाओ, सीदि - हिदा खेम - णयरीए ॥४०१॥

५८४७५ । $\frac{४१}{८०}$ ।

अर्थ—क्षेमपुरीमें तम-क्षेत्र अट्ठावन हजार चार सौ पचहत्तर योजन और अस्सीसे भाजित इकतालीस कला (५८४७५$\frac{४१}{८०}$ योजन) प्रमाण है ॥४०१॥

बासट्ठि-सहस्सा णव-सयाणि एक्करस जोयणा भागा।
पणुवीस सीदि-भजिदा, रिट्ठाए मज्झ-पणिधि-तमं ॥४०२॥

६२९११ । $\frac{२५}{८०}$ ।

अर्थ—अरिष्टा नगरीके मध्य प्रणिधिभागमें तम-क्षेत्र बासठ हजार नौ सौ ग्यारह योजन और अस्सीसे भाजित पच्चीस भाग (६२९११$\frac{२५}{८०}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०२॥

अट्ठासट्ठि-सहस्सा, अट्ठावण्णा य जोयणा अंसा ।
एक्कावण्णं तिमिरं, रिट्ठपुरी - मज्झ - पणिधीए ॥४०३॥

६८०५८ । $\frac{५१}{९०}$ ।

अर्थ—अरिष्टपुरीके मध्य-प्रणिधिभागमें तिमिरक्षेत्र अड़सठ हजार अट्ठावन योजन और इक्यावन भाग (६८०५८$\frac{५१}{९०}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०३॥

बाहत्तरि सहस्सा, चउ-सय-चउणउदि जोयणा अंसा ।
पणतीसं खग्गाए मज्झिम-पणिधीए तिमिर-खिदी ॥४०४॥

७२४६४ । $\frac{३५}{९०}$ ।

अर्थ—खड्गा नगरीके मध्यम प्रणिधिभागमें तिमिर-क्षेत्र बहत्तर हजार चार सौ चौरानबे योजन और पैंतीस भाग (७२४९४$\frac{३५}{९०}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०४॥

सत्तत्तरि सहस्सा, छस्सय इगिदाल जोयणाणि कला ।
एक्कासट्ठी मंजुस - णयरी - पणिहीए तम-खेत्तं ॥४०५॥

७७६४१ । $\frac{६१}{९०}$ ।

अर्थ—मंजूषानगरीके प्रणिधिभागमें तम-क्षेत्र सतत्तर हजार छह सौ इकतालीस योजन और इकसठ कला (७७६४१$\frac{६१}{९०}$ योजन) रहता है ॥४०५॥

बासीदि-सहस्साणि, सत्तत्तरि - जोयणा कलाओ वि ।
पंचत्तालं ओसहि - पुरीए बाहिर-पह-ट्ठिदक्कम्मि ॥४०६॥

८२०७७ । $\frac{४५}{९०}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर औषधिपुरीमें तम-क्षेत्र बयासी हजार सतत्तर योजन और पैंतालीस कला (८२०७७$\frac{४५}{९०}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०६॥

सत्तासीदि-सहस्सा, बे-सय-चउवीस जोयणा अंसा ।
एक्कत्तरी य [1]तमिस-प्पणिधीए पुंडरिंगिणी-णयरे ॥४०७॥

८७२२४ । $\frac{७१}{९०}$ ।

अर्थ—पुण्डरीकिणी नगरीके प्रणिधिभागमें तिमिर-क्षेत्र सतासी हजार दो सौ चौबीस योजन और इकहत्तर भाग (८७२२४$\frac{७१}{९०}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०७॥

---

१. द. ब. क. ज. तिमिस ।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते प्रथम वीथीमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

चउणउदि-सहस्सा पण-सयाणि छब्बीस जोयणा अंसा।
सत्त य दस-पविहत्ता, बहि-पह-तवणम्मि पढम-पह-तिमिरं ॥४०८॥

९४५२६ । $\frac{७}{१०}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर प्रथम पथमें तिमिर-क्षेत्र चौरानबै हजार पाँच सौ छब्बीस योजन और दससे भाजित सात भाग (९४५२६$\frac{७}{१०}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०८॥

द्वितीय वीथीमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

चउणउदि-सहस्सा पण-सयाणि इगितीस जोयणा अंसा।
चत्तारो पंच-हिदा, बहि-पह[1]-भाणुम्मि बिदिय-पह-तिमिरं[2] ॥४०९॥

९४५३१ । $\frac{४}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर द्वितीय पथमें तिमिर क्षेत्र चौरानबै हजार पाँच सौ इकतीस योजन और पाँचसे भाजित चार भाग (९४५३१ । $\frac{४}{५}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४०९॥

तृतीय वीथीमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

चउणउदि-सहस्सा, पण-सयाणि सगतीस जोयणा अंसा।
तदिय-पह-तिमिर-खेत्तं, बहि - मग्ग - ठिदे सहस्सकरे ॥४१०॥

९४५३७ । $\frac{१}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर तृतीय पथमें तिमिर-क्षेत्र चौरानबै हजार पाँच सौ सैंतीस योजन और एक भाग (९४५३७$\frac{१}{५}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४१०॥

चतुर्थ वीथीमें तम-क्षेत्र—

चउणउदि-सहस्सा पण-सयाणि बादाल-जोयणा ति-कला।
दस-पविहत्ता बहि-पह-ठिद-तवणे तुरिम - मग्ग - तमं ॥४११॥

९४५४२ । $\frac{३}{१०}$ ।

एवं मज्झिम-मग्गाइल्ल-मग्गं ति णेदव्वं।

---

१. द. ब. क. ज. तम। २. द. ब. क. ज. तावं।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर चतुर्थवीथीमें तम-क्षेत्र चौरानबै हजार पाँच सौ बयालीस योजन और दससे विभक्त तीन कला (९४५४२$\frac{३}{१०}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४११॥

इसप्रकार मध्यम मार्गके आदिम पथ पर्यन्त ले जाना चाहिए।

मध्यम पथमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

पंचाणउदि-सहस्सा, दसुत्तरा जोयणाणि तिण्णि कला।
पंच-हिदा मज्झ - पहे, तिमिरं [1]बाहि-पह-ठिदे तवणे ॥४१२॥

९५०१० । $\frac{३}{५}$ ।

एवं दुचरिम-मग्गं ति णेदव्वं।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथमें स्थित होनेपर मध्यम पथमें तिमिर-क्षेत्र पंचानबै हजार दस योजन और पाँचसे भाजित तीन कला (९५०१० । $\frac{३}{५}$ योजन) प्रमाण रहता है ॥४१२॥

इसप्रकार द्विचरम मार्ग पर्यन्त ले जाना चाहिए।

सूर्यके बाह्य पथमें स्थित रहते बाह्य पथमें तम-क्षेत्र—

पंचाणउदि-सहस्सा, चउसय-चउणउदि जोयणा अंसा।
बाहिर-पह-तम-खेत्तं, दिवायरे बाहि - रद्ध - ठिदे ॥४१३॥

९५४९४ । $\frac{१}{५}$ ।

अर्थ—सूर्यके बाह्य अध्व (पथ) में स्थित होनेपर बाह्य वीथीमें तम-क्षेत्र पंचानबै हजार चार सौ चौरानबै योजन और एक भाग (९५४९४$\frac{१}{५}$ । योजन) प्रमाण रहता है ॥४१३॥

लवणोदधिके छठे भागमें तम-क्षेत्रका प्रमाण—

तिय-एक्क-एक्क-अट्ठा, पंचेक्कंक-क्कमेण चउ-अंसा।
बाह-पह-ठिद-दिवसयरे, लवणोवहि-छट्ठ-भाग-तमं ॥४१४॥

१५८११३ । $\frac{४}{५}$ ।

---

1 द. ब. पिहिपहट्ठिदे।

अर्थ—सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित होनेपर लवणोदधिके छठे भागमें तम-क्षेत्र तीन, एक, एक, आठ, पाँच और एक, इन अंकोंके क्रमसे एक लाख अट्ठावन हजार एक सौ तेरह योजन और चार भाग (१५८११३$\frac{4}{5}$ योजन) प्रमाण रहता है ।।४१४।।

दोनों सूर्योंके तिमिर-क्षेत्रका प्रमाण—

एदाणं तिमिराणं, खेत्ताणि होंति एक्क-भाणुम्मि ।
दुगुणिद-परिमाणाणिं, दोसुं पि सहस्स-किरणेसुं ।।४१५।।

अर्थ—एक सूर्यके ये (इतने) तिमिर-क्षेत्र होते हैं । दोनों सूर्योंके होते हुए इन्हें द्विगुणित प्रमाण (दूने) जानना चाहिए ।।

तिमिर क्षेत्रकी हानि-वृद्धिका क्रम—

पढम-पहादो बाहिर-पहम्मि दिवसाहिवस्स गमणेसुं ।
वड्ढंति तिमिर - खेत्ता, आगमणेसुं च परियंति ।।४१६।।

अर्थ—दिवसाधिप (सूर्य) के प्रथम पथसे बाह्य पथकी ओर गमन करनेपर तिमिरक्षेत्र वृद्धिको और आगमन कालमें हानिको प्राप्त होते हैं ।।४१६।।

आतप और तिमिर क्षेत्रोंका क्षेत्रफल—

एवं सव्व-पहेसुं, भणियं तिमिर-क्खिदीण परिमाणं ।
एत्तो आदव - तिमिर - क्खेत्तं - फलाइ परूवेमो ।।४१७।।

अर्थ—इसप्रकार सब पथोंमें तिमिर-क्षेत्रोंका प्रमाण कह दिया है । अब यहाँसे आगे आतप और तिमिरका क्षेत्रफल कहते हैं ।।४१७।।

लवणंबु-रासि-वासच्छट्ठम-भागस्स परिहि-बारसमे ।
पण - लक्खेहिं गुणिदे, तिमिरादव-खेत्तफल-माणं ।।४१८।।

चउ-ठाणेसुं सुण्णा, पंच-दु-णभ-छक्क-णवय-एक्क-दुगा ।
अंक - कमे जोयणया, तं खेत्तफलस्स परिमाणं ।।४१९।।

२१९६०२५०००० ।

अर्थ—लवण समुद्रके विस्तारके छठे भागकी परिधिके बारहवें भागको पाँच लाखसे गुणा करनेपर तिमिर और आतप-क्षेत्रका क्षेत्रफल निकल आता है । उस क्षेत्रफलका प्रमाण चार स्थानोंमें

शून्य, पांच, दो, शून्य, छह, नौ, एक और दो, इन अंकोंके क्रमसे इक्कीस सौ छयानबे करोड़ दो लाख पचास हजार योजन होता है ।।४१८-४१९।।

विशेषार्थ—लवणोदधिके छठे भागकी (परिधि निकालनेकी प्रक्रिया गा० २६५ के विशेषार्थमें द्रष्टव्य है) परिधि ५२७०४६ योजन है । इसको दोनों पार्श्व भागोंके छठे भागसे अर्थात् १२ से भाजित कर प्राप्त लब्धमें लवणोदधिके सूची-व्यास ५ लाखका गुणा करनेपर आतप एवं तिमिर क्षेत्रोंका क्षेत्रफल प्राप्त होता है ।

यथा—(परिधि ५२७०४६) ÷ १२ = ४३९२०$\frac{१}{२}$ = $\frac{८७८४१}{२}$, $\frac{८७८४१}{२}$ × $\frac{५०००००}{१}$ = २१९६०२५०००० वर्ग योजन आतप एवं तिमिर क्षेत्र का क्षेत्रफल है ।

एक आतपक्षेत्र और एक तिमिर क्षेत्रका क्षेत्रफल—

एदे ति-गुणिय भजिदं, दसेहि एक्कादस-विखवीए फलं ।
तेत्तिय दु-ति-भाग-हदं, होदि फलं एक्क-तम-खेत्तं ।।४२०।।

६५८८०७५००० । ति ४३९२०५०००० ।

अर्थ—इस (क्षेत्रफलके प्रमाण) को तिगुना कर दसका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना एक आतप क्षेत्रका क्षेत्रफल होता है । इस आतप-क्षेत्रफल प्रमाणके तीन भागोंमेंसे दो भाग प्रमाण एक तमक्षेत्रका क्षेत्रफल होता है ।।४२०।।

विशेषार्थ—एक आतप और एक तिमिर क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त करनेके लिए सूत्र एवं उनकी प्रक्रिया इसप्रकार है—

(१) एक आतप क्षेत्रका क्षेत्रफल = $\frac{\text{तिमिर और आतप क्षेत्रका क्षेत्रफल}}{१} \times \frac{३}{१०}$

$= \frac{२१९६०२५००००}{१} \times \frac{३}{१०}$ = ६५८८०७५००० योजन ।

(२) एक तम क्षेत्रका क्षेत्रफल = $\frac{\text{एक आतप क्षेत्रका क्षेत्रफल}}{१} \times \frac{२}{३}$

$= \frac{६५८८०७५०००}{१} \times \frac{२}{३}$ = ४३९२०५०००० योजन ।

दोनों सूर्य सम्बन्धी आतप एवं तम का क्षेत्रफल—

एवं आदव-तिमिर-क्खेत्तफलं एक्क-तिव्वकिरणम्मि ।
दोसुं विरोचणेसुं, णादव्वं दुगुण - पुव्व - परिमाणं ।।४२१।।

अर्थ—यह उपर्युक्त आतप तथा तिमिरक्षेत्रफल एक सूर्यके निमित्तसे है। दोनों सूर्योंके रहने पर इसे पूर्व-प्रमाणसे दुगुना जानना चाहिए ॥४२१॥

ऊर्ध्व और अध:स्थानोंमें सूर्योंके आतप क्षेत्रका प्रमाण—

अट्ठारस चेव सया, ताव - क्खेत्तं तु हेट्ठदो तवदि ।
सव्वेसिं सूराणं, सयमेक्कं उवरि तावं तु ॥४२२॥

१८०० । १०० ।

अर्थ—सब सूर्योंके नीचे एक हजार आठ सौ योजन प्रमाण और ऊपर एक सौ योजन प्रमाण ताप-क्षेत्र तपता है ॥४२२॥

विशेषार्थ—सब सूर्य-बिम्बोंसे चित्रा पृथिवी ८०० योजन नीचे है और चित्रा पृथिवीकी मोटाई १००० योजन है अतः सूर्योंका आताप नीचेकी ओर (१०००+८००) १८०० योजन पर्यन्त फैलता है।

सूर्य बिम्बोंसे ऊपर १०० योजन पर्यन्त ज्योति-र्लोक है अत: सूर्योंका आताप ऊपरकी ओर १०० योजन पर्यन्त फैलता है।

सूर्योंके उदय-अस्तके विवेचनका निर्देश—

एत्तो दिवायराणं, उदयत्थमणेसु जाणि रूवाणि ।
ताइं परम - गुरूणं, उवएसेणं परूवेमो ॥४२३॥

अर्थ—अब सूर्योंके उदय एवं अस्त होनेमें जो स्वरूप होते हैं। परम गुरुओंके उपदेशानुसार उनका प्ररूपण करता हूँ ॥४२३॥

जीवा और धनुषकी कृति प्राप्त करनेकी विधि—

बाण-विहीणे वासे, चउगुण-सर-ताडिदम्मि जीव-कदी ।
इसु - वग्गो छग्गुणिदो, तीए जुदो होदि चाव - कदी ॥४२४॥

अर्थ—बाण रहित विस्तारको चौगुणे बाण-प्रमाणसे गुणा करनेपर जीवाकी कृति होती है। बाणके वर्गको छहसे गुणा करनेपर जो राशि प्राप्त हो उसे उपर्युक्त जीवाकी कृतिमें मिला देनेसे धनुषकी कृति होती है ॥४२४॥

हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण—

तिय-जोयण-लक्खाणि, दस य सहस्साणि ऊण-वीसेहिं ।
अवहरिदाइं भणिदं, हरिवरिस - सरस्स परिमाणं ॥४२५॥

$\frac{310000}{19}$ ।

अर्थ—हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण उन्नीससे भाजित तीन लाख दस हजार ($\frac{310000}{19}$) योजन कहा गया है ॥४२५॥

विशेषार्थ—ति० प० चतुर्थाधिकार गाथा १७६१ के अनुसार भरतक्षेत्रके बाण ($\frac{10000}{19}$) को ३१ से गुणित करने पर लवणोदधिके तटसे हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण ($\frac{10000}{19} \times 31$) = $\frac{310000}{19}$ योजन प्राप्त होता है ।

सूर्यके प्रथमपथसे हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण—

तम्मज्झे सोहेज्जसु, सीदी-समहिय-सयं च जं सेसं ।
सो आदिम-मग्गादो, बाणो हरिवरिस - विजयस्स ॥४२६॥

१८० ।

अर्थ—इस (बाण) में से एक सौ अस्सी (जम्बूद्वीपके चारक्षेत्रका प्रमाण १८०) योजन कम कर देनेपर जो शेष रहे उतना प्रथम मार्गसे हरिवर्ष क्षेत्रका बाण होता है ॥४२६॥

विशेषार्थ—(हरिक्षेत्रका बाण = $\frac{310000}{19}$) — $\frac{3420}{19}$ (१८० यो० ज० द्वी० का चार-क्षेत्र) = $\frac{306580}{19}$ योजन अभ्यन्तर पथसे हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण ।

तिय-जोयण-लक्खाणि, छक्च सहस्साणि पण-सयाणि पि ।
सीदि - जुदाणि आदिम - मग्गादो तस्स परिमाणं ॥४२७॥

$\frac{306580}{19}$ ।

अर्थ—आदिम मार्गसे उस हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण उन्नीससे भाजित तीन लाख छह हजार पाँचसौ अस्सी ($\frac{306580}{19}$) योजन होता है ॥४२७॥

प्रथम पथका सूची-व्यास—

णवणउदि-सहस्साणि, छस्सय-चत्ताल-जोयणाणि च ।
परिमाणं णादव्वं, आदिम - मग्गस्स सूईए ॥४२८॥

९९६४० ।

अर्थ—(सूर्यकी) प्रथम वीथीका सूची (व्यास) निन्यानबै हजार छह सौ चालीस (९९६४०) योजन प्रमाण जानना चाहिए ॥४२८॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन और ज० द्वीपमें सूर्यादिके चारक्षेत्रका प्रमाण १८० योजन है। ज० द्वीपके व्यास में से दोनों पार्श्वभागोंके चार क्षेत्रोंका प्रमाण घटा देनेपर १००००० — (१८० × २) = ९९६४० योजन शेष बचते हैं। यही प्रथम वीथी का सूची व्यास है।

प्रथम पथसे हरिवर्ष क्षेत्रके धनुषकी कृतिका प्रमाण—

तिय-ठाणेसुं सुण्णा, चउ-छ-प्पंच-दु-ख-छ-णव-सुण्णा।
पंच-दुगंक-कमेणं, एक्कं छ-त्ति-भजिदा अ धणु-वग्गो ॥४२९॥

२५०९६०२५६४०००/३६१।

अर्थ—तीन स्थानोंमें शून्य, चार, छह, पाँच, दो, शून्य, छह, नौ, शून्य, पाँच और दो, इन अंकोंके क्रमसे जो संख्या उत्पन्न हो उसमें तीन सौ इकसठका भाग देनेपर लब्ध-राशि-प्रमाण हरिवर्ष क्षेत्रके धनुषका वर्ग होता है ॥४२९॥

विशेषार्थ—अभ्यन्तर (आदिम) पथका वृत्त विष्कम्भ ९९६४० योजन है और प्रथम वीथीसे हरिवर्ष क्षेत्रके बाणका प्रमाण ३०६५८०/१९ योजन है। 'बाणसे हीन वृत्त विष्कम्भको चौगुने बाणसे गुणित करने पर जीवाकी कृति होती है।' (त्रिलोकसार गा० ७६०) के इस करणसूत्रानुसार प्रथम पथके वृत्तविष्कम्भमेंसे बाणका प्रमाण घटाकर शेष राशिको चौगुने बाणसे गुणित करनेपर जीवाकी कृति प्राप्त होती है। यथा—

(९९६४०/१ — ३०६५८०/१९) × (३०६५८०×४/१९)

= १९४५६५४७८५६००/३६१ योजन जीवाकी कृति।

'छह गुणी बाण-कृतिको जीवा-कृतिमें मिलानेसे धनुष-कृति होती है' (त्रिलोकसार गा० ७६०) के इस करणसूत्रानुसार धनुषकी कृति इसप्रकार है—

{ (३०६५८०/१९)² × ६ = ५६३९४७७७८४००/३६१ } + (१९४५६५४७८५६००/३६१)

= २५०९६०२५६४०००/३६१ योजन धनुषके वर्गका प्रमाण है।

प्रथम पथसे हरिवर्ष क्षेत्रके धनु:पृष्ठका प्रमाण—

तेसीदि-सहस्सा तिय-सयाणि सत्तत्तरी य जोयणया।
णव य कलाओ आदिम-पहादु हरिवरिस-धणु-पुट्ठं ॥४३०॥

८३३७७। ९/१९।

अर्थ—प्रथम पथसे हरिवर्ष क्षेत्रका धनुःपृष्ठ तेरासी हजार तीन सौ सतत्तर योजन और नौ कला प्रमाण है ॥४३०॥

विशेषार्थ—$\sqrt{\frac{२५०९६०२५६४०००}{३६१}} = \frac{१५८४१७२}{१९}$ योजन । (यहाँ वर्गमूल निकालनेके बाद जो शेष बचे वे छोड़ दिये गये हैं ।) $\frac{१५८४१७२}{१९} = ८३३७७\frac{९}{१९}$ योजन प्रथम पथसे हरिवर्ष क्षेत्रका धनुःपृष्ठ है ।

निषधपर्वतकी उपरिम पृथिवीका प्रमाण—

तद्धणुपट्ठस्सद्धं, सोहेज्जसु चक्खुपास - खेत्तम्मि ।
जं अवसेस-पमाणं, णिसधाचल-उवरिम-खिदी सा ॥४३१॥

४१६८८ । $\frac{१४}{१९}$ ।

अर्थ—इस धनुःपृष्ठ-प्रमाणके अर्धभागको चक्षु-स्पर्श-क्षेत्रमेंसे कम कर देनेपर जो शेष रहे उतनी निषध-पर्वतकी उपरिम पृथिवी है ॥४३१॥

विशेषार्थ—हरिवर्षके धनुपृष्ठका प्रमाण $८३३७७\frac{९}{१९} = \frac{१५८४१७२}{१९}$ योजन है । इसका अर्धभाग चक्षुस्पर्श क्षेत्रके $४७२६३\frac{७}{२०}$ योजन प्रमाणमेंसे घटानेपर निषधपर्वतकी उपरिम पृथिवीका प्रमाण होता है । यथा—

($४७२६३\frac{७}{२०} = \frac{९४५२६७}{२०}$) — $\frac{७९२०८६}{१९} = \frac{२११८३५३}{३८०} = ५५७४\frac{२३३}{३८०}$ योजन निषध पर्वतकी उपरिम पृथिवीका प्रमाण है ।

चक्षुस्पर्शके उत्कृष्ट क्षेत्रका प्रमाण—

आदिम-परिहिं ति-गुणिय, वीस-हिदे लद्धमेत्त-तेसट्ठी ।
दु - सया सत्तत्तालं, सहस्सया वीस-हरिद-सत्तंसा ॥४३२॥

४७२६३ । $\frac{७}{२०}$ ।

एदं चक्खुप्पासोक्किट्ठ - क्खेत्तस्स होदि परिमाणं ।
तं एत्थं णेदव्वं, हरिवरिस - सरास - पट्ठद्धं ॥४३३॥

अर्थ—आदिम (प्रथम) परिधिको तिगुना कर बीसका भाग देनेपर जो सैंतालीस हजार दो सौ तिरेसठ योजन और एक योजनके बीस-भागोंमेंसे सात भाग लब्ध आते हैं, यही उत्कृष्ट चक्षु-स्पर्शका प्रमाण होता है । इसमें से हरिवर्ष क्षेत्रके धनुःपृष्ठ प्रमाणके अर्धभागको घटाना चाहिए ॥४३२-४३३॥

विशेषार्थ—सूर्यकी अभ्यन्तर वीथी ३१५०८९ योजन प्रमाण है । चक्षुस्पर्शका उत्कृष्ट क्षेत्र निकालने हेतु इस परिधिको तीन से गुणित कर ६० का भाग देनेको कहा गया है । उसका

कारण यह है कि जब अभ्यन्तर बीथी स्थित सूर्य अपने भ्रमण द्वारा उस परिधिको ६० मुहूर्तमें पूरा करता है, तब बीथीके ठीक मध्यक्षेत्रमें स्थित अयोध्या पर्यन्तकी परिधिको पूर्ण करनेमें कितना समय लगेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{९}{६०} = \frac{३}{२०}$ अर्थात् $\frac{३१५०८९ \times ३}{२०} = \frac{९४५२६७}{२०} = ४७२६३\frac{७}{२०}$ योजन चक्षु-स्पर्शका उत्कृष्ट क्षेत्र प्राप्त होता है ।

भरतक्षेत्रके चक्रवर्ती द्वारा सूर्यबिम्बमें स्थित
जिनबिम्बका दर्शन—

पंच-सहस्सा [तह] पण-सयाणि चउहत्तरी य जोयणया ।
बे-सय-तेत्तीसंसा, हारो सीदी - जुदा ति-सया ।।४३४।।

५५७४ । $\frac{२३३}{३८०}$ ।

उवरिम्मि णिसह-गिरिणो, एत्तिय-माणेण पढम-मग्ग-ठिदं ।
पेच्छंति तवणि - बिंबं, भरहक्खेत्तम्मि चक्कहरा ।।४३५।।

अर्थ—उपर्युक्त प्रकारसे चक्षुके उत्कृष्ट विषय-क्षेत्रमेंसे हरि-वर्षके अर्ध धनुःपृष्ठको निकाल देनेपर निषधपर्वतकी उपरिम पृथिवीका प्रमाण पाँच हजार पाँच सौ चौहत्तर योजन और एक योजन के तीन सौ अस्सी भागोंमेंसे दो सौ तैंतीस भाग अधिक आता है । इतने योजन प्रमाण निषधपर्वतके ऊपर प्रथम वीथीमें स्थित सूर्यबिम्ब (के मध्य विराजमान जिन बिम्ब) को भरतक्षेत्रके चक्रवर्ती देखते हैं ।।४३४-४३५।।

विशेषार्थ—त्रिलोकसार गाथा ३८९-३९१ में कहा गया है कि निषधाचलके धनुष-प्रमाणके अर्धभागमेंसे चक्षु-स्पर्श क्षेत्र घटा देनेपर ($६१८८४\frac{९}{१९}$ — $४७२६३\frac{७}{२०}$)=$१४६२१\frac{४७}{३८०}$ योजन शेष रहते हैं । प्रथम वीथो स्थित सूर्य निषधाचलके ऊपर जब $१४६२१\frac{४७}{३८०}$ यो० ऊपर आता है तब चक्रवर्ती द्वारा देखा जाता है और यहाँ कहा गया है कि निषधाचल पर जब सूर्य $५५७४\frac{२३३}{३८०}$ योजन ऊपर आता है तब चक्रवर्ती द्वारा देखा जाता है । इन दोनों कथनोंमें विरोध नहीं है । क्योंकि निषधा-चलके धनुषका प्रमाण $१२३७६८\frac{१८}{१९}$ योजन और हरिवर्षके धनुषका प्रमाण $८३३१७\frac{६}{१९}$ योजन है । निषधके धनुष-प्रमाणमेंसे हरिवर्षका धनुष प्रमाण घटाकर शेषको आधा करनेपर निषधाचल की पार्श्वभुजाका प्रमाण { ($१२३७६८\frac{१८}{१९}$ — $८३३१७\frac{६}{१९}$) ÷ २ }=$२०१९५\frac{३१}{३८}$ प्राप्त होता है । (दक्षिण तटसे उत्तरतट पर्यन्त चापका जो प्रमाण है उसे पार्श्वभुजा कहते हैं) । त्रिलोकसारके मतानुसार $१४६२१\frac{४७}{३८०}$ यो० ऊपर आनेपर सूर्य दिखाई देता है । निषधाचलकी पार्श्वभुजा मेंसे यह प्रमाण घटा देनेपर ($२०१९५\frac{३१}{३८}$ — $१४६२१\frac{४७}{३८०}$) = $५५७४\frac{२३३}{३८०}$ योजन अवशेष रहते हैं । तिलोयपण्णत्तीमें सूर्य दर्शनका यही प्रमाण कहा गया है ।

मेरी समझसे इन दोनोंमें कथन भेद है, भाव या विषय भेद नहीं है, फिर भी विद्वानों द्वारा विचारणीय है।

ऐरावत क्षेत्रके चक्रवर्ती द्वारा सूर्य स्थित जिनबिम्ब दर्शन—

उवरिम्मि णील-गिरिणो, तेत्तियमाणेण पढम-मग्ग-गदो।
एरावदम्मि विजए, चक्की देक्खंति इवर - रविं[1] ॥४३६॥

अर्थ—ऐरावत क्षेत्रके चक्रवर्ती उतने ही योजन प्रमाण (५५७४ $\frac{२}{३}$ $\frac{३}{६}$ $\frac{३}{८}$ यो०) नील पर्वतके ऊपर प्रथम मार्ग स्थित सूर्यबिम्बको देखते हैं ॥४३६॥

प्रथम पथमें स्थित सूर्यके भरतक्षेत्रमें उदित होनेपर क्षेमा आदि सोलह क्षेत्रोंमें रात्रि दिनका विभाग—

ति-दुगेक्क-मुहुत्ताणि, खेमादी-तिय-पुरम्मि अहियाणि।
किंचूण - एक्क[2] - णाली, रत्ती य अरिट्ठ - णयरम्मि ॥४३७॥

मु ३ । २ । १ । णालि १ ।

अर्थ—(प्रथम पथ स्थित सूर्यके भरतक्षेत्रमें उदित होते समय) क्षमा, क्षेमपुरी और अरिष्टा इन तीन पुरोंमें क्रमशः कुछ अधिक तीन मुहूर्त, दो मुहूर्त और एक मुहूर्त तथा अरिष्टपुरीमें कुछ कम एक नाली (घड़ी) प्रमाण रात्रि होती है ॥४३७॥

विशेषार्थ—प्रथम वीथीमें स्थित सूर्य निषधकुलाचलके ऊपर आता हुआ जब भरतक्षेत्रमें उदित होता है उस समय पूर्व-विदेहमें सीता महानदीके उत्तर तट स्थित क्षेमा नगरीमें कुछ अधिक ३ मुहूर्त (कुछ अधिक २ घंटे, २४ मिनिट) रात्रि हो जाती है। उसी समय क्षेमपुरीमें कुछ अधिक २ मुहूर्त (१ घंटा, ३६ मि० से कुछ अधिक), अरिष्टामें कुछ अधिक १ मुहूर्त (४८ मि० से कुछ अधिक) और अरिष्टपुरीमें कुछ कम एक नाली (२४ मिनिटसे कुछ कम) रात्रि हो जाती है।

ताहे खग्गपुरीए, अत्थमणं होदि मंजुस - पुरम्मि ।
अवरण्हमधिय-घलियं[3], ओसहिय-णयरम्मि साहिय-मुहुत्तं ॥४३८॥

अर्थ—उसी समय खड्गपुरीमें सूर्यास्त, मंजूषपुरमें एक नालीसे कुछ अधिक अपराह्ण और औषधिपुरमें वह (अपराह्ण) मुहूर्तसे अधिक होता है ॥४३८॥

---

१. द. क. ज. दुक्खंति तियरविं, ब. देक्खंति रयररविं। २. ब. किंचूणं एक्का णाली।
३. द. ब. क. ज. मुलिया।

विशेषार्थ—जिस समय सूर्य भरतक्षेत्रमें उदित होता है उसी समय खड्गपुरीमें सूर्यास्त हो जाता है और मंजूषपुरमें एक घड़ीसे कुछ अधिक अपराह्न (कुछ अधिक २४ मिनिट दिन) तथा औषधिपुरमें कुछ अधिक एक मुहूर्त अपराह्न (४८ मिनिटसे कुछ अधिक दिन) रहता है।

> **ताहे मुहुत्तमधियं, अवरण्हं पुंडरिंगिणी - णयरे ।**
> **तप्पणिधी सुररण्णे[1], दोण्णि मुहुत्ताणि अदिरेगो ।।४३९।।**

अर्थ—उसी समय पुण्डरीकिणी नगरमें वह अपराह्न एक मुहूर्तसे अधिक और इसके समीप देवारण्यवनमें दो मुहूर्तसे अधिक होता है ।।४३९।।

विशेषार्थ—उसी समय पुण्डरीकिणी नगरीमें एक मुहूर्त (४८ मिनिट) से अधिक और देवारण्यवनमें दो मुहूर्त (१ घंटा, ३६ मिनिट) से अधिक दिन रहता है।

> **तक्कालम्मि सुसीम-प्पणधीए सुरवणम्मि पढम-पहे ।**
> **होदि अवरण्ह - कालो, तिण्णि मुहुत्ताणि अदिरेगो ।।४४०।।**
>
> **तिय-तिय मुहुत्तमहिया[2], सुसीम-कुंडलपुरम्मि दो दो य ।**
> **एक्केक्क-साहियाणं, अवराजिद - पहंकरंक - पउमपुरे ।।४४१।।**
>
> **सुभ-णयरे अवरण्हं, साहिय-णालीए होदि परिमाणं ।**
> **णालि-ति-भागं रत्ती, किंचूणं रयणसंचय - पुरम्मि ।।४४२।।**

अर्थ—उसी समय प्रथम पथमें सुसीमा नगरीके समीप देवारण्यमें तीन मुहूर्तसे अधिक अपराह्न काल रहता है। सुसीमा एवं कुण्डलपुरमें तीन-तीन मुहूर्तसे अधिक, अपराजित एवं प्रभंकर-पुरमें दो-दो मुहूर्तसे अधिक, अङ्कपुर तथा पद्मपुरमें एक-एक मुहूर्तसे अधिक और शुभनगरमें एक नालीसे अधिक अपराह्नकाल होता है। तथा रत्नसंचयपुरमें उस समय कुछ कम नालीके तीसरे-भाग-प्रमाण रात्रि होती है ।।४४०-४४२।।

विशेषार्थ—उसी समय सीतामहानदीके दक्षिण तट स्थित सुसीमा नगरीके समीप देवारण्य वन में तीन मुहूर्त (२ घंटे २४ मिनिट) से कुछ अधिक दिन रहता है। सुसीमा और कुण्डलपुरमें तीन-तीन मुहूर्त (२ घण्टा २४ मि०) से अधिक, अपराजित और प्रभङ्करपुरमें दो-दो मुहूर्त (१ घंटा ३६ मिनिट) से अधिक, अङ्कपुर और पद्मपुरमें एक-एक मुहूर्त (४८-४८ मिनिट) से अधिक तथा

---

१. द सुरवरणे दोण्णि य। २. द. ब. मधिया।

शुभनगरमें एक नाली (२४ मिनिट) से अधिक दिन रहता है। इसके अतिरिक्त रत्नसंचयपुरमें उस समय कुछ कम एक नालीके तीसरे भाग (करीब ७ मिनिट) प्रमाण रात्रि हो जाती है।

इसका चित्रण इसप्रकार है—
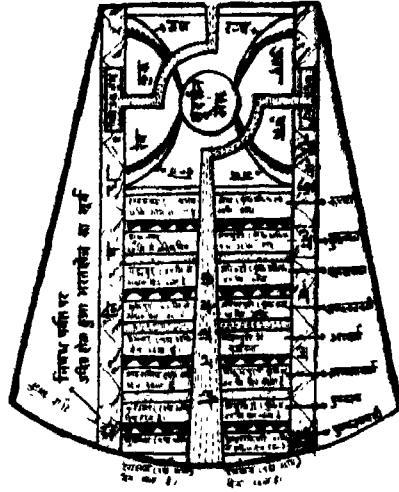
प्रथम-पथमें स्थित सूर्यके ऐरावत क्षेत्रमें उदित होनेपर अवध्या आदि सोलह नगरियोंमें रात्रि-दिनका विभाग—

एरावदम्मि उदओ, जं काले होदि कमलबंधुस्स ।
ताहे दिण - रत्तीओ, अवर - विदेहेसु साहेमि ॥४४३॥

अर्थ—जिस समय ऐरावत क्षेत्रमें सूर्यका उदय होता है उस समय अपर (पश्चिम) विदेहोंमें होनेवाले दिन-रात्रि-विभागोंका कथन करता हूँ ॥४४३॥

खेमादि-सुरवणंतं, हवंति जे पुव्व-रत्ति-अवरण्हं ।
कमसो ते णादव्वा, अस्सपुरी-पहुदि णवय-ठाणेसुं ॥४४४॥

अर्थ—क्षेमा आदि नगरीसे देवारण्य पर्यन्त जो पूर्व-रात्रि एवं अपराह्न काल होते हैं, वे ही क्रमशः अश्वपुरी आदिक नौ स्थानोंमें भी जानने चाहिए ॥४४४॥

होंति अवज्झादी णव-ठाणेसुं पुव्व-रत्ति-अवरण्हं ।
पुव्वत्त - रयणसंचय, पुरादि-णव-ठाण-सारिच्छा ।।४४५।।

अर्थ—अवध्य आदिक नौ स्थानोंमें पूर्वोक्त रत्नसंचय पुरादिक नौ स्थानोंके सदृश ही पूर्व रात्रि एवं अपराह्णकाल होते हैं ।।४४५।।

भरत-ऐरावतमें मध्याह्न होनेपर विदेहमें रात्रिका प्रमाण—

किंचूण-छम्मुहुत्ता, रत्ती जा पुंडरिंगिणी - णयरे ।
तह होदि वीदसोके, भरहेरावद-खिदीसु मज्झण्णे ।।४४६।।

अर्थ—भरत और ऐरावत क्षेत्रमें मध्याह्न होनेपर जिसप्रकार पुण्डरीकिणी नगरमें कुछ कम छह मुहूर्त रात्रि होती है, उसीप्रकार वीतशोका नगरीमें भी कुछ कम छह मुहूर्त प्रमाण रात्रि होती है ।।४४६।।

नीलपर्वत पर सूर्यका उदय अस्त—

ताहे णिसह-गिरिंदे, उदयत्थमणाणि होंति भाणुस्स ।
णील - गिरिंदेसु तहा, एक्क - खणे दोसु पासेसुं ।।४४७।।

अर्थ—उससमय जिसप्रकार निषधपर्वत पर सूर्यका उदय एवं अस्तगमन होता है, उसीप्रकार एक ही क्षणमें नील-पर्वतके ऊपर भी दोनों पार्श्वभागोंमें (द्वितीय) सूर्यका उदय एवं अस्तगमन होता है ।।४४७।।

भरत-ऐरावत क्षेत्र स्थित चक्रवर्तियों द्वारा अदृश्यमान सूर्यका प्रमाण—

पच-सहस्सा [तह] पण-सयाणि चउहत्तरी य अदिरेगो ।
तेत्तीस - बे - सयंसा, हारो सीदी - जुदा ति-सया ।।४४८।।

५५७४ । $\frac{२३३}{३८०}$ ।

एत्तियमेत्तादु परं उवरि णिसहस्स पढम - मग्गम्मि ।
भरहक्खेत्ते चक्की, दिणयर - बिंबं ण देक्खंति ।।४४९।।

अर्थ—भरतक्षेत्रमें चक्रवर्ती पाँच हजार पाँच सौ चौहत्तर योजन और एक योजनके तीन सौ अस्सी भागोंमेंसे दो सौ तैंतीस भाग अधिक, इतने (५५७४$\frac{२३३}{३८०}$ यो०) से आगे निषधपर्वतके ऊपर प्रथम मार्गमें सूर्य-बिम्बको नहीं देखते हैं ।।४४८-४४९।।

उवरिम्मि णीलगिरिणो, ते परिमाणादु पढम-मग्गम्मि ।
एरावदम्मि चक्की, इदर - विणेसं ण देक्खंति ॥४५०॥

अर्थ—ऐरावतक्षेत्रमें स्थित चक्रवर्ती नीलपर्वतके ऊपर इस प्रमाण (५५७४ $\frac{२}{३}\frac{३}{६}\frac{१}{८}$ यो०) से अधिक-दूर प्रथम मार्ग स्थित दूसरे सूर्यको नहीं देखते हैं ॥४५०॥

दोनों सूर्योंके प्रथम मार्गसे द्वितीयमार्गमें प्रविष्ट होनेकी दिशाएँ—

सिहि-पवण-दिसाहिंतो, जंबूदीवस्स दोण्णि रवि-बिंबा ।
दो जोयणाणि पुह-पुह, आदिम-मग्गादु बिदिय-पहे ॥४५१॥

अर्थ—जम्बूद्वीपके दोनों सूर्य-बिम्ब आग्नेय तथा वायव्य दिशासे पृथक्-पृथक् दो-दो योजन लांघकर प्रथम मार्गसे द्वितीय मार्ग (पथ) में प्रवेश करते हैं ॥४५१॥

सूर्यके प्रथम और बाह्य मार्गमें स्थित रहते दिन-रात्रिका प्रमाण—

लंघंता[1] आवाणं, भरहेरावद - खिदीसु पविसंति ।
ताधो पुव्वुत्ताइं, रत्ती - दिवसाणि जायंते ॥४५२॥

अर्थ—जिस समय दोनों सूर्य प्रथममार्गमें प्रवेश करते हुए क्रमशः भरत और ऐरावत क्षेत्र में प्रविष्ट होते हैं, उसी समय पूर्वोक्त (१८ मुहूर्तका दिन और १२ मुहूर्तकी रात्रि) दिन-रात्रियाँ होती हैं ॥४५२॥

एवं सव्व - पहेसुं, उदयत्थमयाणि ताणि णादूणं ।
पडि-वीहिं दिवस-णिसा, बाहिर-[2]मग्गंतमाणेज्जं ॥४५३॥

अर्थ—इसप्रकार सर्व पथोंमें उदय एवं अस्तगमनोंको जानकर सूर्यके बाह्य मार्गमें स्थित प्रत्येक वीथीमें दिन और रात्रिका प्रमाण ज्ञात कर लेना चाहिए ॥४५३॥

सव्व-परिहीसु बाहिर-मग्ग-ठिदे दिवहणाह-बिंबम्मि ।
दिण - रत्तीओ बारस, अट्ठरस - मुहुत्तमेत्ताओ ॥४५४॥

अर्थ—सूर्य-बिम्बके बाह्य पथमें स्थित होनेपर सर्व परिधियोंमें बारह मुहूर्त प्रमाण दिन और अठारह मुहूर्त प्रमाण रात्रि होती है ॥४५४॥

---

१. ब. लंघंतकाले । २ द. ब. मग्गत्थमाणेज्ज ।

बाहिर-पहादु आदिम-पहम्मि दुमणिस्स आगमण-काले ।
पुव्वुत्त - दिण - णिसाओ, हवंति अहियाओ ऊणाओ ।।४५५।।

अर्थ—सूर्यके बाह्य पथसे आदि पथकी ओर आते समय पूर्वोक्त दिन एवं रात्रि क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक और कम अर्थात् उत्तरोत्तर दिन अधिक तथा रात्रि कम होती है ।।४५५।।

सूर्यके उदय-स्थानोंका निरूपण—

मत्तंड-दिण-गदीए, एक्कं चिय लब्भदे उदय-ठाणं ।
एवं दीवे वेदी - लवणसमुद्देसु आणेज्ज ।।४५६।।

$\frac{१७०}{६१}$ । १ । १७६ । $\frac{१७०}{६१}$ । १ । ४ । $\frac{१७०}{६१}$ । १ । $\frac{२०१७८}{६१}$ ।

अर्थ—सूर्यकी दिनगतिमें एक ही उदयस्थान लब्ध होता है । इसप्रकार द्वीप, वेदी और लवण समुद्रमें उदय-स्थानोंके प्रमाणको ले आना चाहिए ।।४५६।।

ते दीवे तेसट्ठी, छव्वीसंसा ख - सत्त - एक्क-हिदा ।
एक्को च्चिय वेदीए, कलाओ चउहत्तरी होंति ।।४५७।।

६३ । $\frac{२६}{१७०}$ । १ । $\frac{७४}{१७०}$ ।[1]

अर्थ—वे उदय स्थान एक सो सत्तरसे भाजित छब्बीस भाग अधिक तिरेसठ (६३$\frac{२६}{१७०}$) जम्बूद्वीपमें और चौहत्तरकला अधिक केवल एक (१$\frac{७४}{१७०}$) उदयस्थान उसकी वेदीके ऊपर है ।।४५७।।

अट्ठारसुत्तर-सदं, लवणसमुद्दम्मि तेत्तिय-कलाओ ।
एदे मिलिदा उदया, तेसीदि-सदाणि अट्ठताल-कला ।।४५८।।

११८ । $\frac{११८}{१७०}$ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें उतनी (११८) ही कलाओंसे अधिक एक सो अठारह (११८) उदयस्थान हैं । ये सब उदयस्थान मिलकर अड़तालीस कलाओंसे अधिक एक सो तेरासी (१८३$\frac{४८}{१७०}$) हैं ।।४५८।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपमें सूर्यके चार क्षेत्रका प्रमाण १८० योजन है । जम्बूद्वीपकी वेदीका व्यास ४ योजन है और लवण-समुद्रके चार क्षेत्रका प्रमाण ३३०$\frac{४८}{६१}$=$\frac{२०१७८}{६१}$ योजन है । सूर्यवीथीका प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ योजन है और एक वीथीसे दूसरी वीथीके अन्तरालका प्रमाण २ योजन है । यह २+$\frac{४८}{६१}$ अर्थात् $\frac{१७०}{६१}$ योजन सूर्यके प्रतिदिनका गमनक्षेत्र है ।

---

१. ब. २१ । $\frac{७४}{१७०}$ ।, ब. ६३ । $\frac{७४}{१७०}$ ।

गाथा ४५६ की संदृष्टिके प्रारम्भमें जो $\frac{१७०}{६१}$ । १ । १७६ दिये गये हैं उनका अर्थ यह है—

जबकि $\frac{१७०}{६१}$ योजन दिनगतिमें १ उदयस्थान होता है तब वेदिकाके व्याससे रहित जम्बूद्वीपके (१८० — ४) १७६ योजनमें कितने उदय स्थान प्राप्त होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१७६ \times ६१}{१७०}$ = $\frac{१०७३६}{१७०}$ = ६३$\frac{२६}{१७०}$ उदय अंश प्राप्त हुए। जिनकी संदृष्टि गाथा ४५७ के नीचे है। गा० ४५६ की संदृष्टिका दूसरा अश $\frac{१७०}{६१}$ । १ । ४ । है। अर्थात् जबकि $\frac{१७०}{६१}$ योजन क्षेत्रमें एक उदय स्थान प्राप्त होता है, तब वेदी-व्यास के ४ योजनोंमें कितने उदय स्थान होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{६१ \times ४}{१७०}$ = $\frac{२४४}{१७०}$ अर्थात् १$\frac{७४}{१७०}$ उदय अंश प्राप्त होते हैं; जिनकी संदृष्टि भी गाथा ४५७ के नीचे है।

गाथा ४५६ की संदृष्टिका अन्तिम अंश $\frac{१७०}{६१}$ । १ । $\frac{२०१७८}{६१}$ । है। अर्थात् जबकि $\frac{१७०}{६१}$ योजन क्षेत्रका १ उदय स्थान है तब लवणसमुद्रके चारक्षेत्र $\frac{२०१७८}{६१}$ (३३०$\frac{४८}{६१}$) योजन क्षेत्रमें कितने उदयस्थान होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{६१}{१७०} \times \frac{२०१७८}{६१}$ = $\frac{२०१७८}{१७०}$ अर्थात् ११८$\frac{११८}{१७०}$ उदय अंश प्राप्त हुए; जिनकी संदृष्टि गाथा ४५८ के नीचे दी गई है।

उपर्युक्त तीनों राशियोंको जोड़नेपर (६३$\frac{२६}{१७०}$ + १$\frac{७४}{१७०}$ + ११८$\frac{११८}{१७०}$) = १८२ उदयस्थान और $\frac{२१८}{१७०}$ उदय अंश प्राप्त होते हैं। जबकि १ उदय स्थानका $\frac{१७०}{६१}$ योजन क्षेत्र होता है तब $\frac{२१८}{१७०}$ उदय अंशोंका कितना क्षेत्र होगा ? इसप्रकार ($\frac{१७०}{६१} \times \frac{२१८}{१७०}$) = $\frac{२१८}{६१}$ योजन क्षेत्र प्राप्त होता है। इस क्षेत्रके उदयस्थान निकालने पर ($\frac{६१}{१७०} \times \frac{२१८}{६१}$ = $\frac{२१८}{१७०}$) अर्थात् १$\frac{४८}{१७०}$ उदयस्थान प्राप्त होते हैं। इन्हें उपर्युक्त उदय-स्थानोंमें जोड़ देनेपर (१८२ + १$\frac{४८}{१७०}$) = १८३$\frac{४८}{१७०}$ अर्थात् ४८ कला अधिक १८३ उदय स्थान प्राप्त होते हैं।

उदय स्थानोंका विशद विवेचन त्रिलोकसार गाथा ३९६ की टीकासे ज्ञातव्य है।

ग्रहोंका निरूपण—

अट्ठासीदि-गहाणं, एक्कं चिय होदि एत्थ चारखिदी।
तज्जोग्गो वीहीओ, पडिवीहिं होंति परिहीओ ॥४५९॥

अर्थ—यहाँ अठासी ग्रहोंका एक ही चारक्षेत्र है, जहाँ प्रत्येक वीथीमें उसके योग्य वीथियाँ और परिधियाँ हैं ॥४५९॥

परिहीसु ते चरंते, ताणं कणयाचलस्स विच्चालं।
अण्णं पि पुव्व-भणिदं, काल-वसादो पणट्ठमुवएसं ॥४६०॥

गहाणं परूवणा समत्ता।

अर्थ—वे ग्रह इन परिधियोंमें संचार करते हैं। इनका मेरु-पर्वतसे अन्तराल तथा और भी जो पूर्वमें कहा जा चुका है उसका उपदेश कालवश नष्ट हो चुका है ॥४६०॥

ग्रहोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

चन्द्रके पन्द्रह पथोंमेंसे किस-किस पथमें कौन-कौन नक्षत्र संचार करते हैं ?
उनका विवेचन—

ससिणो पण्णरसाणं, वीहीणं ताण होंति मज्झम्मि।
अट्ठं चिय वीहीओ, अट्ठावीसाण रिक्खाणं ॥४६१॥

अर्थ—चन्द्रकी पन्द्रह गलियोंके मध्यमें अट्ठाईस नक्षत्रोंको आठ ही गलियाँ होती हैं ॥४६१॥

णव अभिजिप्पहुदीणं, सादी पुव्वाओ उत्तराओ वि।
इय बारस रिक्खाणि, चंदस्स चरंति पढम - पहे ॥४६२॥

अर्थ—अभिजित् आदि नौ, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी ये बारह नक्षत्र चन्द्रके प्रथम पथमें संचार करते हैं ॥४६२॥

तदिए पुणव्वसू मघ, सत्तमए रोहणी य चित्ताओ।
छट्ठम्मि कित्तियाओ, तह य विसाहाओ अट्ठमओ ॥४६३॥

अर्थ—चन्द्रके तृतीय पथमें पुनर्वसु और मघा, सातवेंमें रोहिणी और चित्रा, छठेमें कृतिका तथा आठवें पथमें विशाखा नक्षत्र संचार करता है ॥४६३॥

दसमे अणुराहाओ, जेट्ठा एक्कारसम्मि पण्णरसे।
हत्थो मूलादि - तियं, मिगसिर-दुग-पुस्स-असिलेसा ॥४६४॥

अर्थ—दसवें पथमें अनुराधा, ग्यारहवेंमें ज्येष्ठा तथा पन्द्रहवें मार्गमें हस्त, मूलादि तीन (मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा), मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य और आश्लेषा ये आठ नक्षत्र संचार करते हैं ॥४६४॥

विशेषार्थ—चन्द्रकी १५ गलियाँ हैं। उनमेंसे ८ गलियोंमें २८ नक्षत्र संचार करते हैं। यथा—

(१) चन्द्रकी प्रथम वीथीमें-अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी। (२) तृतीय वीथीमें—

पुनर्वसु और मघा । (३) छठी वीथीमें-कृत्तिका । (४) सातवीं वीथीमें—रोहिणी और चित्रा । (५) आठवींमें—विशाखा । (६) दसवींमें अनुराधा । (७) ग्यारहवींमें—ज्येष्ठा तथा (८) पन्द्रहवीं (अन्तिम) वीथीमें—हस्त, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य और आश्लेषा ये आठ नक्षत्र संचार करते हैं । यथा—
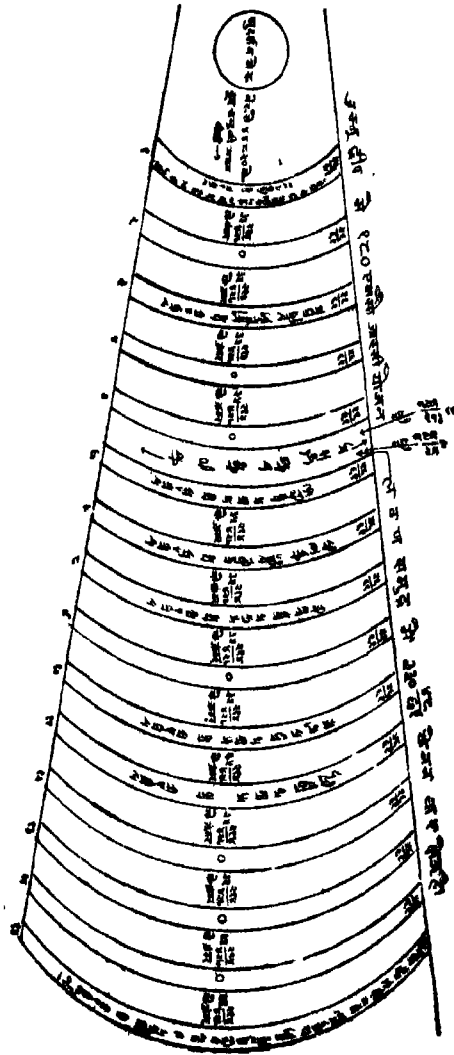
प्रत्येक नक्षत्रके ताराओंकी संख्या—

ताराओ कित्तियादिसु, छ-प्पंच-ति-एक्क-छक्क-तिय-छक्का ।
चउ-दुग-दुग - पंचेक्का, एक्क-चउ-छ-ति-णव-चउक्का य ।।४६५।।

चउ-तिय-तिय-पंचा तह, एक्करस-जुदं सयं दुग - दुगाणि ।
बत्तीस पंच तिण्णि य, कमेण णिद्दिट्ठ - संखाओ ।।४६६।।

६ । ५ । ३ । १ । ६ । ३ । ६ । ४ । २ । २ । ५ । १ । १ । ४ । ६ । ३ ।
। ९ । ४ । ४ । ३ । ३ । ५ । १११ । २ । २ । ३२ । ५ । ३ ।

अर्थ—छह, पाँच, तीन, एक, छह, तीन, छह, चार, दो, दो, पाँच, एक, एक, चार, छह, तीन, नौ, चार, चार, तीन, तीन, पाँच, एक सौ ग्यारह, दो, दो, बत्तीस, पाँच और तीन, यह क्रमशः उन कृत्तिकादिक नक्षत्रोंके ताराओंकी संख्या कही गई है ।।४६५-४६६।।

प्रत्येक ताराका आकार—

वीयणय-सयलउड्ढी, कुरंगसिर-दीव-तोरणाणं च ।
आदववारण - वम्मिय - गोमुत्तं सरदुगाणं च ।।४६७।।

हत्थुप्पल-दीवाणं, अधियरणं हार-वीण-सिंगा य ।
विच्छुव-दुक्कयवावी, केसरि - गयसीस आयारा ।।४६८।।

मुरयं पतंतपक्खी, सेणा गय-पुव्व-अवर-गत्ता य ।
णावा हयसिर-सरिसा, णं चुल्ली कित्तियादीणं ।।४६९।।

अर्थ—कृत्तिका आदि नक्षत्रों (ताराओं) के आकार क्रमशः १बीजना, २गाड़ीकी उद्धिका, ३हिरणका सिर, ४दीप, ५तोरण, ६आतपवारण (छत्र), ७वल्मीक, ८गोमूत्र, ९सरयुग, १०हस्त, ११उत्पल, १२दीप, १३अधिकरण, १४हार, १५वीणा, १६सींग, १७बिच्छू, १८दुष्कृतवापी, १९सिंहका सिर, २०हाथीका सिर, २१मुरज, २२पततपक्षी, २३सेना, २४हाथीका पूर्व शरीर, २५हाथीका अपर शरीर, २६नौका, २७घोड़ेका सिर और २८चूल्हाके सदृश हैं ।।४६७-४६९।।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

नक्षत्रोंके नाम, ताराओंकी संख्या एवं आकार—

क्रमांक	नक्षत्र	ताराओं की संख्या	ताराओं के आकार	क्रमांक	नक्षत्र	ताराओं की संख्या	ताराओं के आकार
१.	कृत्तिका	६	बीजना सदृश	१५.	अनुराधा	६	बीणा सदृश
२.	रोहिणी	५	गाड़ीकी उद्धिका	१६.	ज्येष्ठा	३	सींग सदृश
३.	मृगशीर्षा	३	हिरणके सिर सदृश	१७.	मूल	९	बिच्छू सदृश
४.	आर्द्रा	१	दीप सदृश	१८.	पूर्वाषाढ़ा	४	दुष्कृत वापी सदृश
५.	पुनर्वसु	६	तोरण सदृश	१९.	उत्तराषाढ़ा	४	सिंहके सिर सदृश
६.	पुष्य	३	छत्र सदृश	२०.	अभिजित्	३	हाथीके सिर सदृश
७.	आश्लेषा	६	वल्मीक (बांबी) ,,	२१.	श्रवण	३	मुरज (मृदङ्ग) ,,
८.	मघा	४	गोमूत्र सदृश	२२.	धनिष्ठा	५	गिरते हुए पक्षी ,,
९.	पूर्वा फाल्गुनी	२	सरयुग ,,	२३.	शतभिषा	१११	सेना सदृश
१०.	उत्तरा ,,	२	हाथ ,,	२४.	पूर्वाभाद्रपद	२	हाथीके पूर्व शरीर ,,
११.	हस्त	५	उत्पल (नीलकमल) ,,	२५.	उत्तराभाद्रपद	२	हाथीके अपर शरीर ,,
१२.	चित्रा	१	दीप सदृश	२६.	रेवती	३२	नौका सदृश
१३.	स्वाति	१	अधिकरण ,,	२७.	अश्विनी	५	घोड़ेके सिर सदृश
१४.	विशाखा	४	हार ,,	२८.	भरणी	३	चूल्हेके सदृश

कृत्तिका आदि नक्षत्रोंकी परिवार ताराएँ और सकल ताराएँ—

णिय णिय तारा-संखा, सव्वाणं ठाविदूण रिक्खाणं ।
पत्तेक्कं गुणिदव्वं, एक्करस - सदेहिं एक्करसे ।।४७०।।

११११ ।

होंति परिवार-तारा, मूलं मिस्साओ सयल-ताराओ ।
तिविहाइं रिक्खाइं, मज्झिम - वर - अवर-भेदेहिं ॥४७१॥

६६६६ । ५५५५ । ३३३३ । ११११ । ६६६६ । ३३३३ । ६६६६ । ४४४४ ।
२२२२ । २२२२ । ५५५५ । ११११ । ११११ । ४४४४ । ६६६६ ।
३३३३ । ९९९९ । ४४४४ । ४४४४ । ३३३३ । ३३३३ ।
५५५५ । १२३३२१ । २२२२ । २२२२ ।
३५५५२ । ५५५५ । ३३३३ ।
६६७२ । ५५६० । ३३३६ । ११९२ । ६६७२ । ३३३६ । ६६७२ । ४४४८ ।
२२२४ । २२२४ । ५५६० । ११९२ । ११९२ । ४४४८ । ६६७२ ।
३३३६ । १०००८ । ४४४८ । ४४४८ । ३३३६ । ३३३६ ।
५५६० । १२३४३२ । २२२४ । २२२४ ।
३५५८४ । ५५६० । ३३३६ ।

अर्थ—अपने-अपने सब ताराओंकी संख्या को रखकर उसे ग्यारह सौ ग्यारह (११११) से गुणा करनेपर प्रत्येक नक्षत्रके परिवार-ताराओंका प्रमाण प्राप्त होता है। इसमें मूल ताराओंका प्रमाण मिला देनेपर समस्त ताराओंका प्रमाण होता है। मध्यम, उत्कृष्ट और जघन्यके भेदसे नक्षत्र तीन प्रकारके होते हैं ॥४७०-४७१॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

ताराओं का प्रमाण—

क्रमांक	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	मूल ताराओं की संख्या	प्रत्येक नक्षत्र की सम्पूर्ण ताराएं	क्रमांक	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	मूल ताराओं की संख्या	प्रत्येक नक्षत्र की सम्पूर्ण ताराएं
१.	कृत्तिका	१११११ × ६ = ६६६६ +	६ =	६६७२	१५.	अनुराधा	१११११ × ६ = ६६६६ +	६ =	६६७२
२.	रोहिणी	१११११ × ५ = ५५५५ +	५ =	५५६०	१६.	ज्येष्ठा	१११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६
३.	मृग०	१११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६	१७.	मूल	१११११ × ९ = ९९९९ +	९ =	१०००८
४.	आर्द्रा	१११११ × १ = ११११ +	१ =	१११२	१८.	पूर्वाषाढ़ा	१११११ × ४ = ४४४४ +	४ =	४४४८
५.	पुनर्वसु	१११११ × ६ = ६६६६ +	६ =	६६७२	१९.	उ० षाढा	१११११ × ४ = ४४४४ +	४ =	४४४८
६.	पुष्य	१११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६	२०.	अभि०	१११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६
७.	आश्लेषा	१११११ × ६ = ६६६६ +	६ =	६६७२	२१.	श्रवण	१११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६
८.	मघा	१११११ × ४ = ४४४४ +	४ =	४४४८	२२.	धनिष्ठा	१११११ × ५ = ५५५५ +	५ =	५५६०
९.	पू० फा०	१११११ × २ = २२२२ +	२ =	२२२४	२३	शतभि०	१११११ × १११ = १२३३२१ +	१११ =	१२३४३२
१०.	उ० फा०	१११११ × २ = २२२२ +	२ =	२२२४	२४.	पू० भा०	१११११ × २ = २२२२ +	२ =	२२२४
११.	हस्त	१११११ × ५ = ५५५५ +	५ =	५५६०	२५.	उ० भा०	१११११ × २ = २२२२ +	२ =	२२२४
१२.	चित्रा	१११११ × १ = ११११ +	१ =	१११२	२६.	रेवती	१११११ × ३२ = ३५५५२ +	३२ =	३५५८४
१३.	स्वाति	१११११ × १ = ११११ +	१ =	१११२	२७.	अश्विनी	१११११ × ५ = ५५५५ +	५ =	५५६०
१४.	विशाखा	१११११ × ४ = ४४४४ +	४ =	४४४८	२८.	भरणी	१११११ × ३ = ३३३३ +	३ =	३३३६

जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम नक्षत्रोंके नाम तथा इन तीनोंके
गगन-खण्डोंका प्रमाण—

अवराओ जेट्ठद्दा, सदभिस-भरणीओ सादि-असिलेस्सा ।
होंति वराओ पुणव्वसु ति-उत्तरा रोहणि-विसाहाओ ।।४७२।।

सेसाओ मज्झिमाओ, जहण्ण-भे पंच-उत्तर-सहस्सं ।
तं चिय दुगुणं तिगुणं, मज्झिम-वर-भेसु णभ-खण्डा ।।४७३।।

१००५ । २०१० । ३०१५ ।

अर्थ—ज्येष्ठा, आर्द्रा, शतभिषक्, भरणी, स्वाति और आश्लेषा, ये छह जघन्य; पुनर्वसु, तीन उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरा भाद्रपद), रोहिणी और विशाखा ये उत्कृष्ट; एवं शेष (अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्षा, पुष्य, मघा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वा फा०, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा भाद्रपद, मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती ये) नक्षत्र मध्यम हैं। इनमेंसे (प्रत्येक) जघन्य नक्षत्रके एक हजार पाँच (१००५), (प्रत्येक) मध्यम नक्षत्रके इससे दुगुने (१००५×२= २०१०) और प्रत्येक उत्कृष्ट नक्षत्रके इससे तिगुने (१००५×३ = ३०१५) गगनखण्ड होते हैं ।।४७२-४७३।।

अभिजित् नक्षत्रके गगनखण्ड—

अभिजिस्स छस्सयाणि, तीस-जुदाणि हवंति णभ-खंडा ।
एवं णक्खत्ताणं, सीम - विभागं वियाणेहि ।।४७४।।

६३० ।

अर्थ—अभिजित् नक्षत्रके छह सौ तीस (६३०) गगनखण्ड होते हैं। इसप्रकार नभ-खण्डोंसे इन नक्षत्रोंकी सीमाका विभाग जानना चाहिए ।।४७४।।

एक मुहूर्तके गगनखण्ड—

पत्तेक्कं रिक्खाणि, सव्वाणि मुहुत्तमेत्त - कालेणं ।
लंघंति गयणखंडे, पणतीसट्ठारस - सयाणि ।।४७५।।

१८३५ ।

अर्थ—(सब नक्षत्रोंमेंसे) प्रत्येक नक्षत्र एक मुहूर्त कालमें अठारह सौ पैंतीस (१८३५) गगनखण्ड लांघता है ।।४७५।।

सर्व गगनखण्डोंका प्रमाण और उनका आकार—

दो-ससि-णक्खत्ताणं, परिमाणं भणमि गयणखंडेसु ।
लक्खं णव य सहस्सा, अट्ठ - सया कहलायारा ॥४७६॥

अर्थ—दो चन्द्रों सम्बन्धी नक्षत्रोंके गगनखण्डोंका प्रमाण कहता हूँ । ये गगनखण्ड काहला (वाद्यविशेष) के आकारवाले हैं । इनका कुल प्रमाण एक लाख नौ हजार आठ सौ है ॥४७६॥

विशेषार्थ—जघन्य नक्षत्र ६ और प्रत्येकके गगनखण्ड १००५ हैं अतः १००५×६= ६०३० । मध्यम नक्षत्र १५ और प्रत्येक के गगनखण्ड २०१० हैं अतः २०१०×१५=३०१५० । उत्तम नक्षत्र ६ और प्रत्येकके गगनखण्ड ३०१५ हैं अतः ३०१५×६=१८०९० । अभिजित् नक्षत्रके ग० खं० ६३० हैं । इसप्रकार एक चन्द्र सम्बन्धी सर्व गगनखण्ड (६०३०+३०१५०+१८०९०+ ६३०)=५४९०० है । तथा दो चन्द्रों सम्बन्धी सर्व गगनखण्डोंका प्रमाण (५४९००×२) =१०९८०० है ।

सर्व गगनखण्डोंका अतिक्रमण काल—

रिक्खाण मुहुत्त-गदी, होदि पमाणं फलं मुहुत्तं च ।
इच्छा णिस्सेसाइं, मिलिदाइं गयणखंडाणि ॥४७७॥

१८३५ । १०९८०० ।

तेरासियम्मि लद्धं, णिय णिय परिहीसु सो भमण-कालो ।
तम्माणं उणसट्ठी, होंति मुहुत्ताणि अहिरेगो ॥४७८॥

५९ ।

अहिरेयस्स पमाणं, तिण्णि सयाणि हुवंति सत्त-कला ।
तिसएहिं सत्तसट्ठी - संजुत्तेहिं विहत्ताणि ॥४७९॥

$\frac{३०७}{३६७}$ ।

अर्थ—[जबकि नक्षत्रोंको १८३५ गगनखण्डोंके भ्रमणमें एक मुहूर्त लगता है, तब १०९८०० ग० खं० के भ्रमणमें कितना काल लगेगा ? इसप्रकार करनेपर] नक्षत्रोंकी मुहूर्त काल-परिमित गति (१८३५) प्रमाण-राशि, एक मुहूर्त फल-राशि और सब मिलकर (१०९८००) गगन-खण्ड इच्छाराशि होती है । इसप्रकार त्रैराशिक करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना अपनी-अपनी परिधियों का भ्रमण-काल है । उसका प्रमाण यहाँ कुछ अधिक उनसठ (५९) मुहूर्त है । इस अधिक का प्रमाण तीन सौ सड़सठसे विभक्त तीन सौ सात कला ($\frac{३०७}{३६७}$) है ॥४७७-४७९॥

विशेषार्थ—प्रत्येक परिधिमें १०९८०० गगनखण्डों पर भ्रमण करनेमें नक्षत्रों को ($\frac{१०९८००\times१}{१८३५}$ =) ५९$\frac{३०७}{३६७}$ मुहूर्त लगते हैं।

चन्द्रकी प्रथम वीथी में स्थित १२ नक्षत्रोंका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र—

सवणादि-अट्ठ-भाणि, अभिजिस्सादीओ उत्तरा-पुव्वा।
वच्चंति मुहुत्तेणं, बावण्ण-सयाणि अहिय-पणसट्ठी ॥४८०॥

५२६५।

अहिय-प्पमाणमंसा, अट्ठरस-सहस्स-बु-सय-तेसट्ठी।
इगिवीस-सहस्साणि, णव - सय - सट्ठी हरे हारो ॥४८१॥

$\frac{१८२६३}{२१९६०}$।

अर्थ—श्रवणादिक आठ, अभिजित्, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार दो सौ पैंसठ योजन से अधिक गमन करते हैं। यहाँ अधिकता का प्रमाण इक्कीस हजार नौ सौ साठ भागोंमेंसे अठारह हजार दो सौ तिरेसठ भाग प्रमाण है ॥४८०-४८१॥

विशेषार्थ—चन्द्रकी प्रथम वीथीमें श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पू० भा०, उ० भा०, रेवती, अश्विनी, भरणी, अभिजित्, स्वाति, पू० फा० और उ० फा० ये १२ नक्षत्र संचार करते हैं। प्रथम वीथी की परिधि का प्रमाण ३१५०८९ योजन है। जबकि नक्षत्र ५९$\frac{३०७}{३६७}$ = $\frac{२१९६०}{३६७}$ मुहूर्तोंमें ३१५०८९ योजन संचार करते हैं, तब एक मुहूर्तमें कितने योजन गमन करेंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{३१५०८९\times३६७}{२१९६०}$)= ५२६५$\frac{१८२६३}{२१९६०}$ योजन प्राप्त होते हैं। यही चन्द्र की प्रथम वीथी में नक्षत्रों के एक मुहूर्त के गमन क्षेत्र का प्रमाण है।

चन्द्र की तीसरी वीथी स्थित नक्षत्रों का गमन क्षेत्र—

वच्चंति मुहुत्तेणं, पुणव्वसु[1]-मघा ति-सत्त-दुग-पंचा।
अंक-कमे जोयणया, तिय-णभ-चउ-एक्क-एक्क-कला ॥४८२॥

५२७३। $\frac{११४०३}{२१९६०}$।

अर्थ—पुनर्वसु और मघा नक्षत्र अंक-क्रमसे तीन, सात, दो और पाँच अर्थात् पाँच हजार दो सौ तिहत्तर योजन और ग्यारह हजार चार सौ तीन भाग अधिक एक मुहूर्तमें गमन करते हैं ॥४८२॥

---

१. द. ब. क. ज. पुव्वाउ।

विशेषार्थ—पुनर्वसु और मघा नक्षत्र चन्द्रकी तृतीय वीथीमें भ्रमण करते हैं। इस वीथीकी परिधिका प्रमाण ३१५५४९ [illegible] योजन है। किन्तु पुनर्वसु और मघाका एक मुहूर्त का गमन क्षेत्र निकालते समय अधिकका प्रमाण ([illegible]) छोड़कर त्रैराशिक किया गया है।

जिसका प्रमाण ($\frac{३१५५४९ \times ३१७}{[illegible]}$) = ५२७ [illegible] योजन प्राप्त होता है।

नोट—आगे शेष छह गलियोंकी परिधिके प्रमाणमें से भी अधिक का प्रमाण छोड़ कर गमन क्षेत्र प्राप्त किया गया है।

कृत्तिका नक्षत्रका एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

बावण्ण - सया पणसीदि - उत्तरा सत्ततीस अंसा य।
चउणउदि[1]-पण-सय-हिदा, जादि मुहुत्तेण कित्तिया रिक्खा ॥४८३॥

५२८५। $\frac{३७}{५९४}$।

अर्थ—कृत्तिका नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार दो सौ पचासी योजन और पाँच सौ चौरानबैसे भाजित सैंतीस भाग अधिक गमन करता है ॥४८३॥

विशेषार्थ—कृत्तिका नक्षत्र चन्द्रकी छठी वीथीमें भ्रमण करता है। इस वीथीकी परिधि का प्रमाण ३१६२४० [illegible] योजन है। इसमें कृत्तिका का एक मुहूर्तका गमनक्षेत्र ($\frac{३१६२४० \times ३१७}{[illegible]}$) = ५२८५ $\frac{३७}{५९४}$ योजन प्राप्त होता है।

चित्रा और रोहिणीका एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

पंच-सहस्सा दु - सया, अट्ठासीदी य जोयणा अहिया।
चित्ताओ रोहिणीओ, जंति मुहुत्तेण पत्तेक्कं ॥४८४॥

अविरेगस्स पमाणं, कलाओ सग-सत्त-ति-णह-दुगमेत्ता।
अंक - कमे तह हारो, ख-छक्क-णव-एक्क-दुग-माणो ॥४८५॥

५२८८। $\frac{२०३७७}{२१९६०}$।

अर्थ—चित्रा और रोहिणीमेंसे प्रत्येक नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार दो सौ अठासी योजनसे अधिक जाता है। यहाँ अधिकताका प्रमाण अंक-क्रमसे शून्य, छह, नौ, एक और दो अर्थात् इक्कीस हजार नौ सौ साठसे भाजित बीस हजार तीन सौ सतत्तर कला है ॥४८४-४८५॥

---

१. द. ब. क. ज. चउणउदीपणय।

विशेषार्थ—चित्रा और रोहिणी नक्षत्र चन्द्रके सातवें पथमें भ्रमण करते हैं। इस पथ की परिधिका प्रमाण ३१६४७१ [illegible] योजन है। इसमें प्रत्येकका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र $(\frac{३१६४७१ \times ३६७}{२१९६०})$ $=५२८८\frac{२०३७७}{२१९६०}$ योजन प्राप्त होता है।

विशाखा नक्षत्रका एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

बावण्ण-सया बाणउदि जोयणा वच्चदे विसाहा य।
सोलस-सहस्स-णव-सय - सगदाल - कला मुहुत्तेणं ॥४८६॥

५२९२ । $\frac{१६९४७}{२१९६०}$ ।

अर्थ—विशाखा नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार दो सो बानबे योजन और सोलह हजार नौ सौ सैंतालीस कला अधिक गमन करता है ॥४८६॥

विशेषार्थ—विशाखा नक्षत्र चन्द्रके आठवें पथमें भ्रमण करता है। इस पथकी परिधिका प्रमाण ३१६७०१ [illegible] योजन है। इस परिधिमें विशाखाके एक मुहूर्तके गमन-क्षेत्रका प्रमाण $(\frac{३१६७०१ \times ३६७}{२१९६०})=५२९२\frac{१६९४७}{२१९६०}$ योजन प्राप्त होता है।

अनुराधा नक्षत्रका एक मुहूर्तका गमन क्षेत्र—

तेवण्ण-सयाणि जोयणाणि वच्चदि मुहुत्तमेत्ताणि।
चउवण्ण चउ-सया दस-सहस्स अंसा य अणुराहा ॥४८७॥

५३०० । $\frac{१०४५४}{२१९६०}$ ।

अर्थ—अनुराधा नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार तीन सौ योजन और दस हजार चार सो चौवन भाग अधिक गमन करता है ॥४८७॥

विशेषार्थ—अनुराधा नक्षत्र चन्द्रके दसवें पथमें भ्रमण करता है। इस पथकी परिधिका प्रमाण ३१७१६२ [illegible] योजन है। इस परिधिमें अनुराधाके एक मुहूर्तके गमन-क्षेत्रका प्रमाण $(\frac{३१७१६२ \times ३६७}{२१९६०})=५३००\frac{१०४५४}{२१९६०}$ योजन प्राप्त होता है।

ज्येष्ठा नक्षत्रका एक मुहूर्तका गमन-क्षेत्र—

तेवण्ण-सयाणि जोयणाणि चत्तारि वच्चदि जेट्ठा।
अंसा सत्त - सहस्सा, चउवीस - जुदा मुहुत्तेणं ॥४८८॥

५३०४ । $\frac{७०२४}{२१९६०}$ ।

अर्थ—ज्येष्ठा नक्षत्र एक मुहूर्तमें पाँच हजार तीन सो चार योजन और सात हजार चोबीस भाग अधिक गमन करता है ॥४८८॥

विशेषार्थ—ज्येष्ठा नक्षत्र चन्द्रके ग्यारहवें पथमें भ्रमण करता है। इस पथकी परिधिका प्रमाण ३१७३९२$\frac{१४६}{४२७}$ योजन है। इस परिधिमें ज्येष्ठाके एक मुहूर्तके गमन-क्षेत्रका प्रमाण ($\frac{३१७३९२१४६ \times ३६७}{२५६२००}$)=५३०४$\frac{७०२४५}{२५६२००}$ योजन प्राप्त होता है।

पुष्यादि ८ नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येकके गमन-क्षेत्रका प्रमाण—

पुस्सो असिलेसाओ, पुव्वासाढाओ उत्तरासाढा।
हत्थो मिगसिर - मूला, अद्दाओ अट्ठ पत्तेक्कं ॥४८९॥
तेवण्ण-सया उणवीस[1]-जोयणा जंति इगि-मुहुत्तेणं।
अट्ठाणउदी णव-सय, पण्णरस - सहस्स अंसा य ॥४९०॥

५३१९ । $\frac{१५९९८}{२१९६०}$ ।

अर्थ—पुष्य, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, हस्त, मृगशीर्षा, मूल और आर्द्रा, इन आठ नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येक एक मुहूर्तमें पाँच हजार तीन सौ उन्नीस योजन और पन्द्रह हजार नौ सौ अट्ठानबे भाग अधिक गमन करते हैं ॥४८९-४९०॥

विशेषार्थ—उपर्युक्त आठों नक्षत्र चन्द्रके पन्द्रहवें (अन्तिम) पथमें भ्रमण करते हैं। इस बाह्य पथकी परिधिका प्रमाण ३१८३१३$\frac{२८४}{४२७}$ योजन है। इस परिधिमें पुष्य आदि प्रत्येक नक्षत्रके एक मुहूर्तके गमन-क्षेत्रका प्रमाण ($\frac{३१८३१३१४ \times ३६०}{२५६२००}$) = ५३१९$\frac{१३५६३१}{२५६२००}$ योजन है, किन्तु गाथामें ५३१९$\frac{१५९९८}{२१९६०}$ योजन दर्शाया गया है।

नक्षत्रोंके मण्डल क्षेत्रोंका प्रमाण—

मंडल-खेत्त-पमाणं, जहण्ण-भे तीस जोयणा होंति।
तं चिय दुगुणं तिगुणं, मज्झिम-वर-भेसु पत्तेक्कं ॥४९१॥

३० । ६० । ९० ।

अर्थ—जघन्य नक्षत्रोंके मण्डलक्षेत्रका प्रमाण तीस (३०) योजन और इससे दूना एवं तिगुना वही प्रमाण क्रमशः मध्यम (नक्षत्रोंका ६०) और उत्कृष्ट (का ९० यो०) नक्षत्रोंमेंसे प्रत्येकका है ॥४९१॥

अट्ठारस जोयणया, हवेदि अभिजिस्स मंडलं खेत्तं।
सट्ठिय-णह-मेलाओ, णिय-णिय-ताराण मंडल-खिदीओ ॥४९२॥

१८ ।

---

1. द. उणवण्णसय जोयणा, ब. उण जोयणा।

अर्थ—अभिजित् नक्षत्रका मण्डल क्षेत्र अठारह योजन प्रमाण है और अपने-अपने ताराओं का मण्डलक्षेत्र स्व-स्थित आकाश प्रमाण ही है ।।४९२।।

स्वाति आदि पाँच नक्षत्रोंकी अवस्थिति—

उड्ढाओ दक्खिणाए, उत्तर-मज्झेसु सादि-भरणीओ ।
मूलं अभिजी-कित्तिय-रिक्खाओ चरंति णिय-मग्गे ।।४९३।।

अर्थ—स्वाति, भरणी, मूल, अभिजित् और कृत्तिका, ये पाँच नक्षत्र अपने मार्गमें क्रमशः ऊर्ध्व, अधः, दक्षिण, उत्तर और मध्यमें सञ्चार करते हैं ।।४९३।।

विशेषार्थ—चन्द्रके प्रथम पथमें स्थित स्वाति एवं भरणी नक्षत्र क्रमशः अपनी वीथीके ऊर्ध्व और अधोभागमें, पन्द्रहवें पथमें स्थित मूल नक्षत्र दक्षिण दिशामें प्रथम पथमें स्थित अभिजित् नक्षत्र उत्तर दिशामें और छठे पथमें स्थित कृत्तिका नक्षत्र अपने पथके मध्यभागमें संचार करते हैं ।

एदाणि रिक्खाणि, णिय-णिय-मग्गेसु पुव्व-भणिदेसुं ।
णिच्चं चरंति मंदर - सेलस्स पदाहिण - कमेणं ।।४९४।।

अर्थ—ये नक्षत्र मन्दर-पर्वतके प्रदक्षिण क्रमसे अपने-अपने पूर्वोक्त मार्गोंमें नित्य ही संचार करते हैं ।।४९४।।

कृत्तिका आदि नक्षत्रोंके अस्त एवं उदय आदिकी स्थिति—

एदि मघा मज्झण्हे, कित्तिय-रिक्खस्स अत्थमण-समए ।
उदए अणुराहाओ, एवं जाणेज्ज सेसाणि ।।४९५।।

एवं णक्खत्ताणं परूवणा समत्ता ।

अर्थ—कृत्तिका नक्षत्रके अस्तमन कालमें मघा मध्याह्नको और अनुराधा उदयको प्राप्त होता है । इसीप्रकार शेष नक्षत्रोंके उदयादिकको भी जानना चाहिए ।।४९५।।

विशेषार्थ—गाथामें कृत्तिकाके अस्त होते मघाका मध्याह्न और अनुराधाका उदय होना कहा है । कृत्तिकासे मघा ८ वाँ नक्षत्र है और मघासे अनुराधा ८ वाँ है । इससे यह ध्वनित होता है कि जिस समय कोई विवक्षित नक्षत्र अस्त होगा, उस समय उससे आठवाँ नक्षत्र मध्य को और उससे भी ८ वाँ नक्षत्र उदयको प्राप्त होगा । शेष नक्षत्रोंके उदय-अस्तादि की व्यवस्था भी इसीप्रकार जानने को कही गयी है । जो इसप्रकार है—

जब	कृत्तिकाका	अस्त	तब	मघा	का मध्याह्न	और	अनु०	का उदय	।
,,	रोहिणीका	,,	,,	पू० फा०	,,	,,	ज्येष्ठा	,,	।
,,	मृगशिराका	,,	,,	उ० फा०	,,	,,	मूल	,,	।
,,	आर्द्राका	,,	,,	हस्त	,,	,,	पू० षा०	,,	।
,,	पुनर्वसुका	,,	,,	चित्रा	,,	,,	उ० षा०	,,	।
,,	पुष्यका	,,	,,	स्वाति	,,	,,	अभिजित्	,,	।
,,	आश्लेषाका	,,	,,	विशाखा	,,	,,	श्रवण	,,	।
,,	मघाका	,,	,,	अनुराधा	,,	,,	धनिष्ठा	,,	।
,,	पू० फा०का	,,	,,	ज्येष्ठा	,,	,,	शत०	,,	।
,,	उ० फा०का	,,	,,	मूल	,,	,,	पू० भा०	,,	।
,,	हस्तका	,,	,,	पू० षा०	,,	,,	उ० भा०	,,	।
,,	चित्राका	,,	,,	उ० षा०	,,	,,	रेवती	,,	।
,,	स्वातिका	,,	,,	अभिजित्	,,	,,	अश्विनी	,,	।
,,	विशाखाका	,,	,,	श्रवण	,,	,,	भरणी	,,	।

इत्यादि—

इसप्रकार नक्षत्रोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

जम्बूद्वीपस्थ चर एवं अचर (ध्रुव) ताराओंका निरूपण—

दुविहा चरयचराओ, पइण्ण-ताराओ ताण चर-संखा ।
कोडाकोडी - लक्खं, तेत्तीस-सहस्स-णव-सया पण्णं ।।४९६।।

१३३९५०००००००००००००००० ।

अर्थ—प्रकीर्णक तारे चर और अचर रूपसे दो प्रकारके होते हैं। इनमें चर ताराओंकी संख्या एक लाख तैंतीस हजार नौ सौ पचास (१३३९५०) कोड़ाकोड़ी है ।।४९६।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्र-कुलाचलादिकी कुल शलाकाएँ (१, २, ४, ८, १६, ३२, ६४, ३२, १६, ८, ४, २, १ =) १९० हैं। जम्बूद्वीपस्थ दो चन्द्रोंसे सम्बन्धित १३३९५० कोड़ाकोड़ी ताराओंमें १९० का भाग देनेपर ($\frac{१३३९५० \text{ कोड़ाकोड़ी}}{१९०}$) = ७०५ कोड़ाकोड़ी लब्ध प्राप्त होता है। इसको अपनी-अपनी शलाकाओंसे गुणा करनेपर तत् तत् क्षेत्र एवं पर्वत सम्बन्धी ताराओंका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

क्र०	क्षेत्र और पर्वत के नाम	दोनों चन्द्र सम्बन्धी ताराओंकी संख्या	क्र०	क्षेत्र और पर्वत के नाम	दोनों चन्द्र सम्बन्धी ताराओंकी संख्या
१.	भरतक्षेत्र	७०५ कोड़ाकोड़ी	८.	नील पर्वत	२२५६० कोड़ाकोड़ी
२.	हिमवान् पर्वत	१४१० "	९.	रम्यक क्षेत्र	११२८० "
३.	हैमवत क्षेत्र	२८२० "	१०.	रुक्मि पर्वत	५६४० "
४.	महाहिमवान् प०	५६४० "	११.	हैरण्यवत क्षेत्र	२८२० "
५.	हरिक्षेत्र	११२८० "	१२.	शिखरिन् प०	१४१० "
६.	निषध पर्वत	२२५६० "	१३.	ऐरावत क्षेत्र	७०५ "
७.	विदेह क्षेत्र	४५१२० "			

छत्तीस अचर - तारा, जंबूदीवस्स चउ-दिसा-भाए ।
एदाओ दो - ससिणो, परिवारा अद्धमेक्कम्मि ॥४९७॥

३६ । ६६९७५००००००००००००००० ।

अर्थ—जम्बूद्वीपके चारों दिशा-भागोंमें छत्तीस अचर (ध्रुव) तारा स्थित हैं । ये (१३३९५० कोड़ाकोड़ी) दो चन्द्रोंके परिवार-तारे हैं । इनसे आधे (६६९७५ कोड़ाकोड़ी) एक चन्द्रके परिवार-तारे समझना चाहिए ॥४९७॥

चन्द्रसे तारा पर्यंत ज्योतिषी देवोंके गमन-विशेष—

रिक्ख-गमणादु अहियं, गमणं जाणेज्ज सयल-ताराणं ।
ताणं णाम - प्पहुदिसु, उवएसो संपइ पणट्ठो ॥४९८॥

अर्थ—सब ताराओंका गमन नक्षत्रोंके गमनसे अधिक जानना चाहिए । इनके नामादिकका उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है ॥४९८॥

चंदादो मत्तंडो, मत्तंडादो गहा गहाहिंतो ।
रिक्खा रिक्खाहिंतो, ताराओ होंति सिग्घ - गदी ॥४९९॥

। एवं ताराणं परूवणं समत्तं ।

अर्थ—चन्द्रसे सूर्य, सूर्यसे ग्रह, ग्रहोंसे नक्षत्र और नक्षत्रोंसे भी तारा शीघ्र गमन करनेवाले होते हैं ॥४९९॥

इस प्रकार ताराओंका कथन समाप्त हुआ ।

सूर्य एवं चन्द्रके अयन और उनमें दिन-रात्रियोंकी संख्या—

अयणाणि य रवि-ससिणो, सग[1]-सग-खेत्ते गहा य जे[2] चारी ।
णत्थि अयणाणि भगणे, णियमा ताराण एमेव ॥५००॥

अर्थ—सूर्य, चन्द्र और जो अपने-अपने क्षेत्रमें संचार करने वाले ग्रह हैं उनके अयन होते हैं । नक्षत्र-समूह और ताराओं के इसप्रकार अयनोंका नियम नहीं है ॥५००॥

रवि-अयणे एक्केक्कं, तेसीदि-सया हवंति दिण-रत्ती ।
तेरस दिवा वि चंदे, सत्तट्ठी - भाग - चउचालं ॥५०१॥

१८३ । १३ । $\frac{४४}{६७}$ ।

अर्थ—सूर्यके प्रत्येक अयनमें एक सौ तेरासी (१८३) दिन-रात्रियाँ और चन्द्रके अयनमें सड़सठ भागोंमेंसे चवालीस भाग अधिक तेरह (१३$\frac{४४}{६७}$) दिन (और रात्रियाँ) होते हैं ॥५०१॥

दक्खिण-अयणं आदी, पज्जवसाणं तु उत्तरं अयणं ।
सव्वेसिं सूराणं, विवरीदं होदि चंदाणं ॥५०२॥

अर्थ—सब सूर्योंका दक्षिण अयन आदिमें और उत्तर अयन अन्तमें होता है । चन्द्रोंके अयनोंका क्रम इससे विपरीत है ॥५०२॥

अभिजित् नक्षत्रके गगनखण्ड—

छच्चेव सया तीसं, भागाणं अभिजि-रिक्ख-विक्खंभा ।
दिट्ठा सव्वं दरिसिहि, सव्वेहि अणंत - णाणेणं ॥५०३॥

६३० ।

अर्थ—अभिजित् नक्षत्रके विस्तार स्वरूप उसके गगन-खण्डोंका प्रमाण छह सौ तीस (६३०) है । उसे सभी सर्व-दर्शियोंने अनन्त ज्ञानसे देखा है ॥५०३॥

---

१. द. ब. क. ज. समयक्खेत्ते । २. ब. क. जं ।

सदभिस-भरणी अद्दा, सादी तह अस्सिलेस-जेट्ठा य ।
पंचुत्तरं सहस्सा, भगणाणं सीम - विक्खंभा ।।५०४।।

१००५ ।

अर्थ—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा और ज्येष्ठा इन नक्षत्र-गणोंके सीमा-विष्कम्भ अर्थात् गगनखण्ड एक हजार पांच (१००५) हैं ।।५०४।।

एवं चेव य तिगुणं, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
तिण्णेव उत्तराओ, अवसेसाणं हवे विगुणं ।।५०५।।

अर्थ—पुनर्वसु, रोहिणी, विशाखा और तीनों उत्तरा (उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्ताराभाद्रपद), इनके गगनखण्ड इससे तिगुने (१००५ × ३ = ३०१५) हैं तथा शेष (१५) नक्षत्रोंके दूने (१००५ × २ = २०१०) हैं ।।५०५।।

चउवण्णं च सहस्सा, णव य सया होंति सव्व-रिक्खाणं ।
बिगुणिय - गयणक्खंडा, दो - चंदाणं पि णादव्वं ।।५०६।।

५४९०० ।

अर्थ—सब नक्षत्रोंके गगनखण्ड चौवन हजार नौ सौ (५४९००) हैं। दोनों चन्द्रोंके गगनखण्ड इससे दूने समझने चाहिए ।।५०६।।

एवं च सय-सहस्सा, अट्ठाणउदी-सया य पडिपुण्णा ।
एसो मंडल - छेदो, भगणाणं सीम - विक्खंभो ।।५०७।।

१०९८०० ।

अर्थ—इसप्रकार एक लाख नौ हजार आठ सौ (१०९८००) गगनखण्डोंसे परिपूर्ण यह मण्डल-विभाग नक्षत्रोंकी सीमाके विस्तार स्वरूप है ।।५०७।।

नक्षत्र, चन्द्र एवं सूर्य द्वारा एक मुहूर्तमें लांघने योग्य
गगनखण्डोंका प्रमाण—

अट्ठारस - भाग - सया, पणतीसं गच्छदे मुहुत्तेण ।
चंदो अडसट्ठी सय, सत्तरसं सीम - खेत्तस्स ।।५०८।।

१८३५ । १ । १७६८ ।

अर्थ—नक्षत्र एक मुहूर्तमें अठारह सौ पैंतीस (१८३५) गगनखण्ड रूप सीमा क्षेत्रमें जाता है और चन्द्र (उसी एक मुहूर्तमें) सत्तारह सौ अड़सठ (१७६८) नभखण्ड रूप सीमा क्षेत्रमें जाता है ॥५०८॥

अट्ठारस-भाग-सया, तीसं गच्छदि रवी[1] मुहुत्तेणं ।
णक्खत्त - सीम - छेदो, ते चरइ[2] इमेण बोद्धव्वा ॥५०९॥

१८३० ।

अर्थ—सूर्य एक मुहूर्तमें अठारह सौ तीस (१८३०) नभखण्डरूप सीमा क्षेत्रमें जाता है । नक्षत्रोंके सीमा क्षत्रसे सूर्य और चन्द्रका गमन इसी प्रकार जानना चाहिए ॥५०९॥

सूर्यकी अपेक्षा चन्द्र एवं नक्षत्रके अधिक गगनखण्ड—

सत्तरसट्ठट्ठीणि तु, चंदे सूरे [3]बिसट्ठि-अहियं च ।
सत्तट्ठी वि य भगणा, चरइ मुहुत्तेण भागाणं ॥५१०॥

१७६८ । १८३० । १८३५ ।

अर्थ—चन्द्र एक मुहूर्तमें सत्तारह सौ अड़सठ गगनखण्ड लांघता है । इसकी अपेक्षा सूर्य बासठ गगनखण्ड अधिक और नक्षत्रगण सड़सठ गगनखण्ड अधिक लांघते हैं ॥५१०॥

विशेषार्थ—एक मुहूर्तके गमनकी अपेक्षा चन्द्रके नभखण्ड १७६८, सूर्यके १८३० और नक्षत्रके १८३५ हैं । चन्द्रके गगनखण्डोंसे सूर्यके गगनखण्ड (१८३० — १७६८)=६२ और नक्षत्रके (१८३५ — १७६८)=६७ गगनखण्ड अधिक हैं । एक ही साथ चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र ने गमन करना प्रारम्भ किया और तीनोंने अपने-अपने गगनखण्डोंको समाप्त कर दिया । अर्थात् एक मुहूर्तमें चन्द्रने १७६८ गगनखण्डोंका भ्रमण किया, जबकि सूर्यने १८३० और नक्षत्रने १८३५ का किया, अतः चन्द्र सूर्यसे ६२ और नक्षत्रसे ६७ गगनखण्ड पीछे रहा ।

सूर्यके तीस मुहूर्तोंके गगनखण्डोंका प्रमाण—

चंद-रवि-गयणखंडे, अण्णोण्ण-विसुद्ध-सेस-बासट्ठी ।
एय-मुहुत्त - पमाणं, बासट्ठि - फलिच्छया तीसा ॥५११॥

१ । ६२ । ३० ।

---

१. द. ब. क. ज. रवे । २. द. क. ज. चेट्ठइ । ३. ब. बिज ट्ठि ।

अर्थ—चन्द्र और सूर्यके गगनखण्डोंको परस्पर घटाने पर बासठ शेष रहते हैं। जब सूर्य एक मुहूर्तमें (चन्द्रकी अपेक्षा) बासठ गगनखण्ड अधिक जाता है तब वह तीस मुहूर्तमें कितने गगन-खण्ड अधिक जावेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर यहाँ एक मुहूर्त प्रमाण राशि, बासठ फलराशि और तीस मुहूर्त इच्छा-राशि ($\frac{६२ \times ३०}{१}$) होती है ।।५११।।

त्रैराशिक द्वारा प्राप्त १८६० नभखण्डोंके गमन-मुहूर्तका काल—

एयट्ठ-तिण्णि-सुण्णं, गयणक्खंडेण लब्भदि मुहुत्तं ।
अट्ठरसट्ठी य तहा, गयणक्खंडेण किं लद्धं ।।५१२।।

१८३० । १८६० । १ ।

चंदादो सिग्घ-गदी, दिवस-मुहुत्तेण चरदि खलु सूरो ।
एक्कं चेव मुहुत्तं, एक्कं एयट्ठि - भागं च ।।५१३।।

१ । $\frac{१}{६१}$ ।

अर्थ—जब एक, आठ, तीन और शून्य अर्थात् १८३० गगनखण्डोंके अतिक्रमणमें एक मुहूर्त प्राप्त होता है, तब अठारह सौ साठ (१८६०) नभखण्डोंके अतिक्रमणमें क्या प्राप्त होगा ? सूर्य, चन्द्रकी अपेक्षा दिनमुहूर्त अर्थात् तीस मुहूर्तोंमें एक मुहूर्त और एक मुहूर्तके इकसठवें भाग अधिक शीघ्र गमन करता है । अर्थात् १८६० नभखण्डोंके अतिक्रमणका काल ($\frac{१ \times १८६०}{१८३०} = \frac{६२}{६१} =$) १ $\frac{१}{६१}$ मुहूर्त प्राप्त होगा ।।५१२-५१३।।

नक्षत्रके तीस मुहूर्तोंके अधिक नभखण्ड—

रवि-रिक्ख-गगणखंडे, अण्णोण्णं सोहिऊण जं सेसं ।
एय - मुहुत्त - पमाणं, फल पण इच्छा तहा तीसं ।।५१४।।

१ । ५ । ३० ।

अर्थ—सूर्य और नक्षत्रोंके गगनखण्डोंको परस्पर घटाकर जो शेष रहे उसे ग्रहण करनेपर यहाँ एक मुहूर्त प्रमाण राशि, पाँच (नक्षत्र) फलराशि और तीस मुहूर्त इच्छाराशि है ।।५१४।।

विशेषार्थ—नक्षत्रके ग० खं० १८३५ — १८३० सूर्यके ग० खं० = ५ अवशेष । जब नक्षत्र (सूर्य की अपेक्षा) एक मुहूर्तमें ५ खण्ड अधिक जाता है, तब तीस मुहूर्तमें कितने खण्ड जावेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{३० \times ५}{१}$) = १५० गगनखण्ड प्राप्त होते हैं ।

दौरा० द्वारा प्राप्त १५० नभखण्डोंका अतिक्रमण काल—

तीसट्ठारसया खलु, मुहुत्त-कालेण कमइ जइ सूरो ।
तो केत्तिय - कालेणं, सय - पंचासं कमे इत्ति ।।५१५।।

१८३० । १ । १५० ।

सूरादो णक्खत्तं, दिवस - मुहुत्तेण जइणतरमाहु ।
एक्कस्स मुहुत्तस्स य, भागं एक्कट्ठिमे पंच ।।५१६।।

$\frac{५}{६१}$ ।

अर्थ—जब सूर्य अठारह सो तीस गगनखण्डोंको एक मुहूर्तमें लांघता है, तब वह एक सो पचास (१५०) गगनखण्डोंको कितने समयमें लांघेगा ? सूर्यकी अपेक्षा नक्षत्र एक दिन मुहूर्तों (३० मुहूर्तों) में एक मुहूर्तके इकसठ भागोंमेंसे पाँच भाग अधिक जविनतर अर्थात् अतिशय वेग वाला है। अर्थात् १५० नभखण्डोंके अतिक्रमणका काल ($\frac{१ \times १५०}{१८३०}$) = $\frac{५}{६१}$ मुहूर्त प्राप्त होता है ।।५१५-५१६।।

सूर्य और चन्द्रकी नक्षत्र भुक्तिका विधान—

णक्खत्त-सीम-भागं, भजिदे दिवसस्स जइण- ेहिं ।
लद्धं तु होइ रवि - ससि - णक्खत्ताणं तु ।।५१७।।

अर्थ—सूर्य और चन्द्र एक दिनमें नक्षत्रोंकी अपेक्षा जितने गगनखण्ड पीछे रहते हैं, उनका नक्षत्रोंके गगनखण्डोंमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतने समय तक सूर्य एवं चन्द्रका नक्षत्रोंके साथ संयोग रहता है ।।५१७।।

सूर्यके साथ अभिजित् नक्षत्रका भुक्तिकाल—

ति-सय-दल-गगणखंडे, कमेइ जइ दिणयरो दिणिक्केणं ।
तउ रिक्खाणं णिय-णिय, णहखंड-गमण को कालो ? ।।५१८।।

१५० । १ । ६३० ।

अभिजी-छच्च मुहुत्ते, चत्तारि य केवलो अहोरत्ते ।
सूरेण समं गच्छदि, एत्तो सेसाणि वोच्छामि ।।५१९।।

दि ४ मु ६ ।

अर्थ—यदि सूर्य एक दिनमें तीन सौ के आधे (१५०) नभखण्ड पीछे रहता है तो नक्षत्रोंके अपने-अपने गगनखण्डोंके गमनमें कितना काल लगेगा ? इसप्रकार अभिजित् नक्षत्र चार अहोरात्र और छह मुहूर्त काल तक सूर्यके साथ गमन करता है। शेष नक्षत्रोंका कथन यहाँसे आगे करता हूँ ।।५१८-५१९।।

विशेषार्थ—अभिजित् नक्षत्रके ६३० नभखण्ड हैं। सूर्य अभिजित् नक्षत्रके ऊपर है। जब १५० नभखण्ड छोड़नेमें सूर्यको एक दिन लगता है तब ६३० खण्ड छोड़नेमें कितना समय लगेगा ? इस त्रैराशिकसे सूर्य द्वारा अभिजित्की भुक्तिका काल ($\frac{६३० \times १}{१५०}$)=४ दिन ६ मुहूर्त प्राप्त होता है।

सूर्यक साथ जघन्य नक्षत्रोंका भुक्तिकाल—

सदभिस-भरणी-अद्दा, सादो तह अस्सिलेस जेट्ठा य ।
छच्चेव अहोरत्ते, एक्काबीसा मुहुत्तेणं ।।५२०।।

दि ६ । मु २१ ।

अर्थ—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा और ज्येष्ठा ये छह नक्षत्र छह अहोरात्र और इक्कीस मुहूर्त तक सूर्य के साथ रहते हैं ।।५२०।।

विशेषार्थ—जघन्य नक्षत्र ६ हैं और प्रत्येकके गगनखण्ड १००५ हैं। सूर्य इनके ऊपर है। जब १५० खण्ड छोड़नेमें सूर्यको १ दिन लगता है तब १००५ गगनखण्ड छोड़नेमें कितना समय लगेगा ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१००५ \times १}{१५०}$)=६ दिन २१ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। एक ज० न० को भोगनेमें ६ दिन २१ मु० लगते हैं तब ६ नक्षत्रोंको भोगनेमें कितना समय लगेगा ? इस प्रकार त्रैरा० करनेपर (६ दिन २१ मु० × ६)=४० दिन ६ मु० होते हैं। अर्थात् सूर्यको ६ ज० नक्षत्रों को भोगनेमें कुल समय ४० दिन ६ मुहूर्त लगता है।

सूर्यके साथ उत्कृष्ट नक्षत्रोंका भुक्तिकाल—

तिण्णेव उत्तराओ, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
वीसं च अहोरत्ते तिण्णेव य होंति सूरस्स ।।५२१।।

दि २० । मु ३ ।

अर्थ—तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा, ये छह उत्कृष्ट नक्षत्र बीस अहोरात्र और तीन मुहूर्त काल तक सूर्यके साथ गमन करते हैं ।।५२१।।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट नक्षत्र ६ हैं। प्रत्येकके नभखण्ड ३०१५ हैं। सूर्य इनके ऊपर है। सूर्य को जब १५० ग० ख० छोड़नेमें १ दिन लगता है तब ३०१५ नक्षत्र छोड़नेमें कितना समय लगेगा ? इसप्रकार त्रैरा० करनेपर ($\frac{३०१५ \times १}{१५०}$) = २० दिन ३ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। एक उत्कृष्ट न० को भोगनेमें $\frac{२०१}{१०}$ दिन लगते हैं तब ६ उत्कृष्ट नक्षत्रों को भोगनेमें कितना समय लगेगा ? इसप्रकार त्रैरा० करने पर ($\frac{२०१ \times ६}{१०}$) = १२० दिन १८ मुहूर्तका समय लगेगा।

सूर्यके साथ मध्यम नक्षत्रोंका भुक्तिकाल—

अवसेसा णक्खत्ता, पण्णारस वि सूर-सह-गदा होंति ।
बारस चेव मुहुत्ता, तेरस य समे अहोरत्ते ॥५२२॥

दि १३ । मु १२ ।

अर्थ—शेष पन्द्रह ही मध्यम नक्षत्र तेरह अहोरात्र और बारह मुहूर्त काल तक सूर्यके साथ गमन करते रहते हैं ॥५२२॥

विशेषार्थ—मध्यम न० १५ हैं और प्रत्येकके नभखण्ड २०१० हैं। सूर्य इनके ऊपर है। पूर्वोक्त प्रकार त्रैराशिक करनेपर प्रत्येक नक्षत्रका भुक्ति काल ($\frac{२०१० \times १}{१५०}$) = $\frac{२०१}{१५}$ = १३ दिन १२ मु० प्राप्त होता है। एक मध्यम न० का भोग $\frac{२०१}{१५}$ दिनमें होता है तब १५ नक्षत्रोंका कितने दिनमें होगा ? इसप्रकार त्रैरा० करनेपर ($\frac{२०१० \times १५}{१५०}$) = २०१ दिन सर्व मध्यम नक्षत्रोंका भुक्ति काल है।

दक्षिण और उत्तरके भेदसे सूर्यके दो अयन होते हैं। प्रत्येक अयनमें सूर्य १८३-१८३ दिन भ्रमण करता है। इस भ्रमणमें सूर्य अभिजित् न० को ४ दिन ६ मुहूर्त, ६ जघन्य नक्षत्रों को ४० दिन ६ मुहूर्त, १५ मध्यम नक्षत्रोंको २०१ दिन और ६ उत्कृष्ट नक्षत्रों को १२० दिन १८ मु० भोगता है। इन २८ नक्षत्रोंका सर्व-काल (४ दि० ६ मु० + ४० दि० ६ मु० + २०१ दिन + १२० दिन १८ मु०) = ३६६ दिन होता है। इसीलिए दोनों अयनोंके (१८३ × २) = ३६६ दिन होते हैं।

चन्द्रके साथ अभिजित्का भुक्तिकाल—

सत्तट्ठि - गगणखंडे, मुहुत्तमेक्केण कमइ जइ चंदो ।
भगणाण गगणखंडे, को कालो होदि गमणम्मि ॥५२३॥

६७ । १ । ६३० ।

अभिजिस्स चंद - जोगो[1], सतट्ठी खंडिदे मुहुत्तेगे ।
भागो य सत्तवीसा, ते पुण अहिया णव - मुहुत्ते ।।५२४।।

९ । २७/६७ ।[2]

अर्थ—जब चन्द्र एक मुहूर्तमें नक्षत्रके गगनखण्डसे (१८३५ — १७६८ =) सड़सठ (६७) गगनखण्ड पीछे रह जाता है तब उन (नक्षत्रों) के गगनखण्डों तक साथ गमन करनेमें कितना समय लगेगा ? अभिजित् नक्षत्रके (६३०) गगनखण्डोंमें सड़सठका भाग देनेपर एक मुहूर्तके सड़सठ भागोंमेंसे सत्ताईस भाग अधिक नौ मुहूर्त (६३०/६७ = ९ २७/६७ मु०) लब्ध आता है। अर्थात् चन्द्रका अभिजित् नक्षत्रके साथ गमन करनेका काल ९ २७/६७ मुहूर्त प्रमाण है ।।५२३-५२४।।

चन्द्रके साथ जघन्य नक्षत्रोंका भुक्ति काल—

सदभिस-भरणी-अद्दा, सादी तह अस्सलेस-जेट्ठा य ।
एदे छण्णक्खंता, पण्णरस - मुहुत्त - संजुत्ता ।।५२५।।

१५ ।

अर्थ—शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा और ज्येष्ठा, ये छह नक्षत्र चन्द्रके साथ पन्द्रह मुहूर्त पर्यन्त रहते हैं ।।५२५।।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार प्रत्येक ज० न० के साथ चन्द्रका योग (१००५ ÷ ६७) = १५ मुहूर्त और सर्व ज० नक्षत्रोंके साथ (१५ मु० × ६) = ३ दिन पर्यन्त रहता है।

चन्द्रके साथ मध्यम नक्षत्रोंका योग—

अवसेसा णक्खत्ता, पण्णरसाए तिसदि मुहुत्ता य ।
चंदम्मि एस जोगो, णक्खत्ताणं समक्खादं ।।५२६।।

३० ।

अर्थ—अवशेष पन्द्रह (मध्यम) नक्षत्र चन्द्रमाके साथ तीस मुहूर्त तक रहते हैं। यह उन नक्षत्रोंका योग कहा है ।।५२६।।

विशेषार्थ—पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार प्रत्येक म० न० के साथ चन्द्रका योग (२०१० ÷ ६७) = ३० मुहूर्त और सर्व म० नक्षत्रोंके साथ (३० मु० × १५) = १५ दिन पर्यन्त रहता है।

---

१. द. ब. क. ज. तारो । २. द. ब. १/६७ ।

चन्द्रके साथ उत्कृष्ट नक्षत्रोंका योग—

तिण्णेव उत्तराओ, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
एदे छण्णक्खत्ता, पणदाल - मुहुत्त - संजुत्ता ॥५२७॥

४५ ।

अर्थ—तीनों उत्तारा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा, ये छह (उत्कृष्ट) नक्षत्र पैंतालीस (४५) मुहूर्त तक चन्द्रके साथ संयुक्त रहते हैं ॥५२७॥

विशेषार्थ—पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार पत्येक उत्कृष्ट न० के साथ चन्द्रका योग (३०१५ ÷ ६७) =४५ मुहूर्त और सर्व उ० नक्षत्रोंके साथ (४५ मु० × ६)=९ दिन पर्यन्त रहता है ।

दक्षिण और उत्तारके भेदसे चन्द्रके भी दो अयन होते हैं । इन अयनोंके भ्रमणमें चन्द्र अभिजित् नक्षत्रको ९$\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त+ज० नक्षत्रोंको ३ दिन+मध्यम न० को १५ दिन+और उत्कृष्ट नक्षत्रोंको ९ दिन=२७ दिन ९$\frac{२७}{६७}$ मुहूर्तोंमें २८ नक्षत्रोंका भोग करता है ।

सूर्य सम्बन्धी अयन—

दुमणिस्स एक्क-अयणे, दिवसा तेसीदि-अहिय-एक्क-सयं ।
दक्खिण - अयणं आदी, उत्तर - अयणं च अवसाणं ॥५२८॥

१८३ ।

अर्थ—सूर्यके एक अयनमें एक सौ तेरासी दिन होते हैं । इन अयनोंमेंसे दक्षिण अयन आदि (प्रारम्भ) में और उत्तर अयन अन्तमें होता है ॥५२८॥

विशेषार्थ—सूर्य भ्रमणकी १८४ वीथियाँ हैं । इनमेंसे जब सूर्य प्रथम वीथीमें स्थित होता है तब दक्षिणायनका और जब अन्तिम वीथीमें स्थित होता है तब उत्तारायणका प्रारम्भ होता है ।

दक्षिण एवं उत्तार अयनोंमें आवृत्ति-संख्या—

एक्कादि-दु-उत्तरियं, दक्खिण-आउट्टियाए पंच पदा ।
दो-आदि-दु-उत्तरयं, उत्तर-आउट्टियाए पंच पदा ॥५२९॥

अर्थ—(सूर्यकी) दक्षिणावृत्ति एकको आदि लेकर दो-दो की वृद्धि प्रमाण (१, ३, ५, ७, ९) होती है । इसमें गच्छ पाँच हैं । उत्तरावृत्ति भी दो को आदि लेकर दो-दो की वृद्धि प्रमाण (२, ४, ६, ८, १०) होती है । इसमें भी गच्छ पाँच हैं ॥५२९॥

विशेषार्थ—पूर्व अयनकी समाप्ति और नवीन अयनके प्रारम्भको आवृत्ति कहते हैं। पंच-वर्षात्मक एक युगमें ये आवृत्तियाँ दस बार होती हैं, इसीलिए इनका गच्छ पाँच-पाँच कहा गया है। इनमें १, ३, ५, ७ और ९ वीं आवृत्ति दक्षिणायन सम्बन्धी और २, ४, ६, ८ तथा १० वीं आवृत्ति उत्तरायण-सम्बन्धी है।

एक युगके विषुपोंकी संख्या—

तिब्भव-दु-खेत्तारयं, दस-पद-परित्त-दो हि अवहरिदं।
उसुपस्स य होदि पदं, वोच्छं आउट्टि-उसुपदिण-रिक्खं ॥५३०॥

अर्थ—एक वर्षमें दो अयन होते हैं। प्रत्येक अयनके तीन माह व्यतीत होनेपर एक विषुप होता है। इसप्रकार एक युगमें दस विषुप होते हैं। इन्हें दो से भाजित करनेपर एक-एक युगमें विभिन्न अयन सम्बन्धी पाँच-पाँच विषुप होते है। अब यहाँ आवृत्ति और विषुप सम्बन्धी दिनके नक्षत्र निकालनेकी विधि कहूँगा ॥५३०॥

तिथि, पक्ष और पर्व निकालनेकी विधि—

रूऊणंकं छग्गुणमेग-जुदं उसुपो ति तिथि - माणं।
तव्बार - गुणं पव्वं, सम-विसम-किण्ह-सुक्कं च ॥५३१॥

अर्थ—एक कम आवृत्तिके पदको छहसे गुणित कर उसमें एक जोड़नेपर आवृत्तिकी तिथि और उसी लब्धमें तीन जोड़नेपर विषुपकी तिथिका प्रमाण प्राप्त होता है। तिथि संख्याके विषम होनेपर कृष्णपक्ष और सम होनेपर शुक्ल पक्ष होता है। तथा तिथि संख्याको द्विगुणित करनेपर पर्वका प्रमाण प्राप्त होता है ॥५३१॥

विशेषार्थ—जो आवृत्ति विवक्षित हो उसमेंसे एक घटाकर लब्धको छहसे गुणा करके एकका अंक जोड़नेसे आवृत्तिकी तिथि और उसी लब्धमें तीनका अंक जोड़नेसे विषुपकी तिथि संख्या प्राप्त होती है। यथा—

तृतीय आवृत्ति विवक्षित है अतः (३ — १) × ६ = १२।१२ + १ = १३ तिथि। तृतीय आवृत्ति कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको होगी। इसीप्रकार (३ — १) × ६ = १२।१२ + ३ = १५ तिथि। यहाँ भी तृतीय विषुप कृष्णपक्षकी अमावस्याको होगा। दोनों तिथियोंके अंक विषम हैं अतः कृष्णपक्ष ग्रहण किया गया है। दूसरा विषुप ९ वीं तिथिको होता है। इसे दुगुना (९ × २) करनेपर दूसरे विषुपके १८ पर्व प्राप्त होते हैं।

आवृत्ति और विषुपके नक्षत्र प्राप्त करनेकी विधि—

सत्त-गुणे ऊणंकं, दस-हिद-सेसेसु अयणदिवस-गुणं ।
सत्तट्ठि - हिदे लद्धं, अभिजादीदे हुवे रिक्खं ।।५३२।।

अर्थ—एक कम विवक्षित आवृत्तिको सातसे गुणित करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे दससे भाजित कर शेषको अयन-दिवस (१८४) से गुणित कर सड़सठ (६७) का भाग देना चाहिए। जो लब्ध प्राप्त हो उसे अभिजित् नक्षत्रसे गिननेपर गत नक्षत्र प्राप्त होता है, अतः उससे आगेका नक्षत्र आवृत्तिका नक्षत्र होता है ।।५३२।।

विशेषार्थ—यहाँ ८ वीं आवृत्ति विवक्षित है। इसका मूल नक्षत्र है। (८ — १)× ७=४९। ४९÷१०=४, शेष रहे ९। (९×१८४)÷६७=२४, यहाँ शेष आधेसे अधिक हैं अतः (२४+१)=२५ प्राप्त हुए। अभिजित् नक्षत्रसे गिननेपर २५ वाँ ज्येष्ठा नक्षत्र गत और उससे आगेका मूल न० ८ वीं आवृत्तिका नक्षत्र प्राप्त होता है।

युगकी पूर्णता एवं उसके प्रारम्भकी तिथि और दिन आदि—

आसाढ-पुण्णमीए, जुग-णिप्पत्ती दु सावणे किण्हे ।
अभिजिम्मि चंद-जोगे, पाडिव-दिवसम्मि पारंभो ।।५३३।।

अर्थ—आषाढ़ मासकी पूर्णिमाके दिन (अपराह्ण में) पञ्चवर्षात्मक युगकी समाप्ति होती है और श्रावण कृष्णा प्रतिपद्के दिन अभिजित् नक्षत्रके साथ चन्द्रका योग होनेपर उस युगका प्रारम्भ होता है। (दक्षिणायन सूर्यकी प्रथम आवृत्तिका प्रारम्भ भी यही है) ।।५३३।।

दक्षिणायन सूर्यकी द्वितीय और तृतीय-आवृत्ति—

सावण-किण्हे तेरसि, मियसिर-रिक्खम्मि बिदिय-आउट्टी ।
तदिया विसाह - रिक्खे, दसमीए सुक्कलम्मि तम्मासे ।।५३४।।

अर्थ—श्रावण कृष्णा त्रयोदशीके दिन मृगशीर्षा नक्षत्रका योग होनेपर द्वितीय और इसी मासमें शुक्लपक्षकी दसमीके दिन विशाखा नक्षत्रका योग होनेपर तृतीय आवृत्ति होती है ।।५३४।।

चतुर्थ और पंचम आवृत्ति—

सावण-किण्हे सत्तमि, रेवदि रिक्खे चउट्ठियावित्ती ।
चोत्तीए पंचमिया, सुक्के रिक्खाए पुव्वफग्गुणिए ।।५३५।।

अर्थ—श्रावण कृष्णा सप्तमीको रेवती नक्षत्रका योग होनेपर चतुर्थ और श्रावण शुक्ला चतुर्थीको पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके योगमें पंचम आवृत्ति होती है ।।५३५।।

पंचसु वरिसे एदे, सावण - मासम्मि उत्तरे कट्ठे ।
आवित्ती दुमणीणं, पंचेव य होंति णियमेणं ।।५३६।।

अर्थ—सूर्यके उत्तर दिशाको प्राप्त होनेपर पाँच वर्षोंके भीतर श्रावण मासमें नियमसे ये पांच ही आवृत्तियाँ होती हैं ।।५३६।।

विशेषार्थ—एक युग पाँच वर्षका होता है । प्रत्येक श्रावण मासमें सूर्य उत्तर दिशामें ही स्थित रहता है तथा उपर्युक्त तिथि-नक्षत्रोंके योगमें दक्षिणकी ओर प्रस्थान करता है, इसलिए पाँच वर्षों तक प्रत्येक श्रावण मासमें दक्षिणायन सम्बन्धी एक-एक आवृत्ति होती है । इसप्रकार पाँच वर्षोंमें पाँच आवृत्तियाँ होती हैं ।

सूर्य सम्बन्धी पाँच उत्तरावृत्तियाँ—

माघस्स किण्ह - पक्खे, सत्तमिए रुद्द-णाम-मुहुत्ते ।
हत्थम्मि ट्ठिद-दुमणी, दक्खिणदो एदि उत्तराभिमुहो ।।५३७।।

अर्थ—हस्त नक्षत्रपर स्थित सूर्य माघ मासके कृष्ण-पक्षमें सप्तमीके दिन रुद्र नामक मुहूर्तके होते दक्षिणसे उत्तराभिमुख होता है ।।५३७।।

चोत्तीए सदभिसए, सुक्के बिदिया तइज्जयं किण्हे ।
पक्खे पुस्से रिक्खे, पडिवाए होदि तम्मासे ।।५३८।।

अर्थ—इसी मासमें शतभिषक् नक्षत्रके रहने शुक्ल पक्षकी चतुर्थीके दिन द्वितीय और इसी मासके कृष्ण पक्षकी प्रतिपदाको पुष्य-नक्षत्रके रहते तृतोय आवृत्ति होती है ।।५३८।।

किण्हे तयोदसीए, मूले रिक्खम्मि तुरिम-आवित्ती ।
सुक्के पक्खे दसमी, कित्तिय-रिक्खम्मि पंचमिया ।।५३९।।

अर्थ—कृष्ण पक्षकी त्रयोदशीके दिन मूल नक्षत्रके योगमें चतुर्थ और इसी मासके शुक्ल पक्षकी दसमी तिथिको कृतिका नक्षत्रके रहते पंचम आवृत्ति होती है ।।५३९।।

पंचसु वरिसे एदे, माघे मासम्मि दक्खिणे कट्ठे ।
आवित्ती दुमणीणं, पंचेव य होंति णियमेणं ।।५४०।।

अर्थ—पाँच वर्षोंके भीतर माघ मासमें दक्षिण अयनके होनेपर सूर्यकी ये पाँच आवृत्तियाँ नियमसे होती हैं ॥५४०॥

विशेषार्थ—प्रत्येक माघ मासमें सूर्य दक्षिण दिशामें स्थित रहता है और उपर्युक्त तिथि-नक्षत्रोंके योगमें उत्तरकी ओर प्रस्थान करता है, इसलिए पाँच वर्षोंतक प्रत्येक माघ मासमें उत्तरायण सम्बन्धी एक आवृत्ति होती है। इसप्रकार पाँच वर्षोंमें पाँच आवृत्तियाँ होती हैं। यथा—

दक्षिणायन-सूर्य						उत्तरायण-सूर्य					
आवृत्ति क्रम	वर्ष	मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र	आवृत्ति क्रम	वर्ष	मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र
१ ली	प्रथम	श्रावण	कृष्ण	प्रतिपदा	अभिजित्	२ री	प्रथम	माघ	कृ०	सप्तमी	हस्त
३ री	द्वितीय	श्रावण	कृष्ण	त्रयोदशी	मृग०	४ थी	द्वितीय	माघ	शु०	चतुर्थी	शत०
५ वीं	तृतीय	श्रावण	शुक्ल	दसमी	विशाखा	६ ठी	तृतीय	माघ	कृ०	प्रतिपदा	पुष्य
७ वीं	चतुर्थ	श्रावण	कृष्ण	सप्तमी	रेवती	८ वीं	चतुर्थ	माघ	कृ०	त्रयोदशी	मूल
९ वीं	पंचम	श्रावण	शुक्ल	चतुर्थी	पूर्वाफा०	१०वीं	पंचम	माघ	शु०	दसमी	कृतिका

उपर्युक्त पाँच वर्षोंमें युग समाप्त हो जाता है। छठे वर्षसे पूर्वोक्त व्यवस्था पुनः प्रारम्भ हो जाती है। दक्षिणायनका प्रारम्भ सदा प्रथम वीथीसे और उत्तरायणका प्रारम्भ अन्तिम वीथीसे ही होता है।

युगके दस अयनोंमें विषुपोंके पर्व, तिथि और नक्षत्र—

होदि हु पढमं विसुपं, [1]कत्तिय-मासम्मि किण्ह-तदियाए।
छस्सु पव्वमदीदेसु, वि रोहिणी - णामम्मि रिक्खम्मि ॥५४१॥

अर्थ—यह प्रथम विषुप छह पर्वोंके (पूर्णमासी और अमावस्या) बीतनेपर कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी तृतीया तिथिमें रोहिणी नक्षत्रके रहते होता है ॥५४१॥

विशेषार्थ—शुक्ल और कृष्ण पक्षके पूर्ण होनेपर जो पूर्णिमा और अमावस्या होती है। उसका नाम पर्व है। सूर्यका एक अयन छह मासका होता है। एक अयनके अर्धभागको प्राप्त होनेपर जिस कालमें दिन और रात्रिका प्रमाण बराबर होता है उस कालको विषुप कहते हैं। अर्थात् दिन-

१. ब. किसिय।

रात्रिके प्रमाणका बराबर होना विषुप है। पाँच विषुप दक्षिणायनके अर्धकालमें और पाँच उत्तरायणके अर्धकालमें इसप्रकार एक युगमें दस विषुप होते हैं। युगके प्रारम्भमें दक्षिणायन सम्बन्धी प्रथम विषुप आरम्भके ६ पर्व (३ माह) व्यतीत होनेपर कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी तृतीया तिथिको चन्द्र द्वारा, रोहिणी नक्षत्रके भुक्तिकालमें होता है।

वइसाह[1]-किण्ह-पक्खे, णवमीए धणिट्ठ-णाम-णक्खत्ते ।
आदीदो अट्ठारस, पव्वमदीदे दुइज्जयं उसुपं ॥५४२॥

अर्थ—दूसरा विषुप आदिसे अठारह पर्व बीतनेपर वैशाख मासके कृष्ण पक्षकी नवमीको धनिष्ठा नक्षत्रके रहते होता है ॥५४२॥

कत्तिय-मासे पुण्णिमि-दिवसे इगितीस-पव्वमादीदो ।
तीदाए सादीए, रिक्खे होदि हु तइज्जयं विसुपं ॥५४३॥

अर्थ—आदिसे इकतीस पर्व बीत जानेपर कार्तिक मासकी पूर्णिमाके दिन स्वाति नक्षत्रके रहते तीसरा विषुप होता है ॥५४३॥

वइसाह-सुक्क-पक्खे, छट्ठीए पुणव्वसुम्मि णक्खत्ते ।
तेदाल - गदे पव्वमदीदेसु चउत्थयं विसुपं ॥५४४॥

अर्थ—आदिसे तैंतालीस पर्वोंके व्यतीत हो जानेपर वैशाख मासमें शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रके रहते चौथा विषुप होता है ॥५४४॥

कत्तिय-मासे सुक्किल-बारसिए पंच-वण्ण-परिसंखे ।
पव्वमदीदे उसुयं, उत्तरभद्दपदे पंचमं होदि ॥५४५॥

अर्थ—आदिसे पचपन पर्व व्यतीत होनेपर कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उत्तरा-भाद्रपदा नक्षत्रके रहते पाँचवाँ विषुप होता है ॥५४५॥

वइसाह-किण्ह-तइए, अणुराहे अट्ठसट्ठि - परिसंखे ।
पव्वमदीदे उसुपं, छट्ठमयं होदि णियमेणं ॥५४६॥

अर्थ—आदिसे अड़सठ पर्व व्यतीत हो जानेपर वैशाख मासमें कृष्ण पक्षकी तृतीयाके दिन अनुराधा नक्षत्रके रहते छठा विषुप होता है ॥५४६॥

कत्तिय-मासे किण्हे, णवमी-दिवसे महाए णक्खत्ते ।
सीदी - पव्वमदीदे, होदि पुढं सत्तमं उसुयं ॥५४७॥

---

१. द. ब. क. ज. वइसम्मि ।

अर्थ—आदिसे अस्सी पर्व व्यतीत हो जानेपर कार्तिक मासमें कृष्ण पक्षकी नवमीके दिन मघा नक्षत्रके रहते सातवाँ विषुप होता है ॥५४७॥

वइसाय-पुण्णिमीए, अस्सिणि-रिक्खे जुगस्स पढमादो ।
तेणउदी पव्वेसु वि, होदि पुढं अट्ठमं उसुयं ॥५४८॥

अर्थ—युगकी आदिसे तेरानबे पर्व व्यतीत हो जानेपर वैशाखमासकी पूर्णिमाके दिन अश्विनी नक्षत्रके रहते आठवाँ विषुप होता है ॥५४८॥

कत्तिय - मासे सुक्किल, छट्ठीए तह य उत्तरासाढे ।
पचुत्तर - एक्क - सयं, पव्वमदीदेसु णवमयं उसुयं ॥५४९॥

अर्थ—(युगकी आदिसे) एक सौ पाँच पर्वोंके व्यतीत हो जानेपर कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी षष्ठीके दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्रके रहते नौवाँ विषुप होता है ॥५४९॥

वइसाय-सुक्क-बारसि, उत्तरपुव्वम्हि फग्गुणी-रिक्खे ।
सत्तारस-एक्क-सयं, पव्वमदीदेसु दसमयं उसुयं ॥५५०॥

अर्थ—(युगकी आदिसे) एक सौ सत्तरह (११७) पर्व व्यतीत हो जानेपर वैशाखमासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन 'उत्तरा' पद जिसके पूर्वमें है ऐसे फाल्गुनी (उत्तराफाल्गुनी) नक्षत्रके रहते दसवाँ विषुप होता है ॥५५०॥

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालोंके दोनों अयनों का एवं विषुपोंका प्रमाण—

पण - वरिसे दुमणीणं, दक्खिणुत्तरायणं उसुयं ।
चय आणेज्जो उस्सप्पिणि-पढम-आदि - चरिमंतं ॥५५१॥

अर्थ—इस प्रकार उत्सर्पिणीके प्रथम समयसे लेकर अन्तिम समय पर्यन्त पाँच वर्ष परिमित युगोंमें सूर्योंके दक्षिण और उत्तर अयन तथा विषुप जानकर लाने चाहिए ॥५५१॥

पल्लस्स-संख-भागं, दक्खिण-अयणस्स होदि परिमाणं ।
तेत्तियमेत्तं उत्तर - अयणं उसुपं च तद्दुगुणं ॥५५२॥

दक्खि प a । उत्त प a । उसुप प a २ ।

अर्थ—संख्यात पल्यके (एक-एक वर्ष रूप) जितने भाग होते हैं उतना प्रमाण उत्सर्पिणीगत दक्षिणायनका है और उतना ही प्रमाण उत्तरायणका है, तथा विषुपोंका प्रमाण (दो में से) किसी एक अयनके समस्त प्रमाणसे दुगुना होता है ॥५५२॥

विशेषार्थ—एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणीकाल १० कोड़ाकोड़ी सागरका होता है और एक सागर १० कोड़ाकोड़ी पल्यका होता है। जबकि एक सागरमें १० कोड़ाकोड़ी पल्य होते हैं तब १० कोड़ाकोड़ी सागरमें कितने पल्य होंगे ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी कालके $(१०)^{२८}$ अर्थात् एकके अंकके आगे २८ शून्य रखनेपर जो २९ अंक प्रमाण संख्या प्राप्त होती है वही एक कोड़ाकोड़ी सागरके पल्योंका प्रमाण है।

कालका प्रमाण अद्धापल्य द्वारा मापा जाता है। जबकि एक अद्धा पल्यमें असंख्यात वर्ष होते हैं तब $(१०)^{२८}$ अद्धापल्योंमें कितने वर्ष होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर वर्षोंका जो प्रमाण प्राप्त होता है उससे दुगुना प्रमाण अयनोंका होता है, इसीलिए संदृष्टिमें दक्षिणायन अथवा उत्तरायण अयनोंका प्रमाण संख्यात पल्य दिया है। दक्षिणायन अथवा उत्तरायणके अयन प्रमाणसे दुगुना प्रमाण विषुपोंका होता है। अर्थात् एक अयनमें एक विषुप होता है इसलिए अयनोंके प्रमाण बराबर ही विषुपोंका प्रमाण होता है।

गाथामें जो दुगुण शब्द आया है वह दक्षिणायन अथवा उत्तरायण का जितना प्रमाण है उससे दुगुने विषुपोंके लिए आया है। संदृष्टिमें संख्यात पल्यका द्विगुणित शब्द भी इसी अर्थका द्योतक है।

अवसप्पिणीए एवं, वत्तव्वा ताओ रहड-घडिएणं।
होंति अणंताणंता पुव्वं वा दुमणि - परिवत्तं ॥५५३॥

अर्थ—इसीप्रकार (उत्सर्पिणीके सदृश) अवसर्पिणीकालमें भी रहंट की घटिकाओं सदृश दक्षिण-उत्तर अयन और विषुप कहने चाहिए। सूर्यके परिवर्तन पूर्ववत् अनन्तानन्त होते हैं ॥५५३॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

विषुप सम्बन्धी विशेष विवरण इसप्रकार है—

वर्ष संख्या	विषुप संख्या	गत-पर्व-संख्या	मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र
प्रथम वर्ष	१ ला	६ पर्व व्यतीत होनेपर	कार्तिक	कृष्ण	तृतीया	रोहिणी के योग में
	२ रा	१८ ,, ,,	वैशाख	कृष्ण	नवमी	धनिष्ठा ,, ,,
द्वितीय वर्ष	३ रा	३१ ,, ,,	कार्तिक	शुक्ल	पूर्णिमा	स्वाति ,, ,,
	४ था	४३ ,, ,,	वैशाख	शुक्ल	षष्ठी	पुनर्वसु ,, ,,
तृतीय वर्ष	५ वाँ	५५ ,, ,,	कार्तिक	शुक्ल	द्वादशी	उ० भाद्र० ,, ,,
	६ ठा	६८ ,, ,,	वैशाख	कृष्ण	तृतीया	अनुराधा ,, ,,
चतुर्थ वर्ष	७ वाँ	८० ,, ,,	कार्तिक	कृष्ण	नवमी	मघा ,, ,,
	८ वाँ	९३ ,, ,,	वैशाख	शुक्ल	पूर्णिमा	अश्विनी ,, ,,
पञ्चम वर्ष	९ वाँ	१०५ ,, ,,	कार्तिक	शुक्ल	षष्ठी	उ० षाढ़ा ,, ,,
	१०वाँ	११७ ,, ,,	वैशाख	शुक्ल	द्वादशी	उ० फा० ,, ,,

लवणसमुद्रसे पुष्करार्द्ध पर्यन्तके चन्द्र-बिम्बों का विवेचन—

चत्तारो लवण-जले, धादइ-दीवम्मि बारस मियंका ।
बादाल काल - सलिले, बाहत्तरि पोक्खरद्धम्मि ॥५५४॥

४ । १२ । ४२ । ७२ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें चार, धातकीखण्डमें बारह, कालोदसमुद्रमें बयालीस और पुष्करार्द्ध द्वीपमें बहत्तर चन्द्र हैं ॥५५४॥

णिय-णिय-ससीण अद्धं, दीव-समुद्दाण एक्क-भागम्मि ।
अवरे भागं अद्धं, चरंति पंति - क्कमेणं च ॥५५५॥

अर्थ—द्वीप एवं समुद्रोंके अपने-अपने चन्द्रोंमेंसे आधे एक भागमें और (शेष) आधे दूसरे भागमें पंक्तिक्रमसे सञ्चार करते हैं ॥५५५॥

एक्केक्क-चारखेत्तं, दो-हो-चंदाण होदि तव्वासो ।
पंच-सया दस-सहिदा, दिणयर-बिंबादि - रित्ता य ।।५५६।।

अर्थ—दो-दो चन्द्रोंका एक-एक चारक्षेत्र है और उसका विस्तार सूर्यबिम्ब ($\frac{४८}{६१}$ यो०) से अधिक पाँच सौ दस (५१०$\frac{४८}{६१}$) योजन प्रमाण है ।।५५६।।

पुह-पुह चारक्खेत्ते, पण्णरस हवंति चंद-वीहीओ ।
तव्वासो छप्पण्णा, जोयणया एक्क-सट्ठि-हिदा ।।५५७।।

१५ । $\frac{५६}{६१}$ ।

अर्थ—पृथक्-पृथक् चारक्षेत्रमें जो पन्द्रह-पन्द्रह चन्द्र-वीथियाँ होती हैं । उनका विस्तार इकसठसे भाजित छप्पन ($\frac{५६}{६१}$) योजन प्रमाण है ।।५५७।।

चन्द्रके अभ्यन्तर पथमें स्थित होनेपर प्रथम पथ व द्वीप-समुद्रजगतीके बीच अन्तराल—

णिय-णिय-चंद-पमाणं, भजिदूणं एक्क-सट्ठि-रूवेहिं ।
अडवीसेहिं गुणिदं, सोहिय णिय-उवहि-दीव-वासम्मि ।।५५८।।
ससि-संखाए विहत्तं, सव्वब्भंतर-वीहि-ट्ठिदिदूणं ।
दीवाणं उवहीणं, आदिम-पह-जगदि-विच्चालं ।।५५९।।

अर्थ—अपने-अपने चन्द्रोंके प्रमाणमें इकसठ (६१) रूपोंका भाग देकर अट्ठाईस (२८) से गुणा करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे अपने द्वीप या समुद्रके विस्तारमेंसे घटाकर चन्द्र संख्यासे विभक्त करे । जो लब्ध प्राप्त हो उतना सर्व-अभ्यन्तर वीथीमें स्थित चन्द्रोंके आदिम पथ और द्वीप अथवा समुद्रकी जगतीके बीच अन्तराल होता है ।।५५८-५५९।।

लवणसमुद्रमें अभ्यन्तर वीथी और जगतीके अन्तरालका प्रमाण—

उणवण्ण-सहस्सा णव-सय-णवणउदि-जोयणा य तेत्तीसा ।
अंसा लवणसमुद्दे, अब्भंतर - वीहि - जगदि - विच्चालं ।।५६०।।

४९९९९ । $\frac{३३}{६१}$ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें अभ्यन्तर वीथी और जगतीके बीच उनंचास हजार नौ सौ निन्यानबै योजन और एक योजनके इकसठ भागोंमेंसे तैंतीस भाग प्रमाण अन्तराल है ।।५६०।।

विशेषार्थ—लवणसमुद्रका विस्तार दो लाख योजन है और इसमें चन्द्र ४ हैं । उपर्युक्त विधिके अनुसार प्रथम वीथी स्थित चन्द्र और लवणसमुद्रकी जगतीके मध्यका अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$(४ \div ६१) \times २८ = \frac{११२}{६१}$

$(\frac{२०००००}{१} - \frac{११२}{६१}) \div ४ = \frac{१२१९९८८८}{६१ \times ४}$

$= \frac{३०४९९७२}{६१} = ४९९९९\frac{३३}{६१}$ योजन अन्तराल।

घातकीखण्ड द्वीपमें जगतीसे प्रथम वीथीका अन्तराल—

दुग-तिग-तिय-तिय-तिण्णि य, विच्चालं धादइम्मि दीवम्मि।
णभ - छक्क - एक्क - अंसा, तेसीदि - सदेहिं अवहरिदा ॥५६१॥

३३३३२ । $\frac{१६०}{१८३}$ ।

अर्थ—घातकीखण्ड द्वीपमें यह अन्तराल दो, तीन, तीन, तीन और तीन अर्थात् तैंतीस हजार तीन सौ बत्तीस योजन और एक सौ तेरासीसे भाजित एक सौ साठ भाग प्रमाण है ॥५६१॥

विशेषार्थ—$(१२ \div ६१) \times २८ = \frac{३३६}{६१}$

$(\frac{४०००००}{१} - \frac{३३६}{६१}) \div १२ = \frac{२४३९९६६४}{६१ \times १२}$

$\frac{६०९९९१६}{१८३} = ३३३३२\frac{१६०}{१८३}$ योजन अन्तराल।

कालोदधिमें जगतीसे प्रथम वीथीगत चन्द्रका अन्तराल—

सग-चउ-णह-णव-एक्का, अंक-कमे पण-ख-दोण्णि अंसा य।
इगि-अट्ठ-दु-एक्क-हिदा, कालोदय - जगदि - विच्चालं ॥५६२॥

१९०४७ । $\frac{२०५}{१२८१}$ ।

अर्थ—कालोदधिसमुद्रकी जगती और (प्रथम) वीथीके मध्यका अन्तराल सात, चार, शून्य, नौ और एक इन अंकोंके क्रमसे उन्नीस हजार सैंतालीस योजन और बारह सौ इक्यासीसे भाजित दो सौ पांच भाग अधिक है ॥५६२॥

विशेषार्थ—$(४२ \div ६१) \times २८ = \frac{११७६}{६१}$

$(\frac{८०००००}{१} - \frac{११७६}{६१}) \div ४२ = \frac{४८७९८८२४}{६१ \times ४२}$

$= \frac{२४३९९४१२}{१२८१} = १९०४७\frac{२०५}{१२८१}$ योजन अन्तराल।

पुष्करार्धद्वीपमें जगतीसे प्रथम वीथीगत चन्द्रका अन्तराल—

सुण्णं चउ-ठाणेक्का, अंक-कमे अट्ठ-पंच-तिण्णि कला।
णव - चउ - पंच - विहत्ता, विच्चालं पुक्खरद्धम्मि ॥५६३॥

१११११० । $\frac{३५८}{५४९}$ ।

अर्थ—पुष्करार्धद्वीपमें यह अन्तराल शून्य और चार स्थानोंमें एक, इन अंकोंके क्रमसे ग्यारह हजार एक सौ दस योजन और पाँचसौ उनंचाससे भाजित तीन सौ अट्ठावन कला प्रमाण है ॥५६३॥

विशेषार्थ—(७२ ÷ ६१) × २८ = $\frac{२०१६}{६१}$

($\frac{८०००००}{१}$) — ($\frac{२०१६}{६१}$) ÷ ७२ = $\frac{४८७९७९८४}{६१ \times ७२}$

= $\frac{६०९९७४८}{५४९}$ = ११११० $\frac{३५८}{५४९}$ योजन अन्तराल।

एदाणि अंतराणि, पढम - प्पह - संठिदाण चंदाणं।
बिदियादीण पहाणं, अहिया अब्भंतरे बहिं ऊणा ॥५६४॥

अर्थ—प्रथम पथमें स्थित चन्द्रोंके ये उपर्युक्त अन्तर अभ्यन्तरमें द्वितीयादिक पथोंसे अधिक और बाह्यमें उनसे रहित हैं ॥५६४॥

दो चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर प्राप्त करनेकी विधि—

लवणादि-चउक्काणं, वास-पमाणम्मि णिय-ससि-दलाणं।
बिंबाणि फेलित्ता, तत्तो णिय - चंद - संख - अद्धेणं ॥५६५॥

भजिदूणं जं लद्धं, तं पत्तेक्कं ससीण विच्चालं।
एवं सव्व - पहाणं, अंतरमेदम्मि णिद्दिट्ठं ॥५६६॥

अर्थ—लवणसमुद्रादिक चारोंके विस्तार प्रमाणमेंसे अपने-अपने चन्द्रोंके अर्ध बिम्बोंको घटाकर शेषमें निज चन्द्र-संख्याके अर्धभागका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना प्रत्येक चन्द्रका अन्तराल प्रमाण होता है। इसप्रकार यहाँपर सब पथोंका अन्तराल निर्दिष्ट किया गया है ॥५६५-५६६॥

लवण समुद्रगत चन्द्रोंका अन्तराल प्रमाण—

णवणउदि-सहस्सा णव-सय-णवणउदि जोयणा य पंच कला।
लवणसमुद्दे दोण्हं, तुसारकिरणाण विच्चालं ॥५६७॥

९९९९९ । $\frac{५}{६१}$ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें दो चन्द्रोंके बीच निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे योजन और पाँच कला अधिक अन्तराल है ॥५६७॥

विशेषार्थ—ल० समुद्रका विस्तार दो लाख योजन, चन्द्र संख्या चार और इन चारोंका बिम्ब विस्तार ($\frac{५६}{६१}$ × ४) = $\frac{२२४}{६१}$ योजन है। समुद्र विस्तारमेंसे अर्ध चन्द्रबिम्बोंका विस्तार

($\frac{२२४}{६१}$ ÷ २ = $\frac{११२}{६१}$ यो०) घटाकर शेषमें अर्ध चन्द्र संख्या (४ ÷ २ = २) का भाग देनेपर दो चन्द्रों का पारस्परिक अन्तर प्रमाण प्राप्त होता है । यथा—

$$(\frac{२०००००}{१} — \frac{११२}{६१}) ÷ २ = \frac{६०९९९४४}{६१}$$

= ९९९९९$\frac{५}{६१}$ योजन दोनों चन्द्रोंका अन्तराल ।

धातकीखण्डस्थ चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण—

पंच चउ-ठाण-छक्का, अंक-कमे सग-ति-एक्क अंसा य ।
तिय - अट्ठेक्क - विहत्ता, अंतरमिंदूण धादईसंडे ।।५६८।।

६६६६५ । $\frac{१३७}{१८३}$ ।

अर्थ—धातकीखण्डद्वीपमें चन्द्रोंके बीच पाँच और चार स्थानोंमें छह इन अंकोंके क्रमसे छयासठ हजार छह सौ पैंसठ योजन और एक सौ तेरासीसे विभक्त एक सौ सैंतीस कला प्रमाण अन्तर है ।।५६८।।

विशेषार्थ—धातकीखण्डका विस्तार ४ लाख यो०, चन्द्र संख्या १२ और इनका बिम्ब विस्तार ($\frac{५६}{६१}$ × $\frac{१२}{१}$) = $\frac{६७२}{६१}$ योजन है । उपर्युक्त नियमानुसार दो चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$$(\frac{४०००००}{१} — \frac{६७२}{६१ × २}) ÷ \frac{१२}{२} = \frac{४८७९९३२८}{७३२}$$

= ६६६६५$\frac{१३७}{१८३}$ योजन अन्तराल है ।

कालोदधि-स्थित चन्द्रोंका अन्तर-प्रमाण—

चउणव-गयणट्ठ-तिया, अंक कमे सुण्ण-एक्क-चारि कला ।
इगि - अड - दुग - इगि - भजिदा, अंतरमिंदूण कालोदे ।।५६९।।

३८०९४ । $\frac{४१०}{१२८१}$ ।

अर्थ—कालोदधि समुद्रमें चन्द्रोंके बीच चार, नौ, शून्य, आठ और तीन इन अंकोंके क्रमसे अड़तीस हजार चौरानबै योजन और बारह सौ इक्यासीसे भाजित चार सौ दस कला अधिक अन्तर है ।।५६९।।

विशेषार्थ—कालोदधिका वि० ८ लाख यो०, चन्द्र संख्या ४२ और इनका बिम्ब विस्तार ($\frac{५६}{६१}$ × $\frac{४२}{१}$) = $\frac{२३५२}{६१}$ योजन है । उपर्युक्त नियमानुसार यहाँके दो चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$(\frac{८०००००}{१} - \frac{२३५२}{६१ \times २}) \div \frac{४२}{२} = \frac{४८७९६८८२४}{६१ \times २१}$

$= ३८०९४ \frac{४१०}{१२८१}$ योजन अन्तराल है।

पुष्करार्ध-स्थित चन्द्रोंका अन्तर-प्रमाण—

एक्क-चउ-ट्ठाण-दुगा, अंक-कमे सत्त-छक्क-एक्क कला।
णव-चउ-पंच - विहत्ता, अंतरमिदूण पोक्खरद्धम्मि ॥५७०॥

२२२२१ । $\frac{१६७}{५४९}$ ।

अर्थ—पुष्करार्द्ध द्वीपमें चन्द्रोंके मध्य एक और चार स्थानोंमें दो इन अंकोंके क्रमसे बाईस हजार दो सौ इक्कीस योजन और पाँच सौ उनंचाससे विभक्त एक सौ सड़सठ कला अधिक अन्तर है ॥५७०॥

विशेषार्थ—पुष्करार्धद्वीपका विस्तार ८ लाख यो० है। चन्द्र संख्या ७२ और इनका बिम्ब विस्तार ($\frac{५६}{६१} \times \frac{७२}{१}$) $= \frac{४०३२}{६१}$ योजन है। उपर्युक्त नियमानुसार यहाँके दो चन्द्रोंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$(\frac{८०००००}{१} - \frac{४०३२}{६१ \times २}) \div \frac{७२}{२} = \frac{१२१९८९९२}{५४९}$

$= २२२२१ \frac{१६७}{५४९}$ योजन अन्तराल है।

चन्द्रकिरणोंकी गति—

णिय-णिय-पढम-पहाणं, जगदीणं अंतर-प्पमाण-समं।
णिय-णिय-लेस्सगदीओ, सव्व - मियंकाण पत्तेक्कं ॥५७१॥

अर्थ—अपने-अपने प्रथम पथ और जगतियोंके अन्तर-प्रमाणके बराबर सब चन्द्रोंमेंसे प्रत्येकको अपनी-अपनी किरणोंकी गतियाँ होती हैं ॥५७१॥

लवणसमुद्रादिमें चन्द्र-वीथियोंका प्रमाण—

तीसं णउदी ति-सया, पण्णरस-जुदा य चाल पंच-सया।
लवण - प्पहुदि - चउक्के, चंदाणं होंति वीहीओ ॥५७२॥

३० । ९० । ३१५ । ५४० ।

अर्थ—लवणसमुद्रादि चारमें चन्द्रोंकी क्रमशः तीस, नब्बे, तीन सौ पन्द्रह और पांच सौ चालीस वीथियाँ हैं ॥५७२॥

विशेषार्थ—५१० ४८/६१ योजन प्रमाणवाली एक संचार भूमिमें १५ वीथियाँ होती हैं, जिसे दो चन्द्र पूरा करते हैं। लवणोदधि आदिमें क्रमशः ४, १२, ४२ और ७२ चन्द्र हैं। जब दो चन्द्रोंके प्रति १५ वीथियाँ हैं, तब ४, १२, ४२ और ७२ चन्द्रोंके प्रति कितनी वीथियाँ होंगी? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर वीथियोंका क्रमशः पृथक्-पृथक् प्रमाण लवणोदधिमें (१५×४/२)=३०, धा० खण्डमें (१५×१२/२)=९०, कालोदधिमें (१५×४२/२)= ३१५ और पुष्करार्धद्वीपमें (१५×७२/२)= ५४० प्राप्त होता है।

लवणोदधि आदिमें चन्द्रकी मुहूर्त-परिमित गतिका प्रमाण प्राप्त करनेकी विधि—

णिय-पह-परिहि-पमाणे, पुह-पुह दु-सएक्क-वीस-संगुणिदे।
तेरस-सहस्स-सग-सय-पणुवीस-हिदे मुहुत्त[1] - गदिमाणं ॥५७३॥

२२१/१३७२५।

अर्थ—अपने-अपने पथोंकी परिधिके प्रमाणको पृथक्-पृथक् दो सौ इक्कीस (२२१) से गुणाकर लब्धमें तेरह हजार सात सौ पच्चीसका भाग देनेपर मुहूर्तकाल परिमित गतिका प्रमाण आता है ॥५७३॥

लवणसमुद्रादिमें चन्द्रोंकी शेष प्ररूपणा—

सेसाओ वण्णणाओ, जंबूदीवम्मि जाओ चंदाणं।
ताओ लवणे धादइसंडे कालोद - पुक्खरद्धेसुं ॥५७४॥

एवं चंदाणं परूवणा समत्ता।

अर्थ—लवणोदधि, धातकीखण्ड, कालोदधि और पुष्करार्ध द्वीपमें स्थित चन्द्रोंका शेष वर्णन जम्बूद्वीपके चन्द्रोंके वर्णन सदृश जानना चाहिए ॥५७४॥

इसप्रकार चन्द्रोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

लवणसमुद्रादिमें सूर्योंका प्रमाण—

चत्तारि होंति लवणे, बारस सूरा य धादईसंडे।
बादाला कालोदे, बाहत्तरि पुक्खरद्धम्मि ॥५७५॥

४। १२। ४२। ७२।

---

१. द. मुहगदि, ब. मुहुत्त।

अर्थ—लवणसमुद्रमें चार, धातकीखण्डमें बारह, कालोदधिमें बयालीस और पुष्करार्ध-द्वीपमें बहत्तर सूर्य स्थित हैं ॥५७५॥

उपर्युक्त सूर्योंका अवस्थान, प्रत्येकका चारक्षेत्र और
चारक्षेत्रका विस्तार—

णिय-णिय-रवीण अद्धं, दीव-समुद्दाण एक्क-भागम्मि ।
अवरे भागे अद्धं, चरेदि पंति - क्कमेणेव ॥५७६॥

अर्थ—अपने-अपने सूर्योंका अर्ध भाग द्वीप-समुद्रोंके एक भागमें और अर्धभाग दूसरे भागमें पंक्ति क्रमसे संचार करता है ॥५७६॥

एक्केक्क-चारखेत्तं, दो-द्दो दुमणीण होदि तव्वासो ।
पंच-सया दस - सहिदा, विणवइ - बिंबादिरित्ता य ॥५७७॥

५१० । $\frac{४८}{६१}$ ।

अर्थ—दो-दो सूर्योंका एक-एक चारक्षेत्र होता है। इस चारक्षेत्रका विस्तार सूर्यबिम्बके विस्तारसे अधिक पाँच सौ दस (५१०$\frac{४८}{६१}$) योजन-प्रमाण है ॥५७७॥

वीथियोंका प्रमाण एवं विस्तार—

एक्केक्क-चारखेत्ते, चउसीदि-जुद-सदेक्क-वीहीओ ।
तव्वासो अडदालं, जोयणया एक्क - सट्ठि - हिदा ॥५७८॥

१८४ । $\frac{४८}{६१}$ ।

अर्थ—एक-एक चारक्षेत्रमें एक सौ चौरासी (१८४) वीथियाँ होती हैं। इनका विस्तार इकसठसे भाजित अड़तालीस ($\frac{४८}{६१}$) योजन है ॥५७८॥

लवणसमुद्रादिमें प्रत्येक सूर्यके बीच तथा प्रथम पथ एवं जगतीके मध्यका
अन्तर प्राप्त करनेकी विधि—

लवणादि-चउक्काणं, वास-पमाणम्मि णिय-रवि-दलाणं ।
बिंबाणि फेलित्ता, तत्तो णिय—
भजिदूणं जं लद्धं, तं पत्तेक्कं रवीण विच्चालं ।
तस्स य अद्ध - पमाणं, जगदी-आसण्ण-मग्गाणं ॥५८०॥

अर्थ—लवणोदधि आदि चारोंके विस्तार-प्रमाणमेंसे अपने आधे सूर्य-बिम्बोंको घटाकर शेषमें अर्ध-सूर्य-संख्याका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना प्रत्येक सूर्यका और इससे आधा जगती एवं आसन्न (प्रथम) मार्गके बीचका अन्तराल प्रमाण होता है ।। ५७९-५८० ।।

लवणसमुद्रमें प्रत्येक सूर्यका और जगतीसे प्रथम पथका अन्तराल—

णवणउदि-सहस्साणि, णव-सय-णवणउदि जोयणाणि पि ।
तेरसमेत्त - कलाओ, भजिदव्वा एक्कसट्ठीए ।।५८१।।

९९९९९ । $\frac{१३}{६१}$ ।

एत्तियमेत्त - पमाणं, पत्तेक्कं बिवयराण विच्चालं ।
लवणोदे तस्सद्धं, जगदीणं णियय - पढम - मग्गाणं[1] ।।५८२।।

अर्थ—निन्यानबै हजार नौ सौ निन्यानबै योजन और इकसठसे भाजित तेरह कला, इतना लवणसमुद्रमें प्रत्येक सूर्यके अन्तरालका प्रमाण है और इससे आधा जगती एवं निज प्रथम मार्गके बीच अन्तर है ।।५८१-५८२।।

विशेषार्थ—लवणसमुद्रका विस्तार दो लाख योजन, सूर्य संख्या ४ और इनका बिम्ब विस्तार ($\frac{४८}{६१} \times \frac{४}{२}$) = $\frac{९६}{६१}$ यो० है । उपर्युक्त नियमानुसार दो सूर्योंका पारस्परिक अन्तर इसप्रकार है—$\frac{२००००००}{१}$ — ($\frac{४८}{६१} \times \frac{४}{२}$) ÷ $\frac{४}{२}$ = $\frac{६०९९९५२}{६१}$ = ९९९९९$\frac{१३}{६१}$ योजन है । तथा प्रथम पथसे जगतीका अन्तर $\frac{६०९९९५२}{६१ \times २}$ = $\frac{३०४९९७६}{६१}$ = ४९९९९$\frac{३७}{६१}$ योजन प्रमाण है ।

धातकीखण्डस्थ सूर्य आदिके अन्तर प्रमाण—

छावट्ठि-सहस्साणि, छस्सय-पण्णट्ठि जोयणाणि कला ।
इगिसट्ठी - जुत्त - सयं, तेसीदि - जुव - सयं हारो ।।५८३।।

६६६६५ । $\frac{१६१}{१८३}$ ।

एवं अंतरमाणं, एक्केक्क - रवीण धावईसंडे ।
लेस्सागदी तदद्धं, तस्सरिसा उवहि - आबाहा ।।५८४।।

अर्थ—छ्यासठ हजार छह सौ पैंसठ योजन और एक सौ तेरासीसे भाजित एक सौ इकसठ कला, इतना धातकीखण्डमें प्रत्येक सूर्यका अन्तराल प्रमाण है । इससे आधी किरणोंकी गति और उसके सदृश ही समुद्रका अन्तराल भी है ।।५८४।।

---

1. द. ब. क. ज. मग्गा य ।

विशेषार्थ—धा० खण्ड का विस्तार ४ लाख योजन, सूर्य १२ और इनका बिम्ब विस्तार $(\frac{४८}{६१} \times \frac{१२}{२}) = \frac{२८८}{६१}$ योजन है। यहाँ दो सूर्योंका पारस्परिक अन्तर $\frac{४०००००}{१} — (\frac{४८}{६१} \times \frac{१२}{२}) \div \frac{१२}{२} = \frac{१२१९९८५६}{१८३} = ६६६६५\frac{१६१}{१८३}$ योजन है।

किरणोंकी गति $(\frac{१२१९९८५६}{१८३ \times २}) = ३३३३२\frac{१७२}{१८३}$ योजन और प्रथम पथसे द्वीपकी जगती का अन्तर भी $३३३३२\frac{१७२}{१८३}$ योजन ही है।

कालोदधिमें स्थित सूर्य आदिके अन्तर प्रमाण—

अट्ठतीस-सहस्सा, चउणउदी जोयणाणि पंच सया।
अट्ठाहत्तरि हारो, बारसय - सयाणि इगिसीदी ॥५८५॥

३८०९४। $\frac{५७८}{१२८१}$।

एवं अंतरमाणं, एक्केक्क-रवीण काल-सलिलम्मि।
लेस्सागदी तदद्धं, तस्सरिसं उवहि - आबाहा ॥५८६॥

अर्थ—अड़तीस हजार चौरानवै योजन और बारह सौ इक्यासीसे भाजित पाँच सौ अठत्तर भाग, यह कालोदसमुद्रमें एक-एक सूर्यका अन्तराल प्रमाण है। इससे आधी किरणोंकी गति और उसके ही बराबर समुद्रका अन्तर भी है ॥५८५–५८६॥

विशेषार्थ—कालोदधिका विस्तार ८ लाख योजन, सूर्य ४२ और इनका बिम्ब विस्तार $(\frac{४८}{६१} \times \frac{४२}{२}) = \frac{१००८}{६१}$ योजन है। $(\frac{८०००००}{१} — \frac{१००८}{६१}) \div \frac{४२}{२} = \frac{४८७९८९९२}{१२८१} = ३८०९४\frac{५७८}{१२८१}$ योजन दो सूर्योंका पारस्परिक अन्तर है।

किरणोंकी गति $\frac{४८७९८९९२}{१२८१ \times २} = १९०४७\frac{२८९}{१२८१}$ योजन और प्रथम पथसे समुद्रकी जगतीका अन्तर भी $१९०४७\frac{२८९}{१२८१}$ योजन है।

पुष्करार्धगत सूर्यादिके अन्तर-प्रमाण—

बावीस-सहस्साणि, बे-सय-इगिवीस जोयणा अंसा।
दोण्णि-सया उणदालं, हारो उणवण्ण-पंच-सया ॥५८७॥

२२२२१। $\frac{२३९}{५५९}$।

एवं अंतरमाणं, एक्केक्क - रवीण पोक्खरद्धम्मि।
लेस्सागदी तदद्धं, तस्सरिसा उवहि - आबाहा ॥५८८॥

अर्थ—बाईस हजार दो सौ इक्कीस योजन और पाँच सौ उनंचाससे भाजित दो सौ उनतालीस भाग, यह पुष्करार्धद्वीपमें एक-एक सूर्यका अन्तराल-प्रमाण है। इससे आधी किरणोंकी गति और उसके बराबर ही समुद्रका अन्तर भी है ॥५८७-५८८॥

विशेषार्थ—पुष्करार्धद्वीपका विस्तार ८ लाख यो०, सूर्य संख्या ७२ और इनका बिम्ब विस्तार ($\frac{४८}{६१} \times \frac{७२}{२}$) = $\frac{१७२८}{६१}$ योजन है। पूर्व नियमानुसार यहाँके दो सूर्योंका पारस्परिक अन्तर प्रमाण इसप्रकार है—

$$\left(\frac{८०००००० }{१} - \frac{१७२८}{६१} \right) \div \frac{७२}{२} = \frac{१२१९९९५६८}{५४९}$$

= २२२२१ $\frac{२३९}{५४९}$ योजन अन्तराल है। किरणोंकी गति = $\frac{१२१९९९५६८}{५४९ \times २}$ = १११११० $\frac{३९४}{५४९}$ योजन प्रमाण है और प्रथम पथसे द्वीपकी जगतीका अन्तर भी इतना ही है।

ताओ आबाहाओ, दोसुं पासेसु संठिद - रवीणं।
चारक्खेत्तब्भहिया, अब्भंतरए बहिं ऊणा ॥५८९॥

अर्थ—दो पार्श्वभागोंमें स्थित सूर्योंके ये अन्तर अभ्यन्तरमें चारक्षेत्रसे अधिक और बाह्यमें चारक्षेत्रसे रहित हैं ॥५८९॥

जम्बूद्वीपमें अन्तिम मार्गसे अभ्यन्तरमें किरणोंकी गतिका प्रमाण—

जंबूयंके दोण्हं, लेस्सा वच्चंति चरिम - मग्गादो।
अब्भंतरए णभ-तिय-तिय-सुण्णा पंच जोयणया ॥५९०॥

५०३३०।

अर्थ—जम्बूद्वीपमें अन्तिम मार्गसे अभ्यन्तरमें दोनों चन्द्र-सूर्योंकी किरणें शून्य, तीन, तीन, शून्य और पाँच इस अंक क्रमसे पचास हजार तीन सौ तीस (५०३३०) योजन प्रमाण जाती हैं ॥५९०॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपका मेरु पर्वत पर्यन्त व्यास ५० हजार योजन है। गाथा ५८६ के नियमानुसार इसमें लवणसमुद्र सम्बन्धी ३३० योजन चारक्षेत्रका प्रमाण जोड़ देनेपर जम्बूद्वीपमें अन्तिम मार्गसे अभ्यन्तरमें किरणोंका प्रसार (५००००+३३०) = ५०३३० योजन पर्यन्त होता है।

लवणसमुद्रमें जम्बूद्वीपस्थ चन्द्रादिकी किरणोंकी गतिका प्रमाण—

चरिम-पहादो बाहिं, लवणे दो-णभ-ख-ति-तिय-जोयणया।
वच्चइ लेस्सा अंसा, सयं च हारा तिसीदि-अहिय-सया ॥५९१॥

३३००२। $\frac{१००}{१८३}$।

अर्थ—लवणसमुद्रमें अन्तिम पथसे बाह्यमें दो, शून्य, शून्य, तीन और तीन, इस अंक क्रमसे तेंतीस हजार दो योजन और एक सौ तेरासी भागोंमेंसे सौ भाग प्रमाण किरणें जाती हैं ॥५९१॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके छठे भागका प्रमाण ($\frac{२०००००}{६}$)=३३३३३$\frac{१}{३}$ यो० है। गाथा ५८९ के नियमानुसार इसमेंसे लवणसमुद्र सम्बन्धी चारक्षेत्रका प्रमाण घटा देनेपर (३३३३३$\frac{१}{३}$ — ३३०$\frac{४८}{६१}$)=३३००२$\frac{१००}{१८३}$ योजन शेष रहते हैं। अर्थात् लवणसमुद्रमें अन्तिम पथसे बाह्यमें किरणोंकी गति ३३००२$\frac{१००}{१८३}$ यो० पर्यन्त होती है।

जम्बूद्वीपस्थ अभ्यन्तर और बाह्य पथ स्थित सूर्यकी
किरणोंकी गतिका प्रमाण—

पढम-पह-संठियाणं, लेस्स-गदी णभ-दु-अट्ठ-णव-चउरो।
अंक - कमे जोयणया, अब्भंतरए समुद्दिट्ठं ॥५९२॥

४९८२०।

अर्थ—प्रथम पथ स्थित सूर्यकी किरणोंकी गति अभ्यन्तर पथमें शून्य, दो, आठ, नौ और चार, इन अंकोंके क्रमसे उनंचास हजार आठ सौ बीस योजन पर्यन्त फैलती है। ऐसा जिनेन्द्र-देवने कहा है ॥५९२॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपके अर्ध व्यासमेंसे द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्रका प्रमाण १८० योजन घटा देनेपर (५०००० — १८०)=४९८२० योजन शेष रहा। यही मेरु पर्वतके मध्यभागसे लगाकर अभ्यन्तर वीथी पर्यन्त सूर्यकी किरणोंको गतिका प्रमाण है।

बाहिर-भागे लेस्सा, वच्चंति ति-एक्क-पण-ति-तिय-कमसो।
जोयणया तिय - भागं, सेस - पहे हाणि - वड्ढीओ ॥५९३॥

३३५१३। $\frac{१}{३}$।

अर्थ—बाह्यभागमें सूर्यकी किरणें तीन, एक, पाँच, तीन और तीन इस अंक क्रमसे तेंतीस हजार पाँच सौ तेरह योजन और एक योजनके तीन भागोंमेंसे एक भाग पर्यन्त फैलती हैं। शेष पथोंमें किरणोंकी क्रमशः हानि और वृद्धि होती है ॥५९३॥

विशेषार्थ—लवणसमुद्रके व्यासका छठा भाग ($\frac{२०००००}{६}$)=३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन होता है। इसमें द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्रका प्रमाण १८० योजन मिलानेपर (३३३३३$\frac{१}{३}$ + १८०)=३३५१३$\frac{१}{३}$ योजन होता है। अर्थात् अभ्यन्तर पथमें स्थित सूर्यकी किरणें लवणसमुद्रके छठे भाग (३३५१३$\frac{१}{३}$ योजन) पर्यन्त फैलती हैं।

लवणसमुद्रादिमें किरणोंका फैलाव—

लवण-प्पहुदि-चउक्के, णिय-णिय-खेत्तेसु दिणयर-मयंका ।
वच्चंति ताण लेस्सा, अण्णक्खेत्तं ण कइया वि ।।५९४।।

अर्थ—लवणसमुद्र आदि चारमें जो सूर्य एवं चन्द्र हैं उनकी किरणें अपने-अपने क्षेत्रोंमें ही जाती हैं, अन्य क्षेत्रमें कदापि नहीं जाती ।।५९४।।

लवणसमुद्रादिमें सूर्य-वीथियोंकी संख्या—

अट्ठासट्ठी ति-सया, लवणम्मि हवंति भाणु-वीहीओ ।
चउरुत्तर - एक्कारस - सयमेत्ता धादईसंडे ।।५९५।।

३६८ । ११०४ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें सूर्य-वीथियाँ तीन सौ अड़सठ हैं और धातकीखण्डमें ग्यारह सौ चार हैं ।।५९५।।

चउसट्ठी अट्ठ-सया, तिण्णि सहस्साणि कालसलिलम्मि ।
चउवीसुत्तर-छ-सया, छच्च सहस्साणि पोक्खरद्धम्मि ।।५९६।।

३८६४ । ६६२४ ।

अर्थ—कालोदधिमें सूर्य-वीथियाँ तीन हजार आठ सौ चौंसठ और पुष्करार्ध द्वीपमें छह हजार छह सौ चौबीस हैं ।।५९६।।

विशेषार्थ—दो सूर्य सम्बन्धी १८४ वीथियाँ होती हैं अतः लवण—समुद्रगत ४ सूर्योंकी ($\frac{१८४ \times ४}{२}$) = ३६८, धातकीखण्डगत १२ सूर्योंकी ($\frac{१८४ \times १२}{२}$) = ११०४, कालोदधिगत ($\frac{१८४ \times ४२}{२}$) = ३८६४ और पुष्करार्धद्वीपगत ($\frac{१८४ \times ७२}{२}$) = ६६२४ वीथियाँ हैं ।

प्रत्येक सूर्यकी मुहूर्त-परिमित गतिका प्रमाण—

णिय-णिय-परिहि-पमाणे, सट्ठि-मुहुत्तेहि अवहिदे लद्धं ।
पत्तेक्कं भाणूणं, मुहुत्त - गमणस्स परिमाणं ।।५९७।।

अर्थ—अपने-अपने परिधि-प्रमाणमें साठ मुहूर्तोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना प्रत्येक सूर्यकी मुहूर्तगतिका प्रमाण होता है ।।५९७।।

लवणसमुद्रादिमें सूर्योंकी शेष प्ररूपणा—

सेसाओ वण्णणाओ, जंबूदीवम्मि जाओ दुमणीणं ।
ताओ लवणे धादइसंडे कालोद - पुक्खरद्धेसुं ।।५९८।।

सूरप्परूवणा ।

अर्थ—जम्बूद्वीप स्थित सूर्योंका जो शेष वर्णन है, वही लवणसमुद्र, धातकीखण्ड, कालोद और पुष्करार्धके सूर्योंका भी समझना चाहिए ।।५९८।।

इसप्रकार सूर्य-प्ररूपणा समाप्त हुई ।

लवणसमुद्रादिमें ग्रह संख्या—

बावण्णा तिण्णि-सया, होंति गहाणं च लवणजलहिम्मि ।
छप्पण्णा अब्भहियं, सहस्समेक्कं च धादईसंडे ।।५९९।।

३५२ । १०५६ ।

तिण्णि सहस्सा छस्सय, छण्णउदी होंति कालउवहिम्मि ।
छत्तीसब्भहियाणि, तेसट्ठि - सयाणि पुक्खरद्धम्मि ।।६००।।

३६९६ । ६३३६ ।

एवं गहाण परूवणा समत्ता ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें तीन सौ बावन और धातकीखण्डमें एक हजार छप्पन ग्रह हैं। कालोदधिमें तीन हजार छह सौ छयानबे और पुष्करार्धद्वीपमें छह हजार तीन सौ छत्तीस ग्रह हैं ।।५९९-६००।।

विशेषार्थ—एक चन्द्र सम्बन्धी ८८ ग्रह हैं, अतः लवणसमुद्रमें (८८×४)=३५२, धा० खण्डमें (८८×१२) = १०५६, कालोदधिमें (८८×४२) = ३६९६ और पुष्करार्धद्वीपमें (८८×७२)=६३३६ ग्रह हैं ।

इसप्रकार ग्रहोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

लवणसमुद्रादिमें नक्षत्र संख्या—

लवणम्मि बारसुत्तर-सयमेत्ताणि हवंति रिक्खाणि ।
छत्तीसेहिं अहिया, तिण्णि - सया धादईसंडे ।।६०१।।

११२ । ३३६ ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें एक सौ बारह और धातकीखण्डमें तीन सौ छत्तीस नक्षत्र हैं ।।६०१।।

छाहत्तरि-जुदाइं, एक्करस-सयाणि कालसलिलम्मि ।
सोलुत्तर - दो - सहस्सा, दीव - वरे पोक्खरद्धम्मि ।।६०२।।

११७६ । २०१६ ।

अर्थ—कालोद समुद्रमें ग्यारह सौ छिहत्तर और पुष्करार्धद्वीपमें दो हजार सोलह नक्षत्र हैं ।।६०२।।

विशेषार्थ—एक चन्द्र सम्बन्धी २८ नक्षत्र हैं, इसलिए ४, १२, ४२ और ७२ चन्द्र सम्बन्धी नक्षत्र क्रमशः ११२, ३३६, ११७६ और २०१६ हैं।

नक्षत्रोंका शेष कथन—

सेसाओ वण्णणाओ, जंबूदीवम्मि जाओ रिक्खाणं ।
ताओ लवणे धादइसंडे कालोद - पोक्खरद्धेसुं ।।६०३।।

एवं णक्खत्ताण परूवणा समत्ता ।

अर्थ—नक्षत्रोंका शेष वर्णन जैसा जम्बूद्वीपमें किया गया है उसी प्रकार लवणसमुद्र, धातकीखण्ड द्वीप, कालोद समुद्र और पुष्करार्धद्वीपमें समझना चाहिए ।।६०३।।

इसप्रकार नक्षत्रोंकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

लवणसमुद्रादि चारोंकी ताराओंका प्रमाण—

दोण्णि च्चिय लक्खाणि, सत्तट्ठी-सहस्स णव-सयाणि च ।
होंति हु लवणसमुद्दे, ताराणं कोडिकोडीओ ।।६०४।।

२६७९०००००००००००००००० ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ कोड़ाकोड़ी तारे हैं ।।६०४।।

अट्ठ च्चिय लक्खाणि, तिण्णि सहस्साणि सग-सयाणि पि ।
होंति हु धादइसंडे, ताराणं कोडकोडीओ ।।६०५।।

८०३७००००००००००००००००० ।

अर्थ—धातकीखण्ड द्वीपमें आठ लाख तीन हजार सात सौ कोड़ाकोड़ी तारे हैं ॥६०५॥

अट्ठावीसं लक्खा, कोडीकोडीण बारस-सहस्सा ।
पण्णासुत्तर - णव - सय - जुत्ता ताराणि कालोदे ॥६०६॥

२८१२९५००००००००००००००० ।

अर्थ—कालोद समुद्रमें अट्ठाईस लाख बारह हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी तारे हैं ॥६०६॥

अट्ठत्तालं लक्खा, बावीस - सहस्स बे-सयाणि च ।
होंति हु पोक्खरदीवे, ताराणं कोडकोडीओ ॥६०७॥

४८२२२००००००००००००००००० ।

अर्थ—पुष्करार्ध द्वीपमें अड़तालीस लाख बाईस हजार दो सौ कोड़ाकोड़ी तारे हैं ॥६०७॥

विशेषार्थ—एक चन्द्र सम्बन्धी ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण हैं इसलिए लवणसमुद्र आदि चारोंमें ४, १२, ४२ और ७२ चन्द्र सम्बन्धी ताराओंका प्रमाण क्रमशः (६६९७५ कोड़ाकोड़ी × ४ =) २६७९०० कोड़ाकोड़ी, ८०३७०० कोड़ाकोड़ी, २८१२९५० कोड़ाकोड़ी और ४८२२२०० कोड़ाकोड़ी है ।

ताराओंका शेष निरूपण—

सेसाओ वण्णणाओ, जंबूदीवस्स वण्णण - समाओ ।
णवरि विसेसो संखा, अण्णण्णा खील - ताराणं ॥६०८॥

अर्थ—इनका शेष वर्णन जम्बूद्वीपके वर्णन सदृश है । विशेषता केवल यह है कि स्थिर ताराओंकी संख्या भिन्न-भिन्न है ॥६०८॥

लवणसमुद्रादि चारोंकी स्थिर ताराओंका प्रमाण—

एक्क-सयं उणदालं, लवणसमुद्दम्मि खील-ताराओ ।
दस - उत्तरं सहस्सा, बीदम्मि य धादईसंडे ॥६०९॥

१३९ । १०१० ।

अर्थ—लवणसमुद्रमें एक सौ उनतालीस और धातकीखण्डमें एक हजार दस स्थिर तारे हैं ॥६०९॥

एक्कत्ताल-सहस्सा, बीसुत्तरमिगि-सयं च कालोदे ।
तेवण्ण-सहस्सा बे - सयाणि तीसं च पुक्खरद्धम्मि ॥६१०॥

४११२० । ५३२३० ।

अर्थ—कालोद समुद्रमें इकतालीस हजार एक सौ बीस और पुष्करार्धद्वीपमें तिरेपन हजार दो सौ तीस स्थिर तारे हैं ॥६१०॥

मनुष्यलोक स्थित सूर्य-चन्द्रोंका विभाग—

माणसखेत्ते ससिणो, छासट्ठी होंति एक्क-पासम्मि ।
दो - पासेसुं दुगुणा, तेत्तियमेत्ताणि मत्तंडा ॥६११॥

६६ । १३२ ।

अर्थ—मनुष्य लोक के भीतर एक पार्श्व भागमें छयासठ और दोनों पार्श्वभागोंमें इससे दूने चन्द्र तथा इतने प्रमाण ही सूर्य हैं ॥६११॥

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपसे पुष्करार्धद्वीप पर्यन्त क्रमशः २ + ४ + १२ + ४२ + ७२ = (१३२) चन्द्र एवं इतने ही सूर्य हैं । इनका अर्धभाग अर्थात् (१३२ ÷ २ =) ६६ चन्द्र तथा ६६ सूर्य एक पार्श्वभागमें और इतने ही दूसरे पार्श्वभागमें संचार करते हैं ।

मनुष्यलोक स्थित सर्व ग्रह, नक्षत्र और अस्थिर-स्थिर
ताराओंका प्रमाण—

एक्करस-सहस्साणि, होंति गहा सोलसुत्तरा छ-सया ।
रिक्खा तिण्णि सहस्सा, छस्सय-छण्णउदि-अदिरित्ता ॥६१२॥

११६१६ । ३६९६ ।

अर्थ—मनुष्य लोकमें ग्यारह हजार छह सौ सोलह (११६१६) ग्रह और तीन हजार छह सौ छयानबे (३६९६) नक्षत्र हैं ॥६१२॥

अट्ठासीदी लक्खा, चालीस-सहस्स-सग-सयाणि पि ।
होंति हु माणुसखेत्ते, ताराणं कोडकोडीओ ॥६१३॥

८८४०७०००००००००००००००० ।

अर्थ—मनुष्य क्षेत्रमें अठासी लाख चालीस हजार सात सौ कोड़ाकोड़ी अस्थिर तारे हैं ॥६१३॥

पंचाणउदि-सहस्सा, पंच-सया पंचतीस-अब्भहिया ।
खेत्तम्मि माणुसाणं, चेट्ठंते खील - ताराओ ।।६१४।।

९५५३५ ।

अर्थ—मनुष्य क्षेत्रमें पंचानबे हजार पाँच सो पेंतीस स्थिर तारा स्थित हैं ।।६१४।।

मनुष्यलोकके ज्योतिषीदेवोंका एकत्रित प्रमाण—

	द्वीप-समुद्रों के नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारा	
						अस्थिर तारा	स्थिर तारा
१.	जम्बूद्वीप	२	२	१७६	५६	१३३९५० कोड़ाकोड़ी	३६
२.	लवणसमुद्र	४	४	३५२	११२	२६७९०० ,,	१३९
३.	धातकीखण्ड	१२	१२	१०५६	३३६	८०३७०० ,,	१०१०
४.	कालोदसमुद्र	४२	४२	३६९६	११७६	२८१२९५० ,,	४११२०
५.	पुष्करार्धद्वीप	७२	७२	६३३६	२०१६	४[illegible]२[illegible]२०० ,,	५३२३०
	योग	१३२	१३२	११६१६	३६९६	८८४०७०० कोड़ाकोड़ी	९५५३५

ग्रहों की संचरण विधि—

सव्वे ससिणो सूरा, णक्खत्ताणि गहा य ताराणि ।
णिय-णिय-पह-पणिधीसुं पंतीए चरंति णभखंडे ।।६१५।।

अर्थ—चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और तारा, ये सब अपने-अपने पथोंकी प्रणिधियोंके नभ-खण्डोंपर पंक्तिरूपसे संचार करते हैं ।।६१५।।

ज्योतिष देवोंकी मेरु प्रदक्षिणाका निरूपण—

सव्वे कुणंति मेरुं, पदाहिणं जंबुदीव-जोदि-गणा ।
अद्ध - पमाणा धादइसंडे तह पोक्खरद्धम्मि ।।६१६।।

एवं चर-गिहाणं चारो समत्तो ।

अर्थ—जम्बूद्वीपमें सब ज्योतिषी देवोंके समूह मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं, तथा धातकीखण्ड और पुष्करार्धद्वीपमें आधे ज्योतिषी देव मेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥६१६॥

इसप्रकार चर ग्रहोंका चार समाप्त हुआ ।

अढ़ाई द्वीपके बाहर अचर ज्योतिषोंकी प्ररूपणा—

मणुसुत्तरादु परदो, सयंभुरमणो त्ति दीव-उवहीणं ।
अचर - सरूव - ठिदाणं, जोइ - गणाणं परूवेमो ॥६१७॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वतसे आगे स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त द्वीप-समुद्रोंमें अचर स्वरूपसे स्थित ज्योतिषी देवोंके समूहोंका निरूपण करता हूँ ॥६१७॥

मानुषोत्तरसे स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त स्थित चन्द्र-सूर्योंकी
विन्यास विधि—

एत्तो मणुसुत्तर-गिरिंद-प्पहुदि जाव सयंभुरमण-समुद्दो त्ति संठिद-चंदाइच्चाणं विण्णास-विहिं वत्तइस्सामो ।

अर्थ—यहाँसे आगे मानुषोत्तर पर्वतसे लेकर स्वयंभूरमण-समुद्र पर्यन्त स्थित चन्द्र-सूर्योंकी विन्यास-विधि कहता हूँ—

तं जहा—माणुसुत्तर-गिरिंदादो पण्णास-सहस्स-जोयणाणि गंतूण पढम-वलयं[1] होदि । तत्तो परं पत्तेक्कमेक्क-लक्ख-जोयणाणि गंतूण बिदियादि-वलयाणि होंति जाव सयंभुरमण-समुद्दो त्ति । णवरि सयंभुरमण-समुद्दस्स वेदीए पण्णास-सहस्स-जोयणाणिम-पाविय तम्मि पदेसे[2] चरिम-वलयं होदि । एवं सव्व-वलयाणि केत्तिया होंति त्ति उत्ते चोद्दस-लक्ख-जोयणेहि भजिद-जगसेढी पुणो तेवीस-वलएहि परिहीणं होदि । तस्स ठवणा १४००००० रि २३ ।

अर्थ—वह इसप्रकार है—मानुषोत्तर पर्वतसे पचास हजार योजन आगे जाकर प्रथम वलय है । इसके आगे स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त प्रत्येक एक लाख योजन आगे जाकर द्वितीयादिक वलय हैं । विशेष इतना है कि स्वयंभूरमण समुद्रकी वेदीसे पचास हजार योजनोंको न पाकर अर्थात् स्वयंभूरमण समुद्रकी वेदीसे पचास हजार योजन इधर ही उस प्रदेशमें अन्तिम वलय है । इसप्रकार सर्व

---

१. द. ब. क. वलेयं । २. द. ब. क. ज. पवेसं ।

वलय कितने होते हैं ? ऐसा कहनेपर उत्तर देते हैं कि जगच्छ्रेणीमें चौदह लाख योजनोंका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसमेंसे तेईस कम करनेपर समस्त वलयोंका प्रमाण होता है। उसकी स्थापना— (जगच्छ्रेणी ÷ १४००००० यो०) − २३ है।

उपर्युक्त वलयोंमें स्थित चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण—

एदाणं वलयाणं संठिद-चंदाइच्च-पमाणं वत्तइस्सामो - पोक्खरवर - दीवद्धस्स पढम-वलए संठिद-चंदाइच्चा पत्तेक्कं चउवालब्भहिय - एक्क - सयं होदि ।१४४।१४४। पुक्खरवर-णीररासिस्स पढम-वलए संठिद-चंदाइच्चा पत्तेक्कं अट्ठासोदि-अब्भहिय-दोण्णि-सयमेत्तं होदि ।

हेट्ठिम-दीवस्स वा रयणायरस्स वा पढम-वलए संठिद-चंदाइच्चादो तदणंतरो-वरिम-दीवस्स वा णीररासिस्स वा पढम - वलए संठिद - चंदाइच्चा पत्तेक्कं दुगुण-दुगुणं होऊण गच्छइ जाव सयंभुरमण-समुद्दो त्ति । तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—

अर्थ—इन वलयोंमें स्थित चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण कहते हैं—पुष्करार्धद्वीपके प्रथम वलयमें स्थित चन्द्र तथा सूर्य प्रत्येक एक सौ चवालीस (१४४ — १४४) हैं। पुष्करवर समुद्रके प्रथम वलयमें स्थित चन्द्र एवं सूर्य प्रत्येक दो सौ अठासी (२८८ — २८८) प्रमाण हैं। इसप्रकार अधस्तन द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम वलयमें स्थित चन्द्र-सूर्योंकी अपेक्षा तदनन्तर उपरिम द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम वलयमें स्थित चन्द्र और सूर्य प्रत्येक स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त दुगुने-दुगुने होते चले गये हैं। उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—

अन्तिम समुद्रके प्रथम-वलय स्थित चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण—

सयंभुरमणसमुद्दस्स पढम-वलए संठिद - चंदाइच्चा अट्ठावीस-लक्खेण भजिद-णव-सेढीओ पुणो चउ-रूव-हिद-सत्तावीस-रूवेहिं अब्भहियं होइ । तच्चेदं । [1] $\frac{-९}{२८००००० }$ । $\frac{२७}{४}$ ।

अर्थ—स्वयंभूरमण समुद्रके प्रथम वलयमें स्थित चन्द्र और सूर्य प्रत्येक अट्ठाईस लाखसे भाजित नौ जगच्छ्रेणी और चार रूपोंसे भाजित सत्ताईस रूपोंसे अधिक हैं। वह यह है— (जगच्छ्रेणी ९ ÷ २८ लाख) + $\frac{२७}{४}$ ।

---

१. द. ब. २८००००० । $\frac{२७}{४}$ ।

प्रत्येक द्वीप-समुद्रके प्रथम-वलयके चन्द्र-सूर्य प्राप्त करनेकी विधि—

पोक्खरवरदीवद्ध-पहुदि जाव सयंभुरमणसमुद्दो त्ति पत्तेक्क-दीवस्स वा उवहिस्स वा पढम-वलय-संठिद-चंदाइच्चाणं आणयण-हेदु इमा सुत्त-गाहा—

पोक्खरवरुवहि-पहुदि, उवरिम-दीओवहीण विक्खंभं ।
लक्ख-हिदं णव-गुणिदं, सग-सग-दीउवहि-पढम-वलय-फलं ।।६१८।।

अर्थ—पुष्करार्धद्वीपसे लेकर स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त प्रत्येक द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम-वलयमें स्थित चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण लानेके लिए यह गाथा-सूत्र है—

पुष्करवर समुद्र आदि उपरिम द्वीप समुद्रोंके विस्तारमें एक लाखका भाग देकर जो लब्ध प्राप्त हो उसे नौसे गुणा करनेपर अपने-अपने द्वीप-समुद्रोंके प्रथम-वलयमें स्थित चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण प्राप्त होता है ।।६१८।।

विशेषार्थ—उपर्युक्त नियमानुसार तीसरे समुद्र, चतुर्थ द्वीप एवं स्वयंभूरमणसमुद्रके प्रथम वलय स्थित चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण इसप्रकार है—

(१) तृतीय पुष्करवरसमुद्रका विस्तार ३२ लाख योजन है । इसके प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण ($\frac{3200000 \times 9}{100000}$)=२८८ — २८८ है ।

(२) वारुणीवर नामक चतुर्थ द्वीपका विस्तार ६४ लाख योजन है । इसके प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण ($\frac{6400000 \times 9}{100000}$)=५७६ — ५७६ है ।

(३) स्वयंभूरमण समुद्रका विस्तार= $\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{28}$ +७५००० है । इसके प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्योंका पृथक्-पृथक् प्रमाण [$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{28}$ +७५०००]× $\frac{9}{100000}$ ।

$$= \frac{9\ \text{जगच्छ्रेणी}}{2800000} + \frac{75000 \times 9}{100000} = \frac{9\ \text{जगच्छ्रेणी}}{2800000} + \frac{27}{4} \text{ है ।}$$

प्रत्येक वलयमें चयका प्रमाण—

विचयं पुण पडिवलयं पडि पत्तेक्कं चउत्तर - कमेण गच्छइ जाव सयंभुरमण-समुद्दं त्ति । णवरि दीवस्स वा उवहिस्स वा दुगुण-जाद-पढम-वलय-ट्ठाणं मोत्तूण सव्वत्थ चउरुत्तर-कमं वत्तव्वं ।

अर्थ—यहाँ पर चय प्रत्येक वलयके प्रत्येक स्थानमें चार-चार उत्तर क्रमसे स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त चला गया है। विशेष इतना है कि द्वीप अथवा समुद्रके प्रथम वलय पर जहाँ राशि दुगुनी होती है, उसे छोड़कर सर्वत्र वृद्धिका क्रम चार-चार जानना चाहिए।

विशेषार्थ– जैसे—मानुषोत्तर पर्वतसे बाहर जो पुष्करार्ध द्वीप है, उसके प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्यकी संख्या १४४–१४४ है। उसके दूसरे, तीसरे आदि वलयोंमें चार-चारकी वृद्धि होते हुए क्रमशः १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२, १७६, १८० .... हैं। इसप्रकार यह वृद्धि पुष्करार्ध द्वीपके अन्तिम वलय पर्यन्त होगी और इस द्वीपके आगे पुष्करवरसमुद्रके प्रथम वलयमें राशि दुगुनी अर्थात् ($१४४ \times २ =$) २८८ हो जायगी। यह राशि प्रत्येक द्वीप-समुद्रके प्रथम वलयमें दुगुनी होती है इसीलिए चय-वृद्धिके क्रममें इस प्रथम वलयको छोड़ दिया गया है।

मानुषोत्तर पर्वतके आगे प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्योंके अन्तरालका प्रमाण—

माणुसुत्तरगिरिदादो पण्णास-सहस्स-जोयणाणि गंतूण पढम-वलयम्मि ठिद-चंदाइच्चाणं विच्चालं सत्तेताल-सहस्स-णव-सय-चोद्दस-जोयणाणि पुणो छहत्तरि-जाव-सदंसा तेसीदि-जुद-एक्क-सय-रूवेहिं भजिदमेत्तं होदि। तं चेदं ४७९१४। $\frac{१७६}{१८३}$।

अर्थ– मानुषोत्तर पर्वतसे आगे पचास हजार योजन जाकर प्रथम-वलयमें चन्द्र-सूर्योंका अन्तराल सैंतालीस हजार नौ सौ चौदह योजन और एक सौ तेरासीसे भाजित एक सौ छयत्तर भाग प्रमाण अधिक है। वह यह है—$४७९१४\frac{१७६}{१८३}$।

विशेषार्थ—मानुषोत्तरपर्वतसे ५० हजार योजन आगे जाकर प्रथम-वलय है। जिसमें १४४ चन्द्र और १४४ सूर्य स्थित हैं। मानुषोत्तर पर्वतका सूची-व्यास ४५ लाख योजन है। इसमें दोनों पार्श्वभागोंका ५०–५० हजार (१ लाख) योजन वलय-व्यास मिला देनेपर (४५ लाख + १ लाख) = ४६ लाख योजन सूची-व्यास होता है। इसकी बादर परिधि (४६०००००×३) = १३८००००० लाख है। इसमें वलय-व्यास सम्बन्धी चन्द्र-सूर्योंके प्रमाण (१४४ + १४४) = २८८ का भाग देकर दोनोंके बिम्ब विस्तारका प्रमाण घटा देनेपर चन्द्रसे चन्द्रका और सूर्यसे सूर्यका अन्तर प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

$\frac{१३८०००००}{२८८} - \frac{१०४}{६१} = \frac{२६३०५३१४}{५४९} = ४७९१४\frac{१७६}{१८३}$ योजन अन्तर प्रमाण है।

विद्वानों द्वारा विचारणीय—

ग्रन्थकारने चन्द्र-सूर्यके बिम्ब व्यास को एक साथ जोड़कर ($\frac{५६}{६१} + \frac{४८}{६१}$) = $\frac{१०४}{६१}$ योजन घटाकर अन्तर-प्रमाण निकाला है किन्तु चन्द्र एवं सूर्य बिम्बोंका व्यास एक सदृश नहीं है, अतः जितना अन्तर चन्द्रका चन्द्रसे है उतना ही सूर्यका सूर्यसे नहीं हो सकता है। यथा—

(१३८००००० / १४४ = ५७५००० / ६) — ९६/१० = ९५८२४ योजन प्रथम वलयमें चन्द्रसे चन्द्रका अन्तर है और ५७५००० / ६ — ४६/६ = ९५८२५⅓ योजन वहांके एक सूर्यसे दूसरे सूर्यका अन्तर प्रमाण है।

मानुषोत्तरके आगे द्वितीय वलय स्थित चन्द्र-सूर्योंके
अन्तरका प्रमाण—

विदिय - वलए चंदाइच्चाणमंतरं अट्ठ तालसहस्स-छ-सय-छादाला जोयणाणि पुणो इगि-सय-तीस-जुदाणं दोण्णि सहस्सा कलाओ होदि दोण्णि-सय-सत्तावण्ण-रूवेणब्भहिय-दोण्णि-सहस्सेण हरिदमेत्तं होदि। तं चेदं। ४८६४६। २१३०/२२५७। एवं णेदव्वं जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति।

अर्थ—द्वितीय वलयमें चन्द्र-सूर्योंका अन्तर अड़तालीस हज़ार छह सौ छयालीस योजन और दो हज़ार दो सौ सत्तावनसे भाजित दो हज़ार एक सौ तीस कला अधिक है। वह यह है—४८६४६ २१३०/२२५७। इसप्रकार स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त ले जाना चाहिए।

विशेषार्थ—प्रत्येक वलयमे चन्द्र-सूर्योंका वृद्धि-चय ४ — ४ है, अतः द्वितीय वलयमें इनका प्रमाण (१४८+१४८)=२९६ है। प्रथम वलयसे यह दूसरा वलय एक लाख योजन आगे जाकर है। वहां प्रत्येक पार्श्वभागका वलय व्यास एक-एक लाख योजन है अतः दूसरे वलयका सूची-व्यास (४६ लाख+२ लाख)=४८ लाख योजन है। पूर्वोक्त नियमानुसार यहां चन्द्र-सूर्यके अन्तरका प्रमाण इसप्रकार है—

(४८०००००×३ / २९६ = १८००००० / ३७) — १०४/९६ = १०९७८६९१५२ / २२५७ = ४८६४६ २१३०/२२५७ योजन।

स्वयंभूरमणसमुद्रके प्रथम वलयमें चन्द्र-सूर्यके अन्तरका प्रमाण—

तत्थ अंतिम-वियप्पं वत्तइस्सामो—सयंभूरमण-समुद्दस्स-पढम-वलए एक्केक्क-चंदाइच्चाणमंतरं तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-इगितीस-जोयणाणि अंसा पुण पण्णारस-जुदेक्क-सयं हारो तेसीदि-जुदेक्क-सय-रूवमेत्तेणब्भहियं होदि, पुणो रूवस्स असंखेज्जभागेणब्भहियं होदि। तं चेदं ३३३३१। भा ११५/१८३। एवं सयंभूरमणसमुद्दस्स बिदिय - पह - प्पहुदि - दुचरिम-पहंतं विसेसाहिय पक्खेवेण जाणिय वत्तव्वं।

अर्थ—उनमेंसे अन्तिम विकल्प कहते हैं—स्वयंभूरमण—समुद्रके प्रथम वलयमें प्रत्येक चन्द्र-सूर्यका अन्तर तैंतीस हज़ार तीन सौ इकतीस योजन और एक सौ तेरासीसे भाजित एक सौ पन्द्रह भाग अधिक तथा असंख्यातसे भाजित एक रूप अधिक है। वह यह है—३३३३१ ११५/१८३।

इसप्रकार स्वयंभूरमणसमुद्रके द्वितीय पथसे लेकर द्विचरम पथ पर्यन्त विशेष अधिक रूपसे होता गया है जिसे जानकर कहना चाहिए।

विशेषार्थ—स्वयंभूरमणसमुद्रके प्रथम वलयका सूचीव्यास ($\frac{ज}{१४}$ — १५००००) है और इस वलयकी स्थूल-परिधिका प्रमाण ३ ($\frac{ज}{१४}$ — १५०००० + १०००००) है। इस वलयके चन्द्रोंका प्रमाण ($\frac{ज ९}{२८ लाख}$ + $\frac{२७}{४}$) है। सूर्योंका प्रमाण भी इतना ही है अतः इसे दुगुना करने पर २ ($\frac{ज ९}{२८ लाख}$ + $\frac{२७}{४}$) प्राप्त होता है। चन्द्र-सूर्यके बिम्ब विस्तारका प्रमाण ($\frac{५६}{६१}$ + $\frac{४८}{६१}$) = $\frac{१०४}{६१}$ योजन है। यहाँ पूर्वोक्त नियमानुसार चन्द्र-सूर्यके अन्तरका प्रमाण इसप्रकार है—

$$\frac{३ (\frac{ज}{१४} - १५००००+१०००००)}{२ (\frac{ज ९}{२८००००००} + \frac{२७}{४})} - \frac{१०४}{६१}$$

$$या \; (\frac{३ ज}{१४} \times \frac{१४ लाख}{९ ज}) - \frac{१०४}{६१}$$

$$या \; (\frac{३}{१४} \times \frac{१४०००००}{९}) - \frac{१०४}{६१} = ३३३३१\frac{११५}{१८३} \; योजन ।$$

यहाँ ज से ज का, ३ से ९ का और २ से २८ लाखका अपवर्तन हुआ है। असंख्यात संख्या रूप जगच्छ्रेणीकी तुलनामें १५००००, १ लाख और $\frac{२७}{४}$ नगण्य हैं अतः छोड़ दिए गये हैं।

स्वयंभूरमणसमुद्रके अन्तिम वलयमें चन्द्र-सूर्यके
अन्तरका प्रमाण—

एवं सयंभूरमणसमुद्दस्स चरिम - वलयम्मि चंदाइच्चाणं विच्चालं भण्णमाणे छादाल-सहस्स-एक्क-सय-बावण्ण-जोयण-पमाणं होदि पुणो बारसाहिय-एक्क-सय-कलाओ-हारो तेणउदि—रूवेणब्भहिय-सत्त-सयमेत्तं होदि। तं चेदं ४६१५२ धण अंसा $\frac{११२}{७९३}$।

एवं अचर-जोइगण-परूवणा समत्ता।

अर्थ—इसप्रकार स्वयंभूरमणसमुद्रके अन्तिम वलयमें चन्द्र-सूर्योंका अन्तराल कहनेपर छयालीस हजार एक सौ बावन योजन प्रमाण और सातसौ तेरानबैसे भाजित एक सौ बारह कला अधिक है। वह यह है—४६१५२$\frac{११२}{७९३}$।

विशेषार्थ—स्वयंभूरमणसमुद्रका बाह्य सूचीव्यास एक राजू अर्थात् $\frac{\text{ज}}{७}$ है। इसमें १ लाख जोड़कर ३ से गुणित करनेपर वहाँकी स्थूल परिधिका प्रमाण होता है। यथा—

$३ \left(\frac{\text{ज}}{७} + १००००० \right)$। असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें चन्द्र-सूर्योंके समस्त वलयोंका प्रमाण $\left(\frac{\text{ज}}{१४ \text{ लाख}} — २३ \right)$ है और इन समस्त वलयोंका $\frac{१}{२}$ भाग अर्थात् $\left(\frac{\text{ज}}{२८ \text{ लाख}} — \frac{२३}{२} \right)$ प्रमाण स्वयंभूरमण समुद्रके वलयोंका है। यहाँके चन्द्र-सूर्योंमें प्रत्येकका प्रमाण $२ \left(\frac{\text{ज } ९}{२८ \text{ लाख}} + \frac{२७}{४} \right)$ है।

यहाँके अन्तिम वलयमें चन्द्र-सूर्योंका प्रमाण प्राप्त करनेका सूत्र है—आदि + (वलय-संख्या — १) × चय।

$$\text{अर्थात्}\ २ \left(\frac{\text{ज } ९}{२८००००००} + \frac{२७}{४} \right) + \left(\frac{\text{ज}}{२८००००००} — \frac{२३}{२} — \frac{१}{१} \right) \times ४$$

$$\text{या}\ २ \left(\frac{९ \text{ ज}}{२८ \text{ लाख}} + \frac{२७}{४} \right) + \left(\frac{\text{ज}}{२८ \text{ लाख}} — \frac{२५}{२} \right) \times ४$$

$$\text{या}\ २ \left(\frac{९ \text{ ज}}{२८ \text{ लाख}} + \frac{२७}{४} \right) + \left(\frac{४ \text{ ज}}{२८ \text{ लाख}} — ५० \right)$$

$$\text{या}\ \left(\frac{९ \text{ ज}}{१४००००००} + \frac{२७}{४} \right) + \left(\frac{४ \text{ ज}}{१४००००००} — ५० \right)$$

या $\frac{१३ \text{ ज}}{१४००००००}$ यह अन्तिम वलयके समस्त चन्द्र-सूर्योंका प्रत्येकका प्रमाण है। इस प्रमाण का स्वयंभूरमणसमुद्रकी स्थूल परिधिमें भाग देकर $\frac{१०४}{६१}$ यो० घटा देनेसे अन्तिम वलयमें चन्द्र-सूर्योंके अन्तरका प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यथा—

$$\frac{३ \left(\frac{\text{ज}}{७} + १००००० \right)}{\frac{१३ \text{ ज}}{१४००००००}} — \frac{१०४}{६१}\ \text{या}\ \frac{३ \text{ ज}}{७} \times \frac{१४०००००}{१३ \text{ ज}} — \frac{१०४}{६१}\ \text{यो०}$$

$$\text{या}\ \frac{३}{१} \times \frac{२ \text{ लाख}}{१३} — \frac{१०४}{६१}\ \text{या}\ \frac{६००००००}{१३} — \frac{१०४}{६१}\ \text{यो०}$$

$= \frac{३६५९९८६४८}{७९३} = ४६१५२$[illegible] योजन अन्तराल प्रमाण है।

इसप्रकार अचर ज्योतिर्गणकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

विशेष द्रष्टव्य
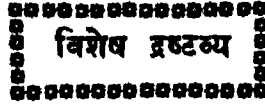
सपरिवार चन्द्रोंके प्राप्त करनेकी प्रक्रियाका दिग्दर्शन—

असंख्यात द्वीप-समुद्रमें चन्द्रादि ज्योतिष बिम्ब राशियोंको प्राप्त करने हेतु सर्व प्रथम असंख्यात द्वीप-समुद्रोंकी संख्या निकाली जाती है। यह संख्या गच्छका प्रमाण प्राप्त करनेमें कारण भूत है और गच्छ चन्द्रादिक राशियोंका प्रमाण निकालनेके लिए उपयोगी है।

असंख्यात द्वीप-समुद्रोंकी संख्याका प्रमाण—

द्वीप-समुद्रोंकी संख्या निकालनेके लिए रज्जुके अर्धच्छेद प्राप्त करना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि ६ अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंसे हीन रज्जुके अर्धच्छेदोंका जितना प्रमाण है उतना ही प्रमाण द्वीप-समुद्रोंका है।

राजूके अर्धच्छेद निकालनेकी प्रक्रिया—

सुमेरु पर्वतके मध्यसे प्रारम्भकर स्वयंभूरमण समुद्रके एक पार्श्वभाग पर्यन्तका क्षेत्र अर्ध-राजू प्रमाण है, इसलिए राजूका प्रथमबार आधा करनेपर प्रथम अर्धच्छेद जम्बूद्वीपके मध्य (केन्द्र) में मेरु पर पड़ता है। इस अर्ध राजूका भी अर्धभाग अर्थात् दूसरी बार आधा किया हुआ राजू स्वयं-भूरमण द्वीपकी परिधिसे ७५००० योजन आगे जाकर स्वयंभूरमण समुद्रमें पड़ता है। तीसरी बार आधा किये हुए राजूका प्रमाण स्वयंभूरमण द्वीपमें अभ्यन्तर परिधिसे मेरुकी दिशामें कुछ विशेष आगे जाकर प्राप्त होता है। इसप्रकार उत्तरोत्तर अर्धच्छेद क्रमशः मेरुकी ओर द्वीप-समुद्रोंमें अर्ध-अर्धरूपसे पतित होता हुआ लवणसमुद्र पर्यन्त पहुँचता है। जहाँ राजूके दो अर्धच्छेद पड़ते हैं।

(देखिए त्रिलोकसार गा० ३५८)

जम्बूद्वीपकी वेदीसे मेरुके मध्य पर्यन्त ५०००० योजन और उसी वेदीसे लवणसमुद्रमें द्वितीय अर्धच्छेद तक ५० हजार योजन अर्थात् जम्बूद्वीपसे अभ्यन्तरकी ओर के ५० हजार योजन और बाह्यके ५० हजार योजन ये दोनों मिलकर १ लाख योजन होते हैं जिनको उत्तरोत्तर १७ बार अर्ध-अर्ध करनेके पश्चात् एक योजन अवशेष रहता है। इस १ योजनके ७६८००० अंगुल होते हैं। जिन्हें उत्तरोत्तर १७ बार अर्ध-अर्ध करनेपर एक अंगुल प्राप्त होता है। एक अंगुलके अर्धच्छेद पल्यके अर्धच्छेदोंके वर्गके बराबर होते हैं। इसप्रकार जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद (१७+१९+१)=३७ अधिक पल्यके अर्धच्छेदोंके वर्ग अथवा संख्यात अधिक पल्यके अर्धच्छेदोंके वर्गके सदृश होते हैं।

(त्रिलोकसार गाथा ६८)

तिलोयपण्णत्ती गाथा १ । १३१ तथा त्रिलोकसार गाथा १०८ की टीकानुसार जगच्छ्रेणी (७ राजू) के अर्धच्छेदोंकी संख्या इसप्रकार है—

$\frac{\text{पल्यके अर्ध०}}{\text{असंख्यात}}$ × साधिक पल्यके अर्धच्छेद × पल्यके अर्धच्छेद × ३ ।

जगच्छ्रेणी ७ राजू लम्बी है जिसमें समस्त द्वीप-समुद्रोंको अपने गर्भमें धारण करने वाले तिर्यग्लोकका आयाम एक राजू है । ७ राजूका उत्तरोत्तर तीन बार अर्ध-अर्ध करनेपर एक राजू प्राप्त होता है अतः जगच्छ्रेणीके उपर्युक्त अर्धच्छेदोंमेंसे ये ३ अर्धच्छेद घटा देनेपर एक रज्जुके अर्धच्छेदोंका प्रमाण इसप्रकार प्राप्त होता है—

$\left\{ \frac{\text{पल्यके अर्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}} \times (\text{पल्यके अर्धच्छेद})^2 \times 3 \right\} - 3$ ।

द्वीप-समुद्रोंकी संख्याका प्रमाण—

एक राजूके उपर्युक्त अर्धच्छेदोंके प्रमाणमेंसे जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद (अर्थात् संख्यात अधिक पल्यके अर्धच्छेदोंका वर्ग) कम कर देनेपर द्वीप-समुद्रोंकी संख्या प्राप्त हो जाती है । यथा—

$\left(\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}} \times \text{प० छे०}^2 \times 3 - 3 \right)$—संख्यात (अर्थात् ६) अधिक प० छे०² = द्वीप और सागरोंका प्रमाण—

गच्छका प्रमाण—

उपर्युक्त संख्यावाले द्वीप-समुद्रोंमें ज्योतिष्कोंका विन्यास ज्ञातकर उन ज्योतिषी देवोंकी संख्या प्राप्त की जाती है, इसलिए जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंमें ६ अर्धच्छेद मिलानेपर जो लब्ध प्राप्त हो उसे रज्जुके अर्धच्छेदोंमेंसे घटा देनेपर जो शेष रहता है वही प्रमाण ज्योतिषी-बिम्बोंकी संख्या निकालने हेतु गच्छका प्रमाण कहलाता है ।

तृतीय समुद्रको आदि लेकर स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त गच्छ-प्रमाण—

एत्तो चंदाण सपरिवाराणमाणयण - विहाणं वत्तइस्सामो । तं जहा—जंबूदीवादि-पंच-दीव-समुद्दे मोत्तूण तदिय-समुद्दादि कादूण जाव—सयंभूरमण-समुद्दो त्ति एदाण-माणयण किरियं ताव उच्चयदे—तदिय-समुद्दम्मि गच्छो बत्तीस, चउत्थ-दीवे गच्छो चउसट्ठी, उवरिम-समुद्दे गच्छो अट्ठावीसुत्तर-सयं । एवं दुगुण-दुगुण-कमेण गच्छा गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।

अर्थ—यहाँसे आगे चन्द्रोंको सपरिवार लानेका विधान कहता हूँ। वह इसप्रकार है— जम्बूद्वीपादिक पाँच द्वीप-समुद्रोंको छोड़कर तीसरे समुद्रको आदि करके स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त इनके लानेकी प्रक्रिया कहते हैं—तृतीय समुद्रमें बत्तीस गच्छ, चतुर्थ द्वीपमें चौंसठ गच्छ, और इससे आगेके समुद्रमें एकसौ अट्ठाईस गच्छ, इसप्रकार स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त गच्छ दूने-दूने क्रमसे चले जाते हैं।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीपादि तीन द्वीप और लवणसमुद्रादि दो समुद्र इन पाँच द्वीप-समुद्रोंके चन्द्र प्रमाणका निरूपण किया जा चुका है अतः इनको छोड़कर शेष द्वीप-समुद्रोंका गच्छ इसप्रकार है—

क्रमांक	समुद्र एवं द्वीप	गच्छ प्रमाण
३ रा	पुष्करवर समुद्र	३२
४ था	वारुणिवर द्वीप	६४
५ वाँ	वारुणिवर समुद्र	१२८
६ ठा	क्षीरवर द्वीप	२५६
७ वाँ	क्षीरवर समुद्र	५१२

तदनुसार गच्छकी संख्या दूने-दूने क्रमसे स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त वृद्धिगत होती जाती है।

तृतीय समुद्रसे अन्तिम समुद्र पर्यन्तकी गुण्यमान राशियाँ—

संपहि एदेहि गच्छेहि पुध-पुध गुणिज्जमाण-रासि-परूवणा कीरदे—तदिय-समुद्दे बे-सयमट्ठासीदि-उवरिम-दीवे तत्तो दुगुणं, एवं दुगुण-दुगुण-कमेण गुणिज्जमाण-रासीओ गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दं पत्ताओ त्ति। संपहि अट्ठासीदि-विसदेहि[1] गुणिज्जमाण-रासीओ ओवट्टिय[2] लद्धेण सग-सग-गच्छे गुणिय अट्ठासीदि-बे-सदमेव सव्व-गच्छाणं गुणिज्जमाणं कादव्वं। एवं कदे सव्व-गच्छा अण्णोण्णं पेक्खिदूण चउगुण-कमेण आवट्ठी जादा। संपइ चत्तारि-रूवमादिं कादूण [3]चदुरुत्तर-कमेण गव-संकलणाए आणयणे कीरमाणे पुव्विल्ल-गच्छेहिंतो संपहिय-गच्छा रूऊणा होंति, दुगुण-जाद-ट्ठाणे चत्तारि-रूव-

१. द. ब. क. ज. बीसदे। २. द. ब. क. ज. दिवड्ढिय। ३. द. ब. क. ज. चदुत्तर।

वड्ढीए अभावादो । एदेहिं गच्छेहिं गुणिज्जमाण-मज्झिम-धणाणि चउसट्ठि—रूवमादिं कादूण दुगुण-दुगुण-कमेण गच्छंति जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति ।

अर्थ—अब इन गच्छोंसे पृथक्-पृथक् गुण्यमान राशियोंकी प्ररूपणा की जाती है । इनमेंसे तृतीय समुद्रमें दो सौ अठासी और आगेके द्वीपमें इससे दुगुनी गुण्यमान राशि है, इसप्रकार स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त गुण्यमान राशियाँ दुगुने-दुगुने क्रमसे चली जाती हैं । अब दो सौ अठासीसे गुण्यमान राशियोंका अपवर्तन करके लब्ध राशिसे अपने-अपने गच्छोंको गुणा करके सब गच्छोंकी दो सौ अठासी ही गुण्यमान राशि करना चाहिए । इसप्रकार करनेपर सब गच्छ परस्परकी अपेक्षा चौगुने क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं । इस समय चारको आदि करके चार-चार उत्तर क्रमसे गत संकलनाके लाते समय पूर्वोक्त गच्छोंसे सांप्रतिक गच्छ एक कम होते हैं, क्योंकि दुगुने हुए स्थानमें चार रूपोंकी वृद्धिका अभाव है । इन गच्छोंसे गुण्यमान मध्यम धन चौंसठ रूपको आदि करके स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त दुगुने-दुगुने होते गये हैं ।

विशेषार्थ—पद या स्थानको गच्छ कहते हैं । जिस द्वीप या समुद्रमें चन्द्र-सूर्यके जितने वलय होते हैं, वही उनकी गच्छ-राशि होती है । आदि, मुख या प्रभव ये एकार्थ वाची हैं । यहाँ मुख (प्रत्येक द्वीप या समुद्रके प्रथम वलयके चन्द्र प्रमाण) को ही गुण्यमान राशि कहा गया है । जैसे तृतीय (पुष्करवर) समुद्रमें ३२ वलय हैं अतः वहाँका गच्छ ३२ है । इस समुद्रके प्रथम वलयमें २८८ चन्द्र हैं अतः यहाँ गुण्यमान राशि २८८ है । इसीप्रकार चतुर्थ द्वीपमें वलय ६४ और प्रथमवलयमें चन्द्र प्रमाण ५७६ है अतः यहाँका गच्छ ६४ और गुण्यमान राशि ५७६ है । तृतीय समुद्रके गच्छ और गुण्यमान राशिसे चतुर्थ द्वीपकी गच्छ राशि एवं गुण्यमान राशिका प्रमाण दूना है । यही क्रम अन्तिम समुद्र पर्यन्त जानना चाहिए ।

अब आचार्य सभी गच्छोंको परस्परकी अपेक्षासे चतुर्गुण क्रमसे स्थापित करना चाहते हैं । इसके लिए सभी गुण्यमान राशियोंको २८८ से ही अपवर्तित कर जो लब्ध प्राप्त हो उससे अपने-अपने गच्छोंको गुणित करने पर सब गच्छ परस्परकी अपेक्षा चौगुने क्रमसे अवस्थित हो जाते हैं । जैसे चतुर्थ द्वीपकी गुण्यमान राशि ५७६ है । इसे २८८ से अपवर्तित करनेपर ($\frac{५७६}{२८८}$)=२ लब्ध प्राप्त हुआ । इससे इसी द्वीपके गच्छको गुणित करनेपर (६४×२)=१२८ प्राप्त हुए जो तृतीय समुद्रके गच्छसे चौगुना (३२×४=१२८) है ।

इसीप्रकार अन्त-पर्यन्त जानना चाहिए । यथा—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्र०	समुद्र एवं द्वीप	गुण्यमानराशि ÷ भाजक-राशि =	लब्ध	लब्धराशि × गच्छ =	परस्परमें चौगुना गच्छ
३ रा	पुष्करवर स०	२८८ ÷ २८८ =	१	१ × ३२ =	३२
४ था	वारुणिवर-द्वीप	५७६ ÷ २८८ =	२	२ × ६४ =	१२८
५ वाँ	वारुणि० समुद्र	११५२ ÷ २८८ =	४	४ × १२८ =	५१२
६ ठा	क्षीरवर द्वीप	२३०४ ÷ २८८ =	८	८ × २५६ =	२०४८
७ वाँ	क्षीरवर समुद्र	४६०८ ÷ २८८ =	१६	१६ × ५१२ =	८१९२

पदोंमें होनेवाली समान वृद्धि या हानिको प्रचय कहते हैं। यथा—तृतीय समुद्रमें ३२ वलय हैं और उसके प्रथम वलयमें २८८ चंद्र हैं। चय वृद्धि द्वारा दूसरे वलयमें २९२, तीसरे में २९६ इत्यादि, वृद्धि होते-होते अन्तिम वलयमें चन्द्र संख्या ५७२ प्राप्त होगी और चतुर्थ द्वीपके प्रथम वलयमें यह संख्या (२८८ की दूनी) ५७६ हो जायगी। किन्तु इससमय यहाँ गच्छ ३२ न होकर ३१ ही होगा। क्योंकि दुगुने हुए स्थानमें प्रचय वृद्धिका अभाव है।

मध्यमधन—संकलन सम्बन्धी गच्छकी मध्य संख्यापर वृद्धिका जो प्रमाण आता है वह मध्यमधन कहलाता है। गच्छोंके उत्तरोत्तर दुगने रूपसे बढ़ते जानेपर यह मध्यमधन भी द्विगुणित होता जाता है। यथा—

तृतीय समुद्रका गच्छ ३२ होनेसे उसका मध्यमधन सोलहवें स्थान (पद) पर रहता है क्योंकि प्रथममें कोई वृद्धि नहीं है, अतएव ३१ पद बचते हैं। इनमें १६ वाँ मध्य पद हो जानेसे उसकी वृद्धि (१६ × ४) = ६४ होती है। जिसकी सारणी इसप्रकार है—

[सारणी अगले पृष्ठ पर देखिए]

गच्छ पद संख्या —	गच्छका मान	पद संख्या —	मान
१	४	१७	६८
२	८	१८	७२
३	१२	१९	७६
४	१६	२०	८०
५	२०	२१	८४
६	२४	२२	८८
७	२८	२३	९२
८	३२	२४	९६
९	३६	२५	१००
१०	४०	२६	१०४
११	४४	२७	१०८
१२	४८	२८	११२
१३	५२	२९	११६
१४	५६	३०	१२०
१५	६०	३१	१२४
१६	६४	मध्यमधन—१६ वें पदपर वृद्धिका प्रमाण	

उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट है कि तृतीय समुद्रमें गच्छ ३२ होनेपर मध्यम धन ६४ होता है। चतुर्थ द्वीपमें गच्छ ६४ है अतः वहाँ ३२ वें पद पर मध्यमधन स्वरूप यह वृद्धिका प्रमाण १२८ होता है। यह १२८ मध्यमधन, पूर्ववर्ती ६४ मध्यम धनसे दुगुना है। इसीप्रकार परवर्ती प्रत्येक समुद्र-द्वीपादिके मध्यमधन उत्तरोत्तर द्विगुणित प्रमाणसे वृद्धिगत होते जाते हैं।

ऋणराशि—

पुणो गच्छ-समीकरणट्ठं सव्व-गच्छेसु एगेग - रूव - पक्खेवो[1] कायव्वो। एवं काढूण चउसट्ठि-रूवेहि मज्झिम-धणाणिमोवट्टिय[2] लद्धेण सग-सग-गच्छे गुणिय सव्व-गच्छाणि चउसट्ठि-रूवाणि गुणिज्जमाणत्तणेण ठवेदव्वाणि। एवं कदे सव्व-गच्छा संपहि

१. द. ब. क. ज. पक्खेण। २. द. ब. क. धणाणीमोवट्टीय।

रिण-रासिस्स पमाणं उच्चदु—एग-रूवमादिं कादूण गच्छं पडि दुगुण-दुगुण-कमेण जाव सयंभूरमणसमुद्दो त्ति गद-रिण-रासि होदि ।

अर्थ—पुनः गच्छोंके समीकरणके लिए सब गच्छोंमें एक-एक रूपका प्रक्षेप करना चाहिए। ऐसा करनेके पश्चात् मध्यमधनोंका चौंसठसे अपवर्तन करनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उससे अपने-अपने गच्छोंको गुणा करके सब गच्छोंकी गुण्यमान राशिके रूपमें चौसठ रूपोंको रखना चाहिए। ऐसा करनेपर अब सर्व गच्छोंकी ऋण-राशिका प्रमाण कहता हूँ—

एक रूपको आदि करके गच्छके प्रति (प्रत्येक गच्छमें) दूने-दूने क्रमसे स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त ऋण राशि गई है।

विशेषार्थ— समीकरण—समीकरणका तात्पर्य है दो या दो से अधिक राशियोंमें सम्बन्ध दर्शानेवाला पद अथवा सूत्र—

यहाँ गच्छोंके समीकरणके लिए सब गच्छोंमें एक-एक रूपका प्रक्षेप करना है। उसका अर्थ इसप्रकार है—पुष्करार्ध द्वीपके प्रथम वलयमें १४४ चन्द्र हैं और इससे दूने (१४४×२) चन्द्र तृतीय समुद्रके प्रथम वलयमें, इससे दूने (१४४ × २ × २) चन्द्र चतुर्थद्वीपके प्रथम वलयमें हैं।

विवक्षित द्वीप-समुद्रके प्रथम वलयकी चन्द्र संख्या प्राप्त करनेके लिए विवक्षित द्वीप-समुद्रकी संख्याका मान 'क' मान लिया गया है अतः इसका सूत्र इसप्रकार होगा—

विवक्षित द्वीप-समुद्रके प्रथम वलयकी चन्द्र संख्या $= १४४ \times २^{(क — २)}$

यथा—१० वाँ द्वीप विवक्षित है—क = १०

१० वें द्वीपके प्रथम वलयमें चन्द्र संख्या $= १४४ \times २^{(१० — २)}$

$= १४४ \times २^{८}$ ।

गच्छ, प्रचय एवं आदिधन आदिके लक्षण—

गच्छ—श्रेणीके पदोंकी संख्याको अथवा जितने स्थानोंमें अधिक-अधिक होता जाय उन सब स्थानोंको पद या गच्छ कहते हैं। जैसे—तृतीय समुद्रकी गच्छ संख्या ३२ है।

प्रचय—श्रेणीके अनुगामी पदोंमें होनेवाली वृद्धि या हानिको अथवा प्रत्येक स्थानमें जितना-जितना अधिक होता है उस अधिकके प्रमाणको प्रचय कहते हैं। जैसे—तृतीय समुद्रके प्रत्येक वलयमें ४-४ की वृद्धि हुई है।

आदिधन—वृद्धिके प्रमाणके बिना आदि स्थानके प्रमाणके सदृश जो धन सर्व स्थानमें होता है, उसके जोड़को आदिधन कहते हैं। जैसे—तृतीय समुद्रके प्रत्येक वलयमें वृद्धिके बिना चन्द्रोंकी संख्या २८८ है, अतः (२८८ × ३२) = ९२१६ आदिधन है।

उत्तरधन—आदि धनके बिना सर्व स्थानोंमें वृद्धिका जो प्रमाण है, उसके योगको उत्तरधन कहते हैं। जैसे—तृतीयसमुद्रका उत्तरधन (३१ × ६४) = १९८४ है।

सर्वधन—आदिधन और उत्तरके योगको सर्वधन या उभयधन कहते हैं। जैसे—९२१६ + १९८४ = ११२०० है।

ऋणराशि—तृतीय समुद्रकी ऋणराशि ६४ मानी गई है। यहाँकि उत्तर धन (१९८४) में यदि ६४ जोड़ दिए जाएँ और ६४ ही घटा दिये जाएँ तो उत्तर धन ज्योंका त्यों रहेगा। किन्तु ऋणराशि बना लेनेसे आगामी द्वीप-समुद्रोंके चन्द्रोंका प्रमाण प्राप्त करनेमें सुविधा हो जायगी। यह ऋणराशि भी उत्तरोत्तर दुगुनी-दुगुनी होती जाती है।

प्रत्येक द्वीप-समुद्रके सर्व चन्द्र-बिम्बोंका प्रमाण निकालनेके लिये सूत्र—

सर्वधन = आदिधन + उत्तरधन

(मुख × गच्छ) + ($\frac{\text{गच्छ} - 1}{2}$) × चय × गच्छ।

बाह्य पुष्करार्धद्वीपके आदि वलयमें १४४ चन्द्र हैं और उससे दुगुने (१४४ × २) चन्द्र पुष्करवर नामक तृतीय समुद्रके आदि वलयमें हैं। इस समुद्रका व्यास ३२ लाख योजन है अतः इसमें ३२ वलय (गच्छ) हैं। प्रत्येक वलयमें चार-चार चन्द्र-बिम्बोंकी वृद्धि होती है। इसप्रकार मुख १४४ × २ और गच्छ ३२ का परस्पर गुणा करनेसे तृतीय समुद्रके ३२ वलयोंका आदिधन (१४४ × २ × ३२) या (१४४ × ६४) = ९२१६ प्राप्त होता है।

एक कम गच्छ (३२ — १ = ३१) का आधा कर ($\frac{३१}{२}$) चयके प्रमाण (४) से गुणित करे, जो ($\frac{३१}{२}$ × ४ = ३१ × २) प्राप्त हो उसका गच्छ (३२) से गुणा करनेपर (३१ × २ × ३२ = ३१ × ६४) उत्तरधन प्राप्त हो जाता है। यदि उत्तरधन (३१ × ६४) में ६४ जोड़ दिये जायँ और ६४ ही घटा दिए जायँ तो उत्तरधन ज्यों का त्यों रहेगा, किन्तु आगामी द्वीप-समुद्रोंके चन्द्रोंका प्रमाण प्राप्त करनेमें सुविधा हो जायगी।

३१ × ६४ + १ × ६४ — ६४ या ३२ × ६४ — ६४ यह उत्तरधनका प्रमाण है। इसे आदिधन (१४४ × ६४) में जोड़ देनेसे तृतीय समुद्रके उभय या सर्वधनका प्रमाण १४४ × ६४ + ३२ × ६४ — (६४) अथवा १७६ × ६४ — (६४) अथवा ११२०० होता है। अर्थात् तृतीय समुद्रमें कुल चन्द्र ११२०० हैं। इसीप्रकार वारुणीवर नामक चतुर्थद्वीपके—

आदिधन १४४×६४×४+उत्तरधन (३२×६४×४ ऋण ६४×२) को जोड़नेसे १७६×६४×४ ऋण ६४×२ होता है; जो पुष्करवर समुद्रके धन १७६×६४ से चौगुना और ऋण ६४ से दुगुना है।

इसीप्रकार आगे-आगे प्रत्येक द्वीप-समुद्रमें धनराशि चौगुनी और ऋणराशि दुगुनी होती गई है।

गच्छ प्राप्त करनेके लिए परम्परा-सूत्रका औचित्य—

संपहि एवं रासीणं ठिद-संकलणाणमाणयणे उच्चदे-छ-रूवाहिय-जंबूदीव छेदणएहि परिहीण-रज्जु छेदणाओ गच्छं कादूण जदि संकलणा आणिज्जदि तो जोदिसिय-जीव-रासी ण उप्पज्जदि, जगपदरस्स बे-छप्पण्णंगुल-सद-वग्गभाग-हाराणुववत्तीदो। तेण रज्जु छेदणासु अण्णेसिं पि तप्पाओग्गाणं संखेज्ज - रूवाणं हाणिं काऊण गच्छा ठवेयव्वा। एवं कदे तदिय - समुद्दो आदी ण होदि त्ति णासंकणिज्जं; सो चेव आदी होदि, सयंभूरमणसमुद्दस्स परभाग - समुप्पण्ण - रज्जु - च्छेदणय - सलागाणमाणयण-कारणादो।

अर्थ—अब इसप्रकार अवस्थित राशिके संकलन निकालनेका प्रकार कहते हैं—छह रूप अधिक जम्बूद्वीपक अर्धच्छेदोंसे परिहीन राजूके अर्धच्छेदोंको गच्छ राशि बनाकर यदि संकलन राशि निकाली जाती है तो ज्योतिष्क-जीवराशि उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि (ऐसा करनेपर) जगत्प्रतरका दो सौ छप्पन अंगुलों (सूच्यंगुलों) के वर्ग-प्रमाण भागहार उत्पन्न नहीं होता है। अतएव राजूके अर्धच्छेदोंमेंसे तत् प्रायोग्य अन्य भी संख्यात रूपोंकी हानि (कमी) करके गच्छ स्थापित करना चाहिए।

ऐसा करनेपर तृतीय समुद्र आदि नहीं होता है, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह तृतीय-समुद्र ही आदि होता है। इसका कारण स्वयंभूरमण-समुद्रके परभागमें उत्पन्न होनेवाली राजूकी अर्धच्छेद-शलाकाओंका आना है।

सयंभूरमणसमुद्दस्स परदो रज्जुच्छेदणया अत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? बे-छप्पण्णंगुल-सद-वग्ग-सुत्तादो।

अर्थ—(शंका)—स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें राजूके अर्धच्छेद होते हैं, यह कैसे जाना ?

(समाधान) :—ज्योतिषीदेवोंका प्रमाण निकालनेके लिए दो सौ छप्पन सूच्यंगुल के वर्गप्रमाण जगत्प्रतरका भागहार बतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है।

'जत्तियाणि दीव - सायर - रूवाणि जंबूदीव - च्छेदणाणि छ - रूवाहियाणि तत्तियाणि रज्जु-च्छेदणाणि' त्ति परियम्मेणं एदं वक्खाणं किं ण विरुज्झदे ? एदेण सह विरुज्झदे, किंतु सुत्तेण सह ण विरुज्झदि । तेणेदस्स वक्खाणस्स गहणं कायव्वं, ण परियम्मसुत्तस्स; सुत्त-विरुद्धत्तादो । ण सुत्त-विरुद्धं वक्खाणं होदि, अदिप्पसंगादो । तत्थ जोइसिया णत्थि त्ति कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो ।

अर्थ—शंका—'जितनी द्वीप और समुद्रोंकी संख्या है, तथा जितने जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद होते हैं, छह अधिक उतने ही राजूके अर्धच्छेद होते हैं' इसप्रकारके परिकर्म-सूत्रके साथ यह व्याख्यान क्यों न विरोधको प्राप्त होगा ?

समाधान—यह व्याख्यान परिकर्मसूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होगा, किन्तु (प्रस्तुत) सूत्रके साथ तो विरोधको प्राप्त नहीं होता है। इसलिए इस व्याख्यानको ग्रहण करना चाहिए, परिकर्मके सूत्रको नहीं। क्योंकि वह सूत्रके विरुद्ध है, और जो सूत्र-विरुद्ध हो, वह व्याख्यान नहीं माना जा सकता है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष प्राप्त होता है।

शंका—वहाँ (स्वयंभूरमणसमुद्रके परभागमें) ज्योतिषी देव नहीं है, यह कैसे जाना ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है।

एसा तप्पाओग्ग-संखेज्ज-रूवाहिय [1]जंबूदीव-छेदणय-सहिद-दीव-सायर-रूवमेत्त-रज्जुच्छेद-पमाण-परिक्खा-विही[2] ण अण्णाइरिय[3] - उवदेस - परंपराणुसारिणी, केवलं तु तिलोयपण्णत्ति-सुत्ताणुसारिणी[4], जोदिसियदेव-भागहार-पवुप्पाइय-सुत्तावलंबि-जुत्ति-बलेण पयद-गच्छ-साहणट्ठमेसा परूवणा परूविदा । तदो ण एत्थ [5]इदमित्थमेवेत्ति एयंत-परिग्गहेण[6] असग्गहो कायव्वो, परमगुरु-परंपरागओवएसस्स जुत्ति - बलेण [7]विहडावेदुम-सक्कियत्तादो, अदिदिएसु पदत्थेसु छदुमत्थ-वियप्पाणमविसंवाद-णियमाभावादो । [8]तम्हा पुव्वाइरिय-वक्खाणापरिच्चाएण[9] एसा वि दिसा[10] हेदु-वादाणुसारि-उप्पण्ण-सिस्साणुग्गहेण अउप्पण्ण-जण-उप्पायणट्ठं च दरिसेदव्वा । तदो ण एत्थ [11]संपदाय - विरोहासंका कायव्वा त्ति ।

---

१. द. ब. दीवसोवणय । २. द. ब. क. वीही । ३. द. ब. क. अण्णाइरियाउवदेसपरंपराणुसारिणे । ४. द. ब. सुत्ताणुसारि । ५. द. ब. क. ज. इदमेत्थमेवेत्ति । ६. द. ब. क. ज. परिग्गहो ण । ७. द. ब. क. ज. विहडावेदु । ८. द. ब. क. तहा । ९. द. ब. क. ज. वक्खाणपरिच्चाएण । १०. द. क. ज. विधीसा । ११. द. ब. क. ज. संपदाए विरोधो ।

अर्थ—तत्प्रायोग्य संख्यात रूपाधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदों सहित द्वीप-सागरोंकी संख्या प्रमाण राजू सम्बन्धी अर्धच्छेदोंके प्रमाणकी परीक्षा-विधि अन्य आचार्योंके उपदेशकी परम्पराका अनुसरण करनेवाली नहीं है। यह तो केवल त्रिलोकप्रज्ञप्तिके सूत्रका अनुसरण करनेवाली है। ज्योतिषी देवोंके भागहारका प्रत्युत्पादन (उत्पन्न) करनेवाले सूत्रका आलम्बन करनेवाली युक्तिके बलसे प्रकृत गच्छको सिद्ध करनेके लिए यह प्ररूपणा की गई है। अतएव यहाँ 'यह ऐसा ही है' इस-प्रकारके एकान्तको ग्रहण करके कदाग्रह नहीं करना चाहिए। क्योंकि परमगुरुओंकी परम्परासे आये हुए उपदेशको इसप्रकार युक्तिके बलसे विघटित करना अशक्य है। इसके अतिरिक्त अतीन्द्रिय पदार्थोंके विषयमें अल्पज्ञोंके द्वारा किये गये विकल्पोंके अविसंवादी होनेका नियम भी नहीं है। इसलिए पूर्वाचार्योंके व्याख्यानका परित्याग न कर हेतुवाद (तर्कवाद) का अनुसरण करनेवाले व्युत्पन्न शिष्योंके अनुरोधसे तथा अव्युत्पन्न शिष्य-जनोंके व्युत्पादनके लिए इस दिशाका दिखाना योग्य ही है, अतएव यहाँ पर सम्प्रदायके विरोधकी आशंका नहीं करनी चाहिए।

विशेषार्थ—ज्योतिषी देवोंकी संख्या निकालनेके लिए द्वीप-सागरोंकी संख्या निकालना आवश्यक है। परिकर्मके सूत्रानुसार द्वीप-समुद्रोंकी संख्या उतनी है जितने छह अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद कम राजूके अर्धच्छेद होते हैं। (मेरु एवं जम्बूद्वीपादि पाँच द्वीप-समुद्रोंमें जो राजूके अर्धच्छेद पड़ते हैं वे यहाँ सम्मिलित नहीं किये गये हैं, क्योंकि इन द्वीप-समुद्रोंकी चन्द्र संख्या पूर्वमें कही जा चुकी है)। किन्तु तिलोयपण्णत्तीके सूत्रकारका कहना है कि $(२५६)^२$ के भागहारसे ज्योतिषी देवोंका जो प्रमाण प्राप्त होता है यदि वही प्रमाण इष्ट है तो राजूके अर्धच्छेदोंमेंसे जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदोंके अतिरिक्त छह ही नहीं किन्तु छहसे अधिक संख्यात अंक और कम करना चाहिए। इतना कम करनेके बाद ही द्वीप-सागरोंकी वह संख्या प्राप्त हो सकेगी जिसके द्वारा ज्योतिषी देवोंका प्रमाण $(२५६)^२$ भागहारके बराबर होगा।

छह अर्धच्छेदोंके अतिरिक्त संख्यात अंक और कम करनेका कारण यह दर्शाया गया है कि स्वयंभूरमणसमुद्रकी बाह्य वेदीके आगे भी पृथिवीका अस्तित्व है; वहाँ राजूके अर्धच्छेद उपलब्ध होते हैं, किन्तु वहाँ ज्योतिषी देवोंके विमान नहीं हैं।

इसप्रकार युक्तिबलसे सिद्ध कर देनेके पश्चात् भी ग्रन्थकारकी परम निरपेक्षता एवं पूर्ववर्ती आचार्योंके प्रति दृढ़ श्रद्धा दर्शनीय है। वे लिखते हैं कि—'यह ऐसा ही है' इसप्रकार एकान्त हठ पकड़कर ……………यह दिशा भी दिखानी चाहिए।

एदेण विहाणेण परूविद-गच्छं विरलिय रूवं पडि चत्तारि रूवाणि दादूण अण्णोण्णब्भत्थे[१] कदे किसिया जादा इदि वुत्ते संखेज्ज-रूव-गुणिय[२]- जोयण - लक्खस्स

---

१. द. ब. क. ज. गडे। २. द. ब. क. ज. गुणिदे।

वग्गं पुणो सत्त-रूवस्स कदिए गुणिय चउसट्ठि-रूव-वग्गेहि पुणो वि गुणिय जगपदरे भागे हिदे तत्थ लद्धमेत्तं होदि । = । ७ । ६४ । ६४ । १०° । ७ ।

अर्थ—इस उपर्युक्त विधानके अनुसार पूर्वोक्त गच्छका विरलन कर एक-एक रूपके प्रति चार-चार रूपोंको देकर परस्पर गुणा करनेपर कितने हुए ? इसप्रकार पूछनेपर एक लाख योजनके वर्गको संख्यात-रूपोंसे गुणित करके पुनः सात रूपोंकी कृति से गुणा करके पुनरपि चौंसठ रूपोंके वर्गसे गुणा करके जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो, तत्प्रमाण होते हैं।

विशेषार्थ—उपर्युक्त विधानानुसार स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्तके सभी द्वीप-समुद्रोंमें स्थित वलयोंके चन्द्र-बिम्बोंकी राशि प्राप्त करने हेतु धन-राशि तथा ऋणराशि अलग-अलग स्थापितकी जाती है और राजूके अर्धच्छेदोंकी सहायतासे प्राप्त स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्तकी समस्त वलय-संख्या गच्छ रूपमें स्थापित की जाती है।

यहाँ सर्व प्रथम धन रूप राशि प्राप्त करना है। इसके लिए तीन संकलन आवश्यक हैं। जो इसप्रकार हैं—(१) आदि १७६×६४ (२) गुणकार प्रचय ४ और (३) गच्छ। यहाँ गच्छका प्रमाण (१ राजूके अर्धच्छेद)—(६ अधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद) हैं। अथवा—(जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेद) — (३) — (६) — (जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद) हैं। इस गच्छमेंसे ऋण राशि (—३—६—जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद) को अलग स्थापित कर देनपर गच्छ जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेद प्रमाण रह जाता है।

'**सव्व-गच्छा अण्णोण्णं पेक्खिदूण चउग्गुण-कमेण अवट्ठिदा**' अर्थात् सब गच्छ परस्परकी अपेक्षा चौगुने क्रमसे अवस्थित हैं। पूर्व कथित इस नियमके अनुसार गुणकार ४ अर्थात् २×२ है।

यहाँ धनरूप जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेद गच्छ है। इसका विरलनकर प्रत्येक एक-एकके प्रति २ को देय देकर परस्पर गुणा करनेपर जगच्छ्रेणी प्राप्त होती है और इन्हीं जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेदों का विरलनकर प्रत्येकके प्रति ४ अर्थात् २×२ देय देकर परस्पर गुणित करनेपर जगत्प्रतर प्राप्त होता है। यह राशि धनात्मक होनेसे अंश रूप रहेगी।

अब यहाँ पृथक् स्थापित ऋणरूप गच्छका विश्लेषण किया जाता है—

—(३)—(६) और जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद रूपसे ऋण राशियाँ तीन हैं। इनमेंसे सर्वप्रथम जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद कहते हैं—

जम्बूद्वीप १ लाख योजन विस्तारवाला है। इस एकलाखको उत्तरोत्तर अर्ध-अर्ध करनेपर १७ अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं और एक योजन शेष रहता है।

इन १७ अर्धच्छेदोंका विरलन कर प्रत्येक पर २×२ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे १ लाख×१ लाख प्राप्त होते हैं। अवशेष रहे एक योजनके ७६८००० अंगुल होते हैं। इन्हें उत्तरोत्तर अर्ध-अर्ध करनेपर १९ अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं और १ अंगुल शेष रहता है। इन १९ अर्धच्छेदोंका विरलनकर प्रत्येक अंक पर २ × २ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे ७६८०००×७६८००० होते हैं। शेष एक अंगुलके अर्धच्छेद प्रमाण २×२ को परस्पर गुणित करनेपर अंगुल×अंगुल अर्थात् प्रतरांगुल प्राप्त होता है। इसप्रकार ऋणात्मक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेदों की राशिका प्रमाण १ लाख×१ लाख×७६८०००×७६८०००×प्रतरांगुल है।

६ के अर्धच्छेद—जम्बूद्वीपादि पांच द्वीप और समुद्रोंके पांच और एक मेरु पर्वत का। इसप्रकार ये ६ अर्धच्छेद अनुपयोगी होनेसे घटा दिये गये हैं। इन ६ का विरलन कर प्रत्येकके प्रति २×२ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे ६४×६४ प्राप्त होते हैं।

—३ के अर्धच्छेद—जगच्छ्रेणी ७ राजू प्रमाण है। इन ७ राजुओंका उत्तरोत्तर अर्ध-अर्ध करनेपर ३ अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं। इन ३ अर्धच्छेदोंका विरलनकर प्रत्येकके प्रति २×२ देय देकर आपसमें गुणा करनेसे ७×७ प्राप्त होते हैं।

इसप्रकार ऋणराशिका संकलित प्रमाण—

१ लाख×१ लाख×७६८०००×७६८०००×प्रतरांगुल×६४×६४×७×७ है। यह राशि ऋणात्मक होनेसे भागहार रूप रहेगी पूर्वोक्त अंश रूप जगत्प्रतरमें भागहार रूप इस राशिका भाग देनेपर लब्ध इसप्रकार प्राप्त होता है—

$$\frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{१ लाख}\times\text{१ लाख}\times\text{७६८०००}\times\text{७६८०००}\times\text{प्रत०}\times\text{६४}\times\text{६४}\times\text{७}\times\text{७}}$$

उपर्युक्त गद्यमें आचार्यश्री ने यही कहा है कि—गच्छका विरलनकर प्रत्येक रूप पर ४-४ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे १ लाख योजनके वर्ग (१ ला०× १ ला०) को संख्यात रूपों (७६८०००×७६८०००×प्रतरांगुल) से गुणित करनेपर पुनः सात रूपोंकी कृति (७×७) से गुणा करके पुनरपि चौंसठ रूपोंके वर्ग (६४×६४) से गुणाकर जगत्प्रतरमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे तत्प्रमाण है।

मूलमें जो संदृष्टि दी गई है, उसका अर्थ इसप्रकार है—

=जगत्प्रतर, ७ । ७ का अर्थ है ७×७ । आगे ६४ × ६४ । १०° का अर्थ है १००००० × १००००० और ७ का अर्थ संख्यात है ।

पुणो एदं दुट्ठाणे ठविय एक्क-रासिं बे-सय-अट्ठासीदि-रूवेहिं गुरिणदे सव्व-आदि-धण-पमाणं होदि । २८८ । $\frac{=}{७}$ । ७ । ६४ । ६४ । १०° । ७ । अवर-रासिं चउसट्ठि-रूवेहिं गुणिदे सव्व-पचय-धणं होदि । ६४ । $\frac{=}{७}$ । ७ । ६४ । ६४ । १०° । ७ । एदे दो रासीओ मेलिय[1] रिण-रासिमवणिय गुणगार[2]-भागहार-रूवाणिमोवट्टाविय-भागहार-भूद-संखेज्ज-रूव-गुणिद-जोयण-लक्ख-वग्गं पदरंगुले कदे संखेज्ज - रूवेहिं गुणिद - पण्णट्ठि-सहस्स पंच-सय-छत्तीस-रूवमेत्त-पदरंगुलेहिं जगपदरमवहरिदमेत्तं सव्व-जोइसिय-बिंब-पमाणं होदि । तं चेदं— $\frac{=}{४}$ ६५५३६ । ७ ।

पुणो एक्कम्मि बिंबम्मि तप्पाउग्ग-संखेज्ज-जीवा अत्थि त्ति तं संखेज्ज-रूवेहिं गुणिदेसिं सव्व-जोइसिय-जीव-रासि-परिमाणं होदि । तं चेदं— $\frac{=}{४}$ । ६५५३६ ।

अर्थ—पुनः इसे दो स्थानोंमें रखकर एक राशिको दो सौ अठासी से गुणा करनेपर सब आदि-धन होता है; और इतर-राशिको चौंसठ रूपोंसे गुणा करनेपर सर्व प्रचय-धनका प्रमाण होता है । इन दो राशियोंको मिलाकर ऋण-राशिको कम करते हुए गुणकार एवं भागहार रूपोंको अपवर्तित करके भागहार-भूत संख्यात-रूपोंसे गुणित एक लाख योजनके वर्गके प्रतरांगुल करनेपर संख्यातरूपोंसे गुणित पैंसठ हजार पाँच सौ छत्तीस रूपमात्र प्रतरांगुलोंसे भाजित जगत्प्रतर-प्रमाण सब ज्योतिषी बिम्बोंका प्रमाण होता है । वह यह है— $\frac{=}{४}$ । ६५५३६ । ७ ।

पुनः एक बिम्बमें तत्प्रायोग्य संख्यात जीव विद्यमान रहते हैं, इसलिए उसे संख्यात-रूपोंसे गुणा करनेपर सर्व ज्योतिषी जीव-राशिका प्रमाण होता है । वह यह है— $\frac{=}{४}$ । ६५५३६ ।

विशेषार्थ—उपर्युक्त गद्यमें प्राप्त राशिको दो स्थानों पर स्थापित कर पृथक्-पृथक् २८८ और ६४ से गुणित कर प्राप्त हुए आदिधन और प्रचयधन को सम्मिलित करने के लिए कहा गया है । जो इसप्रकार है :—

$$\text{प्राप्त राशि} = \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ लाख} \times \text{१ लाख} \times \text{संख्यात} \times \text{६४} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{७}}$$

$$\text{आदिधन} = \frac{\text{२८८ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ लाख} \times \text{१ लाख} \times \text{संख्यात} \times \text{६४} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{७}}$$

---

१. द. ब. मेलि । २. द. ब. क. ज. गुणहार ।

$$\text{प्रचयधन} = \frac{\text{६४ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \times \text{संख्यात} \times \text{६४} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{७}}$$

$$\frac{\text{२८८ जगत्प्रतर}}{[\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \times \text{सं०} \times \text{६४} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{७}]} +$$

$$\frac{\text{६४ जगत्प्रतर}}{[\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \times \text{संख्यात} \times \text{६४} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{७}]}$$

$$\text{आदिधन} + \text{प्रचयधन} = \frac{\text{३५२ जगत्प्रतर}}{[\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \times \text{संख्यात} \times \text{६४} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{७}]}$$

इस आदिधन और प्रचयधनकी सम्मिलित राशिमेंसे ऋणराशि घटानेको कहा गया है। जो इसप्रकार है—

यहाँ ऋणराशिका संकलन करने हेतु आदि ६४ है, प्रचय २ है और गच्छ—जगच्छ्रेणीके अर्धच्छेदोंमेंसे साधिक जम्बूद्वीपके अर्धच्छेद घटा देनेपर जो अवशेष रहे वह है।

तदनुसार इसका संकलन $\frac{\text{६४ जगच्छ्रेणी}}{\text{सूच्यंगुल} \times \text{संख्यात} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{१ ला०}}$ होता है। इसे पूर्वोक्त आदि एवं प्रचयधनकी सम्मिलित राशिमेंसे घटाना है। यथा :—

$$\frac{\text{३५२ जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \times \text{सं०} \times \text{६४} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{७}} -$$

$$\frac{\text{६४ जगच्छ्रेणी}}{\text{सूच्यं०} \times \text{संख्यात} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{१ ला०}}$$

$$= \frac{\text{३५२ जगत्प्रतर} - \text{६४ जगच्छ्रेणी} \; (\text{सूच्यं०} \times \text{संख्यात} \times \text{६४} \times \text{७} \times \text{१ ला०})}{[\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \; \underline{\text{संख्यात} \times \text{१६} \times \text{७} \times \text{७}}_{\text{१६}} \times \text{६४} \times \text{६४}]}$$

$$= \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{६५५३६} \times \text{७}}$$ या $\equiv$ ६५५३६ । ७ यह सर्व ज्योतिषी बिम्बोंका प्रमाण प्राप्त हुआ।

एक ज्योतिषी बिम्बमें संख्यात जीव रहते हैं अतः उपर्युक्त प्राप्त हुए ज्योतिष-बिम्बोंके प्रमाणमें संख्यात (७) का गुणा करनेसे सर्व ज्योतिषी देवोंका प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

$= \frac{\text{जगत्प्रतर} \times \text{संख्यात (७)}}{\text{प्रतरांगुल} \times ६५५३६ \times ७} = \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्र०} \times ६५५३६}$ या $\frac{=}{४}$ । ६५५३६ सर्व ज्योतिषीदेवोंका प्रमाण है ।

नोट—ज्योतिषी देवोंके बिम्बोंका प्रमाण निकालते समय आचार्य देवने संक्षिप्त करने हेतु यहाँ कुछ संख्याओंका अन्तर्भाव संख्यातमें कर दिया है। इसका विशेष विवरण सन् १९७६ में प्रकाशित त्रिलोकसार गाथा ३६१ की टीकामें द्रष्टव्य है।

ज्योतिषी देवोंकी आयुका निरूपण—

चंदस्स सद - सहस्सं, रविणो सदं च सुक्कस्स ।
वासाधिएहि पल्लं, तं[1] पुण्णं धिसण - णामस्स ॥६१९॥

सेसाणं तु गहाणं, पल्लद्धं आउगं मुणेदव्वं ।
ताराणं तु जहण्णं, पादद्धं पादमुक्कस्सं ॥६२०॥

प १ । व १००००० । प १ । १००० । प १ व १०० । प १ । प $\frac{१}{२}$ । प $\frac{१}{४}$ । प $\frac{१}{८}$ ।

आऊ समत्ता ॥८॥

अर्थ—चन्द्रकी उत्कृष्टायु एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य (१ पल्य+१००००० वर्ष), सूर्यकी एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य (१ पल्य+१०००), शुक्र ग्रहकी १०० वर्ष अधिक एक पल्य (१ पल्य+१०० वर्ष) और गुरुकी उत्कृष्टायु एक पल्य-प्रमाण है। शेष ग्रहोंकी—उत्कृष्टायु अर्ध-पल्य प्रमाण है और ताराओंकी उत्कृष्टायु पल्यके चतुर्थभाग ($\frac{१}{४}$ पल्य) प्रमाण है तथा सर्व ज्योतिषी देवोंकी जघन्यायुका प्रमाण पल्यके आठवें भाग ($\frac{१}{८}$ पल्य) है ॥६१९-६२०॥

इसप्रकार आयुका कथन समाप्त हुआ ॥८॥

आहार आदि प्ररूपणाओंका दिग्दर्शन—

आहारो उस्सासो, उच्छेहो ओहिणाण - सत्तीओ ।
जीवाणं उप्पत्ती - मरणाइं एक्क - समयम्मि ॥६२१॥

आऊ-बंधण-भावं, दंसण - गहणस्स कारणं विविहं ।
गुणठाणादि - पवण्णण, भावणलोओ व्व वत्तव्वं ॥६२२॥

---

1. द. क. ज. ते धुट्ट वरिसणामस्स, ब. ते पुट्ठवरिसणामस्स ।

अर्थ—आहार, उच्छ्वास, उत्सेध, अवधिज्ञान, शक्ति, एक समयमें जीवोंकी उत्पत्ति एवं मरण, आयुके बन्धक भाव, सम्यग्दर्शन ग्रहणके विविध कारण और गुणस्थानादिका वर्णन भावनलोकके सदृश कहना चाहिए ॥६२१-६२२॥

शरीरके उत्सेध आदिका निर्देश—

णवरि य जोइसियाणं, उच्छेहो सत्त-दंड-परिमाणं ।
ओही असंख-गुणिदं, सेसाओ होंति जह - जोग्गं ॥६२३॥

अर्थ—विशेष यह है कि ज्योतिषी देवोंके शरीरकी ऊँचाई सात धनुष प्रमाण और अवधिज्ञानका विषय असंख्यातगुणा है ॥६२३॥

अधिकारान्त मंगलाचरण—

इंद-सद-णमिद-चलणं, अणंत-सुह-णाण-विरिय-दंसणयं ।
भव्व - कुमुदेक्क - चंदं, विमल - जिणिदं णमस्सामि ॥६२४॥

एवमाइरिय-परंपरा-गय-तिलोयपण्णत्तीए
जोइसिय-लोय-सरूव-णिरूवण-पण्णत्ती णाम
सत्तमो महाहियारो समत्तो ॥

अर्थ—जिनके चरणोंमें सहस्रों इन्द्रोंने नमस्कार किया है और जो अनन्त सुख, ज्ञान, वीर्य एवं दर्शनसे संयुक्त तथा भव्यजनरूपी कुमुदोंको विकसित करनेके लिए अद्वितीय चन्द्रस्वरूप हैं ऐसे विमलनाथ जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६२४॥

इसप्रकार आचार्य-परम्परासे प्राप्त हुई त्रिलोक प्रज्ञप्तिमें
ज्योतिर्लोक-स्वरूप-निरूपण-प्रज्ञप्ति नामक
सातवाँ महाधिकार समाप्त हुआ ।

तिलोयपण्णत्ती

अट्ठमो महाहियारो

मङ्गलाचरण—

कम्म-कलंक-विमुक्कं, केवलणाणे हि दिट्ठ-सयलट्ठं।
णमिऊण अणंत-जिणं, भणामि सुरलोय-पण्णत्तिं ॥१॥

अर्थ—कर्मरूपी कलङ्कसे रहित, केवलज्ञानमें सम्पूर्ण पदार्थोंको देखने वाले अनन्तनाथ जिनको नमस्कार कर मैं सुरलोक-प्रज्ञप्तिका कथन करता हूँ ॥१॥

इक्कीस अन्तराधिकारोंका निर्देश—

सुरलोय-णिवास-खिदिं, विण्णासो भेद-णाम-सीमाओ।
संखा इंदविभूदी, आऊ उप्पत्ति - मरण - अंतरयं ॥२॥

आहारो उस्सासो, उच्छेहो तह य देव - लोयम्मि।
आउग - बंधण - भावो, देवा लोयंतियाण तहा ॥३॥

गुणठाणादि-सरूवं, दंसण - गहणस्स कारणं विविहं।
आगमणमोहिणाणं, सुराण[1] संखं च सत्तीओ ॥४॥

जोणी इदि इगिवीसं, अहियारा विमल-बोह-जणणीए।
जिण-मुहकमल-विणिग्गय-सुर-जग-पण्णत्ति-णामाए ॥५॥

---

१ द. सुराओ, ब. क. ज. ठ. सुराउ।

अर्थ—सुरलोक निवास क्षेत्र १, विन्यास २, भेद ३, नाम ४, सीमा ५, संख्या ६, इन्द्र-विभूति ७, आयु ८, उत्पत्ति एवं मरणका अन्तर ९, आहार १०, उच्छ्वास ११, उत्सेध १२, देवलोक सम्बन्धी आयुके बन्धक भाव १३, लौकान्तिक देवोंका स्वरूप १४, गुणस्थानादिकका स्वरूप १५, दर्शन-ग्रहणके विविध कारण १६, आगमन १७, अवधिज्ञान १८, देवोंकी संख्या १९, शक्ति २० और योनि २१ इसप्रकार निर्मल बोधको उत्पन्न करनेवाले जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए सुरलोक-प्रज्ञप्ति नामक महाधिकारमें ये इक्कीस अधिकार हैं ॥२-५॥

देवोंका निवासक्षेत्र—

उत्तरकुरु-मणुवाणं, [1]एक्केणूणेण तह य बालेण ।
पणवीसुत्तर - चउ - सय - कोदंडेहिं विहीणेण ॥६॥

इगिसट्ठी - अहिएणं, लक्खेणं जोयणेण ऊणाओ ।
रज्जूओ सत्त गयणे,[2] उड्ढुड्ढं णाक - पडलाणि ॥७॥

७ ७ रिणं १०००६१ रिणस्स रिणं धणं ४२५ रिण । बा १ ।

। णिवासखेत्तं गदं ॥१॥

अर्थ—उत्तरकुरुमें स्थित मनुष्योंके एक बाल, चार सौ पच्चीस धनुष और एक लाख इकसठ योजनोंसे रहित सात राजू प्रमाण आकाशमें ऊर्ध्व-ऊर्ध्व (ऊपर-ऊपर) स्वर्ग-पटल स्थित हैं ॥६-७॥

विशेषार्थ—ऊर्ध्वलोक मेरुतलसे सिद्धलोक पर्यन्त है, जिसका प्रमाण ७ राजू है। इसमेंसे मेरुप्रमाण अर्थात् १०००४० योजनका मध्यलोक है। मेरुकी चूलिकासे उत्तम भोगभूमिज मनुष्यके एक बाल ऊपर स्वर्गका प्रारम्भ है। लोकके अन्तमें १५७५ धनुष प्रमाण तनुवातवलय, १ कोस प्रमाण घनवातवलय और २ कोस प्रमाण घनोदधिवातवलय है। अर्थात् ४२५ धनुष कम १ योजन क्षेत्रमें उपरिम वातवलय है। इसके नीचे सिद्धशिला है जो मध्यभागमें ८ योजन मोटी है और सिद्ध-शिलासे १२ योजन नीचे सर्वार्थसिद्धि विमानका ध्वजदण्ड है। इसप्रकार लोकान्तसे [(१२+८)+(१ यो० — ४२५ धनुष =)] ४२५ धनुष कम २१ योजन नीचे और मेरुतलसे १०००४० यो०+ १ बाल ऊपर अर्थात्—

७ राजू— [(१०००४०+१ बाल)+(२१ योजन — ४२५ धनुष)] बराबर क्षेत्रमें स्वर्गलोककी अवस्थिति कही गई है।

निवास क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ॥१॥

---

१. ब. एक्कं णूणं, क. ठ. ज. एक्कं णूणेण । २. द. ब. क. ठ. ज. रयणे वंदुदुदं ।

स्वर्ग पटलोंकी स्थिति एवं इन्द्रक विमानोंका पारस्परिक अन्तराल—

कणयद्दि-चूलि-उवरिं, उत्तरकुरु-मणुव-एक्क-बालस्स ।
परिमाणे - णंतरिदो, चेट्ठ्दि हु इंदम्रो पढमो ॥८॥

अर्थ—कनकाद्रि अर्थात् मेरुकी चूलिकाके ऊपर उत्तरकुरुवर्ती मनुष्यके एक बाल प्रमाणके अन्तरसे (ऋजु नामक) प्रथम इन्द्रक स्थित है ॥८॥

लोय-सिहरादु हेट्ठा, चउ-सय-पणवीस चाव-हीणाणि ।
इगिवीस - जोयणाणि, गंतूणं इंदग्रो चरिमो ॥९॥

यो २१ । रूण दंडा ४२५ ।

अर्थ—लोकशिखरके नीचे चारसौ पच्चीस (४२५) धनुष कम इक्कीस योजन प्रमाण जाकर अन्तिम इन्द्रक स्थित है ॥९॥

सेसा य एक्कसट्ठी, एदाणं इंदयाण विच्चाले ।
सव्वे अणाइ-णिहणा, रयण - मया इंदया होंति ॥१०॥

अर्थ—शेष इकसठ इन्द्रक इन दोनों इन्द्रकोंके बीचमें हैं । ये सब रत्नमय इन्द्रक विमान अनादि-निधन हैं ॥१०॥

एक्केक्क-इंदयस्स य, [1]विच्चालमसंख-जोयणाण-पमा ।
एदाणं णामाणि, वोच्छामो आणुपुव्वीए ॥११॥

अर्थ—एक-एक इन्द्रकका अन्तराल असंख्यात योजन प्रमाण है । अब इनके नाम अनुक्रमसे कहते हैं ॥११॥

६३ इन्द्रक विमानोंके नाम—

उडु-विमल-चंद-णामा, वग्गू वीरारुणा य णंदणया ।
णलिणं कंचण - रुहिरं, [2]चंचं मरुदं च रिद्धिसयं ॥१२॥

१३ ।

वेरुलिय-रुचक-रुचिरंक-फलिह-तवणीय-मेघ-अब्भाइं ।
हारिद्द - पउम - णामा, लोहिद - वज्जाभिहाणेणं ॥१३॥

१२ ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. विच्चालं संखजोयणाण समा । २ द. ब. क ज. ठ. चंदं मरुदं चंदिसयं ।

णंदावत्त-पहंकर-पिट्ठक-गज-मित्त-पह य अंजणए[1] ।
वणमाल-णाग-गरुडा, लंगल-बलभद्द[2]-चक्करिट्ठाणि ।।१४।।

१४ ।

सुरसमिदी-बम्हाइं, बम्हुत्तर-बम्हहिदय-लंतवया ।
महसुक्क-सहस्सारा, आणद-पाणद य-पुप्फकया ।।१५।।

१० ।

सायंकरारणच्चुव - सुदंसणामोघ - सुप्पबुद्धा य ।
जसहर-सुभद्द-सुविसाल-सुमणसा तह य सोमणसो ।।१६।।

११ ।

पीदिकर-आइच्चं, चरिमो सव्वट्ठ-सिद्धि-णामो त्ति ।
तेसट्ठी समवट्टा, णाणावर - रयण - णियर - मया ।।१७।।

३[3] ।

अर्थ—ऋतु १, विमल २, चन्द्र ३, वल्गु ४, वीर ५, अरुण ६, नन्दन ७, नलिन ८, कंचन ९, रुधिर १० (रोहित), चंचत् ११, मरुत् १२, ऋद्धीश १३, वैडूर्य १४, रुचक १५, रुचिर १६, अंक १७, स्फटिक १८, तपनीय १९, मेघ २०, अभ्र २१, हारिद्र २२, पद्म २३, लोहित २४, वज्र २५, नंद्यावर्त २६, प्रभंकर २७, पृष्ठक २८, गज २९, मित्र ३०, प्रभ ३१, अंजन ३२, वनमाल ३३, नाग ३४, गरुड़ ३५, लांगल ३६, बलभद्र ३७, चक्र ३८, अरिष्ट ३९, सुरसमिति ४०, ब्रह्म ४१, ब्रह्मोत्तर ४२, ब्रह्महृदय ४३, लांतव ४४, महाशुक्र ४५, सहस्रार ४६, आनत ४७, प्राणत ४८, पुष्पक ४९, शांतकर ५०, आरण ५१, अच्युत ५२, सुदर्शन ५३, अमोघ ५४, सुप्रबुद्ध ५५, यशोधर ५६ सुभद्र ५७, सुविशाल ५८, सुमनस ५९, सौमनस ६०, प्रीतिकर ६१, आदित्य ६२ और अन्तिम सर्वार्थसिद्धि ६३, इसप्रकार ये समान गोल और नाना उत्तम रत्नसमूहोंसे रचे गये तिरेसठ (६३) इन्द्रक विमान हैं ।।१२-१७।।

प्रथम और अन्तिम इन्द्रक विमानोंके विस्तारका प्रमाण—

पंचत्तालं लक्खं, जोयणया इंदओ उडू[4] पढमो ।
एक्कं जोयण - लक्खं, चरिमो सव्वट्ठसिद्धी य ।।१८।।

४५००००० । १००००० ।

---

१. द. ब. ज. ठ. अंजणमो, क. अंजणमणामो । २. द. ब. क. ज. ठ. भद्द । ३. द. ब. क. ज. ठ. ६३ । ४. ब. पढमे ।

अर्थ—प्रथम ऋतु नामक इन्द्रक विमान पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन और अन्तिम सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण विस्तार युक्त हैं ।।१८।।

इन्द्रक विमानोंकी हानि-वृद्धिका प्रमाण एवं उसके प्राप्त करनेकी विधि—

पढमे चरिमं सोहिय, रूवो णिय-इंदय-प्पमाणेणं ।
भजिदूणं जं लद्धं, ताओ इह हाणि - वड्ढीओ ।।१९।।

ते रासि ६२ । ४४००००० । १ ।

अर्थ—प्रथम इन्द्रकके विस्तारमेंसे अन्तिम इन्द्रकके विस्तारको घटाकर शेषमें एक कम इन्द्रक-प्रमाणका भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना यहाँ हानि-वृद्धिका प्रमाण समझना चाहिए ।।१९।।

सत्तरि-सहस्स-णव-सय-सगसट्ठी-जोयणाणि तेवीसं ।
अंसा इगितीस-हिदा, हाणी पढमादु चरिमदो[1] वड्ढी ।।२०।।

७०९६७ । $\frac{२३}{३१}$ ।

अर्थ—सत्तर हजार नौ सौ सड़सठ योजन और एक योजनके इकतीस भागोंमेंसे तेईस भाग अधिक (७०९६७$\frac{२३}{३१}$ यो०) प्रथम इन्द्रककी अपेक्षा उत्तरोत्तर हानि और इतनी ही अन्तिम इन्द्रककी अपेक्षा उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है ।।२०।।

विशेषार्थ—प्रथम पटलके प्रथम ऋजु विमानका विस्तार मनुष्यक्षेत्र सदृश ४५ लाख योजन प्रमाण है और अन्तिम पटलके सर्वार्थसिद्धि नामक अन्तिम विमानका विस्तार जम्बूद्वीप सदृश एक लाख योजन प्रमाण है । इन दोनोंका शोधन करनेपर (४५००००० — १०००००)=४४००००० योजन अवशेष रहे । इनमें एक कम इन्द्रकों (६३ — १=६२) का भाग देनेपर (४४०००००÷ ६२)=७०९६७$\frac{२३}{३१}$ योजन हानि और वृद्धिका प्रमाण प्राप्त होता है ।

इन्द्रक विमानोंका पृथक्-पृथक् विस्तार—

चउदाल-लक्ख-जोयण, उणतीस-सहस्सयाणि बत्तीसं ।
इगितीस-हिदा अट्ठ य, कलाओ विमलिंदयस्स वित्थारो ।।२१।।

४४२९०३२ । $\frac{८}{३१}$ ।

अर्थ—चवालीस लाख उनतीस हजार बत्तीस योजन और इकतीससे भाजित आठ कला अधिक (४४२९०३२$\frac{८}{३१}$ योजन) विमल इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण कहा गया है ।।२१।।

---

१. ब. चरिमचुदो ।

तेदाल-लक्ख-जोयण-अट्ठावण्णा-सहस्स - चउसट्ठी ।
सोलस - कलाओ सहिदा, चंदिदय-रुंद-परिमाणं ॥२२॥

४३५८०६४ । १६/३१ ।

अर्थ—तैंतालीस लाख अट्ठावन हजार चौंसठ योजन और सोलह कलाओं सहित (४३५८०६४ १६/३१ योजन) चन्द्र इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण है ॥२२॥

बादाल-लक्ख-जोयण, सगसीदि-सहस्सयाणि छण्णउदी ।
चउवीस - कला रुंदो, वग्गु - विमाणस्स णादव्वं ॥२३॥

४२८७०९६ । २४/३१ ।

अर्थ—बियालीस लाख सतासी हजार छ्यानबै योजन और चौबीस कला अधिक (४२८७०९६ २४/३१ योजन) वल्गु विमानका विस्तार जानना चाहिए ॥२३॥

बादाल-लक्ख-सोलस-सहस्स-एक्कसय-जोयणाणि च ।
उणतीसब्भहियाणि, एक्क-कला वीर-इंदए रुंदो ॥२४॥

४२१६१२९ । १/३१ ।

अर्थ—वीर इन्द्रकका विस्तार बयालीस लाख सोलह हजार एक सो उनतीस योजन और एक कला अधिक (४२१६१२९ १/३१ यो०) है ॥२४॥

एक्कत्तालं लक्खं, पणदाल-सहस्स-जोयणेक्क-सया ।
इगिसट्ठी अब्भहिया, णव अंसा अरुण[1] - इंदम्मि ॥२५॥

४१४५१६१ । ९/३१ ।

अर्थ—अरुण इन्द्रकका विस्तार इकतालीस लाख पैंतालीस हजार एक सो इकसठ योजन और नो भाग अधिक (४१४५१६१ ९/३१ यो०) है ॥२५॥

चउहत्तरि सहस्सा, तेणउदि-समधियं च एक्क-सयं ।
चालं जोयण-लक्खा, सत्तरस कलाओ णंदणे वासो ॥२६॥

४०७४१९३ । १७/३१ ।

अर्थ—नन्दन इन्द्रकका विस्तार चालीस लाख चौहत्तर हजार एक सो तेरानबै योजन और सत्तरह कला अधिक (४०७४१९३ १७/३१ योजन) है ॥२६॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. वरुण ।

चालं जोयण-लक्खं, ति-सहस्सा दो सयाणि पणुवीसं ।
पणवीस-कला[1]-एसा, [2]वित्थारो [3]णलिण - इंदस्स ॥२७॥

४००३२२५ । $\frac{25}{31}$ ।

अर्थ—नलिन इन्द्रकका विस्तार चालीस लाख तीन हजार दो सौ पच्चीस योजन और पच्चीस कला अधिक (४००३२२५$\frac{25}{31}$ योजन) जानना चाहिए ॥२७॥

उणताल-लक्ख-जोयण-बत्तीस-सहस्स-दो-सयाणि पि ।
अट्ठावण्णा दु - कला, कंचण - णामस्स वित्थारो ॥२८॥

३९३२२५८ । $\frac{2}{31}$ ।

अर्थ—कञ्चन नामक इन्द्रकका विस्तार उनतालीस लाख बत्तीस हजार दो सौ अट्ठावन योजन और दो कला (३९३२२५८$\frac{2}{31}$ यो०) प्रमाण है ॥२८॥

अडतीस-लक्ख-जोयण, इगिसट्ठि-सहस्स-दो-सयाणि पि ।
णउदि - जुदाणि दसंसा, रोहिद - णामस्स वित्थारो ॥२९॥

३८६१२९० । $\frac{10}{31}$ ।

अर्थ—रोहित नामक इन्द्रकका विस्तार अड़तीस लाख इकसठ हजार दो सौ नब्बे योजन और दस भाग अधिक (३८६१२९०$\frac{10}{31}$ योजन) है ॥२९॥

सगतीस-लक्ख-जोयण, णउदि-सहस्साणि ति-सय-बावीसा ।
अट्ठारसा कलाओ, [4]चंचा - णामस्स विक्खंभो ॥३०॥

३७९०३२२ । $\frac{18}{31}$ ।

अर्थ—चंचत् नामक इन्द्रकका विस्तार सैंतीस लाख नब्बे हजार तीन सौ बाईस योजन और अठारह कला अधिक (३७९०३२२$\frac{18}{31}$ योजन) है ॥३०॥

सत्तत्तीसं लक्खा, उणवीस-सहस्स-ति-सय-जोयणया ।
चउवण्णा छब्बीसा, कलाओ मरुदस्स विक्खंभो ॥३१॥

३७१९३५४ । $\frac{26}{31}$ ।

---

१. द. ब. क. कलाए साधिय, ज. ठ. कलाए सा । २. ब. ज. क. वित्थारे । ३. द. ब. क. ज. ठ. णलिणं इंदस्स विक्खेवो । ४. द. ब. क. ज. ठ. चंचा ।

अर्थ—मरुत् इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण सैंतीस लाख उन्नीस हजार तीन सौ चौवन योजन और छब्बीस कला अधिक (३७१६३५४ २६/३१ योजन) है ॥३१॥

छत्तीसं लक्खाणिं, अडदाल-सहस्स-ति-सय-जोयणया ।
सगसीदी तिण्णि-कला, रिद्धिस[1]-इंदस्स परिसंखा ॥३२॥

३६४८३८७ । ३/३१ ।

अर्थ—ऋद्धीश इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण छत्तीस लाख अड़तालीस हजार तीन सौ सत्तासी योजन और तीन कला अधिक (३६४८३८७ ३/३१ योजन) है ॥३२॥

सत्तत्तरि सहस्सा, चउस्सया पंचतीस - लक्खाणि ।
उणवीस-जोयणाणिं, एक्करस-कलाओ वेरुलिय-इंदं ॥३३॥

३५७७४१९ । ११/३१ ।

अर्थ—वैडूर्य इन्द्रकका विस्तार पैंतीस लाख सतत्तर हजार चार सौ उन्नीस योजन और ग्यारह कला अधिक (३५७७४१९ ११/३१ योजन) है ॥३३॥

पंचत्तीसं लक्खा, छ-सहस्सा चउ-सयाणि इगिवण्णा ।
जोयणया उणवीसा, कलाओ रुजगस्स वित्थारो ॥३४॥

३५०६४५१ । १९/३१ ।

अर्थ—रुचक इन्द्रकका विस्तार पैंतीस लाख छह हजार चार सौ इक्यावन योजन और उन्नीस कला अधिक (३५०६४५१ १९/३१ यो०) है ॥३४॥

चउतीसं लक्खाणिं, पणतीस-सहस्स-चउसयाणिं पि ।
तेसीदि जोयणाणिं, सगवीस-कलाओ रुचिर-वित्थारो ॥३५॥

३४३५४८३ । २७/३१ ।

अर्थ—रुचिर इन्द्रकका विस्तार चौंतीस लाख पैंतीस हजार चार सौ तेरासी योजन और सत्ताईस कला अधिक (३४३५४८३ २७/३१ योजन) है ॥३५॥

तेत्तीसं लक्खाणिं, चउसट्ठि-सहस्स-पण-सयाणि पि ।
सोलस य जोयणाणिं, चत्तारि कलाओ अंक-वित्थारो ॥३६॥

३३६४५१६ । ४/३१ ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. रिदस ।

अर्थ—अंक इन्द्रकका विस्तार तैंतीस लाख चौंसठ हजार पाँच सौ सोलह योजन और चार कला अधिक (३३६४५१६ ४/३१ योजन) है ॥३६॥

बत्तीसं चिय लक्खा, तेणउदि-सहस्स-पण-सयाणि पि ।
अडदाल-जोयणाणि, बारस-भागा फलिह - रुंदो ॥३७॥

३२९३५४८ । १२/३१ ।

अर्थ—स्फटिक इन्द्रकका विस्तार बत्तीस लाख तेरानबै हजार पाँच सौ अड़तालीस योजन और बारह भाग अधिक (३२९३५४८ १२/३१ योजन) है ॥३७॥

बत्तीस-लक्ख-जोयण, बावीस-सहस्स-पण-सया सीदी ।
अंसा य वीसमेत्ता, रुंदो तवणिज्ज - णामस्स ॥३८॥

३२२२५८० । २०/३१ ।

अर्थ—तपनीय नामक इन्द्रकका विस्तार बत्तीस लाख बाईस हजार पाँच सौ अस्सी योजन और बीस भाग प्रमाण अधिक (३२२२५८० २०/३१ योजन) है ॥३८॥

इगितीस-लक्ख-जोयण, इगिवण्ण-सहस्स-छ-सय-बारं च ।
अंसा [1]अट्ठावीसं, वित्थारो मेघ - णामस्स ॥३९॥

३१५१६१२ । २८/३१ ।

अर्थ—मेघ नामक इन्द्रकका विस्तार इकतीस लाख इक्यावन हजार छह सौ बारह योजन और अट्ठाईस भाग अधिक (३१५१६१२ २८/३१ योजन) है ॥३९॥

तीसं चिय लक्खाणि, सीदि-सहस्साणि छस्सयाणि च ।
पणदाल-जोयणाणि, पंच कला अब्भ - इंदए वासो ॥४०॥

३०८०६४५ । ५/३१ ।

अर्थ—अभ्र इन्द्रकका विस्तार तीस लाख अस्सी हजार छह सौ पैंतालीस योजन और पाँच कला अधिक (३०८०६४५ ५/३१ यो०) है ॥४०॥

सत्तत्तरि-जुद-छ-सया, णव य सहस्साणि तीस-लक्खाणि ।
जोयणया तह तेरस, कलाओ हारिद्द - विक्खंभो ॥४१॥

३००९६७७ । १३/३१ ।

---

[1] ब. क. अट्ठावीसा ।

अर्थ—हारिद्र नामक इन्द्रकका विस्तार तीस लाख नौ हजार छह सौ सतत्तर योजन और तेरह कला अधिक (३००९६७७ १३/३१ योजन) है ।।४१।।

एक्कोणतीस-लक्खा, अडतीस-सहस्स-सग-सयाणि च ।
णव जोयणाणि अंसा, इगिवीसं पउम - वित्थारो ।।४२।।

२९३८७०९ । २१/३१ ।

अर्थ—पद्म इन्द्रकका विस्तार उनतीस लाख अड़तीस हजार सात सौ नौ योजन और इक्कीस भाग अधिक (२९३८७०९ २१/३१ योजन) है ।।४२।।

अट्ठावीसं लक्खा, सगसट्ठी-सहस्स-सग-सयाणि पि ।
इगिदाल-जोयणाणि, कलाओ उणतीस लोहिदे वासो ।।४३।।

२८६७७४१ । २९/३१ ।

अर्थ—लोहित इन्द्रकका विस्तार अट्ठाईस लाख सड़सठ हजार सात सौ इकतालीस योजन और उनतीस कला अधिक (२८६७७४१ २९/३१ योजन) है ।।४३।।

सत्तावीसं लक्खा, छण्णउदि-सहस्स-सग-सयाणि पि ।
चउहत्तरि-जोयणया, छ-कलाओ वज्ज - विक्खंभो ।।४४।।

२७९६७७४ । ६/३१ ।

अर्थ—वज्र इन्द्रकका विस्तार सत्ताईस लाख छ्यानबे हजार सात सौ चौहत्तर योजन और छह कला अधिक (२७९६७७४ ६/३१ योजन) है ।।४४।।

सगवीस-लक्ख-जोयण, पणुवीस-सहस्स अडसयं छक्का ।
चोद्दस कलाओ कहिदा, णंदावट्टस्स विक्खंभो ।।४५।।

२७२५८०६ । १४/३१ ।

अर्थ—नन्द्यावर्त इन्द्रकका विस्तार सत्ताईस लाख पच्चीस हजार आठ सौ छह योजन और चौदह कला अधिक (२७२५८०६ १४/३१ योजन) कहा गया है ।।४५।।

छब्बीसं चिय लक्खा, चउवण्ण-सहस्स-अड-सयाणि पि ।
अडतीस - जोयणाणि, बावीस - कला पहंकरे रुंदं ।।४६।।

२६५४८३८ । २२/३१ ।

अर्थ—प्रभंकर इन्द्रकका विस्तार छब्बीस लाख चौवन हजार आठ सौ अड़तीस योजन और बाईस कला प्रमाण (२६५४८३८ २२/३१ योजन) है ।।४६।।

पणुवीसं लक्खाणि, तेसीदि-सहस्स-अट्ठ-सयाणि पि ।
सत्तरि य [1]जोयणाणि, तीस - कला पिट्ठके वासो ॥४७॥

२५८३८७० । $\frac{३०}{३१}$ ।

अर्थ—पृष्ठक इन्द्रकका विस्तार पच्चीस लाख तेरासी हजार आठ सौ सत्तर योजन और तीस कला प्रमाण (२५८३८७०$\frac{३०}{३१}$ योजन) है ॥४७॥

बारस-सहस्स-णव-सय-ति-उत्तरा पंचवीस-लक्खाणि ।
जोयणए सत्तंसा, गजाभिधाणस्स विक्खंभो ॥४८॥

२५१२९०३ । $\frac{७}{३१}$ ।

अर्थ—गज नामक इन्द्रकका विस्तार पच्चीस लाख बारह हजार नौ सौ तीन योजन और सात भाग अधिक (२५१२९०३$\frac{७}{३१}$ योजन) है ॥४८॥

चउवीसं लक्खाणि, इगिदाल-सहस्स-णव-सयाणि पि ।
पणतीस-जोयणाणि, पण्णरस-कलाओ [2]मित्त-वित्थारो ॥४९॥

२४४१९३५ । $\frac{१५}{३१}$ ।

अर्थ—मित्र इन्द्रकका विस्तार चौबीस लाख इकतालीस हजार नौ सौ पैंतीस योजन और पन्द्रह कला अधिक (२४४१९३५$\frac{१५}{३१}$ योजन) है ॥४९॥

तेवीसं लक्खाणि, णव-सय-जुत्ताणि सत्तरि-सहस्सा ।
सत्तट्ठि-जोयणाणि, तेवीस-कलाओ पहव-वित्थारो ॥५०॥

२३७०९६७ । $\frac{२३}{३१}$ ।

अर्थ—प्रभ इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख सत्तर हजार नौ सौ सड़सठ योजन और तेईस कला अधिक (२३७०९६७$\frac{२३}{३१}$) है ॥५०॥

तेवीस-लक्ख रुंदो, अंजणए जोयणाणि वणमाले ।
दुग-तिय-णह-णव-दुग-दुग-दुगंक-कमसो[3] कला अट्ठ ॥५१॥

२३००००० । २२२९०३२ । $\frac{८}{३१}$ ।

अर्थ—अञ्जन इन्द्रकका विस्तार तेईस लाख (२३०००००) योजन और वनमाल इन्द्रकका विस्तार दो, तीन, शून्य, नौ, दो, दो और दो इस अंक क्रमसे बाईस लाख उनतीस हजार बत्तीस योजन तथा आठ कला अधिक (२२२९०३२$\frac{८}{३१}$ योजन) है ॥५१॥

---

१. द. ब. क. जोयणाणि बत्तीस । २. ब. पमित्त । ३. द. दुगदुगगंकमरककमसो ।

इगिवीसं लक्खाणि, अट्ठावण्णा सहस्स जोयणया ।
चउसट्ठी-संजुत्ता, सोलस अंसा य णाग-वित्थारो ॥५२॥

२१५८०६४ । $\frac{१६}{३१}$ ।

अर्थ—नाग इन्द्रकका विस्तार इक्कीस लाख अट्ठावन हज़ार चौंसठ योजन और सोलह भाग अधिक (२१५८०६४$\frac{१६}{३१}$ योजन) है ॥५२॥

जोयणया छण्णउदी, सगसीदि-सहस्स-वीस-लक्खाणि ।
चउवीस - कला एवं, गरुडिंदय - रुंद - परिमाणं ॥५३॥

२०८७०९६ । $\frac{२४}{३१}$ ।

अर्थ—गरुड़ इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण बीस लाख सत्तासी हज़ार छ्यानबै योजन और चौबीस कला अधिक (२०८७०९६$\frac{२४}{३१}$ यो०) है ॥५३॥

सोलस-सहस्स-इगिसय-उणतीसं वीस-लक्ख-जोयणया ।
एक्क - कला विक्खंभो, लंगल - णामस्स णादव्वो ॥५४॥

२०१६१२९ । $\frac{१}{३१}$ ।

अर्थ—लांगल नामक इन्द्रकका विस्तार बीस लाख सोलह हज़ार एक सौ उनतीस योजन और एक कला अधिक (२०१६१२९$\frac{१}{३१}$ योजन) जानना चाहिए ॥५४॥

एक्कोणवीस-लक्खा, पणदाल-सहस्स इगिसयाणि च ।
इगिसट्ठि-जोयणा णव, कलाओ बलभद्द - वित्थारो ॥५५॥

१९४५१६१ । $\frac{९}{३१}$ ।

अर्थ—बलभद्र इन्द्रकका विस्तार उन्नीस लाख पैंतालीस हज़ार एक सौ इकसठ योजन और नौ कला अधिक (१९४५१६१$\frac{९}{३१}$ योजन) है ॥५५॥

चउहत्तरि सहस्सा, इगिसय-तेणउदि अट्ठरस-लक्खा ।
जोयणया सत्तरसं, कलाओ चक्कस्स वित्थारो ॥५६॥

१८७४१९३ । $\frac{१७}{३१}$ ।

अर्थ—चक्र इन्द्रकका विस्तार अठारह लाख चौहत्तर हज़ार एक सौ तेरानबै योजन और सत्तरह कला अधिक (१८७४१९३$\frac{१७}{३१}$ योजन) है ॥५६॥

अट्ठारस-लक्खाणि, ति-सहस्सा पंचवीस-जुद-दु-सया ।
जोयणया पणुवीसा, कलाओ रिट्ठस्स विक्खंभो ॥५७॥

१८०३२२५ । $\frac{२५}{३१}$ ।

अर्थ—अरिष्ट इन्द्रकका विस्तार अठारह लाख तीन हजार दो सौ पच्चीस योजन और पच्चीस कला अधिक (१८०३२२५ २५/३१ योजन) है ॥५७॥

अट्ठावण्णा दु-सया, बत्तीस-सहस्स सत्तरस-लक्खा ।
जोयणया दोण्णि कला, वासो सुरसमिदि-णामस्स ॥५८॥

१७३२२५८ । २/३१ ।

अर्थ—सुरसमिति नामक इन्द्रकका विस्तार सत्तरह लाख बत्तीस हजार दो सौ अट्ठावन योजन और दो कला अधिक (१७३२२५८ २/३१ योजन) है ॥५८॥

सोलस-जोयण-लक्खा, इगिसट्ठि-सहस्स दु-सय-णउदीओ ।
दस - मेत्ताओ कलाओ, बम्हिदय - रुंद - परिमाणं ॥५९॥

१६६१२९० । १०/३१ ।

अर्थ—ब्रह्म इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण सोलह लाख इकसठ हजार दो सौ नब्बे योजन और दस कला अधिक (१६६१२९० १०/३१ योजन) है ॥५९॥

बावीस-ति-सय-जोयण, णउदि-सहस्साणि पण्णरस-लक्खा ।
अट्ठारसा कलाओ, बम्हुत्तर - इंदए वासो ॥६०॥

१५९०३२२ । १८/३१ ।

अर्थ—ब्रह्मोत्तर इन्द्रकका विस्तार पन्द्रह लाख नब्बे हजार तीन सौ बाईस योजन और अठारह कला अधिक (१५९०३२२ १८/३१ योजन) है ॥६०॥

चउवण्ण-ति-सय-जोयण, उणवीस-सहस्स पण्णरस-लक्खा ।
छव्वीसं च कलाओ, वित्थारो बम्हहिदयस्स ॥६१॥

१५१९३५४ । २६/३१ ।

अर्थ—ब्रह्महृदय इन्द्रकका विस्तार पन्द्रह लाख उन्नीस हजार तीन सौ चौवन योजन और छब्बीस कला अधिक (१५१९३५४ २६/३१ योजन) है ॥६१॥

चोद्दस-जोयण-लक्खं, अडदाल-सहस्स-ति-सय-सगसीदी ।
तिण्णि कलाओ लंतव - इंदस्स रुंदस्स परिमाणं ॥६२॥

१४४८३८७ । ३/३१ ।

अर्थ—लान्तव इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण चौदह लाख अड़तालीस हजार तीन सौ सत्तासी योजन और तीन कला अधिक (१४४८३८७ ३/३१ योजन) है ॥६२॥

तेरस-जोयण-लक्खा, चउ-सय सत्तत्तरी-सहस्साणि ।
उणवीसं एक्कारस, कलाओ महसुक्क - विक्खंभो ।।६३।।

१३७७४१९ । $\frac{११}{३१}$ ।

अर्थ – महाशुक्र इन्द्रकका विस्तार तेरह लाख सतत्तर हजार चार सौ उन्नीस योजन और ग्यारह कला अधिक (१३७७४१९$\frac{११}{३१}$ यो०) है ।।६३।।

तेरस-जोयण-लक्खा, चउसट्ठि-सयाणि एक्कवण्णा य ।
एक्कोणवीस - अंसा, होदि सहस्सार - वित्थारो ।।६४।।

१३०६४५१ । $\frac{१९}{३१}$ ।

अर्थ—सहस्रार इन्द्रकका विस्तार तेरह लाख छह हजार चार सौ इक्यावन योजन और उन्नीस भाग अधिक (१३०६४५१$\frac{१९}{३१}$ यो०) है ।।६४।।

लक्खाणि बारसं चिय, पणतीस-सहस्स-चउ-सयाणि पि ।
तेसीदि जोयणाइं, सगवीस - कलाओ आणदे रुंदं ।।६५।।

१२३५४८३ । $\frac{२७}{३१}$ ।

अर्थ—आनत इन्द्रकका विस्तार बारह लाख पैंतीस हजार चार सौ तेरासी योजन और सत्ताईस कला अधिक (१२३५४८३$\frac{२७}{३१}$ योजन) है ।।६५।।

एक्कारस-लक्खाणि, चउसट्ठि-सहस्स पण-सयाणि पि ।
सोलस य जोयणाणि, चत्तारि कलाओ पाणदे रुंदं ।।६६।।

११६४५१६ । $\frac{४}{३१}$ ।

अर्थ—प्राणत इन्द्रकका विस्तार ग्यारह लाख चौंसठ हजार पाँच सौ सोलह योजन और चार कला अधिक (११६४५१६$\frac{४}{३१}$ योजन) है ।।६६।।

लक्खं दस-प्पमाणं, तेणउदि-सहस्स पण-सयाणि च ।
अडदाल - जोयणाइं, बारस - अंसा य पुप्फगे रुंदं ।।६७।।

१०९३५४८ । $\frac{१२}{३१}$ ।

अर्थ—पुष्पक इन्द्रकका विस्तार दस लाख तेरानबै हजार पाँच सौ अड़तालीस योजन और बारह भाग अधिक (१०९३५४८$\frac{१२}{३१}$ योजन) है ।।६७।।

दस-जोयण-लक्खाणि, बावीस-सहस्स पणुसया सीदी ।
वीस-कलाओ रुंदं, सायंकर[1]- इंदयस्स णादव्वं ॥६८॥

१०२२५८० । $\frac{२०}{३१}$ ।

अर्थ—शांतकर इन्द्रकका विस्तार दस लाख बाईस हजार पाँच सौ अस्सी योजन और बीस कला अधिक (१०२२५८०$\frac{२०}{३१}$ योजन) जानना चाहिए ॥६८॥

णव-जोयण-लक्खाणि, इगिवण्ण-सहस्स छ-सय बारसया ।
अट्ठावीस कलाओ, आरण - णामस्स विस्थारो ॥६९॥

९५१६१२ । $\frac{२८}{३१}$ ।

अर्थ—आरण इन्द्रकके विस्तारका प्रमाण अंक-क्रमसे नौ लाख इक्यावन हजार छह सौ बारह योजन और अट्ठाईस कला (९५१६१२$\frac{२८}{३१}$ योजन) जानना चाहिए ॥६९॥

अट्ठं चिय लक्खाणि, सीदि-सहस्साणि [2]छस्सयाणि च ।
पणदाल - जोयणाणि, पंच - कला अच्चुदे रुंदं ॥७०॥

८८०६४५ । $\frac{५}{३१}$ ।

अर्थ—अच्युत इन्द्रकका विस्तार आठ लाख अस्सी हजार छह सौ पैंतालीस योजन और पाँच कला अधिक (८८०६४५$\frac{५}{३१}$ यो०) है ॥७०॥

अट्ठं चिय लक्खाणि, णव य सहस्साणि छस्सयाणि च ।
सत्तत्तरि जोयणया, तेरस - अंसा सुदंसणे रुंदं ॥७१॥

८०९६७७ । $\frac{१३}{३१}$ ।

अर्थ—सुदर्शन इन्द्रकका विस्तार आठ लाख नौ हजार छह सौ सतत्तर योजन और तेरह भाग अधिक (८०९६७७$\frac{१३}{३१}$ यो०) है ॥७१॥

णव-जोयण सत्त-सया, [3]अडतीस-सहस्स सत्त-लक्खाणि ।
इगिवीस कला रुंदं, अमोघ - णामम्मि इंदए होदि ॥७२॥

७३८७०९ । $\frac{२१}{३१}$ ।

अर्थ—अमोघ नामक इन्द्रकका विस्तार सात लाख अड़तीस हजार सात सौ नौ योजन और इक्कीस कला अधिक (७३८७०९$\frac{२१}{३१}$ योजन) है ॥७२॥

---

१. द. ज. ठ. सयंकरा, क. सयंकर । २. द. ब. क. छस्सयाणं । ३. द. ब. अडतीसि ।

इगिदालुत्तर-सग-सय, सत्तट्ठि-सहस्स-जोयण छ-लक्खा ।
उणतीस - कला कहिदो, वित्थारो सुप्पबुद्धस्स ॥७३॥

६६७७४१ । $\frac{२९}{३१}$ ।

अर्थ—सुप्रबुद्ध इन्द्रकका विस्तार छह लाख सड़सठ हजार सात सौ इकतालीस योजन और उनतीस कला अधिक (६६७७४१$\frac{२९}{३१}$ यो०) कहा गया है ॥७३॥

चउहत्तरि-जुद-सग-सय, छण्णउदि-सहस्स पंच-लक्खाणि ।
जोयणया छच्च कला, जसहर - णामस्स विक्खंभो ॥७४॥

५९६७७४ । $\frac{६}{३१}$ ।

अर्थ—यशोधर नामक इन्द्रकका विस्तार पाँच लाख छयानबे हजार सात सौ चौहत्तर योजन और छह कला अधिक (५९६७७४$\frac{६}{३१}$ योजन) है ॥७४॥

छज्जोयण अट्ठ-सया, पणुवीस-सहस्स पंच-लक्खाणि ।
चोद्दस-कलाओ वासो, सुभद्द - णामस्स [1]परिमाणं ॥७५॥

५२५८०६ । $\frac{१४}{३१}$ ।

अर्थ—सुभद्र नामक इन्द्रकका विस्तार पाँच लाख पच्चीस हजार आठ सौ छह योजन और चौदह कला अधिक (५२५८०६$\frac{१४}{३१}$ यो०) है ॥७५॥

अट्ठ-सया अडतीसा, लक्खा चउरो सहस्स चउवण्णा ।
जोयणया बावीसं, अंसा सुविसाल विक्खंभो ॥७६॥

४५४८३८ । $\frac{२२}{३१}$ ।

अर्थ—सुविशाल इन्द्रकका विस्तार चार लाख चौवन हजार आठ सौ अड़तीस योजन और बाईस भाग (४५४८३८$\frac{२२}{३१}$ यो०) प्रमाण है ॥७६॥

सत्तरि-जुद-अट्ठ-सया, तेसीदि-सहस्स जोयण-ति-लक्खा ।
तीस - कलाओ सुमणस - णामस्स हवेदि वित्थारो ॥७७॥

३८३८७० । $\frac{३०}{३१}$ ।

अर्थ—सुमनस नामक इन्द्रकका विस्तार तीन लाख तेरासी हजार आठ सौ सत्तर योजन और तीस कला (३८३८७०$\frac{३०}{३१}$ यो०) प्रमाण है ॥७७॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. माणओ ।

बारस-सहस्स णव-सय, ति-उत्तरा जोयणाणि तिय-लक्खा ।
सत्त - कलाओ वासो, सोमणसे इंदए भणिदो ॥७८॥

३१२९०३ । $\frac{७}{३१}$ ।

अर्थ—सौमनस इन्द्रकका विस्तार तीन लाख बारह हजार नौ सौ तीन योजन और सात कला (३१२९०३$\frac{७}{३१}$ योजन) प्रमाण कहा गया है ॥७८॥

पणतीसुत्तर-णव-सय, इगिदाल-सहस्स जोयण-दु-लक्खा ।
पण्णरस - कला रुंदं, पीदिंकर - इंदए कहिदो ॥७९॥

२४१९३५ । $\frac{१५}{३१}$ ।

अर्थ—प्रीतिङ्कर इन्द्रकका विस्तार दो लाख इकतालीस हजार नौ सौ पैंतीस योजन और पन्द्रह कला (२४१९३५$\frac{१५}{३१}$ यो०) प्रमाण कहा गया है ॥७९॥

सत्तरि-सहस्स णव-सय, सत्तट्ठी-जोयणाणि इगि-लक्खा ।
तेवीसंसा वासो, आइच्चे इंदए होदी ॥८०॥

१७०९६७ । $\frac{२३}{३१}$ ।

अर्थ—आदित्य इन्द्रकका विस्तार एक लाख सत्तर हजार नौ सौ सड़सठ योजन और तेईस कला (१७०९६७$\frac{२३}{३१}$ योजन) प्रमाण है ॥८०॥

एक्कं जोयण - लक्खं, वासो सव्वट्ठसिद्धि-णामस्स ।
एवं तेसट्ठीणं, वासो सिट्ठो सिस्सण बोहट्ठं ॥८१॥

१००००० । ६३ ।

अर्थ—सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रकका विस्तार एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण है । इसप्रकार तिरेसठ (६३) इन्द्रकोंका विस्तार शिष्योंके बोधनार्थ कहा गया है ॥८१॥

समस्त इन्द्रक विमानोंका एकत्रित विस्तार इस प्रकार है—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

इन्द्रक विमानोंका विस्तार—

क्र.	इन्द्रकोंके नाम	इन्द्रक विमानोंका विस्तार	क्र.	इन्द्रकोंके नाम	इन्द्रक विमानोंका विस्तार	क्र.	इन्द्रकोंके नाम	इन्द्रक विमानोंका विस्तार
१.	ऋतु	४५००००० यो०	२२.	हारिद्र	३००९६७७ १३/३१ यो०	४३.	ब्रह्महृदय	१५१९३५४ २६/३१ यो०
२.	विमल	४४२९०३२ ८/३१ ,,	२३.	पद्म	२९३८७०९ २१/३१ ,,	४४.	लान्तव	१४४८३८७ ३/३१
३.	चन्द्र	४३५८०६४ १६/३१	२४.	लोहित	२८६७७४१ २९/३१ ,,	४५.	महाशुक्र	१३७७४१९ ११/३१
४.	वल्गु	४२८७०९६ २४/३१ ,,	२५	वज्र	२७९६७७४ ६/३१ ,	४६.	सहस्रार	१३०६४५१ १९/३१
५.	वीर	४२१६१२९ १/३१	२६	नन्द्या०	२७२५८०६ १४/३१ ,,	४७	आनत	१२३५४८३ २७/३१
६.	अरुण	४१४५१६१ ९/३१	२७.	प्रभङ्कर	२६५४८३८ २२/३१ ,,	४८.	प्राणत	११६४५१६ ४/३१
७.	नन्दन	४०७४१९३ १७/३१	२८	पृष्ठक	२५८३८७० ३०/३१ ,,	४९	पुष्पक	१०९३५४८ १२/३१
८	नलिन	४००३२२५ २५/३१ ,,	२९.	गज	२५१२९०३ ७/३१ ,,	५०.	शातंकर	१०२२५८० २०/३१
९.	कञ्चन	३९३२२५८ २/३१	३०.	मित्र	२४४१९३५ १५/३१ ,,	५१.	आरण	९५१६१२ २८/३१
१०.	रोहित	३८६१२९० १०/३१	३१.	प्रभ	२३७०९६७ २३/३१ ,,	५२	अच्युत	८८०६४५ ५/३१
११.	चञ्चत्	३७९०३२२ १८/३१ ,,	३२.	अञ्जन	२३००००० यो०	५३.	सुदर्शन	८०९६७७ १३/३१
१२.	मरुत्	३७१९३५४ २६/३१	३३.	वनमाल	२२२९०३२ ८/३१ ,,	५४.	अमोघ	७३८७०९ २१/३१
१३.	ऋद्धीश	३६४८३८७ ३/३१	३४.	नाग	२१५८०६४ १६/३१ ,,	५५.	सुप्रबुद्ध	६६७७४१ २९/३१
१४.	वैडूर्य	३५७७४१९ ११/३१	३५.	गरुड	२०८७०९६ २४/३१ ,	५६.	यशोधर	५९६७७४ ६/३१
१५.	रुचक	३५०६४५१ १९/३१	३६.	लांगल	२०१६१२९ १/३१ ,,	५७.	सुभद्र	५२५८०६ १४/३१
१६.	रुचिर	३४३५४८३ २७/३१	३७.	बलभद्र	१९४५१६१ ९/३१ ,	५८.	सुविशाल	४५४८३८ २२/३१
१७.	अङ्क	३३६४५१६ ४/३१ ,,	३८.	चक्र	१८७४१९३ १७/३१ ,,	५९.	सुमनस्	३८३८७० ३०/३१
१८.	स्फटिक	३२९३५४८ १२/३१ ,,	३९	अरिष्ट	१८०३२२५ २५/३१ ,,	६०.	सौमनस्	३१२९०३ ७/३१
१९.	तपनीय	३२२२५८० २०/३१ ,,	४०	सुरसमिति	१७३२२५८ २/३१ ,	६१.	प्रीतिङ्कर	२४१९३५ १५/३१
२०.	मेघ	३१५१६१२ २८/३१ ,,	४१	ब्रह्म	१६६१२९० १०/३१ ,,	६२.	आदित्य	१७०९६७ २३/३१
२१.	अभ्र	३०८०६४५ ५/३१	४२.	ब्रह्मोत्तर	१५९०३२२ १८/३१ ,,	६३	सर्वार्थसिद्धि	१००००० यो०

ऋतु इन्द्रकादिके श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम एवं उनका विन्यास क्रम—

सव्वाण इंदयाणं, चउसु दिसासुं पि सेढि-बद्धाणि ।
चत्तारि वि विदिसासुं, होंति पइण्णय-विमाणाओ ॥८२॥

अर्थ—सब इन्द्रक विमानोंकी चारों दिशाओंमें श्रेणीबद्ध और चारों ही विदिशाओंमें प्रकीर्णक विमान होते हैं ॥८२॥

उडु-णामे पत्तेक्कं, सेढि-गदा चउ-दिसासु बासट्ठी ।
एक्केक्कूणा सेसे, पडिदिसमाइच्च[1] - परियंतं ॥८३॥

अर्थ—ऋतु नामक विमानकी चारों दिशाओंमेंसे प्रत्येक दिशामें बासठ श्रेणीबद्ध हैं। इसके आगे आदित्य इन्द्रक पर्यन्त शेष इन्द्रकोंकी प्रत्येक दिशामें एक-एक कम होता गया है ॥८३॥

उडु-णामे सेढिगया, एक्केक्क-दिसाए होंति तेसट्ठी ।
एक्केक्कूणा सेसे, जाव य सव्वट्ठसिद्धि त्ति ॥८४॥

(पाठान्तरम्)

अर्थ—ऋतु नामक इन्द्रक विमानके आश्रित एक-एक दिशामें तिरेसठ श्रेणीबद्ध विमान हैं। इसके आगे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त शेष विमानोंमें एक-एक कम होता गया है ॥८४॥

(पाठान्तर)

बासट्ठी सेढिगया, पभासिदा जेहि ताण उवएसे ।
सव्वट्ठे वि चउद्दिसमेक्केक्कं सेढि - बद्धा य ॥८५॥

अर्थ—जिन आचार्योंने (ऋतु विमानके आश्रित प्रत्येक दिशामें) बासठ श्रेणीबद्ध विमानोंका निरूपण किया है उनके उपदेशानुसार सर्वार्थसिद्धि विमानके आश्रित भी चारों दिशाओंमें एक-एक श्रेणीबद्ध विमान है ॥८५॥

पढमिंदय-पहुदीदो, पीदिंकर - णाम - इंदयं जाव ।
तेसुं चउसु दिसासुं, सेढि - गदाणं इमे णामा ॥८६॥

अर्थ—प्रथम इन्द्रकसे लेकर प्रीतिङ्कर नामक (६१ वें) इन्द्रक पर्यन्त चारों दिशाओंमें उनके आश्रित रहनेवाले श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम ये हैं ॥८६॥

---

१. द. ब. ज. ठ. माइच्चस्स ।

उडुपह-उडुमज्झिम-उडु-आवत्तय-उडु-विसिट्ठ-णामेहिं ।
उडु - इंदयस्स एदे, पुव्वादि - पदाहिणा[1] होंदि ॥८७॥

अर्थ—ऋतुप्रभ, ऋतुमध्यम, ऋतु-आवर्त और ऋतु-विशिष्ट, ये चार श्रेणीबद्ध विमान ऋतु इन्द्रकके समीप पूर्वादिक दिशाओंमें प्रदक्षिण-क्रमसे हैं ॥८७॥

विमलपह-विमल-मज्झिम, विमलावत्तं खु विमल-णामम्मि ।
विमल - विसिट्ठो तुरिमो, पुव्वादि - पदाहिणा[2] होंदि ॥८८॥

अर्थ—विमलप्रभ, विमलमध्यम, विमलावर्त और चतुर्थ विमलविशिष्ट, ये चार श्रेणीबद्ध विमान विमल नामक (दूसरे) इन्द्रकके आश्रित पूर्वादिक प्रदक्षिण-क्रमसे हैं ॥८८॥

एवं [3]चंदादीणं, णिय-णिय-णामाणि सेढिबद्धेसुं ।
पढमेसुं पह - मज्झिम - आवत्त-विसिट्ठ-जुत्ताणि ॥८९॥

अर्थ—इसीप्रकार चन्द्रादिक इन्द्रकोंके आश्रित रहनेवाले प्रथम श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम प्रभ, मध्यम, आवर्त और विशिष्ट इन पदोंसे युक्त अपने-अपने नामोंके अनुसार ही हैं ॥८९॥

उडु - इंदय - पुव्वादी, सेढिगया जे हवंति बासट्ठी ।
ताणं बिदियादीणं, एक्क-दिसाए भणामो णामाइं ॥९०॥

अर्थ—ऋतु इन्द्रककी पूर्वादिक दिशाओंमें जो बासठ श्रेणीबद्ध हैं उनके द्वितीयादिकोंके एक दिशाके नाम कहते हैं ॥९०॥

संठिय-णामा सिरिवच्छ-वट्ट-णामा य कुसुम-चावाणि ।
छत्तंजण - कलसा[4] वसह-सीह-सुर-असुर-मणहरया ॥९१॥

१३ ।

भद्दं सव्वदोभद्दं, दियसोत्थिय अंदिसाभिधाणं च ।
दिगु-वड्ढमाण-मुरजं, [5]अब्भय - इंदो महिंदो य ॥९२॥

९ ।

तह य उवइंदं कमलं, कोकणदं चक्कमुप्पलं कुमुदं ।
पुंडरिय-सोमयाणि, तिमिसंक - सरंत पासं च ॥९३॥

१२ ।

१-२. द. ब. क. ज. ठ. पदाहिणे । ३. द. ब. क. ज. ठ. चउदादीणं । ४. द. ब. क. ज. ठ. कलासा । ५. द. ब. क. ज. ठ. अभ ।

गगणं सुज्जं सोमं, कंचण-णक्खत्त-चंदणा अमलं।
विमलं णंदण-सोमणस-सायरा उदिय-समुदिया णामा ॥९४॥

१३।

धम्मवरं वेसमणं, कण्णं कणयं तहा य भूदहिदं।
णामेण लोयकंतं, णंदीसरयं अमोघपासं च ॥९५॥

८।

जलकंतं रोहिदयं, श्रमदब्भासं तहेव सिद्धंतं।
कुंडल - सोमा एवं, इगिसट्ठी सेढि - बद्धाणि ॥९६॥

६।

अर्थ—संस्थित नामक १, श्रीवत्स २, वृत्त ३, कुसुम ४, चाप ५, छत्र ६, अञ्जन ७, कलश ८, वृषभ ९, सिंह १०, सुर ११, असुर १२, मनोहर १३, भद्र १४, सर्वतोभद्र १५, दिक्स्वस्तिक १६, अंदिश १७, दिगु १८, वर्धमान १९, मुरज २०, अभयेन्द्र २१, माहेन्द्र २२, उपार्ध २३, कमल २४, कोकनद २५, चक्र २६, उत्पल २७, कुमुद २८, पुण्डरीक २९, सोमक ३०, तिमिस्रा ३१, अंक ३२, स्वरान्त ३३, पास ३४, गगन ३५, सूर्य ३६, सोम ३७, कंचन ३८, नक्षत्र ३९, चन्दन ४०, अमल ४१, विमल ४२, नन्दन ४३, सौमनस ४४, सागर ४५, उदित ४६, समुदित ४७, धर्मवर ४८, वैश्रवण ४९, कर्ण ५०, कनक ५१ तथा भूतहित ५२, लोककान्त ५३, सरय ५४, अमोघस्पर्श ५५, जलकान्त ५६, रोहितक ५७, अमितभास ५८ तथा सिद्धान्त ५९, कुण्डल ६० और सौम्य ६१ इसप्रकार (ऋतु इन्द्रककी पूर्व दिशा सम्बन्धी) ये इकसठ श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥९१-९६॥

ऋतु इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम—

पुरिमावली-पवण्णिद - संठिय-पहुदीसु तेसु पत्तेक्कं।
णिय-णामेसुं मज्झिम-आवत्त-विसिट्ठ-आइ जोएज्ज ॥९७॥

अर्थ—पूर्व पंक्तिमें वर्णित उन संस्थित आदि श्रेणीबद्ध विमानोंमेंसे प्रत्येकके अपने-अपने नाममें मध्यम, आवर्त और विशिष्ट आदि जोड़ना चाहिए ॥९७॥

विशेषार्थ—ऋतु इन्द्रक विमान मध्यमें है। इसकी पूर्वादि दिशाओंमें ६२-६२ श्रेणीबद्ध विमान हैं। जिनके क्रमशः नाम इसप्रकार हैं—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

श्रेणीबद्ध विमानोंकी क्रम संख्या	ऋतु इन्द्रक विमान की—			
	पूर्व दिशामें	दक्षिण में	पश्चिम में	उत्तरमें
१	ऋतुप्रभ	ऋतुमध्यम	ऋतु आवर्त	ऋतुविशिष्ट
२	संस्थितप्रभ	संस्थितमध्यम	संस्थितावर्त	संस्थितविशिष्ट
३	श्रीवत्सप्रभ	श्रीवत्समध्यम	श्रीवत्सावर्त	श्रीवत्सविशिष्ट
४	वृत्तप्रभ	वृत्तमध्यम	वृत्तावर्त	वृत्तविशिष्ट
५	कुसुमप्रभ	कुसुममध्यम	कुसुमावर्त	कुसुमविशिष्ट
६	चापप्रभ	चापमध्यम	चापावर्त	चापविशिष्ट
७	छत्रप्रभ	छत्रमध्यम	छत्रावर्त	छत्रविशिष्ट
८	अंजनप्रभ	अंजनमध्यम	अंजनावर्त	अंजनविशिष्ट
९	कलशप्रभ	कलशमध्यम	कलशावर्त	कलशविशिष्ट
१०	वृषभप्रभ	वृषभमध्यम	वृषभावर्त	वृषभविशिष्ट इत्यादि

प्रत्येक इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम—

एवं चउसु दिसासुं, णामेसुं दक्खिणादिय-दिसासुं ।
सेढिगदाणं णामा, पीदिकर - इंदयं जाव ॥९८॥

अर्थ—इसप्रकार दक्षिणादिक चारों दिशाओंमें प्रीतिङ्कर नामक (६१ वें) इन्द्रक पर्यन्त श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम हैं ॥९८॥

नोट:—इसी अधिकार की गाथा ८९ द्रष्टव्य है ।

आइच्च-इंदयस्स य, पुव्वादिसु लच्छि-लच्छिमालिणिया ।
वइरा - वइरावणिया, चत्तारो वर - विमाणाणि ॥९९॥

अर्थ—आदित्य इन्द्रककी पूर्वादिक दिशाओंमें लक्ष्मी, लक्ष्मीमालिनी, वज्र और वज्रावनि, ये चार उत्तम विमान हैं ॥९९॥

विजयंत - वइजयंतं, जयंतमपराजिदं च चत्तारो ।
पुव्वादि - विमाणाणि, [1]ठिदाणि सव्वट्ठसिद्धिस्स ॥१००॥

अर्थ—विजयन्त, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित, ये चार विमान सर्वार्थसिद्धिकी पूर्वादिक दिशाओंमें स्थित हैं ॥१००॥

श्रेणीबद्ध विमानोंकी अवस्थिति—

उडु-सेढोबद्धद्धं, सयंभुरमणंबु-रासि-पणिधि-गदं ।
सेसा[2] आइल्लेसुं, तिसु दीवेसुं तिसुं समुद्देसुं ॥१०१॥

३१ । १५ । ८ । ४ । २ । १ । १ ।

अर्थ—ऋतु इन्द्रकके अर्ध श्रेणीबद्ध स्वयम्भूरमण समुद्रके प्रणिधि भागमें स्थित हैं। शेष श्रेणीबद्ध विमान आदिके अर्थात् स्वयम्भूरमण समुद्रसे पूर्वके तीन द्वीप और तीन समुद्रोंपर स्थित हैं ॥१०१॥

एवं मित्तिंदंतं, विण्णासो होदि सेढिबद्धाणं ।
कमसो आइल्लेसुं, तिसु दीवेसुं ति - जलहीसुं ॥१०२॥

अर्थ—इसप्रकार मित्र इन्द्रक पर्यन्त श्रेणीबद्धोंका विन्यास क्रमशः आदिके तीन द्वीपों और तीन समुद्रोंके ऊपर है ॥१०२॥

पभ-पत्थलादि-परदो, जाव सहस्सार-पत्थलंतो त्ति ।
आइल्ल - तिण्णि - दीवे, दोण्णि-समुद्दम्मि सेसाओ ॥१०३॥

अर्थ—प्रभ प्रस्तारसे आगे सहस्रार प्रस्तार पर्यन्त शेष, आदिके तीन द्वीपों और दो समुद्रों पर स्थित हैं ॥१०३॥

तत्तो आणद-पहुदी, जाव अमोघो त्ति सेढिबद्धाणं ।
आदिल्ल-दोण्णि-दीवे, दोण्णि - समुद्दम्मि सेसाओ ॥१०४॥

अर्थ—इसके आगे आनत पटलसे लेकर अमोघ पटल पर्यन्त शेष श्रेणीबद्धोंका विन्यास आदिके दो द्वीपों और दो समुद्रोंके ऊपर है ॥१०४॥

तह सुप्पबुद्ध-पहुदी, जाव य सुविसालओ त्ति सेढिगदा ।
आदिल्ल - एक्क - दीवे, दोण्णि समुद्दम्मि सेसाओ ॥१०५॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. ठिदाए । २. द. सेसुं, ब. क. ज. ठ. सेसं ।

अर्थ—तथा सुप्रबुद्ध पटलसे लेकर सुविशाल पटल पर्यन्त शेष श्रेणीबद्ध, आदिके एक द्वीप और दो समुद्रोंके ऊपर स्थित हैं ॥१०५॥

सुमरणस सोमणसाए, आइल्लय-एक्क-दीव-उवहिम्मि ।
पीदिकराए विण्वं आइच्चे चरिम - दीवम्मि ॥१०६॥

अर्थ—सुमनस और सौमनस पटलके श्रेणीबद्ध विमान आदिके एक द्वीप तथा एक समुद्रके ऊपर स्थित हैं। इसीप्रकार दिव्य प्रीतिङ्कर पटलके भी श्रेणीबद्धोंका विन्यास समझना चाहिए। अन्तिम आदित्य पटलके श्रेणीबद्ध द्वीपके ऊपर स्थित हैं ॥१०६॥

विशेषार्थ :—ऋतु इन्द्रक सम्बन्धी ६२ श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास—

स्वयम्भूरमण समुद्रके ऊपर—ऋतुप्रभसे सोमक पर्यन्त ३१ श्रेणीबद्ध विमान स्थित हैं।

स्वयम्भूरमणद्वीपके ऊपर—तिमिस्रासे सागर पर्यन्त १५ विमान।

अहीन्द्रवर समुद्रके ऊपर—उदितसे लोककान्त तक ८ विमान।

अहीन्द्रवर द्वीपके ऊपर—सरयसे रोहितक पर्यन्त ४ विमान।

देववर समुद्रके ऊपर—अमितभास और सिद्धान्त २ विमान।

देववर द्वीपके ऊपर—कुण्डल नामक १ विमान और

यक्षवर समुद्रके ऊपर—सौम्य नामक (६२ वाँ) १ विमान है।

विमल इन्द्रकसे मित्र इन्द्रक पर्यन्तके २९ इन्द्रक विमानोंसे सम्बन्धित सर्व श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास क्रमशः यक्षवर द्वीप, भूतवर समुद्र, भूतवर द्वीप, नागवर समुद्र, नागवर द्वीप और वैडूर्यवर समुद्र, इन तीन द्वीपों और तीन समुद्रोंके ऊपर है।

प्रभ इन्द्रकसे सहस्रार इन्द्रक पर्यन्तके १६ इन्द्रक विमानोंसे सम्बन्धित सर्व श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास क्रमशः वैडूर्यवर द्वीप, वज्रवर समुद्र, वज्रवर द्वीप, काञ्चनवर समुद्र और काञ्चनवर द्वीप, इन तीन द्वीपों और दो समुद्रोंके ऊपर है।

आनत इन्द्रकसे अमोघ इन्द्रक पर्यन्तके ८ इन्द्रक विमानोंसे सम्बन्धित सर्व श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास क्रमशः रूप्यवर समुद्र, रूप्यवर द्वीप, हिंगुलवर-समुद्र और हिंगुलवर द्वीप, इन दो समुद्रों और दो द्वीपोंके ऊपर है।

सुप्रबुद्ध इन्द्रकसे सुविशाल इन्द्रक पर्यन्त ४ इन्द्रक सम्बन्धित श्रेणीबद्ध विमानों का विन्यास क्रमशः अञ्जनवर समुद्र, अञ्जनवर द्वीप और श्यामवर समुद्र, इन दो समुद्रों और एक द्वीप पर हैं।

सुमनस और सौमनस इन २ इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास क्रमशः श्यामवर द्वीप और सिन्दूरवर समुद्रके ऊपर है।

प्रीतिङ्कर इन्दक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानों का विन्यास सिन्दूरवर द्वीप और हरिसिन्दूर समुद्रके ऊपर है।

६२ वें आदित्य इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध विमानोंका विन्यास हरिसिन्दूर द्वीप पर है।

श्रेणीबद्ध विमानोंके तिर्यग् अन्तराल और विस्तारका प्रमाण—

होंति [1]असंखेज्जाणि, एदाणं जोयणाणि विच्चालं।
तिरिएणं सव्वाणं, तेत्तियमेत्तं च वित्थारं ॥१०७॥

अर्थ—इन सब विमानोंका तिर्यग्रूपसे असंख्यात योजनप्रमाण अन्तराल है और इनका विस्तार भी इतना (असंख्यात योजन प्रमाण) ही है ॥१०७॥

शेष द्वीप-समुद्रोंपर श्रेणीबद्धोंके विन्यासका नियम—

एवं [2]चउव्विहेसुं, सेढीबद्धाण होंदि उत्त - कमे।
अवसेस - दीव - उवहीसु णत्थि सेढीणं विण्णासो ॥१०८॥

अर्थ—इसप्रकार उक्त क्रमसे श्रेणीबद्धोंका विन्यास [3]चतुर्विध (चतुर्दिग्) रूपमें (?) है। अवशेष द्वीप-समुद्रोंमें श्रेणीबद्धोंका विन्यास नहीं है ॥१०८॥

विशेषार्थ—प्रथम ऋतु इन्द्रकसे आदित्य पर्यन्त ६२ इन्द्रक सम्बन्धी सर्व श्रेणीबद्ध विमानों का विन्यास अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्रसे प्रारम्भ होकर पूर्वके हरिसिन्दूर द्वीप पर्यन्त अर्थात् १५ समुद्र और १४ द्वीपों (२९ द्वीप-समुद्रों) के ऊपर चारों दिशाओं में है।

श्रेणीबद्ध विमानोंकी आकृति आदि—

सेढीबद्धे सव्वे, समवट्टा विविह-दिव्व-रयणमया।
उल्लसिद-धय-वडाया, णिरुवमरूवा विराजंति ॥१०९॥

अर्थ—सर्व श्रेणीबद्ध विमान समान गोल, विविध दिव्य रत्नोंसे निर्मित, ध्वजा-पताकाओं से उल्लसित और अनुपम रूपसे युक्त होते हुए शोभित हैं ॥१०९॥

प्रकीर्णक विमानोंका अवस्थान आदि—

एदाणं विच्चाले, पइण्ण-कुसुमोवयार-संठाणा[4]।
होंति पइण्णय-णामा, रयणमया विविसे वर-विमाणा ॥११०॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. असंखेज्जाणं। २. ब. चउव्विदेसुं। ३. अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ। ४. द. ब. क. ज. ठ. विमाणाणि।

अर्थ—इनके (श्रेणीबद्धोंके) अन्तरालमें विदिशाओंमें प्रकीर्णक अर्थात् बिखरे हुए पुष्पोंके सदृश स्थित, रत्नमय, प्रकीर्णक नामक उत्तम विमान हैं ॥११०॥

संखेज्जासंखेज्जं, सरूव-जोयण-पमाण-विक्खंभो ।
सव्वे पइण्णयाणं, विच्चालं तेत्तियं तेसुं ॥१११॥

अर्थ—सब प्रकीर्णकोंका विस्तार संख्यात एवं असंख्यात योजन प्रमाण है और इतना ही उनमें अन्तराल भी है ॥१११॥

तटवेदी—

इंदय-सेढीबद्ध-प्पइण्णयाणं पि वर - विमाणाणं[1] ।
उवरिम-तलेसु रम्मा, एक्केक्का होदि तड-वेदी ॥११२॥

अर्थ—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक, इन उत्तम विमानोंके उपरिम एवं तल भागोंमें एक-एक रमणीय तट-वेदी है ॥११२॥

चरियट्टालिय-चारू, वर-गोउरदार-तोरणाभरणा ।
धुव्वंत-धय-वडाया, अच्छरिय - विसेसकर - रूवा ॥११३॥

विण्णासो समत्तो ॥२॥

अर्थ—यह वेदी मार्गों एवं अट्टालिकाओंसे सुन्दर, उत्तम गोपुरद्वारों तथा तोरणोंसे सुशोभित, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे युक्त और आश्चर्य-विशेषको करनेवाले रूपसे संयुक्त है ॥११३॥

विन्यास समाप्त हुआ ॥२॥

कल्प और कल्पातीतका विभाग—

कप्पा-कप्पातीदा, इदि दुविहा होदि[2] णाक-पटला ते ।
बावण्ण - कप्प - पडला, कप्पातीदा य[3] एक्करसं ॥११४॥

५२ । ११ ।

अर्थ—स्वर्गमें कल्प और कल्पातीतके भेदसे पटल दो प्रकारके हैं । इनमेंसे बावन कल्प पटल और ग्यारह कल्पातीत (कुल ५२+११=६३) पटल हैं ॥११४॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. विमाणाणि । २. द. ब. क. ज. ठ. होंति । ३. द. ब. इय ।

बारस कप्पा केई, केई सोलस वदंति आइरिया ।
तिविहाणि भासिदाणि, कल्पातीदाणि पडलाणि ॥११५॥

अर्थ—कोई आचार्य कल्पोंकी संख्या बारह और कोई सोलह बतलाते हैं। कल्पातीत पटल तीन प्रकारसे कहे गये हैं ॥११५॥

हेट्ठिम मज्झे उवरिं, पत्तेक्कं ताण होंति चत्तारि ।
एवं बारस - कप्पा, सोलस उड्ढुड्ढमट्ठ जुगलाणि ॥११६॥

अर्थ—जो (आचार्य) बारह कल्प स्वीकार करते हैं उनके मतानुसार अधोभाग, मध्य-भाग और उपरिम भागमेंसे प्रत्येकमें चार-चार कल्प हैं। इसप्रकार सब बारह कल्प होते हैं। सोलह कल्पोंकी मान्यतानुसार ऊपर-ऊपर आठ युगलोंमें सोलह कल्प हैं ॥११६॥

गेवेज्जमणुद्दिसयं, अणुत्तरं इय हवंति तिवियप्पा ।
कप्पातीदा पडला, गेवेज्जं णव - विहं तेसुं ॥११७॥

अर्थ—ग्रैवेयक, अनुदिश और अनुत्तर, इसप्रकार कल्पातीत पटल तीन प्रकारके हैं। इनमेंसे ग्रैवेयक पटल नौ प्रकारके हैं ॥११७॥

कल्प और कल्पातीत विमानोंका अवस्थान—

मेरु-तलादो उवरिं, दिवड्ढ-रज्जूए आदिमं जुगलं ।
तत्तो हवेदि बिदियं, तेत्तियमेत्ताए रज्जूए ॥११८॥

तत्तो छज्जुगलाणि, पत्तेक्कं अद्ध - अद्ध - रज्जूए ।
एवं कप्पा कमसो, कप्पातीदा य ऊण - रज्जूए ॥११९॥

—३/१४ | —३/१४ | —/१४ | —/१४ | —/१४ | —/१४ | —/१४ | —/१४ | —/७ |

एवं भेद-परूवणा समत्ता ॥३॥

अर्थ—मेरुतलसे ऊपर डेढ़ राजूमें प्रथम युगल और इसके आगे इतने ही राजूमें अर्थात् डेढ़ राजूमें द्वितीय युगल है। इसके आगे छह युगलोंमेंसे प्रत्येक अर्ध-अर्ध राजूमें है। इसप्रकार कल्पोंकी स्थिति बतलाई गई है। कल्पातीत विमान ऊन अर्थात् कुछ कम एक राजूमें हैं ॥११८-११९॥

इसप्रकार भेद-प्ररूपणा समाप्त हुई ॥३॥

बारह कल्प एवं कल्पातीत विमानोंके नाम—

सोहम्मीसाण-सणक्कुमार-माहिंद - बम्ह - लंतवया ।
महसुक्क-सहस्सारा, आणद-पाणदय-आरणच्चुदका ॥१२०॥

एवं बारस कप्पा, कप्पातीदेसु णव य गेवेज्जा ।
हेट्ठिम-हेट्ठिम-णामो, हेट्ठिम-मज्झिल्ल हेट्ठिमोवरिमो ॥१२१॥

मज्झिम-हेट्ठिम-णामो, मज्झिम-मज्झिम य मज्झिमोवरिमो ।
उवरिम-हेट्ठिम-णामो, उवरिम-मज्झिम य उवरिमोवरिमो ॥१२२॥

अर्थ—सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इसप्रकार ये बारह कल्प हैं। कल्पातीतोंमें अधस्तन-अधस्तन, अधस्तन-मध्यम, अधस्तन-उपरिम, मध्यम-अधस्तन, मध्यम-मध्यम, मध्यम-उपरिम, उपरिम-अधस्तन, उपरिम-मध्यम और उपरिम-उपरिम, ये नौ ग्रैवेयक विमान हैं ॥१२०-१२२॥

आदित्य इन्द्रकके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकोंके नाम—

आइच्च-इंदयस्स य, पुव्वादिसु लच्छि-लच्छिमालिणिया ।
वइरो वइरोवणिया, चत्तारो वर - विमाणाणि ॥१२३॥

अण्ण - दिसा - विदिसासुं, सोमक्खं सोमरूव-अंकाइं ।
फलिहं पइण्णयाणि य, चत्तारो तस्स णादव्वा ॥१२४॥

अर्थ—आदित्य (६२ वें) इन्द्रक विमानकी पूर्वादिक दिशाओंमें लक्ष्मी, लक्ष्मीमालिनी, वज्र और वैरोचिनी, ये चार उत्तम श्रेणीबद्ध विमान तथा अन्य दिशा-विदिशाओंमें सोमार्य, सोमरूप, अंक और स्फटिक, ये चार उसके प्रकीर्णक विमान जानने चाहिए ॥१२३-१२४॥

सर्वार्थसिद्धि इन्द्रकके श्रेणीबद्ध विमानोंके नाम—

विजयंत - वइजयंतं, जयंत-अपराजिदं विमाणाणि ।
सव्वट्ठ-सिद्धि-णामा, पुव्वावर-दक्खिणुत्तर-दिसासं ॥१२५॥

अर्थ—सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रककी पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशामें विजयन्त, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक विमान हैं ॥१२५॥

सव्वट्ठ-सिद्धि-णामे, पुव्वादि-पदाहिणेण विजयादी ।
ते होंति वर - विमाणा, एवं केई परूवेंति ॥१२६॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रककी पूर्वादि दिशाओंमें प्रदक्षिण रूप वे विजयादिक उत्तम विमान हैं । कोई आचार्य इसप्रकार भी प्ररूपण करते हैं ॥१२६॥

पाठान्तर ।

सोहम्मो ईसाणो, सणक्कुमारो तहेव माहिंदो ।
बम्हो बम्हुत्तरयं, लंतव-कापिट्ठ - सुक्क - महसुक्का ॥१२७॥
सदर-सहस्साराणद-पाणद-आरणय[1]-अच्चुदा णामा ।
इय सोलस कप्पाणि, मण्णंते केइ आइरिया ॥१२८॥

पाठान्तरम् ।

एवं णाम-परूवणा समत्ता ॥४॥

अर्थ—सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक ये सोलह कल्प हैं । कोई आचार्य ऐसा भी मानते हैं ॥१२७-१२८॥

इसप्रकार नाम प्ररूपणा समाप्त हुई ॥४॥

कल्प एवं कल्पातीत विमानोंकी स्थिति और उनकी सीमाका निर्देश—

कणयद्दि-चूल-उवरिं, किंचूणा-दिवड्ढ-रज्जु-बहलम्मि ।
सोहम्मीसाणक्खं, कप्प - जुगं होदि रमणिज्जं ॥१२९॥

$\frac{\;}{१४}$ ३ |[2]

---

१. द. ब. क. ज. ठ. आरणया । २. द. ब. क. ज. ठ. १४३ ।

अर्थ—कनकाद्रि (मेरु) पर्वतकी चूलिकाके ऊपर कुछ कम डेढ़ राजूके बाहल्यमें रमणीय सौधर्म-ईशान नामक कल्प-युगल है ॥१२९॥

ऊणस्स य परिमाणं, चाल-जुदं जोयणाणि इगि-लक्खं ।
उत्तरकुरु - मणुवाणं, बालग्गेणाविरित्तेणं ॥१३०॥

१०००४० ।

अर्थ--इस कुछ कमीका प्रमाण उत्तरकुरुके मनुष्योंके बालाग्रसे अधिक एक लाख चालीस (१०००४०) योजन है ॥१३०॥

सोहम्मीसाणाणं, चरमिंदय - केदुदंड - सिहरादो ।
उड्ढं असंख-कोडी-जोयण-विरहिद-दिवड्ढ-रज्जूए ॥१३१॥

चिट्ठेदि कप्प-जुगलं, णामेहि सणक्कुमार-माहिंदा ।
तच्चरिमिंदय - केदण - दंडाइ असंख - जोयणूणेणं ॥१३२॥

रज्जूए अद्धेणं, कप्पो चेट्ठेदि तत्थ बम्हक्खो ।
तम्मेत्ते पत्तेक्कं, लंतव - महसुक्कया[1] सहस्सारो ॥१३३॥

आणद-पाणद-आरण-अच्चुअ-कप्पा हवंति उवरुवरिं ।
तत्तो असंख - जोयण - कोडीओ उवरि अंतरिदा ॥१३४॥

कप्पातीदा पडला, एक्करसा होंति ऊण - रज्जूए ।
पढमाए अंतरादो, उवरुवरिं होंति अधियाओ ॥१३५॥

अर्थ—सौधर्म-ईशान सम्बन्धी अन्तिम इन्द्रकके ध्वज-दण्डके शिखरसे ऊपर असंख्यात करोड़ योजनोंसे रहित डढ़ (१½) राजूमें सनत्कुमार-माहेन्द्र नामक कल्प-युगल स्थित है। इसके अन्तिम इन्द्रक सम्बन्धी ध्वज-दण्डके ऊपर असंख्यात योजनोंसे कम अर्धराजूमें ब्रह्म नामक कल्प स्थित है। इसके आगे इतने मात्र अर्थात् अर्ध-अर्ध राजूमें ऊपर-ऊपर लान्तव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पोंमेंसे प्रत्येक है। इसके आगे असंख्यात-करोड़ योजनोंके अन्तरसे ऊपर कुछ कम एक राजूमें शेष ग्यारह कल्पातीत पटल हैं। इनमें प्रथमके अन्तरसे ऊपर-ऊपरका अन्तर अधिक है ॥१३१-१३५॥

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सुक्कय ।
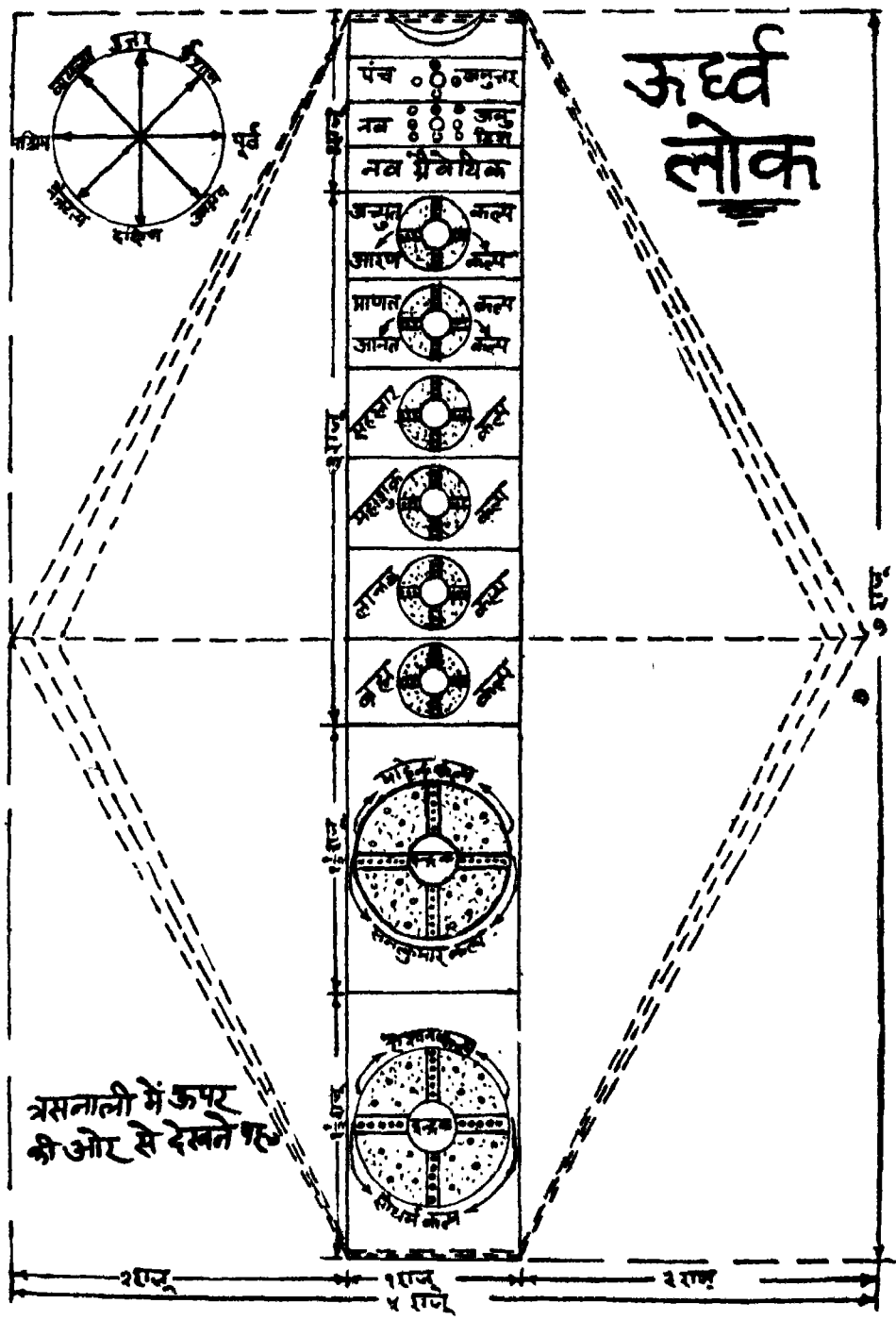
कप्पाणं सीमाओ, णिय-णिय-चरिमिंदयाण धय-दंडा ।
किंचूणय - लोयंतो, कप्पातीदाण अवसाणं ।।१३६।।

एवं सीमा-परूवणा समत्ता ।।५।।

अर्थ—कल्पोंकी सीमाएँ अपने-अपने अन्तिम इन्द्रकोंके ध्वज-दण्ड हैं और कुछ कम लोकका अन्त कल्पातीतोंका अन्त है ।।१३६।।

इसप्रकार सीमाकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।।५।।

सौधर्म आदि कल्पोंके आश्रित श्रेणीबद्ध एवं प्रकीर्णक विमानोंका निर्देश—

उडु-पहुदि-एक्कतीसं, एदेसुं पुव्व-अवर-दक्खिणदो ।
सेढीबद्धा णइरदि-अणल-दिसा-ठिद - पइण्णा य ।।१३७।।

सोहम्मकप्प-णामा, तेसुं उत्तर - दिसाए सेढिगया ।
मरु - ईसाण - दिस - ट्ठिद - पइण्णया होंति ईसाणे ।।१३८।।

अर्थ—ऋतु आदि इकतीस इन्द्रक एवं उनमें पूर्व, पश्चिम और दक्षिणके श्रेणीबद्ध; तथा नैऋत्य एवं आग्नेय दिशामें स्थित प्रकीर्णक, इन्हींका नाम सौधर्मकल्प है। उपर्युक्त (उन) विमानों की उत्तर दिशामें स्थित श्रेणीबद्ध और वायव्य एवं ईशान दिशामें स्थित प्रकीर्णक, ये ईशान कल्पमें हैं ।।१३७-१३८।।
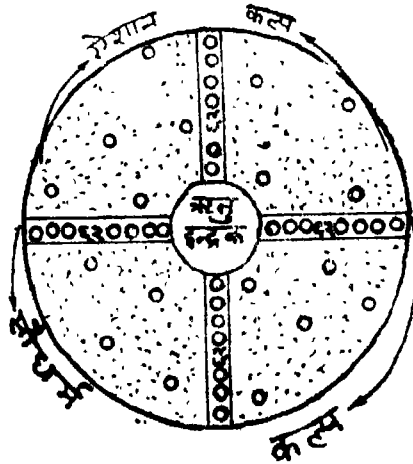
अंजण-पहुदी सत्त य, एदेसिं पुव्व-अवर-दक्खिणदो ।
सेढीबद्धा णइरदि - अणल[1]-दिस - ट्ठिद-पइण्णा य ।।१३९।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. अणिल ।

णामे सणक्कुमारो, तेसु उत्तर - दिसाए सेढिगया ।
पवणीसाणे[1] संठिद - पइण्णया होंति माहिंदे ॥१४०॥

अर्थ—अञ्जन आदि सात इन्द्रक एवं उनके पूर्व, दक्षिण और पश्चिमके श्रेणीबद्ध तथा नैऋत्य एवं आग्नेय दिशामें स्थित प्रकीर्णक, इनका नाम सनत्कुमार कल्प है। इन्हींकी उत्तर दिशामें स्थित श्रेणीबद्ध और पवन एवं ईशान दिशामें स्थित प्रकीर्णक, ये माहेन्द्र कल्पमें हैं ॥१३९-१४०॥

रिट्ठादी चत्तारो, एदाणं चउ - दिसासु सेढिगया ।
विदिसा-पइण्णयाणि[2], ते कप्पा बम्ह - णामेणं ॥१४१॥

अर्थ—अरिष्टादिक चार इन्द्रकों तथा इनकी चारों दिशाओंके श्रेणीबद्ध और विदिशाओंके प्रकीर्णकोंका नाम ब्रह्म कल्प है ॥१४१॥

बम्हहिदयादिदुवयं, एदाणं चउ - दिसासु सेढिगया ।
विदिसा - पइण्णयाइं, णामेणं लंतवो कप्पो ॥१४२॥

अर्थ—ब्रह्महृदयादिक दो इन्द्रकों और इनकी चारों दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध तथा विदिशाओंके प्रकीर्णकोंका नाम लान्तव कल्प है ॥१४२॥

महसुक्क-इंदओ तह, एदस्स य चउ-दिसासु सेढिगया ।
विदिसा - पइण्णयाइं, कप्पो महसुक्क - णामेणं ॥१४३॥

अर्थ—महाशुक्र इन्द्रक तथा इसकी चारों दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध और विदिशाओंके प्रकीर्णकोंका नाम महाशुक्र कल्प है ॥१४३॥

इंदय-सहस्सयारो, एदस्स चउ - दिसासु सेढिगया ।
विदिसा - पइण्णयाइं, होदि सहस्सार - णामेणं ॥१४४॥

अर्थ—सहस्रार इन्द्रक और उसकी चारों दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध एवं विदिशाओंके प्रकीर्णकोंका नाम सहस्रार कल्प है ॥१४४॥

आणद-पहुदी छक्कं, एदस्स य पुव्व-अवर-दक्खिणदो ।
सेढीबद्धा णइरदि-अणल[3]-दिस - ट्ठिद - पइण्णाणि ॥१४५॥

आणद-आरण-णामा, दो कप्पा होंति पाणदच्चुदया ।
उत्तर-दिस-सेढिगया, समीरणीसाण-दिस-पइण्णा य ॥१४६॥

---

१. द. ब. पवणीसाणं सट्ठिद, क. ज. ठ. पणवीसाण सट्ठिद । २. द. ब. पइण्णयाणं, ज. ठ. पइण्णयाइं । ३ द. ब. क. ज. ठ. अणिल ।

अर्थ—आनत आदि छह इन्द्रकों और इनकी पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण दिशामें स्थित श्रेणीबद्ध तथा नैऋत्य एवं आग्नेय दिशामें स्थित प्रकीर्णकोंका नाम आनत और आरण दो कल्परूप है। इन्हीं इन्द्रकोंकी उत्तर-दिशामें स्थित श्रेणीबद्ध तथा वायव्य एवं ईशान दिशाके प्रकीर्णकोंका नाम प्राणत और अच्युत कल्प है ॥१४५-१४६॥

हेट्ठिम-हेट्ठिम-पमुहे, एक्केक्क सुदंसणाओ पडलाणि ।
होंति हु एवं कमसो, कप्पातीदा ठिदा सव्वे ॥१४७॥

अर्थ—अधस्तन-अधस्तन आदि एक-एकमें सुदर्शनादिक पटल हैं। इसप्रकार क्रमशः सब कल्पातीत स्थित हैं ॥१४७॥

जे सोलस कप्पाणि, केई इच्छंति ताण उवएसे ।
बम्हादि - चउ - दुगेसुं, सोहम्म-दुगं व [1]दिग्भेदो ॥१४८॥

पाठान्तरम् ।

अर्थ—जो कोई आचार्य सोलह कल्प मानते हैं, उनके उपदेशानुसार ब्रह्मादिक चार युगलों में सौधर्म-युगलके सदृश दिशा-भेद है ॥१४८॥

पाठान्तर ।

सौधर्मादि कल्पोंमें एवं कल्पातीतोंमें स्थित समस्त विमानोंकी संख्याका निर्देश—

बत्तीसट्ठावीसं, बारस अट्ठं कमेण लक्खाणि ।
सोहम्मादि चउक्के, होंति विमाणाणि विविहाणि ॥१४९॥

३२००००० । २८००००० । १२००००० । ८००००० ।

अर्थ—सौधर्मादि चार कल्पोंमें तीनों प्रकारके विमान क्रमशः बत्तीस लाख (३२०००००), अट्ठाईसलाख (२८०००००), बारह लाख (१२०००००) और आठ लाख (८०००००) हैं ॥१४९॥

चउ-लक्खाणि बम्हे, पण्णास-सहस्सयाणि लंतवए ।
चालीस - सहस्साणि, कप्पे महसुक्क - णामम्मि ॥१५०॥

४००००० । ५०००० । ४०००० ।

---

१. द. ब. वदि भेदो, क. ज. ठ. वहि भेदो ।

अर्थ—इन्द्रकादिक तीनों प्रकारके विमान ब्रह्म कल्पमें चार लाख (४०००००), लान्तव-कल्पमें पचास हजार (५००००) और महाशुक्र नामक कल्पमें चालीस हजार (४००००) हैं ॥१५०॥

छस्सेव सहस्साणि, होंति सहस्सार-कप्प-णामम्मि ।
सत्त-सयाणि विमाणा, कप्प-चउक्कम्मि आणव-प्पमुहे ॥१५१॥

६००० । ७०० ।

अर्थ—उक्त विमान सहस्रार नामक कल्पमें छह हजार (६०००) और आनत प्रमुख चार कल्पोंमें सात सौ (७००) हैं ॥१५१॥

खं-गयण-सत्त-छण्णव-चउ-अट्ठं क-कमेण इंदयादि-तिए ।
परिसंखा णादव्वा, बावण्णा - कप्प - पडलेसुं ॥१५२॥

८४९६७०० ।

अर्थ—शून्य, शून्य, सात, छह, नौ, चार और आठ, इस अङ्क क्रमसे अर्थात् चौरासी लाख छयानबै हजार सात सौ (८४९६७००), यह बावन (५२) कल्प-पटलोंमें इन्द्रादिक तीन प्रकारके विमानोंकी (कुल) संख्या है ॥१५२॥

एक्कारसुत्तर-सयं, हेट्ठिम-गेवेज्ज-तिय-विमाणाणि ।
मज्झिम - गेवेज्ज - तिए, सत्तब्भहियं सयं होदि ॥१५३॥

१११ । १०७ ।

अर्थ—अधस्तन तीन ग्रैवेयकोंके विमान एक सौ ग्यारह (१११) और मध्यम तीन ग्रैवेयकोंमें एक सौ सात (१०७) विमान हैं ॥१५३॥

एक्कब्भहिया णउदी, उवरिम-गेवेज्ज-तिय-विमाणाणि ।
णव - पंच - विमाणाणि, अणुद्दिसाणुत्तरेसु कमा ॥१५४॥

९१ । ९ । ५ ।

अर्थ—उपरिम तीन ग्रैवेयकोंके विमान इक्यानबे (९१) और अनुदिश एवं अनुत्तरोंमें क्रमशः नौ और पाँच ही विमान हैं ॥१५४॥

विशेषार्थ—कल्प पटलोंमें स्थित इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंकी कुल संख्या ८४९६७०० है। इसमें नव-ग्रैवेयकोंके (१११+१०७+९१=) ३०९ विमान तथा अनुदिशोंके ९ और अनुत्तरोंके ५ विमान और मिला देने पर विमानोंका कुल प्रमाण ८४९७०२३ होता है। जिसकी तालिका इसप्रकार है—

क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या	क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों का संख्या
१	सौधर्म कल्प	३२००००० लाख	९	आनत, प्राणत आरण, अच्युत	७००
२	ऐशान ,,	२८००००० ,,			
३	सानत्कुमार ,,	१२००००० ,,	१०	अधस्तन ग्रैवे०	१११
४	माहेन्द्र ,,	८००००० ,,	११	मध्यम ,,	१०७
५	ब्रह्म ,,	४००००० ,,	१२	उपरिम ,,	९१
६	लान्तव ,,	५०००० हजार	१३	अनुदिश	९
७	महाशुक्र ,,	४०००० ,,		अनुत्तर	५
८	सहस्रार ,,	६००० ,,			
				योग=८४९७०२३	

सौधर्मादि कल्प स्थित श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या प्राप्त करने हेतु मुख एवं गच्छका प्रमाण—

छासीदी-अधिय-सयं, बासट्ठी सत्त-विरहिदेक्क-सयं ।
इगितीसं छण्णउदी, सीदी बाहत्तरी य अडसट्ठी ॥१५५॥

चउसट्ठी चालीसं, अडवीसं सोलसं च चउ चउरो ।
सोहम्मादी - अट्ठसु, आणद - पहुदीसु चउसु कमा ॥१५६॥

हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिम-गेवेज्जेसुं अणुद्दिसादि-दुगे ।
सेढीबद्ध - पमाण - प्पयास - णट्ठं इमे पभवा ॥१५७॥

१८६ । ६२ । ९३ । ३१ । ९६ । ८० । ७२ । ६८ । ६४ । ४० । २८ । १६ । ४ । ४ ।

अर्थ—सौधर्मादिक आठ, आनत आदि चार तथा अधस्तन, मध्यम एवं उपरिम ग्रैवेयक और अनुदिशादिक दो में श्रेणीबद्धोंका प्रमाण लानेके लिए क्रमशः एक सौ छियासी, बासठ, सात कम एक सौ (९३), इकतीस, छयानबे, अस्सी, बहत्तर, अड़सठ, चौंसठ, चालीस, अट्ठाईस, सोलह, चार और चार, यह प्रभव (मुख) का प्रमाण है ॥१५५-१५७॥

सोहम्मादि-चउक्के, तिय-एक्क-तियेक्कयाणि रिणय-चयो ।
सेसेसुं कप्पेसुं, चउ - चउ - रूवाणि णादव्वा ।।१५८।।

३ । १ । ३ । १ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

अर्थ—सौधर्मादिक चार कल्पोंमें तीन, एक, तीन और एक हानि चय है। शेष कल्पोंमें चार-चार रूप जानना चाहिए ।।१५८।।

इगितीस-सत्त-चउ-दुग-एक्केक्क-छ-ति-ति-तिय-एक्केक्का ।
ताणं कमेण गच्छा, बारस - ठाणेसु ठविदव्वा ।।१५९।।

३१ । ७ । ४ । २ । १ । १ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ । १ ।

अर्थ—इकतीस, सात, चार, दो, एक, एक, छह, तीन, तीन, तीन, एक और एक, इन बारह स्थानोंमें गच्छ रखना चाहिए ।।१५९।।

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथा १५९ में जो गच्छ संख्या दर्शाई गई है वही प्रत्येक युगलके पटलोंकी अर्थात् इन्द्रक विमानोंकी संख्या है। यथा—सौधर्म युगलमें ३१ इन्द्रक, सानत्कुमार युगलमें ७, ब्रह्म कल्प में ४, लान्तव कल्पमें २, महाशुक्र कल्पमें १, सहस्रार कल्पमें १, आनतादि चार कल्पोंमें ६, अधस्तन तीन ग्रैवेयकोंमें ३, मध्यम तीन ग्रैवेयकोंमें ३, उपरिम तीन ग्रैवेयकोंमें ३, नौ अनुदिशोंमें १ तथा पांच अनुत्तरोंमें १ इन्द्रक विमान हैं। अपने-अपने युगलके गच्छका भी यही प्रमाण है।

सौधर्म कल्पमें एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंका प्रमाण ६२ है, इनमेंसे स्व-गच्छ (३१) घटा देनेपर (६२ — ३१) = ३१ शेष रहे। यही सानत्कुमार युगलके प्रथम पटलमें एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंका प्रमाण है। इसीप्रकार पूर्व-पूर्व युगलके प्रथम पटलके एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंके प्रमाणमेंसे अपने-अपने पटल प्रमाण गच्छ घटानेपर उत्तरोत्तर कल्पोंके प्रथम पटलके एक दिशा सम्बन्धी श्रेणीबद्धोंका प्रमाण प्राप्त होता है।

यथा—सौधर्मैशानमें ६२, सानत्कुमार-माहेन्द्रमें (६२ — ३१) = ३१, ब्रह्मकल्पमें (३१ — ७) = २४, लान्तव कल्पमें (२४ — ४) = २०, महाशुक्रमें (२० — २) = १८, सहस्रारमें (१८ — १) = १७, आनतादि चार कल्पोंमें (१७ — १) = १६, अधोग्रैवेयकमें (१६ — ६) = १०, मध्यम ग्रैवेयकमें (१० — ३) = ७, उपरिम ग्रैवेयकमें (७ — ३) = ४ और अनुदिशोंमें (४ — ३) = १ श्रेणीबद्ध विमान एक दिशा सम्बन्धी है।

पूर्व, पश्चिम और दक्षिण, इन तीन दिशाओंमें स्थित श्रेणीबद्ध दक्षिणेन्द्रके और उत्तर दिशा स्थित श्रेणीबद्ध उत्तरेन्द्रके आधीन होते हैं अतः उपर्युक्त श्रेणीबद्ध विमानोंके प्रमाणको

दक्षिणेन्द्र अपेक्षा ३ से और उत्तरेन्द्र अपेक्षा एकसे गुणा करनेपर तथा जहाँ दक्षिणेन्द्र-उत्तरेन्द्रकी कल्पना नहीं है वहाँ चारसे गुणा करनेपर गाथा १५५-१५७ में कहे हुए आदिधन (मुख) का प्रमाण प्राप्त होता है। यही ३, १ और ४ उत्तरधन है। इन्हींको हानिचय भी कहते हैं (गाथा १५८), क्योंकि प्रत्येक पटलमें उपर्युक्त क्रमसे ही श्रेणीबद्ध घटते हैं।

गा० १५५ — १५७ में कहे हुए आदिधन (मुख) का प्रमाण—

सौधर्मकल्पमें (६२ × ३ =) १८६, ईशानकल्पमें (६२ × १ =) ६२, सानत्कुमारमें (३१ × ३ =) ९३, माहेन्द्रमें (३१ × १ =) ३१, ब्रह्मकल्पमें (२४ × ४ =) ९६, लान्तव कल्पमें (२० × ४ =) ८०, महाशुक्रमें (१८ × ४ =) ७२, सह० में (१७ × ४ =) ६८, आनतादि चारमें (१६ × ४ =) ६४, अधोग्रैवे० में (१० × ४ =) ४०, मध्यम ग्रैवे० में (७ × ४ =) २८, उपरिम ग्रैवेयक में (४ × ४ =) १६ और नव अनुदिशोंमें (१ × ४ =) ४ आदिधनों (मुखों) का प्रमाण है।

गाथा १५९ में कहे हुए गच्छका प्रमाण अपने-अपने पटल (३१, ७, ४, २, १, १, ६, ३, ३, ३ और १) प्रमाण होता है।

इसप्रकार आदिधन (हानिचय), उत्तरधन और गच्छका ज्ञान हो जानेपर दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्रके श्रेणीबद्धोंका सर्व-संकलित धन प्राप्त करनेकी विधि बताते हैं।

संकलित धन प्राप्त करनेकी विधि—

गच्छं चएण गुणिदं, दुगुणिद-मुह-मेलिदं चय-विहीणं।
गच्छद्धेण्ण - हदे, संकलिदं एत्थ णादव्वं ॥१६०॥

अर्थ—दुगुणित मुखमें चय जोड़कर उसमेंसे चय गुणित गच्छ घटा देनेपर जो शेष रहे उसे गच्छके अर्धभागसे गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो वह यहाँ संकलित धन जानना चाहिए ॥१६०॥

विशेषार्थ—दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्रके श्रेणीबद्धोंका सर्व संकलित धन प्राप्त करनेके लिए गाथा सूत्र इसप्रकार है—

प्रत्येक कल्पके श्रेणीबद्ध = $[(\text{मुख} \times २ + \text{चय}) - (\text{गच्छ} \times \text{चय})] \times \frac{\text{गच्छ}}{२}$

सभी कल्पाकल्पोंके अपने-अपने श्रेणीबद्ध विमान इसी सूत्रानुसार प्राप्त होंगे।

सभी कल्पाकल्पोंके पृथक्-पृथक् श्रेणीबद्ध और इन्द्रक विमानोंका प्रमाण—

तेदालीस-सयाणि, इगिहत्तरि - उत्तराणि सेढिगया ।
सोहम्म - णाम - कप्पे, इगितीसं इंदया होंति ।।१६१।।

४३७१ । ३१ ।

अर्थ—सौधर्मनामक कल्पमें तैंतालीस सौ इकहत्तर श्रेणीबद्ध विमान और इकतीस (३१) इन्द्रक विमान हैं ।।१६१।।

विशेषार्थ—उपर्युक्त गाथा-सूत्रानुसार सौधर्मकल्पके श्रेणीबद्ध=[(१८६×२+३) — (३१×३)]×$\frac{३१}{२}$=४३७१ हैं ।

सत्तावण्णा चोद्दस - सयाणि सेढिगदाणि ईसाणे ।
पंच - सया अडसीदी, सेढिगया सत्त इंदया तदिए ।।१६२।।

१४५७ । ५८८ । ७ ।

अर्थ—ईशानकल्पमें चौदह सौ सत्तावन श्रेणीबद्ध हैं । तृतीय (सानत्कुमार) कल्पमें पाँचसौ अठासी श्रेणीबद्ध और सात (७) इन्द्रक विमान हैं ।।१६२।।

विशेषार्थ—उपर्युक्त ३१ इन्द्रक विमानोंके केवल उत्तर दिशागत श्रेणीबद्ध विमान ही इस कल्पके आधीन हैं, अतएव यहाँके मुखका प्रमाण ६२, चय १ और गच्छ ३१ है । गा० १६० के सूत्रानुसार ईशानकल्पके श्रेणीबद्ध=[(६२×२+१) — (३१ × १)]×$\frac{३१}{२}$=१४५७ हैं ।

सानत्कुमारके श्रेणीबद्ध=[(९३×२+३) — (७×३)]×$\frac{७}{२}$=५८८ हैं ।

माहिंदे सेढिगया, छण्णउदी - जुद-सयं च बम्हम्मि ।
सट्ठी - जुद - ति - सयाइं, सेढिगया इदय - चउक्कं ।।१६३।।

१९६ । ३६० । ४ ।

अर्थ—माहेन्द्रकल्पमें एक सौ छ्यानबै श्रेणीबद्ध हैं । ब्रह्मकल्पमें तीन सौ साठ श्रेणीबद्ध और चार इन्द्रक विमान हैं ।।१६३।।

माहेन्द्रके श्रेणीबद्ध=[(३१×२+१) — (७×१)]×$\frac{७}{२}$=१९६

ब्रह्मकल्पके श्रेणी०=[(९६×२+४) — (४×४)]×$\frac{४}{२}$=३६०

छप्पण्णब्भहिय - सयं, सेढिगया इंदया दुवे छट्ठे ।
महसुक्के बाहत्तरि, सेढिगया इंदओ एक्को ।।१६४।।

१५६ । २ । ७२ । १ ।

अर्थ—छठे (लान्तव) कल्पमें एक सौ छप्पन श्रेणीबद्ध और दो इन्द्रक हैं तथा महाशुक्र-कल्पमें बहत्तर श्रेणीबद्ध और एक इन्द्रक है ॥१६४॥

लान्तवकल्पमें श्रेणीबद्ध=[(८०×२+४) — (२×४)]×$\frac{१}{२}$=१५६ हैं।

महाशुक्रकल्पमें श्रेणीबद्ध=[(७२×२+४) — (१×४)]×$\frac{१}{२}$=७२ हैं।

अडसट्ठी सेढिगया, एक्को च्चिय इंदयं सहस्सारे ।
चउवीसुत्तर-ति-सया, छ-इंदया आणदादिय-चउक्के ॥१६५॥

६८ । १ । ३२४ । ६ ।

अर्थ—सहस्रारमें अड़सठ श्रेणीबद्ध और एक इन्द्रक है तथा आनतादिक चारमें तीन सौ चौबीस श्रेणीबद्ध और छह इन्द्रक हैं ॥१६५॥

सह० कल्पमें श्रेणीबद्ध=[(६८×२+४) — (१×४)]×$\frac{१}{२}$=६८ हैं।

आनतादि चारमें श्रेणीबद्ध=[(६४×२+४) — (६×४)]×$\frac{३}{२}$=३२४ हैं।

हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिम-गेवेज्जाणं च सेढिगय-संखा ।
अट्ठब्भहिय-एक्क-सयं, कमसो बाहत्तरी य छत्तीसं ॥१६६॥

१०८ । ७२ । ३६ ।

अर्थ—अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयकोंके श्रेणीबद्ध विमानोंकी संख्या क्रमशः एक सौ आठ, बहत्तर और छत्तीस है ॥१६६॥

अधस्तन ग्रै० के श्रेणीबद्ध=[(४०×२+४) — (३×४)]×$\frac{३}{२}$=१०८ हैं।

मध्यम ग्रै० के श्रेणीबद्ध=[(२८×२+४) — (३×४)]×$\frac{३}{२}$=७२ हैं।

उपरिम ग्रै० के श्रेणीबद्ध=[(१६×२+४) — (३×४)]×$\frac{३}{२}$=३६ हैं।

ताणं गेवेज्जाणं, पत्तेक्कं तिण्णि इंदया चउरो ।
सेढिगदाण अणुद्दिस - अणुत्तरे इंदया हु एक्केक्का ॥१६७॥

अर्थ—उन ग्रैवेयकोंमेंसे प्रत्येकमें तीन इन्द्रक विमान हैं। अनुदिश और अनुत्तरमें चार (चार) श्रेणीबद्ध और एक-एक इन्द्रक विमान हैं ॥१६७॥

अनुदिशोंमें श्रेणीबद्ध=[(४×२+४) — (१×४)]×$\frac{१}{२}$=४ हैं।

प्रकीर्णक विमानोंका अवस्थान और उनकी पृथक्-पृथक् संख्या—

सेढीणं विच्चाले, पइण्ण - कुसुमोवमाण[1] - संठाणा ।
होंति पइण्णय - णामा, सेढिंदय-हीण-रासि-समा ॥१६८॥

अर्थ—श्रेणीबद्ध विमानोंके बीचमें बिखरे हुए कुसुमोंके सदृश आकारवाले प्रकीर्णक नामक विमान होते हैं। इनकी संख्या श्रेणीबद्ध और इन्द्रकोंसे हीन अपनी-अपनी राशिके समान है ॥१६८॥

इगितीसं लक्खाणि, पणणउदि-सहस्स पण-सयाणि पि ।
अट्ठाणउदि - जुदाणि, पइण्णया होंति सोहम्मे ॥१६९॥

३१९५५९८ ।

अर्थ—सौधर्मकल्पमें इकतीस लाख पंचानबै हजार पाँच सौ अट्ठानबै (३१९५५९८) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१६९॥

सत्तावीसं लक्खा, अडणउदि-सहस्स पण-सयाणि पि ।
तेदाल - उत्तराइं, पइण्णया होंति ईसाणे ॥१७०॥

२७९८५४३ ।

अर्थ—ईशानकल्पमें सत्ताईस लाख अट्ठानबै हजार पाँच सौ तैंतालीस (२७९८५४३) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७०॥

एक्कारस-लक्खाणि, णवणउदि-सहस्स चउ-सयाणि पि ।
पंचुत्तराइ कप्पे, सणक्कुमारे पइण्णया होंति ॥१७१॥

११९९४०५ ।

अर्थ—सानत्कुमार कल्पमें ग्यारह लाख निन्यानबै हजार चार सौ पाँच (११९९४०५) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७१॥

सत्त च्चिय लक्खाणि, णवणउदि-सहस्स अडसयाणं पि ।
चउरुत्तराइ[2] कप्पे, पइण्णया होंति माहिंदे ॥१७२॥

७९९८०४ ।

अर्थ—माहेन्द्रकल्पमें सात लाख निन्यानबै हजार आठ सौ चार (७९९८०४) प्रकीर्णक विमान हैं ॥१७२॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. कसुमवमाण । २. द. ज. ठ. पंचुत्तर ।

छत्तीसुत्तर-छ-सया, णवणउदि-सहस्सयाणि तिय-लक्खा ।
एदाणि बम्ह - कप्पे, होंति पइण्णय - विमाणाणि ।।१७३।।

३९९६३६ ।

अर्थ—ब्रह्मकल्पमें तीन लाख निन्यानबे हजार छह सौ छत्तीस (३९९६३६) प्रकीर्णक विमान हैं ।।१७३।।

उणवण्ण-सहस्सा अड-सयाणि बादाल ताणि लंतवए ।
उणदाल - सहस्सा णव-सयाणि सगवीस महसुक्के ।।१७४।।

४९८४२ । ३९९२७ ।

अर्थ—लान्तव कल्पमें उनंचास हजार आठ सौ बयालीस (४९८४२) और महाशुक्रमें उनतालीस हजार नौ सौ सत्ताईस (३९९२७) प्रकीर्णक विमान हैं ।।१७४।।

उणसट्ठि-सया इगितीस-उत्तरा होंति ते सहस्सारे ।
सत्तरि-जुद-ति-सयाणि, कप्प-चउक्के पइण्णया सेसे ।।१७५।।

५९३१ । ३७० ।

अर्थ—वे प्रकीर्णक विमान सहस्रार कल्पमें पाँच हजार नौ सौ इकतीस (५९३१) और शेष चार कल्पोंमें तीन सौ सत्तर (३७०) हैं ।।१७५।।

अह हेट्ठिम-गेवेज्जे, ण होंति तेसिं पइण्णय-विमाणा ।
बत्तीसं मज्झिल्ले, उवरिमए होंति बावण्णा ।।१७६।।

० । ३२ । ५२ ।

अर्थ—अधस्तन ग्रैवेयकमें उनके प्रकीर्णक विमान नहीं हैं । मध्यम ग्रैवेयकमें बत्तीस (३२) और उपरिम ग्रैवेयकमें बावन (५२) प्रकीर्णक विमान हैं ।।१७६।।

(गाथा १६६ और १७६ से सम्बन्धित चित्र इसप्रकार है)

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

प्रीतिंकर इन्द्रक
सौमनस इन्द्रक
सुमनस इन्द्रक
सुविशाल इन्द्रक
सुभद्र इन्द्रक
यशोधर इन्द्रक
सुप्रबुद्ध इन्द्रक
अमोघ इन्द्रक
सुदर्शन इन्द्रक
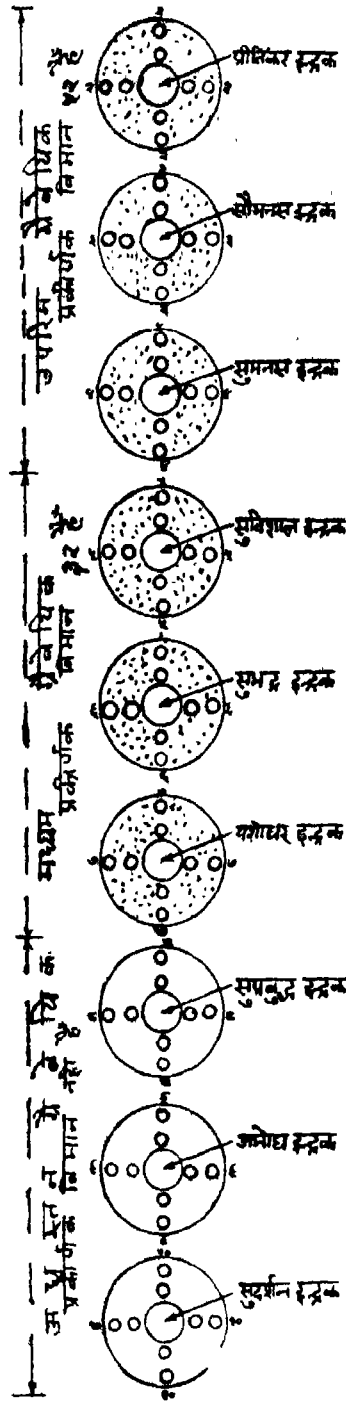
तत्तो अणुद्दिसाए, चत्तारि पइण्णया वर - विमाणा ।
तेसट्ठि - अहिद्धाए, पइण्णया णत्थि अत्थि सेढिगया ॥१७७॥

अर्थ—इसके आगे अनुदिशोंमें चार उत्तम प्रकीर्णक विमान हैं । तिरेसठवें पटलमें प्रकीर्णक नहीं हैं । श्रेणीबद्ध विमान हैं ॥१७७॥

विशेषार्थ—श्रेणीबद्ध विमानोंके अन्तरालमें पंक्ति हीन, बिखरे हुए पुष्पोंके सदृश यत्र तत्र स्थित विमानोंको प्रकीर्णक विमान कहते हैं । प्रत्येक स्वर्गमें विमानों की जो सम्पूर्ण संख्या है, उसमेंसे अपने-अपने पटलोंके इन्द्रक और श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या कम करने पर जो अवशेष रहे वही प्रकीर्णकोंका प्रमाण है । यथा—

कल्प-नाम	सर्व विमान संख्या—	इन्द्रक + श्रेणीबद्ध =	प्रकीर्णक
सौधर्म कल्प	३२००००००—	(३१ + ४३७१) =	३१९९५५९८
ऐशान ,,	२८०००००—	(० + १४५७) =	२७९८५४३
सानत्कुमार	१२०००००—	(७ + ५८८) =	११९९४०५
माहेन्द्रकल्प	८०००००—	(० + १९६) =	७९९८०४
ब्रह्म-कल्प	४०००००—	(४ + ३६०) =	३९९६३६
लान्तव कल्प	५००००—	(२ + १५६) =	४९८४२
महाशुक्र	४००००—	(१ + ७२) =	३९९२७
सहस्रार	६०००—	(१ + ६८) =	५९३१
आनतादि ४	७००—	(६ + ३२४) =	३७०
अधोग्रैवेयक	१११—	(३ + १०८) =	०
मध्यम ,,	१०७—	(३ + ७२) =	३२
उपरिम ,,	९१—	(३ + ३६) =	५२
अनुदिश	९—	(१ + ४) =	४
अनुत्तर	५—	(१ + ४) =	०

प्रकारान्तरसे विमान संख्या—

जे सोलस - कप्पाइं, केई इच्छंति ताण उवएसे ।
तस्सिं तस्सिं वोच्छं, परिमाणाणि विमाणाणं ।।१७८।।

अर्थ—जो कोई सोलह कल्प मानते हैं उनके उपदेशानुसार उन-उन कल्पोंमें विमानोंका प्रमाण कहते हैं ।।१७८।।

बत्तीसट्ठावीसं[1], बारस अट्ठं कमेण लक्खाणि ।
सोहम्मादि - चउक्के, होंति विमाणाणि विविहाणि ।।१७९।।

३२००००० । २८००००० । १२००००० । ८००००० ।

अर्थ—सौधर्मादि चार कल्पोंमें क्रमशः बत्तीस लाख (३२०००००), अट्ठाईस लाख (२८०००००), बारह लाख (१२०००००) और आठ लाख (८०००००) प्रमाण विविध प्रकारके विमान हैं ।।१७९।।

छण्णउदि - उत्तराणि, दो-लक्खाणि हवंति बम्हम्मि ।
बम्हुत्तरम्मि लक्खा, दो वि य छण्णउदि-परिहीणा ।।१८०।।

२०००९६ । १९९९०४ ।

अर्थ—ब्रह्मकल्पमें दो लाख छयानबे (२०००९६) और ब्रह्मोत्तर कल्पमें छयानबे कम दो लाख (१९९९०४) विमान हैं ।।१८०।।

पणुवीस-सहस्साइं, बादाल-जुदा य होंति लंतवए ।
चउवीस-सहस्साणि, णव - सय - अडवण्ण कापिट्ठे ।।१८१।।

२५०४२ । २४९५८ ।

अर्थ—लान्तव कल्पमें पच्चीस हजार बयालीस (२५०४२) और कापिष्ठ कल्पमें चौबीस हजार नौ सौ अट्ठावन (२४९५८) विमान हैं ।।१८१।।

वीसुत्तराणि होंति हु, वीस-सहस्साणि सुक्क-कप्पम्मि ।
ताइं चिय [2]महसुक्के, वीसूणाणि विमाणाणि ।।१८२।।

२००२० । १९९८० ।

---

१. ब. बत्तीसट्ठवीसं । २. द. ब. क. ज. ठ. महसुक्क ।

अर्थ—शुक्र कल्पमें बीस अधिक बीस हजार (२००२०) और महाशुक्र कल्पमें बीस कम बीस हजार (१९९८०) विमान हैं ॥१८२॥

उणवीस-उत्तराणि, तिण्णि-सहस्साणि सदर-कप्पम्मि ।
कप्पम्मि सहस्सारे, उणतीस - सयाणि इगिसीदी ॥१८३॥

३०१९ । २९८१ ।

अर्थ—शतार कल्पमें तीन हजार उन्नीस (३०१९) और सहस्रार कल्पमें दो हजार नौ सौ इक्यासी (२९८१) विमान हैं ॥१८३॥

आणद-पाणद-कप्पे, पंच-सया सट्ठि-विरहिदा होंति ।
आरण-अच्चुद-कप्पे, दु - सयाणि सट्ठि - जुत्ताणि ॥१८४॥

४४० । २६० ।

अर्थ—आनत-प्राणत कल्पमें साठ कम पाँच सौ (४४०) और आरण-अच्युत कल्पमें दो सौ साठ (२६०) विमान हैं ॥१८४॥

अहवा आणद-जुगले, चत्तारि सयाणि वर-विमाणाणि ।
आरण - अच्चुद - कप्पे, सयाणि तिण्णि य हवंति ॥१८५॥

पाठान्तरम् ।

४०० । ३०० ।

अर्थ—अथवा, आनत युगलमें चार सौ (४००) और आरण-अच्युत कल्पमें तीन सौ (३००) उत्तम विमान हैं ॥१८५॥

संख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंकी संख्या—

कप्पेसु संखेज्जो, विक्खंभो रासि-पंचम-विभागो ।
णिय-णिय-संखेज्जूणा, णिय-णिय-रासी असंखेज्जो ॥१८६॥

अर्थ—कल्पोंमें राशिके पाँचवें भाग प्रमाण विमान संख्यात योजन विस्तारवाले हैं और अपने-अपने संख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंकी राशिसे कम अपनी-अपनी राशि प्रमाण असंख्यात योजन विस्तारवाले हैं ॥१८६॥

संखेज्जो विक्खंभो, चालीस-सहस्सयाणि छल्लक्खा ।
सोहम्मे ईसाणे, चाल - सहस्सूण - छल्लक्खा ॥१८७॥

६४०००० । ५६०००० ।

अर्थ—सौधर्म कल्पमें संख्यात योजन विस्तार वाले विमान छह लाख चालीस हजार (६४००००) और ईशान कल्पमें चालीस हजार कम छह लाख (५६००००) हैं ॥१८७॥

चालीस-सहस्साणि, दो-लक्खाणि सणक्कुमारम्मि ।
सट्ठि - सहस्सब्भहियं, माहिंदे एक्क - लक्खाणि ॥१८८॥

२४०००० । १६०००० ।

अर्थ—सानत्कुमार कल्पमें संख्यात योजन विस्तारवाले विमान दो लाख चालीस हजार (२४००००) हैं और माहेन्द्रकल्पमें एक लाख साठ हजार (१६०००० विमान) हैं ॥१८८॥

बम्हे[1] सीदि-सहस्सा, लंतव-कप्पम्मि दस-सहस्साणि ।
अट्ठ सहस्सा बारस - सयाणि महसुक्कए सहस्सारे ॥१८९॥

८०००० । १०००० । ८००० । १२०० ।

अर्थ—ब्रह्म कल्पमें संख्यात योजन विस्तारवाले विमान अस्सी हजार (८००००), लान्तव कल्पमें दस हजार (१००००), महाशुक्रमें आठ हजार (८०००) और सहस्रार कल्पमें बारह सौ (१२००) हैं ॥१८९॥

आणद-पाणद-आरण-अच्चुद-णामेसु चउसु कप्पेसुं ।
संखेज्ज - रु'द - संखा, चालब्भहियं सयं होदि ॥१९०॥

१४० ।

अर्थ—आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक चार कल्पोंमें संख्यात योजन विस्तार वाले विमानोंकी संख्या एक सौ चालीस (१४०) है ॥१९०॥

तिय-अट्ठारस-सत्तरस-एक्क-एक्काणि तस्स परिमाणं ।
हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिम-गेवेज्जेसुं अणुदिसादि-जुगे ॥१९१॥

३ । १८ । १७ । १ । १ ।

अर्थ—अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयक तथा अनुदिशादि युगलमें संख्यात योजन विस्तार वाले विमानोंका प्रमाण क्रमशः तीन, अठारह, सत्तरह एक और एक है ॥१९१॥

---

1. द. ब. ठ. बम्हो ।

असंख्यात योजन विस्तारवाले विमानोंका प्रमाण—

पणुवीसं लक्खाणि, सट्ठि-सहस्साणि सो असंखेज्जो।
सोहम्मे ईसाणे, लक्खा बावीस चालय - सहस्सा ॥१९२॥

२५६०००० । २२४०००० ।

अर्थ—असंख्यात योजन विस्तारवाले वे विमान सौधर्म कल्पमें पच्चीस लाख साठ हजार (२५६००००) और ईशान कल्पमें बाईस लाख चालीस हजार (२२४००००) हैं ॥१९२॥

सट्ठि-सहस्स-जुदाणि, णव-लक्खाणि सणक्कुमारम्मि ।
चालीस - सहस्साणि, माहिंदे छच्च लक्खाणि ॥१९३॥

९६०००० । ६४०००० ।

अर्थ—असंख्यात योजन विस्तार वाले वे विमान सनत्कुमार कल्पमें नौ लाख साठ हजार (९६००००) और माहेन्द्रकल्पमें छह लाख चालीस हजार (६४००००) हैं ॥१९३॥

वीस-सहस्स ति-लक्खा, चाल-सहस्साणि बम्ह-लंतवए।
बत्तीस - सहस्साणि, महसुक्के[1] सो असंखेज्जो ॥१९४॥

३२०००० । ४०००० । ३२००० ।

अर्थ—वे असंख्यात योजन विस्तारवाले विमान ब्रह्म कल्पमें तीन लाख बीस हजार (३२००००), लान्तव कल्पमें चालीस हजार (४००००) और महाशुक्रमें बत्तीस हजार (३२०००) हैं ॥१९४॥

चत्तारि सहस्साणि, अट्ठ-सयाणि तहा सहस्सारे ।
आणद-पहुदि-चउक्के, पंच - सया सट्ठि - संजुत्ता ॥१९५॥

४८०० । ५६० ।

अर्थ—वे विमान सहस्रार कल्पमें चार हजार आठ सौ (४८००) तथा आनतादि चार कल्पोंमें पाँच सौ साठ (५६०) हैं ॥१९५॥

अट्ठुत्तरमेक्क-सयं, उणणउदी सत्तरी य चउ-अहिया ।
हेट्ठिम - मज्झिम - उवरिम - गेवेज्जेसुं असंखेज्जो ॥१९६॥

१०८ । ८९ । ७४ ।

---

१. ब. क. महसुक्केसु सो असंखेज्जा ।

अर्थ—असंख्यात योजन विस्तारवाले विमान अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयकमें क्रमशः एक सौ आठ, नवासी और चौहत्तर हैं ॥१९६॥

अट्ठ अणुद्दिस-णामे, बहु-रयणमयाणि वर-विमाणाणि ।
चत्तारि अणुत्तरए, होंति, असंखेज्ज - वित्थारा ॥१९७॥

८ । ४ ।

अर्थ—असंख्यात विस्तारवाले बहुत रत्नमय उत्तम विमान अनुदिश नामक पटलमें आठ और अनुत्तरोंमें चार हैं ॥१९७॥

विमान तलोंके बाहल्यका प्रमाण—

एक्करस-सया इगिवीस-उत्तरा जोयणाणि पत्तेक्कं ।
सोहम्मीसाणेसुं, विमाण - तल - बहल - परिमाणं ॥१९८॥

११२१ ।

अर्थ—सौधर्म और ईशानकल्पमेंसे प्रत्येकमें विमानतलके बाहल्यका प्रमाण ग्यारह सौ इक्कीस (११२१) योजन है ॥१९८॥

बावीस - जुद - सहस्सं[1], माहिंद-सणक्कुमार-कप्पेसुं ।
तेवीस - उत्तराणि, सयाणि णव बम्ह - कप्पम्मि ॥१९९॥

१०२२ । ९२३ ।

अर्थ—विमानतल-बाहल्यका प्रमाण सनत्कुमार-माहेन्द्रकल्पमें एक हजार बाईस (१०२२) और ब्रह्म कल्पमें नौ सौ तेईस (९२३) योजन है ॥१९९॥

चउवीस-जुदट्ठ-सया, लंतवए पंचवीस सत्त - सया ।
महसुक्के छव्वीसं, छच्च - सयाणि सहस्सारे ॥२००॥

८२४ । ७२५ । ६२६ ।

अर्थ—विमानतल बाहल्य लान्तव कल्पमें आठ सौ चौबीस (८२४), महाशुक्रमें सात सौ पच्चीस (७२५) और सहस्रारमें छह सौ छब्बीस (६२६) योजन है ॥२००॥

आणद-पहुदि-[2]चउक्के, पंच-सया सत्तवीस-अब्भहिया ।
अडवीस चउ - सयाणि, हेट्ठिम - गेवेज्जए होंति ॥२०१॥

५२७ । ४२८ ।

---

१ द. क. ज. ठ सहस्सा । २. द. ब. क. ज. ठ. चउक्कं ।

अर्थ—विमानतल-बाहल्य आनतादि चार कल्पोंमें पाँच सौ सत्ताईस (५२७) और अधस्तन ग्रैवेयकमें चार सौ अट्ठाईस (४२८) योजन है ।।२०१।।

उणतीसं तिण्णि-सया, मज्झिमए तीस-अहिय-दु-सयाणि ।
उवरिमए एक्क - सयं, इगितीस अणुद्दिसादि - दुगे ।।२०२।।

३२९ । २३० । १३१ ।

अर्थ—विमानतल बाहल्य मध्यम ग्रैवेयकमें तीन सौ उनतीस (३२९), उपरिम ग्रैवेयकमें दो सौ तीस (२३०) और अनुदिशादि दो (अनुदिश और अनुत्तर) में एक सौ इकतीस (१३१) योजन है ।।२०२।।

उपर्युक्त विमानोंका प्रमाण और तल-भागके बाहल्य प्रमाण की तालिका इसप्रकार है—

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	नाम	संख्यात यो० विस्तार वालों का प्रमाण + गा० १८७-१९१	असंख्यात यो० वि० वालों का प्रमाण = गा० १९२-१९७	विमानोंका कुल प्रमाण गा. १४९-१५४	विमान तल का बाहल्य गा० १९८-२०२
१	सौधर्म कल्प	६४०००० +	२५६०००० =	३२०००००	११२१ यो०
२	ऐशान कल्प	५६०००० +	२२४०००० =	२८०००००	११२१ यो०
३	सनत्कुमार कल्प	२४०००० +	९६०००० =	१२०००००	१०२२ यो०
४	माहेन्द्र कल्प	१६०००० +	६४०००० =	८०००००	१०२२ यो०
५	ब्रह्म कल्प	८०००० +	३२०००० =	४०००००	९२३ यो०
६	लान्तव कल्प	१०००० +	४०००० =	५००००	८२४ यो०
७	महाशुक्र कल्प	८००० +	३२००० =	४००००	७२५ यो०
८	सहस्रार कल्प	१२०० +	४८०० =	६०००	६२६ यो०
९	आनतादि ४	१४० +	५६० =	७००	५२७ यो०
१०	अधो ग्रैवे०	३ +	१०८ =	१११	४२८ यो०
११	मध्यम ,,	१८ +	८९ =	१०७	३२९ यो०
१२	उपरिम ,,	१७ +	७४ =	९१	२३० यो०
१३	अनुदिश	१ +	८ =	९	१३१ यो०
१४	अनुत्तर	१ +	४ =	५	१३१ यो०

स्वर्ग विमानोंका वर्ण—

सोहम्मीसाणाणं, सव्व - विमाणेसु पंच - वण्णाणि ।

कसणेण वज्जिदाणि, सणक्कुमारादि - जुगलम्मि ॥२०३॥

अर्थ—सौधर्म और ईशान कल्पके सब विमान पाँचों वर्ण वाले तथा सनत्कुमारादि युगलमें कृष्ण वर्णसे रहित शेष चार वर्णवाले हैं ॥२०३॥

णीलेण वज्जिदाणि, बम्हे लंतवए णाम कप्पेसुं ।

रत्तेण विरहिदाणि, महसुक्के तह सहस्सारे ॥२०४॥

अर्थ—ब्रह्म और लान्तव नामक कल्पोंमें कृष्ण एवं नीलसे रहित तीन वर्णवाले तथा महाशुक्र और सहस्रारकल्पमें रक्त वर्णसे भी रहित शेष दो वर्ण वाले विमान हैं ।।२०४।।

आणद-पाणद-आरण-अच्चुद-गेवेज्जयादिय-विमाणा ।
ते सव्वे मुत्ताहल - मयंक - कुंदुज्जला होंति ।।२०५।।

अर्थ—आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और ग्रैवेयकादिके वे सब विमान मुक्ताफल, मृगांक अथवा कुन्द पुष्प सदृश उज्ज्वल हैं ।।२०५।।

विशेषार्थ—सौधर्मेशान कल्पोंके विमान पाँच वर्णवाले हैं । सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंके विमान कृष्ण बिना शेष चार वर्ण वाले हैं । ब्रह्म और लान्तव कल्पोंके विमान कृष्ण एवं नील बिना तीन वर्ण वाले हैं । महाशुक्र और सहस्रार कल्पोंके विमान कृष्ण, नील एवं रक्त वर्णसे रहित दो वर्णवाले हैं और आनतादिसे लेकर अनुत्तर पर्यन्तके सभी विमान कृष्ण, नील, लाल एवं पीत वर्णसे रहित मात्र शुक्ल वर्णके होते हैं ।

विमानोंके आधारका कथन—

सोहम्म-दुग-विमाणा, घणस्स-रूवस्स उवरि सलिलस्स ।
चेट्ठंते पवणोवरि, माहिंद - सणक्कुमाराणि ।।२०६।।

अर्थ—सौधर्म युगलके विमान घनस्वरूप जलके ऊपर तथा माहेन्द्र एवं सनत्कुमार कल्पके विमान पवनके ऊपर स्थित हैं ।।२०६।।

बम्हादी चत्तारो, कप्पा चेट्ठंति सलिल - वादूढं ।
आणद - पाणद - पहुदी, सेसा सुद्धम्मि गयणयले ।।२०७।।

अर्थ—ब्रह्मादिक चार कल्पोंके विमान जल एवं वायु दोनोंके ऊपर तथा आनत-प्राणतादि शेष विमान शुद्ध आकाशतलमें स्थित हैं ।।२०७।।

इन्द्रकादि विमानोंके ऊपर स्थित प्रासाद—

उवरिम्मि इंदयाणं, सेढिगयाणं पइण्णयाणं च ।
समचउरस्सा दीहा, चेट्ठंते विविह - पासादा ।।२०८।।

अर्थ—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंके ऊपर समचतुष्कोण एवं दीर्घ विविध प्रासाद स्थित हैं ।।२०८।।

कणयमया फलिहमया, मरगय-माणिक्क-इंदणीलमया ।
विद्दुममया विचित्ता, वर - तोरण - सुंदर-दुवारा ।।२०९।।

सत्तट्ठ-णव-दसादिय-विचित्त-भूमीहि भूसिदा सव्वे ।
वर - रयण - भूसदेहिं, बहुविह - जंतेहि रमणिज्जा ।।२१०।।

दिप्पंत - रयण - दीवा, कालागरु-पहुदि-धूव-गंधड्ढा ।
आसण-णाडय-कीडण - साला - पहुदीहि कयसोहा ।।२११।।

सीह-करि-मयर-सिहि-सुक-वयाल-गरुडासणादि-परिपुण्णा ।
बहुविह-विचित्त-मणिमय-सेज्जा - विण्णास - कमणिज्जा ।।२१२।।

णिच्चं विमल-सरूवा, पइण्ण-वर-दीव-कुसुम-कंतिल्ला ।
सव्वे अणाइणिहणा, अकट्टिमा ते विरायंति ।।२१३।।

एवं संखा-परूवणा-समत्ता ।।६।।

अर्थ—(ये सब प्रासाद) सुवर्णमय, स्फटिकमणिमय, मरकत-माणिक्य एवं इन्द्रनील मणियोंसे निर्मित, मूँगासे निर्मित, विचित्र, उत्तम तोरणोंसे सुन्दर द्वारवाले, सात-आठ-नौ-दस इत्यादि विचित्र भूमियोंसे भूषित, उत्तर रत्नोंसे भूषित, बहुत प्रकारके यन्त्रोंसे रमणीय, चमकते हुए रत्न-दीपकों सहित, कालागरु आदि धूपोंके गन्धसे व्याप्त; आसनशाला, नाट्यशाला एवं क्रीड़नशाला आदिकोंसे शोभायमान; सिंहासन, गजासन, मकरासन, मयूरासन, शुकासन, व्यालासन एवं गरुडासनादिसे परिपूर्ण; बहुत प्रकारकी विचित्र मणिमय शय्याओंके विन्याससे कमनीय, नित्य, विमल-स्वरूपवाले, विपुल उत्तम दीपों एवं कुसुमोंसे कान्तिमान्, अनादि-निधन और अकृत्रिम विराजमान हैं ।।२०९-२१३।।

इसप्रकार संख्या प्ररूपणा समाप्त हुई ।।६।।

इन्द्रोंके दस-विध परिवार देवोंके नाम और पद—

बारस-विह-कप्पाणं, बारस इंदा हवंति वर - रूवा ।
दस-विह-परिवार-जुदा, पुव्वज्जिद-पुण्ण - पाकादो ।।२१४।।

अर्थ—बारह प्रकारके कल्पोंके बारह इन्द्र पूर्वोपार्जित पुण्यके परिपाकसे उत्तम रूपके धारक होते हैं और दस प्रकारके परिवारसे युक्त होते हैं ।।२१४।।

पडिइंदा सामाणिय-तेत्तीस-सुरा दिगिंद - तणुरक्खा ।
परिसाणीय-पइण्णय-अभियोगा होंति किब्बिसिया ।।२१५।।

अर्थ—प्रतीन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशदेव, दिगिन्द्र, तनुरक्ष, पारिषद, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, ये दस प्रकारके परिवार देव हैं ।।२१५।।

जुवराय - कलत्ताणं, पुत्ताणं तह य तंतरायाणं ।
तणु-रक्खा - कोवाणं, वर-मज्झिम-अवर-तइल्लाणं ॥२१६॥

सेणाण पुरजणाणं, परिवाराणं तहेव पाणाणं ।
कमसो ते सारिच्छा, [1]पडिइंद - प्पहुदिणो होंति ॥२१७॥

अर्थ—वे प्रतीन्द्र आदि क्रमशः युवराज, कलत्र, पुत्र तथा तन्त्रराय, कृपाणधारी शरीर रक्षक, उत्तम, मध्यम एवं जघन्य परिषद्में बैठने योग्य (सभासद), सेना, पुरजन, परिचारक और चाण्डालके सदृश होते हैं ॥२१६-२१७॥

प्रतीन्द्र—

एक्केक्का पडिइंदा, एक्केक्काणं हवंति इंदाणं ।
ते जुवराय - रिद्धीए, वट्टंते आउ - परियंतं ॥२१८॥

अर्थ—एक-एक इन्द्रके जो एक-एक प्रतीन्द्र होते हैं वे आयु पर्यन्त युवराजकी ऋद्धिसे युक्त रहते हैं ॥२१८॥

सामानिक देवोंका प्रमाण—

चउसीदि-सहस्साणि, सोहम्मिदस्स होंति सुर-पवरा ।
सामाणिया सहस्सा, सीदी ईसाण - इंदस्स ॥२१९॥

८४००० । ८०००० ।

अर्थ—सामानिक जातिके उत्कृष्ट देव सौधर्म इन्द्रके चौरासी हजार (८४०००) और ईशान इन्द्रके अस्सी हजार (८००००) होते हैं ॥२१९॥

बाहत्तरी - सहस्सा, ते चेट्ठंते सणक्कुमारिंदे ।
सत्तरि - सहस्स - मेत्ता, तहेव माहिंद - इंदस्स ॥२२०॥

७२००० । ७०००० ।

अर्थ—वे सामानिक देव सनत्कुमार इन्द्रके बहत्तर हजार (७२०००) और माहेन्द्र इन्द्रके सत्तर हजार (७००००) प्रमाण होते हैं ॥२२०॥

बम्हिंदम्मि सहस्सा, सट्ठी पण्णास लंतविंदम्मि ।
चालं महसुक्किंदे, तीस सहस्सार - इंदम्मि ॥२२१॥

६०००० । ५०००० । ४०००० । ३०००० ।

---

1. ब. परिइंद ।

अर्थ—सामानिक देव ब्रह्मेन्द्रके साठ हजार (६००००), लान्तवेन्द्रके पचास हजार (५००००), महाशुक्र इन्द्रके चालीस हजार (४००००) और सहस्रार इन्द्रके तीस हजार (३००००) होते हैं ।।२२१।।

आणद-पाणद-इंदे, वीसं सामाणिया सहस्साणि ।
वीस सहस्साणि पुढं, पत्तेक्कं आरणच्चुविदेसुं ।।२२२।।

२०००० । २०००० । २०००० । २०००० ।

अर्थ—सामानिकदेव आनत-प्राणत इन्द्रके बीस हजार (२००००) और आरण-अच्युत इन्द्रके पृथक्-पृथक् बीस हजार (२००००) होते हैं ।।२२२।।

त्रायस्त्रिंश और लोकपाल देव—

तेत्तीस सुरप्पवरा, एक्केक्काणं हवंति इंदाणं ।
चत्तारि लोयपाला, सोम-जमा - वरुण - धणदा य ।।२२३।।

अर्थ—एक-एक इन्द्रके तैंतीस त्रायस्त्रिंश देव और सोम, यम, वरुण तथा धनद, ये चार लोकपाल होते हैं ।।२२३।।

तनुरक्षक देव—

तिण्णि च्चिय लक्खाणि, छत्तीस-सहस्सयाणि तणुरक्खा ।
सोहम्मिवे विदिए, [1]ताणि सोलस - सहस्स - हीणाणि ।।२२४।।

३३६००० । ३२०००० ।

अर्थ—तनुरक्षक देव सौधर्म इन्द्रके तीन लाख छत्तीस हजार (३३६०००) और द्वितीय इन्द्रके इनसे सोलह हजार कम (३२००००) होते हैं ।।२२४।।

अट्ठासीदि - सहस्सा, दो-लक्खाणि सणक्कुमारिंदे ।
माहिंदिदे लक्खा, दोण्णि य सीदी - सहस्साणि ।।२२५।।

२८८००० । २८०००० ।

अर्थ—तनुरक्षक देव सनत्कुमार इन्द्रके दो लाख अठासी हजार (२८८०००) और माहेन्द्र इन्द्रके दो लाख अस्सी हजार (२८००००) होते हैं ।।२२५।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. ताए ।

बम्हिदे चालीसं, सहस्स-अब्भहिय दुवे दुवे लक्खा ।
लंतवए दो-लक्खं, बि-गुणिय-सीदी-सहस्स-महसुक्के ।।२२६।।

२४०००० । २००००० । १६०००० ।

अर्थ—तनुरक्षक देव ब्रह्मेन्द्रके दो लाख चालीस हजार (२४००००), लान्तव इन्द्रके दो लाख (२०००००) और महाशुक्र इन्द्रके द्विगुणित अस्सी हजार अर्थात् एक लाख साठ हजार (१६००००) होते हैं ।।२२६।।

बि-गुणिय-सट्ठि-सहस्सं, सहस्सयारिंदयम्मि पत्तेक्कं ।
सीदि - सहस्स - पमाणं, उवरिम-चत्तारि-इंदम्मि ।।२२७।।

१२०००० । ८०००० । ८०००० । ८०००० । ८०००० ।

अर्थ—तनुरक्षक देव सहस्रार इन्द्रके द्विगुणित साठ हजार (१२००००) और उपरितन चार इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके अस्सी हजार (८००००) प्रमाण होते हैं ।।२२७।।

अभ्यन्तर-मध्यम और बाह्य परिषद्के देव—

अब्भंतर-परिसाए, सोहम्मिदाण बारस - सहस्सा ।
चेट्ठंते सुर - पवरा, ईसाणिदस्स दस - सहस्साणि ।।२२८।।

१२००० । १०००० ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद्में बारह हजार (१२०००) और ईशान इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद्में दस हजार (१००००) देव स्थित होते हैं ।।२२८।।

तदिए अट्ठ - सहस्सा, माहिंदिदस्स छस्सहस्साणि ।
बम्हिदम्मि सहस्सा, चत्तारो दोण्णि लंतविदम्मि ।।२२९।।

८००० । ६००० । ४००० । २००० ।

अर्थ—तृतीय (सनत्कुमार इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद्) में आठ हजार (८०००), माहेन्द्रकी (अभ्यन्तर परिषद) मे छह हजार (६०००), ब्रह्मेन्द्र की (अभ्यन्तर परिषद्) में चार हजार (४०००) और लान्तव (इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद्) में दो हजार (२०००) देव होते हैं ।।२२९।।

सत्तमयस्स सहस्सं, पंच - सयाणि सहस्सयारिंदे ।
आणद-इंदादि-दुगे, पत्तेक्कं दो - सयाणि पण्णासा ।।२३०।।

१००० । ५०० । २५० । २५० ।

अर्थ—सप्तम (महाशुक्र इन्द्रकी अभ्यन्तर परिषद्) में एक हजार (१०००), सहस्रार (इन्द्रकी अ० परिषद्) में पाँच सौ (५००) और आनतादि (आनत-प्राणत) दो इन्द्रोंकी (अभ्यन्तर परिषद्) में दो सौ पचास-दो सौ पचास (२५० — २५०) देव होते हैं ।।२३०।।

अब्भंतर - परिसाए, आरण - इंदस्स अच्चुदिंदस्स ।
पत्तेक्कं सुर - पवरा, एक्क - सयं पंचवीस - जुदं ।।२३१।।

१२५ । १२५ ।

अर्थ—आरण इन्द्र और अच्युत इन्द्रमेंसे प्रत्येक (की अभ्यन्तर परिषद्) में एक सौ पच्चीस-एक सौ पच्चीस (१२५-१२५) उत्तम देव होते हैं ।।२३१।।

मज्झिम-परिसाय सुरा, चोद्दस-बारस-दसट्ठ-छ-चउ-दुगा ।
होंति सहस्सा कमसो, सोहम्मिदादिएसु सत्तेसुं ।।२३२।।

१४००० । १२००० । १०००० । ८००० । ६००० । ४००० । २००० ।

अर्थ—सौधर्मादिक सात इन्द्रोंमें से प्रत्येककी मध्यम परिषद्में क्रमशः चौदह हजार, बारह हजार, दस हजार, आठ हजार, छह हजार, चार हजार और दो हजार देव होते हैं ।।२३२।।

एक्क-सहस्स-पमाणं, सहस्सयारिंदयम्मि पंच - सया ।
उवरिम - चउ - इंदेसुं, पत्तेक्कं मज्झिमा परिसा ।।२३३।।

१००० । ५०० । ५०० । ५०० । ५००

अर्थ—सहस्रार इन्द्रकी मध्यम परिषद्में एक हजार (१०००) प्रमाण और उपरितन चार इन्द्रोंमेंसे प्रत्येककी मध्यम परिषद्में पाँच सौ (५००) देव होते हैं ।।२३३।।

सोलस-चोद्दस-बारस-दसट्ठ-छच्चदु-दुगेक्क य सहस्सा ।
बाहिर-परिसा कमसो, समिदा चंदा य [1]जउ-णामा ।।२३४।।

परिसा समत्ता ।।

अर्थ—उपर्युक्त इन्द्रोंके बाह्य पारिषद देव क्रमशः सोलह, चौदह, बारह, दस, आठ, छह, चार, दो और एक हजार प्रमाण होते हैं। इन तीनों परिषदोंका नाम क्रमशः समित्, चन्द्रा और जतु है ।।२३४।।

परिषद्का कथन समाप्त हुआ ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. जुपणाओ ।

अनीक देवोंका प्रमाण—

वसह-तुरंगम-रह-गज-पदाति-गंधव्व-णट्टयाणीश्रा ।
एवं सत्ताणीया, एक्केक्क हवंति इंदाणं ॥२३५॥

अर्थ—वृषभ, तुरङ्ग, रथ, गज, पदाति, गन्धर्व और नर्तक अनीक, इसप्रकार एक-एक इन्द्रकी सात सेनायें होती हैं ॥२३५॥

एदे सत्ताणीया, पत्तेक्कं सत्त-सत्त-कक्ख-जुदा ।
तेसुं पढमाणीया, णिय-णिय - सामाणियाण[1] समा ॥२३६॥

अर्थ—इन सात सेनाओंमेंसे प्रत्येक सात-सात कक्षाओंसे युक्त होती हैं। इनमेंसे प्रथम अनीकका प्रमाण अपने-अपने सामानिकोंके बराबर होता है ॥२३६॥

तत्तो दुगुणं दुगुणं, कादव्वं जाव सत्तमाणीयं ।
परिमाण - जाणणट्ठं, ताणं संखं परूवेमो ॥२३७॥

अर्थ—इसके आगे सप्तम अनीक पर्यन्त उससे दूना-दूना करना चाहिए। इस प्रमाणको जाननेके लिए उनकी संख्या कहते हैं ॥२३७॥

इगि-कोडी छल्लक्खा, अट्ठासट्ठी - सहस्सया वसहा ।
सोहम्मिंदे होंति हु, [2]तुरयादी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२३८॥

१०६६८००० । पिंड ७४६७६००० ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके एक करोड़ छह लाख अड़सठ हजार (१०६६८०००) वृषभ होते हैं और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२३८॥

विशेषार्थ—सौधर्म इन्द्रकी प्रथम कक्षमें वृषभ संख्या सामानिक देवोंके सदृश ८४००० प्रमाण है। इस प्रथम कक्षकी संख्यासे सातों कक्षाओंकी संख्या १२७ गुणी होती है अतः प्रथम अनीककी सातों कक्षाओंमें कुल संख्या (८४०००×१२७)=१०६६८००० है। प्रथम अनीककी संख्या १०६६८००० है अतः सातों अनीकोंकी पिण्ड रूप संख्या (१०६६८०००×७)=७४६७६००० है। इसीप्रकार सर्वत्र जानना चाहिए ।

एक्का कोडी एक्कं, लक्खं सट्ठी सहस्स वसहाणि ।
ईसाणिंदे होंति हु, तुरयादी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२३९॥

१०१६०००० । पिंड ७११२०००० ।

---

१. द. क. ज. ठ. सामाणियाणि समत्ता, ब. सामाणियाणि सम्मत्ता । २. ब. तुरयादिय ।

अर्थ—ईशान इन्द्रके एक करोड़ एक लाख साठ हजार वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२३९॥

विशेषार्थ—प्रथम अनीककी प्रथम कक्षमें ८०००० वृषभ हैं अतः ८००००×१२७=१०१६०००० । १०१६००००×७=७११२०००० ।

लक्खाणि एक्कणउदी, चउदाल-सहस्सयाणि वसहाणि ।
होंति हु तदिए इंदे, तुरयादो तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२४०॥

९१४४००० । पिंड ६४००८००० ।

अर्थ—तृतीय (सनत्कुमार) इन्द्रके इक्यानबै लाख चवालीस हजार (७२०००×१२७=९१४४०००) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४०॥

९१४४०००×७=६४००८००० ।

अट्ठासीदी-लक्खा, णउदि-सहस्साणि होंति वसहाणि ।
माहिंदिंदे तेत्तियमेत्ता तुरयादिणो वि पत्तेक्कं ॥२४१॥

८८९०००० । पिंड ६२२३०००० ।

अर्थ—माहेन्द्र इन्द्रके अठासी लाख नब्बे हजार (७००००×१२७=८८९००००) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४१॥

८८९००००×७=६२२३०००० ।

छाहत्तरि-लक्खाणि, वीस-सहस्साणि होंति वसहाणि ।
बम्हिंदे पत्तेक्कं, तुरय-प्पहुदी वि तम्मेत्तं ॥२४२॥

७६२०००० । पिंड ५३३४०००० ।

अर्थ—ब्रह्मेन्द्रके छिहत्तर लाख बीस हजार (६००००×१२७=७६२००००) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४२॥

७६२००००×७=५३३४०००० ।

तेसट्ठी-लक्खाणि, पण्णास-सहस्सयाणि वसहाणि ।
लंतव-इंदे होंति हु, तुरयादी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२४३॥

६३५०००० । पिंड ४४४५०००० ।

अर्थ—लान्तव इन्द्रके तिरेसठ लाख पचास हजार (५०००० × १२७ = ६३५००००) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४३॥

६३५०००० × ७ = ४४४५०००० ।

पण्णासं लक्खाणि, सीदि-सहस्साणि होंति वसहाणि ।
महसुक्किंदे होंति हु, तुरयादी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२४४॥

५०८०००० । पिंड ३५५६०००० ।

अर्थ—महाशुक्र इन्द्रके पचास लाख अस्सी हजार (४०००० × १२७ = ५०८००००) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४४॥

५०८०००० × ७ = ३५५६०००० ।

अट्ठत्तीसं लक्खं, दस य सहस्साणि होंति वसहाणि ।
तुरयादी तम्मेत्ता, होंति सहस्सार - इंदम्मि ॥२४५॥

३८१०००० । पिंड २६६७०००० ।

अर्थ—सहस्रार इन्द्रके अड़तीस लाख दस हजार (३०००० × १२७ = ३८१००००) वृषभ और तुरगादिक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४५॥

३८१०००० × ७ = २६६७०००० ।

पणुवीसं लक्खाणि, चालीस-सहस्सयाणि [1]वसहाणि ।
आरण-इंदादि-दुगे, तुरयादी तेत्तिया वि पत्तेक्कं ॥२४६॥

२५४०००० । पिंड १७७८०००० ।

अर्थ—आरण इन्द्रादिक दोके पच्चीस लाख चालीस हजार (२०००० × १२७ = २५४००००) वृषभ और तुरगादिकमेंसे प्रत्येक भी इतने प्रमाण ही होते हैं ॥२४६॥

२५४०००० × ७ = १७७८०००० ।

नोट—गाथामें आनतादि चारोंके अनीकों का प्रमाण कहा जाना चाहिए था किन्तु आरण आदि दो का ही कहा गया है, दो का नहीं । क्यों ?

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

---

१. ब. होंति वसहाणि ।

क्रमांक	इन्द्र नाम	प्रतीन्द्र	सामानिक देवोंका प्र०	त्रायस्त्रिंश	लोकपाल	तनुरक्षक	पारिषदोंका प्रमाण			अनीक सेनाओंका प्रमाण		
							अभ्यन्तर परिषद्	मध्यम परि०	बाह्य परि०	प्रथम कक्ष	एक अनीककी सम्पूर्ण संख्या [प्रथम कक्षकी सं से १२७ गुणी है।]	सातों अनीकोंकी सम्पूर्ण संख्या
१	सौधर्मेन्द्र	१	८४०००	३३	४	३३६०००	१२०००	१४०००	१६०००	८४०००	१०६६८०००	७४६७६०००
२	ऐशानेन्द्र	१	८००००	३३	४	३२००००	१००००	१२०००	१४०००	८००००	१०१६००००	७११२००००
३	सनत्कुमारेन्द्र	१	७२०००	३३	४	२८८०००	८०००	१००००	१२०००	७२०००	९१४४०००	६४००८०००
४	माहेन्द्र	१	७००००	३३	४	२८००००	६०००	८०००	१००००	७००००	८८९००००	६२२३००००
५	ब्रह्मेन्द्र	१	६००००	३३	४	२४००००	४०००	६०००	८०००	६००००	७६२००००	५३३४००००
६	लान्तवेन्द्र	१	५००००	३३	४	२०००००	२०००	४०००	६०००	५००००	६३५००००	४४४५००००
७	महाशुक्रेन्द्र	१	४००	३३	४	१६००००	१०००	२०००	४०००	४००००	५०८००००	३५५६००००
८	सहस्रारेन्द्र	१	३००००	३३	४	१२००००	५००	१०००	२०००	३००००	३८१००००	२६६७००००
९	आनतादि ४	१	२००००	३३	४	८००००	२५०	५००	१०००	२००००	२५४००००	१७७८००००

सातों अनीकोंकी अपनी-अपनी प्रथमादि कक्षाओंमें स्थित वृषभादिकोंके वर्णका वर्णन—

जलहर-पडल-समुत्थिद-सरय-मयंक-सुजाल-संकासा ।
वसह-तुरंगादीया, णिय-णिय-कक्खासु पढम-कक्ख-ठिदी ॥२४७॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे प्रथम कक्षामें स्थित वृषभ-तुरंगादिक मेघ-पटलसे उत्पन्न शरत्कालीन चन्द्रमाके किरण-समूहके सदृश (वर्ण वाले) होते हैं ॥२४७॥

उदयंत-दुमणि-मंडल-समाण-वण्णा हवंति वसहादी ।
ते णिय-णिय-कक्खासुं, चेट्ठंते बिदिय - कक्खासुं ॥२४८॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे द्वितीय कक्षामें स्थित वे वृषभादिक उदित होते हुए सूर्य-मण्डलके सदृश वर्णवाले होते हैं ॥२४८॥

फुल्लंत-णीलकुवलय-सरिच्छं[1]-वण्णा तइज्ज-कक्ख-ठिदा ।
ते णिय - णिय - कक्खासुं, वसहस्स रहाविणो होंति ॥२४९॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे तृतीय कक्षामें स्थित वे वृषभ, अश्व और रथादिक फूलते हुए नीलकमलके सदृश निर्मल वर्णवाले होते हैं ॥२४९॥

मरगय-मणि-सरिस-तणू, [2]वर-विविह-विभूसणेहि सोहिल्ला ।
ते णिय-णिय-कक्खासुं, वसहादी तुरिम - कक्ख - ठिदा ॥२५०॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे चतुर्थ कक्षामें स्थित वे वृषभादिक मरकत मणिके सदृश शरीरवाले और अनेक प्रकारके उत्तम आभूषणोंसे शोभायमान होते हैं ॥२५०॥

पारावय - मोराणं, कंठ - सरिच्छेहि देह - वण्णेहि ।
ते णिय-णिय-कक्खासुं, पंचम-कक्खासु वसह-पहुदीओ ॥२५१॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे पंचम कक्षामें स्थित वे वृषभादिक कबूतर एवं मयूरके कण्ठके सदृश देह-वर्णसे युक्त होते हैं ॥२५१॥

वर-पउमराय-बंधूय-कुसुम-संकास - देह - सोहिल्ला ।
ते णिय-णिय-कक्खासुं, वसहाइं छट्ठ-कक्ख-जुदा ॥२५२॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे छठी कक्षामें स्थित वृषभादिक उत्तम पद्मराग मणि अथवा बन्धूक पुष्पके वर्ण सदृश शरीरसे शोभायमान होते हैं ॥२५२॥

---

१. ब. सरिसच्छ । २. ब. तणू विविह ।

भिण्णिदणील-वण्णा, सत्तम-कक्ख-ट्ठिदा वसह-पहुदी ।
ते णिय-णिय-कक्खासुं, वर - मंडण - मंडिदायारा ॥२५३॥

अर्थ—अपनी-अपनी कक्षाओंमेंसे सप्तम कक्षामें स्थित वृषभादिक भिन्न इन्द्रनीलमणिके सदृश वर्ण वाले और उत्तम आभूषणोंसे मण्डित आकारसे युक्त होते हैं ॥२५३॥

प्रत्येक कक्षाके अन्तरालमें बजने वाले वादित्र—

सत्ताण[1] अणीयाणं, णिय-णिय-कक्खाण होंति विच्चाले ।
वर-पडह - संख - मद्दल - काहल - पहुदीण पत्तेक्कं ॥२५४॥

अर्थ—सातों अनीकोंकी अपनी-अपनी कक्षाओंके अन्तरालमें उत्तम पटह, शङ्ख, मर्दल और काहल आदिमेंसे प्रत्येक होते हैं ॥२५४॥

वृषभादि सेनाओंकी शोभाका वर्णन—

लंबंत-रयण-किंकिणि-सुहवा-मणि-कुसुम-दाम-रमणिज्जा ।
धुव्वंत - धय - वडाया, वर - चामर - छत्त-कंतिल्ला ॥२५५॥
रयणमया पल्लाणा, वसह - तुरंगा रहा य इंदाणं ।
बहुविह - विगुव्वणाणं, वाहिज्जंताण सुर - कुमारेहिं ॥२५६॥

अर्थ—बहुविध विक्रिया करने वाले तथा सुर-कुमारों द्वारा उह्यमान इन्द्रोंके वृषभ, तुरंग और रथादिक लटकती हुई रत्नमय क्षुद्र-घण्टिकाओं, मणियों एवं पुष्पोंकी मालाओंसे रमणीय; फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे युक्त, उत्तम चँवर एवं छत्रसे कान्तिमान् और रत्नमय तथा सुखप्रद साजसे संयुक्त होते हैं ॥२५५-२५६॥

असि-मुसल-कणय-तोमर-कोवंड-प्पहुदि-विविह-सत्थकरा ।
ते सत्तसु कक्खासुं, पदातिणो दिव्व - रूवधरा ॥२५७॥

अर्थ—जो असि, मूसल, कनक, तोमर और धनुष आदि विविध शस्त्रोंको हाथमें धारण करने वाले हैं, वे सात कक्षाओंमें दिव्य रूपके धारक पदाति होते हैं ॥२५७॥

सज्जं[2] रिसहं गंधार - मज्झिमा पंच-पंच-महुर-सरं ।
धइवद - जुदं णिसादं, पुह पुह गायंति गंधव्वा ॥२५८॥

---

१. द. क. ज. ठ सत्ताण य आणीया । २. ब. क. जं सट्ठिसहं, द. ब. ठ. सं जट्ठिसहं ।

अर्थ—गन्धर्वदेव षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद, इन मधुर स्वरोंको पृथक्-पृथक् गाते हैं ॥२५८॥

वीणा-वेणु-प्पमुहं, णाणाविह-ताल-करण-लय-जुत्तं ।
वाइज्जंवि वादित्ते, गंधव्वेहिं महुर - सद्दं ॥२५९॥

अर्थ—गन्धर्व देव नाना प्रकारकी ताल-क्रिया एवं लयसे संयुक्त (होकर) मधुर स्वरसे वीणा एवं बांसुरी आदि वादित्रोंको बजाते हैं ॥२५९॥

प्रत्येक कक्षाके नर्तक-देवोंके कार्य—

कंदप्प-राज - राजाहिराज-विज्जाहराण चरियाणं ।
णच्चंति णट्टय - सुरा, णिच्चं पढमाए कक्खाए ॥२६०॥

अर्थ—प्रथम कक्षके नर्तक देव नित्य ही कन्दर्प, (कामदेव) राजा, राजाधिराज और विद्याधरोंके चरित्रोंका अभिनय करते हैं ॥२६०॥

पुढवीसाणं चरियं, सयलद्ध-महादि-मंडलीयाणं ।
बिदियाए कक्खाए, णच्चंते णच्चणा देवा ॥२६१॥

अर्थ—द्वितीय कक्षके नर्तक देव अर्धमण्डलीक और महामण्डलीकादि पृथिवीपालकोंके चरित्रका अभिनय करते हैं ॥२६१॥

बलदेवाण हरीणं, पडिसत्तूणं विचित्त - चरित्ताणि ।
तदियाए कक्खाए, वर - रस - भावेहिं णच्चंति ॥२६२॥

अर्थ—तृतीय कक्षाके नर्तक देव उत्तम रस एवं भावोंके साथ बलदेव, नारायण और प्रति-नारायणोंके अद्भुत चरित्रोंका अभिनय करते हैं ॥२६२॥

चोद्दस-रयण-वईणं, णव-णिहि-सामीण चक्कवट्टीणं ।
अच्चरिय - चरित्ताणि, णच्चंति चउत्थ - कक्खाए ॥२६३॥

अर्थ—चतुर्थ कक्षाके नर्तक देव चौदह रत्नोंके अधिपति और नव निधियोंके स्वामी ऐसे चक्रवर्तियोंके आश्चर्य-जनक चरित्रोंका अभिनय करते हैं ॥२६३॥

सव्वाण सुरिंदाणं, सलोयपालाण चारु - चरियाइं[1] ।
ते पंचम - कक्खाए, णच्चंति विचित्त - भंगीहिं ॥२६४॥

---

१. ब. क. चरियाणं ।

अर्थ—पंचम कक्षाके नर्तक देव लोकपालों सहित समस्त इन्द्रोंके सुन्दर चरित्रोंका विचित्र भंगिमाओंसे अभिनय करते हैं ।।२६४।।

गणहर-देवादीणं, विमल-मुणिवाण विविह-रिद्धीणं ।
चरियाइं[1] विचित्ताइं, णच्चंते छट्ठ - कक्खाए ।।२६५।।

अर्थ—छठी कक्षाके नर्तकदेव विविध ऋद्धियोंके धारक गणधर आदि निर्मल मुनीन्द्रोंके अद्भुत चरित्रोंका अभिनय करते हैं ।।२६५।।

चोत्तीसाइ - सयाणं, बहुविह-कल्लाण-पाडिहेराणं ।
जिण - णाहाण चरित्तं, सत्तम - कक्खाए णच्चंति ।।२६६।।

अर्थ—सप्तम कक्षाके नर्तक देव चौंतीस अतिशयोंसे युक्त और बहुत प्रकारके मंगलमय प्रातिहार्योंसे संयुक्त जिननाथोंके चरित्रका अभिनय करते हैं ।।२६६।।

दिव्व-वर-देह-जुत्ता, वर-रयण-विभूसणेहि कयसोहा ।
ते णच्चंते णिच्चं, णिय - णिय - इंदाण अग्गेसुं ।।२६७।।

अर्थ—दिव्य एवं उत्तम देह सहित और उत्तम रत्न-विभूषणोंसे शोभायमान वे नर्तक देव नित्य ही अपने-अपने इन्द्रोंके आगे नाचते हैं ।।२६७।।

सत्तपदाणाणीया, एदे इंदाण होंति पत्तेक्कं ।
अण्णा वि छत्त-चामर, पीढाणि य बहुविहा होंति ।।२६८।।

अर्थ—इसप्रकार प्रत्येक इन्द्रके सात-सात कक्षाओं वाली सेनाएँ होती हैं । इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत प्रकार छत्र, चंवर और पीठ (सिंहासन) होते हैं ।।२६८।।

सव्वाणि अणीयाणि, वसहाणीयस्स होंति सरिसाणि ।
वर - विविह - भूसणेहिं, विभूसिदंगाणि पत्तेक्कं ।।२६९।।

अर्थ—सब अनीकोंमेंसे प्रत्येक उत्तम विविध भूषणोंसे विभूषित शरीरवाले होते हुए वृषभानीकके सदृश हैं ।।२६९।।

सव्वाणि अणीयाणि, कक्खं पडि छस्सयं सहावेणं ।
पुव्वं व विकुव्वणाए, लोयविणिच्छय-मुणी[2] भणइ ।।२७०।।

६०० । ४२०० । पाठान्तरम् ।

---

१. द. ब उच्चरिय । २ द. ब. क. ज. ठ मुणि भणइं ।

अर्थ—प्रत्येक कक्षाकी सब अनीकें स्वभावसे छह सौ (६००) और विक्रियाकी अपेक्षा पूर्वोक्त (६००×७=४२००) संख्याके समान हैं, ऐसा लोक विनिश्चय मुनि कहते हैं ।।२७०।।

पाठान्तर ।

वसहाणीयादीणं, पुह पुह चुलसीदि-लक्ख-परिमाणं ।
पढमाए कक्खाए, सेसासुं दुगुण - दुगुण - कमा ।।२७१।।
एवं सत्त - विहाणं, सत्ताणीयाण[1] होंति पत्तेक्कं ।
संगायणि[2] - आइरिया, एवं णियमा परूवेंति ।।२७२।।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—प्रथम कक्षामें वृषभादिक अनीकोंका प्रमाण पृथक्-पृथक् चौरासी लाख है । शेष कक्षाओंमें क्रमशः इससे दूना-दूना है । इसप्रकार सातों अनीकोंमें प्रत्येकके सात-सात प्रकार हैं । ऐसा संगायणि-आचार्य नियमसे निरूपण करते हैं ।।२७१-२७२।।

सप्त अनीकोंके अधिपति देव—

सत्ताणीयाहिवई, जे देवा होंति दक्खिणिंदाणं ।
उत्तर[3] - इंदाण तहा, ताणं णामाणि वोच्छामि ।।२७३।।

अर्थ—दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रोंकी सात अनीकोंके जो अधिपति देव हैं उनके नाम कहते हैं ।।२७३।।

वसहेसु दामयट्ठी, तुरंगमेसुं हवेदि हरिदामो ।
तह मावली[4] रहेसुं, गजेसु एरावदो णाम ।।२७४।।
वाऊ पदाति - संघे, गंधव्वेसुं अरिट्ठसंका य ।
णीलंजण[5] त्ति देवी, विक्खादा णट्टयाणीया ।।२७५।।

अर्थ—वृषभोंमें दामयष्टि, तुरगोंमें हरिदाम, रथोंमें मातलि, गजोंमें ऐरावत, पदाति संघमें वायु, गन्धर्वोंमें अरिष्टशंका (अरिष्टयशस्क) और नर्तक अनीकमें नीलञ्जसा (नीलांजना) देवी, इसप्रकार सात अनीकोंमें ये महत्तर (प्रधान) देव विख्यात हैं ।।२७४-२७५।।

पीढाणीए दोण्हं, अहिवइ - देओ हवेदि हरिणामो ।
सेसाणीयवईणं, णामेसुं णत्थि उवएसो ।।२७६।।[6]

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सच्चविदाण सत्ताणीयाणि । २. द. संगाइणि । ३. द. ब. क. ज. ठ. उवरिम । ४. द. ब. क. ज. ठ. मरदली । ५. द. ब. क. णीलंजसो, ज. ठ. णलंजसो । ६. यह गाथा पाठान्तर ज्ञात होती है ।

अर्थ—दोनों (दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र) की पीठानीक (अश्वसेना) का अधिपति हरि नामक देव होता है। शेष अनीकोंके अधिपतियोंके नामोंका उपदेश नहीं है ॥२७६॥

अभियोगाणं अहिवइ - देवो चेट्ठे वि दक्खिणिंदेसुं ।
बालक - णामो उत्तर - इंदेसुं पुप्फदंतो य ॥२७७॥

अर्थ—दक्षिणेन्द्रोंमें अभियोग देवोंका अधिपति बालक नामक देव और उत्तरेन्द्रोंमें इनका अधिपति पुष्पदन्त नामक देव होता है ॥२७७॥

वाहन देवगत ऐरावत हाथीका विवेचन—

सक्क-दुगम्मि य वाहण-देवा एरावद-णाम हत्थीणं ।
कुव्वंति विकिरियाओ, लक्खं उच्छेह-जोयणा दोहं ॥२७८॥

१०००००

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रके वाहन देव विक्रियासे एक लाख (१०००००) उत्सेध योजन प्रमाण दीर्घ ऐरावत नामक हाथीकी रचना करते हैं ॥२७८॥

एदाणं बत्तीसं, होंति मुहा दिव्व-रयण-दाम-जुदा ।
पुह पुह रुणंत किंकिणि-कोलाहल-सद्द-कयसोहा ॥२७९॥

अर्थ—इनके दिव्य रत्न-मालाओंसे युक्त बत्तीस मुख होते हैं, जो घण्टिकाओंके कोलाहल शब्दसे शोभायमान होते हुए पृथक्-पृथक् शब्द करते हैं ॥२७९॥

एक्केक्क - मुहे चंचल-चंदुज्जल-चमर-चारु-रूवम्मि ।
चत्तारि होंति दंता, धवला वर-रयण-भर-खचिदा ॥२८०॥

अर्थ—चञ्चल एवं चन्द्रके सदृश उज्ज्वल चामरोंसे सुन्दर रूपवाले एक-एक मुखमें रत्नोंके समूहसे खचित धवल चार-चार दाँत होते हैं ॥२८०॥

एक्केक्कम्मि विसाणे, एक्केक्क-सरोवरे विमल-वारी ।
एक्केक्क - सरवरम्मि य, एक्केक्कं कमल-वर-संडा ॥२८१॥

अर्थ—एक-एक विषाण (हाथी दाँत) पर निर्मल जलसे युक्त एक-एक सरोवर होता है। एक-एक सरोवरमें एक-एक उत्तम कमल-खण्ड (कमल उत्पन्न होनेका क्षेत्र) होता है ॥२८१॥

एक्केक्क-कमल-संडे, बत्तीस-विकस्सरा महापउमा ।
एक्केक्क - महापउमं, एक्केक्क - जोयण - पमाणेण ॥२८२॥

अर्थ—एक-एक कमल-खण्डमें विकसित बत्तीस महापद्म होते हैं और एक-एक महापद्म एक-एक योजन प्रमाण होता है ॥२८२॥

वर-कंचण-कयसोहा, वर-पउमा सुर-विकुव्वण-बलेणं ।
एक्केक्क - महापउमे, णाडय - साला य एक्केक्का ॥२८३॥

अर्थ—देवोंके विक्रिया-बलसे वे उत्तम पद्म उत्तम स्वर्णसे शोभायमान होते हैं। एक-एक महापद्मपर एक-एक नाटचशाला होती है ॥२८३॥

एक्केक्काए तीए, बत्तीस वरच्छरा पणच्चंति ।
एवं सत्ताणीया, णिद्दिट्ठा बारसिंदाणं ॥२८४॥

अर्थ—उस एक-एक नाटचशालामें उत्तम बत्तीस अप्सरायें नृत्य करती हैं। इसप्रकार बारह इन्द्रोंकी सात अनीकें (सेनाएँ) कही गयी हैं ॥२८४॥

इन्द्रके परिवार देवोंके परिवार देवोंका प्रमाण—

पुह-पुह पइण्णयाणं, अभियोग-सुराण किब्बिसाणं च ।
संखातीद - पमाणं, भणिदं सव्वेसु इंदाणं ॥२८५॥

अर्थ—सभी (स्वर्गों) में इन्द्रोंके प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक देवोंका पृथक्-पृथक् असंख्यात प्रमाण कहा गया है ॥२८५॥

पडिइंदाणं[1] सामाणियाण तेत्तीस - ु-वराणं च ।
दस-भेदा परिवारा, णिय - इंद - समाण पत्तेक्कं ॥२८६॥

अर्थ—प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवोंमेंसे प्रत्येकके दस प्रकारके परिवार अपने इन्द्रके सदृश होते हैं ॥२८६॥

लोकपालोंके सामन्त देवोंका प्रमाण—

चत्तारि सहस्साणि, सक्कादि - दुगे दिगिंद-सामंता ।
एक्कं चेव सहस्सं, सणक्कुमारादि - दोण्हं पि ॥२८७॥

४००० । १००० ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रके लोकपालोंके चार हजार सामन्त (४०००) और सनत्कुमारादि दो के सामन्त देव एक-एक हजार ही होते हैं ॥२८७॥

---

१. प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवोंके दस-दस भेद कैसे सम्भव हो सकते हैं ?

पंच-चउ-तिय-दुगाणं, सयाणि [1]बम्हिंदयादिय-चउक्के ।
आणद[2] - पहुदि - चउक्के, पत्तेक्कं एक्क-एक्क-सयं ॥२८८॥

५०० । ४०० । ३०० । २०० । १०० ।

अर्थ—ब्रह्मेन्द्रादिक चारके सामन्त देव क्रमशः पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ तथा आनतादिक चार इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके एक-एक सौ होते हैं ॥२८८॥

दक्षिणेन्द्रोंके लोकपालोंके पारिषद देवोंका प्रमाण—

पण्णास चउ-सयाणि, पंच-सयब्भंतरादि-परिसाओ ।
सोम-जमाणं भणिदा, पत्तेक्कं सयल-दक्खिणिंदेसुं ॥२८९॥

५० । ४०० । ५०० ।

अर्थ—समस्त दक्षिणेन्द्रोंमें प्रत्येकके सोम एवं यम लोकपालके अभ्यन्तर पारिषद देव पचास (५०), मध्यम पारिषद देव चारसौ (४००) और बाह्य पारिषद देव पाँच सौ (५००) कहे गये हैं ॥२८९॥

सट्ठी पंच-सयाणि, छच्च सया ताओ तिण्णि-परिसाओ ।
वरुणस्स कुबेरस्स य, सत्तरिया छस्सयाणि सत्त-सया ॥२९०॥

६० । ५०० । ६०० । ७० । ६०० । ७००

अर्थ—वे तीनों पारिषद देव वरुणके साठ (६०), पाँच सौ (५००) और छह सौ (६००) तथा कुबेरके सत्तर (७०), छह सौ (६००) और सात सौ (७००) होते हैं ॥२९०॥

उत्तरेन्द्रोंके लोकपालोंके पारिषद देवोंका प्रमाण—

जा दक्खिण-इंदाणं, कुबेर-वरुणस्स उत्थ तिप्परिसा ।
कादव्व विवज्जासं, उत्तर - इंदाण सेस पुव्व वा ॥२९१॥

५० । ४०० । ५०० ॥ वरु ७० । ६०० । ७०० ॥ कुबे ६० । ५०० । ६००

अर्थ—उन दक्षिणेन्द्रोंके कुबेर और वरुणके तीनों पारिषदोंका जो प्रमाण कहा है उससे उत्तरेन्द्रों (के कुबेर और वरुणके पारिषद देवोंके प्रमाण) का क्रम विपरीत है । शेष पूर्व के समान समझना चाहिए ॥२९१॥

---

१. द ब. क. ज. ठ. बम्हिंदयादिम । २. द. ब. क. ज. ठ. आरण ।

लोकपालोंके सामन्त देवोंके तीनों पारिषदोंका प्रमाण—

सव्वेसु दिगिंदाणं, सामंत-सुराण तिण्णि परिसाओ ।
णिय-णिय-दिगिंद-परिसा-सरिसाओ हवंति पत्तेक्कं ।।२९२।।

अर्थ—सब लोकपालोंके सामन्त देवोंके तीनों पारिषदोंमेंसे प्रत्येक अपने-अपने लोकपालके पारिषदोंके (प्रमाण) बराबर हैं ।।२९२।।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

लोकपालोंके सामन्तोंका और दोनोंके पारिषद् देवोंका प्रमाण—गा० २८७ से २९२

क्रमांक	कल्पों के नाम	लोकपालों के सामन्तों का प्रमाण गा० २८७-२८८	सोम लोकपाल एवं सोमके सामन्तों के			यम लोकपाल एवं यम के सामन्तों के			वरुण लोकपाल एवं वरुणके सामन्तों के			कुबेर लोकपाल एवं कुबेरके सामन्तों के		
			अभ्यन्तर पारिषद	मध्यम पा०	बाह्य पा०	अभ्यन्तर पा०	मध्यम पा०	बाह्य पा०	अभ्य. पा०	मध्यम पा०	बाह्य पा०	अभ्य. पा०	मध्यम पा०	बाह्य पा०
१	सौधर्म कल्प	४०००	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्रके सोम लोकपालके और सोमके सामन्त देवों के पारिषद देव ५०-५० होते हैं।	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्रके सोम लोकपालके और सोमके सामन्त देवों के पारिषद देव ४००-४०० होते हैं।	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्रके सोम लोकपालके और सोमके सामन्त देवों के पारिषद देव ५००-५०० होते हैं।	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्रके यम लोकपालके और यमके सामन्त देवोंके पारिषद देव ५०-५० होते हैं।	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्रके यम लोकपालके और यमके सामन्त देवोंके पारिषद ४००-४०० होते हैं।	दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्रके यम लोकपालके और यमके सामन्त देवोंके पारिषद ५००-५०० होते हैं।	६०	५००	६००	७०	६००	७००
२	ईशान कल्प	४०००							७०	६००	७००	६०	५००	६००
३	सनत्कुमार कल्प	१०००							६०	५००	६००	७०	६००	७००
४	माहेन्द्र कल्प	१०००							७०	६००	७००	६०	५००	६००
५	ब्रह्म कल्प	५००							६०	५००	६००	७०	६००	७००
६	लान्तव कल्प	४००							७०	६००	७००	६०	५००	६००
७	महाशुक्र कल्प	३००							६०	५००	६००	७०	६००	७००
८	सहस्रार कल्प	२००							७०	६००	७००	६०	५००	६००
९	आनत कल्प	१००							६०	५००	६००	७०	६००	७००
१०	प्राणत कल्प	१००							७०	६००	७००	६०	५००	६००
११	आरण कल्प	१००							६०	५००	६००	७०	६००	७००
१२	अच्युत कल्प	१००							७०	६००	७००	६०	५००	६००

लोकपालोंके अनीकादि परिवार देव—

सोमादि-दिगिंदाणं, सत्ताणीयाणि होंति पत्तेक्कं ।
अट्ठावीस - सहस्सा, पढमे सेसेसु दुगुण - कमा ॥२९३॥

अर्थ—सोमादि लोकपालोंकी जो सात सेनाएँ होती हैं उनमें से प्रत्येक (सेनाकी) प्रथम कक्षामें अट्ठाईस हजार (वृषभादि) हैं और शेष कक्षाओंमें द्विगुणित क्रम है ॥२९३॥

पंचत्तीसं लक्खा, छप्पण्ण - सहस्सयाणि पत्तेक्कं ।
सोमादि - दिगिंदाणं, हवेदि वसहादि - परिमाणं ॥२९४॥

३५५६००० ।

अर्थ—सोमादि लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके वृषभादिका प्रमाण पैंतीस लाख छप्पन हजार (२८०००×१२७=३५५६०००) है ॥२९४॥

दो-कोडीओ लक्खा, अडदाल सहस्सयाणि बाणउदी ।
सत्ताणीय - पमाणं, पत्तेक्कं लोयपालाणं ॥२९५॥

२४८९२००० ।

अर्थ—लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके सात अनीकोंका प्रमाण दो करोड़ अड़तालीस लाख बानबै हजार (३५५६०००×७=२४८९२०००) है ॥२९५॥

जे अभियोग-पइण्णय-किब्बिसिया होंति लोयपालाणं ।
ताण पमाण - णिरूवण - उवएसा संपइ पणट्ठो ॥२९६॥

अर्थ—लोकपालोंके जो आभियोग्य, प्रकीर्णक और किल्विषिक देव होते हैं उनके प्रमाणके निरूपणका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ॥२९६॥

लोकपालोंके विमानोंका प्रमाण—

छल्लक्खा छासट्ठी - सहस्सया छस्सयाणि छावट्ठी ।
सक्कस्स दिगिंदाणं, विमाण - संखा य पत्तेक्कं ॥२९७॥

६६६६६६ ।

अर्थ—सौधर्मइन्द्रके लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके विमानोंकी संख्या छह लाख छासठ हजार छह सौ छासठ (६६६६६६) है ॥२९७॥

तेसु पहाण-विमाणा, सयंपहारिट्ठ - जलपहा णामा ।
वग्गूपहो य कमसो, सोमादिय - लोयपालाणं ॥२९८॥

अर्थ—उन विमानोंमें सोमादि लोकपालोंके क्रमशः स्वयंप्रभ, अरिष्ट, जलप्रभ और वल्गुप्रभ नामक प्रधान विमान हैं ॥२९८॥

इय-संखा-णामाणि, सणक्कुमारिंद - बम्ह - इंदेसुं ।
सोमादि - दिगिंदाणं, भणिदाणि वर - विमाणेसुं ॥२९९॥

६६६६६६ ।

अर्थ—सनत्कुमार और ब्रह्मेन्द्रके सोमादि लोकपालोंके उत्तम विमानोंकी भी यही (६६६६६६) संख्या और ये ही नाम कहे गये हैं ॥२९९॥

होदि हु सयंपहक्खं, वरजेट्ठस - अंजणाणि वग्गू य ।
ताण पहाण - विमाणा, सेसेसुं दक्खिणिंदेसुं ॥३००॥

अर्थ—शेष दक्षिण इन्द्रोंमें स्वयम्प्रभ, वरज्येष्ठ, अञ्जन और वल्गु, ये उन लोकपालोंके प्रधान विमान होते हैं ॥३००॥

सोमं सव्वदभद्दा, सुभद्द-अमिदाणि[1] सोम-पहुदीणं ।
होंति पहाण - विमाणा, सव्वेसुं उत्तरिंदाणं ॥३०१॥

अर्थ—सब उत्तरेन्द्रोंके सोमादिक लोकपालोंके सोम (सम), सर्वतोभद्र, सुभद्र और अमित नामक प्रधान विमान होते हैं ॥३०१॥

ताणं विमाण-संखा-उवएसो णत्थि काल - दोसेण ।
ते सव्वे वि दिगिंदा, तेसु विमाणेसु कीडंते ॥३०२॥

अर्थ—उन विमानोंकी संख्याका उपदेश कालवश इससमय नहीं है । ये सब लोकपाल उन विमानोंमें क्रीड़ा किया करते हैं ॥३०२॥

सोम-जमा सम-रिद्धी, दोण्णि वि ते होंति दक्खिणिंदेसुं ।
तेसुं अहिओ वरुणो, वरुणादो होदि धणणाहो ॥३०३॥

अर्थ—दक्षिणेन्द्रोंके सोम और यम ये दोनों लोकपाल समान ऋद्धिवाले होते हैं । उनसे अधिक (ऋद्धि-सम्पन्न) वरुण और वरुणसे अधिक (ऋद्धि सम्पन्न) कुबेर होता है ॥३०३॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. समिदाणि ।

सोम-जमा सम-रिद्धी, दोण्णि वि ते होंति उत्तरिंदाणं ।
तेसु कुबेरो अहिओ, हवेदि वरुणो कुबेरादो ।।३०४।।

अर्थ—उत्तरेन्द्रोंके वे दोनों सोम और यम समान ऋद्धिवाले होते हैं। उनसे अधिक ऋद्धि सम्पन्न कुबेर और कुबेरसे अधिक ऋद्धि सम्पन्न वरुण होता है ।।३०४।।

इन्द्रादिकी ज्येष्ठ एवं परिवार देवियाँ—

इंद - पडिंदादीणं, देवाणं जेत्तियाओ देवीओ ।
चेट्ठंति तेत्तियाओ[1], वोच्छामो आणुपुव्वीए ।।३०५।।

अर्थ—इन्द्र और प्रतीन्द्रादिक देवोंके जितनी-जितनी देवियाँ होती हैं उनको अनुक्रमसे कहते हैं ।।३०५।।

एक्केक्क - दक्खिणिंदे, अट्ठट्ठ - हवंति जेट्ठ-देवीओ ।
पउमा-सिवा-सचीओ, अंजुकया - रोहिणी - नवमी ।।३०६।।
बल-णामा अच्चिणिया, ताओ सव्विद-सरिस-णामाओ ।
एक्केक्क - उत्तरिंदे, तम्मेत्ता जेट्ठ - देवीओ ।।३०७।।
किण्हा य मेघराई, रामावइ-रामरक्खिदा वसुका ।
वसुमित्ता वसुधम्मा, वसुंधरा सव्व-इंद-सम-णामा ।।३०८।।

अर्थ—पद्मा, शिवा, शची, अञ्जुका, रोहिणी, नवमी, बलनामा और अर्चिनिका ये आठ ज्येष्ठ देवियाँ प्रत्येक दक्षिण इन्द्रके होती हैं। वे सब इन्द्रोंके सदृश नामवाली होती हैं। एक-एक उत्तर इन्द्रके भी इतनी (आठ) ही ज्येष्ठ देवियाँ होती हैं। (उनके नाम) कृष्णा, मेघराजी, रामापति, रामरक्षिता, वसुका, वसुमित्रा, वसुधर्मा और वसुन्धरा हैं। ये सब इन्द्रोंके, समान नामवाली होती हैं (अर्थात् सब इन्द्रों की देवियों के नाम यही हैं।) ।।३०६-३०८।।

सक्क-दुगम्मि सहस्सा, सोलस एक्केक्क-जेट्ठ-देवीओ ।
चेट्ठंति चारु - णिरुवम - रूवा[2] परिवार - देवीओ ।।३०९।।

१६००० ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रकी एक-एक ज्येष्ठ देवीके सुन्दर एवं निरुपम रूपवाली सोलह हजार (१६०००) परिवार-देवियाँ होती हैं ।।३०९।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. तेत्तियाणं । २. द. ब. क. ज. ठ. रूवाणं ।

अट्ठ-चउ-दुग-सहस्सा, एक्क-सहस्सं सणक्कुमार-दुगे ।
बम्हम्मि लंतविंदे, कमेण महसुक्क - इंदम्मि ॥३१०॥

८००० । ४००० । २००० । १००० ।

अर्थ—सनत्कुमार और माहेन्द्र, ब्रह्मेन्द्र, लान्तवेन्द्र तथा महाशुक्रेन्द्रकी एक-एक ज्येष्ठ देवीके क्रमशः आठ हजार, चार हजार, दो हजार और एक हजार परिवार-देवियाँ होती हैं ॥३१०॥

पंच - सया देवीओ, होंति सहस्सार - इंद - देवीणं ।
अड्ढाइज्ज - सयाणि, आणद - इंदादिय - चउक्के ॥३११॥

५०० । २५० ।

अर्थ—सहस्रार इन्द्रकी प्रत्येक ज्येष्ठ देवीके पाँच सौ (५००) परिवार-देवियाँ और आनतेन्द्र आदिक चारकी प्रत्येक ज्येष्ठ देवीके अढ़ाई सौ (२५०) परिवार-देवियाँ होती हैं ॥३११॥

इन्द्रोंकी वल्लभा और परिवार-वल्लभा देवियाँ—

बत्तीस-सहस्साणि, सोहम्म-दुगम्मि होंति वल्लहिया ।
पत्तेक्कमड[1] - सहस्सा, सणक्कुमारिंद - जुगलम्मि ॥३१२॥

३२००० । ३२००० । ८००० । ८००० ।

अर्थ—सौधर्मद्विक (सौधर्म और ईशान) में प्रत्येक इन्द्रके बत्तीस हजार (३२०००) और सनत्कुमार आदि दो (सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो) इन्द्रोंमें प्रत्येकके आठ (आठ) हजार वल्लभा देवियाँ होती हैं ॥३१२॥

बम्हिंदे दु - सहस्सा, पंच - सयाणि च लंतविंदम्मि ।
अड्ढाइज्ज - सयाणि, हवंति महसुक्क - इंदम्मि ॥३१३॥

२००० । ५०० । २५० ।

अर्थ—ब्रह्मेन्द्रके दो हजार (२०००), लान्तवेन्द्रके पाँच सौ (५००) और महाशुक्रेन्द्रके अढ़ाई सौ (२५०) वल्लभा-देवियाँ होती हैं ॥३१३॥

पणुवीस-जुदेक्क-सयं, होंति सहस्सार-इंद-वल्लहिया ।
आणद - पाणद - आरण - अच्चुद - इंदाण तेसट्ठी ॥३१४॥

१२५ । ६३ ।

---

१. द. ब क. ज. ठ. मट्ठ ।

अर्थ—सहस्रार इन्द्रके एक सौ पच्चीस (१२५) और आनत-प्राणत-आरण-अच्युत इन्द्रोंके तिरेसठ (६३-६३) वल्लभा देवियाँ होती हैं ।।३१४।।

परिवार-वल्लभाओ, सक्काणो दुगस्स जेट्ठ-देवीओ ।
णिय-सम[1]-विकुव्वणाओ, पत्तेक्कं सोलस - सहस्सा ।।३१५।।

१६००० ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रकी परिवार-वल्लभाओं और ज्येष्ठ देवियोंमें प्रत्येक अपने समान सोलह हजार (१६०००) प्रमाण विक्रिया करनेमें समर्थ है ।।३१५।।

तत्तो दुगुणं दुगुणं, ताओ णिय-तणु-विकुव्वणकराओ ।
आणद - इंद - चउक्कं, जाव कमेणं पवत्तव्वो ।।३१६।।

३२००० । ६४००० । १२८००० । २५६००० । ५१२००० । १०२४००० ।

अर्थ—इसके आगे आनत आदि चार इन्द्रों पर्यन्त वे ज्येष्ठ देवियाँ क्रमशः इससे दूने प्रमाण अपने-अपने शरीरको विक्रिया करनेवाली हैं, ऐसा क्रमशः कहना चाहिए ।।३१६।।

सब इन्द्रोंकी प्राणवल्लभाओंके नाम—

विणयसिरि-कणयमाला-पउमा-णंदा-सुसीम-जिणदत्ता ।
एक्केक्क - दक्खिणिंदे, एक्केक्का पाण - वल्लहिया ।।३१७।।

अर्थ—एक-एक दक्षिणेन्द्रके विनयश्री, कनकमाला, पद्मा, नन्दा, सुसीमा और जिनदत्ता, इसप्रकार एक-एक प्राणवल्लभा होती है ।।३१७।।

एक्केक्क - उत्तरिंदे, एक्केक्का होदि हेममाला य ।
णीलुप्पल-विस्सुदया, णंदा-वइलक्खणाओ जिणदासी ।।३१८।।

अर्थ—हेममाला, नीलोत्पला, विश्रुता, नन्दा, वैलक्षणा और जिनदासी, इसप्रकार एक-एक उत्तरेन्द्रके एक-एक प्राणवल्लभा होती है ।।३१८।।

सयलिंद - वल्लभाणं, चत्तारि महत्तरीओ पत्तेक्कं ।
कामा कामिणिआओ, पंकयगंधा अलंबुसा - णामा ।।३१९।।

अर्थ—सब इन्द्रोंकी वल्लभाओंमेंसे प्रत्येकके कामा, कामिनिका, पंकजगन्धा और अलंबूषा नामक चार महत्तरी (गणिका महत्तरी) होती हैं ।।३१९।।

---

१. ब. समय ।

इन्द्रों की देवियों का प्रमाण—

क्रमांक	इन्द्रों के नाम	ज्येष्ठ देवियाँ गा० ३०६-३०८	ज्येष्ठ देवियों की विक्रिया का प्रमाण गा० ३१५-३१६	ज्येष्ठ देवियों की परिवार देवियाँ गा० ३०९-३११	वल्लभाएँ गा० ३१२-३१४	वल्लभा देवियों की विक्रिया का प्रमाण गा० ३१५-३१६	प्राण वल्लभा गा० ३१७-३१८	महत्तरी देवियाँ गा० ३१९	योगफल
१	सौधर्म	८	१२८०००	१२८०००	३२०००	५१२००००००	१	४	५१२२८८०१३
२	ईशान	८	१२८०००	१२८०००	३२०००	५१२००००००	१	४	५१२२८८०१३
३	सनत्कु०	८	२५६०००	६४०००	८०००	२५६००००००	१	४	२५६३२८०१३
४	माहेन्द्र	८	२५६०००	६४०००	८०००	२५६००००००	१	४	२५६३२८०१३
५	ब्रह्म	८	५१२०००	३२०००	२०००	१२८००००००	१	४	१२८५४६०१३
६	लान्तव	८	१०२४०००	१६०००	५००	६४००००००	१	४	६५०४०५१३
७	महाशुक्र	८	२०४८०००	८०००	२५०	६४००००००	१	४	६६०५६२६३
८	सहस्रार	८	४०९६०००	४०००	१२५	६४००००००	१	४	६८१००१३८
९	आनत	८	८१९२०००	२०००	६३	६४५१२०००	१	४	७२७०६०७६
१०	प्राणत	८	८१९२०००	२०००	६३	६४५१२०००	१	४	७२७०६०७६
११	आरण	८	८१९२०००	२०००	६३	६४५१२०००	१	४	७२७०६०७६
१२	अच्युत	८	८१९२०००	२०००	६३	६४५१२०००	१	४	७२७०६०७६

प्रतीन्द्रादिक तीन की देवियाँ—

पडिइंदादि[1]-तियस्स य, णिय-णिय इंदेहिं सरिस-देवीओ ।
संखाए णामेहिं, विक्किरिया - रिद्धि चत्तारि ॥३२०॥

अर्थ—प्रतीन्द्रादिक तीन (प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश) की देवियाँ संख्या, नाम, विक्रिया और ऋद्धि, इन चार (बातों) में अपने-अपने इन्द्र (की देवियों) के सदृश हैं ॥३२०॥

लोकपालोंकी देवियाँ—

आदिम-दो-जुगलेसुं, बम्हादिसु चउसु आणद-चउक्के ।
दिग्गिंद - जेट्ठ - देवीओ होंति चत्तारि चत्तारि ॥३२१॥

अर्थ—आदिके दो युगल, ब्रह्मादिक चार युगल और आनत आदि चारमें लोकपालोंकी ज्येष्ठ देवियाँ चार-चार होती हैं ॥३२१॥

तप्परिवारा कमसो, चउ-एक्क-सहस्सयाणि पंच-सया ।
अड्ढाइज्ज - सयाणि, तद्दल - तेसट्ठि - बत्तीसं ॥३२२॥

४००० । १००० । ५०० । २५० । १२५ । ६३ । ३२ ।

अर्थ—उनके परिवारका प्रमाण क्रमशः चार हजार, एक हजार, पाँच सौ, अढ़ाई सौ, इसका आधा अर्थात् एक सौ पच्चीस, तिरेसठ और बत्तीस है ॥३२२॥

णिरुवम-लावण्णाओ, वर-विविह-विभूसणाओ पत्तेक्कं ।
आउट्ठ - कोडिमेत्ता, वल्लहिया लोयपालाणं ॥३२३॥

३५००००००।

अर्थ—प्रत्येक लोकपालके अनुपम लावण्यसे युक्त और विविध भूषणोंवाली ऐसी साढ़े तीन करोड़ (३५००००००) वल्लभाएँ होती हैं ॥३२३॥

लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके सामानिक देवोंकी देवियाँ—

सामाणिय-देवीओ, सव्व - दिग्गिंदाण होंति पत्तेक्कं ।
णिय-णिय-दिग्गिंद-देवी, समाण - संखाओ सव्वाओ ॥३२४॥

अर्थ—सब लोकपालोंमेंसे प्रत्येकके सामानिक देवोंकी सब देवियाँ अपने-अपने लोकपालोंकी देवियोंके सदृश संख्यावाली हैं ॥३२४॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. पडिइंदात्तिवियस्स य ।

इन्द्रोंमें तनुरक्षक और पारिषद देवोंकी देवियाँ—

सव्वेसुं इंदेसुं, तणुरक्ख - सुराण होंति देवीग्रो ।
पुह छस्सयमेत्ताणि, णिरुवम - लावण्ण - रूवाग्रो ।।३२५।।

६०० ।

अर्थ—सब इन्द्रोंमें तनुरक्षकदेवोंको अनुपम लावण्यरूपवाली देवियाँ पृथक्-पृथक् छह सौ (६००) प्रमाण होती हैं ।।३२५।।

आदिम-दो-जुगलेसुं, बम्हादिसु चउसु आणद-चउक्के ।
पुह - पुह सव्विदाणं, अब्भंतर - परिस - देवीओ ।।३२६।।
पंच-सय-चउ-सयाणि, ति-सया दो-सयाणि एक्क-सयं ।
पण्णासं पणुवीसं, कमेण एदाण णादव्वा ।।३२७।।

५०० । ४०० । ३०० । २०० । १०० । ५० । २५ ।

अर्थ—आदिके दो युगल, ब्रह्मादिक चार युगल और आनतादिक चारमें सब इन्द्रोंके अभ्यन्तर पारिषद-देवियाँ क्रमशः पृथक्-पृथक् पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ, एक सौ, पचास और पच्चीस जाननी चाहिए ।।३२६-३२७।।

छप्पंच-चउ-सयाणि, तिग-दुग-एक्क-सयाणि पण्णासा ।
पुव्वोदिद - ठाणेसुं, मज्झिम - परिसाए देवीग्रो ।।३२८।।

६०० । ५०० । ४०० । ३०० । २०० । १०० । ५० ।

अर्थ—पूर्वोक्त स्थानोंमें मध्यम पारिषद देवियाँ क्रमशः छह सौ, पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ, एक सौ और पचास हैं ।।३२८।।

सत्त-छ-पंच-चउ-तिय-दुग-एक्क-सयाणि पुव्व-ठाणेसुं ।
सव्विदाणं होंति हु, बाहिर - परिसाए देवीग्रो ।।३२९।।

७०० । ६०० । ५०० । ४०० । ३०० । २०० । १०० ।

अर्थ—पूर्वोक्त स्थानोंमें सब इन्द्रोंके बाह्य-पारिषद देवियाँ क्रमशः सात सौ, छह सौ, पाँच सौ, चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ हैं ।।३२९।।

अनीक देवोंकी देवियाँ—

सत्ताणीय - पहूणं, पुह पुह देवीओ छस्सया होंति ।
दोण्णि सया पत्तेक्कं, देवीग्रो अणीय - देवाणं ।।३३०।।

६०० । २०० ।

अर्थ—सात अनीकोंके प्रभुओंके पृथक्-पृथक् छह सौ (६००) और प्रत्येक अनीकदेवके दो सौ (२००) देवियाँ होती हैं ॥३३०॥

जाओ पइण्णयाणं, अभियोग-सुराण किब्भिसाणं च ।
देवीओ ताण संखा, उवएसो संपइ पणट्ठो ॥३३१॥

अर्थ—प्रकीर्णक, आभियोग्य देव और किल्विषिक देवोंकी जो देवियाँ हैं उनकी संख्याका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ॥३३१॥

तणुरक्ख-प्पहुदीणं, पुह - पुह एक्केक्क-जेट्ठ-देवीओ ।
एक्केक्का बल्लहिया, विविहालंकार - कंतिल्ला ॥३३२॥

अर्थ—तनुरक्षक आदि देवोंके पृथक्-पृथक् विविध अलङ्कारोंसे शोभायमान एक-एक ज्येष्ठ देवी और एक-एक बल्लभा होती है ॥३३२॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

वैमानिक इन्द्रोंके परिवार देवोंकी देवियोंका प्रमाण—

क्रमांक	परिवार देव	देवी का पद	— कल्प इन्द्रों के नाम —											
			सौधर्म	ईशान	सनत्कु०	माहेन्द्र	ब्रह्म	लान्तव	महाशुक्र	सहस्रार	आनत	प्राणत	आरण	अच्युत
१	प्रतीन्द्र	—	—	→	अपने	इन्द्र	की	देवियों	सदृश	देवियाँ हैं	—	→	—	—
२	सामानिक	—	—	→	—	,,	,,	,,	,,	,,	—	→	—	—
३	त्रायस्त्रिंश	—	—	→	—	,,	,,	,,	,,	,,	—	→	—	—
४	प्रत्येक लोकपाल के	ज्येष्ठ परिवार बल्लभा	४ ४००० —	४ ४००० —	४ १००० →	४ १००० प्रत्येक	४ ५०० लोक	४ २५० पाल की	४ १२५ ३५००००००	४ ६३ ०	४ ३२ देवियाँ	४ ३२ हैं	४ ३२ —	४ ३२ →
५	सब लोकपालोंके सामा० देवोंकी	—	—	—	अपने	अपने	लोक	पाल की	देवियाँ	प्रमाण	—	—	—	→
६	इन्द्रोंके प्रत्येक तनुरक्षकके	परिवार ज्येष्ठ बल्ल०	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १	६०० १ १
७	अभ्यन्तर पारिषद	×	६००	६००	५००	५००	४००	३००	२००	१५०	२५	२५	२५	२५
८	मध्यम पारिषद	×	६००	६००	५००	५००	४००	३००	२००	१००	५०	५०	५०	५०
९	बाह्य पारिषद	×	७००	७००	६००	६००	५००	४००	३००	२००	१००	१००	१००	१००
१०	प्रधान अनीक की	×	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००	६००
११	साधारण अनीक की	×	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००	२००
१२	प्रकीर्णकों की	—	—	—	→	उपदेश		नष्ट	—	—	→	—	—	—
१३	आभियोग्यों की	—	—	—	→	,,		,,	—	—	→	—	—	—
१४	किल्विषिकों की	—	—	—	→	,,		,,	—	—	→	—	—	—

देवियोंकी उत्पत्तिका विधान—

सोहम्मीसाणेसुं, उप्पज्जंते हु सव्व - देवीओ ।
उवरिम - कप्पे ताणं, उप्पत्ती णत्थि कइया वि ॥३३३॥

अर्थ—सब देवियाँ सौधर्म और ईशान कल्पोंमें ही उत्पन्न होती हैं, इससे उपरिम कल्पोंमें उनकी उत्पत्ति कदापि नहीं होती ॥३३३॥

छल्लक्खाणि विमाणा, सोहम्मे दक्खिणिंद-सव्वाणं ।
ईसाणे चउ - लक्खा, उत्तर - इंदाण य विमाणा ॥३३४॥

६००००० । ४००००० ।

अर्थ—सब दक्षिणेन्द्रोंके सौधर्मकल्पमें छह लाख (६०००००) विमान और उत्तरेन्द्रोंके ईशानकल्पमें चार लाख (४०००००) विमान हैं ॥३३४॥

तेसुं उप्पण्णाओ, देवीओ चिण्ह - ओहिणाणेहिं ।
णादूणं णिय-कप्पे, णेंति हु देवा सराग - मणा ॥३३५॥

अर्थ—उन कल्पोंमें उत्पन्न हुई देवियोंके चिह्न अवधिज्ञानसे जानकर सराग मनवाले देव अपने-अपने कल्पमें ले आते हैं ॥३३५॥

सोहम्मम्मि विमाणा, सेसा छव्वीस-लक्ख-संखा जे ।
तेसुं उप्पज्जंते, देवा देवीहि सम्मिस्सा ॥३३६॥

अर्थ—सौधर्मकल्पमें जो शेष छब्बीस लाख विमान हैं, उनमें देवियों सहित देव उत्पन्न होते हैं ॥३३६॥

ईसाणम्मि विमाणा, सेसा चउवीस-लक्ख-संखा जे ।
तेसुं उप्पज्जंते, देवीओ देव - मिस्साओ ॥३३७॥

अर्थ—ईशानकल्पमें जो शेष चौबीस लाख विमान हैं, उनमें देवोंसे युक्त देवियाँ उत्पन्न होती हैं ॥३३७॥

विशेषार्थ—आरण (१५ वें) स्वर्ग पर्यन्त दक्षिण कल्पोंकी समस्त देवांगनाएँ सौधर्म कल्पमें उत्पन्न होती हैं और अच्युत (१६ वें) कल्प पर्यन्त उत्तर कल्पोंकी समस्त देवांगनाएँ ईशान कल्पमें ही उत्पन्न होती हैं। उत्पत्तिके बाद उपरिम कल्पोंके देव अवधिज्ञान द्वारा उनके चिह्नोंको जानकर अपनी-अपनी नियोगिनी देवांगनाओंको अपने-अपने स्थान पर ले जाते हैं। सौधर्मकल्पमें कुल ३२ लाख विमान हैं, जिसमेंसे ६००००० (छह लाख) में मात्र देवांगनाओंकी उत्पत्ति होती है और शेष

२६ लाख विमानोंमें संमिश्र अर्थात् देव और देवियाँ दोनों उत्पन्न होते हैं। इसीप्रकार ईशान कल्पके २८ लाख विमानोंमेंसे ४००००० विमानोंमें मात्र देवांगनाओंकी और शेष २४ लाख विमानोंमें दोनों की उत्पत्ति होती है।

सौधर्मादि कल्पोंमें प्रवीचारका विधान—

सोहम्मीसाणेसुं, देवा सव्वे वि काय - पडिचारा।
होंति हु सणक्कुमार-प्पहुदि-दुगे फास - पडिचारा ॥३३८॥

अर्थ—सौधर्म और ईशान कल्पोंमें सब ही देव काय-प्रवीचार सहित और सनत्कुमार आदि दो (सनत्कुमार-माहेन्द्र) कल्पोंमें स्पर्श-प्रवीचार युक्त होते हैं ॥३३८॥

बम्हाहिधाण-कप्पे, लंतव-कप्पम्मि रूव - पडिचारा।
कप्पम्मि महासुक्के, सहस्सयारम्मि सद्द-पडिचारा ॥३३९॥

अर्थ—ब्रह्म नामक कल्पमें तथा लान्तव कल्पमें रूप प्रवीचार युक्त और महाशुक्र एवं सहस्रार कल्पमें शब्द-प्रवीचार युक्त होते हैं ॥३३९॥

आणद-पाणद-आरण-अच्चुद-कप्पेसु चित्त-पडिचारा।
एत्तो सव्विदाणं, आवास - विहिं परूवेमो ॥३४०॥

अर्थ—आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन कल्पोंमें देव चित्त-प्रवीचार युक्त होते हैं। यहाँसे आगे सब इन्द्रोंकी आवास-विधि कहते हैं ॥३४०॥

विशेषार्थ—काम सेवन को प्रवीचार कहते हैं। सौधर्मेशान कल्पोंके देव अपनी देवांगनाओं के साथ मनुष्योंके सदृश कामसेवन करके अपनी इच्छा शान्त करते हैं। सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंके देव देवांगनाओंके स्पर्श मात्रसे अपनी काम पीड़ा शान्त करते हैं। ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ कल्पोंके देव देवांगनाओंके रूपावलोकन मात्रसे अपनी काम पीड़ा शान्त करते हैं। इसीप्रकार महाशुक्र और सहस्रार कल्पोंके देव देवांगनाओंके गीतादि शब्दोंको सुनकर तथा आनतादि चार कल्पोंके देव चित्तमें देवांगनाका विचार करते ही काम वेदनासे रहित हो जाते हैं। इससे ऊपरके सब देव प्रवीचार रहित है।

इन्द्रोंके निवास-स्थानोंका निर्देश—

पढमादु एक्कतीसे, पभ-णाम-जुदस्स दक्खिणोलीए।
बत्तीस - सेढिबद्धे, अट्ठारसमम्मि चेट्ठदे सक्को ॥३४१॥

अर्थ—प्रथमसे इकतीसवें प्रभ-नामक इन्द्रककी दक्षिण श्रेणीमें बत्तीस श्रेणीबद्धोंमेंसे अठारहवें श्रेणीबद्ध विमानमें सौधर्म इन्द्र स्थित है ॥३४१॥

तस्सिंदयस्स उत्तर - दिसाए बत्तीस - सेढिबद्धेसुं ।
अट्ठारसमे चेट्ठदि, इंदो ईसाण - णामो य ।।३४२।।

अर्थ—इसी इन्द्रककी उत्तर दिशाके बत्तीस श्रेणीबद्धोंमेंसे अठारहवें श्रेणीबद्ध विमानमें ईशान नामक इन्द्र स्थित है (चित्र इसप्रकार है) ।।३४२।।
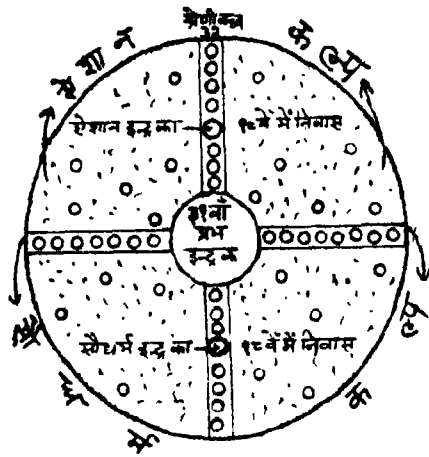
पढमादु अट्ठतीसे, दक्खिण-पंतीए चक्क - णामस्स ।
पणुवीस - सेढिबद्धे, सोलसमे तह सणक्कुमारिंदो ।।३४३।।

अर्थ—पहलेसे अड़तीसवें चक्र नामक इन्द्रककी दक्षिण पंक्तिमें पच्चीस श्रेणीबद्धोंमेंसे सोलहवें श्रेणीबद्ध विमानमें सानत्कुमार इन्द्र स्थित है ।।३४३।।

तस्सिंदयस्स उत्तर - दिसाए पणुवीस-सेढिबद्धम्मि ।
सोलसम - सेढिबद्धे, चेट्ठेदि माहिंद - णामिंदो ।।३४४।।

अर्थ—इस इन्द्रककी उत्तरदिशामें पच्चीस श्रेणीबद्धोंमेंसे सोलहवें श्रेणीबद्धमें माहेन्द्र नामक इन्द्र स्थित है ।।३४४।।

बम्हुत्तरस्स दक्खिण-दिसाए इगिवीस - सेढिबद्धेसुं ।
चोद्दसम - सेढिबद्धे, चेट्ठेदि हु बम्ह - कप्पिंदो ।।३४५।।

अर्थ—(पहलेसे बियालीसवें) ब्रह्मोत्तर नामक इन्द्रक की दक्षिण दिशामें इक्कीस श्रेणीबद्धोंमेंसे चौदहवें श्रेणीबद्ध विमानमें ब्रह्म कल्पका इन्द्र स्थित है ।।३४५।।

लंतव-इंदय-दक्खिण-दिसाए वीसाए[1] सेढीबद्ध सुं ।
बारसम - सेढिबद्ध , चेट्ठ वि हु लंतविंदो वि ॥३४६॥

अर्थ—(पहलेसे चवालीसवें) लान्तव नामक इन्द्रककी दक्षिण दिशामें बीस श्रेणीबद्धोंमेंसे बारहवें श्रेणीबद्ध विमानमें लान्तव इन्द्र स्थित है ॥३४६॥

महसुक्किंदय-उत्तर-दिसाए अट्ठरस - सेढिबद्ध सु ।
दसमम्मि सेढिबद्ध , वसइ महासुक्क - णामिंदो ॥३४७॥

अर्थ—(पहलेसे पैंतालीसवें) महाशुक्र नामक इन्द्रककी उत्तर दिशामें अठारह श्रेणीबद्धों मेंसे दसवें श्रेणीबद्ध विमानमें महाशुक्र नामक इन्द्र निवास करता है ॥३४७॥

होदि सहस्सारुत्तर - दिसाए सत्तरस - सेढिबद्ध सुं ।
अट्ठमए सेढिबद्ध , वसइ सहस्सार - णामिंदो ॥३४८॥

अर्थ—(पहलेसे सैंतालीसवें) सहस्रार नामक इन्द्रककी उत्तर दिशामें सत्तरह श्रेणीबद्धों मेंसे आठवें श्रेणीबद्ध विमानमें सहस्रार नामक इन्द्र निवास करता है ॥३४८॥

जिणदिट्ठ-णाम-इंदय-दक्खिण-ओलीए सेढिबद्ध सुं ।
छट्ठम - सेढीबद्ध , आणद - णामिंद - आवासो ॥३४९॥

अर्थ—जिनेन्द्र द्वारा देखे गये नामवाले इन्द्रककी दक्षिण-पंक्तिके श्रेणीबद्धोंमेंसे छठे श्रेणी-बद्धमें आनत नामक इन्द्रका निवास है ॥३४९॥

तस्सिंदयस्स उत्तर - दिसाए तस्संख - सेढिबद्ध सुं ।
छट्ठम - सेढीबद्ध , पाणद - णामिंद - आवासो ॥३५०॥

अर्थ—इस इन्द्रककी उत्तर दिशामें उतनी ही संख्या प्रमाण श्रेणीबद्धोंमेंसे छठे श्रेणीबद्धमें प्राणत नामक इन्द्रका निवास है ॥३५०॥

आरण-इंदय-दक्खिण-दिसाए एक्करस-सेढिबद्ध सु ।
छट्ठम - सेढीबद्ध , आरण - इंदस्स आवासो ॥३५१॥

अर्थ—आरण इन्द्रककी दक्षिण दिशाके ग्यारह श्रेणीबद्धोंमेंसे छठे श्रेणीबद्ध विमानमें आरण इन्द्रका आवास है ॥३५१॥

---

१. बीस के स्थान पर १९ श्रेणीबद्धोंमेंसे होना चाहिए ।

अच्चुद-इंदय-उत्तर-दिसाए एक्करस - सेढिबद्ध सुं ।
छट्ठम - सेढीबद्ध , अच्चुद - इंदस्स आवासो ।।३५२।।

अर्थ—अच्युत इन्द्रककी उत्तर दिशाके ग्यारह श्रेणीबद्धोंमेंसे छठे श्रेणीबद्ध विमानमें अच्युत इन्द्रका निवास है ।।३५२।।

विशेषार्थ—प्रथम ऋतुविमानकी प्रत्येक दिशामें ६२ श्रेणीबद्ध विमान हैं, प्रत्येक इन्द्रक प्रति प्रत्येक दिशामें एक-एक श्रेणीबद्ध विमान हीन होता है । प्रथम इन्द्रकमें हानि नहीं है अतः प्रथम कल्पके अन्तिम प्रभ इन्द्रककी एक दिशामें ३२ श्रेणीबद्ध विमान प्राप्त होंगे उनमेंसे १८ वें श्रेणीबद्ध विमानमें अर्थात् सौधर्म-ईशान कल्पके अतिम इन्द्रक सम्बन्धी दक्षिण दिशागत श्रेणीबद्ध विमानोंमेंसे १८ व श्रेणीबद्धमें सौधर्मेन्द्र और उत्तर दिशा सम्बन्धी ३२ श्रेणीबद्धोंमेंसे १८ वें श्रेणीबद्धमें ईशानेन्द्र निवास करते हैं । इसीप्रकार आगे भी जानना चाहिए । यथा—

क्रमांक	कल्प नाम	इन्द्रक संख्या	एक दिशागत श्रेणीबद्ध	प्रत्येक इन्द्रक प्रति हीन होते हुए श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या	अन्तिम इन्द्रक सम्बन्धी श्रेणीबद्ध	इन्द्रके निवास सम्बन्धी श्रेणीबद्धों की संख्या
१	सौधर्म कल्प	३१	६२	६१,६०,५९,५८,५७,५६,५५ .३४,३३	३२ मेंसे	१८ वें में
२	ईशान कल्प	०	६२	— ,, — ,, — ,, —	३२ मेंसे	१८ वें में
३	सनत्कुमार	७	३१	३०, २९, २८, २७, २६	२५ मेंसे	१६ वें में
४	माहेन्द्र	०	३१	— ,, — ,, —	,, – ,,	१६ वें में
५	ब्रह्म	४	२४	२३ २२	२१ मेंसे	१४ वें में
६	लान्तव	२	२०	[गा० ३४६ में २० मेंसे लिखा है]	१९ ,,	१२ वें में
७	महाशुक्र	१	१८		१८ ,,	१० वें में
८	सहस्रार	१	१७		१७ ,,	८ वें में
९	आनत	—	—	गा० ३४९-५० में इन दोनों कल्पों संख्या आदि नहीं कही गई है ।	—	६ वें में
१०	प्राणत					६ वें में
११	आरण		१६	१५ .... १४ .... १३ .... १२	११ ,,	६ वें में
१२	अच्युत		१६		११ ,,	६ वें में

छज्जुगल - सेसएसुं, अट्ठारसमम्मि सेढिबद्ध`सुं ।
दो-हीण-कमं दक्खिण-उत्तर-भागेसु होंति देविंदा ।।३५३।।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—छह युगलों और शेष कल्पोंमें यथाक्रमसे प्रथम युगलमें अपने अन्तिम इन्द्रकसे सम्बद्ध अठारहवें श्रेणीबद्धमें तथा इससे आगे दो हीन क्रमसे अर्थात् सोलहवें, चौदहवें, बारहवें, दसवें, आठवें और छठे श्रेणीबद्धमें दक्षिण भागमें दक्षिण इन्द्र और उत्तर भागमें उत्तर इन्द्र स्थित हैं ।।३५३।।

पाठान्तर ।

श्रेणियाँ एवं उनके मध्य स्थित नगरोंके प्रमाण आदिका निर्देश—

एदाणं सेढीओ, [1]पत्तेक्कमसंख - जोयण - पमाणा ।
रविमंडल-सम-वट्टा, णाणावर - रयण - णियरमया ।।३५४।।

अर्थ—सूर्यमण्डलके सदृश गोल और नाना उत्तम रत्नसमूहोंसे निर्मित इनकी श्रेणियोंमेंसे प्रत्येक (श्रेणी) असंख्यात योजन प्रमाण है ।।३५४।।

तेसुं तड-वेदीओ, कणयमया होंति विविह-धय-माला ।
चरियट्टालय-चारू, वर - तोरण - सुंदर - दुवारा ।।३५५।।

अर्थ—उनमें मार्गों एवं अट्टालिकाओंसे सुन्दर, उत्तम तोरणोंसे युक्त सुन्दर द्वारोंवाली और विविध ध्वजा-समूहोंसे युक्त स्वर्णमय तट-वेदियाँ हैं ।।३५५।।

दारोवरिम-तलेसुं, जिणभवणेहिं विचित्त - रूवेहिं ।
उत्तुंग - तोरणेहिं, सविसेसं सोहमाणाओ ।।३५६।।

अर्थ—द्वारोंके उपरिम तलोंपर उन्नत तोरणों सहित और अद्भुत रूपवाले जिन-भवनोंसे वे वेदियाँ विशेष शोभायमान हैं ।।३५६।।

एवं पइण्णिदाणं, सेढीणं होंति ताण बहुमज्झे ।
णिय-णिय-णाम-जुदाइं, सक्क - प्पहुदीण णयराइं ।।३५७।।

अर्थ—इसप्रकार वर्णित उन श्रेणियोंके बहुमध्य भागमें अपने-अपने नामसे युक्त सौधर्म इन्द्र आदिके नगर हैं ।।३५७।।

---

१. द. ब. क. ठ. पत्तेकमसंखेज्ज ।

चुलसीदी-सीदीओ, बाहत्तरि - सत्तरीओ सट्ठी य ।
पण्णास-चाल-तीसा, वीस सहस्साणि जोयणया ।।३५८।।

८४००० । ८०००० । ७२००० । ७०००० । ६०००० । ५०००० ।
४०००० । ३०००० । २०००० ।

सोहम्मिवादीणं, अट्ठ - सुरिंदाण सेस - इंदाणं ।
रायंगणस्स वासो, पत्तेक्कं एस णादव्वो ।।३५९।।

अर्थ—सौधर्मादि आठ सुरेन्द्रों और शेष इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके राजाङ्गणका यह विस्तार क्रमशः चौरासी हजार (८४०००), अस्सी हजार (८००००), बहत्तर हजार (७२०००), सत्तर हजार (७००००), साठ हजार (६००००), पचास हजार (५००००), चालीस हजार (४००००), तीस हजार (३००००) और बीस हजार (२००००) जानना चाहिए ।।३५८-३५९।।

रायंगण - भूमीए, समंतदो दिव्व-कणय-तड-वेदी ।
चरियट्टालय-चारू, णच्चंत - विचित्त - रयणमाला ।।३६०।।

अर्थ—राजाङ्गण भूमिके चारों ओर दिव्य सुवर्णमय तट-वेदी है। यह वेदी मार्ग एवं अट्टालिकाओंसे सुन्दर तथा नाचती हुई विचित्र रत्नमालाओंसे युक्त है ।।३६०।।

प्राकारका उत्सेध आदि—

सक्क-दुगे तिण्णि-सया, अड्ढाइज्जा-सयाणि उवरि-दुगे ।
बम्हिंदे दोण्णि - सया, आदिम - पायार - उच्छेहो ।।३६१।।

३०० । २५० । २०० ।

अर्थ—शक्र-द्विक अर्थात् सौधर्म और ईशान इन्द्रके आदिम प्राकारका उत्सेध तीन सौ (३००), उपरि-द्विक अर्थात् सानत्कुमार और माहेन्द्रके आदिम प्राकारका उत्सेध अढ़ाई सौ (२५०) तथा ब्रह्मेन्द्रके आदिम प्राकारका उत्सेध दो सौ (२००) योजन है ।।३६१।।

पण्णास-जुदेक्क-सया, वीसब्भहियं सयं सयं सुद्धं ।
सो लंतविंद-तिदए, असीदि पत्तेक्क-आणदादिम्मि ।।३६२।।

१५० । १२० । १०० । ८० ।

अर्थ—लान्तवेन्द्रादिक तीन (लान्तवेन्द्र, महाशुक्रेन्द्र और सहस्रारेन्द्र) के आदिम प्राकारोंका उत्सेध-प्रमाण क्रमशः एक सौ पचास (१५०), एक सौ बीस (१२०) और केवल सौ (१००) योजन है। प्रत्येक आनतेन्द्रादिके राजांगणका उत्सेध अस्सी (८०) योजन प्रमाण है ।।३६२।।

पण्णासं पणुवीसं, तस्सद्धं तद्दलं च चत्तारिं ।
तिण्णि य अड्ढाइज्जं, जोयणया तह कमे गाढं ॥३६३॥

५० । २५ २५/२ । २५/४ । ४ । ३ । ५/२ ।

अर्थ—उपर्युक्त आदिम प्राकारका अवगाढ़ (नींव) क्रमशः पचास, पच्चीस, उसका आधा (१२½ यो०), उसका भी आधा (६¼ यो०), चार, तीन और अढ़ाई (२½) योजन प्रमाण है ॥३६३॥

जं गाढस्स पमाणं, तं चिय बहलत्तणं मि णादव्वं ।
आदिम - पायारस्स य, कमसोयं पुव्व - ठाणेसुं ॥३६४॥

अर्थ—पूर्वोक्त स्थानोंमें जो आदिम प्राकारके अवगाढ़का प्रमाण है, वही क्रमशः उसका बाहल्य भी जानना चाहिए ॥३६४॥

गोपुर द्वारोंका प्रमाण आदि—

सक्क-दुगे चत्तारो, तह तिण्णि सणक्कुमार-इंद-दुगे ।
बम्हिंदे दोण्णि सया, आदिम-पायार-गोउर-दुवारं ॥३६५॥

४०० । ३०० । २००

इगिसट्ठी अहिय-सयं, चालीसुत्तर-सयं सयं वीसं ।
ते लंतवादि - तिदए, सयमेक्कं आणदादि - इंदेसु ॥३६६॥

[1]१६१ । १४० । १२० । १०० ।

अर्थ—आदिम प्राकारोंके गोपुर-द्वार सौधर्मेशानमें चार-चार सौ (४००), सानत्कुमार-माहेन्द्रमें तीन-तीन सौ (३००), ब्रह्मकल्पमें दो सो (२००), लान्तवकल्पमें एक सो इकसठ (१६१), महाशुक्रमें एक सौ चालीस (१४०), सहस्रारमें एक सो बीस (१२०) और आनत आदि इन्द्रोंमें एक-एक सौ (१००-१००) हैं ॥३६५-३६६॥

चत्तारि तिण्णि दोण्णि य, सयाणि सयमेक्क सट्ठि-संजुत्तं ।
चालीस - जुदेक्क - सयं, वीसब्भहियं सयं एक्कं ॥३६७॥

४०० । ३०० । २०० । १६० । १४० । १२० । १०० ।

नोट—गा० ३६७ के अनुसार गा० ३६६ में १६१ के स्थान पर प्रमाण [1]१६० ही होना चाहिए ।

एदाइ जोयणाइं, गोउर-दाराण होइ उच्छेहो ।
सोहम्म - प्पहुदीसुं, पुव्वोदिद - सत्त - ठाणेसुं ॥३६८॥

अर्थ—सौधर्मादि पूर्वोक्त सात स्थानोंमें गोपुर-द्वारोंका उत्सेध क्रमशः चार सौ, तीन सौ, दो सौ, एक सौ साठ, एक सौ चालीस, एक सौ बीस और एक सौ योजन प्रमाण है ॥३६७-३६८॥

एक्क-सय-णउदि-सीदी-सत्तरि-पण्णास-चाल-तीस-कमा ।
जोयणया वित्थारो, गोउर - दाराण पत्तेक्कं ॥३६९॥

१०० । ९० । ८० । ७० । ५० । ४० । ३० ।

अर्थ—उपर्युक्त स्थानोंमें गोपुर-द्वारोंमेंसे प्रत्येकका विस्तार क्रमशः एकसौ, नब्बे, अस्सी, सत्तर, पचास, चालीस और तीस योजन प्रमाण है ॥३६९॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	स्थानोंके नाम	राजांगणोंका (नगरों का) विस्तार गा० ३५८-३५९	प्राकारों (कोट) का विवरण			गोपुर द्वारोंका प्रमाणादि		
			उत्सेध गा. ३६१-३६२	अवगाढ़ (नींव) गा० ३६३	बाहल्य गा० ३६४	प्रमाण गा० ३६५-३६६	उत्सेध गा० ३६७-३६८	विस्तार गा० ३६९
१	सौधर्म	८४००० योजन	३०० यो०	५० योजन	५० योजन	४००	४०० योजन	१०० यो०
२	ईशान	८०००० ,,	३०० ,,	५० ,,	५० ,,	४००	४०० ,,	१०० ,,
३	सानत्कुमार	७२००० ,,	२५० ,,	२५ ,,	२५ ,,	३००	३०० ,,	९० ,,
४	माहेन्द्र	७०००० ,,	२५० ,,	२५ ,,	२५ ,,	३००	३०० ,,	९० ,,
५	ब्रह्म	६०००० ,,	२०० ,,	१२½ ,,	१२½ ,,	२००	२०० ,,	८० ,,
६	लान्तव	५०००० ,,	१५० ,,	६¼ ,,	६¼ ,,	१६१	१६० ,,	७० ,,
७	महाशुक्र	४०००० ,,	१२० ,,	४ ,,	४ ,,	१४०	१४० ,,	५० ,,
८	सहस्रार	३०००० ,,	१०० ,,	३ ,,	३ ,,	१२०	१२० ,,	४० ,,
९	आनतादि ४	२०००० ,,	८० ,,	२½ ,,	२½ ,,	१००	१०० ,,	३० ,,

राजांगणके मध्य स्थित प्रासादोंका विवेचन—

रायंगण - बहुमज्झे, एक्केक्क-पहाण-दिव्व-पासादा ।
एक्केक्कस्सि इंदे, णिय-णिय-इंदाण णाम - समा ॥३७०॥

अर्थ—राजांगणके बहुमध्य भागमें एक-एक इन्द्रका अपने-अपने नामके सदृश एक-एक प्रधान दिव्य प्रासाद है ॥३७०॥

धुव्वंत-धय-वडाया, मुत्ताहल-हेम-दाम-कमणिज्जा ।
वर-रयण-मत्तवारण-णाणाविह-सालभंजियाभरणा ॥३७१॥
दिप्पंत-रयण-दीवा, वज्ज-कवाडेहिं सुंदर-दुवारा ।
दिव्व-वर-धूव-सुरहो, सेज्जासण-पहुदि-परिपुण्णा ॥३७२॥
सत्तट्ठ-णव-दसादिय-विचित्त-भूमीहिं भूसिदा सव्वे ।
बहुवण्ण - रयण - खचिदा, सोहंते सासय - सरूवा ॥३७३॥

अर्थ—सब प्रासाद फहराती हुई ध्वजा पताकाओं सहित मुक्ताफलों एवं सुवर्णकी मालाओंसे रमणीक, उत्तम रत्नमय मत्तवारणोंसे संयुक्त, आभरण युक्त नाना प्रकारकी पुतलियों सहित, चमकते हुए रत्न-दीपकोंसे सुशोभित, वज्रमय कपाटोंसे, सुन्दर द्वारोंवाले, दिव्य उत्तम धूपसे सुगन्धित, शय्या एवं आसन आदिसे परिपूर्ण और सात, आठ, नौ तथा दस आदि अद्भुत भूमियोंसे भूषित हैं। शाश्वत स्वरूपसे युक्त ये प्रासाद नाना रत्नोंसे खचित होते हुए शोभायमान हैं ॥३७१-३७३॥

प्रासादोंके उत्सेधादिका कथन—

छस्सय-पंच-सयाणिं, पण्णुत्तर-चउ-सयाणि उच्छेहो ।
एदाणं सक्क - दुगे, दु[1]-इंद-जुगलम्मि बम्हिदे[2] ॥३७४॥

६०० । ५०० । ४००

चत्तारि-सय पणुत्तर-तिण्णि-सया केवला य तिण्णि सया ।
सो लंतविंद-तिदए, आणद - पहुदीसु दु-सय-पण्णासा ॥३७५॥

४०० । ३५० । ३०० । २५० ।

अर्थ—शक्रद्विक (सौधर्मेशान), सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल और ब्रह्मेन्द्रके इन प्रासादोंका उत्सेध क्रमशः छह सौ (६००), पाँच सौ (५००) और चार सौ पचास (४५०) योजन प्रमाण

१. द. ब. ज. ठ. दुइंजजुगलम्मि, क. दुइजुजुगलम्मि । २. द. बम्हिदे वा ।

है। वह प्रासादोका उत्सेध लान्तवेन्द्र आदि तीनके क्रमशः चार सौ (४००) तीन सौ पचास (३५०) और केवल तीन सौ (३००) तथा आनतेन्द्र आदिकोंके दो सौ पचास (२५०) योजन प्रमाण है ।।३७४-३७५।।

एदाणं वित्थारा, णिय-णिय-उच्छेह-पंचम-विभागा ।
वित्थारद्धं गाढं, पत्तेक्कं सव्व - पासादे ।।३७६।।

अर्थ—इन प्रासादोंका विस्तार अपने-अपने उत्सेधके पाँचवें भाग (१२०, १०० ९०, ८०, ७०, ६० और ५० योजन) प्रमाण है तथा प्रत्येक प्रासादका अवगाह विस्तारसे आधा (६०, ५०, ४५, ४०, ३५, ३० और २५ योजन प्रमाण) है ।।३७६।।

सिंहासन एवं इन्द्रोंका कथन—

पासादाणं मज्झे, सपाद - पीढा [1]अकट्टिमायारा ।
सिंहासणा विसाला, वर - रयणमया विरायंति ।।३७७।।

अर्थ—प्रासादोंके मध्यमें पादपीठ सहित, अकृत्रिम, विशाल आकारवाले और उत्तम रत्नमय सिंहासन विराजमान है ।।३७७।।

सिंहासणाण सोहा, जा एदाणं विचित्त - रूवाणं ।
ण य सक्का वोत्तुं [2]मे, पुण्ण-फलं[3] एत्थ पच्चक्खं ।।३७८।।

अर्थ—अद्भुत रूपवाले इन सिंहासनोंकी जो शोभा है, उसका कथन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ। यहाँ पुण्यका फल प्रत्यक्ष है ।।३७८।।

सिंहासणमारूढा, सोलस-वर - भूसणेहि सोहिल्ला ।
सम्मत्त - रयण - सुद्धा, सव्वे इंदा विरायंति ।।३७९।।

अर्थ—सिंहासनपर आरूढ, सोलह उत्तम आभूषणोंसे शोभायमान और सम्यग्दर्शनरूपी रत्नसे शुद्ध सब इन्द्र विराजमान हैं ।।३७९।।

पुव्वज्जिदाहि सुचरिद - कोडीहि संचिदाए लच्छीए ।
सक्कादीणं उवमा, का दिज्जइ णिरुवमाणाए ।।३८०।।

अर्थ—पूर्वोपार्जित करोड़ों सुचरित्रोंसे प्राप्त हुई शक्रादिकोंकी अनुपम लक्ष्मीको कौन सी उपमा दी जाय ? ।।३८०।।

---

१ द. ब. क. ज. ठ. यकट्टिमायाय। २. द. ब क. ज. ठ. गे। ३. द. ब. फ. ज ठ पदं।

देवीहिं पडिंदेहिं, सामाणिय - पहुदि-देव - संघेहिं ।
सेविज्जंते णिच्चं, इंदा वर - छत्त - चमर-धारीहिं ।।३८१।।

अर्थ—उत्तम छत्रों एवं चमरोंको धारण करनेवाली देवियों, प्रतीन्द्रों और सामानिक आदि देव-समूहोंके द्वारा इन्द्रोंकी नित्य ही सेवा की जाती है ।।३८१।।

प्रत्येक इन्द्रकी समस्त देवियोंका प्रमाण—

सट्ठि-सहस्सब्भहियं, एक्कं लक्खं हुवंति पत्तेक्कं ।
सोहम्मीसाणिदे, अट्ठट्ठा अग्ग - देवीओ ।।३८२।।

१६०००० । ८ ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके एक लाख साठ हजार (१६००००) देवियाँ तथा आठ अग्र-देवियाँ होती हैं ।।३८२।।

विशेषार्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रोंमेंसे प्रत्येक इन्द्रकी अग्र देवियाँ ८ हैं और वल्लभा ३२००० हैं तथा प्रत्येक अग्र देवीकी १६००० परिवार देवियाँ होती हैं। इसप्रकार सौधर्म अथवा ईशान इन्द्रकी समस्त देवियाँ—१६००००=(८×१६०००)+३२००० हैं।

इसीप्रकार सर्वत्र जानना चाहिए ।

अग्ग-महिसीओ अट्ठं माहिंद-सणक्कुमार-इंदाणं ।
बाहत्तरिं सहस्सा, देवीओ होंति पत्तेक्कं ।।३८३।।

८ । ७२००० ।

अर्थ—सानत्कुमार और माहेन्द्र इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके आठ अग्र-महिषियाँ तथा बहत्तर हजार (७२०००) देवियाँ होती हैं ।।३८३।।

७२०००=(अग्र० ८×८००० परिवार देवियाँ)+८००० वल्लभा ।

अग्ग-महिसीओ अट्ठ य, चोत्तीस-सहस्सयाणि देवीओ ।
णिरुवम - लावण्णाओ, सोहंते बम्ह - कप्पिंदे ।।३८४।।

८ । ३४००० ।

अर्थ—ब्रह्मकल्पेन्द्रके अनुपम लावण्यवाली आठ अग्र-महिषियाँ और चौंतीस हजार (३४०००) देवियाँ शोभायमान हैं ।।३८४।।

३४०००=(अग्र० ८×४००० परिवार देवियाँ)+२००० वल्लभा ।

सोलस-सहस्स-पण-सय-देवीओ अट्ठ अग्ग-महिसीओ ।
लंतव - इंदम्मि पुढं, णिरुवम - रूवाओ रेहंति ॥३८५॥

८ । १६५०० ।

अर्थ—लान्तवेन्द्रके अनुपम रूपवाली सोलह हजार पाँच सौ (१६५००) देवियाँ और आठ अग्र-महिषियाँ शोभायमान हैं ॥३८५॥

१६५००=(अग्र० ८×२००० परिवार देवियाँ)+५०० वल्लभा ।

अट्ठ-सहस्सा दु-सया, पण्णब्भहिया हुवंति देवीओ ।
अग्ग-महिसीओ अट्ठ य, रम्मा महसुक्क - इंदम्मि ॥३८६॥

८ । ८२५० ।

अर्थ—महाशुक्र इन्द्रके आठ हजार दो सौ पचास (८२५०) देवियाँ और आठ अग्र महिषियाँ होती हैं ॥३८६॥

८२५०=(अग्र० ८×१००० परिवार देवियाँ)+२५० वल्लभा ।

चत्तारि-सहस्साइं, एक्क-सयं पंचवीस - अब्भहियं ।
देवीओ अट्ठ जेट्ठा, होंति सहस्सार - इंदम्मि ॥३८७॥

८ । ४१२५ ।

अर्थ—सहस्रार इन्द्रके चार हजार एक सौ पच्चीस (४१२५) देवियाँ और आठ ज्येष्ठ देवियाँ होती हैं ॥३८७॥

४१२५=(अग्र० ८×५०० परिवार देवियाँ)+१२५ वल्लभा ।

आणद-पाणद-आरण-अच्चुद-इंदेसु अट्ठ जेट्ठाओ ।
पत्तेक्कं दु - सहस्सा, तेसट्ठी होंति देवीओ ॥३८८॥

८ । २०६३ ।

अर्थ—आनत, प्राणत, आरण और अच्युत इन्द्रोंमेंसे प्रत्येकके आठ अग्र-महिषियाँ और दो हजार तिरेसठ (२०६३) देवियाँ होती हैं ॥३८८॥

२०६३=(अग्र० ८×२५० परिवार देवियाँ)+६३ वल्लभा ।

मतान्तरसे सौधर्मेन्द्रकी देवियोंका प्रमाण—

खं-अह-णहट्ठ-दुग-इगि-अट्ठय-छस्सत्त-सक्क - देवीओ ।
लोयविणिच्छिय - गंथे, हुवंति सेसेसु पुव्वं व ॥३८९॥

७६८१२८००० ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—शून्य, शून्य, शून्य, आठ, दो, एक, आठ, छह और सात, इन अंकोंके प्रमाण सौधर्म इन्द्रके (७६८१२८०००) देवियाँ होती हैं। शेष इन्द्रोंमें देवियोंका प्रमाण पहलेके ही सदृश है, ऐसा लोकविनिश्चय ग्रन्थमें निर्दिष्ट है ॥३८९॥

पाठान्तर।

मतान्तरसे सौधर्मेन्द्रकी देवियोंका प्रमाण—

सगवीसं कोडीओ, सोहम्मिदेसु होंति देवीओ।
पुव्वं पि व सेसेसुं, संगाहणियम्मि णिद्दिट्ठं ॥३९०॥

पाठान्तरम्।

२७००००००० ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके सत्ताईस करोड़ (२७०००००००) और शेष इन्द्रोंके पूर्वोक्त संख्या प्रमाण देवियाँ होती हैं, ऐसा संगाहणिमें निर्दिष्ट है ॥३९०॥

इन्द्रोंकी सेवा-विधि—

माया-विवज्जिदाओ, बहु-रदि-करणेसु णिउण-बुद्धीओ।
ओलग्गंते णिच्चं, णिय - णिय - इंदाण चलणाइं ॥३९१॥

अर्थ—मायासे रहित और बहुत अनुराग करनेमें निपुण बुद्धिवाली वे देवियाँ नित्य अपने-अपने इन्द्रोंके चरणोंकी सेवा करती हैं ॥३९१॥

बब्बर-चिलाद-खुज्जय-कम्मंतिय-दास-दासि-पहुदीओ।
अंतउर - जोग्गाओ, चेट्ठंति विचित्त - वेसाओ ॥३९२॥

अर्थ—अन्तःपुरके योग्य बर्बर, किरात, कुब्जक, कर्मान्तिक और दास-दासी आदि अनेक प्रकारके (विचित्र) वेषों से युक्त स्थित रहते हैं ॥३९२॥

इंदाणं [1]अत्थाणे, पीढाणीयस्स अहिवई देवा।
रयणासणाणि देंति हु, सपाद - पीढाणि बहुवाणि ॥३९३॥

अर्थ— -इन्द्रों के आस्थान में पीठानीक के अधिपति देव पादपीठ सहित बहुत से रत्नमय आसन देते हैं ॥३९३॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. प्रत्थाणं।

जं जस्स जोग्गमुच्चं, णिच्चं णियडं विदूरमासणयं ।
तं[1] तस्स देंति देवा, णादूणं भू - विभागाइं ॥३६४॥

अर्थ— —स्थान के विभागों को जानकर जो जिसके योग्य होता है, देव उसे वैसा ही ऊँचा या नीचा तथा निकटवर्ती अथवा दूरवर्ती आसन देते हैं ॥३९४॥

वर-रयण-दंड-हत्था, पडिहारा होंति इंद-अट्ठाणे ।
पत्थावमपत्थावं, [2]ओलग्गंताण घोसंति ॥३६५॥

अर्थ—इन्द्रके आस्थान (सभा) में उत्तम रत्नदण्डको हाथमें लिए हुए जो द्वारपाल होते हैं वे सेवकोंके लिए प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत कार्यकी घोषणा करते हैं ॥३९५॥

अवरे वि सुरा तेसिं, णाणाविह-पेसणाणि कुणमाणा ।
इंदाण भत्ति - भरिदा, आणं सिरसा पडिच्छंति ॥३६६॥

अर्थ—उनके नानाप्रकारके कार्योंको करनेवाले भक्तिसे भरे हुए इतर देव भी उन इन्द्रोंकी आज्ञाको शिरसे ग्रहण करते हैं ॥३६६॥

पडिइंदादी देवा, णिब्भर - भत्तीए णिच्चमोलग्गं ।
अभिमुह - ठिदा सभाए, णिय-णिय-इंदाण कुव्वंति ॥३६७॥

अर्थ—प्रतीन्द्रादिक देव अत्यन्त भक्तिसे सभामें अभिमुख स्थित होकर अपने-अपने इन्द्रोंकी नित्य सेवा करते हैं ॥३६७॥

पुव्वं ओलग्ग-सभा, सक्कीसाण जारिसा भणिदा ।
तारिसया सव्वाणं, णिय - णिय - णयरेसु इंदाणं ॥३६८॥

अर्थ—पूर्वमें सौधर्म और ईशान इन्द्रकी जैसी ओलग्गसभा (सेवकशाला) कही है, वैसे अपने-अपने नगरोंमें सब इन्द्रोंके होती है ॥३६८॥

प्रधान प्रासादके अतिरिक्त इन्द्रोंके अन्य चार प्रासाद—

इंद-प्पहाण-पासाद-पुव्व-दिब्भाग-पहुदि - संठाणा ।
चत्तारो पासादा, पुव्वोदिद - वण्णणेहिं जुदा ॥३६९॥

अर्थ—इन्द्रोंके प्रधान प्रासादके पूर्व-दिशाभाग-आदिमें स्थित और पूर्वोक्त वर्णनोंसे युक्त चार प्रासाद (और) होते हैं ॥३६९॥

---

१ क. तं तस्सं देवाणा कादूणं । २. द. ब. क. ज. ठ. ओलगताणं त ।

वेरुलिय-रजद-सोका, मिसक्कसारं च दक्खिणिदेसु[1] ।
रुचकं मंदर - सोका, सत्तच्छदयं च उत्तरिंदेसु[2] ॥४००॥

अर्थ—दक्षिण इन्द्रोंमें वैडूर्य, रजत, अशोक और मृषत्कसार तथा उत्तर इन्द्रोंमें रुचक, मन्दर अशोक और सप्तच्छद, ये चार प्रासाद होते हैं ॥४००॥

इन्द्र-प्रासादोंके आगे स्थित स्तम्भोंका वर्णन—

सक्कीसाण-गिहाणं, पुरदो छत्तीस - जोयणुच्छेहा ।
जोयण-बहला-खंभा,[1] बारस-धारा[2] हुवंति वज्जमया ॥४०१॥

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रके प्रासादोके आगे छत्तीस योजन ऊँचे और एक योजन बाहल्य सहित वज्रमय बारह धाराओंवाले खम्भा (स्तम्भ) होते हैं ॥४०१॥

पत्तेक्क धाराणं,[3] वासो एक्केक्क - कोस[4]-परिमाणं ।
माणत्थंभ[5] - सरिच्छं, सेसत्थंभाण वण्णणयं ॥४०२॥

अर्थ—उन धाराओंमें प्रत्येक धाराका व्यास एक-एक कोस प्रमाण है। स्तम्भोंका शेष वर्णन मानस्तम्भोंके सदृश है ॥४०२॥

भरहेरावद-भूगद - तित्थयर - बालयाणाभरणाणं[6] ।
वर - रयण - करंडेहिं, लंबंतेहिं विरायंते ॥४०३॥

अर्थ—(ये स्तम्भ) भरत और ऐरावत भूमिके तीर्थंकर बालकोंके आभरणोंके लटकते हुए उत्तम रत्नमय पिटारोंसे विराजमान हैं ॥४०३॥

मूलादो उवरि-तले, पुह पुह पणुवीस-कोस-परिमाणा ।
गंतूणं सिहरादो, तेत्तियमोदरिय होंति हु करंडा ॥४०४॥

२५ । २५ ।

अर्थ—(स्तम्भोंके) मूलसे उपरिम तलमें पृथक्-पृथक् पच्चीस कोस (६¼ यो०) प्रमाण जाकर और शिखरसे इतने (२५ कोस) ही उतर कर ये करण्ड (पिटारे) होते हैं ॥४०४॥

पंच-सय-चाव-रुंदा, पत्तेक्कं एक्क-कोस-दीहत्ता ।
ते होंति वर - करंडा, णाणा-वर-रयण-रासिमया ॥४०५॥

---

१. द. कंभा । २. द. ब. क. ज. ठ. दारा । ३. द. ब. क. ज. ठ. बाराणं । ४. ब. कोसा । ५. द. ब. क. ज. ठ. माणडं च । ६. द. ब. क. ज ठ. बालइंयाणं ।

५०० । को १ ।

अर्थ—अनेक उत्तम रत्नोंकी राशि स्वरूप उन श्रेष्ठ करण्डोंमेंसे प्रत्येक पाँच सौ (५००) धनुष विस्तृत और एक कोस लम्बा होता है ।।४०५।।

ते संखेज्जा सव्वे, लंबंता रयण - सिक्क - जालेसुं ।
सक्कादि-पूजणिज्जा, अणाविणिहणा महा - रम्मा ।।४०६।।

अर्थ—रत्नमय सीकोंके समूहोंमें लटकते हुए वे सब संख्यात करण्ड शक्रादिसे पूजनीय, अनादि-निधन और महा रमणीय होते हैं ।।४०६।।

आभरणा पुव्वावर-विदेह-तित्थयर-बालयाणं च ।
थंभोवरि चेट्ठंते, भवणेसु सणक्कुमार - जुगलस्स ।।४०७।।

अर्थ—सनत्कुमार और माहेन्द्रके भवनोंमें स्तम्भों पर पूर्व एवं पश्चिम विदेह सम्बंधी तीर्थंकर बालकोंके आभरण स्थित होते हैं ।।४०७।।

विशेषार्थ—स्तम्भोंकी ऊँचाई ३६ योजन है। इनमें मूलसे ६½ योजन पर्यन्त उपरिम भागमें और शिखरसे ६½ यो० नीचेके भागमें करण्ड नहीं हैं। प्रत्येक करण्ड २००० धनुष (१ कोस) विस्तृत और ५०० धनुष (¼ कोस) लम्बा है। ये रत्नमयी सींकोंपर लटकते हैं। सौधर्मकल्पमें स्थित स्तम्भ पर स्थापित करण्डोंके आभरण भरतक्षेत्र सम्बन्धी बाल तीर्थंकरोंके लिए हैं। ईशान कल्प स्थित स्तम्भपर स्थापित करण्डोंके आभरण ऐरावतक्षेत्र सम्बंधी बाल तीर्थंकरोंके लिए हैं। इसीप्रकार सानत्कुमार कल्पगत पूर्वविदेह क्षेत्र सम्बन्धी बाल-तीर्थंकरों के लिये और माहेन्द्र कल्पगत करण्डोंके आभरण पश्चिम विदेह क्षेत्र सम्बंधी बाल-तीर्थंकरोंके लिए होते हैं।

इन्द्र-भवनोंके सामने न्यग्रोध वृक्ष—

सयलिंद - मंदिराणं, पुरदो णग्गोह - पायवा होंति ।
एक्केक्कं पुढविमया, पुव्वोदिद-जंबु - दुम - सरिसा ।।४०८।।

अर्थ—समस्त इन्द्र-प्रासादों (या भवनों) के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं। इनमें एक-एक वृक्ष पृथिवी स्वरूप और पूर्वोक्त जम्बू वृक्षके सदृश होता है ।।४०८।।

तम्मूले एक्केक्का, जिणिंद-पडिमा य पडिदिसं होदि ।
सक्कादि-णमिद-चलणा, सुमरण-मेत्ते वि दुरिद-हरा ।।४०९।।

अर्थ—इसके मूलमें प्रत्येक दिशामें एक-एक जिनेन्द्र-प्रतिमा होती है। जिसके चरणोंमें इन्द्र आदिक प्रणाम करते हैं तथा जो स्मरण मात्रसे ही पापको हरनेवाली है ।।४०९।।

सुधर्मा सभा—

सक्कस्स मंदिरादो, ईसाण-दिसे सुधम्म-णाम-सभा ।
ति-सहस्स-कोस-उदया, चउ-सय-दीहा तदद्ध-वित्थारा ।।४१०।।

३००० । ४०० । २०० ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके भवनसे ईशान दिशामें तीन हजार (३०००) कोस ऊँची, चार सौ (४००) कोस लम्बी और इससे आधे अर्थात् २०० कोस विस्तारवाली सुधर्मा नामक सभा है ।।४१०।।

नोट—सुधर्मासभाकी ऊँचाई ३०० कोस होनी चाहिए, क्योंकि अकृत्रिम मापोंमें ऊँचाई का प्रमाण प्रायः (लम्बाई + चौड़ाई)/२ होता है ।

तिये दुवारुच्छेहा, कोसा चउसट्ठि तद्दलं रुंदो ।
सेसाओ वण्णणाओ, सक्क - प्पासाद - सरिसाओ ।।४११।।

६४ । ३२ ।

अर्थ—सुधर्मा सभाके द्वारोंकी ऊँचाई चौंसठ (६४) कोस और विस्तार इससे आधा अर्थात् ३२ कोस है । शेष वर्णन सौधर्म इन्द्रके प्रासाद सदृश है ।।४११।।

रम्माए सुधम्माए, विविह-विणोदेहि कीडदे सक्को ।
बहुविह-परिवार-जुदो, भुंजंतो विविह-सोक्खाणि ।।४१२।।

अर्थ—इस रमणीय सुधर्मा सभामें बहुत प्रकारके परिवारसे युक्त सौधर्म इन्द्र विविध सुखोंको भोगता हुआ अनेक विनोदोंसे क्रीड़ा करता है ।।४१२।।

उपपाद सभा—

तत्थेसाण-दिसाए, उववाद-सभा हुवेदि पुव्व-समा ।
दिप्पंत[1]-रयण - सेज्जा, विण्णास-विसेस-सोहिल्ला ।।४१३।।

अर्थ—वहाँ ईशान दिशामें पूर्वके सदृश उपपाद सभा है । यह सभा दैदीप्यमान रत्न-शय्याओं सहित विन्यास-विशेषसे शोभायमान है ।।४१३।।

जिनेन्द्र-प्रासाद—

तीए दिसाए चेट्ठदि, वर-रयणमओ जिणिंद-पासादो ।
पुव्व-सरिच्छो अहवा, पंडुग - जिणभवण - सारिच्छो ।।४१४।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. दिप्पंत ।

अर्थ—उसी दिशामें पूर्वके सदृश अथवा पाण्डुक वन सम्बंधी जिनभवनके सदृश उत्तम रत्नमय जिनेन्द्र-प्रासाद हैं ॥४१४॥

अड-जोयण-उव्विद्धो, तेत्तिय-वासो हुवंति पत्तेक्कं ।
सेसिदे पासादा, सेसो पुव्वं व विण्णासो ॥४१५॥

८ । ८ ।

अर्थ—शेष इन्द्रोंके प्रासादोंमेंसे प्रत्येक आठ (८) योजन ऊँचा और इतने (८ यो०) ही विस्तार सहित है । शेष विन्यास पहलेके ही सदृश है ॥४१५॥

देवियों और वल्लभाओंके भवनोंका विवेचन—

इंद - प्पासादाणं, समंतदो होंति दिव्व - पासादा ।
देवी - वल्लहियाणं, णाणावर - रयण - कणयमया ॥४१६॥

अर्थ—इन्द्र-प्रासादोंके चारों ओर देवियों और वल्लभाओंके नाना उत्तम रत्नमय एवं स्वर्णमय दिव्य प्रासाद हैं ॥४१६॥

देवी-भवणुच्छेहा, सक्क-दुगे जोयणाणि पंच-सया ।
माहिंद - दुगे पण्णब्भहियाणि चउ - सयाणि पि ॥४१७॥

५०० । ४५० ।

अर्थ—सौधर्म और ईशान इन्द्रकी देवियोंके भवनोंकी ऊँचाई पाँच सौ (५००) योजन तथा सानत्कुमार एवं माहेन्द्र इन्द्रकी देवियोंके भवनोंकी ऊँचाई चार सौ पचास (४५०) योजन है ॥४१७॥

बम्हिद - लंतविंदे, महसुक्किदे सहस्सयारिंदे ।
आणद-पहुदि-चउक्के, कमसो पण्णास - हीणाणि ॥४१८॥

४०० । ३५० । ३०० । २५० । २०० ।

अर्थ—ब्रह्मेन्द्र, लान्तवेन्द्र, महाशुक्रेन्द्र, सहस्रारेन्द्र और आनत आदि चार इन्द्रोंकी देवियोंके भवनोंकी ऊँचाई क्रमशः पचास-पचास योजन कम है । अर्थात् क्रमशः ४०० यो०, ३५० यो०, ३०० यो०, २५० यो० और २०० योजन है ॥४१८॥

देवी - पुर-उदयादो, वल्लभिया-मंदिराण-उच्छेहो ।
सव्वेसुं इंदेसुं, जोयण - वीसाहिओ होदि ॥४१९॥

अर्थ—सब इन्द्रोंमें वल्लभाओंके मन्दिरोंका उत्सेध देवियोंके पुरोंके उत्सेधसे बीस योजन अधिक है ॥४१९॥

उच्छेह - दसम - भागे, एदाणं मंदिरेसु विक्खंभा ।
विक्खंभ - दुगुण - दीहं, वास्सद्धं पि गाढत्तं ॥४२०॥

अर्थ—इनके मन्दिरोंका विष्कम्भ उत्सेधके दसवें भाग प्रमाण, दीर्घता विष्कम्भसे दूनी और अवगाढ़ व्याससे आधा है ॥४२०॥

सव्वेसु मंदिरेसुं, उववण - संडाणि होंति दिव्वाणि ।
सव्व-उडु-जोग-पल्लव-फल-कुसुम-विभूदि-भरिदाणि ॥४२१॥

अर्थ—सब मन्दिरोंमें समस्त ऋतुओंके योग्य पत्र, फूल और कुसुमरूप विभूतिसे परिपूर्ण दिव्य उपवन खण्ड होते हैं ॥४२१॥

पोक्खरणी-वावीओ, सच्छ-जलाओ विचित्त-रूवाओ ।
पुप्फिद - कमल - वणाओ, एक्केक्के मंदिरे होंति ॥४२२॥

अर्थ—एक-एक मन्दिरमें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण, विचित्ररूपवाली और पुष्पित कमलवनोंसे संयुक्त पुष्करिणी वापियाँ हैं ॥४२२॥

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	इन्द्र-नाम	देवियोंके भवनोंकी				वल्लभाओंके भवनोंकी			
		ऊँचाई गा० ४१७-४१८	विस्तार	लम्बाई	नींव	ऊँचाई गा. ४१९	चौड़ाई	लम्बाई	नींव
१	सौधर्मेन्द्र	५०० यो०	५० यो०	१०० यो०	२५ यो०	५२० यो.	५२ यो०	१०४ यो०	२६ यो०
२	ईशानेन्द्र	५०० ,,	५० ,,	१०० ,,	२५ ,,	५२० ,,	५२ ,,	१०४ ,,	२६ ,,
३	सानत्कुमारेन्द्र	४५० ,,	४५ ,,	९० ,,	२२½ ,,	४७० ,,	४७ ,,	९४ ,,	२३½ ,,
४	माहेन्द्र	४५० ,,	४५ ,,	९० ,,	२२½ ,,	४७० ,,	४७ ,,	९४ ,,	२३½ ,,
५	ब्रह्मेन्द्र	४०० ,,	४० ,,	८० ,,	२० ,,	४२० ,,	४२ ,,	८४ ,,	२१ ,,
६	लान्तवेन्द्र	३५० ,,	३५ ,,	७० ,,	१७½ ,,	३७० ,,	३७ ,,	७४ ,,	१८½ ,,
७	महाशुक्रेन्द्र	३०० ,,	३० ,,	६० ,,	१५ ,,	३२० ,,	३२ ,,	६४ ,,	१६ ,,
८	सहस्रारेन्द्र	२५० ,,	२५ ,,	५० ,,	१२½ ,,	२७० ,,	२७ ,,	५४ ,,	१३½ ,,
९	आनतादि ४	२०० ,,	२० ,,	४० ,,	१० ,,	२२० ,,	२२ ,,	४४ ,,	११ ,,

णाणाविह - तूरेहिं, णाणाविह-महुर-गीय-सद्दे हिं ।
ललियमय[1]- णच्चणेहिं, सुर - णयराइं विराजंति ।।४२३।।

अर्थ—देवोंके नगर नाना प्रकारके तूर्यों (वादित्रों), अनेक प्रकारके मधुर गीत-शब्दों और विलासमय नृत्योंसे विराजमान हैं ।।४२३।।

द्वितीयादि वेदियोंका कथन—

आदिम-पायाराबो, तेरस - लक्खाणि जोयणे गंतुं[2] ।
चेट्ठेदि बिदिय-वेदी, पढमा मिव सव्व - णयरेसुं ।।४२४।।

१३००००० ।

अर्थ—सब नगरोंमें आदिम प्राकार (कोट) से तेरह लाख (१३०००००) योजन जाकर प्रथम (कोट) के सदृश द्वितीय वेदी स्थित है ।।४२४।।

वेदीणं विच्चाले, णिय-णिय-सामी-सरीर-रक्खा य ।
चेट्ठंति सपरिवारा, पासादेसुं विचित्तेसुं ।।४२५।।

बिदिय-वेदी गदा ।

अर्थ—वेदियोंके अन्तरालमें अद्भुत प्रासादोंमें सपरिवार अपने-अपने स्वामियोंके शरीर-रक्षक देव रहते हैं ।।४२५।।

द्वितीय वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

तेसट्ठी-लक्खाणि, पण्णास-सहस्स-जोयणाणि तदो ।
गंतूण तदिय - वेदी, पढमा मिव सव्व - णयरेसुं ।।४२६।।

६३५०००० ।

अर्थ—सब नगरोंमें इस (दूसरी वेदी) से आगे तिरेसठ लाख पचास हजार (६३५००००) योजन जाकर प्रथम (कोट) के सदृश तृतीय वेदी है ।।४२६।।

एदाणं विच्चाले, तिप्परिसाणं सुरा विचित्तेसुं ।
चेट्ठंति मंदिरेसुं, णिय - णिय - परिवार - संजुत्ता ।।४२७।।

तेदिय-वेदी गदा ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. अलिय । २. द. क. ज. ठ. जोयणे गं दु व, ब. जोयणेगे दु व ।

अर्थ—इन वेदियोंके मध्य स्थित अद्भुत भवनोंमें अपने-अपने परिवारसे संयुक्त तीन परिषदोंके देव रहते हैं ॥४२७॥

तृतीय वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

तव्वेदीदो गच्छिय, चउसट्ठि-सहस्स-जोयणाणि च ।
चेट्ठेदि तुरिम-वेदी, पढमा - मिव सव्व - णयरेसुं ॥४२८॥

६४००० ।

अर्थ—इस वेदीसे चौंसठ हज़ार (६४०००) योजन आगे जाकर सब नगरोंमें प्रथम वेदीके सदृश चतुर्थ वेदी स्थित है ॥४२८॥

एदाणं विच्चाले, वर-रयणमएसु दिव्व - भवणेसुं ।
सामाणिय-णाम सुरा, णिवसंते विविह - परिवारा ॥४२९॥

तुरिम-वेदी गदा ।

अर्थ—इन वेदियोंके मध्यमें स्थित उत्तम रत्नमय दिव्य-भवनोंमें विविध परिवार सहित सामानिक नामक देव निवास करते हैं ॥४२९॥

चतुर्थ वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

चउसीदी - लक्खाणिं, गंतूणं जोयणाणि तुरिमादो ।
चेट्ठेदि पंच - वेदी, पढमा मिव सव्व - णयरेसुं ॥४३०॥

८४००००० ।

अर्थ—चतुर्थ वेदीसे चौरासी लाख (८४०००००) योजन आगे जाकर सब नगरोंमें प्रथम वेदीके सदृश पंचम वेदी स्थित है ॥४३०॥

एदाणं विच्चाले, णिय-णिय-आरोहका अणीया य ।
अभियोगा किब्बिसिया, पइण्णया तह सुरा च तेत्तीसा ॥४३१॥

पंचम-वेदी गदा ।

अर्थ—इन वेदियोंके मध्यमें अपने-अपने आरोहक अनीक, आभियोग्य, किल्विषिक, प्रकीर्णक तथा त्रायस्त्रिंश देव निवास करते हैं ॥४३१॥

पंचम वेदीका कथन समाप्त हुआ ।

उपवन-प्ररूपणा—

तप्परदो गंतूणं, पण्णास - सहस्स - जोयणाणं च ।
होंति हु दिव्व-वणाणि, इंद-पुराणं चउ - द्दिसासुं ।।४३२।।

अर्थ—इसके आगे पचास हजार (५००००) योजन जाकर इन्द्रोंमें नगरोंकी चारों दिशाओंमें दिव्य वन हैं ।।४३२।।

पुव्वादिसु ते कमसो, असोय-सत्तच्छदाण वण-संडा ।
चंपय-चूदाण तहा, पउम - द्दह - सरिस - परिमाणा ।।४३३।।

अर्थ—पूर्वादिक दिशाओंमें वे क्रमशः अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र वृक्षोंके वन-खण्ड हैं ।।४३३।।

एक्केक्का चेत्त - तरू, तेसु असोयादि-णाम-संजुत्ता ।
णग्गोह-तरु-सरिच्छा, वर-चामर-छत्त-पहुदि-जुदा ।।४३४।।

अर्थ—उन वनोंमें अशोकादि नामोंसे संयुक्त और उत्तम चमर-छत्रादिसे युक्त न्यग्रोधतरुके सदृश एक-एक चैत्य-वृक्ष है ।।४३४।।

पोक्खरणी-वावीहिं, मणिमय-भवणेहिं[1] संजुदा विउला ।
सव्व-उडु-जोग्ग-पल्लव-कुसुम-फला भांति वण - संडा ।।४३५।।

अर्थ—पुष्करिणी, वापियों एवं मणिमय भवनोंसे संयुक्त तथा सब ऋतुओंके योग्य पत्र, कुसुम एवं फलोंसे परिपूर्ण (वे) विपुल वन-खण्ड शोभायमान हैं ।।४३५।।

लोकपालोंके क्रीड़ा-नगर—

संखेज्ज-जोयणाणि, पुह पुह गंतूण णंदण - वणादो ।
सोहम्मादि - दिगिंदाणं कीडण - णयराणि चेट्ठंति ।।४३६।।

अर्थ—नन्दन वनसे पृथक्-पृथक् संख्यात योजन जाकर सौधर्मादि इन्द्रोंके लोकपालोंके क्रीड़ा-नगर स्थित हैं ।।४३६।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. भरणेहिं ।

बारस-सहस्स-जोयण-दीहत्ता पण-सहस्स-विक्खंभा ।
पत्तेक्कं ते णयरा, वर - वेदी - पहुदि - कयसोहा ॥४३७॥

१२००० । ५००० ।

अर्थ—उत्तम वेदी आदिसे शोभायमान उन नगरोंमेंसे प्रत्येक बारह हजार (१२०००) योजन लम्बे और पाँच हजार (५०००) योजन प्रमाण विस्तार सहित है ॥४३७॥

गणिका-महत्तरियोंके नगर—

गणिया-महत्तरीणं, समचउरस्सा पुरीओ विदिसासुं ।
एक्कं जोयण - लक्खं, पत्तेक्कं दीह - वास - जुदा ॥४३८॥

१००००० । १००००० ।

अर्थ—विदिशाओंमें गणिका-महत्तरियोंकी समचतुष्कोण नगरियाँ हैं । इनमेंसे प्रत्येक एक-एक लाख (१०००००, १०००००) योजन प्रमाण दीर्घता तथा विस्तारसे युक्त है ॥४३८॥

सव्वेसुं णयरेसुं, पासादा दिव्व-विविह-रयणमया ।
णच्चंत विचित्त-धया, णिरुवम - सोहा विरायंति ॥४३९॥

अर्थ—सब नगरोंमें नाचती हुई विचित्र ध्वजाओंसे युक्त और अनुपम शोभाके धारक दिव्य विविध रत्नमय प्रासाद विराजमान हैं ॥४३९॥

जोयण-सय-दीहत्ता, ताणं पण्णास-मेत्त-वित्थारा ।
मुह - मंडव - पहुदीहिं, विचित्त - रूवेहिं संजुत्ता ॥४४०॥

अर्थ—ये प्रासाद एक सौ (१००) योजन दीर्घ, पचास (५०) योजन प्रमाण विस्तार सहित और विचित्र-रूप मुख-मण्डप आदिसे संयुक्त हैं ॥४४०॥

सौधर्मेन्द्र आदिके यान-विमानोंका विवरण—

वालुग-पुप्फग-णामा, याण-विमाणाणि सक्क-जुगलम्मि ।
सोमणसं सिरिरुक्खं, सणक्कुमारादि - जुगलम्मि ॥४४१॥

अर्थ—शक्र-युगल (सौधर्म एवं ईशान इन्द्र) के वालुग और पुष्पक नामक यान-विमान तथा सानत्कुमार आदि दो इन्द्रोंके सोमनस एवं श्रीवृक्ष नामक यान-विमान हैं ।।४४१।।

बम्हिंदादि-चउक्के, याण - विमाणाणि सव्वदोभद्दा ।
पीदिक[1]- रम्मक - णामा, मणोहरा होंति चत्तारि ।।४४२।।

अर्थ—ब्रह्मेन्द्र आदि चार इन्द्रोंके क्रमशः सर्वतोभद्र, प्रीतिक (प्रीतिंकर), रम्यक और मनोहर नामक चार यान-विमान होते हैं ।।४४२।।

आणद-पाणद-इंदे, लच्छी-मालित्ति - णामदो होदि ।
आरण-कप्पिद-दुगे, याण - विमाणं विमल - णामं ।।४४३।।

अर्थ—आनत और प्राणत इन्द्रके लक्ष्मी-मालती नामक यान-विमान तथा आरण कल्पेन्द्र युगलमें विमल नामक यान-विमान होते हैं ।।४४३।।

सोहम्मादि-चउक्के, कमसो अवसेस-कप्प[2]-जुगलेसुं ।
होंति हु पुव्वुत्ताइं, याण - विमाणाणि पत्तेक्कं ।।४४४।।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—सौधर्मादि चारमें और शेष कल्प-युगलोंमें क्रमशः प्रत्येकके पूर्वोक्त यान-विमान होते हैं ।।४४४।।

पाठान्तर ।

एक्कं जोयण - लक्खं, पत्तेक्कं दीह-वास-संजुत्ता ।
याण - विमाणा दुविहा, विक्किरियाए सहावेणं ।।४४५।।

अर्थ—इनमेंसे प्रत्येक विमान एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण दीर्घता एवं व्याससे संयुक्त हैं । ये विमान दो प्रकारके हैं, एक विक्रियासे उत्पन्न हुए और दूसरे स्वभावसे ।।४४५।।

ते विक्किरिया-जादा, याणविमाणा विणासिणो होंति ।
अविणासिणो य णिच्चं, सहाव - जादा परम-रम्मा ।।४४६।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. पीदिकर । २. द. ब. क. ज. ठ. धुव्व ।

अर्थ—विक्रियासे उत्पन्न हुए वे यान-विमान विनश्वर और स्वभावसे उत्पन्न हुए वे परम-रम्य यान-विमान नित्य एवं अविनश्वर होते हैं ॥४४६॥

धुव्वंत-धय-वडाया विविहासण-सयण पहुदि-परिपुण्णा ।
धूव - घडेहिं जुत्ता, चामर - घंटादि - कयसोहा ॥४४७॥

वंदण - माला - रम्मा, मुत्ताहल-हेम-दाम-रमणिज्जा ।
सुंदर - दुवार - सहिदा, वज्ज-कवाडुज्जला विरायंति ॥४४८॥

अर्थ—उपर्युक्त यान-विमान फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं सहित, विविध आसन एवं शय्या आदिसे परिपूर्ण, धूप-घटोंसे युक्त, चामर एवं घण्टादिकसे शोभायमान, वन्दन-मालाओंसे रमणीक, मुक्ताफल एवं सुवर्णकी मालाओंसे मनोहर, सुन्दर द्वारों सहित और वज्रमय कपाटोंसे उज्ज्वल होते हुए सुशोभित होते हैं ॥४४७-४४८॥

सच्छाइं भायणाइं, वत्थाभरणाइ - आइ दुविहाइं ।
होंति हु याण - विमाणे, विक्किरियाए सहावेणं ॥४४९॥

अर्थ—यान-विमानमें स्वच्छ भाजन (बर्तन), वस्त्र और आभरण आदिक (भी) विक्रिया तथा स्वभावसे दो प्रकारके होते हैं ॥४४९॥

विक्किरिया जणिदाइं, विणास-रूवाइं होंति सव्वाइं ।
वत्थाभरणादीया, सहाव - जादाणि णिच्चाणि ॥४५०॥

अर्थ—विक्रियासे उत्पन्न सब वस्त्राभरणादिक विनश्वर और स्वभावसे उत्पन्न हुए ये सभी नित्य होते हैं ॥४५०॥

इन्द्रोंके मुकुट-चिह्न—

सोहम्मादिसु अट्ठसु, आणद - पहुदीसु चउसु इंदाणं ।
सूवर-हरिणी-महिसा, [1]मच्छा भेकाहि-छगल-वसहा य ॥४५१॥

कप्प-तरू मउडेसुं, चिण्हाणि णव कमेण भणिदाणि ।
एदेहिं ते इंदा, लक्खिज्जंते सुराण मज्झम्मि ॥४५२॥

---

१. द. ब. मच्छो ।

अर्थ—सौधर्मादिक आठ और आनत आदि चार (८+१=९) कल्पोंमें इन्द्रोंके मुकुटोंमें क्रमशः शूकर, हरिणी, महिष, मत्स्य, भेक, सर्प, छगल, वृषभ और कल्पतरु, ये नौ चिह्न कहे गये हैं। इन चिह्नोंसे देवोंके मध्यमें वे इन्द्र पहिचाने जाते हैं ।।४५१-४५२।।

इंदाणं चिण्हाणि, पत्तेक्कं ताव जा[1] सहस्सारं ।
आणव-आरण - जुगले, चोद्दस - ठाणेसु वोच्छामि ।।४५३।।

सूवर-हरिणी-महिसा, मच्छो कुम्मो य भेक-हय-हत्थी ।
चंदाहि-गवय-छगला, वसह-कप्पतरू[2] मउड-मज्झेसु ।।४५४।।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—सहस्रारकल्प पर्यन्त प्रत्येक इन्द्रके तथा आनत और आरण युगलमें इसप्रकार चौदह स्थानोंके चिह्न कहते हैं। शूकर, हरिणी, महिष, मत्स्य, कूर्म, भेक, अश्व, हाथी, चन्द्र, सर्प, गवय, छगल वृषभ और कल्पतरु ये चौदह चिह्न मुकुटोंके मध्यमें होते हैं ।।४५३-४५४।।

पाठान्तर ।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिए]

---

१. ब. जाव । २. द. ब. क. ज. ठ. हयचंदा हिदयछगला पंचतरु ।

क्रमांक	इन्द्रोंके नाम	यान-विमानोंके नाम: मूलसे गा० ४४१-४४३	स्थान १०	पाठान्तर गा० ४४४	स्थान १०	इन्द्रोंके मुकुट-चिह्न: मूलसे गा० ४५१-४५२	स्थान ९	पाठान्तरसे: क्रमांक	इन्द्र-नाम गा० ४५३	चिह्न गा. ४५४	स्थान १४
१	सौधर्मेन्द्र	वालुग	१	वालुग	१	शूकर	१	१	सौधर्मेन्द्र	शूकर	१
२	ईशानेन्द्र	पुष्पक	२	वालुग		हरिणी	२	२	ईशानेन्द्र	हरिणी	२
३	सानत्कुमारेन्द्र	सौमनस	३	पुष्पक	२	महिष	३	३	सानत्कुमार	महिष	३
४	माहेन्द्र	श्रीवृक्ष	४	पुष्पक		मत्स्य	४	४	माहेन्द्र	मत्स्य	४
५	ब्रह्मेन्द्र	सर्वतोभद्र	५	सौमनस	३	मेंढ़क	५	५	ब्रह्मेन्द्र	कूर्म	५
६	लान्तवेन्द्र	प्रीतिक	६	श्रीवृक्ष	४	सर्प	६	६	ब्रह्मोत्तरेन्द्र	मेंढक	६
७	महाशुक्रेन्द्र	रम्यक	७	सर्वतोभद्र	५	छगल	७	७	लान्तवेन्द्र	अश्व	७
८	सहस्रारेन्द्र	मनोहर	८	प्रीतिक	६	बैल	८	८	कापिष्टेन्द्र	हाथी	८
९	आनतेन्द्र	लक्ष्मीमा०	९	रम्यक	७	कल्पतरु	९	९	शुक्रेन्द्र	चन्द्र	९
१०	प्राणतेन्द्र	लक्ष्मीमा०		मनोहर	८	,,		१०	महाशुक्रेन्द्र	सर्प	१०
११	आरणेन्द्र	विमल	१०	लक्ष्मीमा०	९	,,		११	शतारेन्द्र	गवय	११
१२	अच्युतेन्द्र	विमल		विमल	१०	,,		१२	सहस्रारेन्द्र	छगल	१२
								१३	आनतेंद्र-प्राणतेन्द्र	वृषभ	१३
								१४	आरणेंद्र-अच्युतेन्द्र	कल्पतरु	१४

अहमिन्द्रोंकी विशेषता—

इंदाणं परिवारा, पडिंद - पहुदी ण होंति कइया वि ।
अहमिंदाणं सप्पडिवाराहिंतो अणंत - सोक्खाणं ।।४५५।।

अर्थ—इन्द्रोंके प्रतीन्द्र आदि परिवार होते हैं। किन्तु सपरिवार इन्द्रोंकी अपेक्षा अनन्त सुखसे युक्त अहमिन्द्रोंके परिवार कदापि नहीं होते ।।४५५।।

उववाद-सभा विविहा, कप्पातीदाण होंति सव्वाणं ।
जिण-भवणा पासादा, णाणाविह-दिव्व-रयणमया ।।४५६।।

अभिसेय-सभा संगीय-पहुदि-सालाओ चित्त-रुक्खा य ।
देवीओ ण दीसंति, कप्पातीदेसु कइया वि[1] ।।४५७।।

अर्थ—सब कल्पातीतोंके विविध प्रकारकी उपपाद-सभायें, जिन-भवन, नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे निर्मित प्रासाद, अभिषेक सभा, संगीत आदि शालायें और चैत्यवृक्ष भी होते हैं, परन्तु कल्पातीतोंके देवियाँ कदापि नहीं दीखतीं ।।४५६–४५७।।

गेहुच्छेहो दु - सया, पण्णब्भहियं सयं सयं सुद्धं ।
हेट्ठिम-मज्झिम - उवरिम - गेवेज्जेसुं कमा होंति ।।४५८।।

२०० । १५० । १०० ।

अर्थ—अधस्तन, मध्यम और उपरिम ग्रैवेयकोंमें प्रासादोंकी ऊँचाई क्रमशः दो सौ (२००), एक सौ पचास (१५०) और केवल सौ (१००) योजन है ।।४५८।।

भवणुच्छेह - पमाणं, अणुद्दिसाणुत्तराभिधाणेसुं ।
पण्णासा जोयणया, कमसो पणुवीसमेत्ताणि ।।४५९।।

५० । २५ ।

अर्थ—अनुदिश और अनुत्तर नामक विमानोंमें भवनोंकी ऊँचाईका प्रमाण क्रमशः पचास (५०) और पच्चीस योजन है ।।४५९।।

उदयस्स पंचमंसा, दीहत्तं तद्दलं च वित्थारो ।
पत्तेक्कं णादव्वा, कप्पातीदाण भवणेसुं ।।४६०।।

एवं इंद-विभूदि-परूवणा समत्ता ।।७।।

---

१. द. ब. आदि ।

अर्थ—कल्पातीतोंके भवनोंमें प्रत्येककी दीर्घता ऊँचाईके पाँचवें भाग और विस्तार उससे आधा समझना चाहिए ।।

इसप्रकार इन्द्र-विभूतिकी प्ररूपणा समाप्त हुई ।।७।।

प्रत्येक पटलमें देवोंकी आयुका कथन—

पढमे बिदिए जुगले, बम्हादिसु चउसु आणद-दुगम्मि ।
आरण - दुगे सुदंसण - पहुदिसु एक्कारसेसु कमे ।।४६१।।

दुग-सत्त-दसं चउद्दस-सोलस-अट्ठरस-वीस-बावीसा ।
तत्तो एक्केक्क-जुदा, उक्कस्साऊ समुद्द - उवमाणा ।।४६२।।

२ । ७ । १० । १४ । १६ । १८ । २० । २२ । २३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ ।
२९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ ।

अर्थ—प्रथम एवं द्वितीय युगल, ब्रह्मादिक चार युगल, आनत युगल, आरणयुगल और सुदर्शन आदि ग्यारहमें उत्कृष्ट आयु क्रमशः दो, सात, दस, चौदह, सोलह, अठारह, बीस, बाईस, इसके ऊपर एक-एक अधिक अर्थात् तेबीस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस, इकतीस, बत्तीस और तेंतीस सागरोपम प्रमाण है ।।४६१-४६२।।

एसो उक्कस्साऊ, इंद - प्पहुदीण होदि हु चउण्णं ।
सेस-सुराणं आऊ, मज्झिल्ल - जहण्ण - परिमाणा ।।४६३।।

अर्थ—यह उत्कृष्ट आयु इन्द्र आदि चारकी है। शेष देवोंकी आयु मध्यम एवं जघन्य प्रमाण सहित है ।।४६३।।

छासट्ठि-कोडि-लक्खा, कोडि-सहस्साणि तेत्तियाणि पि ।
कोडि-सया छच्चेअ य, छासट्ठी - कोडि - अहियाणि ।।४६४।।

छासट्ठी-लक्खाणि, तेत्तियमेत्ताणि तह सहस्साणि ।
छस्सय-छासट्ठीओ, दोण्णि कला तिय[1] - विहत्ताओ ।।४६५।।

एदाणि[2] पल्लाइं, आऊ उडु - विंदयम्मि उक्कस्से ।
तं सेढीबद्धाणं, पइण्णयाणं च णादव्वं ।।४६६।।

६६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{२}{३}$

---

१. द. ब. तिहविहत्ताओ । २. द. ब. एदाणं ।

अर्थ—छयासठ लाख करोड़, छयासठ हजार करोड़, छह सौ छयासठ करोड़ अधिक छयासठ लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ और तीनसे विभक्त दो कला (६६६६६६६६६६६६६६$\frac{२}{३}$), इतने पल्य प्रमाण ऋतु इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है। यही आयु उसके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकोंकी भी जाननी चाहिए ।।४६५-४६६।।

उडु-पडलुक्कस्साऊ, इच्छिय-पडल-प्पमाण- रूवेहिं ।
गुणिदूणं आणेज्जं, तस्सि जेट्ठाउ - परिमाणं ।।४६७।।

अर्थ—ऋतु पटलकी उत्कृष्ट आयुको इच्छित पटल प्रमाण रूपोंसे गुणित कर उसमें उत्कृष्ट आयुके प्रमाणको ले आना चाहिए ।।४६७।।

चोद्दस- ठाणेसु तिया, एक्कं अंकक्कमेण पल्लाणि ।
एक्क - कला उक्कस्से, आऊ विमलिदयम्मि पुढं ।।४६८।।

१३३३३३३३३३३३३३ । $\frac{१}{३}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन और एक, इतने पल्य और एक कला प्रमाण विमल इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है ।।४६८।।

विशेषार्थ—ऋतु पटलकी उत्कृष्ट आयुके प्रमाण को इच्छित पटल संख्यासे गुणित करने पर उस पटलमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यथा ऋतु विमान की उत्कृष्ट आयु ६६६६६६६६६६६६६६$\frac{२}{३}$ × २ = १३३३३३३३३३३३३३$\frac{१}{३}$ पल्य विमल नामक दूसरे इन्द्रकमें आयु का उत्कृष्ट प्रमाण है।

चोद्दस-ठाणे सुण्णं, दुगं च अंक - क्कमेण पल्लाणि ।
उक्कस्साऊ चंदिदयम्मि सेढी - पइण्णएसुं च ।।४६९।।

२००००००००००००००।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें शून्य और दो [६६६६६६६६६६६६६६$\frac{२}{३}$ × ३ = २००००००००००००००] इतने पल्य प्रमाण चन्द्र इन्द्रक तथा उसके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंमें उत्कृष्ट आयु है ।।४६९।।

चोद्दस-ठाणे छक्का, दुगं च अंक-क्कमेण पल्लाणि ।
दोण्णि कला उक्कस्से, आऊ वग्गुम्मि णादव्वो ।।४७०।।

२६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{२}{३}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें छह और दो इतने पल्य एवं दो कला [६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ × ४ = २६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ पल्य] प्रमाण बल्गु इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७०॥

पण्णरस-ट्ठाणेसुं, तियाणि अंक - क्कमेण पल्लाणि ।
एक्क - कला उक्कस्से, आऊ वीरिंदय - समूहे[1] ॥४७१॥

३३३३३३३३३३३३३३३ । $\frac{1}{3}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे पन्द्रह स्थानोंमें तीन, इतने पल्य और एक कला [६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ × ५ = ३३३३३३३३३३३३३३३$\frac{1}{3}$ पल्य] प्रमाण वीर इन्द्रक तथा उसके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकों में उत्कृष्ट आयु है ॥४७१॥

चोद्दस - ठाणे सुण्णं, चउक्कमंकक्कमेण पल्लाणि ।
उक्कस्सा अरुणिंदयम्मि सेढी - पइण्णएसुं च ॥४७२॥

४०००००००००००००० ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें शून्य और चार इतने (४००००००००००००००) पल्य प्रमाण अरुण इन्द्रक तथा उसके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७२॥

चोद्दस-ठाणे छक्का, चउक्कमंक - क्कमेण पल्लाणि ।
दोण्णि कलाओ णंदण - णामे आउस्स उक्कस्सो ॥४७३॥

४६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें छह और चार, इतने पल्य एवं दो कला (४६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ पल्य) प्रमाण नन्दन नामक पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७३॥

चोद्दस-ठाणेसु तिया, पंचक्क-कमेण होंति पल्लाणि ।
एक्क-कला णलिणिंदय - णामे आउस्स उक्कस्सो ॥४७४॥

५३३३३३३३३३३३३३३ । $\frac{1}{3}$ ।

अर्थ—अङ्क क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन और पांच, इतने पल्य एवं दो कला (५३३३३३३३३३३३३३३$\frac{1}{3}$ पल्य) प्रमाण नलिन नामक इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७४॥

---

1. द. ब. क. ज. ठ. स्समूहे ।

चोद्दस-ठाणे सुण्णं, छक्कं अंक - क्कमेण पल्लाणि ।
उक्कस्साऊ कंचण - णामे सेढी - पइण्णएसु पि ॥४७५॥

६००००००००००००००० ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें शून्य और छह, इतने (६०००००००००००००००) पल्य प्रमाण कञ्चन नामक इन्द्रक और उसके श्रेणीबद्ध तथा प्रकीर्णक विमानोंमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७५॥

पण्णरस - ट्ठाणेसु, छक्का अंकक्कमेण पल्लाणि ।
दोण्णि कलाओ रोहिद - णामे आउस्स उक्कस्सो ॥४७६॥

६६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे पन्द्रह स्थानोंमें छह, इतने पल्य और दो कला (६६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ पल्य) प्रमाण रोहित नामक पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७६॥

चोद्दस-ठाणेसु तिया, सत्तंक - कमेण होंति पल्लाणि ।
एक्क - कल च्चिय चंचिदयम्मि आउस्स उक्कस्सो ॥४७७॥

७३३३३३३३३३३३३३३ । $\frac{1}{3}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन और सात, इतने पल्य तथा एक कला (७३३३३३३३३३३३३३३$\frac{1}{3}$ पल्य) प्रमाण चंचत् (चन्द्र) इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७७॥

चोद्दस-ठाणे सुण्णं, अट्ठंक-कमेण होंति पल्लाणि ।
उक्कस्साऊ मरुदिदयम्मि सेढी - पइण्णएसुं च ॥४७८॥

८००००००००००००००० ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें शून्य और आठ, इतने पल्य प्रमाण मरुत् इन्द्रक तथा उसके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७८॥

चोद्दस-ठाणे छक्का, अट्ठंक-कमेण होंति पल्लाणि ।
दु-कलाओ [1]रिद्धिसए, उक्कस्साऊ समग्गम्मि ॥४७९॥

८६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{2}{3}$ ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. विदिसए ।

अर्थ—अंक-क्रमसे चौदह-स्थानोंमें छह और आठ, इतने पल्य तथा दो कला (८६६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ पल्य) प्रमाण समस्त ऋद्धीश पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४७९॥

चोद्दस-ठाणेसु तिया, णवंक कमसो हुवंति पल्लाणि ।
एक्क - कला - वेरुलिए, उक्कस्साऊ सपदरम्मि ॥४८०॥

९३३३३३३३३३३३३३३ । $\frac{1}{3}$ ।

अर्थ—अंक-क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन और नौ, इतने पल्य एवं एक कला (९३३३३३३३३३३३३३३$\frac{1}{3}$ पल्य) प्रमाण वैडूर्य पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८०॥

पण्णरस[1] - ट्ठाणेसुं, णहमेक्कंक - क्कमेण पल्लाणि ।
उक्कस्साऊ रुचकिदयम्मि सेढी - पइण्णएसुं पि ॥४८१॥

१००००००००००००००० ।

अर्थ—अंक क्रमसे पन्द्रह स्थानोंमें शून्य और एक, इतने (१०००००००००००००००) पल्य प्रमाण रुचक इन्द्रक एवं उसके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८१॥

चोद्दस-ठाणे छक्का, णहमेक्कंक - क्कमेण पल्लाणि ।
दोण्णि कलाओ रुचिरिंदयम्मि आउस्स उक्कस्सो ॥४८२॥

१०६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें छह, शून्य और एक, इतने पल्य और दो कला (१०६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ पल्य) प्रमाण रुचिर इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८२॥

चोद्दस-ठाणेसु [2]तिया, एक्केक्क-कमेण होंति पल्लाणि ।
एक्क-कल - च्चिय अंकिदयम्मि आउस्स उक्कस्सो ॥४८३॥

११३३३३३३३३३३३३३३ । $\frac{1}{3}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन, एक और एक, इतने पल्य और एक कला (११३३३३३३३३३३३३३३$\frac{1}{3}$ पल्य) प्रमाण अङ्क इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८३॥

चोद्दस - ठाणे सुण्णं, दुगमेक्कंक-क्कमेण पल्लाणि ।
उक्कस्साऊ पडिहिंदयम्मि सेढी - पइण्णएसुं पि ॥४८४॥

१२०००००००००००००० ।

---

१. द. चोद्दस । २. द. ब. ति ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें शून्य दो और एक, इतने (१२००००००००००००००) पल्य प्रमाण स्फटिक इन्द्रक एवं उसके श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानोंमें उत्कृष्ट आयु होती है ॥४८४॥

चोद्दस-ठाणे छक्का, दुगमेक्कंक - क्कमेण पल्लाणि ।
दोण्णि कलाओ तवणिय - इंदए आउ उक्कस्सा ॥४८५॥

१२६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें छह, दो और एक, इतने पल्य एवं दो कला (१२६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ पल्य) प्रमाण तपनीय इन्द्रक एवं उसके श्रेणीबद्धादिकमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८५॥

पण्णरस - ट्ठाणेसुं तियाणि एक्कं कमेण पल्लाणि ।
एक्का कला य मेघेंदयम्मि आउस्स उक्कस्सा ॥४८६॥

१३३३३३३३३३३३३३३३ । $\frac{1}{3}$ ।

अर्थ—क्रमशः पन्द्रह स्थानोंमें तीन और एक इतने पल्य एवं कला (१३३३३३३३३३३३३३३३$\frac{1}{3}$ पल्य) प्रमाण मेघ इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८६॥

चोद्दस-ठाणे सुण्णं, चउ-एक्कंक-क्कमेण पल्लाणि ।
उक्कस्साऊ अब्भिदयम्मि सेढी - पइण्णएसुं च ॥४८७॥

१४०००००००००००००० ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें शून्य, चार और एक, इतने (१४००००००००००००००) पल्य प्रमाण अभ्रइन्द्रक तथा श्रेणीबद्ध तथा प्रकीर्णक विमानोंमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८७॥

चोद्दस-ठाणे छक्का, चउ-एक्कक-क्कमेण पल्लाणि ।
दोण्णि कला हारिद्दयम्मि आउस्स उक्कस्सो ॥४८८॥

१४६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{2}{3}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें छह, चार और एक, इतने पल्य और दो कला (१४६६६६६६६६६६६६६६$\frac{2}{3}$ पल्य) प्रमाण हारिद्र इन्द्रकमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८८॥

चोद्दस-ठाणेसु तिया, पंचेक्कंक - क्कमेण पल्लाणि ।
एक्का कला य आऊ, उक्कस्से पउम - पडलम्मि ॥४८९॥

१५३३३३३३३३३३३३३३ । १/३ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन, पाँच और एक, इतने पल्य तथा एक कला (१५३३३३३३३३३३३३३३ पल्य) प्रमाण पद्म पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४८९॥

चोद्दस-ठाणे सुण्णं, छक्केक्कंक - क्कमेण पल्लाणि ।
उक्कस्साऊ लोहिद - सेढी - बद्ध - प्पइण्णएसुं पि ॥४९०॥

१६०००००००००००००० ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानों पर शून्य, छह और एक, इतने (१६०००००००००००००० पल्य) प्रमाण लोहित इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकोंमें उत्कृष्ट आयु है ॥४९०॥

पण्णरस - ट्ठाणेसुं, छक्कं एक्कं कमेण पल्लाइं ।
दोण्णि कलाओ आऊ, उक्कस्से वज्ज - पडलम्मि ॥४९१॥

१६६६६६६६६६६६६६६६ । २/३ ।

अर्थ—अंक क्रमसे पन्द्रह स्थानोमें छह और एक, इतने पल्य एवं दो कला (१६६६६६६६६६६६६६६६ २/३ पल्य) प्रमाण वज्र पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४९१॥

चोद्दस-ठाणेसु तिया, सत्तेक्कंक - क्कमेण पल्लाणि ।
एक्क - कला उक्कस्सो, णंदावट्टम्मि आउस्सं ॥४९२॥

१७३३३३३३३३३३३३३३ । १/३ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन, सात और एक, इतने पल्य एवं एक कला (१७३३३३३३३३३३३३३३ १/३ पल्य) प्रमाण नन्द्यावर्त पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४९२॥

चोद्दस - ठाणे सुण्णं, अट्ठेक्कंक - क्कमेण पल्लाणि ।
उक्कस्साउ - पमाणं, पडलम्मि पहंकरे होदि[1] ॥४९३॥

१८०००००००००००००० ।

---

1. ब. होहि ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें शून्य, आठ और एक, इतने (१८००००००००००००००) पल्य प्रमाण प्रभङ्कर पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४९३॥

चोद्दस-ठाणे-छक्का, अट्ठेक्क कमेण होंति पल्लाणि ।
दोण्णि कलाओ [1]पिट्ठक - पडले आउस्स उक्कस्सो ॥४९४॥

१८६६६६६६६६६६६६६६ । $\frac{२}{३}$ ।

अर्थ—क्रमसे चौदह स्थानोंमें छह, आठ और एक, इतने पल्य एवं दो कला (१८६६६६६६६६६६६६६६$\frac{२}{३}$ पल्य) प्रमाण पृष्ठक पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४९४॥

चोद्दस-ठाणेसु तिया, णवेक्क-अंक-क्कमेण पल्लाणि ।
एक्क - कला गज-णामे, पडले आउस्स उक्कस्सो ॥४९५॥

१९३३३३३३३३३३३३३३ । $\frac{१}{३}$ ।

अर्थ—अंक क्रमसे चौदह स्थानोंमें तीन, नौ और एक, इतने पल्य एवं एक कला (१९३३३३३३३३३३३३३३$\frac{१}{३}$ पल्य) प्रमाण गज नामक पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४९५॥

दोण्णि पयोणिहि-उवमा, उक्कस्साऊ हुवेदि पडलम्मि ।
चरिम - ट्ठाण - णिविट्ठे, सोहम्मीसाण - जुगलम्मि ॥४९६॥

सा २ ।

अर्थ—सौधर्मैशान युगलके भीतर अन्तिम स्थानमें निविष्ट पटलमें दो सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥४९६॥

उक्कस्साउ-पमाणं, सणक्कुमारस्स पढम-पडलम्मि ।
दोण्णि पयोणिहि-उवमा, पंच-कला सत्त-पविहत्ता ॥४९७॥

सा २ । $\frac{५}{७}$ ।

अर्थ—सानत्कुमारके प्रथम पटलमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण दो सागरोपम और सातसे भाजित पाँच कला (२$\frac{५}{७}$ सागर) है ॥४९७॥

तिण्णि महण्णव-उवमा, तिण्णि कला इंदयम्मि वणमाले ।
चत्तारि उवहि - उवमा, एक्क-कला णाग - पडलम्मि ॥४९८॥

सा ३ । क $\frac{३}{७}$ । सा ४ । $\frac{१}{७}$ ।

---

१. ब. पिट्ठब ।

अर्थ—तीन सागरोपम एवं तीन कला (३$\frac{3}{5}$ सा०) प्रमाण वज्रमाल इन्द्रकमें तथा चार सागरोपम और एक कला (४$\frac{1}{5}$ सा०) प्रमाण नाग-पटलमें उत्कृष्ट आयु है ॥४९८॥

चत्तारि सिंधु-उवमा, छच्च कला गरुड-णाम-पडलम्मि ।
पंचण्णव - उवमाणा, चत्तारि कलाओ लंगलए[1] ॥४९९॥

सा ४ । $\frac{6}{7}$ । सा ५ । $\frac{4}{7}$ ।

अर्थ—गरुड़ नामक पटलमें चार सागरोपम और छह कला (४$\frac{6}{7}$ सा०) तथा लाङ्गल पटलमें पाँच सागरोपम एवं चार कला (५$\frac{4}{7}$ सा०) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥४९९॥

छट्ठोवहि-उवमाणा, दोण्णि कला इंदयम्मि बलभद्दे ।
सत्त-सरिरमण-उवमा, माहिंद-जुगस्स चरिम-पडलम्मि ॥५००॥

सा ६ । $\frac{2}{7}$ । सा ७ ।

अर्थ—बलभद्र इन्द्रकमें छह सागरोपम और दो कला (६$\frac{2}{7}$ सा०) तथा माहेन्द्र युगलके अन्तिम (चक्र नामक) पटलमें सात (७) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५००॥

सत्तंबुरासि-उवमा, तिण्णि कलाओ चउक्क-पविहत्ता ।
उक्कस्साउ - पमाणं, पढमं पडलम्मि बम्ह-कप्पस्स ॥५०१॥

सा ७ । $\frac{3}{4}$ ।

अर्थ—ब्रह्म कल्पके प्रथम पटलमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण सात सागरोपम और चार विभक्त तीन कला (७$\frac{3}{4}$ सा०) है ॥५०१॥

अट्ठण्णव-उवमाणा, दु-कला सुरसमिदि-णाम-पडलम्मि ।
णव-रयणायर-उवमा, एक्क - कला बम्ह - पडलम्हि ॥५०२॥

सा ८ । $\frac{2}{4}$ । सा ९ । $\frac{1}{4}$ ।

अर्थ—सुरसमिति नामक पटलमें आठ सागरोपम और दो कला (८$\frac{2}{4}$ सा०) तथा ब्रह्म पटलमें नौ सागरोपम और एक कला (९$\frac{1}{4}$ सा०) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०२॥

बम्हुत्तराभिधाणे, चरिमे पडलम्मि बम्ह - कप्पस्स ।
उक्कस्साउ-पमाणं, दस सरि - रमणाण उवमाणा ॥५०३॥

१० ।

---

१ द. ब. क. ज. ठ. लिंगलए ।

अर्थ—ब्रह्म कल्पके ब्रह्मोत्तर नामक अन्तिम पटलमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण (१०) सागरोपम है ।।५०३।।

बम्हहिदयम्मि[1] पडले, बारस-कल्लोलिणीस-उवमाणं ।
चोद्दस-णीरहि-उवमा, [2]उक्कस्साऊ हवंति लंतवए ।।५०४।।

१२ । १४ ।

अर्थ—ब्रह्महृदय पटलमें बारह सागरोपम और लान्तव पटलमें चौदह सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।।५०४।।

महसुक्क-णाम-पडले, सोलस-सरियाहिणाह-उवमाणा ।
अट्ठरस - सहस्सारे, तरंगिणीरमण - उवमाणा ।।५०५।।

१६ । १८ ।

अर्थ—महाशुक्र नामक पटलमें सोलह सागरोपम और सहस्रार पटलमें अठारह सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।।५०५।।

आणद-णामे पडले, अट्ठारस सलिलरासि-उवमाणा ।
उक्कस्साउ - पमाणं, चत्तारि कलाओ छक्क-हिदा ।।५०६।।

१८ । $\frac{४}{६}$ ।

अर्थ—आनत नामक पटलमें अठारह सागरोपम और छहसे भाजित चार कला (१८$\frac{४}{६}$ सा०) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।।५०६।।

एक्कोणवीस वारिहि-उवमा दु-कलाओ पाणदे पडले ।
पुप्फगए वीसं चिय, तरंगिणीकंत - उवमाणा ।।५०७।।

सा १९ । क २ । सा २० ।

अर्थ—प्राणत पटलमें उन्नीस सागरोपम और दो कला (१९$\frac{२}{६}$ सा०) तथा पुष्पक पटलमें बीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।।५०७।।

वीसंबुरासि-उवमा, चत्तारि कलाओ सादगे पडले ।
इगिवीस जलहि-उवमा, आरण-णामम्मि दोण्णि कला ।।५०८।।

सा २० । क ४ । सा २१ । $\frac{२}{६}$ ।

---

१. द. ब. बम्हिदयम्हि । २. द. ब. क. ज. ठ. कप्पस्साऊ ।

अर्थ—आनत पटलमें बीस सागरोपम और चार कला (२०$\frac{4}{?}$ सा०) तथा आरण नामक पटलमें इक्कीस सागरोपम और दो कला (२१$\frac{2}{?}$ सा०) प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०८॥

अच्चुद-णामे पडले, बावीस तरंगिणीरमण-उवमाणा[1] ।
तेवीस सुदंसणए, अमोघ - पडलम्मि चउवीसं ॥५०९॥

२२ । २३ । २४ ।

अर्थ—अच्युत नामक पटलमें बाईस सागरोपम, सुदर्शन पटलमें तेईस सागरोपम और अमोघ पटलमें चौबीस (२४) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५०९॥

पणुवीस सुप्पबुद्धे[2], जसहर-पडलम्मि होंति छव्वीसं ।
सत्तावीस सुभद्दे, सुविसाले अट्ठवीसं च ॥५१०॥

२५ । २६ । २७ । २८ ।

अर्थ—सुप्रबुद्ध पटलमें पच्चीस (२५), यशोधर पटलमें छब्बीस (२६), सुभद्र पटलमें सत्ताईस (२७) और सुविशाल पटलमें अट्ठाईस (२८) सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५१०॥

सुमणस-णामे उणतीस तीस[3] सोमणस-णाम-पडलम्मि ।
एक्कत्तीसं पीदिंकरम्मि बत्तीस आइच्चे ॥५११॥

२९ । ३० । ३१ । ३२ ।

अर्थ—सुमनस नामक पटलमें उनतीस (२९), सौमनस नामक पटलमें तीस (३०), प्रीतिङ्कर पटलमें इकतीस (३१) और आदित्य पटलमें बत्तीस सागरोपम प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है ॥५११॥

सव्वट्ठ-सिद्धि-णामे, तेत्तीसं वाहिणीस - उवमाणा ।
उक्कस्स जहण्णम्मि य, णिद्दिट्ठं वीयरागेहिं ॥५१२॥

३३ ।

अर्थ—वीतराग भगवान्ने सर्वार्थसिद्धि नामक पटलमें उत्कृष्ट एवं जघन्य आयुका प्रमाण तेंतीस (३३) सागरोपम कहा है ॥५१२॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. उवमा । २. द. ब. क. ज. ठ. सुप्पबुद्धी । ३. द. ब. सोम ।

देवोंकी जघन्य-आयु—

उडु-पहुदि-इंदयाणं, हेट्ठिम-उक्कस्स-आउ-परिमाणं ।
एक्क - समएण अहियं, उवरिम - पडले जहण्णाऊ ।।५१३।।

अर्थ—ऋतु आदि इन्द्रकोंमें अधस्तन इन्द्रक सम्बन्धी उत्कृष्ट आयुके प्रमाणमें एक समय मिलाने पर उपरिम पटलमें जघन्य आयुका प्रमाण होता है ।।५१३।।

तेत्तीस उवहि-उवमा, पल्लासंखेज्ज-भाग-परिहीणा ।
सव्वट्ठ - सिद्धि - णामे, मण्णंते केइ अवराऊ ।।५१४।।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—कोई आचार्य सर्वार्थसिद्धि नामक पटलमें पल्यके असंख्यातवें भागसे रहित तेंतीस सागरोपम प्रमाण जघन्य आयु मानते हैं ।।५१४।।

पाठान्तर ।

सोहम्म-कप्प-पढमिंदयम्मि पलिदोवमं हुवे एक्कं ।
सव्व - णिगिट्ठ - सुराणं, जहण्ण-आउस्स परिमाणं ।।५१५।।

प १ ।

अर्थ—सौधर्म कल्पके प्रथम इन्द्रकमें सब निकृष्ट देवोंकी जघन्य आयुका प्रमाण एक पल्योपम है ।।५१५।।

इन्द्रोंके परिवार देवों की आयु—

अड्ढाइज्जं पल्ला, आऊ सोमे जमे य पत्तेक्कं ।
तिण्णि कुबेरे वरुणे, किंचूणा सक्क - दिग्पाले ।।५१६।।

$\frac{5}{2}$ । $\frac{5}{2}$ । ३ । ३ ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके दिक्पालोंमें सोम और यमकी अढ़ाई (२$\frac{1}{2}$) पल्योपम, कुबेरकी तीन (३) पल्योपम और वरुणकी तीन (३) पल्योपमसे किञ्चित् न्यून आयु होती है ।।५१६।।

सक्कादो सेसेसुं, दक्खिण - इंदेसु लोयपालाणं ।
एक्केक्क-पल्ल-अहिओ, आऊ सोमादियाण पत्तेक्कं ।।५१७।।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके अतिरिक्त शेष दक्षिण इन्द्रोंके सोमादिक लोकपालोंमेंसे प्रत्येककी आयु एक-एक पल्य अधिक है ।।५१७।।

ईसाणिद - दिगिंदे, आऊ सोमे[1] जमे ति - पल्लाइं ।
किंचूणाणि कुबेरे, वरुणम्मि य साहिरेयाणि ॥५१८॥

३ । ३ । ३ । ३ ।

अर्थ—ईशान इन्द्रके लोकपालोंमें सोम और यमकी आयु तीन तीन पल्य, कुबेरकी तीन पल्यसे कुछ कम तथा वरुणकी कुछ अधिक तीन पल्य है ॥५१८॥

ईसाणादो सेसय - उत्तर - इंदेसु लोयपालाणं ।
एक्केक्क-पल्ल-अहिओ, आऊ सोमादियाण पत्तेक्कं ॥५१९॥

अर्थ—ईशानेन्द्रके अतिरिक्त शेष उत्तर इन्द्रोंके सोम-आदिक लोकपालोंमें प्रत्येककी आयु एक-एक पल्य अधिक है ॥५१९॥

सव्वाण दिगिंदाणं, सामाणिय-सुर-वराण पत्तेक्कं ।
णिय-णिय-दिगिंदयाणं, आउ - पमाणाणि आऊणि ॥५२०॥

अर्थ—सब लोकपालोंके सामानिक देवोंमें प्रत्येककी आयु अपने-अपने लोकपालोंकी आयुके प्रमाण होती है ॥५२०॥

पढमे बिदिए जुगले, बम्हादिसु चउसु आणद-जुगम्मि ।
आरण - जुगले कमसो, सव्विदेसुं सरीररक्खाणं ॥५२१॥

पलिदोवमाणि आऊ, अड्ढाइज्जं हुवेदि पढमम्मि ।
एक्केक्क-पल्ल-वड्ढी, पत्तेक्कं उवरि - उवरिम्मि ॥५२२॥

$\frac{५}{२}$ । $\frac{७}{२}$ । $\frac{९}{२}$ । $\frac{११}{२}$ । $\frac{१३}{२}$ । $\frac{१५}{२}$ । $\frac{१७}{२}$ । $\frac{१९}{२}$ ।

अर्थ—प्रथम युगल, द्वितीय युगल, ब्रह्मादिक चार युगल, आनत युगल और आरण युगल इनमेंसे प्रथममें शरीर रक्षकोंकी आयु अढ़ाई पल्योपम और ऊपर-ऊपर सब इन्द्रोंके शरीर रक्षकोंकी आयु क्रमशः एक-एक पल्य अधिक है । अर्थात् सौधर्म युगलमें २$\frac{१}{२}$ पल्य, सानत्कुमार युगलमें ३$\frac{१}{२}$ पल्य, ब्रह्म युगलमें ४$\frac{१}{२}$ पल्य, लान्तव युगलमें ५$\frac{१}{२}$ पल्य, शुक्र युगलमें ६$\frac{१}{२}$ पल्य, शतार युगलमें ७$\frac{१}{२}$ पल्य, आनत युगलमें ८$\frac{१}{२}$ पल्य और आरण युगलमें ९$\frac{१}{२}$ पल्य प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ॥५२१-५२२॥

---

१. द. ब. क. सोमज्जमे ।

बाहिर-मज्झब्भंतर-परिसाए होंति तिण्णि चत्तारि ।
पंच पलिदोवमाणि, उवरिं एक्केक्क-पल्ल-वड्ढीए ।।५२३।।

३, ४, ५ । ४, ५, ६, । ५, ६, ७, । ६, ७, ८ । ७, ८, ९ । ८, ९, १० ।
९, १०, ११ । १०, ११, १२[1] ।

अर्थ—प्रथम युगलमें बाह्य, मध्यम और अभ्यन्तर पारिषद देवोंकी आयु क्रमशः तीन, चार और पाँच पल्य है। इसके ऊपर एक-एक पल्य अधिक है ।।५२३।।

विशेषार्थ—

क्र०	कल्प-नाम	बाह्य पारि० की आयु	मध्यम पा० की आयु	अभ्य० पा० की आयु	क्र०	कल्प-नाम	बा० पारि० की आयु	मध्यम पा० की आयु	अभ्य० पा० की आयु
१	सौ० युगल	३ पल्य	४ पल्य	५ पल्य	५	महाशुक्र	७ पल्य	८ पल्य	९ पल्य
२	सा० ,,	४ ,,	५ ,,	६ ,,	६	सहस्रार	८ ,,	९ ,,	१० ,,
३	ब्रह्म	५ ,,	६ ,,	७ ,,	७	आ० यु०	९ ,,	१० ,,	११ ,,
४	लान्तव	६ ,,	७ ,,	८ ,,	८	आ० ,,	१० ,,	११ ,,	१२ ,,

पढमम्मि अहिय-पल्लं, आरोहक-वाहणाण तट्ठाणे ।
आऊ हवेदि तत्तो, वड्ढी एक्केक्क - पल्लस्स ।।५२४।।

१ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ ।[2]

अर्थ—उन आठ स्थानोंमेंसे प्रथम स्थानमें आरोहक वाहनोंकी आयु एक पल्यसे अधिक और इसके आगे एक-एक पल्यकी वृद्धि हुई है। अर्थात् आरोहक वाहनोंकी आयु सौ० यु० में १ पल्य, सान० यु० में २ पल्य, ब्र० यु० में ३ पल्य, लां० यु० में ४ पल्य, शु० यु० में ५ पल्य, शतार यु० में ६ पल्य, आनत यु० में ७ पल्य और आरण यु० में ८ पल्य है ।।५२४।।

---

१. द. ब. ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ ।
२. द. ब. ८ । ९ ।

एक्केक्क पल्ल वाहण - सामीणं होंति तेसु ठाणेसुं ।
पढमाउ उत्तरुत्तर - वड्ढीए एक्क - पल्लस्स ।।५२५।।

१ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ ।

अर्थ—उन स्थानोंमेंसे प्रथम स्थानमें वाहन-स्वामियोंकी आयु एक-एक पल्य और इससे आगे उत्तरोत्तर एक-एक पल्यकी वृद्धि है। अर्थात् सौ० १, सन० २, ब्र० ३, लां० ४, शु० ५, श० ६, आ० ७ और आरण यु० में ८ पल्य की आयु है ।।५२५।।

ताणं पइण्णएसुं, अभियोग - सुरेसु किब्बिसेसुं च ।
आउ - पमाण - णिरूवण - उवएसो संपहि पणट्ठो ।।५२६।।

अर्थ—उनके प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषदेवोंमें आयु प्रमाणके निरूपणका उपदेश इस समय नष्ट हो गया है ।।५२६।।

जे सोलस कप्पाइं, केई इच्छंति ताण उवएसे[1] ।
जुगलं पडि णादव्वं, पुव्वोदिद - आउ - परिमाणं ।।५२७।।

अर्थ—जो कोई आचार्य सोलह कल्पोंकी मान्यता रखते हैं उनके उपदेशानुसार पूर्वोक्त आयुका प्रमाण एक-एक युगलके प्रति जानना चाहिए ।।५२७।।

इन्द्र-देवियोंकी आयुका विवेचन—

पलिदोवमाणि पण णव, तेरस सत्तरस तह य चोत्तीसं ।
अट्ठत्तालं आऊ, देवीणं दक्खिणिंदेसुं ।।५२८।

५ । ९ । १३ । १७ । ३४ । ४८ ।

अर्थ—दक्षिण इन्द्रोंमें देवियोंकी आयु क्रमशः (सौ०) पांच, (सानत्कुमार) नौ, (ब्रह्म) तेरह, (लान्तव) १७, (आनत) ३४, और (आरण) अड़तालीस पल्य प्रमाण है ।।५२८।।

सत्तेयारस-तेवीस - सत्तवीसेक्क - ताल पणवण्णा ।
पल्ला कमेण आऊ, देवीणं उत्तरिंदेसुं ।।५२९।।

७ । ११ । २३ । २७ । ४१ । ५५ ।

अर्थ—उत्तर इन्द्रोंमें देवियोंकी आयु क्रमशः (ईशान) सात, (माहेन्द्र) ग्यारह, (महाशुक्र) तेवीस, (सहस्रार) सत्ताईस, (प्राणत) इकतालीस और (अच्युत) पचपन पल्य प्रमाण है ।।५२९।।

---

१. द. ब. उवएसो ।

जे सोलस कप्पाणि, केई इच्छंति ताण उवएसे ।
अट्ठसु आउ - पमाणं, देवीणं दक्खिणिंदेसु ।।५३०।।
पलिदोवमाणि पण णव, तेरस सत्तरस एक्कवीसं च ।
पणवीसं चउतीसं, अट्ठताणं कमेणेव ।।५३१।।

५ । ९ । १३ । १७ । २१ । २५ । ३४ । ४८ ।

अर्थ—जो कोई आचार्य सोलह कल्पोंकी मान्यता रखते हैं उनके उपदेशानुसार आठ दक्षिण इन्द्रोंमें देवियोंकी आयुका प्रमाण क्रमशः (सौ०) पाँच, (सा०) नौ, (ब्रह्म) तेरह, (लान्तव) सत्तरह, (शुक्र) इक्कीस, (शतार) पच्चीस, (आनत) चौंतीस और (आरण) में अड़तालीस पल्य है ।। ५३०-५३१ ।।

पल्ला सत्तेक्कारस, पण्णरसेक्कोणवीस-तेवीसं ।
सगवीसमेक्कतालं, पणवण्णं उत्तरिंद-देवीणं ।। ५३२ ।।

७ । ११ । १५ । १९ । २३ । २७ । ४१ । ५५ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—उक्त आचार्योंके उपदेशानुसार उत्तर इन्द्रोंकी देवियोंकी आयु क्रमशः सात, ग्यारह, पन्द्रह, उन्नीस, तेईस, सत्ताईस, इकतालीस और पचपन पल्य प्रमाण है ।। ५३२ ।।

पाठान्तर ।

कप्पं पडि पंचादिसु, पल्ला देवीण वड्ढदे आऊ ।
दो-दो-वड्ढी तत्तो, लोयायणिये समुद्दिट्ठं ।। ५३३ ।।

५ । ७ । ९ । ११ । १३ । १५ । १७ । १९ । २१ । २३ । २५ । २७ । २९ । ३१ । ३३ । ३५ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—देवियोंकी आयु प्रथम कल्पमें पाँच पल्य प्रमाण है । इसके आगे प्रत्येक कल्पमें दो-दो पल्यकी वृद्धि होती गयी है । ऐसा 'लोगाइणी'में कहा है ।। ५३३ ।।

विशेषार्थ—सौ० कल्पमें ५ पल्य, ई० ७ पल्य, सान० ९, मा० ११, ब्रह्म० १३, ब्रह्मोत्तरमें १५, लां० १७, का० १९, शुक्रमें २१, महाशुक्रमें २३, श० २५, सह० २७, आ० २९, प्रा० ३१, आ० ३३ और अच्युतकल्पमें ३५ पल्य आयु है ।

पाठान्तर ।

पलिदोवमाणि पंचय-सत्तारस-पंचवीस-पणतीसं ।
चउसु जुगलेसु आऊ, णादव्वा इंद-देवीणं ॥५३४॥

आरण-दुग-परियंतं, वड्ढंते पंच पंच-पल्लाइं ।
मूलायाराइरिया[1], एवं णिउणं[2] णिरूवेंति ॥५३५॥

५ । १७[3] । २५ । ३५ । ४० । ४५ । ५० । ५५ ।

पाठान्तरम्

अर्थ—चार युगलोंमें इन्द्र-देवियोंकी आयु क्रमशः पाँच, सत्तरह, पच्चीस और पैंतीस पल्य प्रमाण जाननी चाहिए । इसके आगे आरण-युगल पर्यन्त पाँच-पाँच पल्यकी वृद्धि होती गयी है, ऐसा मूलाचार (पर्याप्त्यधिकार ८०)में आचार्य स्पष्टतासे निरूपण करते हैं ॥ ५३४-५३५ ॥

पाठान्तर

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये].

---

१. द. ब. क. ज. ठ. मूलायारोइरिया । २. द. ब. णिउणत्ता, क. ज. ठ. णिउणा । ३. द. ब. ७ ।

इन्द्रों की देवियों की आयु (पल्योंमें)					
क्रमांक	कल्प-नाम	१२ कल्पकी मान्यता गा० ५२८-५२६	१६ कल्पकी मान्यता गा० ५३०-५३१-५३२	लोगाइणी की मान्यता गाथा-५३३	मूलाचार की मान्यता गा० ५३४-५३५
१	सौधर्म	५ पल्य	५ पल्य	५ पल्य	५ पल्य
२	ईशान	७ „	७ „	७ „	५ „
३	सनत्कुमार	९ „	९ „	९ „	१७ „
४	माहेन्द्र	११ „	११ „	११ „	१७ „
५	ब्रह्म	१३ „	१३ „	१३ „	२५ „
६	ब्रह्मोत्तर	×	१५ „	१५ „	२५ „
७	लान्तव	१७ पल्य	१७ „	१७ „	३५ „
८	कापिष्ठ	×	१९ „	१९ „	३५ „
९	शुक्र	×	२१ „	२१ „	४० „
१०	महाशुक्र	२३ „	२३ „	२३ „	४० „
११	शतार	×	२५ „	२५ „	४५ „
१२	सहस्रार	२७ „	२७ „	२७ „	४५ „
१३	आनत	३४ „	३४ „	२९ „	५० „
१४	प्राणत	४१ „	४१ „	३१ „	५० „
१५	आरण	४८ „	४८ „	३३ „	५५ „
१६	अच्युत	५५ „	५५ „	३५ „	५५ „

इन्द्रके परिवार देवोंकी देवियोंकी आयु—

पडिइंदाणं सामाणियाण तेत्तीस सुर-वराणं पि ।
देवीण होदि आऊ, णिय-णिय-देवीण आउ-समो ॥५३६॥

अर्थ—प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवोंकी देवियोंकी आयु अपने-अपने इन्द्रोंकी देवियोंकी आयुके सदृश होती है ॥ ५३६ ॥

सक्क-दिगिंदे सोमे, जमे च देवीण आउ-परिमाणं ।
चउ-भजिद-पंच-पल्ला, किंचूण-दिवड्ढ वरुणम्मि ॥५३७॥

५/४ । ३/२ ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके दिक्पालोंमें सोम एवं यमकी देवियोंकी आयुका प्रमाण चारसे भाजित पाँच (५/४) पल्य तथा वरुणकी देवियोंकी आयुका प्रमाण कुछ कम डेढ़ (३/२) पल्य है ॥ ५३७ ॥

पलिदोवमं दिवड्ढं, होदि कुबेरम्मि सक्क-दिग्पाले[1] ।
तेत्तियमेत्ता आऊ, दिगिंद-सामंत-देवीणं ॥५३८॥

अर्थ—सौधर्म इन्द्रके कुबेर दिक्पालकी देवियोंकी आयु डेढ़ पल्य तथा लोकपालोंके सामन्तोंकी देवियोंकी आयु भी इतनी ही होती है ॥ ५३८ ॥

पडिइंदत्तिदयस्स य, दिगिंद-देवीण आउ-परिमाणं ।
एक्केक्क-पल्ल-वड्ढी सेसेसुं दक्खिणिंदेसु ॥५३९॥

अर्थ—शेष दक्षिण इन्द्रोंमें प्रतीन्द्र-आदिक तीन और लोकपालोंकी देवियोंकी आयुका प्रमाण एक-एक पल्य अधिक है ॥ ५३९ ॥

ईसाण-दिगिंदाणं, जम - सोम-धणेस-देवीसुं[1] ।
पुह - पुह दिवड्ढ-पल्लं, आऊ वरुणस्स अहियरित्तं ॥५४०॥

३/२ । ३/२ । ३/२ । ३/२ ।

अर्थ—ईशान इन्द्रके लोकपालों में यम, सोम और कुबेरकी देवियोंकी आयु पृथक्-पृथक् डेढ़-डेढ़ पल्य तथा वरुणकी देवियोंकी आयु इससे अधिक है । अर्थात् यमकी देवियोंकी १½ पल्य, सोमकी देवियोंकी १½ पल्य, कुबेरकी देवियों की १½ पल्य और वरुणकी देवियोंकी आयु कुछ अधिक १½ पल्य है ॥

---

1. द. ब. क. ज. ठ. जक्खीसु ।

एदेसु दिगिंदेसुं, आऊ सामंत - अमर - देवीणं ।
णिय-णिय-दिगिंद-देवी-आउ-पमाणस्स सारिच्छं ।।५४१।।

अर्थ—इन दिक्पालोंमें सामन्तदेवोंकी देवियोंकी आयु अपने-अपने दिक्पालोंकी देवियोंके आयु-प्रमाणके सदृश है ।। ५४१ ।।

पडिइंदत्तिदयस्स य, दिगिंद-देवीण आऊ-परिमाणे ।
एक्केक्क - पल्ल - वड्ढी, सेसेसुं [1]उत्तरिंदेसुं ।।५४२।।

अर्थ—शेष उत्तर इन्द्रोंमें प्रतीन्द्रादिक तीन और लोकपाल इनकी देवियोंकी आयुका प्रमाण एक-एक पल्य अधिक है ।। ५४२ ।।

तणुरक्खाण सुराणं, ति-प्परिस-प्पहुदि-आण देवीणं ।
आउ-पमाण-णिरूवण-उवएसो संपहि पणट्ठो ।।५४३।।

अर्थ—तनुरक्षक देव और तीनों पारिषद आदि देवोंकी देवियोंके आयु प्रमाणके निरूपणका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ।। ५४३ ।।

बद्धाउं पडि भणिदं, उक्कस्सं मज्झिमं जहण्णाणि ।
घादाउवमासेज्जं, अण्ण - सरूवं परूवेमो ।।५४४।।

अर्थ—यह उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य आयुका प्रमाण बद्धायुष्कके प्रति कहा गया है । घातायुष्कका आश्रय करके अन्य स्वरूप कहते हैं ।। ५४४ ।।

प्रथम युगलके पटलोंमें आयुका प्रमाण—

एत्थ उडुम्मि पढम-पत्थले जहण्णमाऊ दिवड्ढ-पलिदोवमं उक्कस्समद्ध-सागरोवमं[2] ।

अर्थ—यहाँ ऋतु नामक प्रथम पटलमें जघन्य आयु डेढ़ पल्योपम और उत्कृष्ट आयु अर्ध-सागरोपम है ।।

एत्तो तीसमिंदयाणं वड्ढी-उड्ढी उच्चदे । तत्थ अद्ध-सागरोवमं मुहं होदि । भूमी अड्ढाइज्ज-सागरोवमाणि । भूमीदो मुहमवणिय[3] उच्छेहेण भागे हिदे तत्थ एक्क[4]-सागरोवमस्स-पण्णारस-भागोवरिम[5]-वड्ढी होदि । ११ ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. उत्तरदिगिंदेसुं । २. द. ब. सवरोवमं । ३. द. ब. मुहुववणिय । ४. द. ब. क. ज. ठ. बद्ध । ५. ब. सागरोवमट्ठि ।

अर्थ—अब यहाँ तीस इन्द्रकोंमें स्थित देवोंकी आयुमें वृद्धिहानिका (चय) कहते हैं—

यहाँ अर्ध (१/२) सागरोपम मुख और अढ़ाई (२१/२) सागरोपम (ऋतु पटल की जघन्य और उत्कृष्टायु) भूमि है। भूमिमेंसे मुखका प्रमाण घटाकर शेषमें उत्सेध (एक कम गच्छ) का भाग देने पर एक सागरोपमका पन्द्रहवाँ भाग (१/१५ सागर) उपरिम वृद्धिका प्रमाण आता है।

विशेषार्थ—प्रथम युगल में समस्त पटल (गच्छ) ३१ हैं और उपर्युक्त जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुका प्रमाण घातायुष्ककी अपेक्षा है, अतः यहाँ वृद्धि-हानि का प्रमाण—

१/१५ सागर = (५/२ सा०—१/२ सा०) ÷ (३१—१) है।

एदमिच्छिद-पत्थड[1]-संखाए गुणिय मुहे पक्खित्ते विमलादीण तीसण्हं पत्थ-लाणमाउ-प्रमाणि होंति। तेसिमेसा संदिट्ठी—

१७/३० । १९/३० । २१/३० । २३/३० । २५/३० । २७/३० । २९/३० । ३१/३० । ३३/३० । ३५/३० । ३७/३० । ३९/३० । ४१/३० । ४३/३० । ४५/३० । ४७/३० ।
४९/३० । ५१/३० । ५३/३० । ५५/३० । ५७/३० । ५९/३० । ६१/३० । ६३/३० । ६५/३० ।
। ६७/३० । ६९/३० । ७१/३० । ७३/३० । सा ५/२ ।

अर्थ—इसे (१/१५ सा० को एक कम) इच्छित पटलको संख्यासे गुणा कर मुखमें मिला देनेपर विमलादिक तीस पटलोंमें आयुका प्रमाण इसप्रकार निकलता है—

विमल १७/३० सा० = [१/१५ सा० × (२—१)] + १/२ सागर

चन्द्र १९/३० सा० = [१/१५ सा० × (३—१)] + १/२ सागर

वल्गु २१/३० सा० = [१/१५ सा० × (४ — १)] + १/२ सा० इसीप्रकार वीर पटलमें २३/३० सा०, अरुण २५/३०, नन्दन २७/३०, नलिन २९/३०, कंचन ३१/३०, रुधिर ३३/३०, चन्द्र ३५/३०, मरुत् ३७/३०, ऋद्धीश ३९/३०, वैडूर्य ४१/३०, रुचक ४३/३०, रुचिर ४५/३०, अंक ४७/३०, स्फटिक ४९/३०, तपनीय ५१/३०, मेघ ५३/३०, अभ्र ५५/३०, हारिद्र ५७/३०, पद्ममाल ५९/३०, लोहित ६१/३०, वज्र ६३/३०, नन्द्यावर्त ६५/३०, प्रभङ्कर ६७/३०, पिष्टक ६९/३०, गज ७१/३०, मित्र ७३/३० और प्रभ ७५/३० या ५/२ सागरोपम।

सणक्कुमार - माहिंदे सत्त पत्थडा। एदेसिमाउ - पमाण - माणिज्जमाणे मुह-मड्ढाइज्ज-सागरोवमाणि, भूमी [2]साद्ध-सत्त-सागरोवमाणि सत्त उस्सेहो होदि। तेसिं संदिट्ठी—

३ । ३/१४ । ३ । १३/१४ । ४ । ९/१४ । ५ । ५/१४ । ६ । १/१४ । ६ । ११/१४ । ७ । ७/१४ सा।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. पंचद। २. द. ब. क. ज. ठ. साद्ध-सागरोवमाण।

अर्थ—सनत्कुमार-माहेन्द्र युगलमें सात पटल हैं। इनमें आयु-प्रमाणको प्राप्त करनेके लिए मुख अढ़ाई सागरोपम, भूमि साढ़े सात सागरोपम और उत्सेध सात है।

(भूमि $\frac{१५}{२}$ — $\frac{५}{२}$ मुख)÷७

वृद्धि-हानिका प्रमाण $\frac{१०}{१४}$ सा०=(भूमि $\frac{१५}{२}$ — $\frac{५}{२}$ मुख)÷ ७ उत्सेध।

उनकी संदृष्टि इसप्रकार है—

अञ्जन ३$\frac{३}{१४}$ सागर=$\frac{५}{२}$ सा० + $\frac{१०}{१४}$ सा० इसीप्रकार वनमाल ३$\frac{१३}{१४}$ सागर, नाग ४$\frac{९}{१४}$सा०, गरुड़ ५$\frac{५}{१४}$ सा०, लांगल ६$\frac{१}{१४}$ सा० बलभद्र ६$\frac{११}{१४}$ और चक्र पटलमें ७$\frac{१}{२}$ सागर है।

बम्ह-बम्हुत्तर-कप्पे चत्तारि पत्थला। एदेसिमाउ-पमाणिज्जमाणे[1] मुहं अद्ध-सागरोवमाहिय-सत्त-सागरोवमाणि, भूमी अद्ध-सागरोवमाहिय-दस-सागरोवमाणि। एदेसिमाउआण संदिट्ठी।

८ । $\frac{१}{४}$ । ९ । ९ । $\frac{३}{४}$ । १०$\frac{१}{२}$ ।

अर्थ—ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पमें चार पटल हैं। इनका आयु प्रमाण प्राप्त करने हेतु मुख साढ़ेसात (७$\frac{१}{२}$) सागरोपम, भूमि साढ़ेदस (१०$\frac{१}{२}$) सागरोपम (और उत्सेध चार) है। [इनमें वृद्धि-हानिका प्रमाण $\frac{३}{४}$ सा० =(१०$\frac{१}{२}$—७$\frac{१}{२}$)÷४ उत्सेध] इनमें आयु प्रमाणकी संदृष्टि इसप्रकार है—

अरिष्ट की ८$\frac{१}{४}$ सा० =७$\frac{१}{२}$ + $\frac{३}{४}$ सागर। इसीप्रकार सुरसमिति की ९सा०,ब्रह्म ९$\frac{३}{४}$ सा० और ब्रह्मोत्तर की १०$\frac{१}{२}$ सागर है॥

लांतव-कापिट्ठे दोण्णि पत्थला। तेसिमाउआण संदिट्ठी एसा।

१२ । $\frac{१}{२}$ । १४ । $\frac{१}{२}$ ।

अर्थ—लान्तव-कापिष्ठमें दो पटल हैं। उनमें आयु प्रमाणकी संदृष्टि—ब्रह्महृदयमें १२$\frac{१}{२}$ सा० और लान्तवमें १४$\frac{१}{२}$ सा० है॥

महसुक्को[2] त्ति एक्को चेव पत्थलो सुक्क-महसुक्क-कप्पेसु। तम्मि आउस्स अ संदिट्ठी एसा। १६ । $\frac{१}{२}$ ।

अर्थ—शुक्र-महाशुक्र कल्पमें महाशुक्र नामक एक ही पटल है। उस महाशुक्रमें आयुका प्रमाण १६$\frac{१}{२}$ सागर है॥

---

१. ब. ब. माउवमाणाणिमाणे। २. ब. महसक्के।

सहस्सारओ त्ति एक्को पत्थलो सदर-सहस्सार-कप्पेसु । तत्थ आउयस्स संदिट्ठी[1] —१८ । ½ ।

अर्थ—शतार-सहस्रार कल्पमें सहस्रार नामक एक ही पटल है। उसमें आयुका प्रमाण १८½ सा० है ॥

आणद-पाणद-कप्पेसु तिण्णि पत्थला । तेसुमाउस्स पुवुत्त-कमेण आणिद-संदिट्ठी १९ । १९ । ½ । २० ।

अर्थ—आनत-प्राणत कल्पमें तीन पटल हैं। उनमें पूर्वोक्त विधिसे निकाला हुआ आयुका प्रमाण इसप्रकार है—आनतमें १९ सा०, प्राणतमें १९½ सा० और पुष्पकमें २० सा० ।

आरण-अच्चुद-कप्पे तिण्णि पत्थला । एदेसुमाउआणं एस संदिट्ठी । २० । ⅔ । २१ । ⅓ । २२ ।

अर्थ—आरण-अच्युत कल्पमें तीन पटल हैं। इनमें आयु प्रमाणको संदृष्टि यह है—शातक में २०⅔ सा०, आरणमें २१⅓ सा० और अच्युतमें २२ सागर ॥

एत्तो उवरि सुदंसणो अमोघो सुप्पबुद्धो जसोहरो सुभद्दो सुविसालो सुमणसो सोमणसो पीदिकरो त्ति एदे णव पत्थला गेवेज्जेसु । एदेसुमाउआणं वड्ढि-हाणी णत्थि । पादेक्कमेक्क-पत्थलस्स पाहण्णियादो । तेसिमाउ[2]-संदिट्ठी एसा—२३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ ।

अर्थ—उससे ऊपर सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस और प्रीतिङ्कर इसप्रकार ये नौ पटल ग्रैवेयकोंमें हैं। इनमें आयुकी वृद्धि-हानि नहीं है, क्योंकि प्रत्येकमें एक-एक पटलकी प्रधानता है। उनमें आयुकी संदृष्टि यह है—

सुदर्शन २३ सा०, अ० २४ सा०, सु० २५ सा०, यशो० २६ सा०, सुभद्र २७ सा०, सुवि० २८ सा०, सुमनस २९ सा०, सौ० ३० सा० और प्रीतिङ्कर में ३१ सागर हैं।

णवाणुद्दिसेसु आइच्चो णाम एक्को चेव पत्थलो । तम्हि आउयं एत्तियं होदि ३२ ।

---

१. ब. पत्थला, द. क. ज. ठ. पत्थला आउ संदिट्ठी । २. द. ब. क. ज. ठ. तेसिमाउआउ ।

अर्थ—नौ अनुदिशोंमें आदित्य नामक एक ही पटल है। इसमें आयु इतनी अर्थात् ३२ सागर प्रमाण होती है।

पंचाणुत्तरेसु सव्वत्थ-सिद्धि-सण्णिदो एक्को चेव पत्थलो। तत्थ विजय[1]-वइजयंत-जयंत-अपराजिवाणं जहण्णाउवस्स समयाधिय-बत्तीस-सागरोवमुक्कस्सं तेत्तीस-सागरोवमाणि। सव्वत्थ-सिद्धि-विमाणम्मि जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीस-सागरोवमाणि ॥३३॥

एत्तिओ विसेसो सेसं पुव्वं व वत्तव्वं।

एवमाउगं समत्तं ॥ ८ ॥

अर्थ—पाँच अनुत्तरोंमें सर्वार्थसिद्धि नामक एक पटल है। उसमें विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानोंमें जघन्य आयु एक समय अधिक बत्तीस (३२) सागरोपम और उत्कृष्ट आयु तेंतीस (३३) सागरोपम प्रमाण है। सर्वार्थसिद्धि विमानमें जघन्य एवं उत्कृष्ट आयु तेंतीस (३३) सागरोपम प्रमाण है।

इतनी विशेषता है, शेष पूर्ववत् कहना चाहिए।

इसप्रकार आयुका कथन समाप्त हुआ ॥ ८ ॥

इन्द्रों एवं उनके परिवार देव-देवियों के विरह (जन्म-मरणके अन्तर) कालका कथन—

सव्वेसिं इंदाणं, ताण[2] - महादेवि - लोयपालाणं।
पडिइंदाणं विरहो, उक्कस्सं होदि छम्मासं ॥५४५॥

अर्थ—सब इन्द्रों, उनकी महादेवियों, लोकपालों और प्रतीन्द्रोंका उत्कृष्ट विरह-काल छह मास है ॥ ५४५ ॥

तेत्तीसामर-सामाणियाण तणुरक्ख-परिस-तिदयाणं।
चउ-मासं वर-विरहो, वोच्छं[3] आणीय-पहुदीणं ॥५४६॥

सोहम्मे छ-मुहुत्ता, ईसाणे चउ-मुहुत्त वर-विरहं।
णव-दिवसं वु-ति-भागो, सणक्कुमारम्मि कप्पम्मि ॥५४७॥

बारस-दिणं ति-भागा, माहिंदे पंच-ताल बम्हम्मि।
सीदि-दिणं महसुक्के, सद-दिवसं तह सहस्सारे ॥५४८॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. विजयावइजयंतअजयंत। २. द. ब. ताव। ३. द. ब. वाच्छं।

संखेज्ज-सदं वरिसा, वर-विरहं आणदादिय-चउक्के ।
भणिदं कप्प-गदाणं, एक्कारस-भेद-देवाणं ॥५४९॥

अर्थ—त्रायस्त्रिंश देवों, सामानिकों, तनुरक्षकों और तीनों पारिषदों का उत्कृष्ट विरह काल चार मास है । अनीक आदि देवों का उत्कृष्ट विरहकाल कहते हैं—

वह उत्कृष्ट विरह (काल) सौधर्म में छह मुहूर्त, ईशान में चार मुहूर्त, सनत्कुमार में तीन भागों में से दो भाग सहित नौ (९⅔) दिन, माहेन्द्रकल्प में त्रिभाग सहित बारह (१२⅓) दिन, ब्रह्म-कल्प में पैंतालीस (४५) दिन, महाशुक्र में अस्सी (८०) दिन, सहस्रार में सौ दिन और आनतादिक चार कल्पों में संख्यात सौ वर्ष प्रमाण है । यह उत्कृष्ट विरह काल इन्द्र आदि रूप ग्यारह भेदों से युक्त कल्पवासी देवों का कहा गया है ॥५४६–५४९॥

नोट—लान्तव कल्प के विरह काल को दर्शाने वाली गाथा नहीं है ।

कप्पातीद-सुराणं, उक्कस्सं अंतराणि पत्तेक्कं ।
संखेज्ज-सहस्साणि, वासा गेवेज्जगे णवण्णं ॥५५०॥

अर्थ—नौ ग्रैवेयकों में से प्रत्येक में कल्पातीत देवों का उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्ष प्रमाण है ॥ ५५० ॥

पल्लासंखेज्जं सो,[1] अणुद्दिसाणुत्तरेसु उक्कस्सं ।
सव्वे अवरं समयं, जम्मण[2]–मरणाण अंतरयं ॥५५१॥

अर्थ—वह उत्कृष्ट अन्तर अनुदिश और अनुत्तरों में पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । जन्म-मरण का जघन्य अन्तर सब जगह एक समय मात्र है ॥५५१॥

मतान्तरसे विरहकाल—

दुसु दुसु ति-चउक्केसु य, सेसे जणणतराणि[3] चवणम्मि ।
सत्त-दिण-पक्ख-मासा, दु-चउ-छम्मासया कमसो ॥५५२॥

दि ७ । १५ । मा १ । २ । ४ । ६ ।

अर्थ—(सौधर्मादि) दो, दो, तीन चतुष्कों (चार, चार, चार कल्पों) में तथा शेष ग्रैवेयकों आदि में जन्म एवं मरण का अन्तर क्रमशः सात दिन, एक पक्ष, एक मास, दो मास, चार मास और छह मास प्रमाण है ॥५५२॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सा । २. द. ब. क. ज. ठ. जहण्णा ।

३. द. ब. क. ज. ठ. जणांतराणि चवणम्मि ।

इय जम्मण-मरणाणं, उक्कस्से होदि अंतर-पमाणं ।
सव्वेसुं कप्पेसुं, जहण्णए एक्क-समओ य ।।५५३।।

पाठान्तरम् ।

जम्मण-मरणाणंतर-कालो समत्तो ।।६।।

अर्थ—इस प्रकार सब कल्पों में जन्म-मरण का यह अन्तर प्रमाण उत्कृष्ट है। जघन्य अन्तर सब कल्पों में एक समय ही है ।।५५३।।

पाठान्तर ।

जन्म-मरणके अन्तरकाल का कथन समाप्त हुआ ।

[तालिका अगले पृष्ठ पर देखिये]

देव-देवियोंके जन्म-मरणका अन्तर (विरह) काल

नाम	उत्कृष्ट अन्तर	मतान्तर से उत्कृष्ट अन्तर		जघन्य अन्तर
		नाम	अन्तर	
सब इन्द्र, महा देवियाँ, लोकपाल, प्रतीन्द्र	६ मास	×	×	सर्वत्र एक समय अन्तर है।
त्रायस्त्रिंश, सामानिक, तनुरक्षक, तीनों पारिषद	४ मास	×	×	
सौधर्म कल्प	६ मुहूर्त	सौधर्म	सात दिन	
ईशान कल्प	४ मुहूर्त	ईशान	सात दिन	
सनत्कुमार कल्प	९$\frac{२}{३}$,,	सानत्कुमार	एक पक्ष	
माहेन्द्र कल्प	१२$\frac{१}{३}$,,	माहेन्द्र	एक पक्ष	
ब्रह्म-कल्प	४५ दिन	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	एक मास	
लान्तव कल्प	गाथा नहीं है।	लान्तव-कापिष्ट	एक मास	
महाशुक्र कल्प	८० दिन	शुक्र-महाशुक्र	दो मास	
सहस्रार कल्प	१०० दिन	शतार-सहस्रार	दो मास	
आनत, प्राणत, आरण, अच्युत	संख्यात सौ वर्ष	आनत, प्राणत, आरण, अच्युत	चार मास	
नव ग्रैवेयक	संख्यात हजार वर्ष			
अनुदिश	पल्य के असंख्यातवें-	नव ग्रैवेयक	छह मास	
अनुत्तर	भाग प्रमाण	नव अनुदिश अनुत्तर	छह मास	

सपरिवार इन्द्रों के आहार का काल—

उवहि-उवमाण-जीवी, वरिस-सहस्सेण दिव्व-अमयमयं ।
भुंजदि मणसाहारं, णिरुवमयं तुट्ठि-पुट्ठि-करं ।।५५४।।

अर्थ—एक सागरोपम काल पर्यन्त जीवित रहने वाला देव एक हजार वर्ष में दिव्य, अमृतमय, अनुपम और तुष्टि एवं पुष्टि कारक मानसिक आहार करता है ।।५५४।।

जेत्तिय-जलणिहि-उवमा, जो जीवदि तस्स तेत्तिएहिं च ।
वरिस-सहस्सेहि हवे, आहारो पणु-दिणाणि पल्लमिदे ।।५५५।।

अर्थ—जो देव जितने सागरोपम काल पर्यन्त जीवित रहता है, उसके उतने ही हजार वर्षों में आहार होता है । पल्य प्रमाण काल पर्यन्त जीवित रहने वाले देवों के पाँच दिन में आहार होता है ।।५५५।।

पडिइंदाणं सामाणियाण[1] तेत्तीस-सुर-वराणं च ।
भोयण-काल-पमाणं, णिय-णिय-इंदाण-सारिच्छं[2] ।।५५६।।

अर्थ—प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश देवों के आहारकाल का प्रमाण अपने-अपने इन्द्रों के सदृश है ।।५५६।।

इंद-प्पहुदि-चउण्हं, देवीणं भोयणम्मि जो समओ ।
तस्स पमाण-परूवण-उवएसो संपहि पणट्ठो ।।५५७।।

अर्थ—इन्द्र आदि चार (इन्द्र, प्रतीन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश इन) की देवियों के भोजन का जो काल है उसके प्रमाण के निरूपण का उपदेश इस समय नष्ट हो गया है ।।५५७।।

सोहम्मिंद-दिगिंदे, सोमम्मि जमम्मि भोयणावसरो ।
सामाणियाण ताणं, पत्तेक्कं पंचवीस-दल-दिवसा ।।५५८।।

$\frac{25}{2}$ ।

अर्थ—सौधर्म इंद्र के दिक्पालों में से सोम एवं यम के तथा उनके सामानिकों में से प्रत्येक के भोजन का काल साढ़े बारह (१२½) दिन है ।।५५८।।

तद्देवीणं तेरस-दल-दिवसा होदि भोयणावसरो ।
वरुणस्स कुबेरस्स य, तस्सामंताण ऊणपण-पक्खे ।।५५९।।

।। १५ ।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सामाणियाण लोओ । २. द. क. ब. ठ. सारिच्छा ।

अर्थ—उन (सोम एवं यम लोकपाल और इनके सामानिक देवों) की देवियों के आहार का काल साढ़े छह (६½) दिन है और वरुण एवं कुबेर लोकपाल तथा इनके सामानिक देवों के आहार का काल कुछ कम एक पक्ष (१५ दिन) है ।।५५९।।

पण्णरस-दल-दिणाणि, ताणं देवीण होदि तक्कालो ।
ईसाणिंद-दिगिंदे, सोमम्मि जमम्मि सक्क-वरुण समो ।।५६०।।

अर्थ—उन (सौधर्मेन्द्र के वरुण एवं कुबेर लोकपाल और उनके सामानिक देवों) की देवियों का आहार काल साढ़े सात (७½) दिन है । ईशानेन्द्र के सोम एवं यम लोकपालों का आहार काल सौधर्मेन्द्र के वरुण लोकपाल सदृश (कुछ कम १५ दिन) है ।।५६०।।

किंचूणमेक्क-पक्खं, भोयण-कालो कुबेर-णामस्स ।
तद्देवीणं होदि हु, सामण्णं सोम-देवीणं ।।५६१।।

। १५ । १५ ।

अर्थ—(ईशानेन्द्र के) कुबेर नामक लोकपाल और उनकी देवियों का तथा सामानिक देवों की देवियों तथा (यम व) सोम की देवियों का आहार काल कुछ कम १५ दिन है ।।५६१।।

वरुणस्स असण-कालो, होदि कुबेराडु किंचि-अदिरित्तो ।
सेसाहार - पमाणं, उवएसो संपहि पणट्ठो ।।५६२।।

१५ ।

उवमाहार-काल-समत्तो ।।१०।।

अर्थ—वरुण लोकपालका आहार काल कुबेरके आहार-कालसे कुछ अधिक अर्थात् पन्द्रह (१५) दिन है । शेष (सानत्कुमार आदि इन्द्र उनके परिवारके देव-देवियों) के आहार कालके प्रमाणका उपदेश इससमय नष्ट हो गया है ।।५६२।।

आहार-काल समाप्त हुआ ।।१०।।

देवोंके श्वासोच्छ्वासका कथन—

पढमे बिदए जुगले, बम्हादिसु चउसु आणद-चउक्के ।
हेट्ठिम - मज्झिम, उवरिम, गेवेज्जेसुं च सेसेसुं ।।५६३।।
णिय णिय भोयण-काले, जं परिमाणं सुराण पण्णत्ता ।
तम्मेत्त मुहुत्ताणि, आणापाणाण - संचारो ।।५६४।।

उस्सासो समत्तो ।।११।।

अर्थ—पहले दूसरे युगल, ब्रह्मादि चार और आनतादि चार, इन बारह कल्पोंमें, अधस्तन, मध्यम, उपरिम ग्रैवेयकों में तथा शेष (अनुदिश और अनुत्तर) विमानों में देवों के अपने-अपने भोजन के काल का जो प्रमाण कहा गया है उसमें उतने प्रमाण मुहूर्त में श्वासोच्छ्वास का संचार होता है ॥५६३-५६४॥

देवोंके शरीरका उत्सेध—

देवाणं उच्छेहो, हत्था - सत्त - छ - पंच - चत्तारि ।
कमसो हवेदि तत्तो, पत्तेक्कं हत्थ - दल - हीणा ॥५६५॥

७ । ६ । ५ । ४ । $\frac{७}{२}$ । ३ । $\frac{५}{२}$ । २ । $\frac{३}{२}$ । १ ।

अर्थ—देवोंके शरीरका उत्सेध क्रमशः सात, छह, पाँच और चार हाथ प्रमाण है, इसके आगे प्रत्येक स्थान पर अर्ध-अर्ध हाथ हीन होता गया है ॥५६५॥

विशेषार्थ—देवों के शरीर की ऊँचाई सौधर्म कल्प में ७ हाथ, ईशान कल्पमें ६ हाथ, सनत्कुमार में ५ हाथ, माहेन्द्रकल्पमें ४ हाथ, ब्रह्म कल्प से सहस्रार कल्प पर्यन्त ३½ हाथ, आनतादि चार कल्पोंमें ३ हाथ, अधोग्रैवेयकमें २½ हाथ, मध्यम में २ हाथ, उपरिममें १½ हाथ और अनुदिश एवं अनुत्तर विमानों के देवों के शरीर की ऊँचाई एक हाथ प्रमाण है ॥

दुसु दुसु चउसु दुसु सेसे सत्तच्छ - पंच - चत्तारि ।
तत्तो हत्थ - दलेणं, हीणा सेसेसु पुव्वं व ॥५६६॥

७ । ६ । ५ । ४ । $\frac{७}{२}$ । ३ । $\frac{५}{२}$ । २ । $\frac{३}{२}$ । १ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—देवोंके शरीरकी ऊँचाई दो अर्थात् सौधर्मेशानमें ७ हाथ, दो (सानत्कुमार-माहेन्द्र) में ६ हाथ, चार (ब्रह्मादि चार) में ५ हाथ और दो (शुक्र-महाशुक्र) में ४ हाथ है। शेष कल्पोंमें अर्ध-अर्ध हस्त प्रमाण हीन होता गया है। अर्थात् शतार-सहस्रारमें ३½ हाथ और आनतादि चार में ३ हाथ प्रमाण है। शेष (कल्पातीत विमानों) में पूर्वके सदृश अर्थात् अधोग्रैवेयकमें २½ हाथ, मध्यम ग्रै० में २ हाथ और उपरिम ग्रै० में १½ है। शेष विमानोंमें पूर्ववत् अर्थात् अनुदिश और अनुत्तर विमानोंमें शरीरका उत्सेध एक हाथ प्रमाण है ॥५६६॥

पाठान्तर ।

एवे सहाव - जादा, देहुच्छेहो हुवंति देवाणं ।
विक्किरियाहिं ताणं, विचित्त - भेदा विराजंति ॥५६७॥

उच्छेहो गदो ॥१२॥

अर्थ—इसप्रकार देवोंके शरीरका यह उत्सेध स्वभावसे उत्पन्न होता है। उनका विक्रियासे उत्पन्न शरीरका उत्सेध नाना प्रकारसे शोभायमान होता है ।।५६७।।

इसप्रकार उत्सेधका कथन समाप्त हुआ ।।१२।।

देवायु-बन्धक-परिणाम—

आउव - बंधण - काले, जलराई तह य.......... ।
सरिसा - हलिवराए, कोपह - प्पहुदीण उदयम्मि ।।५६८।।

नोट—ताडपत्र खण्डित होने से गाथा का अभिप्राय बोध-गम्य नहीं है।

एवं विह-परिणामा, मणुवा-तिरिया य तेसु कप्पेसु ।
णिय णिय जोगत्थाणे, ताहे बंधंति देवाऊ ।।५६९।।

अर्थ—इसप्रकारके परिणामवाले मनुष्य और तिर्यंच उन-उन कल्पोंकी देवायु बांधते हैं ।।५६९।।

सम-दम-जम-णियम-जुदा, णिद्दंडा णिम्ममा णिरारंभा ।
ते बंधंते आऊ, इंदावि - महद्धियादि - पंचाणं ।।५७०।।

अर्थ—जो शम (कषायों का शमन), दम (इन्द्रियों का दमन), यम (जीवन पर्यन्त का त्याग) और नियम आदि से युक्त, निर्दण्ड अर्थात् मन, वचन और काय को वश में रखने वाले, निर्ममत्व परिणाम वाले तथा आरम्भ आदि से रहित होते हैं वे साधु इन्द्र आदि की आयु अथवा पांच अनुत्तरों में ले जाने वाली महर्द्धिक देवों की आयु बांधते हैं ।।५७०।।

सण्णाण-तवेहि-जुदा, मद्दव-विणयादि संजुदा केई ।
गारव-ति-सल्ल-रहिदा, बंधंति महद्धिग-सुराउं ।।५७१।।

अर्थ—सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् तप से युक्त, मार्दव और विनय आदि गुणों से सम्पन्न, तीन (ऋद्धि-गारव, रस-गारव और सात) गारव तथा तीन (मिथ्या, माया और निदान) शल्यों से रहित कोई-कोई (साधु) महा-ऋद्धिधारक देवों की आयु बांधते हैं ।।५७१।।

ईसो मच्छर-भावं, भय-लोभ-वसं च जे ण वच्चंति ।
विविह-गुणा वर-सीला, बंधंति महद्धिग-सुराणं ।।५७२।।

अर्थ—जो ईर्षा, मात्सर्यभाव, भय और लोभ के वशीभूत होकर वर्तन नहीं करते हैं तथा विविध गुण और श्रेष्ठ शील से संयुक्त होते हैं, वे (श्रमण) महा-ऋद्धि धारक देवों की आयु बांधते हैं ।।५७२।।

कंचण-पासाणेसुं, सुह-दुक्खेसुं पि मित्त-अहिवेसुं ।
समणा समाण-भावा, बंधंति महड्ढिग-सुराउं ।।५७३।।

अर्थ—स्वर्ण-पाषाण, सुख-दुःख और मित्र शत्रु में समता भाव रखने वाले श्रमण महा-ऋद्धिधारक देवों की आयु बाँधते हैं ।।५७३।।

देहेसुं णिरवेक्खा, णिब्भर-वेरग्ग-भाव संजुत्ता ।
रागादि-दोस-रहिदा, बंधंति महड्ढिग-सुराउं ।।५७४।।

अर्थ—शरीर से निरपेक्ष, अत्यन्त वैराग्य भावों से युक्त और रागादि दोषों से रहित (श्रमण) महा-ऋद्धिधारक देवों की आयु बाँधते हैं ।।५७४।।

उत्तर-मूल-गुणेसुं, समिदि-सुवदे सज्झाण-जोगेसुं ।
णिच्चं पमाव-रहिदा, बंधंति महड्ढिग-सुराउं ।।५७५।।

अर्थ—जो श्रमण मूल और उत्तर गुणों में, (पांच) समितियों में, महाव्रतों में धर्म एवं शुक्लध्यान में तथा योग आदि की साधना में सदैव प्रमाद रहित वर्तन करते हैं वे महा-ऋद्धिधारक देवों की आयु बाँधते हैं ।।५७५।।

वर-मज्झ-अवर-पत्ते, ओसह-आहारमभय-विण्णाणं ।
दाणाणु[1] .... बंधंति देवाउं ।।५७६।।

अर्थ—जो उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रों को ओषधि, आहार, अभय और ज्ञान दान [देते हैं वे मध्यम ऋद्धिधारक] देवों की आयु बाँधते हैं ।।५७६।।

लज्जा मज्जावाहिं, मज्झिम - भावेहि - संजुदा केई ।
उवसम-पहुदि-समग्गा, बन्धंते मज्झि-मद्धिक-सुराउं ।।५७७।।

अर्थ—लज्जा और मर्यादा रूप मध्यम भावों से युक्त तथा उपशम प्रभृति भावों से संयुक्त कई मध्यम ऋद्धि-धारक देवों की आयु बाँधते हैं ।।५७७।।

पचलिद-सण्णाणाणे, चारित्ते बहु-किलिट्ठ-भाव-जुदा ।
अण्णा[2]........., बंधंते अप्पइद्धि - असुराऊ ।।५७८।।

अर्थ—अनादिसे प्रकटित संज्ञाओं एवं अज्ञानके कारण अपने चारित्रमें अत्यन्त क्लिश्यमान भाव संयुक्त अन्य कई (जीव) अल्पर्द्धिक देवोंकी आयु बाँधते हैं ।।५७८।।

---

१ ताडपत्र यहाँ टूटा हुआ है ।　२. ताडपत्र यहाँ टूटा हुआ है ।

सबल-चरित्ता कूरा, उम्मग्गत्था-णिदाण-कद-भावा ।
मंद - कसायाणुरदा, बंधंते[1] [2]अप्पइद्धि - असुराउं ॥५७९॥

अर्थ—दूषित चारित्रवाले, क्रूर, उन्मार्गमें स्थित, निदान भाव सहित और मन्द कषायोंमें अनुरक्त जीव अल्पर्द्धिक देवोंकी आयु बांधते हैं ॥५७९॥

देवोंमें उत्पद्यमान जीवोंका स्वरूप—

दसपुव्व-धरा सोहम्म-पहुदि सव्वट्ठसिद्धि - परियंतं ।
चोद्दसपुव्व - धरा तह, लंतव - कप्पादि वच्चंते ॥५८०॥

अर्थ—दसपूर्व धारी जीव सौधर्मकल्पसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त तथा चौदह पूर्वधारी लान्तव कल्पसे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जाते हैं ॥५८०॥

सोहम्मादी - अच्चुद - परियंतं जंति देसवद-जुत्ता ।
चउ-विह-दाण-पयट्टा, अकसाया पंचगुरु - भत्ता ॥५८१॥

अर्थ—चार प्रकारके दानमें प्रवृत्त, कषायोंसे रहित एवं पंच परमेष्ठियोंकी भक्तिसे युक्त, ऐसे देशव्रत संयुक्त जीव सौधर्म स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग पर्यन्त जाते हैं ॥५८१॥

सम्मत्त-णाण-अज्जव[3]-लज्जा-सीलादिएहि परिपुण्णा ।
जायंते इत्थीओ, जा अच्चुद - कप्प - परियंतं ॥५८२॥

अर्थ—सम्यक्त्व, ज्ञान, आर्जव, लज्जा एवं शीलादिसे परिपूर्ण स्त्रियां अच्युत कल्प पर्यन्त जाती हैं ॥५८२॥

जिण-लिंग-धारिणो जे, उक्किट्ठ-[4]तवस्समेण संपुण्णा ।
ते जायंति अभव्वा, उवरिम - गेवेज्ज - परियंतं ॥५८३॥

अर्थ—जो अभव्य जीव जिन-लिङ्गको धारण करते हैं और उत्कृष्ट तपके श्रमसे परिपूर्ण हैं वे उपरिम-ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ॥५८३॥

परदो अच्चण[5]-वद-तव-दंसण-णाण-चरण-संपण्णा ।
णिग्गंथा जायंते, भव्वा सव्वट्ठसिद्धि - परियंतं ॥५८४॥

---

१ द. ब. बद्धते । २. ब. क. ज. ठ. अप्पद्धि म ।

३. द. क. ठ. अज्जसीला, ब. ज. अज्जावसीला ।

४. द. ब. क. ज. तवासमेरा । ५. द. ब. ज. ठ. अंचतपद ।

अर्थ—पूजा, व्रत, तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्रसे सम्पन्न निर्ग्रन्थ भव्य जीव इससे (उपरिम ग्रैवेयक से) आगे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ।।५८४।।

चरका परिवज्ज-धरा, मंद - कसाया पियंवदा केई ।
कमसो भावण - पहुदी, जम्मंते बम्ह - कप्पंतं ।।५८५।।

अर्थ—मन्द-कषायी एवं प्रिय बोलने वाले कितने ही चरक (चार्वाक) (साधु विशेष) और परिव्राजक क्रमशः भवनवासियोंको आदि लेकर ब्रह्मकल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ।।५८५।।

जे पंचेंदिय-तिरिया, सण्णी हु अकाम-णिज्जरेण जुदा ।
मंद - कसाया केई, जंति[1] सहस्सार - परियंतं ।।५८६।।

अर्थ—जो कोई पचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यञ्च अकाम-निर्जरासे युक्त और मन्द कषायी हैं, वे सहस्रार कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं ।।५८६।।

तणुदंडणादि-सहियाजीवा जे अमंद-कोह-जुदा ।
कमसो भावण-पहुदी, केई जम्मंति अच्चुदं जाव ।।५८७।।

अर्थ— जो तनुदण्डन अर्थात् कायक्लेश आदि सहित और तीव्र क्रोध से युक्त हैं ऐसे कितने ही आजीवक-साधु क्रमशः भवनवासियों से लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त जन्म लेते हैं ।।५८७।।

आ ईसाणं कप्पं, उप्पत्ती होदि देव-देवीणं ।
तप्परदो उब्भूदी, देवाणं केवलाणं पि ।।५८८।।

अर्थ—ईशान कल्प पर्यन्त देवों और देवियों (दोनों) की उत्पत्ति होती है। इससे आगे केवल देवों की ही उत्पत्ति है ।।५८८।।

ईसाण - लंतवच्चुद - कप्पंतं जाव होंति कंदप्पा ।
किब्बिसिया अभियोगा, णिय-कप्प-जहण्ण-ठिदि-सहिया ।।५८९।।

एवमायुग-बंधं[2] समत्तं ।।

अर्थ— कन्दर्प, किल्विषिक और आभियोग्य देव अपने-अपने कल्पकी जघन्य स्थिति सहित क्रमशः ईशान, लान्तव और अच्युत कल्प पर्यन्त होते हैं ।।५८९।।

इसप्रकार आयु-बन्ध का कथन समाप्त हुआ ।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. जाव । २. द. ब. क. ज. ठ. बंध सम्मत्ता ।

उत्पत्ति समय में देवों की विशेषता—

जायंते सुरलोए, उववादपुरे महारिहे सयणे।
जादा[1] य मुहुत्तेणं, छप्पज्जत्तीओ पावंति ॥५९०॥

अर्थ—ये देव सुरलोक के भीतर उपपादपुर में महार्घ शय्या पर उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होने के पश्चात् एक मुहूर्त में ही छह पर्याप्तियाँ भी प्राप्त कर लेते हैं ॥५९०॥

णत्थि णह-केस-लोमा, ण चम्म-मंसा ण लोहिद-वसाओ।
णट्ठी ण मुत्त-पुरीसं, ण सिराओ देव-संघडणे ॥५९१॥

अर्थ—देवों के शरीर में न नख, केश और रोम होते हैं; न चमड़ा और मांस होता है; न रुधिर और चर्बी होती है; न हड्डियाँ होती हैं; न मल-मूत्र होता है और न नसें ही होती हैं ॥५९१॥

वण्ण-रस-गंध-फासं, अइसय-वेगुव्व-दिव्व-खंधादो।
गेण्हदि[2] देवो बोहिं, ? उवचिद-कम्माणु-भावेणं ॥५९२॥

अर्थ—संचित (पुण्य) कर्म के प्रभाव से और अतिशय वैक्रियिक रूप दिव्य स्कन्ध होने के कारण देव उत्तम—वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श ग्रहण करते हैं ॥५९२॥

उप्पण्ण-सुर-विमाणे, पुव्वमणुग्घाडिदं कवाड-जुगं।
उग्घडदि तम्मि काले, पसरदि आणंद-भेरि-रवं ॥५९३॥

एवमुप्पत्ती गदा ॥

अर्थ—देव विमान में उत्पन्न होने पर पूर्व में अनुद्घाटित (बिना खोले) कपाट-युगल खुलते हैं और फिर उसी समय आनन्द भेरी का शब्द फैलता है ॥५९३॥

इसप्रकार उत्पत्ति का कथन समाप्त हुआ ॥

भेरी के शब्द श्रवण के बाद होने वाले विविध क्रिया-कलाप

सोदूण भेरि-सद्दं, जय जय णंद त्ति विविह-घोसेणं।
एंति परिवार-देवा, देवीओ रत्त-हिदयाओ ॥५९४॥

अर्थ—भेरी का शब्द सुनकर अनुराग युक्त हृदय वाले परिवारों के देव और देवियाँ 'जय जय, नन्द' इसप्रकार के विविध शब्दोच्चार के साथ आते हैं ॥५९४॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. जादा य। २. द. ब. गेण्होदिद बाधांवि, क. ज. ठ. गेण्हेदि।

वायंति किब्बिस-सुरा, जयघंटा पडह-मद्दल-प्पहुदि ।
संगीय - णच्चणाइं, पप्पव - देवा पकुव्वंति ।।५९५।।

अर्थ—किल्विष देव जयघण्टा, पटह एवं मर्दल आदि बजाते हैं और पप्पव (?) देव संगीत एवं नृत्य करते हैं ।।५९५।।

देवी - देव - समाजं, दट्ठूणं तस्स कोदुगं होदि ।
तावे कस्स विभंगं, कस्स वि ओही फुरदि णाणं ।।५९६।।

अर्थ—देवों और देवियों के समूह देखकर उस देव को कौतुक होता है । उस समय किसी (देव) को विभङ्ग और किसी को अवधिज्ञान प्रगट होता है ।५९६।।

णादूण देवलोयं, अप्प-फलं जादमेदमिदि केई ।
मिच्छाइट्ठी देवा, गेण्हंति विसुद्ध-सम्मत्तं ।।५९७।।

अर्थ—अपने (पूर्व पुण्यके) फल से यह देवलोक प्राप्त हुआ है, इस प्रकार जानकर कोई मिथ्यादृष्टि देव विशुद्ध सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं ।।५९७।।

तादे देवी-णिवहो, आणंदेणं महाविभूदीए ।
एदाणं देवाणं भरणं[1] सेसं पहिट्ठ-मणे ।।५९८।।

अर्थ—फिर देवी-समूह आनन्द पूर्वक हर्षित मन होकर महाविभूति के साथ इन देवों का भरण-पोषण करते हैं ।।५९८।।

जिन-पूजा का प्रक्रम—

जिण-पूजा-उज्जोगं, कुणंति[2] केई महाविभूदीए ।
केई पुव्विल्लाणं, देवाणं बोहण - वसेणं ।।५९९।।

अर्थ—कोई देव महाविभूति के साथ स्वयं ही जिनपूजा का उद्योग करते हैं और कितने ही देव पूर्वोक्त देवों के उपदेश वश जिन-पूजा करते हैं ।।५९९।।

कादूण दहे ण्हाणं, पविसिय अभिसेय-मंडवं दिव्वं ।
सिंहासणाभिरूढं, देवा कुव्वंति अभिसेयं ।।६००।।

अर्थ—द्रह में स्नान करके दिव्य अभिषेक-मण्डप में प्रविष्ट हो सिंहासन पर आरूढ़ हुए उस नवजात देवका अन्य (पुराने) देव अभिषेक करते हैं ।।६००।।

---

१. द. क. ज. ठ. भरंति । २. ब. क. कुव्वंति ।

भूसणसालं पविसिय, वर-रयण-विभूसणाणि दिव्वाणि ।
गहिदूण परम-हरिसं, भरिदा कुव्वंति णेपत्थं ।।६०१।।

अर्थ—भूषणशाला में प्रवेश कर और दिव्य उत्तम रत्न-भूषणों को लेकर (वे) उत्कृष्ट हर्ष से परिपूर्ण हो (उसकी) वेषभूषा करते हैं ।।६०१।।

तत्तो ववसायपुरं, पविसिय अभिसेय-दिव्व-पूजाणं ।
ओग्गाइं दव्वाइं, गेण्हिय परिवार-संजुत्ता ।।६०२।।

णच्चंत-विचित्त-धया, वर-चामर-चारु-छत्त-सोहिल्ला ।
णिब्भर-भत्ति-पयट्टा, वच्चंति जिणिंद-भवणाणि ।।६०३।।

अर्थ—तत्पश्चात् वे (नवजात) देव व्यवसायपुर में प्रवेशकर अभिषेक और पूजा के योग्य दिव्य द्रव्यों को ग्रहणकर परिवार से संयुक्त होकर अतिशय भक्ति में प्रवृत्ति कर नाचती हुई विचित्र ध्वजाओं सहित, उत्तम चँवर एवं सुन्दर छत्र से शोभायमान जिनेन्द्र-भवन में जाते हैं ।।६०२-६०३।।

दट्ठूण जिणिंदपुरं, वर-मंगल-तूर-सद्द-हलबोलं ।
देवा देवी-सहिदा, कुव्वंति[1] पदाहिणं पणदा ।।६०४।।

अर्थ—देवियों सहित वे देव उत्तम मंगल-वादित्रों के शब्द से मुखरित जिनेन्द्रपुर को देखकर नम्र हो प्रदक्षिणा करते हैं ।।६०४।।

छत्तत्तय - सिंहासण - भामण्डल-चामरादि-चारूणं ।
जिणपडिमाणं पुरदो, जय-जय-सद्दं पकुव्वन्ति ।।६०५।।

अर्थ—पुनः वे देव तीन छत्र, सिंहासन, भामण्डल और चामरादि से (संयुक्त) सुन्दर जिन-प्रतिमाओं के आगे जय-जय शब्द उच्चरित करत हैं ।।६०५।।

थोदूण थुदि-सएहिं, जिणिंद-पडिमाओ भत्ति-भरिद-मणा ।
एदाणं अभिसेए, तत्तो कुव्वंति पारंभं ।।६०६।।

अर्थ—वे देव भक्ति-युक्त मन से सैंकड़ों स्तुतियों द्वारा जिनेन्द्र-प्रतिमाओं की स्तुति करने के पश्चात् उनका अभिषेक प्रारम्भ करते हैं ।।६०६।।

खीरद्धि-सलिल-पूरिद-कंचण-कलसेहिं अट्ठ सहस्सेहिं ।
देवा जिणाभिसेयं महाविभूदीए कुव्वंति ।।६०७।।

---

1. क. ब. ठ. कुणंति ।

अर्थ—वे देव क्षीर समुद्र के जल से पूर्ण एक हजार आठ सुवर्ण-कलशों के द्वारा महा-विभूति के साथ जिनाभिषेक करते हैं ॥६०७॥

वज्जंतेसुं मद्दल-जयघंटा-पडह-काहलादीसुं[1] ।
दिव्वेसुं तूरेसुं, ते जिण-पूजं पकुव्वंति ॥६०८॥

अर्थ—मर्दल, जयघण्टा, पटह और काहल आदिक दिव्य वादित्रों के बजते रहते वे देव जिन-पूजा करते हैं ॥६०८॥

भिंगार-कलस-दप्पण-छत्तत्तय-चमर-पहुदि-दव्वेहिं ।
पूजं कादूण तदो, जल-गंधादीहि अच्चंति ॥६०९॥

अर्थ—वे देव भृङ्गार, कलश, दर्पण, तीन छत्र और चामरादि द्रव्यों से पूजा कर लेने के पश्चात् जल-गन्धादिक से अर्चन करते हैं ॥६०९॥

तत्तो हरिसेण सुरा, णाणाविह-णाडयाइं दिव्वाइं ।
बहु-रस-भाव-जुदाइं, णच्चंति विचित्त-भंगीहिं ॥६१०॥

अर्थ—तत्पश्चात् वे देव हर्षपूर्वक विचित्र शैलियों से नाना रसों एवं भावों से युक्त नाना प्रकार के दिव्य नाटक करते हैं ॥६१०॥

सम्माइट्ठी देवा, पूजा कुव्वंति जिणवराण सया ।
कम्मक्खवण-णिमित्तं, णिब्भर-भत्तीए भरिद-मणा ॥६११॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टिदेव कर्म-क्षयके निमित्त सदा मनमें अतिशय भक्ति पूर्वक जिनेन्द्रों की पूजा करते हैं ॥६११॥

मिच्छाइट्ठी देवा, णिच्चं अच्चंति जिणवर-प्पडिमा ।
कुल-देवदाओ इअ किर, मण्णंता अण्ण-बोहण-वसेणं ॥६१२॥

अर्थ—मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों के सम्बोधन से 'ये कुल देवता हैं' ऐसा मानकर नित्य जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं ॥६१२॥

देवों का सुखोपभोग—

इय पूजं कादूणं, पासादेसुं णिएसु गंतूणं ।
सिंहासणाहिरूढा, सेविज्जंते सुरेहिं देविंदा ॥६१३॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. काहलसहिदेसुं ।

अर्थ—इसप्रकार पूजा करके और अपने प्रासादोंमें आकर वे देवेन्द्र सिंहासन पर आरूढ़ होकर देवों द्वारा सेवे जाते हैं ॥६१३॥

बहुविह-विगुव्वणाहिं, लावण्ण-विलास-सोहमाणाहिं ।
रदि[1]-करण - कोविदाहिं, वरच्छराहिं[2] रमंति समं ॥६१४॥

अर्थ—वे इन्द्र बहुत प्रकारकी विक्रिया सहित, लावण्य-विलाससे शोभायमान और रति करनेमें चतुर ऐसी उत्तम अप्सराओंके साथ रमण करते हैं ॥६१४॥

वीणा - वेणु - [3]भुणीओ, सत्तरसेहिं विभूसिदं गीदं ।
ललियाइं णच्चणाइं, सुणंति पेच्छंति सयल - सुरा ॥६१५॥

अर्थ—समस्त देव वीणा एवं बांसुरीकी ध्वनि तथा सात स्वरोंसे विभूषित गीत सुनते हैं और विलासपूर्ण नृत्य देखते हैं ॥६१५॥

चामीयर-रयणमए, सुगंध-धूवादि-वासिदे विमले ।
देवा देवीहि समं, रमंति दिव्वम्मि पासादे ॥६१६॥

अर्थ—उक्त देव सुवर्ण एवं रत्नोंसे निर्मित और सुगन्धित धूपादिसे सुवासित विमल दिव्य प्रासादमें देवियोंके साथ रमण करते हैं ॥६१६॥

संते ओहीणाणे, अण्णोण्णुप्पण्ण-पेम-मूढ-[4]-मणा ।
कामंधा गद - कालं, देवा देवीओ ण विदंति ॥६१७॥

अर्थ—अवधिज्ञान होनेपर परस्पर उत्पन्न हुए प्रेममें मूढ़-मन होनेसे वे देव और देवियाँ कामान्ध होकर बीतते हुए कालको नहीं जानते हैं ॥६१७॥

गब्भावयार[5]-पहुदिसु, उत्तर - देहा सुराण गच्छंति ।
जम्मण - ठाणेसु सुहं, मूल - सरीराणि चेट्ठंति ॥६१८॥

अर्थ—गर्भ और जन्मादि कल्याणकोंमें देवोंके उत्तर शरीर जाते हैं । उनके मूल शरीर सुख-पूर्वक जन्म स्थानोंमें स्थित रहते हैं ॥६१८॥

णवरि विसेसो एसो, सोहम्मीसाण - जाद - देवीणं ।
वच्चंति मूल-देहा, णिय-णिय-कप्पामराण पासम्मि ॥६१९॥

---

१. द. ब. रदा । २. द. ब. वरच्छणाहि ।

३. द. ब. भुणीओ । ४. द. ब. क. ज. ठ. मूल । ५. द ब. रंभावयार ।

सुह-परूवणा समत्ता ।।

अर्थ—विशेष यह है कि सौधर्म और ईशान कल्पमें उत्पन्न हुई देवियोंके मूल शरीर अपने-अपने कल्पके देवोंके पास जाते हैं ।।६१९।।

मुख प्ररूपणा समाप्त हुई ।

तमस्कायका निरूपण—

अरुणवर-दीव-बाहिर-जगदीदो जिणवरुत्त-संखाणि ।
गंतूण जोयणाणि, अरुण - समुद्दस्स पणिधीए ।।६२०।।
एक्क-दुग-सत्त-एक्के, अंक-कमे जोयणाणि उवरि णहं ।
गंतूणं वलएणं, चेट्ठ`दि तमो [1]तमक्काओ ।।६२१।।

१७२१ ।

अर्थ—(नन्दीश्वर समुद्रके आगे ९ वें) अरुणवरद्वीपकी बाह्य जगतीसे जिनेन्द्रोक्त संख्या प्रमाण योजन जाकर अरुण समुद्रके प्रणधि भागमें अंक-क्रमसे एक, दो, सात और एक अर्थात् एक हजार सात सौ इक्कीस (१७२१) योजन प्रमाण ऊपर आकाशमें जाकर वलयरूपसे तमस्काय (अन्धकार) स्थित है ।।६२०-६२१।।

आदिम-चउ-कप्पेसुं, देस- वियप्पाणि तेसु कादूणं ।
उवरि-गद-बम्ह-कप्प[2]-प्पढमिंदय-पणिधि-तल पत्तो ।।६२२।।

अर्थ—(यह तमस्काय) आदिके चार कल्पोंमें देश-विकल्पोंको अर्थात् कहीं-कहीं अन्धकार उत्पन्न करके उपरिगत ब्रह्म-कल्प सम्बन्धी प्रथम इन्द्रकके प्रणधितल भागको प्राप्त हुआ है ।।६२२।।

विशेषार्थ—नन्दीश्वर समुद्रको वेष्टित कर नौवाँ अरुणवर द्वीप है और अरुणवर द्वीपको वेष्टितकर नौवाँ अरुणवर समुद्र है। मण्डलाकार स्थित इस समुद्रका व्यास १३११०७२००००० योजन प्रमाण है।

अरुणवर द्वीपकी बाह्य जगती अर्थात् अरुणवर समुद्रकी अभ्यन्तर जगती से १७२१ योजन प्रमाण दूर जाकर आकाशमें अरिष्ट नामक अन्धकार वलयरूपसे स्थित है और प्रथम चार कल्पोंको (एकदेश) आच्छादित करता हुआ पाँचवें ब्रह्म कल्पमें स्थित अरिष्ट नामक इन्द्रकके तल भागमें एकत्रित होता है। उस जगह इसका आकार मुर्गेकी कुटी (कुडला) के सदृश होता है। अथवा जैसे

---

१. द. ब. क. ज. ठ. तमंकादि ।

२. द. ब. क. ज. ठ. कप्पं पढमिंदा य पणधितल पंचे ।

भूसा भरनेकी बुरजी नीचे गोल होकर क्रमशः ऊपरको फलकर बढ़ती हुई पुनः शिखाऊरूप ऊपर जाकर घट जाती है, उसीप्रकार इस अन्धकार स्कन्धकी रचना है। इस अरिष्ट विमानके तल भागसे अक्ष-पाटकके आकार वाली अथवा यमका वेदिका सदृश होता हुआ यह तम आठ श्रेणियोंमें विभक्त हो जाता है। मृदंग सदृश आकारवाली ये तम पंक्तियाँ चारों दिशाओंमें दो-दो होकर विभक्त एवं तिरछी होती हुई लोक-पर्यन्त चली गई हैं। उन अन्धकार पंक्तियोंके अन्तरालमें ईशानादि विदिशाओं और दिशाओंमें सारस्वत आदिक लोकान्तिक देवगण अवस्थित रहते हैं।

नोट—यह विशेषार्थ लोक विभाग और तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकालंकार पंचम खण्डके आधार पर लिखा है।

मूलम्मि रुंद-परिही, हवेदि संखेज्ज-जोयणा तस्स।
मज्झम्मि असंखेज्जा, उवरिं तत्तो असंखेज्जो ॥६२३॥

अर्थ—उस (तम) की विस्तार परिधि मूलमें संख्यात योजन, मध्यमें असंख्यात योजन और इससे ऊपर असंख्यात योजन है ॥६२३॥

संखेज्ज - जोयणाणि, तमकायादो दिसाए पुव्वाए।
गच्छिय [1]संडस-मुलायार-धरो दक्खिणुत्तरायामो ॥६२४॥
णामेण किण्हराई, पच्छिमभागे वि तारिसो[2] य तमो।
दक्खिण-उत्तर-भागे, तम्मेत्तं गंधुव दीह-चउरस्सा ॥६२५॥
एक्केक्क - किण्हराई, हवेदि पुव्वावरद्दिदायामा।
एदाओ राजीओ, णियमा ण छिवंति अण्णोण्णं ॥६२६॥

अर्थ—तमस्कायसे पूर्व दिशामें संख्यात योजन जाकर षट्कोण आकारको धारण करने वाला और दक्षिण-उत्तर लम्बा कृष्णराजी नामक तम है। पश्चिम भागमें भी वैसा ही अंधकार है। दक्षिण एवं उत्तर भागमें उतनी प्रमाण आयत, चतुष्कोण और पूर्व-पश्चिम आयामवाली एक-एक कृष्ण-राजी स्थित है। ये राजियाँ नियमसे परस्पर एक दूसरेको स्पर्श नहीं करती हैं॥

संखेज्ज-जोयणाणि, राजीहिंतो दिसाए[3] पुव्वाए।
गंतूणब्भंतरए, राजी किण्हा य दीह-चउरस्सा ॥६२७॥
उत्तर-दक्खिण-दीहा, दक्खिण-राजिं[4] ठिदा य छिविदूणं।
पच्छिम-दिसाए उत्तर-राजिं छिविदूण होदि अण्ण-तमो ॥६२८॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सदंस। २. द. ब. क. ज. ठ. तारिसा।
३. द. ब. मिव्वाए। ४. द. ब. क. ज ठ. राजो रिदो पविसिदूण।

अर्थ—राजियों से संख्यात योजन पूर्व दिशा में अभ्यन्तर भाग में जाकर आयत-चतुरस्र और उत्तर-दक्षिण दीर्घ कृष्ण-राजी है जो दक्षिण राजी को छूती है। पश्चिम दिशा में उत्तर राजी को छूकर अन्यतम है ॥६२७-६२८॥

संखेज्ज-जोयणाणिं, राजीदो दक्खिणाए आसाए।
गंतूणब्भंतरए, एक्कं चिय किण्ह[1] - राजियं होई ॥६२९॥

अर्थ—राजी से दक्षिण दिशा में आभ्यन्तर भाग में संख्यात योजन जाकर एक ही कृष्ण राजी है ॥६२९॥

दीहेण छिविदस्स य, जव-खेत्तस्सेक्क-भाग-सारिच्छा।
पच्छिम-बाहिर-राजिं, छिविदूणं सा ठिदा[2] णियमा ॥६३०॥

अर्थ—दीर्घता की ओर से छेदे हुए यवक्षत्र के एक भागके सदृश वह राजी नियम से पश्चिम बाह्य राजी को छूकर स्थित है ॥६३०॥

पुव्वावर-आयामो, तम-काय दिसाए होदि तप्पट्ठो।
उत्तर-भागम्मि तमो, एक्को छिविदूण पुव्व-बहि-राजी ॥६३१॥

अर्थ—(दक्षिण) दिशा में पूर्वापर आयत तमस्काय है। उत्तर भाग में पूर्व बाह्य राजी को छूकर एक तम है ॥६३१॥

कृष्ण-राजियों का अल्पबहुत्व—

अरुणवर-दीव-बाहिर-जगदीए तह यह तम-सरीरस्स।
विच्चाल णहयलादो, अब्भंतर-राजि-तिमिर-कायाणं ॥६३२॥
विच्चालं[3] आयासे, तह संखेज्जगुणं हवेदि णियमेणं।
तं माणादो णेयं, अब्भंतर-राजि-संख-गुण-जुत्ता ॥६३३॥
अब्भंतर-राजीदो, अहिरेग-जुदो हवेदि तमकाओ।
अब्भंतर - राजीदो, बाहिर - राजी व किंचूणा ॥६३४॥
बाहिर-राजीहिंतो, दोण्णं राजीण जो दु विच्चालो।
अविरित्तो इय अप्पाबहुवं होदि हु चउ-दिसासुं पि ॥६३५॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. रिण। २. द. ब. क. ज. ठ. रिदा।

३. द. ब. क. ज. ठ. विच्चेलायासं।

अर्थ—अरुणवर द्वीप की बाह्य जगती तथा तमस्काय के अन्तराल से अभ्यन्तर राजी के तमस्कायों का अन्तराल-प्रमाण नियम से संख्यात-गुणा है। इस प्रमाण से अभ्यन्तर राजी संख्यात-गुणी है। अभ्यन्तर राजी से अधिक तमस्काय है। अभ्यन्तर राजी से बाह्य राजी कुछ कम है। बाह्य-राजियों से दोनों राजियों का जो अन्तराल है वह अधिक है। इस प्रकार चारों दिशाओं में भी अल्पबहुत्व है ॥६३२-६३५॥

एदम्मि तमिस्सेदे, विहरंते अप्प-रिद्धिया देवा।
दिम्मूढा वच्चंते, माहप्पेणं[1] महद्धिय - सुराणं ॥६३६॥

अर्थ—इस अन्धकार में विहार करते हुए जो अल्पर्द्धिक देव दिग्भ्रान्त हो जाते हैं वे महर्द्धिक देवों के माहात्म्य से निकल पाते हैं ॥६३६॥

विशेषार्थ—काजल सदृश यह अन्धकार पुद्गल की कृष्ण वर्ण की पर्याय है। जैसे सुमेरु, कुलाचल एवं सूर्य-चन्द्र के बिम्ब आदि पुद्गल की पर्यायें अनादि निधन हैं, उसी प्रकार यह अन्धकार का पिण्ड भी अनादि निधन है।

जैसे उष्णता शीत-स्पर्शकी नाशक है परन्तु शीत पदार्थ भी उष्णता को समूल नष्ट कर सकता है। वैसे ही कतिपय अन्धकार तो प्रकाशक पदार्थ से नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुछ अन्धकार ऐसे हैं जिन्हें प्रकाशक पदार्थ ठीक उसी रंग रूप में प्रकाशित तो कर देते हैं किन्तु नष्ट नहीं कर पाते। जैसे मशाल के ऊपर निकल रहे काले धुएँ को मशाल की ज्योति नष्ट नहीं कर पाती अपितु उसे दिखाती ही है। उसी प्रकार अरुणसमुद्र स्थित सूर्य-चन्द्र कालो स्याही को धूल सदृश फेंक रहे इस गाढ़ अन्धकार का बालाग्र भी खण्डित नहीं कर सकते अपितु काले रंग की दीवाल या काले वस्त्र सदृश मात्र उसे दिखा रहे हैं॥ (तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकालंकार पंचम खण्ड से)।

इस घोर अन्धकार में विहार करते हुए अल्पर्द्धिक देव जब दिग्भ्रान्त हो जाते हैं तब वे महर्द्धिक देवों की सहायता से ही निकल पाते हैं।

लोकान्तिक देवोंका निरूपण—

राजीणं विच्चाले, संखेज्जा होंति बहुविह-विमाणा।
एदेसु सुरा जादा, [2]खादा लोयंतिया णाम ॥६३७॥

अर्थ—राजियोंके अन्तरालमें संख्यात बहुत प्रकारके विमान हैं। इनमें जो देव उत्पन्न होते हैं वे लोकान्तिक नामसे विख्यात हैं ॥६३७॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. बाहुंपेणं। २. द ब. क. ज. ठ. बादा।

संसार-वारिरासी, [1]जो लोओ तस्स होंति अंतम्मि ।
जम्हा तम्हा एदे, देवा लोयंतिय त्ति गुणणामा ॥६३८॥

अर्थ—संसार समुद्ररूपी जो लोक है क्योंकि वे उसके अन्त में हैं इसलिए ये देव 'लोकान्तिक' इस सार्थक नामसे युक्त हैं ॥६३८॥

ते लोयंतिय - देवा, अट्ठसु राजीसु होंति[2] विच्चाले ।
सारस्सद-पहुदि तहा, [3]ईसाणादिअ-दिसासु चउवीसं ॥६३९॥

२४ ।

अर्थ—वे सारस्वत आदि लोकान्तिक देव आठ राजियोंके अन्तरालमें हैं । ईशान आदिक दिशाओंमें चौबीस देव हैं ॥६३९॥

पुव्वुत्तर-दिब्भाए, वसंति सारस्सदा[4] सुरा णिच्चं ।
आइच्चा पुव्वाए, अणल - दिसाए वि वण्हि - सुरा ॥६४०॥
दक्खिण-दिसाए अरुणा, णइरिदि-भागम्मि गद्दतोया य ।
पच्छिम-दिसाए तुसिदा, अव्वाबाधा समीर-दिब्भाए ॥६४१॥
उत्तर - दिसाए रिट्ठा,[5] एमेते अट्ठ ताण विच्चाले ।
दो - द्दो हवंति [6]अण्णे, देवा तेसु इमे णामा ॥६४२॥

अर्थ—पूर्व-उत्तर (ईशान) दिग्भागमें सर्वदा सारस्वत देव, पूर्व दिशामें आदित्य, अग्नि दिशामें वह्नि देव, दक्षिण दिशामें अरुण, नैऋत्य भागमें गर्दतोय, पश्चिम दिशामें तुषित, वायु दिग्भागमें अव्याबाध और उत्तर दिशामें अरिष्ट, इस कार ये आठ देव निवास करते हैं । इनके अन्तरालमें दो-दो अन्य देव हैं । उनके नाम ये हैं ॥६४०-६४२॥

सारस्सद - णामाणं, आइच्चाणं सुराण विच्चाले ।
अणलाभा सूराभा,[7] देवा चेट्ठंति णियमेणं ॥६४३॥

अर्थ—सारस्वत और आदित्य नामक देवोंके अन्तरालमें नियमसे अग्न्याभ और सूर्याभ देव स्थित हैं ॥६४३॥

---

१. द. ब. जे । २. द. ब. व होंति । ३. द. ब. क. ज. ठ. ईसाणदिसादिवसुर । ४. द. ब. क. ज. ठ. सारस्सदो । ५. द. ब. क. ज. ठ. अरिट्ठा । ६. द. ब. क. ज. ठ. अण्णं । ७. द. ब. क. ज. ठ. सुराभा ।

चंदाभा सूराभा, देवा आइच्च - वण्हि - विच्चाले ।
सेअक्खा खेमंकर, णाम [1]सुरा [2]वण्हि-अरुणम्मि ॥६४४॥

अर्थ—आदित्य और वह्निके अन्तरालमें चन्द्राभ और सूर्याभ (सत्याभ) तथा वह्नि और अरुणके अन्तरालमें श्रेयस्कर और क्षेमङ्कर नामक देव शोभायमान हैं ॥६४४॥

विसकोट्ठा कामधरा, विच्चाले अरुण - गद्दतोयाणं ।
णिम्माणराज-विसअंत-रक्खिआ[3] गद्दतोय-तुसिताणं ॥६४५॥

अर्थ—अरुण और गर्दतोयके अन्तरालमें वृषकोष्ठ (वृषभष्ट) और कामधर (कामचर) तथा गर्दतोय और तुषितके अन्तरालमें निर्माणराज (निर्माणरज) और दिगन्तरक्षित देव हैं ॥६४५॥

तुसितव्वाबाहाणं, अंतरदो अप्प-सव्व-रक्ख-सुरा ।
मरुदेवा वसुदेवा, तह अव्वाबाह-रिट्ठ-मज्झम्मि ॥६४६॥

अर्थ—तुषित और अव्याबाध के अन्तराल में आत्मरक्ष और सर्वरक्ष देव तथा अव्याबाध और अरिष्टके अन्तराल में मरुत् देव और वसुदेव हैं ॥६४६॥

सारस्सव-रिट्ठाणं, विच्चाले अस्स-विस्स-णाम-सुरा ।
सारस्सव-आइच्चा, पत्तेक्कं होंति सत्त-सया ॥६४७॥

७०० ।

अर्थ—सारस्वत और अरिष्ट के अन्तराल में अश्व एवं विश्व नामक देव स्थित हैं। सारस्वत और आदित्य प्रत्येक सात-सात (७००-७००) सौ हैं ॥६४७॥

वण्ही अरुणा देवा, सत्त-सहस्साणि सत्त पत्तेक्कं ।
णव-जुत्त-णव-सहस्सा, तुसिद[4] - सुरा गद्दतोया वि ॥६४८॥

७००७ । ९००९ ।

अर्थ—वह्नि और अरुण में स प्रत्येक सात हजार सात (७००७) तथा तुषित और गर्दतोय में से प्रत्येक नौ हजार नौ (९००९) हैं ॥६४८॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सुरो । २. द. क. ज. ठ. वण्हिएतम्मि, ब. वम्हिए मंति ।

३. द. ब. रक्खिणा । ४ द. ब. क. ज. ठ. तुरिद ।

अव्वाबाहा-रिट्ठा, एक्करस-सहस्स एक्करस-जुत्ता ।
अणलाभा वण्हि-समा, सूराभा गद्दतोय-सारिच्छा ॥६४९॥

११०११ । ७००७ । ९००९ ।

अर्थ—अव्याबाध और अरिष्ट प्रत्येक ग्यारह हजार ग्यारह (११०११) हैं। अनलाभ वह्नि देवों के सदृश (७००७) और सूर्याभ गर्दतोयों के सदृश (९००९) हैं ॥६४९॥

अव्वाबाह-सरिच्छा, चंदाभ[1] - सुरा हवंति सच्चाभा[2] ।
अजुदं तिण्णि सहस्सं, तेरस - जुत्ताए संखाए ॥६५०॥

११०११ । १३०१३ ।

अर्थ—चन्द्राभ देव अव्याबाधोंके सदृश (११०११) तथा सत्याभ तेरह हजार तेरह (१३०१३) हैं ॥६५०॥

पण्णरस-सहस्साणि, पण्णरस-जुवाणि होंति [3]सेयक्खा ।
खेमंकराभिधाणा, सत्तरस - सहस्सयाणि सत्तरसा ॥६५१॥

१५०१५ । १७०१७ ।

अर्थ—श्रेयस्क पन्द्रह हजार पन्द्रह (१५०१५) और क्षेमङ्कर नामक देव सत्तरह हजार सत्तरह (१७०१७) होते हैं ॥६५१॥

उणवीस-सहस्साणि, उणवीस-जुत्ताणि होंति विसकोट्ठा ।
इगिवीस - सहस्साणि, इगिवीस - जुवाणि कामधरा ॥६५२॥

१९०१९ । २१०२१ ।

अर्थ—वृषकोष्ठ उन्नीस हजार उन्नीस (१९०१९) और कामधर इक्कीस हजार इक्कीस (२१०२१) होते हैं ॥६५२॥

णिम्माणराज-णामा, तेवीस - सहस्सयाणि तेवीसा ।
पणुवीस-सहस्साणि, पणुवीस-जुवाणि दिंतरक्खा[4] य ॥६५३॥

२३०२३ । २५०२५ ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. चंदाभासुर । २. द. ब. क. ज. ठ. संखाभा । ३. द. ब. क. ज. ठ. सेअक्खा । ४. द. ब. तरक्खस ।

अर्थ—निर्माणराज देव तेईस हजार तेईस (२३०२३) और दिगन्तरक्ष पच्चीस हजार पच्चीस (२५०२५) होते हैं ॥६५३॥

सत्तावीस-सहस्सा, सत्तावीसं च अप्परक्ख - सुरा ।
उणतीस-सहस्साणि, उणतीस-जुदाणि सव्वरक्खा य ॥६५४॥

२७०२७ । २९०२९ ।

अर्थ—आत्मरक्ष देव सत्ताईस हजार सत्ताईस (२७०२७) और सर्वरक्ष उनतीस हजार उनतीस (२९०२९) होते हैं ॥६५४॥

एक्कत्तीस-सहस्सा, एक्कत्तीसं हुवंति मरु - देवा ।
तेत्तीस - सहस्साणि, तेत्तीस - जुदाणि वसु-णामा ॥६५५॥

३१०३१ । ३३०३३ ।

अर्थ—मरुदेव इकतीस हजार इकतीस (३१०३१) और वसु नामक देव तैंतीस हजार तैंतीस (३३०३३) होते हैं ॥६५५॥

पंचत्तीस-सहस्सा, पंचत्तीसा हुवंति अस्स-सुरा ।
सत्तत्तीस-सहस्सा, सत्तत्तीसं च विस्स-सुरा ॥६५६॥

३५०३५ । ३७०३७ ।

अर्थ—अश्वदेव पैंतीस हजार पैंतीस (३५०३५) और विश्वदेव सैंतीस हजार सैंतीस (३७०३७) होते हैं ॥६५६॥

चत्तारि य लक्खाणि, सत्त-सहस्साणि अड-सयाणि पि ।
छब्भहियाणि होदि हु, सव्वाणं पिंड - परिमाणं ॥६५७॥

४०७८०६ ।

अर्थ—इन सबका पिण्ड-प्रमाण चार लाख सात हजार आठ सौ छह (४०७८०६) है ॥६५७॥

विशेषार्थ—आठ कुलोंके सारस्वत आदि सम्पूर्ण लौकान्तिक देवोंका प्रमाण (७००+७००+७००७+७००७+९००९+९००९+११०११+११०११=) ५५४५४ है और आठ अन्तरालोंमें रहने वाले अनलाभ और सूर्याभ आदि सोलह कुलोंके लौकान्तिक देवोंका कुल प्रमाण (७००७+९००९+११०११+१३०१३+१५०१५+१७०१७+१९०१९+२१०२१+२३०२३+२५०२५+२७०२७+२९०२९+३१०३१+३३०३३ + ३५०३५ + ३७०३७ =)

३५२३५२ है। इसमें उपर्युक्त आठ कुलोंका प्रमाण मिला देनेपर आठ दिशाओंके आठ कुलों एवं आठ अन्तरालोंके सोलह कुलोंके लौकान्तिक देवोंका कुल प्रमाण (५५४५४+३५२३५२=) ४०७८०६ होता है। लौकान्तिक देवोंके अवस्थान आदिका चित्रण इसप्रकार है—
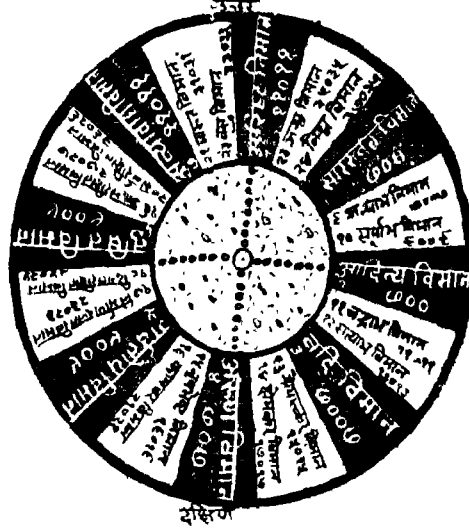
मतान्तरसे लोकान्तिक देवोंकी स्थिति एवं संख्या—

लोयविभागाइरिया,[1] सुराण लोयंति-आण वक्खाणं।
अण्ण - सरूवं [2]बेंति, त्ति तं पि एण्हिं परूवेमो ॥६५८॥

अर्थ—लोकविभागाचार्य लौकान्तिक देवोंका व्याख्यान अन्य रूपसे करते हैं; इसलिए अब उसका भी प्ररूपण करते हैं ॥६५८॥

पुव्वुत्तर[3]-दिब्भाए, वसंति [4]सारस्सदाभिधाण-सुरा।
आइच्चा पुव्वाए, वण्हि - दिसाए सुरा - वण्ही ॥६५९॥

दक्खिण-दिसाए अरुणा, णइरिदि-भागम्मि गद्दतोया य।
पच्छिम - दिसाए तुसिदा, अव्वाबाधा मरु - दिसाए ॥६६०॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. लोयविभाइरिया। २. द. ब. क. ज. ठ. हुंति त्ति पिच्छे। ३. द. क. ज. ठ. पुव्व तदिब्भाए, ब. पुव्वं व तदिब्भाए। ४. द. ब. क. ज. ठ. सारस्सतिसा ......।

उत्तर-दिसाए रिट्ठा, अग्गि-दिसाए वि होंति मज्झम्मि ।
एदाणं पत्तेयं, परिमाणाइं परूवेमो ।।६६१।।

पत्तेक्कं सारस्सद - आइच्चा तुसिद - गद्दतोया य ।
सत्तुत्तर - सत्त - सया, सेसा पुव्वोदिद - पमाणा ।।६६२।।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—पूर्व-उत्तर कोणमें सारस्वत नामक देव, पूर्वमें आदित्य, अग्नि दिशामें वह्नि देव, दक्षिण दिशामें अरुण, नैऋत्य भागमें गर्दतोय, पश्चिम दिशामें तुषित, वायु दिशामें अव्याबाध और उत्तर दिशामें तथा अग्नि दिशाके मध्यमें भी अरिष्ट देव रहते हैं । इनमेंसे प्रत्येकका प्रमाण कहते हैं । सारस्वत और आदित्य तथा तुषित और गर्दतोयमेंसे प्रत्येक सात सौ सात (७०७) और शेष देव पूर्वोक्त प्रमाणसे युक्त हैं ।।६६१-६६२।।

पाठान्तर ।

लोकान्तिक देवोंके उत्सेधादिका कथन—

पत्तेक्कं पण हत्था, उदओ लोयंतयाण देहेसुं ।
अट्ठमहण्णव - उवमा, सोहंते सुक्क - लेस्साओ ।।६६३।।

अर्थ—लोकान्तिक देवोंमेंसे प्रत्येकके शरीरका उत्सेध पाँच हाथ और आयु आठ सागरोपम प्रमाण है । ये देव शुक्ल लेश्यासे शोभायमान होते हैं ।।६६३।।

सव्वे [1]लोयंतसुरा, एक्कारस-अंग-धारिणो णियमा ।
सम्मद्दंसण - सुद्धा, होंति सतत्ता सहावेणं ।।६६४।।

अर्थ—सब लोकान्तिक देव नियमसे ग्यारह अंगके धारी, सम्यग्दर्शनसे शुद्ध और स्वभावसे ही तृप्त होते हैं ।।६६४।।

महिलादी परिवारा, ण होंति एदाण संततं [2]जम्हा ।
संसार-खवण - कारण - वेरग्गं भावयंति ते तम्हा ।।६६५।।

अर्थ—क्योंकि इनके महिलादिक रूप परिवार नहीं होते हैं, इसलिए ये निरन्तर संसार-क्षयके कारणभूत वैराग्यकी भावना भाते हैं ।।६६५।।

---

१. द. ब क. ज. ठ पुहंत । २. द. ब. क. ज. ठ. जे ।

अद्धुवमसरण-पहुदिं, भावं ते भावयंति अणवरदं ।
बहु-दुक्ख-सलिल-पूरिद-संसार-समुद्द-बुड्डण - भएणं ॥६६६॥

अर्थ—बहुत दुःखरूप जलसे परिपूर्ण संसार रूपी समुद्रमें डूबनेके भयसे वे लौकान्तिक देव निरन्तर अनित्य एवं अशरण आदि भावनाएँ भाते हैं ॥६६६॥

तित्थयराणं समए, परिणिक्कमणम्मि जंति ते सव्वे ।
दु-चरिम-देहा देवा, बहु-विसम-किलेस-उम्मुक्का[1] ॥६६७॥

अर्थ—द्विचरम शरीरके धारक अर्थात् एक ही मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष जानेवाले और अनेक विषम क्लेशोंसे रहित वे सब देव तीर्थंकरोंके दीक्षा कल्याणकमें जाते हैं ॥६६७॥

देवरिसि-णामधेया, सव्वेहि सुरेहि अच्चणिज्जा ते ।
भत्ति - पसत्ता सज्झय - साधीणा सव्व - कालेसुं ॥६६८॥

अर्थ—देवर्षि नाम वाले वे देव सब देवोंसे अर्चनीय, भक्तिमें प्रसक्त और सर्वकाल स्वाध्यायमें स्वाधीन होते हैं ॥६६८॥

लौकान्तिक देवोंमें उत्पत्ति का कारण—

इह खेत्ते वेरग्गं, बहु - भेयं भाविदूण बहुकालं ।
संजम - भावेहि [2]मओ, देवा लोयंतिया होंति ॥६६९॥

अर्थ—इस क्षेत्रमें बहुत काल पर्यन्त बहुत प्रकारके वैराग्यको भाकर संयम सहित मरण कर लौकान्तिक देव होते हैं ॥६६९॥

थुइ-णिंदासु समाणो, सुह-दुक्खेसुं सबंधु-रिवु-वग्गे ।
जो समणो सम्मत्तो, सो च्चिय लोयंतिओ होदि[3] ॥६७०॥

अर्थ—जो सम्यग्दृष्टि श्रमण स्तुति और निन्दामें, सुख और दुःखमें तथा बन्धु और शत्रु वर्गमें समान है, वही लौकान्तिक होता है ॥६७०॥

जे णिरवेक्खा देहे, णिद्दंदा णिम्ममा णिरारंभा ।
णिरवज्जा समण-वरा, ते च्चिय लोयंतिया होंति ॥६७१॥

अर्थ—जो देहके विषयमें निरपेक्ष हैं, तीनों योगोंको वश करनेवाले हैं तथा निर्ममत्व, निरारम्भ और निरवद्य हैं वे ही श्रमण श्रेष्ठ लौकान्तिक देव होते हैं ॥६७१॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ उमुक्का । २. द. ब. क. ज. ठ. मणा । ३. द. ब. ज. ठ. होंति ।

संजोग[1] - विप्पजोगे, लाहालाहम्मि जीविदे मरणे ।
जो समविट्ठी[2] समणो, सो च्चिय लोयंतिओ होंति ।।६७२।।

अर्थ—जो श्रमण संयोग और वियोगमें, लाभ और अलाभमें तथा जीवित और मरणमें समदृष्टि होते हैं, वे ही लौकान्तिक होते हैं ।।६७२।।

अणवरदमप्पमत्तो,[3] संजम-समिदीसु झाण-जोगेसु ।
तिव्व-तव - चरण - जुत्ता, समणा लोयंतिया होंति ।।६७३।।

अर्थ—संयम, समिति, ध्यान एवं समाधिके विषयमें जो निरन्तर अप्रमत्त (सावधान) रहते हैं तथा तीव्र तपश्चरणसे संयुक्त हैं, वे श्रमण लौकान्तिक होते हैं ।।६७३।।

पंचमहव्वय-सहिदा, पंचसु समिदीसु [4]थिर-णिचिट्ठमाणा ।
पंचक्ख - विसय - विरदा, रिसिणो लोयंतिया होंति ।।६७४।।

अर्थ—पाँच महाव्रतों सहित पाँच समितियोंका स्थिरता पूर्वक पालन करने वाले और पाँचों इन्द्रिय-विषयोंसे विरक्त ऋषि लौकान्तिक होते हैं ।।६७४।।

ईषत्प्राग्भार (८ वीं) पृथ्वी का अवस्थान एवं स्वरूप—

सव्वट्ठसिद्धि - इंदय - केदणदंडादु उवरि गंतूणं ।
बारस - जोयणमेत्तं, अट्ठमिया चेट्ठदे पुढवी ।।६७५।।

अर्थ—सर्वार्थसिद्धि इन्द्रकके ध्वजदण्डसे बारह योजन प्रमाण ऊपर जाकर आठवीं पृथिवी अवस्थित है ।।६७५।।

पुव्वावरेण तीए, उवरिम - हेट्ठिम - तलेसु पत्तेक्कं ।
वासो हवेदि एक्का, रज्जू[5] रूवेण परिहीणा ।।६७६।।

अर्थ—उसके उपरिम और अधस्तन तलमेंसे प्रत्येकका विस्तार पूर्व-पश्चिममें रूपसे रहित एक राजू प्रमाण है ।।६७६।।

उत्तर-दक्खिण-भाए, [6]दीहा किंचूण-सत्त-रज्जूओ ।
वेत्तासण-संठाणा, सा पुढवी अट्ठ - जोयणा बहला ।।६७७।।

---

१. द. ब. सजोगच्छिव्रयोगे । २. ब. क. सम्मद्दिट्ठि । ३. द. ब. ज. ठ. अणवरदसमं पत्तो ।
४. द. ब. क. ज. ठ. थिर । ५. द. ब. क. ज ठ. रज्जो । ६. द. ब. क. ज. ठ. दीह ।

अर्थ—वेत्रासनके सदृश वह पृथिवी उत्तर-दक्षिणभागमें कुछ कम सात राजू लम्बी और आठ योजन बाहल्यवाली है ।।६७७।।

जुत्ता घणोवहि-घणाणिल-तणुवादेहिं[1] तिहिं समीरेहिं ।
जोयण - वीस - सहस्सं, पमाण - बहलेहिं पत्तेक्कं ।।६७८।।

अर्थ—यह पृथिवी घनोदधि, घनवात और तनुवात इन तीन वायुओंसे युक्त है । इनमेंसे प्रत्येक वायुका बाहल्य (मोटाई) बीस हजार योजन प्रमाण है ।।६७८।।

एदाए बहुमज्झे, खेत्तं णामेण ईसिपब्भारं ।
अज्जुण-सुवण्ण-सरिसं, णाणा - रयणेहिं परिपुण्णं ।।६७९।।

अर्थ—इसके बहु-मध्य-भागमें नाना रत्नोंसे परिपूर्ण चाँदी एवं स्वर्णके सदृश ईषत्प्राग्भार नामक क्षेत्र है ।।६७९।।

उत्ताण - धवल - छत्तोवमाण - संठाण-सुंदरं एवं ।
पंचत्तालं जोयण - लक्खाणिं वास - संजुत्तं ।।६८०।।

अर्थ—यह क्षेत्र उत्तान धवल छत्रके सदृश आकारसे सुन्दर और पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन प्रमाणसे संयुक्त है ।।६८०।।

तम्मज्झ - बहलमट्ठं, जोयणया अंगुलं पि अंतम्मि ।
अट्ठम-भू-मज्झ-गदो, तप्परिही मणुव-खेत्त-परिहि-समो ।।६८१।।

८ । अं १ ।

अर्थ—उसका मध्य बाहल्य आठ योजन और अन्तमें एक अंगुल प्रमाण है । अष्टम भूमि में स्थित सिद्धक्षेत्रकी परिधि मनुष्य क्षत्रकी परिधिके सदृश है ।।६८१।।

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१. ब. ब. क. ज. ठ. घणाणिलवादेहिं ।
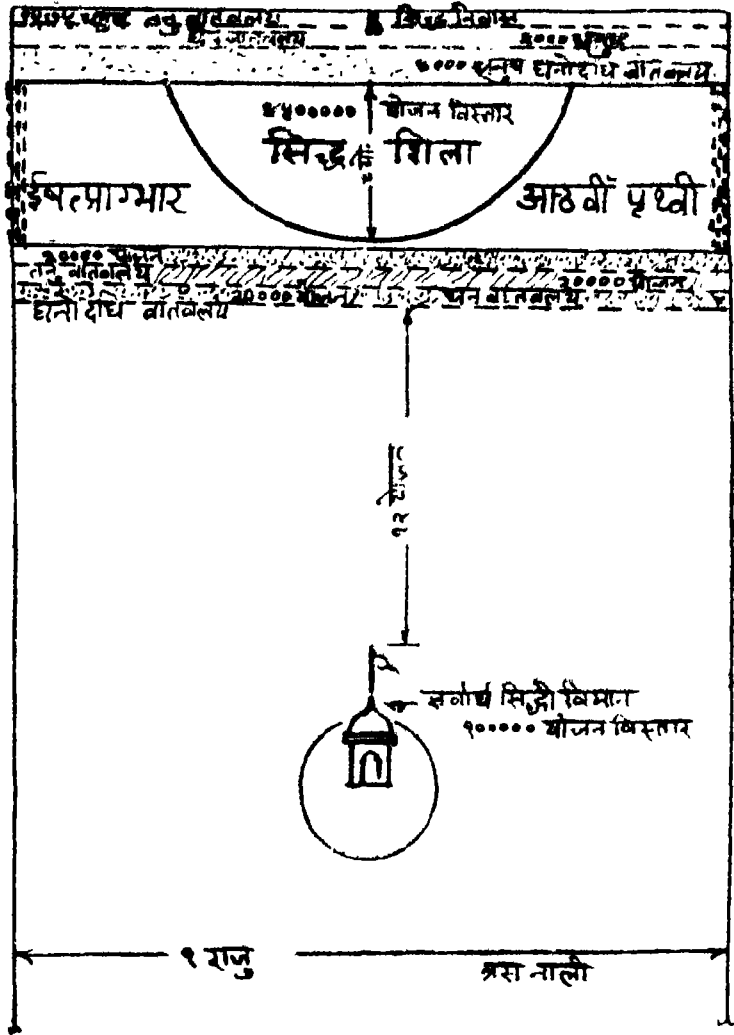
विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धि विमान के ध्वजदण्ड से १२ योजन ऊपर जाकर क्रमश: बीस-बीस हजार मोटे घनोदधि, घन और तनु-वातवलय हैं; इसके बाद पूर्व-पश्चिम एक राजू विस्तार वाली ईषत्प्राग्भार नामक ८वीं पृथिवी है। यह पृथिवी उत्तर-दक्षिण ७ राजू लम्बी और ८ योजन मोटी है। इसका घनफल प्रथमाधिकार पृष्ठ १३६ के अनुसार (१ राजू विस्तृत × ७ राजू आयत × ८ योजन बाहल्य को जगत्प्रतर रूप से करने पर) ४९ वर्गराजू × $\frac{8}{7}$ योजन प्रमाण है।

इस पृथिवी के बहुमध्य भाग में उत्तान (ऊर्ध्वमुख) छत्र के आकार सदृश आकार वाला और ४५ लाख योजन विस्तृत ईषत्प्राग्भार नामक क्षेत्र (सिद्ध-शिला) है। इस शिलाका मध्य बाहल्य ८ योजन और अन्त (के दोनों छोरों का) बाहल्य एक-एक अंगुल प्रमाण है। इसकी सूक्ष्म

परिधि का प्रमाण मनुष्य लोक की परिधि के प्रमाण सदृश (चतुर्थाधिकार गा० ७) १४२३०२४९ यो० है। इस पृथिवी के ऊपर अर्थात् लोक के अन्त में क्रमशः ४००० धनुष, २००० धनुष और १५७५ धनुष मोटे घनोदधि, घन और तनु वातवलय हैं। इसप्रकार सर्वार्थसिद्धि विमान के ध्वजदण्ड से (१२ यो० + ८ यो० + ७५७५ धनुष अर्थात्) ४२५ धनुष कम २१ योजन ऊपर अर्थात् तनुवातवलय में सिद्ध प्रभु विराजमान हैं। इनके निवास क्षेत्र के घनफल आदि के लिए नवमाधिकार की गाथा ३-४ द्रष्टव्य है।

नोट—इसी ग्रन्थके प्रथमाधिकार गा० १६३ के विशेषार्थमें सर्वार्थसिद्धि विमानके ध्वजदण्डसे २९ यो० ४२५ धनुष ऊपर जाकर लोकका अन्त लिखा है। जो अष्टमाधिकार गा० ६७५-६८१ का विषय देखते हुए गलत प्रतीत होता है। १/१६३ का विशेषार्थ जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग ३ पृष्ठ ४६० पर ऊर्ध्वलोक के सामान्य परिचय के अन्तरगत दिये हुए नोट के आधार पर दिया था। यदि सिद्धशिला के मध्यभाग की ८ योजन मोटाई, ८ योजन मोटी ८ वीं पृथिवी में ही निहित है तो सर्वार्थसिद्धि विमानके ध्वजदण्ड से सिद्धोंका निवास क्षेत्र ४२५ धनुष कम २१ यो० होता है (यही प्रमाण यथार्थ ज्ञात होता है क्योंकि दूसरे अधिकार की गाथा २४ में ८ वीं पृथिवी द्वारा दसों दिशाओं में घनोदधि वातवलय का स्पर्श कहा गया है) और यदि ८ योजन मोटी आठवीं पृथिवी के ऊपर ८ योजन बाहल्यवाली सिद्धशिला है तो उस क्षेत्र की ऊँचाई अर्थात् लोक के अन्त का प्रमाण (१२ यो० + ८ यो० + ८ यो० + ७५७५ धनुष) ४२५ धनुष कम २९ यो० होगा। यह विषय विद्वज्जनों द्वारा विचारणीय है।

एदस्स चउ-दिसासुं, चत्तारि तमोमयाओ राजीओ[1]।
णिस्सरिदूणं बाहिर-राजीणं होदि बाहिर - प्पासा ॥६८२॥

तच्छिविदूणं तत्तो, ताओ पविसाओ चरिम-उवहिम्मि।
अब्भंतर[2] - तीरादो, संखातीदे अ जोयणे य धुवं ॥६८३॥

बाहिर-चउ-राजीणं, बहि-अवलंबो पदेदि दीवम्मि।
जंबूदीवाहितो, गंतूणं असंख - दीव - वारिणिहि ॥६८४॥

बाहिर-भागाहितो, अवलंबो तिमिरकाय-णामस्स।
जंबूदीवेहितो, तम्मेत्तं गदुअ[3] पददि दीवम्मि ॥६८५॥

एवं [4]लोयंतिय-परूवणा समत्ता।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. रज्जूओ। २. द. अब्भिंतर।
३. द. ब. क. ज. ठ. गदु। ४. द. ब. क. ज. ठ. लोय।

अर्थ—इसकी चारों दिशाओं में चार तमोमय राजियाँ निकलकर बाह्य राजियों के बाह्य पार्श्वपर होती हुईं उन्हें छूकर निश्चय से अभ्यन्तर तीर से असंख्यात योजन प्रमाण अन्तिम समुद्र में गिरी हैं। बाह्य चार राजियों के बाह्य भाग का अवलम्बन करने वाला जम्बूद्वीप से असंख्यात द्वीप-समुद्र जाकर द्वीप में गिरता है। बाह्य भागों से तिमिर काय नामका अवलम्ब जम्बूद्वीप से इतने ही प्रमाण जाकर द्वीप में गिरता है ॥६८२-६८५॥

नोट—गाथा ६२२ से ६३६ और ६८२ से ६८५ अर्थात् १९ गाथाओं का यथार्थ भाव बुद्धिगत नहीं हुआ।

इसप्रकार लोकान्तिक देवों की प्ररूपणा समाप्त हुई॥

बीस प्ररूपणाओं का दिग्दर्शन—

गुण-जीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणाओ वि।
उवजोगा भणिदव्वा, देवाणं देव - लोयम्मि[1] ॥६८६॥

अर्थ—अब देवलोक में देवों के गुणस्थान, जीवसमाज, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा मार्गणा और उपयोग, इनका कथन करना चाहिए ॥६८६॥

चत्तारि गुणट्ठाणा, जीवसमासेसु सण्णि-पज्जत्तो।
णिव्वत्तिय-पज्जत्तो, छ-पज्जत्तीओ छहं अपज्जत्ती ॥६८७॥
पज्जत्ते दस पाणा, इदरे पाणा हवंति सत्तेव।
इंदिय-मण-वयण-तणू, आउस्सासा[2] य दस-पाणा ॥६८८॥
तेसुं मण-वय-उच्छास-वज्जिदा सत्त तह अपज्जत्ते।
चउ-सण्णाओ होंति हु, चउसु गदीसुं च देवगदी ॥६८९॥
पंचक्खा तस-काया, जोगा एक्कारस-प्पमाणा य।
ते अट्ठ मण-वयाणि, वेगुव्व-दुगं च कम्मइयं ॥६९०॥
पुरिसित्थी-वेद-जुदा, सयल-कसाएहिं संजुदा देवा।
छण्णाणेहिं सहिदा,[3] सव्वे वि असंजदा ति-दंसणया ॥६९१॥

अर्थ—चार गुणस्थान, जीव-समासों में संज्ञी पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त, छह पर्याप्तियाँ और छहों अपर्याप्तियाँ; पर्याप्त अवस्था में पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काय, आयु और श्वासोच्छ्वास ये दस प्राण; तथा अपर्याप्त अवस्था में मन, वचन और उच्छ्वास से रहित शेष सात प्राण; चार

---

१. द. क. ज. ठ. वायम्मि। २. द. ब. क. ज. ठ आउस्ससयासदसपाणा।

३. द. ब. क. ज. ठ. सदा।

संज्ञाएँ, चार गतियों में से देवगति, पंचेन्द्रिय, त्रस-काय; आठ मन-वचन, दो वैक्रियिक (वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्र) तथा कार्मण, इसप्रकार ग्यारह योग; पुरुष एवं स्त्री वेद से युक्त, समस्त कषायों से संयुक्त, छह ज्ञानों सहित, सब ही असंयत और तीन दर्शन से युक्त होते हैं ॥६८७-६९१॥

दोण्हं दोण्हं छक्कं, दोण्हं तह तेरसाण देवाणं।
लेस्साओ चोद्दसाओ, वोच्छामो आणुपुव्वीए ॥६९२॥

तेऊए मज्झिमंसा, तेउक्कस्स - पउम - अवरंसा।
पउमाए मज्झिमंसा, पउमुक्कस्सं सुक्क-अवरंसा ॥६९३॥

सुक्काय मज्झिमंसा, उक्कस्संसा य सुक्क-लेस्साए।
एदाओ लेस्साओ, णिद्दिट्ठा सव्व - दरिसीहिं ॥६९४॥

सोहम्म-प्पहुदीणं, [1]एदाओ दव्व-भाव-लेस्साओ।
उवरिम - गेवेज्जंतं, भव्वाभव्वा सुरा होंति ॥६९५॥

तत्तो उवरि भव्वा, उवरिम - गेवेज्जयस्स परियंतं।
छब्भेदं सम्मत्तं, उवरि [2]उवसमिय-खइय-वेदकया ॥६९६॥

ते सव्वे सण्णीओ, देवा आहारिणो अणाहारा।
सागार-अणागारा, दो च्चेव य होंति उवजोगा ॥६९७॥

अर्थ—दो (सौधर्मेशान), दो (सा०-माहेन्द्र), ब्रह्मादिक छह, शतारद्विक, आनतादि नौ ग्रैवेयक पर्यन्त तेरह, तथा चौदह (नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर), अनुक्रमसे इन देवोंकी लेश्याओं का कथन करता हूँ—

सौधर्म और ईशानमें पीत लेश्याका मध्यम अंश, सनत्कुमार और माहेन्द्रमें पद्मके जघन्य अंश सहित पीतका उत्कृष्ट अंश, ब्रह्मादिक छह में पद्मका मध्यम अंश, शतार युगल में शुक्ल लेश्या के जघन्य सहित पद्मका उत्कृष्ट अंश, आनत आदि तेरह में शुक्ल का मध्यम अंश और अनुदिशादि चौदह में शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अंश होता है; इसप्रकार सर्वज्ञ देवने देवों में ये लेश्यायें कही हैं। सौधर्मादिक देवों के ये द्रव्य एवं भाव लेश्यायें समान होती हैं। उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त देव भव्य और अभव्य दोनों तथा इससे ऊपर भव्य ही होते हैं। उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त छहों प्रकार के सम्यक्त्व तथा इससे ऊपर औपशमिक, क्षायिक और वेदक ये तीन सम्यक्त्व होते हैं। वे सब देव संज्ञी तथा आहारक एव अनाहारक होते हैं। इन देवों के साकार और अनाकार दोनों ही उपयोग होते हैं ॥६९२-६९७॥

---

१. ब. एदाण। २. द. ब. क. उवसमियखइय।

कप्पा कप्पादीदा, दुचरम-देहा हवंति केइ सुरा ।
सक्को सहग्ग-महिसी,[1] सलोयवालो य दक्खिणा इंदा ।।६९८।।
सव्वट्ठसिद्धिवासी, लोयंतिय - णामधेय - सव्व-सुरा ।
णियमा दुचरिम-देहा, सेसेसुं णत्थि णियमो य ।।६९९।।

एवं गुणठाणादि-परूवणा समत्ता ।

अर्थ—कल्पवासी और कल्पातीतों में से कोई देव द्विचरम-शरीरी अर्थात् आगामी भवमें मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं ।

अग्रमहिषी और लोकपालों सहित सौधर्म इन्द्र, दक्षिण इन्द्र, सर्वार्थसिद्धिवासी तथा लौकान्तिक नामक सब देव नियम से द्विचरम-शरीरी हैं । शेष देवों में नियम नहीं है ।।६९८-६९९।।

इसप्रकार गुणस्थानादि-प्ररूपणा समाप्त हुई ।।

सम्यक्त्व ग्रहणके कारण—

जिण-महिम-दंसणेणं, केई जादी - सुमरणादो वि ।
देवद्धि[2] - दंसणेण य, ते देवा धम्म - सवणेण ।।७००।।
गेण्हंते सम्मत्तं, णिव्वाणब्भुदय - साहण - णिमित्तं ।
दुव्वार - गहिर[3] - संसार - जलहिणोत्तारणोवायं ।।७०१।।

अर्थ—उनमें से कोई देव जिनमहिमा के दर्शनसे, कोई जातिस्मरणसे, कोई देवर्द्धिके देखने से और कोई धर्मोपदेश सुनने से निर्वाण एवं स्वर्गादि अभ्युदय के साधक तथा दुर्वार एवं गम्भीर संसाररूपी समुद्र से पार उतारने वाला सम्यक्त्व ग्रहण करते हैं ।।७००-७०१।।

णवरि हु णव-गेवेज्जा, एदे देवड्ढि-वज्जिदा होंति ।
उवरिम - चोद्दस - ठाणे, सम्माइट्ठी सुरा सव्वे ।।७०२।।

दंसण-गहण-कारणं समत्तं ।।

अर्थ—विशेष यह है कि नौ ग्रैवेयकों में उपर्युक्त कारण देवर्द्धि दर्शन से रहित होते हैं । इसके ऊपर चौदह स्थानों में सब देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं ।।७०२।।

सम्यग्दर्शन-ग्रहण के कारणों का कथन समाप्त हुआ ।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. मच्छासि । २. द. देवत्ति, ब देवण्णि, क. ज. ठ. देवड्ढि ।
३. द. ब. क. ज. ठ. रहिद ।

वैमानिक देव मरकर कहाँ-कहाँ जन्म लेते हैं –

आईसाणं देवा, जणणा एइंदिएसु भजिदव्वा ।
उवरि सहस्सारंतं, ते भज्जा[1] सण्णि-तिरिय-मणुवत्ते ।।७०३।।

अर्थ—ईशान कल्प पर्यन्त के देवों का जन्म एकेन्द्रियों में विकल्पनीय है। इससे ऊपर सहस्रार कल्प पर्यन्त के सब देव विकल्प से संज्ञी तिर्यञ्च या मनुष्य होते हैं ।।७०३।।

तत्तो उवरिम-देवा, सव्वे सुक्काभिधाण-लेस्साए ।
उप्पज्जंति मणुस्से, णत्थि तिरिक्खेसु उववादो ।।७०४।।

अर्थ—इससे ऊपर के सब देव शुक्ल लेश्या के साथ मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, इनकी उत्पत्ति तिर्यञ्चों में नहीं है ।।७०४।।

देव-गदीदो चत्ता, कम्मक्खेत्तम्मि सण्णि-पज्जत्ते ।
गब्भ-भवे जायंते, ण भोगभूमीण णर-तिरिए ।।७०५।।

अर्थ—देवगति से च्युत होकर वे देव कर्मभूमि में संज्ञी, पर्याप्त एवं गर्भज होते हैं, भोगभूमियों के मनुष्य और तिर्यञ्चों में नहीं होते हैं ।।७०५।।

सोहम्मादी देवा, भज्जा हु सलाग-पुरिस-णिवहेसुं ।
णिस्सेयस-गमणेसुं, सव्वे वि अणंतरे जम्मे ।।७०६।।

अर्थ—सब सौधर्मादिक देव अगले जन्म में शलाका-पुरुषों के समूह में और मुक्ति-गमन के विषय में विकल्पनीय हैं ।।७०६।।

णवरि विसेसो सव्वट्ठसिद्धि-ठाणदो विच्चुदा[2] देवा ।
भज्जा सलाग-पुरिसा, णिव्वाणं यांति णियमेणं ।।७०७।।

एवं आगमण-परूवणा समत्ता ।।

अर्थ—विशेष यह है कि सर्वार्थसिद्धि से च्युत हुए देव शलाकापुरुषरूप से विकल्पनीय हैं, किन्तु वे नियम से निर्वाण प्राप्त करते हैं ।।७०७।।

इसप्रकार आगमन-प्ररूपणा समाप्त हुई ।।

---

१. द. ब. भव्वा, क. ज. ठ. सव्वा । २. द. ब. क. विच्चुदो ।

देवों के अवधिज्ञानका कथन—

सक्कीसाणा पढमं, माहिंद-सणक्कुमारया बिदियं ।
तदियं च बम्ह-लंतव-वासी तुरिमं सहस्सयार[1]-गदा ॥७०८॥

आणद-पाणद-आरण-अच्चुद-वासी य पंचमं पुढविं ।
छट्ठी पुढवी हेट्ठा, णव - विह - गेवेज्जगा देवा ॥७०९॥

सव्वं च लोयणालिं, अणुद्दिसाणुत्तरेसु पस्संति ।
सक्खेत्तम्मि[2] सकम्मे,[3] रूवम-गदमणंत-भागो य ॥७१०॥

कप्पामराण[4] णिय-णिय-ओही-दव्वस्स विस्ससोवचयं ।
ठविदूणं हरिदव्वं, तत्तो धुव - भागहारेणं ॥७११॥

णिय-णिय-खेत्त-पदेसं, सलाग-संखा समप्पदे जाव[5] ।
अंतिल्ल - खंधमेत्तं, एदाणं ओहि - दव्वं खु ॥७१२॥

अर्थ— सौधर्मेशान कल्पके देव अपने अवधिज्ञान से नरक की प्रथम पृथिवी पर्यन्त, सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पके देव दूसरी पृथिवी पर्यन्त, ब्रह्म और लान्तव कल्पके देव तृतीय पृथिवी पर्यन्त, सहस्रार कल्पवासी देव चतुर्थ पृथिवी पर्यन्त; आनत, प्राणत, आरण एवं अच्युत कल्पके देव पाँचवी पृथिवी पर्यन्त, नौ प्रकार के ग्रैवेयक वासी देव छठी पृथिवी के नीचे पर्यन्त तथा अनुदिश एवं अनुत्तर वासी देव सम्पूर्ण लोकनाली को देखते है । अपने कर्म द्रव्य में अनन्त का भाग देकर अपने क्षेत्र में से एक-एक कम करना चाहिए । कल्पवासी देवों के विस्रसोपचय रहित अपने अवधिज्ञानावरण द्रव्यको रखकर जब तक अपने-अपने क्षेत्र-प्रदेश की शलाकाएँ समाप्त न हो जावें तब तक ध्रुवहार का भाग देना चाहिए । उक्त प्रकार से भाग देने पर अन्त में जो स्कन्ध रहे उतने प्रमाण इनके अवधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य समझना चाहिए ॥७०८-७१२॥

विशेषार्थ—वैमानिक देवों का अपना-अपना जितना-जितना अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र कहा है, उसके जितने-जितने प्रदेश हैं उन्हें एकत्र कर स्थापित करना और विस्रसोपचय रहित सत्तामें स्थित अपने-अपने अवधिज्ञानावरण कर्मके परमाणुओं को एक ओर स्थापित कर इस अवधिज्ञानावरण के द्रव्यको ध्रुवहार का एक बार भाग देना और क्षेत्र के प्रदेश-पुञ्ज में से एक प्रदेश घटा देना । भाग देने पर प्राप्त हुई लब्धराशि में दूसरी बार उसी ध्रुवहार का भाग देना और प्रदेश पुञ्ज में से

---

१. महाशुक्र कल्पका विषय छूट गया है । २. ब. क. ज. ठ. संखेत्तं ।

३. द. क. ज. ठ. संकम्मे । ४. द. ब. क. ज. ठ. कप्पामरा य । ५. ब. क. जीवा ।

एक प्रदेश पुनः घटा देना । पुनः लब्धराशि में ध्रुवहार का भाग देना और प्रदेश पुञ्ज में से एक प्रदेश और घटा देना । इसप्रकार अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र के जितने प्रदेश हैं उतनी बार अवधि-ज्ञानावरण कर्म के परमाणु पुञ्ज भजनफल स्वरूप लब्धराशि में भाग देने के बाद अन्त में जो लब्ध राशि प्राप्त हो उतने परमाणु पुञ्ज स्वरूप पुद्गल स्कन्ध को वैमानिक देव अपने अवधिनेत्र से जानते हैं । यथा—

मानलो—अवधिक्षेत्र के प्रदेश १० हैं और विस्रसोपचय रहित अवधिज्ञानावरण कर्म स्कन्ध के परमाणु १०००००००००००० हैं तथा ध्रुव भागहार का प्रमाण है अतः—

क्षेत्र-१० प्रदेश	अवधिज्ञानावरणका द्रव्य
	१००००००००००
१०—१=९	१०००००००००००० × $\frac{1}{2}$ = २००००००००००० ।
९—१=८	२००००००००००० × $\frac{1}{2}$ = ४०००००००००० ।
८—१=७	४०००००००००० × $\frac{1}{2}$ = ८००००००००० ।
७—१=६	८००००००००० × $\frac{1}{2}$ = १६००००००००।
६—१=५	१६०००००००० × $\frac{1}{2}$ = ३२००००००० ।
५—१=४	३२००००००० × $\frac{1}{2}$ = ६४०००००० ।
४—१=३	६४०००००० × $\frac{1}{2}$ = १२८००००० ।
३—१=२	१२८००००० × $\frac{1}{2}$ = २५६००० ।
२—१=१	२५६००० × $\frac{1}{2}$ = ५१२०० ।
१—१=०	५१२०० × $\frac{1}{2}$ = १०२४० ।

पुद्गल स्कन्ध को वैमानिक देव अपने अवधिनेत्र से जानते हैं ।

होंति असंखेज्जाओ, सोहम्म-दुगस्स वास-कोडीओ ।
पल्लस्सासंखेज्जो, भागो सेसाण जह - जोग्गं ।।७१३।।

एवं ओहि-णाणं गदं ।।

अर्थ—कालकी अपेक्षा सौधर्मयुगलके देवों का अवधि-विषय असंख्यात वर्ष करोड़ और शेष देवों का यथायोग्य पल्यके असंख्यातवेंभाग प्रमाण है ।।७१३।।

इसप्रकार अवधिज्ञान का कथन समाप्त हुआ ।।

वैमानिक देवोंका पृथक्-पृथक् प्रमाण—

सोहम्मीसाण - दुगे, विदंगुल-तदिय-मूल-हद-सेढी ।
बिदिय-[1]जुगलम्मि सेढी, [2]एक्करसम-वग्गमूल-हिदा ।।७१४।।

३ । ११ ।

अर्थ—सौधर्म-ईशान युगलमें देवोंकी संख्या घनाङ्गुलके तृतीय वर्गमूलसे गुणित श्रेणी (श्रेणी × घ० अं० का ३ वर्गमूल) प्रमाण और द्वितीय युगलमें अपने ग्यारहवें वर्गमूलसे भाजित श्रेणी (श्रेणी ÷ श्रेणीका ११ वां वर्गमूल) प्रमाण है ।।७१४।।

बम्हम्मि होदि सेढी, सेढी-णव-वग्गमूल-अवहरिदा ।
लंतवकप्पे सेढी, सेढी - सग - वग्गमूल - हिदा ।।७१५।।

९ । ७ ।

अर्थ—ब्रह्मकल्पमें देवोंकी संख्या श्रेणीके नौवें वर्गमूलसे भाजित श्रेणी (श्रेणी ÷ श्रेणी का ९ वां वर्गमूल) प्रमाण और लान्तवकल्पमें श्रेणीके सातवें वर्गमूलसे भाजित श्रेणी (श्रेणी ÷ श्रेणीका ७ वां वर्गमूल) प्रमाण है ।।७१५।।

महसुक्कम्मि य सेढी, सेढी-पण-वग्गमूल-भजिदव्वा ।
सेढी सहस्सयारे, सेढी - चउ - वग्गमूल हिदा ।।७१६।।

५ । ४ ।

अर्थ—महाशुक्लकल्पमें देवोकी संख्या श्रेणीके पांचवें वर्गमूलसे भाजित श्रेणी (श्रे० ÷ श्रेणीका ५ वां वर्गमूल) प्रमाण और सहस्रार कल्पमें श्रेणीके चतुर्थ वर्गमूलसे भाजित श्रेणी प्रमाण है ।।७१६।।

अवसेस - कप्प - जुगले, पल्लासंखेज्जभागमेक्केक्के ।
देवाणं संखादो, संखेज्जगुणा हवंति देवीओ ।।७१७।।

| प / रि |[3]

अर्थ—अवशेष दो कल्प युगलों में से एक-एक में देवों का प्रमाण पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र है । देवों की संख्या से देवियां संख्यातगुणी हैं ।।७१७।।

---

१. द. ब. जुलम्मि । २. ब. एक्करसग, द. क. ज. ठ. एक्करसवग्ग ।
३. द. ब. क. ज. ठ. ५/६ ।

हेट्ठिम-मज्झिम-उवरिम-गेवेज्जेसु अणुद्दिसादि-दुगे ।
पल्लासंखेज्जंसो, सुराण संखाए जह - जोग्गं ।।७१८।।

| प |
| रि |

अर्थ—अधस्तन ग्रैवेयक, मध्य ग्रैवेयक, उपरिम ग्रैवेयक और अनुदिश-द्विक (अनुदिश-अनुत्तर) में देवों की संख्या यथायोग्य पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।।७१८।।

णवरि विसेसो सव्वट्ठसिद्धि-णामम्मि होदि-संखेज्जो ।
देवाणं परिसंखा, णिद्दिट्ठा वीयरागेहिं ।।७१९।।

संखा गदा ।।

अर्थ—विशेष यह है कि सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक में संख्यात देव हैं । इसप्रकार वीतराग-देव ने देवों की संख्या निर्दिष्ट की है ।

संख्या का कथन समाप्त हुआ ।।७१९।।

वैमानिक देवों की शक्तिका दिग्दर्शन—

एक्क - पलिदोवमाऊ, उप्पाडेदुं धराए छक्खंडे ।
तग्गद-णर-तिरिय-जणे, मारेदुं पोसिदुं सक्को ।।७२०।।

अर्थ—एक पल्योपम प्रमाण आयुवाला देव पृथिवी के छह खण्डों को उखाड़ने में और उनमें स्थित मनुष्य और तिर्यञ्चों को मारने अथवा पोषण करने में समर्थ है ।।७२०।।

उवहि-उवमाण-जीवी, पल्लट्टेदुं च [2]जंबुदीवं हि ।
तग्गद - णर - तिरियाणं, मारेदुं पोसिदुं सक्को ।।७२१।।

अर्थ—सागरोपम प्रमाण काल पर्यन्त जीवित रहनेवाला देव जम्बूद्वीपको भी पलटनेमें और उसमें स्थित मनुष्य और तिर्यञ्चों को मारने अथवा पोषनेमें समर्थ है ।।७२१।।

सोहम्मिदो[3] णियमा, जंबूदीवं समुक्खिवदि एवं ।
केई आइरिया इय, सत्ति - सहावं परूवंति ।।७२२।।

पाठान्तरम् ।

सत्ती गदा ।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. ह्रे । २. द. ब. क. ज. ठ. दीवम्मि ।
३. द. ब. क. ज. ठ. सोहम्मिदा ।

अर्थ—सौधर्म इन्द्र नियमसे जम्बूद्वीपको (उठाकर) फेंक सकता है। इसप्रकार कोई आचार्य उसके शक्ति स्वभावका निरूपण करते हैं ।।७२२।।

पाठान्तर ।

शक्तिका कथन समाप्त हुआ ।

चारों प्रकारके देवोंकी योनि प्ररूपणा—

भावण-वेंतर-जोइसिय-कप्पवासीण[1]- जणणमुववादे ।
सीदुण्हं अचित्तं, संउदया होंति सामण्णे ।।७२३।।

एदाण चउ-विहाणं, सुराण सव्वाण होंति जोणीओ ।
चउ-लक्खा हु विसेसे, इंदिय-कल्लाद ओवाला (?) ।।७२४।।

जोणी समत्ता ।।

अर्थ—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासियोंके उपपाद जन्ममें शीतोष्ण, अचित्त और संवृत योनि होती है। इन चारों प्रकारके सब देवोंके सामान्यरूपसे ये योनियाँ हैं। विशेषरूपसे चार लाख योनियाँ होती हैं ।।७२३-७२४।।

योनियोंका कथन समाप्त हुआ ।

स्वर्ग सुखके भोक्ता—

सम्मद्दंसण - सुद्धिमुज्जलयरं संसार - णिण्णासणं ।
सम्मण्णाणमणंत - दुक्ख - हरणं धारंति जे सततं ।।७२५।।

णिव्वाहंति विसिट्ठ-सील-सहिदा, जे सम्मचारित्तयं ।
ते सग्गे सुविचित्त-पुण्ण-जणिदे, भुंजंति सोक्खामयं ।।७२६।।

अर्थ—जो अतिशय उज्ज्वल एवं संसारको नष्ट करनेवाली सम्यग्दर्शनकी शुद्धि तथा अनन्त दुःखको हरने वाले सम्यग्ज्ञानको निरन्तर धारण करते हैं और जो विशिष्ट शील-परायण होकर सम्यक्चारित्रका निर्वाह करते हैं, अद्‌भुत पुण्यसे उत्पन्न हुए वे स्वर्गमें सौख्यामृत भोगते हैं ।।७२५-७२६।।

---

१. द. ब. कप्पवासीणणमुववादे ।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण—

चउ-गइ-पंक-विमुक्कं, णिम्मल-वर-मोक्ख-लच्छि-मुह-मुकुरं।
पालदि य धम्म - तित्थं, धम्म - जिणिंदं णमंसामि ॥७२७॥

एवमाइरिय-परंपरा-गय-तिलोयपण्णत्तीए देवलोय-सरूव[1]-
णिरूवण-पण्णत्ती णाम

अट्ठमो महाहियारो समत्तो ॥८॥

अर्थ—जो चतुर्गतिरूप पङ्कसे रहित, निर्मल एवं उत्तम मोक्ष-लक्ष्मी के मुख के मुकुर (दर्पण) स्वरूप तथा धर्म-तीर्थ के प्रतिपादक हैं, उन धर्म जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूं ॥७२७॥

इसप्रकार आचार्य - परम्परागत त्रिलोकप्रज्ञप्ति में देवलोक - स्वरूप - निरूपण प्रज्ञप्ति नामक।

आठवां महाधिकार समाप्त हुआ ॥८॥

---

१. द. ब. सरूवण।

तिलोयपण्णत्ती

णवमो महाहियारो

मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा—

उम्मग्ग-संठियाणं, भव्वाणं मोक्ख - मग्ग - देसयरं ।
पणमिय संति-जिणेसं[1], वोच्छामो सिद्धलोय-पण्णत्ती ।।१।।

अर्थ—उन्मार्गमें स्थित भव्य-जीवोंको मोक्षमार्गका उपदेश करनेवाले शान्ति जिनेन्द्र को नमस्कार करके सिद्धलोक-प्रज्ञप्ति कहता हूँ ।।१।।

पाँच अन्तराधिकारोंका निर्देश—

सिद्धाण णिवास-खिदी, संखा ओगाहणाणि सोक्खाइं ।
सिद्धत्त - हेदु - भावो, सिद्ध - जगे[2] पंच अहियारा ।।२।।

अर्थ—सिद्धोंकी निवास-भूमि, संख्या, अवगाहना, सौख्य और सिद्धत्वके हेतु-भूत भाव, सिद्धलोक प्रज्ञप्ति में ये पाँच अधिकार हैं ।।२।।

सिद्धोंका निवास क्षेत्र—

अट्ठम-खिदीए उवरिं, पण्णासब्भहिय-सत्तय-सहस्सा ।
दंडाणि गंतूणं, सिद्धाणं होदि आवासो ।।३।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. जिणेसं । २. द. ब. क. ज. ठ. जुगे ।

अर्थ—आठवीं (ईषत्प्राग्भार) पृथ्वीके ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धोंका आवास है ॥३॥

विशेषार्थ—अष्टम पृथ्वीसे ऊपर लोकके अन्तमें ४००० धनुष मोटा घनोदधिवातवलय, २००० धनुष मोटा घनवातवलय और १५७५ धनुष मोटा तनुवातवलय है। सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलयमें रहते हैं और इनकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ है। वातवलयों के प्रमाणमेंसे उत्कृष्ट अवगाहना घटा देने पर अष्टम पृथ्वीसे कितने योजन ऊपर जाकर सिद्ध स्थित हैं, यह प्रमाण प्राप्त हो जाता है। यथा—

७०५० धनुष = (४००० ध० + २००० ध० — १५७५ ध०) — ५२५ धनुष।

पणवो छप्पण-इगि-अड-णह-चउ-सग-चउ-ख-चदुर-अड-कमसो।
अट्ठ - हिदा जोयणया, सिद्धाण णिवास - खिदिमाणं ॥४॥

$$\frac{८४०४७४०८१५६२५}{८}$$

णिवास-खेत्तं गदं ॥१॥

अर्थ—सिद्धोंके निवास क्षेत्रका प्रमाण अंक क्रमसे आठसे भाजित पाँच, दो, छह, पाँच, एक, आठ, शून्य, चार, सात, चार, शून्य, चार और आठ इतने ($\frac{८४०४७४०८१५६२५}{८}$) योजन है ॥४॥

विशेषार्थ—सिद्धोंके निवास क्षेत्रका व्यास मनुष्य लोक सदृश ४५ लाख योजन है और सिद्धप्रभुकी उत्कृष्ट अवगाहना अर्थात् ऊँचाई ५२५ धनुष प्रमाण है। इसका घनफल इसप्रकार है—

सिद्धोंके निवास क्षेत्रकी परिधि = $\sqrt{४५ \text{ लाख}^2 \times १०}$ = १४२३०२४९ योजन।

सिद्धक्षेत्रका घनफल = (परिधि $\frac{१४२३०२४९}{१}$) × ($\frac{४५ \text{ लाख}}{४}$ व्यासका चतुर्थांश) × ($\frac{५२५}{२००० \times ४}$ यो० ऊँचाई)।

= $\frac{८४०४७४०८१५६२५}{८}$ घन योजन।

या = १०५०५९२६११९५३$\frac{१}{८}$ घन योजन है।

नोट—उपर्युक्त प्रमाण घन योजनोंमें प्राप्त हुआ है किन्तु गाथामें केवल योजन कहे गये हैं। यह विचारणीय है।

निवास क्षेत्रका कथन समाप्त हुआ ॥१॥

सिद्धों की संख्या—

तीद-समयाण संखं, अड-समयब्भहिय-मास-छक्क-हिदा ।
अड-हीण-छस्सया[1]-हद-परिमाण-जुदा हवंति ते सिद्धा ॥५॥

अ । ५९२[2]
मा ६ । स ८ |

संखा गदा ॥ २ ॥

अर्थ—अतीत समयों की संख्या में छह मास और ८ समय का भाग देकर आठ कम छह सौ अर्थात् ५९२ से गुणा करने पर जो प्राप्त हो उतने [(अतीत समय ÷ ६ मास ८ समय) × ५९२] सिद्ध हैं ॥५॥

संख्या का कथन समाप्त हुआ ॥२॥

सिद्धों की अवगाहना—

पण-कदि-जुद-पंच-सया, ओगाहणया धणूणि[3] उक्कस्से ।
आउट्ठ - हत्थमेत्ता, सिद्धाण जहण्ण - ठाणम्मि ॥६॥

५२५ । ह ७/२ ।

अर्थ—इन सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना पाँच के वर्ग से युक्त पाँच सौ [(५ × ५) + ५०० = ५२५] धनुष है और जघन्य अवगाहना साढ़े तीन (३½) हाथ प्रमाण है ॥६॥

तणुवाद-बहल-संखं, पण-सय-रूवेहि ताडिदूण तदो ।
पण्णरस - सएहिं भजिदे, उक्कस्सोगाहणं होदि ॥७॥

१५७५ । ५०० | ५२५ ।[4]
१५०० |

अर्थ—तनुवात के बाहल्य की संख्या (१५७५ ध०) को पाँच सौ (५००) रूपों से गुणा कर पन्द्रह सौ का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना [(१५७५ × ५००) ÷ १५००] अर्थात् ५२५ ध० उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण होता है ॥७॥

तणुवाद-बहल-संखं, पण-सय- रूवेहि ताडिदूण तदो ।
णव - लक्खेहिं भजिदे, जहण्णमोगाहणं होदि ॥८॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. छस्सयाबाद । २. द. ब. ज मा ५१२ ।
३. द. ब. क. ज. ठ. वणाणि । ४. द. ब. १५०० । १५७५ । ५०० । १ । ५२५ ।

[1]१५७५ × ५०० / ९०००० | ७/८ ।

अर्थ—तनुवात के बाहल्य की संख्या को पाँच सौ रूपों से गुणा करके नौ लाख का भाग देने पर जघन्य अवगाहनाका [(१५७५ × ५००) ÷ ९००००० = ७/८ धनुष = ३½ हाथ] प्रमाण होता है ।। ८ ।।

दीहत्तं बाहल्लं, चरिम-भवे जस्स जारिसं ठाणं ।
तत्तो ति-भाग-हीणं, ओगाहण सव्व-सिद्धाणं ।।९।।

अर्थ—अन्तिम भवमें जिसका जैसा आकार, दीर्घता और बाहल्य हो उससे तृतीय भागसे कम सब सिद्धों की अवगाहना होती है ।।९।।

लोयविणिच्छय-गंथे, लोयविभागम्मि सव्व-सिद्धाणं ।
ओगाहण-परिमाणं, भणिदं[2] किंचूण चरिम-देह-समो ।।१०।।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—लोकविनिश्चय ग्रन्थमें तथा लोगविभागमें सब सिद्धोंकी अवगाहनाका प्रमाण कुछ कम चरम शरीरके सदृश कहा है ।।१०।।

पाठान्तर ।

पण्णासुत्तर-ति-सया, उक्कस्सोगाहणं हवे दंडं ।
तिय-भजिद-सत्त-हत्था, जहण्ण - ओगाहणं ताणं ।।११।।

३५० । ह । ७/३ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—सिद्धोंकी उत्कृष्ट अवगाहना तीन सौ पचास (३५०) धनुष और जघन्य अवगाहना तीनसे भाजित सात (७/३) हाथ प्रमाण है ।।११।।

पाठान्तर ।

विशेषार्थ—मोक्षगामी मनुष्यके अन्तिम शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष और जघन्य अवगाहना ७/८ या ३½ हाथ प्रमाण होती है । कोई आचार्य अन्तिम भव से १/३ भाग कम अर्थात् (५२५ × २/३ =) ३५० धनुष उत्कृष्ट और (७/८ × २/३ =) ७/३ या २⅓ हाथ प्रमाण जघन्य अवगाहना मानते हैं ।

---

१. द. ब. ६००००० । १५७५ । ५०० । १ । ७/८ । २. द. ब. क. भणिदं ।

तणुवाद-पवण-बहुले, दोहिं गुणि णवेण भजिदम्मि ।
जं लद्धं सिद्धाणं, उक्कस्सोगाहणं ठाणं ॥१२॥

२२५० । १५७५ । ५०० । १ । एदेण ते-रासि[1]-लद्धं $\frac{९}{२}$ । १५७५ । ३५० ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—तनुवात पवनके बाहल्यको दोसे गुणित कर नौ का भाग देनेपर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सिद्धोंकी उत्कृष्ट अवगाहनाका स्थान होता है ॥१२॥

विशेषार्थ—तनुवातवलयका बाहल्य १५७५ धनुष प्रमाणांगुलकी अपेक्षा है और सिद्धों की उत्कृष्ट-जघन्य अवगाहना व्यवहारांगुल अपेक्षा है । तनुवातवलय की मोटाईको ५०० से गुणित करने पर (१५७५×५००=) ७८७५०० व्यवहार धनुष प्राप्त होते हैं । सिद्ध परमेष्ठी उत्कृष्टता से तनुवात के एक खण्ड में विराजमान हैं । जबकि (५२५×$\frac{२}{३}$=) ३५० धनुष का १ खण्ड होता है, तब ७८७५०० धनुषों के कितने खण्ड होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{७८७५००}{३५०}$=) २२५० खण्ड हुए । ये २२५० खण्ड व्यवहार धनुष से हैं, इनके प्रमाण-धनुष बनाने के लिये इन्हें ५०० से भाजित करने पर ($\frac{२२५०}{५००}$)=४$\frac{१}{२}$ या $\frac{९}{२}$ प्रमाण धनुष (खण्ड) प्राप्त होते हैं ।

जबकि २२५० अर्थात् $\frac{९}{२}$ खण्डों का १५७५ धनुष स्थान है तब १ खण्ड का कितना होगा ? इसप्रकार पुन: त्रैराशिक करने पर ($\frac{१५७५×२}{९}$ =) ३५० धनुषका सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना का स्थान प्राप्त हुआ । मूल संदृष्टि में यही सब प्रमाण दिया गया है ।

पाठान्तर ।

तणुवादस्स य बहले, छस्सय-पण्णत्तरीहि भजिदम्मि ।
जं लद्धं सिद्धाणं, जहण्ण - ओगाहणं होदि ॥१३॥

१३५०००० । १५७५ । २००० । १ । ते-रासिएण सिद्धं $\frac{१५७५}{६७५}$ । $\frac{७}{३}$ ।

पाठान्तरम् ।

अर्थ—तनुवात के बाहल्य में छह सौ पचहत्तर (६७५) का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतना सिद्धों की जघन्य अवगाहना का स्थान होता है ॥१३॥

विशेषार्थ—गा० १२ के विशेषार्थानुसार यहाँ भी (१५७५×५००=) ७८७५०० व्यवहार धनुष प्राप्त हुए । सिद्धोंकी जघन्य अवगाहना का माप हाथसे है और उनकी अवस्थितिके स्थानका माप धनुष है अतः जबकि ४ हाथका एक धनुष होता है तब ($\frac{४}{१}$×$\frac{७}{३}$=) $\frac{२८}{३}$ हाथके कितने

---

१. ब. तेरासियं ।

धनुष होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर (१/४ × ७/३ =) ७/१२ धनुष प्राप्त हुए। जबकि ७/१२ धनुष का १ खण्ड होता है, तब ७८७५०० धनुषोंके कितने खण्ड होंगे ? इस त्रैराशिकसे (७८७५०० × १२/७) = १३५०००० खण्ड प्राप्त हुए। ये खण्ड व्यवहार धनुष से हैं, इनके प्रमाण धनुष और प्रमाण धनुषोंके प्रमाण हाथ बनानेके लिए इन्हें (५०० × ४ =) २००० से भाजित करनेपर (१३५००००/२००० =) ६७५ खण्ड प्राप्त हुए।

जबकि ६७५ खण्डोंका १५७५ धनुष स्थान है, तब १ खण्डका कितना स्थान होगा ? इस त्रैराशिक से (१५७५/६७५ =) ७/३ हाथका सिद्धोंकी जघन्य अवगाहना का स्थान प्राप्त हुआ।

मूल संदृष्टिमें यही सब प्रमाण दर्शाया गया है।

पाठान्तर।

अवरुक्कस्सं मज्झिम-ओगाहण-सहिद-सिद्ध-जीवाओ।
होंति अणंताणंता, [1]एक्केणोगाहिद-खेत्त-मज्झम्मि ॥१४॥

अर्थ—एक सिद्ध जीवसे अवगाहित क्षेत्रके भीतर जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना-वाले अनन्तानन्त सिद्ध जीव होते हैं ॥१४॥

माणुसलोय - पमाणे, संठिय-तणुवाद-उवरिमे भागे।
सरिस सिरा सव्वाणं, हेट्ठिम-भागम्मि विसरिसा केई ॥१५॥

अर्थ—मनुष्यलोक प्रमाण स्थित तनुवातके उपरिम भागमें सब सिद्धोंके सिर सदृश होते हैं। अधस्तन भागमें कोई विसदृश होते हैं ॥१५॥

जावद्धम्म - दव्वं, तावं गंतूण लोयसिहरम्मि।
चेट्ठंति सव्व-सिद्धा, पुह पुह [2]गयसित्थ-मूस-गब्भ-णिहा ॥१६॥

ओगाहणा गदा ॥३॥

अर्थ—जहाँ तक धर्मद्रव्य है वहाँ तक जाकर लोकशिखरपर सब सिद्ध पृथक्-पृथक् मोमसे रहित मूसक (सांचे) के अभ्यन्तर आकाशके सदृश स्थित हो जाते हैं ॥१६॥

अवगाहनाका कथन समाप्त हुआ ॥३॥

सिद्धोंका सुख—

णिरुवम-रूवा णिट्ठियकज्जा णिच्चा णिरंजणा णिरुजा।
णिम्मल-बोधा सिद्धा, णिरवज्जा णिक्कला सगाधारा ॥१७॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. एक्केणोगहिद। २. द. ब. क. ज. ठ. गयसिद्ध।

लोयालोय-विभागं, तम्मिट्ठिय सव्व-दव्व-पज्जायं ।
तिय-काल-गदं सव्वं, जाणंति हु एक्क - समएण ।।१८।।

अर्थ—अनुपम स्वरूपसे संयुक्त, कृतकृत्य, नित्य, निरंजन, नीरोग, निर्वद्य, निष्पाप, स्व-आधार और निर्मलज्ञानसे युक्त सिद्ध परमेष्ठी लोक और अलोकके विभागको, लोक स्थित सर्व द्रव्यों और उनकी त्रिकालवर्ती सब पर्यायोंको एक ही समयमें जानते हैं ।।१७-१८।।

जाइ-जरा-मरणेहिं, णिम्मुक्का णिम्मला अणक्खयरा ।
अवगद - वेदा सव्वे, अणंत - बोहा अणंत - सुहा ।।१९।।
किदकिच्चा सव्वण्हू, सत्ताघादा सदा-सिवा सुद्धा ।
परमेट्ठी परम - सुही, सव्वगया सव्व - दरिसीय ।।२०।।
अव्वाबाहमणंतं, अक्खयमणुवममणिंदियं सोक्खं ।
अप्पुट्ठं भुंजंति हु, सिद्धा सदा - सदा सव्वे ।।२१।।

सोक्खं समत्तं ।।४।।

अर्थ—जन्म, जरा और मरणसे विनिर्मुक्त, निर्मल, अनक्षर (शब्दातीत), वेद से रहित, अनन्तज्ञानी, अनन्तसुखी, कृतकृत्य, सर्वज्ञ, स्व-सत्तासे सब कर्मोंका घात करनेवाले, सदाशिव, शुद्ध, परम पदमें स्थित, परम सुखी, सर्वगत, सर्वदर्शी, ऐसे सर्व सिद्ध अव्याबाध, अनन्त, अक्षय, अनुपम और अतीन्द्रिय सुखका निरन्तर भोग करते हैं ।।१९-२१।।

इसप्रकार सुख प्ररूपण समाप्त हुआ ।।४।।

सिद्धत्वके कारण—

जह चिर-संचिदमिंधणमणलो पवणाहदो लहुं दहइ ।
तह कम्मिंधणमहियं, खणेण झाणाणलो दहइ ।।२२।।

अर्थ—जिसप्रकार चिर-सञ्चित इंधनको पवनसे आहत अग्नि शीघ्र ही जला देती है, उसीप्रकार ध्यानरूपी अग्नि बहुतभारी कर्मरूपी इंधनको क्षण-मात्रमें जला देती है ।।२२।।

जो खविद[1]-मोह-कलुसो, विसय-विरत्तो मणो णिरुंभित्ता ।
समवट्ठिदो सहावे, सो पावइ णिव्वुदि सोक्खं ।।२३।।

१. द. ब. क. पिविदमोहके खलुसो ।

अर्थ—जो दर्शनमोह और चारित्रमोहको नष्ट कर विषयोंसे विरक्त होता हुआ मनको रोककर (आत्म-) स्वभावमें स्थित होता है वह मोक्ष-सुखको प्राप्त करता है ।।२३।।

जस्स ण विज्जदि रागो, दोसो मोहो व जोग-परिकम्मो ।
तस्स सुहासुह - दहण - ज्झाणमग्रो जायदे अगणी ।।२४।।

अर्थ—जिसके राग, द्वेष, मोह और योग-परिकर्म (योग-परिणति) नहीं है उसके शुभाशुभ (पुण्य-पाप) को जलानेवाली ध्यानमय अग्नि उत्पन्न होती है ।।२४।।

दंसण-णाण-समग्गं, झाणं णो अण्ण - दव्व - संसत्तं ।
जायदि णिज्जर - हेदू, सभाव - सहिदस्स साहुस्स ।।२५।।

अर्थ—(शुद्ध) स्वभाव युक्त साधुका दर्शन-ज्ञानसे परिपूर्ण ध्यान निर्जराका कारण होता है, अन्य द्रव्योंसे संसक्त वह (ध्यान) निर्जराका कारण नहीं होता ।।२५।।

जो सव्व-संग-मुक्को, अणण्ण-मणो अप्पणो[1] सहावेण ।
जाणदि पस्सदि आदं, सो सग-चरियं चरदि जीवो ।।२६।।

अर्थ—जो (अन्तरङ्ग बहिरङ्ग) सर्व सङ्गसे रहित और अनन्यमन (एकाग्रचित्त) होता हुआ अपने चैतन्य स्वभावसे आत्माको जानता एवं देखता है, वह जीव आत्मीय चारित्रका आचरण करता है ।।२६।।

णाणम्मि भावणा खलु, कादव्वा दंसणे चरित्ते य ।
ते पुण आदा तिण्णि वि, तम्हा कुण भावणं आदे ।।२७।।

अर्थ—ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें भावना करनी चाहिए। यद्यपि वे तीनों (दर्शन, ज्ञान और चारित्र) आत्मस्वरूप हैं अतः आत्मामें ही भावना करो ।।२७।।

अहमेक्को खलु सुद्धो, दंसण-णाणप्पगो[2] सदारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि, [3]अण्णं परमाणुमेत्तं पि ।।२८।।

अर्थ—मैं निश्चयसे सदा एक, शुद्ध, दर्शन-ज्ञानात्मक और अरूपी हूँ। परमाणु मात्र (प्रमाण भी) अन्य कुछ मेरा नहीं है ।।२८।।

णत्थि मम कोइ मोहो, [4]बुज्झो उवजोगमेवमहमेगो ।
इह भावणाहि जुत्तो, खवेइ दुट्ठट्ठ - कम्माणि ।।२९।।

---

१ द. ब. क. ज. ठ. अण्णो अप्पणा । २. द. ब. क. ज. ठ. णाणप्पगा समारूवी । ३. द. ब. अण्णि । ४. द. दुज्झो उवजोगमेवमेवमहमेगो, ब. बुज्झो उवज्जोग...... ।

अर्थ—मोह मेरा कुछ भी नहीं है, एक ज्ञान दर्शनोपयोगरूप ही मैं जानने योग्य हूँ; ऐसी भावनासे युक्त जीव दुष्ट-कर्मोंको नष्ट करता है ॥२९॥

णाहं होमि परेसिं, ण मे परे संति[1] णाणमहमेक्को ।
इदि जो झायदि झाणे, सो मुच्चइ अट्ठ - कम्मेहिं ॥३०॥

अर्थ—न मैं पर पदार्थोंका हूँ और न पर पदार्थ मेरे हैं, मैं तो ज्ञान-स्वरूप अकेला ही हूँ; इसप्रकार जो ध्यानमें चिन्तन करता है वह आठ कर्मोंसे मुक्त होता है ॥३०॥

चित्त-विरामे विरमंति, इंदिया इंदियासु विरदेसुं ।
आद - सहावम्मि रदो, होदि पुढं तस्स णिव्वाणं ॥३१॥

अर्थ—चित्तके शान्त होनेपर इन्द्रियाँ शान्त होती हैं और इन्द्रियोंके शान्त होनेपर आत्म-स्वभावमें रति होती है, फिर उसका स्पष्टतया निर्वाण होता है ॥३१॥

णाहं देहो ण मणो, ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं ।
एवं खलु जो भाओ, सो पावइ सासयं ठाणं ॥३२॥

अर्थ—न मैं देह हूँ, न मन हूँ, न वाणी हूँ और न उनका कारण ही हूँ । इसप्रकार का जो भाव है (उसे भाने वाला) वह शाश्वत स्थानको प्राप्त करता है ॥३२॥

देहो व मणो वाणी, पोग्गल-दव्वं परोत्ति[2] णिद्दिट्ठं ।
पोग्गल - दव्वं[3] पि पुणो, पिंडो परमाणु-दव्वाणं ॥३३॥

अर्थ—देहके सदृश मन और वाणी पुद्गल-द्रव्यात्मक पर हैं ऐसा कहा गया है । पुनः पुद्गल द्रव्य भी परमाणु-द्रव्योंका पिण्ड है ॥३३॥

णाहं पुग्गलमइओ, ण दे मया पुग्गला कदा पिंडं ।
तम्हा हि ण देहो हं, कत्ता वा तस्स देहस्स ॥३४॥

अर्थ—न मैं पुद्गलमय हूँ और न मैंने उन पुद्गलोंको पिण्ड (स्कन्ध) रूप किया है, इसलिए न मैं देह हूँ और न इस देहका कर्त्ता ही हूँ ॥३४॥

एवं णाणप्पाणं, दंसण - भूदं अदिंदियमहत्थं ।
धुवममलमणालंबं, भावेमं अप्पयं सुद्धं ॥३५॥

---

१. द. ब. सिंति । २. द. ब. क. ज. ठ. परो । ३ द. ब. क. ज. ठ. धम्मं ।

अर्थ—इसप्रकार ज्ञानात्मक, दर्शनभूत, अतीन्द्रिय, महार्थ, नित्य, निर्मल और निरालम्ब शुद्ध आत्माका चिन्तन करना चाहिए ।।३५।।

णाहं होमि परेसिं, ण मे परे संति णाणमहमेक्को ।
इदि जो झायदि झाणे, सो अप्पाणं हवदि झादो ।।३६।।

अर्थ—न मैं पर पदार्थोंका हूँ और न पर पदार्थ मेरे हैं मैं तो ज्ञानमय अकेला हूँ, इस-प्रकार जो ध्यानमें आत्माका चिन्तन करता है वही ध्याता है ।।३६।।

जो एवं जाणित्ता, झादि परं अप्पयं विसुद्धप्पा ।
अणुवममपारमविसय[1], सोक्खं पावेदि सो जीओ ।।३७।।

अर्थ—जो विशुद्ध आत्मा इसप्रकार जानकर उत्कृष्ट आत्माका ध्यान करता है वह जीव अनुपम, अपार और अतिशय सुख प्राप्त करता है ।।३७।।

णाहं होमि परेसिं, ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि ।
एवं खलु जो भावइ, सो पावइ सव्व - कल्लाणं ।।३८।।

अर्थ—न मैं पर पदार्थका हूँ और न पर पदार्थ मेरे हैं, यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है; जो इसप्रकार भावना भाता है वह सब कल्याण पाता है ।।३८।।

उड्ढाध-मज्झ-लोए, ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि ।
इह भावणाहि जुत्तो, सो पावइ अक्खयं सोक्खं ।।३९।।

अर्थ—यहाँ ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोकमें पर पदार्थ मेरे कुछ भी नहीं है, यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है । इसप्रकारकी भावनाओंसे युक्त वह जीव अक्षय-सुख पाता है ।।३९।।

मद-माण-माय-रहिदो, लोहेण विवज्जिदो य जो जीवो ।
णिम्मल - सहाव - जुत्तो, सो पावइ अक्खयं ठाणं ।।४०।।

अर्थ—जो जीव मद, मान एवं मायासे रहित; लोभसे वर्जित और निर्मल स्वभावसे युक्त होता है वह अक्षय स्थान को पाता है ।।४०।।

परमाणु-पमाणं वा, मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो ।
सो ण [2]विजाणदि समयं-सगस्स सव्वागम-धरो वि ।।४१।।

---

१. द. ब. क. ज. ठ. सयं । २. द. ब. क. आदि ।

अर्थ—जिसके परमाणु प्रमाण भी देहादिकमें राग है, वह समस्त आगमका धारी होकर भी अपने समय (आत्मा) को नहीं जानता है ॥४१॥

तम्हा[1] णिव्वुदि-कामो, रागं देहेसु कुणदु मा किंचि ।
देह - विभिण्णो अप्पा, [2]झायव्वो इंदियादीदो ॥४२॥

अर्थ—इसलिए हे मोक्षाभिलाषी ! देहमें कुछ भी राग मत करो । (तुम्हारे द्वारा) देहसे भिन्न अतीन्द्रिय आत्माका ध्यान किया जाना चाहिए ॥४२॥

देहत्थो देहादो, किंचूणो देह - वज्जिओ सुद्धो ।
देहायारो अप्पा, झायव्वो इंदियातीदो ॥४३॥

अर्थ—देहमें स्थित, देहसे कुछ कम, देहसे रहित, शुद्ध, देहाकार और इन्द्रियातीत आत्मा का ध्यान करना चाहिए ॥४३॥

झाणे जदि णिय-आदा, णाणादो णावभासदे जस्स ।
झाणं होदि ण तं पुण, जाण पमादो हु मोह-मुच्छा वा ॥४४॥

अर्थ—जिस जीवके ध्यानमें यदि ज्ञानसे निज आत्माका प्रतिभास नहीं होता है तो फिर वह ध्यान नहीं है । उसे (तुम) प्रमाद, मोह अथवा मूर्च्छा ही जानो ॥४४॥

गयसित्थ-मूस-गब्भायारो रयणत्तयादि-गुण-जुत्तो ।
णिय-आदा झायव्वो, खय - रहिदो जीव-घण-देसो ॥४५॥

अर्थ—मोमसे रहित मूसकके (अभ्यन्तर) आकाशके आकार, रत्नत्रयादि गुणोंसे युक्त, अविनश्वर और अखण्ड-प्रदेशी निज आत्माका ध्यान करना चाहिए ॥४५॥

जो आद-भाव-णमिणं, णिच्चुव-जुत्तो मुणी[3] समाचरदि ।
सो सव्व - दुक्ख - मोक्खं[4], पावइ अचिरेण कालेण ॥४६॥

अर्थ—जो साधु नित्य उद्योगशील होकर इस आत्म-भावनाका आचरण करता है वह थोड़े समयमें ही सब दुःखोंसे छुटकारा पा लेता है ॥४६॥

---

१. द. तेमा, ब. तम्मा । २. द. क. ज. ठ. झायव्वो ।
३. द. ब. मण्णी । ४. द. ज. ठ. मोक्खे, ब. क. मोक्खो ।

कम्मे णोकम्मम्मि य, अहमिदि अहयं च कम्म-णोकम्मं।
जायदि सा खलु बुद्धी, सो हिंडइ गरुव - संसारं ॥४७॥

अर्थ—कर्म और नोकर्ममें "मैं हूँ" तथा मैं कर्म-नोकर्मरूप हूं; इसप्रकार जो बुद्धि होती है उससे यह प्राणी गहन संसारमें घूमता है ॥४७॥

जो खविद-मोह-कम्मो, विसय-विरत्तो मणो णिरु भित्ता।
समवट्ठिदो सहावे, सो मुच्चइ कम्म - णिगलेहिं ॥४८॥

अर्थ—जो मोहकर्म (दर्शनमोह और चारित्रमोह) को नष्टकर विषयोंसे विरक्त होता हुआ मनको रोककर स्वभावमें स्थित होता है, वह कर्मरूपी सांकलोंसे छूट जाता है ॥४८॥

पयडिट्ठिदि-अणुभाग-प्पदेस-बंधेहिं वज्जिओ अप्पा।
सो हं इदि चिंतेज्जो, तत्थेव य कुणह थिर-भावं ॥४९॥

अर्थ—जो प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्धसे रहित आत्मा है वही मैं हूँ, इसप्रकार चिन्तन करना चाहिये और उसमें ही स्थिरता करनी चाहिये ॥४९॥

केवलणाण-सहाओ, केवलदंसण-सहाओ सुहमइयो।
केवल-विरिय-सहाओ, सो हं इदि चिंतए णाणी ॥५०॥

अर्थ—जो केवलज्ञान एवं केवलदर्शन स्वभाव से युक्त, सुख-स्वरूप और केवल-वीर्य-स्वभाव है वही मैं हूँ, इसप्रकार ज्ञानी जीवको विचार करना चाहिए ॥५०॥

जो सव्व-संग-मुक्को, झायदि अप्पाणमप्पणो[1] अप्पा।
सो सव्व दुक्ख-मोक्खं, पावइ अचिरेण कालेण ॥५१॥

अर्थ—सर्व सङ्ग (परिग्रह) से रहित जो जीव अपने आत्माका आत्माके द्वारा ध्यान करता है वह थोड़े ही समय में समस्त दुःखों से छुटकारा पा लेता है ॥५१॥

जो इच्छदि णिस्सरिदुं, संसार-महण्णवस्स रुंदस्स।
सो एवं जाणित्ता, परिझायदि अप्पयं सुद्धं ॥५२॥

अर्थ—जो गहरे संसाररूपी समुद्र से निकलने की इच्छा करता है वह इसप्रकार जानकर शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है ॥५२॥

---

१ द. ब. क. ज. ठ. अप्पाण अप्पणो।

पडिकमणं पडिसरणं, पडिहरणं धारणा णियत्ती य ।
णिंदण-गरहण-सोही, लब्भंति णियाद-भावणए ॥५३॥

अर्थ—निजात्म-भावना से (जीव) प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, प्रतिहरण, धारणा, निवृत्ति, निन्दन, गर्हण और शुद्धिको प्राप्त करते हैं ॥५३॥

जो णिहद-मोह-गंठी, राय-पदोसे[1] हि खविय सामण्णे ।
होज्जं सम-सुह-दुक्खो[2], सो सोक्खं अक्खयं लहदि ॥५४॥

अर्थ—जो मोह रूप ग्रन्थिको नष्टकर श्रमण अवस्था में राग-द्वेष का क्षपण करता हुआ सुख-दुःख में समान हो जाता है, वह अक्षय सुखको प्राप्त करता है ॥५४॥

ण जहदि जो दु[3] ममत्तं, अहं ममेदं ति देह-दविणेसु ।
सो मूढो अण्णाणी, बज्झदि दुट्ठ - कम्मेहिं ॥५५॥

अर्थ—जो देह में 'अहम्' (मैं पना) और धन में 'ममेदं' (यह मेरा) इस दो प्रकार के ममत्वको नहीं छोड़ता है, वह मूर्ख अज्ञानी दुष्ट कर्मों से बंधता है ॥५५॥

पुण्णेण होइ विहओ, विहवेण मओ[4] मएण मइ-मोहो ।
मइ - मोहेण य पावं, तम्हा[5] पुण्णो विवज्जेज्जो ॥५६॥

अर्थ—पुण्य से वैभव, वैभव से मद, मद से मति-मोह और मति-मोह से पाप होता है, अतः पुण्यको छोड़ना चाहिए ॥५६॥

परमट्ठ-बाहिरा जे, ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
संसार - गमण - हेदुं, विमोक्ख - हेदुं अयाणंता[6] ॥५७॥

अर्थ—जो परमार्थ से बाहर हैं वे संसार-गमन और मोक्षके हेतु को न जानते हुए अज्ञान से पुण्यकी इच्छा करते हैं ॥५७॥

ण हु मण्णदि जो एवं[7], णत्थि विसेसो त्ति पुण्ण-पावाणं ।
हिंडदि घोरमपारं, संसारं मोह - संछण्णो[8] ॥५८॥

अर्थ—पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, इसप्रकार जो नहीं मानता है, वह मोह से युक्त होता हुआ घोर एवं अपार संसार में भ्रमण करता है ॥५८॥

---

१. द. ब. क. पदोसो । २. द ब. क. ज. ठ. दुक्खं । ३. ब हु । ४. ब माया । ५. द. ब. क. तम्मा । ६. द. ब. क. ठ. अयाणंता । ७. द. ब. क. ठ. एणं । ८. द. ब. समोहछण्णो ।

मिच्छत्तं अण्णाणं, पावं पुण्णं चएवि तिविहेणं ।
सो णिच्चयेण जोई, झायव्वो अप्पयं सुद्धं ॥५९॥

अर्थ—मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप और पुण्य इनका (मन, वचन, काय) तीन प्रकार से त्याग करके योगी को निश्चय से शुद्ध आत्मा का ध्यान करना चाहिये ॥५९॥

जीवो परिणमदि जदा, सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।
सुद्धेण तहा सुद्धो, हवदि हु परिणाम - सब्भावो ॥६०॥

अर्थ—परिणाम-स्वभावरूप जीव जब शुभ अथवा अशुभ परिणाम से परिणमता है तब शुभ अथवा अशुभ (रूप) होता है और जब शुद्ध परिणाम से परिणमता है तब शुद्ध होता है ॥६०॥

धम्मेण परिणदप्पा, अप्पा जइ सुद्ध-संपजोग-जुदो ।
पावइ णिव्वाण - सुहं, सुहोवजुत्तो य सग्ग - सुहं ॥६१॥

अर्थ—धर्म से परिणत आत्मा यदि शुद्ध उपयोग से युक्त होता है तो निर्वाण-सुखको और शुभोपयोग से युक्त होता है तो स्वर्ग-सुखको प्राप्त करता है ॥६१॥

असुहोदएण आदा[1], कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो ।
दुक्ख-सहस्सेहिं सदा, अभिधुदो भमदि अच्चंतं ॥६२॥

अर्थ—अशुभोदय से यह आत्मा कुमानुष, तिर्यञ्च और नारकी होकर सदा अचिन्त्य हजारों दुःखों से पीड़ित होकर संसार में अत्यन्त (दीर्घकाल तक) परिभ्रमण करता है ॥६२॥

अदिसयमाद - समेत्तं, विसयातीदं अणोवममणंतं ।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं, सुद्धुवओगप्प - सिद्धाणं ॥६३॥

अर्थ—शुद्धोपयोग से उत्पन्न सिद्धों को अतिशय, आत्मोत्थ, विषयातीत, अनुपम, अनन्त और विच्छेद रहित सुख प्राप्त होता है ॥६३॥

रागादि-संग-मुक्को, डहइ मुणी सेय-झाण-झाणेणं ।
कम्मिंधण - संघायं, अणेय - भव - संचियं खिप्पं ॥६४॥

अर्थ—रागादि परिग्रह से रहित मुनि शुक्लध्यान नामक ध्यान से अनेक भवों में संचित किये हुए कर्मरूपी इंधनके समूहको शीघ्र जला देता है ॥६४॥

---

१. द. ब. क. ज. ठ. यादो ।

जो संकप्प-वियप्पो, तं कम्मं कुणदि असुह-सुह-जणणं ।
अप्पा - सभाव - लद्धी, जाव ण हियये परिफुरइ ।।६५।।

अर्थ—जब तक हृदय में आत्म-स्वभाव की उपलब्धि प्रकाशमान नहीं होती तब तक जीव संकल्प-विकल्परूप शुभ-अशुभको उत्पन्न करने वाला कर्म करता है ।।६५।।

बंधाणं[1] च सहावं, विजाणिदुं अप्पणो सहावं च ।
बंधेसु जो ण रज्जदि, सो कम्म[2]-विमोक्खणं कुणइ ।।६६।।

अर्थ—जो बन्धों के स्वभावको और आत्माके स्वभावको जानकर बन्धों में अनुरञ्जायमान नहीं होता है, वह कर्मोंका मोक्ष (क्षय) करता है ।।६६।।

जाव ण वेदि विसेसंतरं[3] तु आवासवाण दोण्हं पि ।
अण्णाणी ताव दु सो, विसयादिसु वट्टते जीवो ।।६७।।

अर्थ—जब तक जीव आत्मा और आस्रव इन दोनों के विशेष अन्तरको नहीं जानता तब तक वह अज्ञानी विषयादिकों में प्रवृत्त रहता है ।।६७।।

ण वि परिणमदि[4] ण गेण्हदि, उप्पज्जदि ण परदव्व-पज्जाए ।
णाणी जाणंतो वि हु, पोग्गल - दव्वं[5] अणेय - विहं ।।६८।।

अर्थ—ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के पुद्गल द्रव्यको जानता हुआ भी परद्रव्य-पर्याय से न परिणमता है, न (उसे) ग्रहण करता है और न (उस रूप) उत्पन्न होता है ।।६८।।

जो परदव्वं तु सुहं, असुहं वा मण्णदे विमूढ-मई ।
सो मूढो अण्णाणी, बज्झदि दुट्ठट्ठ - कम्मेहिं ।।६९।।

एवं भावणा समत्ता ।।५।।

अर्थ—जो मूढ़-मति पर द्रव्यको शुभ अथवा अशुभ मानता है, वह मूढ़ अज्ञानी दुष्ट आठ कर्मों से बँधता है ।।६९।।

इसप्रकार भावना समाप्त हुई ।।५।।

---

१. द. ब. क. ठ. बद्धाणं । २. द. ब. क. ठ. रंम । ३. द. ब. क. विसेसंभतरं । ४. द. ब. परणमदि ।
५. ब. दव्वमणेय विहं ।

कुन्थुनाथ जिनेन्द्र से वर्धमान जिनेन्द्र पर्यन्त आठ तीर्थंकरों को क्रमशः नमस्कार—

केवलणाण-दिणेसं, चोत्तीसादिसय - भूदि - संपण्णं ।
अप्प - सरूवम्मि ठिदं, कुंथु - जिणेसं णमंसामि ॥७०॥

अर्थ—जो केवलज्ञानरूप प्रकाश युक्त सूर्य हैं, चौंतीस अतिशयरूप विभूति से सम्पन्न हैं और आत्म-स्वरूप में स्थित हैं, उन कुन्थुजिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७०॥

संसारण्णव-महणं, तिहुवण-भवियाण मोक्ख-संजणणं ।
संदरिसिय - सयलत्थं[1], अर - जिणणाहं णमंसामि ॥७१॥

अर्थ—जो संसार-समुद्र का मथन करने वाले हैं और तीनों लोकों के भव्य जीवों को मोक्ष के उत्पादक हैं तथा जिन्होंने सकलपदार्थ दिखला दिये हैं, ऐसे अर जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७१॥

भव्व-जण-मोक्ख-जणणं, मुणिंद-देविंद-पणद-पय-कमलं ।
अप्प-सुहं संपत्तं, मल्लि - जिणेसं णमंसामि ॥७२॥

अर्थ—जो भव्य-जीवों को मोक्ष-प्रदान करने वाले हैं, जिनके चरण-कमलों में मुनीन्द्रों और देवेन्द्रों ने नमस्कार किया है, आत्म-सुख से सम्पन्न ऐसे मल्लिनाथ जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ॥७२॥

णिट्ठ-विय-घाइ-कम्मं, केवल-णाणेण दिट्ठ-सयलत्थं ।
णमह मुणिसुव्वएसं, भवियाणं सोक्ख - देसयरं ॥७३॥

अर्थ—जो घातिकर्मको नष्ट करके केवलज्ञानसे समस्त पदार्थों को देख चुके हैं और जो भव्य जीवों को सुखका उपदेश करने वाले हैं, ऐसे मुनिसुव्रतस्वामी को नमस्कार करो ॥७३॥

घण-घाइ-कम्म-महणं, मुणिंद-देविंद-पणद-पय-कमलं ।
पणमह णमि-जिणणाहं, तिहुवण-भवियाण सोक्खयरं ॥७४॥

अर्थ—घन-घाति-कर्मोंका मथन करने वाले, मुनीन्द्र और देवेन्द्रों से नमस्कृत चरण-कमलों से संयुक्त, तथा तीनों लोकों के भव्य जीवोंको सुख-दायक, ऐसे नमि जिनेन्द्रको नमस्कार करो ॥७४॥

इंद-सय-णमिद-चरणं, आद-सरूवम्मि सव्व-काल-गदं ।
इंदिय - सोक्ख - विमुक्कं, णेमि - जिणेसं णमंसामि ॥७५॥

---

१. द. ब. क. ठ. सयलट्ठं ।

अर्थ—सौ इन्द्रों से नमस्कृत चरणवाले, सर्वकाल आत्मस्वरूप में स्थित और इन्द्रिय-सुखसे रहित ऐसे नेमि जिनेन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ ।।७५।।

कमठोपसग्ग-दलणं, तिहुयण-भवियाण मोक्ख-देसयरं ।
पणमह पास - जिणेसं, घाइ - चउक्कं विणासयरं ।।७६।।

अर्थ—कमठकृत उपसर्गको नष्ट करनेवाले, तीनों लोकों सम्बन्धी भव्योंके लिये मोक्षके उपदेशक और घाति-चतुष्टयके विनाशक पार्श्व-जिनेन्द्रको नमस्कार करो ।।७६।।

एस सुरासुर-मणुसिंद-वंदिदं धोद-घाइ-कम्म-मलं ।
पणमामि वड्ढमाणं, तित्थं धम्मस्स कत्तारं ।।७७।।

अर्थ—जो इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्तियों से वंदित, घातिकर्मरूपी मलसे रहित और धर्म-तीर्थ के कर्ता हैं उन वर्धमान तीर्थंकर को मैं नमस्कार करता हूँ ।।७७।।

पंच-परमेष्ठी को नमस्कार—

※ मालिनी छन्द ※

जयउ जिणवरिंदो, कम्म-बंधा अबद्धो[1],
जयउ-जयउ सिद्धो सिद्धि-मग्गो समग्गो[2] ।
जयउ जय-अणंदो, सूरि-सत्थो पसत्थो,
जयउ जदि वदीणं[3] उग्ग-संघो अविग्घो ।।७८।।

अर्थ—कर्म बन्ध से मुक्त जिनेन्द्र जयवन्त होवें, समग्र सिद्धि-मार्ग को प्राप्त हुए सिद्ध भगवान् जयवन्त होवें, जगत् को आनन्द देने वाला प्रशस्त सूरि-समूह जयवन्त होवे और विघ्नों से रहित साधुओं का प्रबल संघ लोकमें जयवन्त होवे ।।७८।।

भरतक्षेत्रगत चौबीस जिनोंको नमन—

पणमह चउवीस-जिणे, तित्थयरे तत्थ भरहखेत्तम्मि ।
सव्वाणं भव - दुक्खं, छिंदंते णाण - परसेहिं[4] ।।७९।।

अर्थ—जो ज्ञान-रूपी परशुसे सब जीवों के भव-दुःखको छेदते हैं, उन भरतक्षेत्र में उत्पन्न हुए चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करो ।।७९।।

---

१. द. ब. अबंधो ।　　२. द. ब. क. ठ. समग्गा ।

३. द. ब. क. ठ. वदीणं ।　४. द. ब. क. ठ. परेसेहिं ।

ग्रन्थान्त मङ्गलाचरण—

पणमह जिणवर-वसहं, गणहर-वसहं तहेव गुणहर-वसहं ।
दुसह-परीसह-वसहं, जदिवसहं धम्म-सुत्त-पाढए[1]-वसहं ।।८०।।

अर्थ—जिनवर वृषभको, गुणों में श्रेष्ठ गणधर वृषभ को तथा दुस्सह परीषहों को सहन करने वाले एवं धर्म-सूत्रके पाठकों में श्रेष्ठ यतिवृषभको नमस्कार करो ।।८०।।

ग्रन्थका प्रमाण एवं नाम आदि—

चुण्णिसरूवं अट्ठं, करणसरूव - पमाण - किंजत्तं ।
अट्ठ - सहस्स - पमाणं, तिलोयपण्णत्ति - णामाये ।।८१।।
मग्गप्पभावणट्ठं, पवयण-भत्ति-प्पचोदिदेण मया ।
भणिदं गंथ - प्पवरं, सोहंतु बहुस्सुदाइरिया ।।८२।।

एवमाइरिय-परंपरा-गय-तिलोयपण्णत्तीए सिद्धलोय-सरूव-णिरूवण-पण्णत्ती णाम

णवमो महाहियारो समत्तो ।।९।।

अर्थ—आठ (हजार) पद प्रमाण चूर्णिस्वरूप के तुल्य आठ हजार श्लोक प्रमाण यह त्रिलोक-प्रज्ञप्ति नामक महान ग्रंथ मार्ग-प्रभावना एवं अष्ट-प्रवचन भक्ति से प्रेरित होकर मेरे द्वारा कहा गया है । बहुश्रुत आचार्य (इसका) शोधन करें ।।८१-८२।।

इसप्रकार आचार्य परम्परा से प्राप्त हुई त्रिलोक प्रज्ञप्ति में सिद्धलोक-स्वरूप-निरूपण-प्रज्ञप्ति नामक नवाँ महाधिकार समाप्त हुआ ।।९।।

---

१. द. ब. क. ठ. पाढर ।

प्रशस्तिः

[हिन्दी टीकाकर्त्री पू० आर्यिका विशुद्धमतीजी रचित]

* उपेन्द्रवज्रा *

अगाधसंसार महार्णवं यस्तपस्तरण्या सुतरां ततार ।
स पार्श्वनाथः प्रणतः सुरौघैर्निपातु मां मोह महाब्धिगं प्राक् ॥१॥

* उपजातिः *

श्री मूलसंघे जगतीप्रसिद्धे स नन्दिसंघोऽजनि जैनमान्यः ।
यस्मिन् बलात्कारगणश्च जातो गच्छश्च सारस्वत संज्ञितोऽभूत् ॥२॥
बभूव तस्मिन् सितकीर्तिराशिविभासिताशेष दिगन्तरालः ।
श्री कुन्दकुन्दो यतिवृन्दवन्द्यो दिगम्बरः सूरिवरो वरीयान् ॥३॥
तत्रैव जाता यतयो महान्तः समन्तभद्रादिशुभाह्वयास्ते ।
श्रुतार्णवो यैं मंथितः सुबुद्धया सुमेरुणा बोधसुधा च लब्धा ॥४॥
तत्रैव वंशे गगनोपमाने सूर्याभसूरिः स बभूव भू यः ।
[1]श्रीशान्तिसिन्धुर्गरिमाभि युक्तः प्रचारितो येन शिवस्य पन्थाः ॥५॥
तस्याथ पट्टं मुनि वीरसिन्धुः[2] प्रगल्भबुद्धिः समवाप सूरिः ।
यस्यानुकम्पामृतपानतृप्ता बभूवुरत्राखिल साधुसङ्घाः ॥६॥
तस्यापि शिष्यः शिवसागरोऽभूत् कृशोऽपि कायात्वकृशः सुबुद्धया ।
शिष्या यदीयाः प्रथिताः पृथिव्यां यदीय कीर्ति विततां प्रचक्रुः ॥७॥
तदीय पादाब्जरजः प्रसादाद् भवाद् विरक्ता मतिरत्र मेऽभूत् ।
प्रदाय दीक्षां भुवि पालिताहं पुत्रीव येनार्तिकृपां विधाय ॥८॥
अस्यैवसङ्घे श्रुतसागराख्यो मुनीश्वरो मां कृपया समीक्ष्य ।
कृत प्रवेशां करणानुयोगे चकार, चारित्रविभूषितात्मा ॥९॥
अत्रैव सङ्घेऽजितसागराख्यो गीर्वाणवाणी निपुणां विधाय ।
स्वाध्याययोग्यां श्रुतसन्ततीनां व्यधाद् दयाप्रेरितमानसो माम् ॥१०॥

---

१. श्री शान्तिसागरः । २. वीरसागरः ।

दिवंगतेऽस्मिन् शिवसागरेऽत्र बभूव तत्पट्टपतिर्मनोज्ञः ।
[1]श्रीधर्मसिन्धुर्यमिनां सुबन्धुः करोति यः संयमिनां सुरक्षाम् ।।११।।

* अनुष्टुप् *

तस्मिन् संघे मुनिर्जातः सन्मतिसागराभिधः ।
लोकज्ञतागुणोपेतो धर्मवात्सल्यसंयुतः ।।१२।।
आर्यिका सद्व्रतादाने तेनैवाहं समीरिता ।
जाताऽशुद्धमतिर्भूत्वा विशुद्धमतिसंज्ञिता ।।१३।।
वीरमत्यादिमत्याद्या मातरस्तत्र सन्ततम् ।
सत्तपश्चरणोद्युक्ताः साधयन्त्यात्मनो हितम् ।।१४।।
रत्नचन्द्रो महाविद्वानागमज्ञानभूषितः ।
गृहाद् विरज्य संघेऽस्मिन् स्वाध्यायं विदधात्य सां ।।१५।।
एतस्य प्रेरणां प्राप्य ममापि रुचिरुद्यता ।
आगमाभ्यास सत्कार्ये स्वात्मकल्याणकारिणी ।।१६।।
गृहाद् विरज्य सन्नार्यः काश्चिदात्महितोद्यताः ।
साधयन्त्यात्मनः श्रेय एतत्संघस्य सन्निधौ ।।१७।।
इत्थं चतुर्विधः संघः पृथिव्यां प्रथितः परम् ।
विदधद् धर्ममाहात्म्यं कुर्वाणो जनताहितम् ।।१८।।
निर्ग्रन्था अपि सग्रन्था विश्रुता अपि सश्रुताः ।
कुर्वन्तु मङ्गलं मेऽत्र मुनीशास्तान्नमाम्यहम् ।।१९।।
राजस्थान महाप्रान्ते शौर्यविक्रमशालिनि ।
वीरप्रसविनी भूमिर्मेव पाटेति संज्ञिता ।।२०।।
वर्तते, तत्र कासार सन्तत्या परिभूषितम् ।
उदयपुर मित्याह्वं पत्तनं प्रथितं पृथु ।।२१।।
नाना जिनालयै रम्यं गृहिभिर्धर्म वत्सलैः ।
संयुतं वर्तते यत्र जैनधर्मप्रभावना ।।२२।।
तत्रास्ति पार्श्वनाथस्य मन्दिरं महिमान्वितम् ।
भूगर्भप्राप्तसद्बिम्ब सहितं महितं बुधैः ।।२३।।

---

१ श्रीधर्मसागरः ।

अष्टत्रिंशत्परियुक्त सहस्रद्वयसंमिते[1] ।
अब्दे विक्रमराज्यस्य वर्षायोग स्थितो मुनिः ॥२४॥
सन्मतिसागराभिख्यः समाधि शिश्रिये मुदा ।
दर्शनार्थं गतां मां स व्रते स्नेह पुरस्सरम् ॥२५॥
वत्से ! त्रिलोकसारस्ये टीका दृष्टा त्वया कृता ।
तथा सिद्धान्त सारस्य टीकापि पठिता मया ॥२६॥
अथ तिलोयपण्णत्तेरपि टीकां करोत्वरम् ।
गणितग्रन्थि संदर्भ - मोचने कुशलास्ति ते ॥२७॥
प्रज्ञा परोक्षितं त्वेतत्प्राज्ञप्राग्रहरै रपि ।
आशीर्मे विद्यते तुभ्यं दीर्घायुस्त्वंभवेरिह ॥२८॥
अन्तिमा वर्तते वेला मदीयस्यायुषस्ततः ।
टीकां युष्मत्कृतां नाहं दृष्टुं शक्ष्यामि जीवने ॥२९॥
आशिषा कार्यसाफल्यं कामये तव साम्प्रतम् ।
सम्बलं भवदाशीर्मे भवताद् बलदायकम् ॥३०॥
इत्युक्त्वा हि तदादेशः शिरसा स्वीकृतो मया ।
दत्वा शिषं शुभां मह्यं करुणापूर्णमानसः ॥३१॥
आरुरोह दिवं सोऽयं सन्मतिसागरो गुरुः ।
इष्ट वियोग संजात - शोके मे प्रशमं गते ॥३३॥
टीका तिलोयपण्णत्याः प्रारब्धा शुभवासरे ।
आग्रहायणमासस्य बहुलैकादशी तिथौ ॥३४॥
उदिते हस्तनक्षत्रे दिवसे रवि संज्ञिते ।
कर्मानिलनभोनेत्र मिते विक्रमवत्सरे[2] ॥३५॥
नत्वा पार्श्वजिनं मूर्ध्ना ध्यायं ध्यायं च सन्मतिम् ।
टीकां तिलोयपण्णत्ते निर्मातुं तत्परा भवम् ॥३६॥
टीकायाः प्रचुरो भागो लिखितोह्युदये पुरे ।
रम्ये सलुम्बरे जाता शोभिते जिन मन्दिरैः ॥३७॥

---

१ २०३८ । २. २०३८ ।

माघ मासस्य शुक्लायां पञ्चम्यां गुरु वासरे ।
नेत्राब्धिगगनद्वन्द्वप्रमिते विक्रमाब्दके[1] ॥३८॥

पूर्तिरस्याः समापन्ना टीकाया विदुषां मुदे ।
सैषा टीका चिरंजीयान्मोहध्वान्त विनाशिनी ॥३९॥

* आर्या *

यतिवृषभाचार्यकृतस्तिलोयपण्णत्तिसंज्ञितो ग्रन्थः ।
अति गूढ़ गणितयुक्तस्त्रिलोक संवर्णनो ह्यस्ति ॥४०॥

एतस्य वर्णने यास्त्रुटयो जाता मदीय संमोहात् ।
क्षन्तव्यास्ता विबुधैरागमसरिदीशपारगै र्नियतम् ॥४१॥

* उपजातिः *

असौ प्रयासो मम तुच्छ बुद्धे र्हास्यास्पदं स्यान्नियतं बुधानाम् ।
तथापि तावत्तनुबुद्धिभाजां कृते प्रयासः सफलो मम स्यात् ॥४२॥

* पुष्पिताग्रा *

यतिवृषभमुनीन्द्र निर्मितेयं कृतिरिह भव्यमनः प्रमोदभर्त्री ।
रविशशि युगलं विभाति यावद् विलसतु तावदिह क्षितौ समन्तात् ॥४४॥

* उपजातिः *

धुनोति शास्त्रं तिमिरं जनानां मनोगतं सूर्यशतैरभेद्यम् ।
संरक्षणीयं विबुधैस्तदेतन् न्यासीकृतं पूर्वजनैश्च हस्ते ॥४५॥

तनोति बोधं विधुनोति मोहं चिनोति चेतः सुधियां सुशास्त्रम् ।
पीयूषतुल्यं जिनभाषितं तत् सदैव यानात्परिरक्षणीयम् ॥४६॥

* अनुष्टुप् *

यस्या शिक्षा समारब्धा टीकेयं पूर्तिमागता ।
स्वर्गस्थं सन्मतेर्विध्य मात्मानं तं नमाम्यहम् ॥४७॥

---

१. २०४२ ।

गाथानुक्रमणिका

छ

ह